117 11.5.26

SOCIETY

ओ३म्

श्रीमद्दयानन्द-प्रकाश ।

H.242

लेखकः—

सत्यानन्द ।

सम्वत् १९८१

श्रीदयानन्द जन्म-शताब्दि संस्करण ।

मूल्य] चौथी बार । [१॥) रुपया ।

महर्षि दयानन्द

नगरों की सूची।

मुख्य घटनाओंकी सूची

पृष्ठांक.

पृष्ठांक.

प्रथम संस्करण सम्बन्धी

निवेदन ।

महर्षि दयानन्दयके ग्रन्थोंके अध्ययनरूप संघर्षणहीने मेरे अन्तरात्मामें आस्तिक भावकी ज्योतिको प्रकट किया है। विश्वास शिलापर आरूढ होनेके समयसे अपने धार्मिक जन्मदाता महापुरुषके प्रति, मेरे हृदयमें गाढ अनुरागवृत्ति और अगाध भक्ति अनवच्छिन्नरूपसे चली आई है। इस कारण, आर्य्यसमाजके धर्म्मक्षेत्रमें रात्रिदिवा विचरण करते, जहाँ कहींसे अद्वितीय दयानन्दके गुणोंका कोई मणि-मोती मिल जाता, तो मैं उसे बड़ी सावधानीसे अपनी टिप्पणी पत्रिकाकी पेटीमें टिप्पणकर सुरक्षित रख लेता। फिर, प्रसङ्गानुसार, अपने भाषणोंमें, व्याख्यानोंमें, कथाओंमें, वार्त्तालापमें बार बार उनका कीर्त्तन करता। इस प्रकार अनेक वर्षोंकी कार्यतत्परतासे, मेरे पास ऋषिराजके समुज्ज्वल वृत्तान्तोंकी एक रत्नराशि संचित हो गई।

इसके अतिरिक्त, पाँच वर्षतक, ऋषि-जीवनकी विशेष सामग्री एकत्र करनेके प्रयोजनसे, मैंने विशेष पर्य्यटन किया। उस यात्रामें जहाँ मुझे महाराजके उत्तमोत्तम वृत्त प्राप्त हुए, वहाँ अतिशय वृद्ध ऋषि-भक्तोंके चित्तादर्शमें-उनकी मनोहर छवि देखनेका भी सौभाग्य उपलब्ध हुआ। जिस समय, वयोवृद्ध भक्तजन, प्रेमाश्रुओंसे अपने कपोलोंको, अपने आँचलोंको, अपने वक्ष-स्थलोंको सिंचन करते, ऋषिके रहन सहनका, बोल चालका, रीति-नीतिका कर्मक्रियाका दिनचर्य्याका और आपादमस्तक, मनोमोहिनी मूर्तिका वर्णन करते करते गद्गद हो जाते तब पता लगता कि आर्य्यसमाजका आदर्शपुरुष कितना महान् है; कितना उत्तम है और कितना पवित्र है।

इस भूरि परिभ्रमणसे, मेरे पास, महाराजके जीवन समाचारोंकी कई टिप्पणी पत्रिकायें हो गईं। मैं चाहता तो यही था कि अभी दो वर्षतक और मनन करूँ परन्तु गत शीतकालमें, मेरी विचारपरम्परामें परिवर्त्तन आ गया। मैंने निश्चय कर लिया कि आगामी उष्णकालमें, किसी एकान्त प्रदेशमें, बैठकर, अधिक नहीं व्याख्यान-माला की माला तो निर्माण कर ही लेनी चाहिए।

मुख्य दो कारणोंसे, मैंने दो वर्ष पहले लेखना अवलम्बन की। एक तो सज्जन स्नेही पुनः पुनः प्रेरणा करते थे कि टिप्पणी पत्रिकाओंको पुस्तकाकार कर देना उचित है। इनके खो जानेका भी भय है। आजकल करते कार्य्य रह भी जाया करते हैं।

दूसरे, गतवर्षके पौष और फाल्गुनमें मैंने दो बार काशीकी यात्रा की। वहाँ, कई दिनोंतक रह कर, स्वर्गीय देवेन्द्रनाथद्वारा संग्रह की हुई ऋषिजीवनकी सामग्रीकोभी देखा। उनकी टिप्पणी पत्रिकाओंको सुना। उनमें कई ऐसी पत्रिकायें थीं जिनके पृष्ठोंके पृष्ठ पढ़े नहीं जाते थे; सङ्केत समझमें नहीं आते थे। प्रसङ्गोंके मिलानेमें कठिनतासे कामलेना पड़ता था।उनपरसेप्रति उतारनेवाला अटकल और अनुमानसे काम लेता था, स्वर्गीय बाबूकी सगृहीत सामग्रीकी ऐसी अस्तव्यस्त अवस्था देखकर मैंने मन ही मन कहा कि किसीके अधूरे छोड़े कार्य्यके पीछे ऐसी ही दशा होती है। मुझे अपनी टिप्पणियोंको, यथासम्भव शीघ्र ग्रन्थन कर देना चाहिए।

ऊपर कहे कारणोंसे प्रेरित हो,गतउष्णकालमें,मैंने एक बहुतही विविक्त स्थानमें रहकर इस पुस्तकको लिखा। इसमें आर्य्यपथिक श्रीलेखरामजीकी सामग्रीसे बड़ा भारी भाग लिया है। कई प्रश्नोत्तरों और लेखोंको संक्षिप्तता करना पड़ा है परन्तु भावोंकी सुरक्षापर पूरा ध्यान रक्खा है। 'भारत सुदशाप्रवर्त्तक' आदि समाचार पत्रोंसे भी कुछ एक अंश लिये गये हैं।

इतनी महार्घताके युगमें, मैं इस ऋषीकथाको मुद्रण न कर सकता यदि लाहौर निवासी पंडित ठाकुरदत्त शर्म्मा, अधिपति अमृतधारा; सुप्रसिद्ध सज्जन रायसाहिब डा.मथुरादासजी;अमृतसरके प्रसिद्ध डा. श्रीयुत सत्यपालजी,श्रीयुत लाला जयदयालजी कपूर और लाला देवी दयालजी कोट नक्का निवासी अपनी उदारतासे मुझे प्रोत्साहित न करते। पंजाबके प्रसिद्ध हिन्दी लेखक श्रीसन्त-रामजी बी. ए. ने मेरी लिखी पुस्तककी मुद्रणालयके लिए शुद्ध और स्वच्छ प्रति उतारनेमें प्रभूत परिश्रम किया है। इन सज्जनोंकी सहायतासे आज मैं महर्षिके महत्त्वरूप मणि–मुक्ताओंकी महामूल्य माला आर्यमण्डलको अतिशय समादर और सम्मानसे समर्पण करता हूँ।

सत्यानन्द। सम्वत् १९७५।

अवतरणिका ।

स्वामी दयानन्दजी महाराजके जीवनका मुख्य कार्य्य धर्म्मप्रचार था । वे आर्य्योंके धर्म्मको सर्वोत्तम, सबसे पुरातन और ईश्वर-प्रदत्त मानते थे । यह बात है भी ठीक, क्योंकि आर्य्य धर्म्मसे भिन्न धर्म्म अपनी आयुकी दृष्टिसे, अपने विचारों की दृष्टिसे, अपने कर्म्मोंकी दृष्टिसे और अपने आदर्शकी दृष्टिसे उससे अतीव पीछे हैं । आर्य्य धर्ममें आत्मविचार और ब्रह्म-विज्ञानका ऐसा उत्तम वर्णन किया गया है कि दूसरे धर्म्म उसका स्वरूप अभी तक स्वप्नमें भी नहीं देख सके । आत्मज्ञान ही आर्य्यधर्म्मकी प्रधानताका सूचक है । आत्मज्ञानहीका इसमें महत्व है । आत्म-ज्ञानसे आर्य्योंका पहले उत्कर्ष हुआ था । इस अपकर्ष-कालमें भी ये आत्मज्ञानके ही आश्रयपर अवस्थित हैं । आगामी-कालमें इनकी उत्कर्ष-कला आत्म-ज्ञानहीसे उत्तरोत्तर चमकेगी । आत्मविवेक इनकी निज सम्पत्ति है । इसके साथ इनका आधाराधेय सम्बन्ध है । इस तत्त्वके पाठ इन्होंने सब जातियोंको पढ़ाये हैं । इसमें ये सारे संसारके शिक्षक रहे हैं, और अब भी हैं ।

इस आत्म-तत्त्वके मूल स्रोत वेद हैं । वेदहीसे इस तात्त्विक ज्ञानका निःसरण हुआ है । इस लिए श्री स्वामीजीकी वेदोंमें अपार भक्ति थी । वे पक्के वेदानुगामी थे । वेद-विश्वासमें जब कोई उनका साथी न बनता तो वे तत्काल उसका संग छोड़ देते । वेद विश्वासको स्थगित कर वे किसीसे भी सन्धि करनेको समुद्यत न थे । इसी अड़चनके आ पड़नेपर वे मुम्बई तथा अहमदाबादके प्रार्थना-समाजियोंके आशा-भंगके भाजन कहलाये । कलकत्तेके प्रेमियोंके, पीछेसे, अप्रीति-पात्र बन गये । उनके लाहौरी सहायकोंने उन्हें बुलाकर पहले सत्कृत किया । उनके व्यय का बोझा अपने ऊपर लिया । परन्तु ज्यों ही वेदविषयमें मत-भेद हुआ, लाहौरी ब्राह्म-गण, उनसे इतने रुष्ट हुए कि उनको खान-पानकी सहायता

देता भी एकाएक बन्द कर बैठे। पर स्वामीजी अपनी धारणासे अँगुलभर भी इधर उधर नहीं हुए।

महाराजका परमात्मदेवमें परम विश्वास था। वे ईश्वरतत्वपर पूरा भरोसा रखते थे। उसी जगदीशकी शान्त शरणमें रहते हुए वे विपत्ति-वज्रपातमें भी नहीं घबराते थे। सब सम्प्रदायोंकी, सब मत-मतान्तरोंकी, सारे पन्थाई गुरुओं की और सकल मठधारियोंकी निधड़कपनसे, तीव्र समालोचना करते थे। उनको सतानेके लिए मताभिमानियोंने खड्ग उठाये, विष तक दिया, परन्तु वे निडर जंगलोंमें पड़े रहते, एकाकी घूमते। सहस्रों विरोधियोंमें अकेले खड़े गर्जते। उनका यह बल केवल भुवन-भावन भगवान्‌हीके भरोसे पर था।

महाराज वेद-विश्वासकी भांति ही ईश्वर-विश्वास में भी पक्के थे। जब उनको ज्ञात हुआ कि मैडम ब्लेवस्टिकीजी ईश्वरमें विश्वास नहीं रखती हैं तो वह झट ही थियासोफीकल सभासे अपना सम्बन्ध भंग करनेपर कटिबद्ध हो गये। उन्होंने अपने पश्चिमी शिष्यों की अपार प्रीतिका कुछ भी ध्यान नहीं किया। वेदाज्ञा और एक ईश्वरकी भक्ति, धर्म्मके ये दो अंग उनके सार्वजनिक थे। इस केन्द्रपर सारी जातियोंको लानेके लिए वे आजीवन सचेष्ट रहे। समाज-संशोधन, समाज सुधार और समाजसंस्कारके बिना किसी पुरानी जातिका सुधारना और सुदिनोंके दर्शन लाभ करना सुगम काम नहीं। स्वामीजी अपने युगके सबसे बड़े समाज-सुधारक और संस्कारक थे। यद्यपि उनके समकालीन अनेक ऐसे सज्जन थे जो रात दिन सुधारकी धुनमें निमग्न रहते थे परन्तु स्वामीजी उन सबसे अग्रसर थे। इन का कार्य स्थायी था; उत्थापना-मूलक नहीं किन्तु स्थापनारूप था। वे पुरातन आचारोंको, प्राचीन व्यवहारों को, पुराने इतिहासको, पुरानी स्मृतियोंको, अतीत कालके धर्म्म-कर्म्मको और पूर्व समयकी आर्य सभ्यता तथा मान महत्वको माथे पर त्योरी डाल कर दूर नहीं फेंकते थे। उनसे नाक-मुँह सिकोड़ कर घिना करने वाले सुधारक नहीं थे। वे प्राचीनताके नामसे दूर भागनेवाले संस्कारक नहीं थे। सच पूछो तो वे प्राचीनताकी दुर्गाके अनन्य प्रेमसे पक्के पूजक थे। आर्य्योंका अतीत काल, उनको सुवर्णमय आचारों और सुवर्णमय विचारोंसे समावृत, सुवर्ण स्वरूप प्रतीत होता था। आर्य्योंकी पुरानी सभ्यताकी अवहेलना वे सहन नहीं कर सकते थे। वे मानते थे कि आर्य्योंकी प्राचीन सभ्यतापर कालके अर्वा-

चीन चक्रने चंचलतासे चलकर उसे धूलिधूसर कर दिया है । उसके रंग-रूप तकको बदल डाला है । पर क्या हुआ ? यह रत्न है और हमारा ही चिन्तामणि रत्न है । हमारी पैतृक सम्पत्ति है । संशोधनके हाथोंके साथ इसे धो धोकर स्वच्छ कर लेना हमारा कर्तव्य कर्म है । जी-जीवनसे इसे बचाये रखना हमारा धर्म्म है ।

आर्य्यावर्तीय सम्प्रदायोंको, आर्य्योंके प्राचीन तत्त्वको दूसरोंकी दृष्टिमें घटानेवाले समझते थे; उनका निश्चय था कि नवीन मतोंने, महन्तोंने और मठोंने पुरातन कालकी महत्तापर मिट्टी डाल दी है । उसकी विशुद्धताको मिश्रित कर दिया है । जब तक मतोंको मिटाया न जाय आर्य्योंमें परम धर्म्मका होना कठिन है ।

महाराज सार्वजनिक हितके लिए ही हाथमें तर्कका तीर लेकर खण्डनके भूखण्डमें उतरे थे । रोगीके फोड़े-फुन्सियोंका जब तक छेदन न किया जाय उसका स्वस्थ होना दुष्कर है । खेतमेंसे जब तक झाड़ झंखाड़ उखाड़ कर, घास फूस निकाल कर उसका शोधन न किया जाय उसमें खेतीका सुफलित होना असम्भव है । ऐसे ही किसी देश और जातिमेंसे जब तक कुरीतियोंको न दूर किया जाय और उसके आचार-विचारका संशोधन न हो तबतक उसका उन्नतिके उत्तम सोपानपर पदार्पण करना महा कठिन है । सुधारका काम सर्वप्रिय तो नहीं परन्तु सार्वजनिक हितसे पूर्ण अवश्य हुआ करता है ।

खण्डन खड्गका अवलम्बन करते समय श्रीमहाराजके महान् हृदयमें पर-हित परिपूर्ण हो रहा था—इसका परिपुष्ट प्रमाण उनका अपना ही लेख है । स्वामीजी लिखते हैं "यद्यपि आजकल बहुतसे विद्वान् प्रत्येक मतमें पाये जाते हैं, (परन्तु यदि) वे पक्षपात छोड़कर सर्व-तंत्र सिद्धान्तको स्वीकार करें, जो जो बातें सबके अनुकूल हैं और सबमें सत्य हैं उनको ग्रहण करके, और जो बातें एक दूसरेसे विरुद्ध पाई जाती हैं उनको त्याग कर परस्पर प्रीतिसे वर्तें वर्तावें तो जगत्का पूर्ण हित हो जाय । विद्वानोंके विरोधहीसे अविद्वानोंमें विरोध बढ़ कर विविध दुःखोंकी वृद्धि और सुखोंकी हानि होती है । यह हानि स्वार्थी मनुष्योंको प्यारी है परन्तु इसने सर्व साधारणको दुःख-सागरमें डुबो दिया ।

जो सज्जन सार्वजनिक हितको लक्ष्यमें धरकर कार्य्यमें प्रवृत्त होता है उसका विरोध स्वार्थी जन तत्परतासे करने लग जाते हैं । उसके मार्गमें अनेक प्रकारकी

विघ्न-बाधायें डालते हैं। परन्तु "सत्यमेव जयति नानृतम्; सत्येन पन्था विततो देवयानः" सर्वदा सत्यका विजय और असत्यका पराजय होता है। सत्यहीसे विद्वानोंका मार्ग विस्तृत हो जाता है। इस दृढ़ निश्चयके अवलम्बनसे आप्त लोग परोपकार करनेसे उदासीन नहीं होते, सत्यार्थ—प्रकाश करनेसे कभी पीछे नहीं हटते।" *

स्वामीजीने आर्य्यावर्तीय मतोंसे भिन्न मतोंपर भी समालोचना की है। वह समालोचना उन मतोंकी मान्य पुस्तकोंके आधार पर ही की गई है। उसमें गहरी गवेषणा और अकाट्य युक्तियोंसे काम लिया गया है। वह आर्य धर्म्मकी रक्षा और दूसरे धर्म्मोंका अधूरापन दिखानेके निमित्त की गई है। यह सिद्ध करनेकी कोई आवश्यकता नहीं कि ऐसी और इससे भी कड़ी समालोचना, बुद्ध देवसे लेकर आज पर्यन्त, सभी धर्म्मोंके गुरुजन करते आये हैं। स्वामी दयानन्दजी अपने युगके सबसे बड़े समाज-संस्कारक थे। वे अद्वितीय सुधारक थे। उन्होंने करोड़ों मनुष्योंकी हित-कामनासे कार्य किया है। आर्य्य जातिके पुरुषोंकी सहस्रों वर्षोंसे संचित सम्पत्तिको सर्वनाशके मुखसे निकाला है। समाज चक्रको चलानेके लिए उसकी चूलमें अपने प्यारे प्राणोंको तैल बनाया है। सर्व प्रियताकी अपेक्षा सर्व-हितहीको सर्वोपरि माना है। ऐसे महापुरुषके सुधारकार्य्य पर छोटे और अधमतम शस्त्रोंसे काम लेनेवाले छुट-भैया लोग सुधारपद्धतिसे सर्वथा अजान हैं। संशोधनकी रीति से निरे अबोध हैं।

महाराजने दूसरे धर्म्मोंकी किस भावसे समालोचना की है इसका वे स्वयं प्रकाश करते हैं। वे लिखते हैं—"यद्यपि मैं आर्यावर्त्त देशमें उत्पन्न हुआ और बसता हूं तथापि जैसे इसके मतमतान्तरोंकी झूठी बातोंका पक्षपात किये बिना याथातथ्य प्रकाश करता हूं वैसाही वर्त्ताव दूसरे देशके मतवालोंके साथ करता हूं। मेरा मनुष्योंकी उन्नतिका व्यवहार जैसा स्वदेशियोंके साथ है वैसाही विदेशियोंके साथ है। सब सज्जनोंको इसी प्रकार वर्त्तना योग्य है।

यदि मैं किसी एकका पक्षपाती होता तो जैसे आजकलके मतवादी अपने मतका मण्डन और प्रचार करते हैं तथा दूसरे मतोंकी निन्दा और हानि करते हैं और उनका प्रचार बंद करा देते हैं वैसा ही मैं भी करता। परन्तु ऐसा करना अमानुषी कर्म है। जैसे बलवान् पशु निर्बलोंको दुःख देते और मार

---

* भाषाकी अपेक्षा भावपर अधिक ध्यान दिया गया है।

डालते हैं, ऐसा ही काम यदि मनुष्य-तन पाकर भी किया तो यह मानुषी स्वभाव-से विपरीत है, पशुओंके सदृश है। जो बलवान् होकर निर्बलोंकी रक्षा करता है वही मनुष्य कहा जाता है और जो स्वार्थवश परहानिपर तुला रहता है वह तो मानों पशुओंका भी बड़ा बन्धु है।"

स्वामीजी महाराजने सामाजिक सुधारमें ब्रह्मचर्य्यावस्था पालन करना अत्यावश्यक बताया है। एक एक दो दो वर्षके बालकोंका विवाह करना वे देशके अधःपतनका प्रबल कारण मानते थे। उन्होंने कुरीतियोंके निवारणमें अति बल लगाया। उनके लेखोंमें पूर्ण युवावस्थाके विवाहका विधान प्रबल प्रमाणोंद्वारा किया गया है।

उन्होंने वर्णाश्रम-मर्य्यादाको गुणकर्मके अनुसार माना है। किसी जातिके जनका उत्तम तथा निकृष्ट होना, वे जन्म और नामहीसे नहीं मानते थे। उनके निश्चयमें जैसे किसीके गुण कर्म हैं वैसेही वर्णमें वह परिगणित होना चाहिए। वे कहते हैं कि "जिस पुरुषमें जिस वर्णके गुण-कर्म हों उसको उसी वर्णका अधिकार देना चाहिए। ऐसी अवस्था रखनेसे सब मनुष्य उन्नतिशील हो जाते हैं।"

महाराज शूद्रोंके सुधारके बड़े पक्षपाती थे। उन्हें भी, सर्जन कर्त्ताकी सर्वश्रेष्ठ सृष्टिमें समझते थे। चतुर्थ वर्णसे घृणा करना, उसे अस्पृश्य समझना उनके निकट मनुष्य पदवीसे गिरा हुआ कर्म है। जो लोग कुत्तोंको छूते हैं, बिल्लियोंसे खेलते हैं, भैंसोंको हाथ लगाते हैं, ऊँटोंका स्पर्श करते हैं, घृणित जीव-जन्तुओंको भी छू लेते और अपने हाथसे जूता तक उतार देते हैं, वे मनुष्योंको अछूत समझें, उनसे दूर भागा करें यह कितना अन्याय है, कितना अधर्म्म है, यह बात सहजसे समझी जा सकती है। महाराज शूद्रोंको वेदाधिकार देते हुए लिखते हैं "जैसे परमात्माने पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, चन्द्र, सूर्य, और अन्नादि पदार्थ सबके लिए बनाये हैं वैसे ही वेद भी सब मनुष्योंके लिए प्रकाशित किये हैं।"

श्री स्वामीजीने स्त्री जातिके सुधारका भी परम कार्य्य किया है। शास्त्ररीतिसे उनको वेदाधिकार दिया है। महिलाओंकी महत्ताको जितना उन्होंने वर्णन किया है उतना किसी आचार्य्यने नहीं किया। वे चाहते थे कि कुछ एक विदुषी स्त्रियां मिलकर मातृ-मण्डल निर्माण करें और फिर मातृ शक्तिको सर्वगुणसम्पन्न बनावें। उन्होंने श्रीरमाको परोपकारके लिए जीवनोत्सर्गकी प्रबल प्रेरणा भी

की, परन्तु सफलता न हुई। श्रीमती रमाबाई इस परम कर्मको करनेका साहस न कर सकी। महाराज स्त्रियोंका महत्त्व वर्णन करते हुए लिखते हैं—"स्त्रियोंको भी ब्रह्मचर्य्य धारण और विद्याका ग्रहण अवश्य करना चाहिए। भारतकी स्त्रियोंमें भूषणरूप गार्गी आदि देवियां शास्त्रोंको पढ़कर पूरी विदुषी हुई थीं। देखो, आर्यावर्त्तके राजपुरुषोंकी स्त्रियां धनुर्वेद, युद्ध-विद्या अच्छे प्रकार जानती थीं। यदि ऐसा न होता तो कैकेयी आदि स्त्रियां दशरथादि राजाओंके साथ संग्राममें कैसे जा सकतीं? स्त्रियोंको व्याकरण, धर्म्म, वैद्यक, गणित और शिल्पविद्या अवश्य सीखनी चाहिए।"

महाराजने शिक्षा-सुधार पर भी बड़ा बल दिया है। वे जानते थे कि जब तक सर्व साधारणमें सुशिक्षाका प्रचार नहीं होता तबतक उन्नति नहीं हो सकती। करोड़ों मनुष्योंको एक उद्देश्यपर लानेके लिए शिक्षा सबसे ऊंचा साधन है। वह शिक्षा भी धर्म्म-सहित और जातीय होनी चाहिए। शिक्षापर लिखते हुए वे कहते हैं, "जब पांच वर्षका लड़का लड़की हों तब उनको देव-नागरी अक्षरोंका अभ्यास कराना चाहिये। अन्यदेशीय भाषाओंके अक्षरोंका भी अभ्यास कराना उचित है।"

स्वामीजीने ही सबसे पहिले शिक्षाके आवश्यकीय सिद्धान्तको उद्घोषित किया। वे अनिवार्य्य शिक्षाके पक्षपाती थे और नहीं चाहते थे कि कोई भी मनुष्य लिखने पढ़नेके ज्ञानसे शून्य रहजाय। अनिवार्य शिक्षापर लिखते हुए वे कहते हैं कि "इसमें राज-नियम और जाति-नियम होना चाहिए कि पांचवें अथवा आठवें वर्षके उपरान्त कोई मनुष्य अपने लड़का या लड़कियोंको घरमें न रख सके। अवश्यमेव उसे पाठशालामें भेजे। यदि न भेजे तो वह दण्डित किया जाय।"

श्री स्वामीजी महाराजसे भारत-वासियोंकी दरिद्र ललित दशा छिपी न थी। उन्होंने अपने विस्तृत पर्य्यटनमें अकाल-पीडितोंकी करुणा-जनक अवस्थाको अपनी आँखों देखा था। उनके हृदय-वेधक रोदनको अपने कानों सुना था। वे जानते थे कि भारतीय प्रजाके सहस्रों जन, निर्जीव यन्त्रकी भाँति, दिनभर परिश्रम करनेपर भी अपने बाल-बच्चोंके मुँहमें पूरा ग्रास नहीं डाल सकते। ऐसे कितने ही परिवार हैं जो अपने पेटकी निरन्न पीड़ा मिटानेमें निपट निरुपाय हो रहे हैं।

भोज्य पदार्थोंकी महर्घता दिनों दिन बढ़ती ही चली जा रही है। जिससे भिखा-रियोंका कातर क्रन्दन विराम-विश्राम-विहीन होने लग गया है।

श्री स्वामीजी यह भी जानते थे कि भारत-भूमि रत्न-गर्भा है सुजला, सुफला है। ऊसर नहीं, किन्तु उर्व्वरा और शस्यशालिनी है। इसपर आहार-योग्य नाना धान्य उत्पन्न होते हैं। इसपर सुस्वादु फलोंकी त्रुटि भी नहीं है। भोजन आच्छादन और व्यवहारके योग्य सब वस्तुयें यहां उत्पन्न होती हैं। तो फिर माता वसुन्धरा अपनी सन्तानका लालन-पालन क्यों नहीं कर सकती? इसके लाड़ले लड़के-बाले भूख के मारे इसकी गोदमें बैठे बिलख बिलख कर आठ आठ आँसू क्यों रो रहे हैं?

ऊपरके प्रश्नोंका उत्तर, महर्षिने अच्छी तरह समझ लिया था। उनकी दिव्य दृष्टिसे नित्यके अकालके कारणोंका छुपे रहना सर्वथा असम्भव था। वे जानते थे कि भूमिकी उपजमें भेद नहीं पड़ा किन्तु कुछ वृद्धि होगई हो तो कोई आश्चर्य नहीं। फिर भी यहाँ भूख है और दुर्भिक्ष है तो इसका कारण शिल्पकलाका भारी अभाव है। आवश्यकीय व्यवहारकी वस्तुयें यहां निर्मित नहीं होतीं। विदेशी वस्तुओंकी भरमारसे यहाँके लाखों परिश्रमी निकम्मे हो रहे हैं। उनके पास आजीविकाका कोई उपाय नहीं रहा। पहले साधारण परिस्थितिके मनुष्यसे लेकर महाराजों और राजेश्वरों तक इसी देशके बने वस्त्रोंसे वेष-विन्यास करते थे। यहाँ के रत्न-जडित और मणि-मुक्ता-खचित आभूषणोंसे विभूषित होते। उनके आकाश-भेदी भवन इसी देशके कृतकर्म्मा विश्वकर्म्माओंके द्वारा बनाये जाते। उनको सुसज्जित करनेके लिए भारतकी चित्रशालाओंके चित्रकारोंहीसे अद्भुत चित्र प्राप्त हो जाते। परन्तु आज सब कुछ विपरीत हो गया है।

महाराज, दूसरे वक्ताओंकी भाँति, अपने भाषणको व्याख्यान-भवनकी खुली खिड़कियोंसे पार कर देनेमें ही अपने देश-हितकी सम्पूर्ण सफलता नहीं मानते थे। वे परम कर्म-योगी थे, इस कारण क्रियात्मक कर्म करना चाहते थे। उनके जीवनके अन्तिम वर्षोंमें, उनके धर्म-प्रचार और समाज-सुधार आदि उदात्त उद्देश्योंमें, भारतवर्षमें शिल्पकलाका विस्तारित करना भी सम्मिलित हो गया था। वे इसके लिए पूर्ण प्रयत्न कररहे थे। उन्होंने अपने पश्चिमी शिष्य 'वीस' महाशयको लिखा था कि आप भारतवासियोंको शिल्प-कला सिखानेका प्रबंध कीजिए। महाराजके पत्रके उत्तरमें जर्मन देश-निवासी श्रीमान् जी. ए. वीसने

जो पत्र लिखे उनके कुछ एक अंश यहाँ उद्धृत किए जाते हैं इनसे पाठकोंको पता लग जायगा कि महाराज स्वदेश-वस्तु-प्रचारमें कितने सचेष्ट और सच्ची रीतिसे सचेष्ट थे। अपने २१ जून सन् १८८० के पत्रमें श्रीमान् वीस महाशय लिखते हैं, "जो जो विषय आपके विद्यार्थियोंके प्रयोजनके लिए सबसे अधिक उपयोगी और आवश्यक प्रतीत होते हैं वे सब हम उन्हें सिखा देंगे। साधारण विद्यार्थियोंकी अपेक्षा, जिनके सामने ऐसा कोई विशेष उद्देश्य नहीं होता, हम आपके विद्यार्थियोंकी विशेष शिक्षापर अधिक ध्यान देंगे। कृपया लिखिए कि इस प्रस्तावके विषयमें आपकी क्या सम्मति है। इस विषयमें खुलकर अपने विचार लिखिए। हम ऐसे प्रबन्ध करनेके लिए सदा उद्यत हैं जो आपके देश-वासियोंके लिए और हमारे लिए सन्तोष-जनक हों।" उसी सन्की ३० जूनको वे फिर लिखते हैं, "यदि आप दूरदर्शितासे आरंभ करें और प्रारम्भहीमें सीमातीत शीघ्रतासे काम न लें तो मैं समझता हूं कि कालक्रममें, भारतकी मण्डीमें अपने प्रतिद्वन्द्वियोंको पराभव कर देनेका आपके पास अच्छा अवसर है। क्योंकि आपको कुछ एक ऐसी सुविधायें प्राप्त हैं जो उनके पास नहीं हैं।

एक तो आपके देशमें दैनिक वेतन सस्ता है। दूसरे आपके देश में सूक्ष्म कामको कुशलतासे करनेके, साधारणतः यूरोपियोंकी अपेक्षा अधिक प्रवीण परिश्रमजीविजन मिल जाते हैं।"

तीसरे, बहुतसे यूरोपीयोंकी अपेक्षा आप लोगोंका आचार अच्छा है। आप अपने ग्राहकोंको सस्ती और निकम्मी वस्तुयें दे उनका रुपया नहीं बटोरेंगे। आप जीवनमें वाणिज्यमें और कला-कौशलमें निर्दोष नियमका पालन करेंगे।

आप जब चाहें अपने विद्यार्थियोंको हमारे पास भेजदें। जितना शीघ्र भेजें उतना ही उत्तम है। क्योंकि हम उनको उनके अध्ययनके भिन्न भिन्न उद्देश्योंके अनुसार काममें लगानेके लिए तत्पर हैं।"

उन्होंने फिर लिखा, "मेरे इस पत्रका उद्देश्य आपको इस बातकी सूचना देना है कि मैंने आपके नव-युवक देश-बन्धुओंको ऐसे स्थानोंमें भेजनेके विषयमें और भी अधिक पूछ-ताछ की, वे विविध कलायें और व्यवसाय अत्यन्त क्रियात्मक और वाचनिक रीतिसे सीख सकते हैं। हम आपके अनुयायी आर्य विद्यार्थियोंको सारी उपयुक्त कलायें और वस्तुयें सिखलानेके लिए अपनी रक्षा और देख-रेखमें लेनके लिए बड़े उत्सुक हैं। यहाँ वे इन कलाओंको स्वदेश

अथवा किसी अन्य देशकी अपेक्षा अधिक उत्तम रीतिसे सीख सकेंगे। अपने उद्देशमें सफल होने और गौण तथा निष्फल बातोंमें रत होने, अथवा जिन बातोंको वे जानना और सीखना चाहते हैं उनकी समीचीन व्याख्या और उपदेशके न मिलनेसे अपना बहुमूल्य समय नष्ट न करनेके लिए ऐसे विद्यार्थियोंको सबसे बढ़कर ठीक पथप्रदर्शकोंका प्रयोजन है, जो अपनी पूरी योग्यतासे उन्हें मार्ग दिखावें, उन्हें परामर्श दें और उन्हें पढ़ायें। आर्य्य विद्यार्थियोंको मैं यही काम देना चाहता हूं। उनकी ओर, मैं प्राण और आत्मामें एक आध्यात्मिक सम्बन्ध द्वारा, आकर्षित अनुभव करता हूं। मैं अपने नवयुवक भारतीय मित्रोंकी देख-रेख और विकासपर पूर्ण ध्यान दूंगा। उनको मैं किसी दूसरेकी देखरेख और रक्षामें कदापि नहीं छोडूंगा, इसके लिए चाहे मुझे अपने यूरोपीय विद्यार्थियोंकी रक्षा और शिक्षाके निमित्त दूसरोंको भी नियुक्त करना पड़े।"

'वीस' महाशयने ३० सितम्बर १८८०को फिर लिखा, "आपके पुत्र हमसे भौतिक कलायें और अन्य विद्यायें तथा शिल्प-कर्म सदर्प सीख सकते हैं। हमें आपकी उन्नतिका डाह नहीं है।

मैं निधन माता-पिताओंके पुत्र लेंगे और उनको अपने सर्वोत्तम पुरुषोंसे शिक्षा दिलानेके लिए समुद्यत हूं। कालान्तरमें ज्यों ही हमारी आय इस योग्य हो जायगी, जब आप कहेंगे, तो मैं आपके कुछ दरिद्र सुधी विद्यार्थी लेलूंगा। उनको बहुत थोड़े शुल्कपर अथवा बिना शुल्क शिक्षा दूंगा। और उनकी उन्नतिके लिए सहायता दूंगा।"

श्रीमान् वीसके पत्रोंके ऊपर दिये अंशोंसे भली भाँति प्रकाशित होता है कि महाराज भारतमें शिल्प-कलाका विस्तार करनेके लिए बड़ा भारी उद्यम कर रहे थे। वे विदेशमें कला-कौशल सीखनेके लिए एक मण्डली भेजना चाहते थे उन्होंने लाहौर आदि नगरोंमें अपने प्रेमियोंको पत्रों द्वारा प्रेरित भी किया कि शिल्प सीखनेके लिए विदेश जाइये। परन्तु इस उद्देशको क्रियात्मक बनानेके लिए द्रव्य और मनुष्य, दोनों वस्तुयें चाहिएँ। इन दोनोंके अभावको दूर करनेके लिए वे रातादिन यत्न करते थे। यदि, कालकी गति उनके मार्गमें बाधक न होती तो वे कालान्तरमें, इस कार्यमें अवश्यमेव कृतकार्य हो जाते। भारतकी हित-कामनाके उपर्युक्त परमोपयोगी उद्योगको देखकर, यह बात साहसपूर्वक कही

जा सकती है कि स्वामी दयानन्दजी पहले महापुरुष थे, जिन्होंने देश-दशा सुधारनेके लिए, इसकी नौकाको भूखके भयङ्कर भँवरसे निकालनेके लिए, और स्वदेश-बन्धुओंका दरिद्र धोनेके लिए पूर्ण पुरुषार्थ किया। स्वामीजी जहाँ लोगोंकी आत्मिक भूख-प्यासको वेदोपदेशद्वारा दूर करते थे वहाँ उनकी शारीरिक क्षुत्पिपासाको उपशम करनेके लिए शिल्प-शिक्षाके सुदृढ़ सूत्रपात भी कर रहे थे। वे सजग थे। उनकी दृष्टि व्यापिनी थी। वे इस मर्मको जानते थे कि कबूतरकी तरह आँखें मूँद लेनेसे भूखकी बिल्ली दूर नहीं हो सकती। निरे कूप-मंडूक बने रहनेसे हित-साधित नहीं होता।

उस महापुरुषके माहात्म्योंमें हम प्रथम पद एक निराकार ईश्वरके पूजनको देते हैं। हमारे पास इतिहास-सम्बन्धी पुष्ट प्रमाण है कि जबसे आर्य्यधर्म्ममें मत-भेद हुए तबसे स्वामीजी महाराजके बिना ऐसा एक भी आचार्य नहीं हुआ, जिसने उनकी भाँति एक ईश्वरवादका ऐसी निर्दोष रीतिसे वर्णन किया हो।

महाराजका दूसरा महत्व वेद-विश्वास है। यद्यपि आर्य धर्म्मके मौलिक मन्त-व्योंसे निकली हुई साम्प्रदायिक शाखाओंमें वेद मान्य माना जाता है, परन्तु साम्प्रदायिक मतोंके मन्तव्य-कर्त्तव्य वेदसे उतना ही भेद रखते हैं, जितना कि दिनसे रात और धूपसे छाया। स्वामीजी महाराज केवल वेदपर आश्रित थे। वे उससे बाहर जाना जानते ही न थे।

शास्त्र-रीतिसे स्त्री-जातिको स्वातंत्र्य देना, उनको वेदाधिकार प्रदान करना स्वामीजीका तीसरा माहात्म्य है। उनसे पूर्व आचार्य्योंने ऐसी उदारता कभी नहीं दिखाई।

श्री महाराजका चतुर्थ माहात्म्य शूद्रोंका उद्धार है। भील, कोल और पैरिहा आदि लाखों मनुष्य आर्य्योंमें अछूत समझे जाते हैं। ऐसे कुलीन जन भारतमें पाये जाते हैं जो इनकी छाया भी अपने शरीर पर नहीं पड़ने देते। ऐसे कुत्सित व्यवहारसे जो हानियाँ हो रही हैं उन्हें सभी जानते हैं। श्री स्वामीजीने सर्व प्रकारके शूद्रोंको आर्य्य जातिका अङ्ग वर्णन किया है। उन्होंने अपने नूतन संस्कारमें इस भारी भूलको, घृणित भेद-भावनाको और तुच्छाभिमानको निकाल डाला है, अस्पृश्यका विचार उठा दिया है। आर्य्य धर्म्ममें जबसे आचार्य-चक्र चला है, सम्प्रदायोंकी जबसे स्थापना हुई है और जबसे समाज-संशोधक

सन्तजन उत्पन्न होते आये हैं तबसे यह अनुपम पदवी एक स्वामी दयानन्द-जीको ही प्राप्त हुई है कि उन्होंने दूसरे धर्मों और जातियोंके जनोंके लिए वेद-मर्यादासे आर्य-धर्मका द्वार खोल दिया। अब चाहे जो आर्य धर्ममें प्रवेश करे, उसके मार्गमें प्रतिबन्धक बात कोई भी नहीं है। इतिहास-मालामें यह माहात्म्य सदा सम्मानसे स्मरण किया जायगा।

पुरानी पद्धतिके पण्डित लोग लोक-हितके कार्योंसे विरक्त हो जाते हैं। निरे नामके परमार्थपर घोटा लगानेवाले, संसार-सुधारमें कुछ भी समय नहीं देते प्रत्युत व्यावहारिक कर्मोंसे घृणा करने लग जाते हैं। कुछ एक इने गिने सन्त-जन अवश्य ऐसे हुए हैं जिन्होंने अपने शिष्योंको समाज रक्षाके लिए प्रेरित किया। परन्तु जिस प्रकार संसारका उपकार कर्म करना स्वामीजीने आर्य्य समाजके कर्त्तव्योंमें मुख्य कर्त्तव्य स्थापित किया, देश-हितके लिए दौड़धूप की और एक बड़े भारी परिणाममें शिल्पकलाका उद्योग करना आरम्भ किया, इस प्रकार इस दिन तक किसी धर्म्माचार्य्यने नहीं किया। उनका यह उद्योग उनके माहात्म्यको प्रख्यात करता है।

वैदिक कालके अनन्तर आर्यावर्त्तमें जितना धार्मिक साहित्य संचित हुआ है उसमें निष्क्रियवादको अति प्रधानता दी गई है। निष्क्रियताको ही एक प्रकार से धर्म्म बताया गया है। ऐसे साहित्यमें कर्म-काण्डकी इतनी अवहेलना की गई है कि इसे अज्ञानियोंके बाँधनेके लिए एक खूँटा वर्णन किया है। कर्म-रूप धर्म्मका खण्डन करते हुए कई ज्ञानी ब्रुव पुरुष, परुष भाषामें कर्मकाण्डियोंको पशु तक कह गये हैं।

हम मानते हैं कि इस निष्क्रियवादके चरण-चिह्न महाभारत-कालमेंही चम-कने लग गये थे। इनको मिटानेके लिए उस समयके परम कर्मयोगी श्रीकृष्ण-देवने पूर्ण बल लगाया था। वे उस समय मिटे तो नहीं किन्तु ढाई सहस्र वर्षके पश्चात् ऐसे चमके कि उन्होंने सारे साहित्यको चकाचौंध लगा दी। बुद्ध महाराजके प्रचारने इस अकर्मण्यवादको अति पुष्ट किया। वही समय निष्क्रि-यवादका यौवन युग कहा जा सकता है।

निष्क्रिय धर्म्मका पालन कोई भी मनुष्य नहीं कर सकता। क्रियाके किये बिना किसीकी भी प्राण-यात्रा नहीं चल सकती। अपने विचारोंको प्रकट करनेके

लिए भी क्रियाकी आवश्यकता होती है। और तो और, निष्क्रियवाद धर्म्म है ऐसी समझ, ऐसा ज्ञान और ऐसी धारणा भी सूक्ष्म क्रियाहीसे उत्पन्न होती है।

सृष्टिमें क्रिया स्वभावसे ही हो रही है। प्रत्येक परमाणु गतिमान् है। यदि एक भी अणु एक पलके लिए निष्क्रिय हो जाय तो सारा ब्रह्माण्ड रुक जाय। उसी क्षणमें उसका सर्वनाश हो जाय। हमारे शरीर इस ब्रह्माण्डका एकांश-मात्र हैं। जो नियम समष्टिमें काम कर रहा है वही इस व्यष्टि देहमें भी कार्य्य करता है। इस कारण गतिशील संसारमें निष्क्रियताका स्वप्न देखना भी सर्वथा असम्भव है।

निष्क्रियता धर्म्म नहीं है। धर्म्म तो कर्म्मात्मक है। वह पुरुषार्थसे उपार्जित है। क्रियासे निष्पन्न होता है। इसलिए ज्ञानियोंने धर्म्मका लक्षण प्रेरणा वर्णन किया है। ऐहिक और पारलौकिक सुख-सिद्धिका साधन बताया है। स्मार्त्त धर्म्मके व्याख्याता भगवान् मनु भी धर्म्मके लक्षण क्रिया-रूपही वर्णन करते हैं।

यदि अक्रिया-रूप धर्म्म हो तो भेड़ और बकरियाँ कभी असत्य भाषण नहीं करतीं। ममियानेके बिना वे दूसरा कोई शब्द ही नहीं बोलतीं। तब तो वे सत्यवादियोंमें सर्व शिरोमणि हो जायँ। भोले भाले मृग मनुष्यके पाँवकी आहट सुनकर कोसों दूर भाग जाते हैं। कभी किसीकी हिंसा नहीं करते। परन्तु कोई भी अकर्मवादी उनको परमदयालु नहीं मानता। एक अँधा, बहिरा, मूक और विकल-शरीर मनुष्य वनमें जीवनके दिन काटता हुआ न अशुभ सुनता है और न अशुभ देखता है, न अशुभ बोलता है और न अशुभ करता है, परन्तु वह मुनि नहीं कहला सकता। उन्मत्त अथवा मूर्छित मनुष्य अशुभ सङ्कल्प-विकल्पसे शून्य तो होता है पर वह महात्मा नहीं माना जाता। गहरी नींदमें कोई अशुभ क्रियाँ नहीं होती परन्तु वह समय पुण्य उपार्जनका समय नहीं समझा जाता।

अशुभ विचारोंको, और अशुभ आचारोंको शुभ विचारों और शुभ आचारों द्वारा धक्का देकर भीतरसे निकाल देना, उनको अपने निकट न आने देना शुभ सम्पत्ति सम्पादनका सर्वोत्तम साधन है। यह साधन क्रिया-जन्य है। यही धर्म्म है।

आर्य्योंमें जबसे निष्क्रिय वादने घर किया है तभीसे इनका विनिपात होना आरम्भ हुआ है। ज्ञातियोंमें जो नर-रत्न होते हैं वे प्रायः धार्मिक भी हुआ करते

हैं। समाजके लिए उनका जीवन अत्यन्त उपयोगी होताहै। उनका समाजसे पृथक् हो जाना समाजको अवनत करना है। निष्क्रियवादके निष्ठावान् सज्जन जन-समूहसे दूर भागते हैं। उनको समाज-संशोधन, समाज-सुधार और समाज-संरक्षण कर्त्तव्य कर्म ज्ञात नहीं होते। वे उलटे इन कर्म्मोंसे घृणा करने लग जाते हैं। यही कारण है कि अकर्मवादकी पोषक पुस्तकोंमें पुरुषार्थ-धर्म्मका निरादर है। गृहस्थको पाप और बंधन वर्णन किया है। माता-पिता, पुत्र कलत्र आदि सम्बन्धोंको दुःखका कारण माना है। क्षात्र धर्म्मादि उत्तम धर्म्मोंको प्रशंसित नहीं समझा गया। आर्य्य प्रजाके अनेक दीप्तिमान रत्न इसी अकर्म-वादकी उलझनमें उलझकर अपनी उपयोगिता नष्ट कर गये हैं। उनकी उज्ज्वल कान्तिसे किसीने कुछभी लाभ नहीं उठाया।

इसी निष्क्रियवादकी बेलके फलका नाम त्यागवाद है। त्यागी कहलानेमें लोग जबसे मुक्ति और महत्ता मानने लगे हैं तबसे आर्य्यजातिमें नाना अनिष्टोंकी दुःखोंकी और अभावोंकी सृष्टि हुई है। यहाँ लाखों त्यागी वास करते हैं। उनकी आँखोंके सामने, उनकी कुटियाओंके पास, उनकी कन्दराओंके निकट और उनके आश्रमोंके समीप दिन दोपहरमें उनका धर्म-धन लुटा जा रहा है, लोग अपना पुरातन धर्म्म परित्याग कर रहे हैं। अनाथोंकी बिलबिलाहट और कृश प्रजाका करुणक्रन्दन हो रहा है। इसे देखकर पराये भी पिघल गये हैं। परन्तु इधर ये अपने सर्वत्यागी हैं कि दुर्दिन-दलित दरिद्र बन्धुओंपर दूर खड़े दया दिखानेमें भी आनाकानी करते हैं। इस संकीर्णताका प्रबल कारण है। यहाँके त्यागियोंने त्यागके अर्थ छूआछूत समझ रक्खे हैं। इसका तात्पर्य घृणा करना, पृथक् हो जाना, संकुचित बनना और पीड़ित प्राणियोंको भी क्रियात्मक सहायता न देना निकाला है।

सच्चा त्याग वही है जिसमें घृणाका त्याग है, बैर-विरोधका त्याग है, अभि-मानका त्याग है। दूसरेको सुख देनेके लिए परोपकार करनेके लिए अपने प्राणोंतककी भी ममता न करना सच्चा त्याग है। यह परम त्याग ईश्वर-भक्ति और प्रजा-प्रेमसे उत्पन्न होता है। भक्ति और प्रीति पुरुषार्थ और शुभ क्रियाके बिना प्राप्त नहीं होती।

स्वामीजी महाराजने समाज-संस्कार करते समय क्रियात्मक धर्म्मका निरूपण

किया है। उन्होंने कई स्थलोंमें कहा है कि पर-हानि पाप और परोपकार पुण्य है। उन्होंने अपने ग्रन्थोंमें गृहस्थादि आश्रमोंके और चारों वर्णोंके कर्मोंको मोक्ष धर्म्मके साधन वर्णन किया है।

महाराजने वेद-भाष्यके भावार्थमें पुरुषार्थके लिए अनेक महत्त्व-सूचक वाक्य लिखे हैं। वे ऋग्वेद २-२७-३ में वर्णन करते हैं कि 'किसीको उद्यमके बिना न रहना चाहिए'। ऋग्वेद १-४-७ में लिखा है कि 'ईश्वर पुरुषार्थी मनुष्य पर कृपा करता है, आलस्य करनेवालेपर नहीं। जब तक मनुष्य ठीक ठीक पुरुषार्थ नहीं करता तब तक ईश्वरकी कृपाका भागी नहीं होता और वह अपने किये कर्मोंसे प्राप्त पदार्थोंकी रक्षा करनेमें समर्थ कभी नहीं हो सकता। इस लिए सब मनुष्योंको पुरुषार्थी होकर ही ईश्वरकी कृपाका भागी होना चाहिए।' फिर ऋ० २-४-१ में लिखा है कि 'जो मनुष्य पावकके समान पवित्र, जलके समान कोमल, सिंहके समान पराक्रम करने वाले और वायुके समान बलिष्ट हो कर अन्यायको निवृत्त करें वे समस्त सुखोंको प्राप्त हों।'

महाराजकी महत्ताका यह ज्वलन्त प्रमाण है कि वे धर्म्मके मर्मका और उसके तात्विक स्वरूपका उपदेश करते थे। वे ईश्वर-भक्ति और प्रजानुरागमें जीवन तक त्याग देनेको सच्चा त्याग निरूपण करते थे।

स्वामीजी महाराज पहले महापुरुष थे जो पश्चिमी देशोंके मनुष्योंके गुरु कहलाये, जिनको अनेक पश्चिमी मनुष्य गुरु, आचार्य और धर्म-पिता मानते थे।

जिस युगमें श्री स्वामीजी हुए हैं उससे कई वर्ष पहलेसे आज तक ऐसा एक ही पुरुष हुआ है जो विदेशी भाषा नहीं जानता था, जिसने स्वदेशसे बाहर एक पैर भी नहीं रक्खा था, जो स्वदेशके ही अन्न-जलसे पला था, जो विचारोंमें स्वदेशी था, आचारोंमें स्वदेशी था, भाषा और वेशमें स्वदेशी था, परन्तु वीतराग और परम विद्वान् होनेसे सबका भक्ति-भाजन बना हुआ था, जिसका देशी विदेशी सभी मान करते थे। ऊंचेसे ऊंचे विदेशी पदाधिकारी और स्वदेशी राजे महाराजे जिसका अति सन्मान करते थे। वह महापुरुष महर्षि दयानन्द ही था। महर्षिको छोड़कर भारतके इस युगमें ऐसा एक भी पुरुष नहीं हुआ जिसने विदेशी भाषा न सीखी हो अथवा विदेश-यात्रा न की हो और फिर स्वदेशमें सम्मानित हुआ हो। शिक्षक दलके जितने नेता आज तक हो चुके हैं उन सब

पर विदेशी भाषा अथवा विदेश-गमनका ठप्पा लगा हुआ है। उसीके प्रभावसे देशी और विदेशी बाजारमें उनका नाम तक बिका है। परन्तु स्वामीजी महाराज पाँवसे लेकर ब्रह्माण्ड तक भीतर और बाहरसे पवित्र स्वदेशी थे। वे अपने ही गुण-ज्ञानसे बड़े बने थे। किसीके कंधेपर बैठकर ऊँचे नहीं हुए थे। जितना मान देशियों और विदेशियोंने उनका किया है उतना आज तक किसी भी भारत वर्षीय मनुष्यका नहीं हुआ।

महाराज निरपेक्ष भावसे समालोचना किया करते। सब मतोंपर टीका टिप्पणी चढ़ाते। परन्तु इतना करने पर भी उनमें कोई ऐसी अलौकिक शक्ति और कोई ऐसे गुण थे कि जिनके कारण वे अपने समयके सारे बुद्धिमानोंके सम्मान-पात्र बने हुए थे। मुसलमान दलके सर्वोपरि नीति निपुण नेता श्रीमान् सर सैय्यद अहमद खाँ महाशय अन्तरात्मासे महाराजके अनुगामी थे। पादरी स्काट ऐसे सज्जन उनको अति आदर देते थे। स्थान स्थानपर उनको ईसाई मन्दिरोंमें उपदेश देनेके लिए आमन्त्रित किया जाता। लाहौरमें तो प्रतिष्ठित मुसलमान सज्जनोंहीने अपने मकान देकर उनका आतिथ्य किया। श्रीयुत केशवचन्द्रसेनजी उनसे अपार प्रेम करते थे। महात्मा देवेन्द्रनाथ ठाकुरने उनको श्रद्धापूर्वक सम्मान दिया। महामति गोविन्द रानडे तो उनकी भक्तमालाके एक आभावान् मोती थे। सभी प्रान्तोंके गण्य मान्य सज्जन उनके चारु चरणोंमें बैठनेमें गौरव मानते थे। तीव्र समालोचक होते हुए इतनी विस्तृत प्रियताका माहात्म्य दूसरे किसी व्यक्तिको कदाचित् प्राप्त हुआ होगा।

महाराजके उच्चतम जीवनकी घटनाओंका पाठ करते समय हमें तो ऐसा प्रतीत होने लगता है कि आज तक जितने भी महात्मा हुए हैं उनके जीवनोंके सभी समुज्वल अंश दयानन्दमें पाये जाते थे। वह गुण गुण ही न होगा जो उनके सर्व गुण-सम्पन्न स्वरूपमें न विकसित हुआ हो। महाराजका हिमालयकी चोटियों पर चक्कर लगाना, विन्ध्याचलकी यात्रा करना नर्मदाके तट पर घूमना, स्थान स्थानपर साधु-सन्तोंके शुभ दर्शन और सत्सङ्ग प्राप्त करना मङ्गल नाम श्रीरामको स्मरण कराता है। कर्णवासमें कर्णसिंहके बिजलीकी भाँति चमकते खड्गको देखकर भी महाराज नहीं काँपे, तलवारकी अतितीक्ष्ण धाराको अपनी ओर झुका हुआ अवलोकन करके भी निर्भय बने रहे और साथ ही गम्भीर भावसे कहने

लगे कि आत्मा अमर है। अविनाशी है ! इसे कोई हनन नहीं कर सकता। यह घटना, और ऐसी ही अन्य अनेक घटनायें ज्ञानके सागर श्रीकृष्णको मानस नेत्रोंके आगे मूर्तिमान बना देती हैं। ऐसा प्रतीत होने लगता है कि मानो वेही बोल रहे हैं।

अपनी प्यारी भगिनी और पूज्य चचाकी मृत्युसे वैराग्यवान् होकर वन वनमें कौपीन-मात्रावशेष दिगम्बरी दशामें फिरना, घोरतम तपस्या करना और अंतमें मृत्युंजय महौषधको ब्रह्म-समाधिमें लाभ कर लेना महर्षिके जीवनका अंश बुद्ध देवके समान दिखाई देता है।

दीन-दुःखियों, अपाहजों और अनाथोंको देखकर श्रीमद्दयानन्दजी क्राइस्ट बन जाते हैं। धुरन्धर वादियोंके सम्मुख श्रीशंकराचार्यका रूप दिखा देते हैं। एक ईश्वरका प्रचार करते और विस्तृत भ्रातृ-भावकी शिक्षा देते हुए भगवान् दयानन्दजी श्रीमान् मुहम्मदजी प्रतीत होने लगते हैं। ईश्वरका यशोगान करते हुए स्तुति प्रार्थनामें जब प्रभु दयानन्द इतने निमग्न हो जाते हैं कि उनकी आँखों-से परमात्म-प्रेमकी अविरल अश्रुधारा निकल आती हैं, गद्गद्-कण्ठ और पुलकित-गात हो जाते हैं, तो सन्तवर रामदास, कबीर, नानक, दादू, चेतन, और तुकारामका समय बँध जाता है। वे सन्त-शिरोमणि जान पड़ते हैं। आर्यत्वकी रक्षाके समय, वे प्रातःस्मरणीय प्रताप श्रीशिवाजी तथा गुरु गोविन्द सिंहजीका रूप धारण कर लेते हैं।

महाराजके जीवनको जिस पक्षसे देखें वह सर्वाङ्ग सुन्दर प्रतीत होता है। त्याग और वैराग्यकी उसमें न्यूनता नहीं है। श्रद्धा और भक्ति उसमें अपार पाई जाती है। उसमें ज्ञान अगाध है। तर्क अथाह है। वह समयोचित मतिका मन्दिर है। प्रेम और उपकारका पुञ्ज है। कृपा और सहानुभूति उसमें कूटकूट कर भरी पड़ी है। वह ओज है, तेज है, परम प्रताप है, लोक-हित है और सकल कला-सम्पूर्ण है।

सत्यानन्द।

* ओ३म् *

श्रीमद्दयानन्द-प्रकाश ।

वैराग्य काण्ड ।

पहला सर्ग ।

स्वामी दयानन्दजी एक आदर्श संन्यासी थे। उत्तम कोटिके संन्यासी जन कभी अपनी आश्रम-मर्यादाका अतिक्रमण नहीं करते। इसीलिए स्वामी दयानन्दजी पूर्वाश्रमका अपना और अपने बन्धुओंका नाम-निर्देश करनेमें मौन ही रहा करते थे। वे गुर्जर देशमें गये। काठियावाड़में भी पधारे। राजकोटमें उन्होंने अनेक व्याख्यान दिये, परन्तु पूर्वाश्रमके सम्बन्धियोंका नाम और ग्राम नहीं बताया।

माता-पिता आदि परिवार-परिजनका परिचय देनेमें वे इसलिए सकुचाते थे कि गुर्जर देश-वासियोंमें मोह विशेषतासे होता है । पता लगनेपर बंधुवर्गका बार बार मिलना, घरेलू काम-धन्धोंकी चर्चा चलाना और संयोग-वियोगकी वार्त्ता बताना ये कुछ ऐसे साधन हैं जिनसे समदृष्टि संन्यासियोंमें आत्मीय जनोंके लिए स्नेह-स्रोतका स्राव करने लग जाना सम्भावित होता है। ऐसा होनेसे उस महापुरुषके महोपकारार्थ धारण किए महाव्रतमें बड़ी बाधा पड़ जानेकी आशङ्का थी।

भक्त अल्काट आदि सज्जनोंने उनसे साग्रह प्रार्थना की कि भगवन्, भारत अमेरिका और योरुपनिवासी आपके शिष्य और सेवक आपके मङ्गलमय जीवनकी मङ्गल कथा जानना चाहते हैं। कृपया अपने जीवनके मुख्य मुख्य

अंश लिखकर हमारे पत्र थियासोफिस्टमें प्रकाशित कराइए। महाराजने उनके कथनको स्वीकार किया और अपने जीवनके कुछ एक मोटे मोटे भाग लिखाकर थियासोफिस्टमें छपनेके लिए भेजे। उनमें उन्होंने अपने जन्म-देशका इतना ही वर्णन किया है कि मेरा जन्म मच्छुकांटा नदीके किनारे मोरवी-राज्यके एक कसबेमें ब्राह्मण कुलमें, सम्वत् १८८१ में हुआ था। मेरे वंशीय उदीच्य ब्राह्मण हैं। मेरे पिताकी पुष्कल भूमिहारी थी। उनको मोरवी-राज्यसे अधिकार भी प्राप्त थे। वे अच्छे सत्ताधारी थे और प्रबन्धको स्थिर रखनेके लिए कुछ सैनिक भी रखते थे।

प्रातः-स्मरणीय स्वर्गीय धर्म्मवीर श्री लेखरामजी अपनी खोजके पश्चात् इस परिणामपर पहुँचे थे कि महाराजका जन्म-स्थान काठियावाड़ देशमें मोरवी नगर है। परन्तु श्री देवेन्द्रनाथजीने राज सहायतासे ६ मास तक परिश्रम करके यह निश्चित परिणाम निकाला कि श्री स्वामी दयानन्दजीका जन्म-स्थान मोरवी राज्यमें टंकारा ग्राम है। उनके पिताका नाम कर्षनजी था। कर्षनजी बड़े भूमिहार थे और लेनदेनका भी काम करते थे। कर्षन जीके ज्येष्ठ पुत्र (दयानन्द) का नाम मूलजी था, मूलजीको लोग दयालजी भी कहकर पुकारा करते थे। अध्यापक श्री रामदेवजीने भी अपनी ढूंढ खोजसे श्री देवेन्द्रनाथ मुकर्जीके निश्चय हीको सुनिश्चित किया है।

उक्त परिणामको इस समय प्रमाणरूप मानकर यह कहना पड़ता है कि, श्री दयानन्दजीका जन्म एक परिवर्तनके युगमें हुआ। उस समय भारतमें बड़ा भारी विप्लव हो रहा था। राष्ट्रीय शक्ति किसी सुदृढ नीति-सूत्रमें आबद्ध न थी। मुगल राज्यका मङ्गल ग्रह म्लानमुख हो चुका था। राजपूतानेकी समर-शालिनी शक्ति परिश्रान्त होकर अपने ही मरुस्थलों और पहाड़ियोंके क्रोडमें कभीकी सो गई थी। उन दिनों महाराष्ट्रका महाबल नीति-निपुण अँगरेजोंके दल-बलसे टक्कर ले रहा था। पेशवा और सिन्धिया-शक्तिकी स्वतंत्रताका तारा अस्ताचलकी ओटमें हो रहा था। नैपाली सैनिक संग्राम-भूमिको उत्तेजित करनेके अनन्तर अपनी पर्वतमालाओंमें जा रहे थे।

ईस्ट इण्डिया कम्पनीके शासनके प्रतिनिधि लार्ड एम्हर्स्ट, भारतके कई विभागोंके भाग्यकी बागडोर अपने हाथोंमें लेकर शासन कर रहे थे। इसी

कालमें ब्रह्मदेशकी स्वाधीनताका सूर्य्य अशुभ-सूचक चिन्होंसे घिर रहा था। उसके अस्त हो जानेके पल, उसके पास ही आकर उपस्थित हो गये थे।

पंजाबके केसरी श्रीमन्महाराजा रणजीतसिंहजी अपने सिंह-नादसे, हिमालयके कुछ विभागों-समेत शतद्रुसे लेकर सिन्धु महानदके तटोंतक सारे पंजाब प्रान्तको प्रतिध्वनित कर रहे थे। उनके दहाड़नेसे अफरीदियों और मसूदियोंकी कन्दरायें भी काँपने लग जाती थीं।

उस समय देशमें अशान्तिके चिन्ह जहां तहां दिखाई दे रहे थे। इसी लिए देशवासी प्रायः भयसे शङ्कितचित्त काल व्यतीत करते थे। लुटेरोंके अत्याचार विशेष करके असह्य हो गये थे। उनके त्राससे लोग काँप उठे थे। उस समयकी सामाजिक दशा भी अत्यन्त शोचनीय थी। भारत-भूमि अनेक कुरीतियोंसे कण्टकाकीर्ण हो गई थी। सैंकड़ों चितायें अबलाओंकी सजीव देहोंसे धधक रही थीं। परस्पर ईर्ष्या, द्वेष और जातिविद्रोहने घोरतम रूप धारण किया था। जन-शिक्षणकी आवश्यकताका अनुभव करके अधिकारी और नेतावर्ग उसकी पद्धति पर परस्पर विचार कर रहे थे। ईसाई धर्म्मके पादरी लोग आर्यावर्तको ईसाई बनानेके लिए सर्वथा सुसज्जित होकर आ-रहे थे। उस समय ईसाई सेनाने गङ्गा और सागरके समीपवर्ती स्थानोंमें अपने दुर्ग निर्माण करके कुछ एक ऐसे प्रारम्भिक शस्त्रपात किये थे कि जिनसे पौराणिक धर्म्मकी अवस्था डाँवाडोल हो रही थी। प्रारम्भमें पादरी लोग लोक-शिक्षा और धर्म्म-दीक्षा दोनोंका प्रचार करते थे। इससे उनके कार्य्यका प्रभाव दिन पर दिन अधिकाधिक होता जाता था। राज-धर्म्म वैसे ही प्रलोभनपूर्ण, आकर्षणकारी होता है; परन्तु जब उसके साथ लोक-हितकी बात भी मिल गई तो वह नव-शिक्षितों और पश्चिमी सभ्यतामें दीक्षितोंको एक एक करके अपने मन्दिरमें प्रवेश कराने लगा।

आर्य जातिके करोड़ों मनुष्य धर्म्म-ग्रन्थोंको पढ़ना तो कहाँ उनके सुननेके भी अधिकारी नहीं समझे जाते थे। कुसंस्कारोंका इतना प्राबल्य था कि विदेश-गमन, समुद्रयात्रा और विदेशीके स्पर्श आदिसे ही लोग जातिपतित किये जाते थे। इससे भी अधिक, भारत-वर्षमें चारों ओर अविद्या और अधर्मकी अन्धेरी रात राज्य करती थी। आर्य-जातिकी रीति-नीतिका आकाश

पश्चिमी सभ्यताकी घनघोर घटाओंसे आक्रान्त हुआ जाता था । नवीन संस्कारोंकी झंझा-वात पुरातन चाल-ढाल,आचार-विचारके प्रत्येक पेड़को जड़से कम्पित कर रही थी । इस पर, नवीन धर्म्मकी उक्तियों-युक्तियोंकी वाणवर्षा आर्य-धर्मके मूलाधार स्थलको पोला करनेके प्रयत्नमें थी । परन्तु भारतवासी किंकर्तव्यविमूढ़ होकर आलस्यकी गहरी निद्रामें निमग्न हो रहे थे । कहीं कहीं इस घटाटोपमें ब्रह्मविद्याकी विद्युत्-रेखा चमक जाती थी, नहीं तो भारतके भविष्यपर निराशताका गहरा पड़दा पड़ा हुआ था ।

इस अवस्थाकी विद्यमानतामें सम्वत् १८८१ में एक सम्मानित समृद्ध गृहको स्वामी दयानन्दके प्रकाशने प्रकाशित किया ।

पहले पुत्रकी प्राप्तिसे माता-पिताका हृदय प्रसन्नताके पूरसे प्लावित हो गया । सम्पूर्ण परिवारमें आनन्द मनाया जाने लगा । उत्सवके बाजे बजने लगे । और चारों ओरसे नगरवासी तथा बंधु-परिजन बधाई देने लगे । स्वामी दयानन्दके पिताने, अपने यहाँकी मर्यादाके अनुसार, अपने पुत्रके जातकर्मादि संस्कार क्रमशः और विधिपूर्वक किये । और इन शुभ अवसरोंपर उसने जी खोलकर दान, मान और दक्षिणासे समागत सज्जनोंको सत्कृत किया ।

बालक दयानन्द माताकी प्रेममयी गोदमें, पिताके प्यार-पूर्ण हाथोंमें, बन्धुजनोंके स्नेहसहित लालन-पालनमें, सुरक्षित अशोकलता और शुक्लपक्षके चन्द्रमाकी कलाकी भाँति दिनों दिन बढ़ने लगा । जब उनकी आयु पांच वर्षकी हुई तो उन्हें देवनागर अक्षरोंका लिखाना आरम्भ कराया गया । उनके माता पिता आदि वृद्ध बान्धव उनको कुलाचार और कुलरीति भी शनैः शनैः सिखाने लगे । बड़े बन्धुजनोंने उनको बहुतसे स्तोत्र, मंत्र, श्लोक और उनकी टीकायें कण्ठस्थ करा दीं ।

आठवें वर्षमें स्वामी दयानन्दका यज्ञोपवीत संस्कार यथाविधि बड़े समारोह और महोत्सवपूर्वक कराया गया । उनको गायत्री और सन्ध्याकी उपासना-विधि सिखाई गई । उनके पिता यद्यपि उदीच्य वंशीय होनेसे सामवेदान्तर्गत थे । परन्तु इनको उन्होंने रुद्राध्यायकी शिक्षाके अनन्तर यजुर्वेद-संहिता पढ़ानी आरम्भ की । श्री दयानन्दके सभी सगे सम्बंधी शैव थे । विशेष करके उनके पिता तो पक्के शिवोपासक थे, इस लिए वे दयानन्दको शिवोपासना-

में प्रवीण करनेकी चेष्टा करने लगे। इनपर शैव सम्प्रदायके बहुतसे संस्कार डाले गये। इनके पिता शैव सम्प्रदायके प्रदोष आदि व्रतोपवास करनेकी प्रबल प्रेरणा किया करते, और कहा करते कि मिट्टीकी शिव-पिण्डी बनाकर उसका प्रतिदिन पूजन किया करो।

सम्वत् १८९०, अर्थात् दशम वर्षमें दयानन्द साधारणतया पार्थिव पूजाही किया करते थे, पर उनके पिता चाहते थे कि उनका पुत्र नियमानुसार शिव-सम्प्रदायका पालन करे। उपवास करके कथा सुनता और जागरण करता हुआ वह निष्ठावान् शैव बन जाय। परन्तु माताका मोह भी कोई वस्तु होता है। दयानन्दकी माता अपने प्यारे पुत्रको क्षुत्पिपासा-पीडित, कष्टदायक क्रिया-कलापसे व्याकुल-चित्त देखना नहीं चाहती थी। इसीलिए वह अपने पतिसे साग्रह कहा करती थी कि यह सुकोमल बालक ऐसे कष्टदायक व्रतोपवासोंके योग्य नहीं है। इससे भूख नहीं सही जायगी। परन्तु स्वामी दयानन्दके पिता बड़ी धारणाके धनी थे। वे उनको शिवोत्सवोंमें, और कथादिमें सर्वत्र संग ले जाया करते और समझाते कि शिवोपासना सर्वोत्तम है।

इसी प्रकार जब श्री दयानन्दजी १८९४ में चौदह वर्षकी आयुको प्राप्त हुए तो उस समय यजुर्वेद-संहिता उनके कण्ठ हो गई थी। अन्य वेदोंका भी उन्होंने कुछ कुछ अभ्यास कर लिया था। व्याकरणके भी शब्द रूपावली आदि छोटे छोटे ग्रन्थ पिताजीसे पढ़ लिये थे। इसी वर्ष स्वामीजीके पिताने उनको शिवरात्रिका व्रत रखनेकी आज्ञा की, परन्तु वे ऐसा करनेके लिए उद्यत न हुए। तब उनको इस व्रतके माहात्म्यकी कथा और उससे होनेवाले स्वर्ग-सुखोंके वर्णन सुनाये गये, जिससे उनके हृदयमें व्रत करनेके लिए रुचि उत्पन्न हो गई। वे प्रतिदिन कुछ प्रातराश किया करते थे, इसलिए उनकी माता आग्रहसे कहती थी कि इसको उपवास न कराओ। इससे उपवास न निभेगा। यदि हठसे निभा भी लिया तो रुग्ण हो जायगा। परन्तु उनके पिताने एक न मानी, और बोले कि कुल-धर्मके अनुसार व्रतादि रखकर शिवार्चन अवश्यमेव करना चाहिए। इस प्रकार स्वामीजीको व्रतोपवासकी अनिवार्य आज्ञा दी गई।

दूसरे देशोंकी रीतिसे भिन्न, काठियावाड़में फाल्गुनके स्थान यह व्रत माघ वदी १४ को होता है। उस दिन सायं समय ही श्री दयानन्दजीको समझाया गया कि आज रात भर तुम्हें जागरण करना होगा। ऐसा न करोगे तो व्रत निष्फल हो जायगा। पूजनका प्रकार भी इन्हें बता दिया गया। इस रात्रिको, नगरसे बाहर एक बड़े शिवालयमें नगरके सर्वसाधारण भक्त और प्रतिष्ठित जन जाकर व्रतपूर्वक पूजापाठ, जप और जागरण किया करते थे। स्वामीजीके पिता भी उनको इसी मन्दिरमें ले गये; स्नानादि करके शुचि-वदन, रेशमी धोतियाँ धारण किये, भालपर विभूति रमाये, हाथमें शुद्धोदक पूर्ण कलश और पूजाकी सामग्री लिये शैव भक्तोंकी मण्डलियां एक एक करके सायं समय मन्दिरमें प्रवेश करने लगीं। मन्दिर-प्रवेशिकामें लटके हुए अति गुरु घण्टेको जब भक्तोंने "हर हर, बम्म बम्म महादेव" कहते हुए संचालित किया तो उसका "टन टन" नाद शिवालयसे भी ऊँचा होकर शिव-रात्रि-जागरणकी सारे नगरमें उद्घोषणा करने लगा। सुरीले स्तोत्रोंसे मन्दिर निनादित हो रहा था। दीपसे सर्वत्र जगमगाहट थी। धूपकी सुगंधिका पूर सारे शिवालयको पूर्ण करके बाहरके वायुको भी वासित कर रहा था। लोगोंने प्रथम प्रहरकी पूजा बड़े भाव और भक्तिके साथ समाप्त की। दूसरे प्रहरकी पूजामें यथा तथासे काम लिया गया। परन्तु रात्रिके तीसरे प्रहरके प्रारम्भ होनेपर लोगोंकी आँखें मिचने लगीं, और वे लगे ऊँघमें झूलने। निद्रा-देवीकी मायाने सबको मूर्च्छित करके जहाँ तहाँ सुला दिया। सबसे प्रथम जो किसीको निद्रा आई तो वे थे स्वामीजीके पिता। पुजारी लोगोंने जब देखा कि सारे भक्त सो गये हैं और आनन्दसे खर्राटे ले रहे हैं तो वे भी धीरे धीरे मन्दिरके बाहरी भागमें जाकर निद्रामें लीनता लाभ करने लगे।

ऐसे गम्भीर, निस्तब्ध, नीरव, सुनसान समयमें उस शोभन शिवालयकी ऊपरकी छतको, चारों ओरकी दिवालोंको, समतल भूमिको, और पूजोपहार सहित शिव-पिण्डीको दो ही ज्योतियाँ प्रकाशित कर रही थीं-एक तो मन्दिरके दीपककी ज्वलन्त बत्ती और दूसरे जागरूक दयानन्दकी उज्ज्वल चित्तवृत्ति। दीपककी बत्ती ग्रहणशक्ति-रहित है, ज्ञान-शून्य है, किसी घटनाका परिणाम निकालनेमें असमर्थ है, वह केवल उजाला ही उगल सकती है, कदाचित्

मूलशंकरका शिवपूजन.

जुझने लगे तो अपने बचानेका उसके पास कोई उपाय नहीं । परन्तु दया-नन्दकी चमत्कारिणी चित्तवृत्ति ज्ञानवती और ग्रहणशक्ति-सम्पन्न है । उसमें अतुल त्वरासे घटनाके परिणामपर पहुंच जानेका सामर्थ्य है । श्रीदयानन्दजी पर जब निद्राका आक्रमण होता और उनकी आँखें झिपने लगतीं तो वे नेत्रों पर ठण्डे पानीके छींटे दे देकर अपने आपको सावधान और सचेत करते । उन्हें भय था कि आँखें लग जानेसे कहीं व्रत निष्फल न हो जाय । पर उनका चित्त आश्चर्यसे चकित हो गया, जब उन्होंने देखा कि शिव-पिण्डीपर, अपवित्र क्षुद्र जन्तु चूहे कूद कूद कर और उछल उछल कर चढ़ते हैं, और उस पर चढ़ाया हुआ भक्तोंका पूजापहार बड़े आनन्दसे खा रहे हैं । जिस प्रकार मेघमालामें रह कर विद्युत्की रेखा फिर जाती है, और जिस प्रकार वायुसे ताड़ित महासागरमें ऊंचे ऊंचे तरङ्ग उठते हैं, वैसे ही दयानन्दके चिदाकाशमें इस घटनासे संचालित विचार और प्रश्नोंके तारे एक एक करके चमचमा उठे । शङ्कासमाकुल हृदयमें उन्होंने सोचा कि शिव-कथामें तो मैंने सुना है कि शिव त्रिशूलधारी हैं, उनका वाहन वृषभ और निवास कैलास है, वह मनुष्याकार-धारी देवता, डमरु बजानेवाला, अस्त्रसम्पन्न, और वर-शापप्रदानमें समर्थ परब्रह्म है । वह पाशुपतास्त्रसे दैत्योंका संहार करता है; तो क्या वही महादेव यह मूर्ति हो सकती है ? अहो ! इसके सिरपर तो ये अपावन प्राणी चूहे दौड़ लगा रहे हैं, इसके चढ़ावेको बड़ी निर्भयतासे खा रहे हैं । इसमें तो इन तुच्छ जीवोंको भगानेका भी बल नहीं ? यह महादेव कैसा ?

दूसरा सर्ग ।

बहुत देर तक उन्होंने इस आन्दोलनको अपने भीतर रक्खे रक्खा । परन्तु उस दिव्य ज्योतिने, जो अन्तरात्मामें स्वभावतः और सहसा संघर्षित हो उत्पन्न हुई थी, उस दिव्य वाणीने जो उन्होंने अन्तःकरणक कानोंसे श्रवण की थी, उन्हें बलात्कारसे उत्तेजित किया कि वे अपना हार्द पिताके समक्ष प्रकाशित करें ।

श्रीदयानन्दजीने अपने पिताको जगाकर बिना झिझक अपने शङ्कासमूहको उनके सम्मुख उपस्थित कर दिया । और विनय की कि जिस देवका वर्णन मुझे सुनाया गया है क्या उसके समान ही यह मन्दिरकी मूर्ति है? अथवा, चूहोंसे अवहेलना प्राप्त यह कोई दूसरी वस्तु है? पिताने पुत्रके इन प्रश्नोंको सुनकर क्रोधसे आँखें लाल कर लीं, और भर्त्सनापूर्वक कहा-यह बात तू क्यों पूछता है? ऐसे शिवाराधनके समय ऐसा प्रश्न क्यों करता है ?" पर जिस महात्माको, अकस्मात् स्वात्माहीमें सत्यसम्प्राप्ति हो गई थी, जो साधारण घटनासे असाधारण प्रबोधका धनी हो चुका था, उसके लिए, पिताकी कोरी झिड़की प्रश्नका उत्तर न हो सका। जिसको बोलनेके लिए आत्मा प्रेरणा कर रहा था उसका मुख डांट डपटसे बन्द न हुआ। श्री दयानन्द निर्भीक भावसे बोले "पिताजी जिस महादेवकी कथा मुझे सुनाई गई है, वह तो गुणोंसे चेतन प्रतीत होता है; यदि यह मूर्ति वही महादेव होता तो भला इन भ्रष्ट महामलीन मूषकोंको अपने ऊपर क्यों चढ़ने देता। चूहे उसके शरीर पर सपाटेसे दौड़े फिरते हैं और यह शिर तक नहीं हिलाता, और न इन घृणित जन्तुओंके स्पर्शसे ही अपनेको बचाता है । इस अचेतन महादेवसे मैं उस सर्वशक्तिसम्पन्न चेतन परमेश्वरको समझना असम्भव समझता हूं, यही भेद जाननेके लिए आपको जगाकर प्रश्न पूछा है ।"

पुत्रके इस अश्रुतपूर्व प्रश्नोंको सुन पिताने गम्भीरतासे समझाना आरम्भ किया:—पुत्र ! इस कलिकालमें महादेवके साक्षात् दर्शन नहीं होते, इस लिए उसी कैलासवासी शिवकी मूर्ति बनाकर प्राण-प्रतिष्ठापूर्वक पूजन किया जाता है । इन पाषाण आदिकी मूर्तियोंको यदि कोई महादेवकी भावनासे पूजे तो इससे महादेव अपनी पूजाके समान प्रसन्न हो जाता है। 'बेटा! तेरी तर्कबुद्धि बहुत बड़ी है' यह सत्य है कि 'यह तो केवल देवताकी मूर्ति है' साक्षात् देवता नहीं ।"

इस पितृ उपदेशसे दयानन्दकी सन्तुष्टि नहीं हुई। उनकी मूर्तिपूजनसे आस्था उठ गई। उन्होंने पिताके वचनोंको एक पचांवा मात्र, गोल मोल बात से टाल देना ही समझा । उसी समयसे उन्होंने दृढ़ सङ्कल्प कर लिया कि जब

चेतन सत्ताधारी शिवको प्रत्यक्ष देखूँगा तब उसका पूजन करूँगा। इन जड़ प्रतिमाओंको कभी भी नहीं पूजूँगा।

बाल्यकालसे ही, श्री दयानन्दकी यह प्रकृति थी कि वे सहसा किसी बात-को ग्रहण नहीं करते थे। पर जब विचारपूर्वक किसी बातको ग्रहण कर लेते तो ऐसे दृढ हो जाते थे कि उसके पालनमें, चाहे कैसा भी कष्ट हो, उसे नहीं छोड़ते थे। इसी प्रकार जब ज्ञानसे निश्चय हो जाता कि प्रबल हाथोंसे पकड़ी हुई वस्तु असत्य है, भ्रान्त है, तो तुरन्त, तुच्छ तृणवत् उसका परि-त्याग कर देते थे। उनके चरित्रके इस चित्रसे यह बात स्पष्ट प्रतीत होती है कि जबतक शिवरात्रिके व्रतादिमें निश्चय नहीं था तो पूज्य पिताकी आज्ञा भंग करनेपर भी उद्यत हो गये, परन्तु जब कथा-श्रवणसे रुचि उत्पन्न हुई तो आधी रातके समय, सबके सो जानेपर भी दयानन्द आँखोंको जलके छींटे देकर जाग रहा था। और जिस समय अन्तःकरणके आकाशमें सत्यके सूर्यने अपनी किरणका संचार किया तो उन्होंने अपने पिताको स्पष्ट कह दिया कि मैं इस जड़ मूर्तिसे परमेश्वरके विचार प्राप्त करना असम्भव समझता हूँ। इतना ही नहीं किन्तु निश्चय बदल जानेके पश्चात् उन्हें प्रतीत होने लगा कि क्षुधाके कारण इतनी देर बैठनेसे मैं श्रान्त हो गया हूँ और इससे मुझमें दुर्बलता आ रही है। अब मन्दिरमें बैठे रहनेका कोई प्रयोजन न रहा, इस लिए उन्होंने पितासे घर जानेके लिए पूछा। पिताने पुत्रकी बुद्धिका चमत्कार अभी ही देखा था, इस कारण अनुमति देते हुए यही कहना उचित समझा कि, अच्छा घर जाते हो तो अकेले मत जाओ। सिपाहीको साथ लेकर जाओ परन्तु भोजन कदाचित् न करना।

भाव बदल जानेपर श्री दयानन्दजीको भूखा रहना असह्य भार ज्ञात होने लगा। इस लिए घर जाते ही कहा, माताजी! मुझे बड़ी भूख लग रही है। माताने कहा "बेटा मैं तो तुझे पहले ही से कहती थी कि तू उपवास न कर सकेगा, परन्तु तूने बड़ा हठ किया।" इन वचनोंके साथ माताने पुत्रको खानेके लिए मिठाई दी और कहा "तेरे पिता बड़े पक्के शैव हैं। यदि उन्हें व्रत-भंगका भेद ज्ञात हो गया तो वे तुझे ताड़ना तर्जना करेंगे, इस लिए उनके पास जाकर अपनी भोजनकथा न बताना।" भोजन आदि करके कहीं

एक बजेके पश्चात् दयानन्द सोये, इसी लिए सबेरे आठ बजेके पहले उनकी आँख न खुल सकी। प्रातःकाल घरमें पदार्पण करते ही दयानन्दजीके पिताको किसी प्रकार उनका भोजन-वृत्त विदित हो गया। वे व्रतातिक्रमणके कारण पुत्रपर अति कुपित हुए, और आवेशमें बोले "तुमने बहुत बुरा काम किया। विनयावनत पुत्रने स्पष्टवादितासे निवेदन किया कि "पिताजी! जब ग्रन्थ-कथित महादेव मन्दिरमें था ही नहीं तो मैं एक कल्पित बातके लिए व्रतोपवासका कष्ट क्यों सहता" इसके अनन्तर उन्होंने अपने प्यारे चाचाजीसे प्रार्थना की कि अध्ययनके कारण मुझसे पूजोपवासका आडम्बर नहीं निभ सकता। यह बात आप पिताजीको समझा दीजिए।

श्री दयानन्दके चचा और माताजीने उनके पिताको यह कहकर समझाया कि लड़का पढ़नेमें बड़ा परिश्रम करता है। उसे कठोर कर्मकाण्डमें डालना उसके स्वास्थ्यके लिए हानिकारक होगा। अभी उसे भलीभाँति पढ़ने दो। उक्त सम्पूर्ण वार्ताओंका लक्ष करके, पिताने पुत्रके यथारुचि अध्ययनके लिए, प्रसन्नतासे अपनी अनुमतिका प्रकाश कर दिया। अब पूजापाठसे खुली छुट्टी मिल जानेके कारण श्री दयानन्दजीने विद्याध्ययनमें बहुत अच्छी उन्नति की। अपने स्थानके समीपवर्ती एक विद्वान् ब्राह्मणसे उन्होंने निघण्टु निरुक्त और मीमांसादि शास्त्र पढ़ना आरम्भ कर दिया, और साथ ही वे कर्मकाण्डकी 'स्मार्त्त' पुस्तकें भी पढ़ा करते थे। इस प्रकार वे सारा समय शास्त्रानुशीलनमें व्यतीत करते थे। छोटी बहिनें और दो छोटे भाई, ये सब मिलकर श्री दयानन्दजी पाँच बहिन भाई थे। सब बहिन भाई परस्पर सुदृढ स्नेहसूत्र-सम्बद्ध और गाढ़ अनुराग रञ्जित थे। ऐसे बहिन भाइयोंके प्रेममय स्वर्गीय सुखका अनुभव करते हुए और विद्याध्ययनसे अपने अन्तःकरणके कोशको भरते हुए श्री दयानन्दजी सोलहवें वर्षको प्राप्त हुए।

सम्वत् १८९६ विक्रमी में जब वे सोलहवें वर्षको अतिवाहित कर रहे थे तो एक रात उन्हें अपने बन्धुओं सहित एक इष्ट मित्रके यहाँ नृत्योत्सवमें जाना पड़ा। उत्सवको आरम्भ हुए अभी बहुत देर न हुई थी कि श्री दयानन्दजीके घरसे एक नौकर बड़े वेगसे दौड़ा हुआ आया। उसने हाँपते हाँपते आकर समाचार दिया कि उनकी चौदह वर्षीया छोटी भगिनीको विशूचिका हो गई

है। इस समाचारने दयानन्द और उनके कुटुम्बियोंपर वज्रपात किया। वे सब वहांसे उठ तुरन्त घर पहुंचे। सारा परिवार रोगिनीकी सेवा-शुश्रूषामें लग गया। वैद्य लोग अपने सारे विद्याबलसे चिकित्सा कर रहे थे, पर रुग्णाकी दशा पल पलमें शोचनीय होती गई। उस आसन्नमरणा कुमारीके सुकोमल तनको, मत्तहस्तिद्वारा उत्पाटित और प्रखर आतपद्वारा तापित कमलिनीके सदृश कुम्हलाते और क्षणक्षणमें मूर्च्छा खाते देख पास खड़ी ममतामयी माताका कलेजा काँप उठा, पिता व्याकुल चित्त हो गया, सबपर उदासीनता छा गई और सारे परिवारकी आँखें डबडबा आईं। लाख यत्न किये, बहुतेरा बल लगाया पर "कर्मगत टारी नाहिं टरे।" अन्ततः सकल सम्बंधी समूहकी उपस्थितिमें, चार घण्टोंके भीतरही, भाई बहिनोंकी स्नेहलता सदाके लिए सूख गई; माता-पिताकी प्रियपुत्रीके प्राणपँखेरू उड़ गये; कुलदीपिका, अकालहीमें कालकी विकट वायुसे शान्त हो गई।

जिस समय इस दुःखद दुर्घटनासे सकल परिवारके नेत्रोंसे अविरल अश्रुधारायें बह रही थीं, रोने पीटनेसे हाहाकार मचा हुआ था, रो रोकर हिचकियाँ लेते लेते माताकी घिघी बँध गई थी और सर्व स्नेही वर्गपर शोकका सागर उमड़ आया था, उस समय एक दयानन्दही था जो मृता भगिनीकी शय्याके समीपवर्त्ती दिवालसे लगा हुआ अश्रुविहीन नेत्रोंसे चुपचाप प्यारी बहिनके शवको एकटक देख रहा था। उसके चित्तकी गहरी चिन्ताको न पहचानकर बन्धुओंने उसपर बहुतेरे कटु कटाक्ष किये, पिताने पाषाणहृदय कहा, यहाँ तक कि सदा प्रेम प्रदर्शित करनेवाली माताने भी यही शब्द दुहराये, परन्तु दयानन्दके सम्मुख उस घटनाने एक ऐसी समस्या उपस्थित कर दी थी कि जिसकी पूर्तिके लिए उनका चित्त चंचल हो उठा था।

जैसे वायुका तीव्र वेग नौकाके मुखको फेर देता है, जैसे विशाल चट्टानसे टक्कर खाकर नदीका बहाव बदल जाता है, ऐसे ही इस अदृष्टपूर्व घटनाको देखकर श्रीदयानन्दकी चित्तवृत्तियाँ अपने क्लिष्ट प्रवाहको क्रमशः बदलने लगीं। विद्युत्पातसे कम्पित मनुष्यकी भाँति भयभीत दयानन्द सोचने लगे-अहो! मेरी बहिनकी तरह सभी लोग एक एक करके, अवश्यमेव विकराल कालके गालमें ग्रास बनेंगे। निश्चय मुझे भी उसी मार्गका अनुसरण करना पड़ेगा।

मृत्यु ऐसी अवश्यम्भावी है कि इससे, छोटा बड़ा कोई भी जीव बच नहीं सकता । हा !! यह असह्य वियोग-वेदना सबको सहनी होगी । यह दुर्दिन जीवमात्रको देखना होगा । सचमुच, यह जीवन क्षण-भंगुर है, जलबुद्बुद्वत् चंचल है, सन्ध्या रागकी भाँति अस्थिर है, पलास पत्रपर पड़े ओसकणकी तरह चलायमान है । तब तो कोई ऐसा उपाय करना चाहिए जिससे जन्ममरणके दारुण दुःखसे मुक्तिलाभ हो, अमरजीवनकी उपलब्धि हो ।

दो अरणियोंके मथनसे जैसे अग्नि उत्पन्न हो आती है, उचित वस्तुओंके मिश्रण और संघर्षणसे जैसे विद्युत् बहाव बह निकलता है ऐसे ही मृत्युघटनासे संचालित दयानन्द-चित्तमें, चिर कालके निरन्तर चिन्तनरूप संघर्षणसे विवेक विद्युत्की रेखाका उदय हो गया-वैरागकी ज्वलन्त ज्वाला उछलने लगी, जिसने प्रकट होते ही दयानन्दकी चित्तभूमिसे सांसारिक वासनाओंके घास-पातको भस्मसात् करना आरम्भ कर दिया ।

कुलकी रीतिके अनुसार पाँच दिन तक सहानुभूति करनेवाले लोग आते जाते रहे और घरमें रोना-धोना बना रहा, परन्तु दयानन्दके हृदय-स्रोतको मृत्युके भय और वैराग्यकी आगने इतना शुष्क कर दिया था कि लोगोंके धिक्कारनेपर भी उनकी आँख गीली नहीं हुई । वे रात दिन चुप्पी साधे अपनी चिन्तामें चूर रहते । बड़ी रात बीत जानेपर भी जब वे न सोते तो उन्हें बन्धुजन सोनेके लिए प्रेरणा करते, परन्तु भला इतनी चिन्ता, इतनी अशान्तिमें नींद कहाँ ! बिछौनेपर पड़े बार बार चौंक पड़ते । इस मृत्यु-व्याधिके नाशकी औषधि कहाँ मिलेगी ? अमरजीवनके लिए कौनसे उपायोंका अवलम्बन करना चाहिए ? मुक्ति-मार्गमें किसका भरोसा किया जाय ? इत्यादि विचारोंमें वे रात दिन निमग्न रहते । अन्तमें दयानन्दजी ने यह दृढ निश्चय कर लिया कि जैसे भी हो, मुक्ति हस्तगत करूंगा और मृत्युके मुखसे छुटकारा पाऊँगा; इस धारणाके साथही उनके मनसे संसार का अनुराग दूर हो गया, उनका चित्त स्वस्थ हो गया, और उसमें उत्तरोत्तर उत्तम विचारोंकी उन्नति होने लगी ।

महात्माओंके महत्वको सम्पादन करने वाली प्रायः घटनायें ही हुआ करती हैं । बुद्धदेवको भी मृतककी ऐसी ही एक घटना देखकर वैराग्य उत्पन्न हुआ

था, परन्तु उपर्युक्त घटनासे जो वैराग्य दयानन्दको हुआ, विरक्तिकी जो आग उनके भीतर प्रकट हुई, उसमें एक विशेषता थी। वह यह, उन्होंने उसी समय धारणा करली कि चाहे जो हो, मैं अब इस वैराग्य-अग्निपर सांसारिक स्नेह और सांसारिक सम्बन्धका गीला ईंधन और हरी घास डालकर इसे धूमायमान नहीं बनाऊंगा। परन्तु इन विचारोंको उस समय प्रकट करना उचित न जानकर वे अपने पढ़ने लिखनेमें यथापूर्व लगे रहे।

सम्वत् १८९९ श्री दयानन्दजीकी आयुका उन्नीसवां वर्ष था। इस वर्षमें उनसे अति प्रेम करने वाले उनके धार्मिक तथा विद्वान् चचा विशूचिका महा रोगके चंगुलमें फंस गये। बहुत उपचार किये पर एक भी सफल न हुआ। अपने परम प्रिय और पूज्य चचाको भयङ्कर रोगसे पीड़ित देख दयानन्दका हृदय दुःखसे विदीर्ण हुआ जाता था। जिस समय काल महासागरमें रोगीकी डूबती हुई नाड़ीनौकाको बन्धु-बान्धवजन उङ्गलियों से टटोल रहे थे, उसी अन्त समयमें म्रियमाण चचाने अपने भतीजे दयानन्दको समीप बुलाकर बैठनेका संकेत किया। आरम्भ कालसे, प्रयत्नपूर्वक लालित पालित अपने प्रेम-पात्र भ्रातृपुत्रसे सदाकी विदाई लेते समय उनकी आँखोंसे आँसू टप टप करके गिर पड़े। उनकी यह दशा देखकर दयानन्द अधीर हो गये, और करुणक्रन्दन करते हुए फूट फूट कर रोने लगे, यहां तक कि रोते रोते उनकी आँखें भी सूज गईं। उन्होंने अपने सारे गत जीवनमें इतना रोदन कभी न किया था। यह दूसरी घटना, दयानन्दके वैराग्य-दावानलके संग पवनका प्रसंग था, उनकी संवेग नदीका वेग बढ़ानेमें महामेघका वर्षण था, उनके विरक्ति कुण्डमें घृत-धाराका पात था।

उन्होंने देखा कि यह सम्पूर्ण दृश्य असार है। यहां स्थायी कुछ भी नहीं। भावीसे खिंचे हुए सभी प्राणी कालके गालमें जा रहे हैं और अन्तको मेरी देह भी मरण-धर्म्मा है। अपने इन भावोंको उन्होंने माता पिताके सामने तो प्रकट न किया परन्तु इष्ट मित्रों और विद्वत्सज्जनोंसे जिज्ञासा करने लगे कि अमरपद-प्राप्तिके उपाय बताइए।

पण्डित लोगोंने जिज्ञासुको परमपद-प्राप्तिका उपाय योगाभ्यास बताया। उत्कट लग्नसे प्रेरित होनेके कारण दयानन्दके मनमें योगाभ्यासकी लग्न

समा गई। वे मन ही मन कहने लगे कि यह योग घर वारके काम-काजमें, मोह-ममताके जगड्डवालमें सिद्ध न हो सकेगा, अतएव गृह त्यागकर कहीं चलना चाहिए। इस निश्चयके पश्चात् उन्होंने अपने मित्रोंको अपना मनोगत भेद खोलकर बता दिया। उन्होंने कहा "मैंने यह निश्चित कर लिया है कि यह संसार साररहित है! इसमें ऐसा कोई पदार्थ नहीं जिसके लिए जीनेकी इच्छा की जाय, और वास्तवमें कोई भी मनोज्ञ वस्तु नहीं जिसमें मन लगाया जाय। मैं इसे रसरहित और फीका समझता हूं।" इष्ट मित्रोंने यह वार्त्ता उनके माता-पिताको बता दी।

इतिहासोंमें ऐसे अनेक उदाहरण हैं, जहां दयानन्द ऐसे वैराग्यवान् वीरोंको स्नेह-बंधनमें बांधनेके लिए, बन्धुवर्ग विवाह-शृंखलाको सर्वोत्तम समझते आये हैं। इसी परम्पराप्राप्त पद्धतिपर श्री दयानन्दजीके माता पिता आरूढ़ हो गये, और लगे शीघ्रतासे उनके विवाहका उद्योग करने। उन्होंने स्थिर कर लिया कि बीसवें वर्षमें ही पुत्रका विवाह कर दिया जाय। यह वैराग्यकी आग अनुरागकी बदलीके बरसनेपर आपही शान्त हो जायगी। श्री दया-नन्दजीको जब ज्ञात हुआ कि उनको सदाके लिये जकड़नेके निमित्त, एक प्रबल पाश प्रस्तुत करनेका प्रस्ताव हो गया है तो उन्होंने मित्रों द्वारा इसका घोर विरोध किया। इससे विवश हो, उनके पिताको उस वर्ष विवाह-कार्य रोक देना पड़ा।

श्री दयानन्दजी निश्चिन्त नहीं थे। उन्हें भय था कि इक्कीसवें वर्षके आरम्भ होते ही विवाहकी चर्चा फिर चलेगी। उस समय उसका टालना कठिन कार्य हो जायगा। इस लिये सम्वत् १९०० में बीसवें वर्षकी समाप्तिपर ही उन्होंने पूज्य पिताजीसे प्रार्थना करना आरम्भ कर दिया कि मुझे व्याकरण, ज्योतिष, और वैद्यकके ग्रन्थ पढ़ना है। कृपया मुझे काशीजी भेज दीजिए क्योंकि इन ग्रन्थोंकी पढ़ाई वहीं अच्छी होती है। जो माता पिता यह जानते थे कि पुत्र वैराग्यवान् हो गया है और गृह-त्यागके अवसर ढूंढ रहा है भला वे काशी-गमन कब स्वीकार करने लगे थे। उन्होंने कहा "हम तुम्हें काशी कभी न भेजेंगे जो कुछ अध्ययन कर चुके हो वही पर्याप्त है। अधिक पढ़कर

क्या करोगे और बहुत पढ़ाकर हमने करना भी क्या है? तुम्हारे विवाहमें और थोड़े दिन शेष हैं। तुमने गृहस्थ बनना है इस लिए काम-धन्धेमें जी लगाना सीखो।" माताने तो स्पष्ट कह दिया "बेटा! मैं अच्छी तरह जानती हूँ कि बहुत पढ़े हुए लड़के विवाह करना उचित नहीं समझते। तुम्हारे काशीगमनमें भी यही झलक है।" फिर श्री दयानन्दजीने पिताजीसे तीन बार साग्रह कहा कि काशीमें विद्याध्ययन करके जब तक मैं पूर्ण पण्डित न हो जाऊँ उसके पहले विवाह होना ठीक नहीं। परन्तु माताजी उनके इस आग्रहसे उनके काशी-गमनके और भी विरुद्ध हो गईं और कहने लगीं "हम तुम्हें कहीं नहीं भेजते अब तो बेटा, शीघ्र ही विवाह करेंगे। यह सोच कर कि अधिक आग्रह करनेसे कार्य कभी सिद्ध नहीं होता किन्तु बिगड़ जाया करता है श्री दयानन्दजी चुप हो गये और माता पिताके सामनेसे टल गये। पुत्रको अन्यमनस्क, उदासीन देखकर पिताने भूमि-सम्बंधी कार्य करनेकी आज्ञा दी परन्तु उन्होंने उसे स्वीकार न किया।

वैराग्यवान् श्री दयानन्दजीको घरमें एक दिन भारी प्रतीत होता था इसलिए वे फिर कुछ दिनोंके बीतनेपर पिताजीसे बोले "आपने मुझे काशी जानेसे रोका इसमें मेरा कुछ आग्रह नहीं, परन्तु इतना तो मान लीजिए कि यहाँसे तीन कोसपर अपनी जातिके एक वयोवृद्ध बहुत बड़े विद्वान् रहते हैं उन्हींके पास जाकर पढ़ा करूँ।" वहाँ अपनी भूमिहारी है इसलिए कोई कष्ट भी न होगा। इस प्रस्तावको पिताजीने स्वीकार कर लिया, और श्रीदया-नन्दजी उन प्रशंसित पण्डितजीके पास जाकर पढ़ने लग गये। कुछ काल बीत जानेपर वे एक दिन प्रशंसित पण्डितजीसे वार्तालाप कर रहे थे कि बीचमें विवाहका प्रसंग छिड़ गया। उस समय दैवयोगसे उनके मुखसे ये शब्द निकल गये:—"मुझको विवाहसे ऐसी घृणा है कि जो किसी प्रकार मेरे मनसे दूर नहीं हो सकती।" विवाहसे घृणाकी बात यदि पण्डितजीके पास ही रहती तो उनका पाठ तो चलता रहता, परन्तु यह श्री दयानन्दजीकी पाठ-शालासे निकलकर उनके पिताजीके कानों तक पहुँच गई। इसपर पिताने पुत्रको तुरन्त अपने पास बुला भेजा, और शीघ्रतासे विवाहका उद्योग करने लगे। श्री दयानन्दजीने घर आते ही देखा कि उनके विवाहसम्बन्धी वस्त्राभूषण

प्रस्तुत हो रहे हैं नाना प्रकारकी सामग्री विवाहके लिये एकात्रित की जा रही है। यह सब कुछ देखकर वे भौंचक हो गये। उनका चित्त चंचल हो उठा।

श्री दयानन्दजीके मनमें जो वैराग्य समाया हुआ था उसके साथ उनका कोई इष्ट मित्र सम्मत न था। सब उनके विवाहके पक्षपोषक थे। चर्म-चक्षुओंसे अपना कोई सहायक न देखते हुए, वे अपने गम्भीर हृदय-सरोवरमें गहरी डुबकी लगा कर, मनही मन विचारने लगे कि मेरे विद्योपार्जनका द्वार अब बन्द किया जाता है। यदि मैं गृहमें रहा तो अब मेरे माता पिता मेरा विवाह किए बिना न रहेंगे। ये जितने लोग मेरे विवाहके बाँधनू बाँध रहे हैं, मेरा ब्रह्मचर्यव्रत भंग करना चाहते हैं, मेरा भविष्य बिगाड़ना चाहते हैं। ऐसे सोच-विचारके अनन्तर श्री दयानन्दजीने निश्चय कर लिया कि वे कुटुम्बियोंके इस कथनपर नहीं चलेंगे, किन्तु अब वह काम करेंगे जिससे जन्मभरके लिए विवाहके बखेड़ेसे बच जाँय। इस मनोरथको वे किसीपर प्रकट नहीं करते थे किन्तु अनुकूल अवसरका अवलोकन करते थे कि कब इसे पूरा किया जाय। इधर विवाहका उद्योग आरम्भ हुए भी एक मास होने लगा। सारी विवाह-सामग्री प्रस्तुत हो गई।

तीसरा सर्ग।

सारे इष्ट मित्र, बन्धुबान्धव और मेली जोली श्री दयानन्दका विवाहोत्सव देखनेके उत्सुक हैं। दूरवासी सम्बन्धियोंके आनेका समय भी समीप आ गया है। एक समृद्धिशाली गृहस्थका विशाल गृह-आङ्गन स्वच्छ सुसज्जित हो गया है। वस्त्राभूषण सब सजा कर रक्खे जा रहे हैं। अनेक प्रकारके महोत्सवयोग्य भोज्य पदार्थ एकत्र करनेके लिए पूरा प्रयत्न किया जा रहा है। पिता सुप्रसन्न हैं। माताके आनन्दकी सीमा नहीं। घरके सब छोटे बड़े हर्षित हृदय और प्रफुल्ल-वदन हैं। ऐसा जान पड़ता है मानो इस गृहमें आज कोई प्रसन्नताका स्रोत बह निकला है। सारा परिवार हर्षसे फूला नहीं समाता, पर दयानन्द गहरे विचारमें निमग्न हैं। उनके मुख-मण्डलपर चित्तसे उठी हुई चिन्ताओंके मेघ मँडला रहे हैं। वे विकसित नेत्रोंसे देख रहे हैं, जाग्रत

मनसे जान रहे हैं कि सामने दृश्यमान सन्ध्याराग जैसे मुहूर्त्त भरमें पश्चिम दिशाके नीलाकाशमें लीन हो जायगा, इसी प्रकार इन सम्बन्धियोंकी यह प्रसन्नताकी लालिमा भी थोड़ी देर पीछे शोककालकी काली घटाओंमें छुप जायगी।

वह १९०२ का सम्वत् था। उनकी आयु बाईस वर्षकी हो चुकी थी। एक दिन सायं समय उनका मन सम्बंधियोंके ममता-मोहसे उठ गया, अनुराग-रज्जु आजन्मके लिये टूट गया। उन्होंने यह कहते हुए "फिर लौट कर घर न आऊँगा" वासना-समूहकी पूर्णाहुति दे दी, और वे चुपचाप, एकाएक अपने समृद्ध गृहसे चल निकले। विवाहोत्सवसे सुशोभित धनधान्य पूर्ण गृहको, माता पिताके पूर्ण प्रेमको, सज्जन सम्बंधियोंके सरस स्नेहको, और सबसे बढ़ कर यौवन अवस्थाके सामने खड़े विकसित अबाध्य वसन्तका सर्वथा परित्याग कर देना-तिलाञ्जलि दे देना-श्रीदयानन्दकी गहरी लग्न और तीव्र वैराग्यको प्रदर्शित करता है। वे घरसे इसी लिए निकले कि सर्वथा स्वतंत्र होकर मृत्यु महारोगकी महौषधि ढूँढें, और अमर जीवन प्राप्त करें।

सुनसान रातके समय, अनिश्चित स्थानको एकाएकी जाते हुए नवीन त्यागी दयानन्दके हृदयमें क्या क्या भाव उद्भव हुए, उन्हें दो ही सत्तायें जानती हैं। एक तो दयानन्दका अपना अमर आत्मा, और दूसरे प्रभु परमात्मा।

श्रीदयानन्दजीने गृह-त्यागकी पहिली रात्रि अपने नगरसे छः कोसके अन्तर पर व्यतीत की। अभी रात्रिका एक प्रहर शेष था कि वे फिर यात्राके लिए सन्नद्ध हो गये। उन्होंने, सायंकालसे पूर्व बीस कोसपर एक ग्राममें पहुंचकर विश्राम लिया। यहाँ उन्होंने हनुमानके एक मन्दिरमें रात्रिकाल बिताया। उन्होंने अपनी यात्रामें चातुर्यसे काम लिया। वे प्रसिद्ध मार्गपर न चलकर एक ऊँचे नीचे विषम पथसे जाते थे कि कहीं कोई जानपहचानवाला सामनेसे न मिल जाय।

उधर जब माता आदिने किसी प्रकार जान लिया कि दयानन्द अचानक कहीं चला गया है तो वे भौंचक हो गये। उनपर मानो एक भीषण वज्रपात हुआ। पिताकी व्याकुलताका ठिकाना न रहा। जननी जलहीन मीनकी भाँति तड़पने लगी। बन्धुवर्गके मस्तिष्कोंको उनके हृदयसे उछलते हुए शोक-तरङ्गोंने निमग्न कर लिया। विवाह-सम्बन्धी सारा ठाठ-बाट, साज-सामग्री

4251

राग-रंग, सहसा फीका होगया। घरबार, द्वारदिवाल, सबपर उदासीनता छा गई। अन्वेषण-कार्य तुरन्त आरम्भ कर दिया गया। चारों ओर घुड़चढ़े और पदाति सिपाही दौड़ाये गये। जहाँ जहाँ श्रीदयानन्दजीके जानेकी सम्भावना हो सकती थी वहाँ वहाँ खोजनेवाले पहुँचे। परन्तु मानसरोवरकी यात्राके लिए, पिंजड़ा तोड़कर निकले हुए राजहंसका कोई भी पता न चला।

श्रीदयानन्दजी जिस समय टेढे मेढ़े मार्गोंसे तीसरे दिनकी यात्रा कर रहे थे तो मार्गमें एक राजपुरुष द्वारा उन्हें भी ज्ञात हो गया कि अमुक पुरुषके भागे हुए पुत्रकी खोजमें कुछ घुड़चढ़े और प्यादे यहाँ तक आये थे। यह सुनकर वे और आगे जानेके लिए अग्रसर हुए।

उसी दिन मार्गमें उनको साधु-वेषमें एक ठगोंका दल मिला। उनमेंसे एक वैरागी बाबा बनकर मार्गमें मूर्ति स्थापित करके बैठा हुआ था। उसने प्रथम तो श्रीदयानन्द नवीन यात्रीसे उसकी यात्राका कारण पूछ लिया और फिर लगा इनको चिढ़ाने—"देखो त्यागी बनने चला है। हाथकी अंगूठियाँ तो छोड़ीही नहीं गई, वैराग्य-सिद्धि क्या धूल करोगे। भला, कभी ऐसे वस्त्राभरण वालेको भी सिद्धि प्राप्त होती है? इस लिए सारा भूषणालङ्कार मूर्त्तिजीके आगे चढ़ा दो। इससे तुम्हें दो लाभ होंगे। एक देवार्चनसे पुण्य, दूसरे सर्वत्यागसे वैराग्य-सिद्धि।" जिस महात्माने ऐरावत हाथी त्याग दिया वह उसके बाँधनेके रस्सेसे कब स्नेह करने लगा था। उन ठगोंके चिढ़ानेसे उन्होंने अंगूठियाँ अंगुलियोंसे उतार कर उन कपटवेषधारियोंके आगे फेंक दीं और अपने मार्गपर चल पड़े।

पर्यटन करते हुए श्रीदयानन्दजीने लोगोंसे सुना कि सायले नामक ग्राममें एक विचारवान् व्यक्ति, लाला भक्त रहता है वहाँ अन्य भी अनेक साधु-सन्त विराजते हैं। इस जिज्ञासासे कि सम्भव है वहां कोई मुक्तिका मार्ग जानने वाला मिल जाय, वे वहाँ पहुँचे। इस ग्राममें उन्हें एक ब्रह्मचारी मिले, जिन्होंने प्रेरणा की कि तुम नैष्ठिक ब्रह्मचारी बन जाओ। ब्रह्मचारीजीके कथनको श्रीदयानन्दजीने स्वीकार कर लिया। उसके पश्चात् ब्रह्मचारीजीने उनको दीक्षा देकर काषायवस्त्र धारण कराये। एक तूम्बा हाथमें अवलम्बन कराया, और आदेश किया कि आजसे आपका नाम "शुद्धचैतन्य" हुआ।

इसके अनन्तर ब्रह्मचारी श्री शुद्धचैतन्यजी उन्हीं साधु-सन्तोंकी मण्डलीमें मिलकर वहीं कुछ योग-साधनमें भी प्रवृत्त हो गये। एक रातका वर्णन है कि श्री शुद्धचैतन्यजी मठसे बाहर एक विशाल वृक्षके नीचे बैठे हुए आराधना कर रहे थे। इतनेमें पेड़पर पक्षियोंकी एक विलक्षण "घू घू" ध्वनि उस गहरी रातमें गूँजने लगी। ब्रह्मचारीजीने बाल्यावस्थामें माँबापसे भूत प्रेतके भ्रमयुक्त संस्कार ग्रहण किये थे; वे सहसा सद्भूत हो आये, और भूत-भय समझ कर वे मठमें प्रविष्ट हो गये।

नवीन काषायाम्बरधारी ब्रह्मचारीजी बहुत दिनों तक श्रीलालाभक्तके मठमें योगाभ्यासादि साधन करते रहे, परन्तु यह देख कर कि उनकी वास्तविक कामना यहाँ पूर्ण न हो सकेगी, वे उस मठसे प्रस्थान करके कोट काङ्गड़ा नामके एक छोटेसे नगरमें आ पधारे। यह स्थान अहमदाबादके समीप, गुजरात प्रान्तके एक छोटेसे राज्यके अन्तर्गत है। उस गांवमें बहुतसे बैरागी वास करते थे। वहीं, एक रानी भी बैरागियोंके फन्देमें फँसी हुई उनके पास रहती थी। श्री शुद्धचैतन्यजीको गेरुए वस्त्रोंमें देखकर बैरागियोंने उनकी हँसी उड़ाई, और बैरागी-जमातमें मिलजानेकी प्रेरणा की; इनकी रेशमी धोतियोंपर बैरागियोंने आक्षेप किया। श्री ब्रह्मचारीजीके पास उस समय तीन रुपये शेष थे। उनसे उन्होंने नई सादी धोतियाँ लेकर, वे रेशमी धोतियाँ वहीं फेंक दीं, और बैरागियोंकी अबोध जमातसे वे पृथक् किसी अन्य स्थानमें निवास करने लगे। उस स्थानमें उन्होंने तीन मास बिताए।

कोट काङ्गड़ामें, उस समय सिद्धपुरमें कार्तिक मासमें होनेवाले मेलेकी बड़ी चर्चा होरही थी। मेलेका होना सुनकर शुद्धचैतन्यजी इस भावनासे कि सम्भव है, भाग्यवशात् वहाँ किसी योगीजनका मङ्गल मिलाप उपलब्ध हो जाय; सिद्धपुरकी ओर चल पड़े। गाँवसे थोड़ी ही दूर जाने पाये थे कि उन्हें एक ग्रामीण बैरागीसे साक्षात् हुआ। वह उनका परीचित था और उनके सारे कुलको भी अच्छी तरहसे जानता था। गृह-त्यागके अनन्तर, चिरकालपश्चात् शुद्धचैतन्यजीने एक स्वस्नेही व्यक्तिका अवलोकन किया; इसलिए, उसे देखकर उनका हृदय उमड़ पड़ा और उनकी आँखोंसे टप टप आँसू गिरने लगे। उन्हें देखकर यही दशा बैरागीकी हुई। बैरागीने ब्रह्मचारीजीके मुखसे

उनके गृह-त्यागकी सारी कहानी श्रवण की। उनके मार्गकी सम्पूर्ण घटनाओंको सुना। काषायवस्त्र धारण करनेके कारणको भी जाना। प्रथम तो ब्रह्मचारीजीके वेषपर वैरागीजीको हंसी आ गई। परन्तु तुरन्त गम्भीर होकर उनके इस प्रकार घरसे निकल भागनेपर उसने अतीव खेद प्रकट किया और इस कार्यके लिए उन्हें धिक्कारा भी। अन्तमें दुःखित होकर वैरागीजीने पूछा—"क्या तुमने घर छोड़ दिया? अब गृहपर न जाओगे?" शुद्धचैतन्यजीने प्रथम-मिले स्नेहीको स्पष्ट उत्तर दिया—"हाँ मैंने गृह त्याग दिया है। कार्तिकके मेलेपर सिद्धपुर जाऊँगा।" वे इन्हीं बातोंको करते करते, अन्तमें एक दूसरेसे पृथक् होगये; और श्रीशुद्धचैतन्यजी ग्रामानुग्राम विचरते हुए कुछ कालान्तरमें सिद्धपुर आ पहुंचे। वहां उन्होंने नीलकण्ठ महादेवके मन्दिरमें आसन किया इस मन्दिरमें पहिलेहीसे कई दण्डी स्वामी और बहुतसे ब्रह्मचारी विराज रहे थे। शुद्धचैतन्यजी, उन समीप-वासी सन्तोंका सत्संग तो करते ही थे, परन्तु यदि, वे सुनते कि अमुक स्थानमें कोई अभ्यासी आत्मज्ञानी महात्मा विराजते हैं तो तुरन्त वहाँ पहुंच जाते। समादरसे, नम्र भावसे, उनके आगे योग-विद्याकी जिज्ञासा करते।

जहां सिद्धपुरके मेलेमें आए हुए सहस्रों जन इष्ट मित्रोंसे मिलते थे, इधर उधर मार्गोंमें भ्रमण करते फिरते थे, मेलेकी शोभाको निहार रहे थे, क्रय-विक्रयमें लगे हुए थे, हास्य-विलासमें लीन थे, आमोद-प्रमोदमें मग्न थे, खान-पान और शयनमें सुख मानते थे, वहाँ वैराग्यके रंगमें रंगे हुए, सच्ची लगनसे प्रेरित, धुनके धनी ब्रह्मचारी श्रीशुद्धचैतन्यजी एक एक कुटियापर चक्कर लगा रहे थे, एक एक महात्माके आसनपर जाकर सिर झुकाते थे, इस लिए कि किसीसे भव-भय-भंजिनी भगवती योगविद्या प्राप्त हो, और अमर जीवनका मार्ग मिले।

उधर, उस वैरागीने जो उन्हें कोट काङ्गड़ा गांवसे निकलतेही मिला था, स्वस्थानपर जाकर पत्र द्वारा उनके पिताको सूचित कर दिया कि तुम्हारे पुत्रने गृहत्याग कर काषायाम्बर धारण कर लिए हैं और अब वह सिद्धपुरके मेलेपर गया है। यह समाचार पाते ही, उनके पिता चार सैनिकों समेत सिद्धपुर आ पहुंचे और मेलेमें घूम घूम कर अपने पुत्रको ढूंढने लगे। एक

दिन, प्रातःकाल, उनके पिता एकाएक उस शिवालयमें आ खड़े हुए जिसमें कि उनका पुत्र गेरुए वस्त्र धारण किये सामने बैठा था। पुत्रको इस दशामें देखकर उनके कोपका पार न रहा। उनकी आँखें रक्तवर्ण हो गईं। वे कड़कती हुई वाणीसे बोले "तूने संदेयके लिए हमारे वंशको दूषित कर दिया। तू हमारे कुलका कलंक लगाने वाला जन्मा है।" आवेशमें उन्होंने और भी बहुत कुछ ऊँचा नीचा कहा। ब्रह्मचारीजी कोपसे भीत होकर अपने पिताकी ओर नेत्र भरकर देखनेका भी साहस न कर सकते थे। उन्हें उस समय पिताकी ताड़नासे त्राण प्राप्त करनेका एक ही उपाय सूझा और वह यह कि उन्होंने आसनसे उठकर पिताके दोनों चरण पकड़ लिए; साथ ही प्रार्थना की कि गृह-त्याग, मैंने धूर्त्त लोगोंके बहकानेसे किया है। मैं अपने इस कर्मका पर्याप्त फल पा चुका हूं। मैंने दुःख उठाये हैं। आप शान्त हूजिए। मेरे अपराधोंको क्षमा कीजिए। मैं तो यहाँसे घर ही आनेको था परन्तु यह भी अच्छा हुआ जो आप आ गये हैं। जब आज्ञा करें, मैं प्रसन्नतापूर्वक आपके साथ चलनेको उद्यत हूँ।

परन्तु पिताकी प्रचण्ड कोपाग्नि ऐसी न थी कि शीघ्र ही शान्त हो जाती। उन्होंने झपटकर ब्रह्मचारीजीके गेरुए कुरतेको हाथसे पकड़ा और बलपूर्वक खींच कर उसकी धज्जियां उड़ा दीं, साथ साथ शतशः दुर्वचन-वृष्टि भी करते गये। श्वेत वस्त्र पहराकर वे उन्हें अपने ठहरनेके स्थानपर ले गये। वहाँ ले जाकर भी बहुत कटु वचन कहे और यह कहा कि तेरी माता तेरे वियोगके कारण रो रोकर मर रही है और तू ऐसा कठोरहृदय है कि मातृ-हत्या करना चाहता है। पुत्रने अति अनुनय विनयसे कहा कि अब निश्चिन्त हो जाइए। मैं आपके संग चल कर माताजीके दर्शन करूंगा। पर पिता निश्चिन्त नहीं हुए। उन्होंने पुत्रपर कड़ा पहरा लगा दिया। सैनिकोंको आज्ञा दी कि इस निर्मोहीको अकेले कहीं आने जाने न दो; सदा इसके संग रहो। रात भर जागते हुए इसे अपनी दृष्टिमें रक्खो। इस प्रकार श्रीशुद्धचैतन्यजी अपने पूज्य पिताके आदेशसे दृष्टिबन्ध तो हो गये, परन्तु गृह-त्याग और अमर जीवनकी प्राप्तिकी धुनमें वे उतने ही पक्के थे, जितने, अपने प्रयत्नमें उनके पिता।

ब्रह्मचारीजीको उस समय अपनी उद्देश्य-सिद्धिका जो भी मार्ग सूझा, वे उसपर चलनेसे, केवल यही नहीं कि हिचकिचाये ही न हों किन्तु उन्होंने

उसका पूरा पूरा उपयोग भी किया। इधर पिताजीको भरसक बलसे विश्वास दिलाते रहे कि मैं अवश्यमेव गृहपर चलूँगा और उधर यह सोचते-विचारते रहे कि जिस समय अवसर अनुकूल आये, जब दांव लगे, यहांसे भाग निकलें। पितृ-बन्धनमें पड़े दो दिन और दो रातें बीत गईं। तीसरा दिन भी ज्यों त्यों करके काटा। तीसरी रात आ गई। उसके एक एक पलको शुद्धचैतन्यजी आँखोंमें काट रहे थे। वे बिछौनेपर लेटे हुए अवश्य थे—देखने वालोंको भी सोये हुए दिखाई देते थे, परन्तु तीव्र मानस लग्नसे संचालित, भीतरसे जागते थे। तीसरी रात्रिका भी आधा भाग बीत गया, और तीसरा पहर आरम्भ हुआ। निद्रासे अभिभूत पहरेवाला ऊँघते ऊँघते दैवयोगसे गाढ निद्रामें निमग्न हो गया। ब्रह्मचारीजी अनुकूल काल हाथ लगा समझ वहाँसे शीघ्रतासे चल निकलनेको बद्धपरिकर हो गये। चलते समय हाथमें जलपूर्ण कलश ले लिया कि यदि किसीने पूछा तो "लघुशंका करने जा रहा हूं" कह दिया जायगा। विना रोकटोक, भागते हुए सिद्धपुरसे आध कोस दूर वे एक उद्यानमें जा पहुँचे। उस उद्यानमें एक पुराना मन्दिर था। वटवृक्षकी जटाओंके सहारे वे उस मन्दिरके शिखर पर हाथमें कलस लिये जा बैठे। बैठे बैठे मन ही मन सोचने लगे कि देखें दैव अब क्या २ दृश्य दिखाता है।

दूसरी ओर जब पहरेवालों और ब्रह्मचारीजीके पिताको पता लगा कि वे भाग गये हैं तो वहाँ हलचल मच गई। उन्हें पकड़नेके लिए चारों ओर मनुष्य दौड़ पड़े। ढूँढ़ते ढूँढ़ते ये लोग उस उद्यानमें भी पहुँचे जहाँ ब्रह्मचारीजी छिपे बैठे थे। मन्दिरके भीतर बाहर ढूँढ़ा, मालियोंसे भी पूछताछ की, परन्तु कोई पता न चला। अन्तको निराश होकर वे लोग उद्यानकी ओरसे चले आये। यह दृश्य रात्रिके चार बजे तक ब्रह्मचारीजीके सामने होता रहा, परन्तु वे ऐसे दबके बैठे थे कि हिलना जुलना, खाँसना खखारना तो दूर रहा श्वास-प्रश्वासकी गति भी वशमें किये हुए थे। सारा दिन इस घोर कष्टमें और उप-वासमें उन्होंने वहीं बैठे बैठे बिताया। जब रातके सात बजे तो उस समय कुछ अन्धेरा हो गया था। ब्रह्मचारीजी मन्दिरकी चोटीसे नीचे उतर आये और सड़क छोड़ कर आगे चल पड़े। किसीसे गाँव आदिका भी नाम पूछ लिया। उस उद्यानसे दो कोसके अन्तर पर जाकर उन्होंने एक ग्राममें विश्राम-

किया। प्रातःकाल होनेपर उस गांवसे भी प्रस्थान कर गए। ब्रह्मचारीजीका बंधुमिलाप-पितृदर्शन-सिद्धपुरमें अन्तिम ही समझना चाहिए।

ग्राम ग्राम और नगर नगर विचरते हुए वे अहमदाबाद से बड़ोदा नगरमें आकर कुछ काल ठहर गए। यहाँ चैतन्य मठमें कुछ ब्रह्मचारी और संन्यासी रहते थे। उनसे शुद्ध चैतन्यजी का वेदान्त विषयपर बहुत वार्त्तालाप हुआ करता था। वहाँ रहनेवालोंमें ब्रह्मानन्दजी आदि ब्रह्मचारी और संन्यासी लोग वेदान्तमें बहुत घुटे हुए थे। उन्होंने अपनी कोटियों और पंक्तियोंको सुना सुनाकर शुद्ध चैतन्यजीको पक्का वेदान्ती बना दिया। यद्यपि, पहिले वेदान्त शास्त्रके अध्ययनकालमें, उनका विचार उस ओर कुछ झुक गया था परन्तु मठमें तो उनपर ऐसा रंग चढ़ा कि वे स्वात्मासे भिन्न सबको मिथ्या मानने लगे और उन्होंने अपने आपको ब्रह्म कहना आरम्भ कर दिया।

श्री शुद्धचैतन्यजीने यद्यपि 'अहं ब्रह्मास्मि' इस वाक्यको अपने ऊपर घटा लिया था, परन्तु इससे उनके उन्नतिशील अंतःकरणमें जो जिज्ञासाकी ज्योति जाग रही थी वह वेदान्तकी फोकी फक्किकाओंसे शान्त नहीं हुई। इसलिए, बाराणसीकी रहनेवाली एक बाईके मुखसे ज्योंही उन्होंने सुना कि नर्मदा-तटपर बड़े बड़े विद्वानोंकी एक बड़ी सभा होने वाली है वे तुरन्त बड़ोदेसे नर्मदाकी ओर चल पड़े। वहां पहुंचकर वे एक सच्चिदानन्द नामके परमहंससे मिले और उनसे अनेक प्रकारकी ज्ञानचर्चा करते रहे। सच्चिदानन्दजीने उन्हें बताया कि इसी नर्मदाके तटपर, चाणोदकर्नालीमें बड़े बड़े विद्वान् ब्रह्मचारियों और सन्यासियोंकी एक मण्डली आज कल ठहरी हुई है। उस मण्डलीके महात्माओंसे मिलकर आपको विशेष लाभ होगा। जैसे कर्मयोगके आदर्शस्वरूप श्रीराम दण्डकारण्यमें विचरते हुए, जहाँ कहीं दूर समीप, ऋषिमुनियोंका आश्रम सुन पाते सत्संग जिज्ञासासे वहाँ पहुंच जाते थे, उसी प्रकार अमर जीवनकी जड़ीको जाननेके आदर्श भूत जिज्ञासु श्रीशुद्ध चैतन्यजी चाणोदकर्नालीमें जा विराजे। उन्होंने वहाँ श्रीचिदाश्रम आदि सच्चे विद्वान् संन्यासियों की भेंट प्राप्त की। कई सुयोग्य पण्डित ब्रह्मचारियों का भी मिलाप उपलब्ध किया, और वे अनेक शास्त्रीय, पारमार्थिक विषयोंपर वार्त्तालाप करके ज्ञानगोष्ठीका सुख अनुभव करते रहे। वहां एक परमानन्द

नामके परमहंस विराजते थे। श्रीशुद्धचैतन्यजीने उनके पास अध्ययन करना आरम्भ कर दिया। कई मासके अध्ययनसे उन्होंने वेदान्तसार, आर्य हरिमीडे तोटक, आर्य हरिहर तोटक और वेदान्त-परिभाषा-प्रमुख ग्रन्थ पढ़ लिए।

चौथा सर्ग।

अपनी ब्रह्मचर्य-दीक्षाकी पद्धतिके अनुसार शुद्धचैतन्यजी अपने हाथका पकाही खाते थे। इस कारण उनके विद्याध्ययनमें बाधा पड़ती थी। सम्पूर्ण सांसारिक वासनाओंसे वे पहिले ही विमुक्त हो चुके थे, परन्तु फिर भी आश्रम-शैलीसे यथाविधि संन्यास लेनेमें उन्होंने दो लाभ देखे—एक तो भोजन बनानेके बखेड़ेसे बच जायँगे और दूसरे चतुर्थाश्रममें प्रवेश करनेसे नाम और आकृति आदिमें परिवर्तन हो जानेपर कोई उन्हें पहचान भी न सकेगा। इस प्रकार पिता आदि द्वारा पकड़े जानेका भय भी जाता रहेगा। इस प्रकार सोचकर वे संन्यासग्रहण करनेके लिये सर्व प्रकार सन्नद्ध होगये। उन्होंने अपने एक मित्र दक्षिणी पण्डितद्वारा स्वामी श्री चिदाश्रमजीको कहलाया कि आप शुद्धचैतन्य ब्रह्मचारीजीको संन्यास-दीक्षा देना स्वीकार कीजिए। परन्तु उस परमदीक्षित संन्यासीप्रवरने यह कह कर कि ब्रह्मचारी अभी युवक है, अपनी अस्वीकृति प्रकाशित कर दी।

श्रीचिदाश्रमजीके संन्यास न देनेसे शुद्धचैतन्यजीका उत्साह भंग न हुआ। वे विद्याध्ययनमें, योग-साधनमें, स्वसमय यापन करते और किसी अन्य महाभाग संन्यासीका प्रतीक्षण करते कि जिससे संन्यास ग्रहण कर सर्वथा निर्द्वन्द्व होजायँ। सन्तोंके सत्संगमें, मुनियोंके विमल मिलापमें, विद्याविनोदमें, शास्त्र-चर्चामें, आत्मिक आराधन, चिन्तन और ध्यानमें शुद्धचैतन्यजीने नर्मदा-तटपर डेढ़ वर्ष व्यतीत किया। इस समय उनकी आयु २४ वर्ष २ मासकी हो गई थी।

एक दिन श्रीशुद्धचैतन्यजीने किसीसे सुना कि चाणोदसे डेढ़ कोसके अन्तर पर जङ्गलमें एक दाक्षिणात्य दण्डी स्वामी आकर विराजे हैं। वे बड़े विद्वान् उत्तम संन्यासी हैं। उनके साथ एक ब्रह्मचारी भी है। तब शुद्ध चैतन्यजी

अपने उपर्युक्त मित्र दाक्षिणी पण्डितको साथ लेकर प्रशंसित दण्डीजीकी सेवामें उपस्थित हुए और समादर नमस्कार करनेके पश्चात् पास बैठकर उन्होंने वार्त्तालाप करना आरम्भ कर दिया। ब्रह्मविद्या-सम्बन्धी अनेक विषयोंपर बातचीत होती रही। अन्तमें श्रीचैतन्यजीको निश्चय हो गया कि दण्डीजी महाराज और उनके संगी ब्रह्मचारी दोनों ब्रह्मविद्यामें निपुण हैं। दण्डीजीका शुभ नाम पूर्णानन्द सरस्वती था। शुद्धचैतन्यजीके हृदयमें उनसे सन्यास ग्रहण करनेकी उत्कट इच्छा उत्पन्न हुई। तब उन्होंने अपने मित्र पण्डितजीको संकेत किया कि दण्डीके सन्मुख उनके सन्यासका प्रस्ताव करें। पण्डितजीने निवेदन करते हुए कहा—"दण्डीजी महाराज! यह विद्यार्थी ब्रह्मचारी, शुद्धचैतन्य, अति सुशील और विनीत है। ब्रह्मविद्या पढ़नेके लिए अतीव उत्कण्ठित है। परन्तु क्या करें भोजन बनानेके बखेड़े ही में इसका बहुतसा समय व्यर्थ व्यय हो जाता है, जिससे यथारुचि विद्याध्ययन नहीं कर सकता। इसकी कामनाके अनुसार, आप कृपा करके इसे चतुर्थ प्रकारका सन्यास दे दीजिये।"

यह प्रार्थना सुनकर, उक्त स्वामीजीने, शुद्धचैतन्यजीकी भरपूर युवावस्थाके कारण उन्हें संन्यास देनेसे एक बार तो जी हटा लिया। पर पण्डितजीके अधिक आग्रहसे संन्यासकी अनुमति देते हुए यह कहा कि यदि ये पूर्ण वैराग्यवान् हैं तो किसी गुजराती संन्यासीसे दीक्षा लें। हम तो महाराष्ट्र हैं। पण्डितजी बोले—"महाराज दाक्षिणी संन्यासी, गौड़ोंको जो पंच द्राविड़ोंसे बाहर हैं, संन्यास दे देते हैं तो आप इसे संन्यास क्यों नहीं देते? यह गुर्जर ब्राह्मण हैं। और यह तो आप जानते ही हैं कि गुर्जर पंच द्राविड़ोंमें गिने जाते हैं।" पण्डितजीकी अन्तिम युक्तिसे दण्डीजीने संन्यास देना स्वीकार कर लिया और अति प्रसन्नता प्रकाशित करते हुए श्रीशुद्धचैतन्य मुमुक्षुको व्रत उपवास और जपादि क्रियानुष्ठान करनेका आदेश किया।

दो दिन तक जपादि साधनोंको यथाविधि करके तीसरे दिन ब्रह्मचारीजी दण्डीजीकी सेवा में उपस्थित हुए। उनसे उसी दिन श्राद्ध कराके, दण्डी स्वामीजीने विधिपूर्वक संन्यास धारण कराया। हाथमें दण्ड अवलम्बन कराकर उनका नाम 'दयानन्द सरस्वती' उद्घोषित किया। विनयसे नम्रशिर, नव

शिष्यको स्वामी पूर्णानन्दजीने यतियोंके धर्म्म बताये, संन्यासकी रीति-नीतिका उपदेश दिया। आश्रम-मर्य्यादा और विद्योपार्जन, जपतप आदिके करनेकी शिक्षा की। वे कई दिन तक गुरुचरणोंमें बैठकर बड़ी विनीततासे ब्रह्मविद्याके ग्रन्थ पढ़ते रहे। अब, उन्होंने गुरु-आदेशके अनुसार विद्याराधनामें विघ्नकारी जानकर दण्डको विसर्जन कर दिया। स्वामी पूर्णानन्दजी शृङ्गेरी मठसे द्वारिकाको जाते हुए मार्गमें कुछ दिनोंके लिए 'चाणोद' में ठहर गये थे। कुछ दिनके पश्चात्, जब वहाँसे चलने लगे तो उनके नूतन शिष्य दयानन्दने बड़ी पूजा और सम्मानसे गुरुचरणोंमें प्रणाम किया। स्वामीजी महाराज बड़े वात्सल्य भावको प्रदर्शित करते हुए उनसे विदा होकर द्वारिका दर्शनको चल पड़े। स्वामी दयानन्द सरस्वती पीछे कई दिनों तक चाणोदमें ही टिके रहे।

एक दिन उन्होंने सुना कि व्यासाश्रममें योगानन्दजी एक महात्मा विराजमान हैं और वे योगकी क्रियाओंमें कुशल हैं। उस महात्माके मिलापकी उत्सुकतासे प्रेरित होकर वे व्यासाश्रममें जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने उक्त महात्मासे योगविद्याके रहस्य सुने और इसकी पुस्तकें भी अच्छी तरह पढ़ीं। योगकी क्रियाओंको सीख लेनेके अनन्तर उन्होंने सुना कि छिन्नौड़में कृष्ण-शास्त्री नामका एक धुरन्धर वैयाकरण पण्डित रहता है। वे व्याकरणके अध्ययनकी लालसासे उस ग्राममें जा विराजमान हुए। कुछ काल तक कृष्णा शास्त्रीजीसे व्याकरणके ग्रन्थ पढ़कर फिर चाणोद कर्नालीमें पधारे और वहां एक राजगुरुसे वेदाध्ययन करने लगे।

स्वामी दयानन्दजीको सत्यके जाननेकी इच्छा, योग विद्याकी प्राप्ति की परम लग्न, साधु-सन्तोंके शुभ दर्शनों और शान्तिदायक सत्संगोंके लिए सदा उत्साहित करती रहती थी। नई नई विद्यायें सीखनेके लिए वे सदा उत्सुक रहते थे। किसी महात्माके समीप जानेमें उन्हें कभी संकोच न होता था। ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने गृहपरित्याग करते ही सबसे पहले अहङ्कार के काण्टेको हृदयकी भूमिसे उखाड़ फेंका था; मानको मर्दन कर दिया था; सङ्कीर्णता सर्वथा छोड़ दी थी और तब आत्म-प्रेम-प्रसादी माँगनेके निमित्त लग्नकी झोली हाथमें लिए श्रद्धापूर्वक कुटी कुटी और द्वार द्वार पर, चक्कर

लगाने लगे थे । यह हो नहीं सकता कि ऐसे श्रद्धालु जिज्ञासुओंकी कामनायें पूर्ण न हों । सच है 'जिन ढूंढ़ा तिन पाया' ।

चाणोद कर्नालीमें स्वामी दयानन्दजीने दो महात्माओंके दर्शन प्राप्त किये। उनमेंसे एकका नाम ज्वालानन्दपुरी और दूसरेका नाम शिवानन्दगिरि था। ये दोनों महानुभाव प्रसन्नचित्त, प्रशान्तात्मा, योगी थे । स्वामी दयानन्दजी अपने अहोभाग्य मानकर लगे उनके मङ्गल मिलापका लाहा लूटने । योगी महात्माओंने भी जान लिया कि यह जिज्ञासु आत्मपिपासु है । इस लिए उसे अपने साथ मिलाकर अभ्यास आरम्भ कराया । अभ्यासानन्तर तीनों मिलकर योगशास्त्रकी चर्चा किया करते थे । कुछ कालके उपरान्त वे दोनों योगी अहमदाबाद चले गये और दयानन्दजीको आदेश कर गये कि एक मासके पश्चात् आप हमारे पास अहमदाबादमें आइएगा । उस समय हम आपको योगसाधनके सम्पूर्ण गूढ़तत्त्व क्रियाओं सहित भली भांति समझा देंगे । वहाँ हमारा आसन नदीके किनारे दूधेश्वर महादेवके मन्दिरमें होगा ।

स्वामी दयानन्दजी चाणोदमें रहकर एक मासतक जप तप क्रियानुष्ठान करते रहे । फिर महात्माओंकी आज्ञानुसार अहमदाबाद चले गये। सीधे दूधे-श्वरके मन्दिरमें जाकर उनके दर्शनोंसे कृतार्थ हुए। वहाँ उन सन्तशिरोमणियोंकी शुभ संगतिमें रातदिन रहकर, आत्म-तृष्णाकी परितृप्तिमें परायण रहते थे । प्रतिदिनके सहवाससे योगिराजोंने समझलिया कि स्वामीदयानन्दजी, एक उत्तम कोटीके सुपात्र हैं। इन्हें योग तत्त्वोंके अमूल्य रत्नोंसे आकण्ठ भर देना चाहिए। उन्होंने योगका प्रत्येक भेद और रहस्य स्वामी दयानन्दजीको बताया । उन योगियोंकी शुभ कामनासे श्रीस्वामीजीको जो लाभ हुए उनका उन्होंने अपनी कृतज्ञताके साथ इस प्रकार वर्णन किया है—"वहाँ उन्होंने अपनी प्रतिज्ञा पूरी की और अपने कथनानुसार मुझे निहाल कर दिया । उन्हीं महात्माओंके प्रभावसे, मुझे क्रिया-समेत पूर्ण योगविद्या भली भांति विदित हो गई । इस लिए मैं उनका अत्यन्त कृतज्ञ हूं । वास्तवमें उन्होंने मुझपर एक महान् उपकार किया । इस कारण मैं उनका विशेष रूपसे अनुगृहीत हूं ।"

चिरकाल तक योगिजनोंके सत्संगसे कृतकृत्य होकर श्रीस्वामीजीने आबू पर्वतकी यात्राके लिए प्रस्थान किया । उन्होंने सुना था कि आबूपर बहुतसे

योगी जन रहते हैं, इस कारण, इस पर्वतपर आकर महात्माओंके मिलापार्थ यत्न करने लगे । वहाँ अर्बुदा भवानी नामके पर्वत शिखरपर तथा अन्य अनेक स्थानोंमें उनकी सन्त महात्माओंसे भेंट हुई । यहाँके कई योगी, पूर्वोक्त दो योगियोंसे विशेष रूपसे आगे बढ़े हुए थे । उनसे भी स्वामीजीने विशेष योग तत्त्वोंकी प्राप्ति की ।

इस प्रकार भिन्न भिन्न स्थानोंका पर्यटन करते हुए स्वामीजी महाराज महात्माओंके मिलापसे, विद्वानोंके सम्पर्कसे, अभ्यासियोंके मेलजोलसे, और योगी सन्तोंके शुभ संगसे आत्मिक उन्नति करते रहे; शान्तिके साधनाका संचय करते रहे । वे विद्यार्थी बनकर सबके पास गये और जिससे जो भी कुछ शुभ प्राप्त हुआ उसे कृतज्ञतासे धारण करते रहे ।

इस प्रकार यतियों मुनियोंको मिलते हुए स्वामीजी महाराज वैशाख सम्वत् १९१२ में होनेवाले कुम्भके महामेलेपर हरिद्वार पधारे । उस समय उनकी आयु ३२ वर्षकी थी । उनके यहां आनेका प्रयोजन यह था कि कुम्भ पर, बहुतसे योगीजन गुप्त रूपसे आकर रहते हैं, जिनको साधारण जन नहीं जान सकते । उनसे मिलकर ज्ञान-चर्चा करेंगे । गंवारके लिए कंकड़ और हीरा समान हैं । परन्तु उनमें कौन महत्त्ववान् है, यह बात जौहरी तुरन्त जान जाता है । स्वामी दयानन्द, इसी प्रकार महान् साधुसमारोहमें, अपनी परखके प्रभावसे उत्तमोत्तम सन्तोंको मिलते थे । हरकी पैड़ियोंकी ओर बड़ी भारी भीड़ और महा कोलाहल था । मनुष्य पर मनुष्य गिरता था, कन्धेसे कन्धा छिलता था । संकीर्ण भूमि, जन संघटसे समाकुल थी । सर्वत्र अगणित मक्खियाँ भिनभिना रही थीं । जहाँ देखो जूठी पत्तलें, उच्छिष्ट-सहित पत्ते पड़े थे । तट-समीप वाहिनी गङ्गाधारा भी लाखों नरनारियोंके नहानेसे, वस्त्रोंके धोनेसे, बर्तनोंके प्रक्षालनसे, नांगोंके देहकी राखसे शुद्ध तो कहां ? निर्मल भी न रही थी । धूलिसे भूतलाकाश एक हो रहा था । गङ्गाका यह किनारा, ध्यानसमाधि तो कहाँ, सुखसे विश्राम लेनेके भी अयोग्य हो गया था । इसी कारण महात्मा दयानन्दजी महाराज, जो योग-साधनपरायण थे मेलेके दिनोंमें गङ्गाके उस पार, चण्डी पर्वतके जंगलमें निवास करते रहे । ऐसे मेलोंपर आये अन्ययोगी जन भी प्रायः नदीके उसी पार रहा करते हैं ।

मेलेके पश्चात् स्वामीजी महाराजने हृषीकेशकी यात्रा की । वहाँ उच्चतर महात्मा संन्यासियोंके समीप रह कर योग-साधनकी रीतियाँ सीखीं, विमल-चित्त और विशुद्ध आत्माओंका सत्संगलाभ लिया । उष्णताके विशेष बढ़ जानेसे सन्त लोग गंगाके उपरिभागोंमें चले जाते हैं, परन्तु स्वामीदयानन्दजी बहुत दिनों तक हृषीकेशमें ही अकेले विराजते रहे ।

एक दिन यहाँ उन्हें एक ब्रह्मचारी और दो पहाड़ी साधु मिले परस्पर अधिक परिचय हो जानेसे स्वामीजी उनके साथ टिहरीकी यात्रामें प्रवृत्त हुए । टिहरी नगरके बाहर उन्होंने किसी स्वच्छ स्थानमें आसन किया । यह नगर उस समय विद्यावृद्ध साधुजनोंके निवास और बहुतसे सुपठित राज-पण्डितोंके कारण प्रसिद्ध था । एक दिनका वर्णन है कि एक राजपण्डितने स्वामीजीके आसनपर आकर उन्हें गृहपर भोजन पानेके लिए सादर निमन्त्रित किया । नियत समयपर उनको लिवा लानेके लिए एक पुरुष भी आया स्वामी दयानन्दजी और उनका साथी ब्रह्मचारी दोनों निमन्त्रणदाता गृहस्थके गृहपर गए । गृहद्वारसे आगे बढ़ते ही स्वामीजीको अत्यन्त घृणा आई; क्योंकि उन्होंने देखा कि एक पण्डित मांस काट काट कर पका रहा है । कुछ अधिक आगे जानेपर उन्होंने देखा कि मांस और अस्थियोंके ढेर और पशुओंके भुने हुए सिरोंपर कई पण्डित छुरी आदिसे कार्य कर रहे हैं ! इस सारे तान्त्रिक दृश्यको देख स्वामीजी घृणासे व्याकुल और आश्चर्यसे चकित होगए इतनेमें उन्हें आते देख गृहपति सम्मानपूर्वक स्वागतके लिए सम्मुख आया । उसने आदरसे कहा "कृपया बिना संकोच भीतर चले आइए ।" परन्तु स्वामीजीको तो घृणाके कारण वहाँ एक क्षण ठहरना भी भारी प्रतीत हो रहा था । इसलिए यह कह कर "आप अपना काम करते जाइए, मेरे लिए कुछ कष्ट न कीजिए" वे झट, वहांसे लौट पड़े और अपने स्थानपर आकर विश्राम लिया । थोड़े समयके अनन्तर वह गृहपति स्वामीजीके पास फिर आया और उनके लौट आनेपर दुःख प्रदर्शित करता हुआ बोला —"कृपया चलिए, गृहपर भोजन पाइए । न जाने आप क्यों पीछे लौट आए हैं । हमने तो आपके निमित्त मांसादि उत्तमोत्तम भोजन प्रस्तुत किये हैं ।" स्वामीजीने स्पष्ट कह दिया "यह सब वृथा और निष्फल है क्योंकि आप

मांस–भक्षी हैं। मांसका खाना तो दूर रहा मैं तो उसके देखनेसे रोगी हो जाती हूँ। मेरे योग्य तो केवल फलादि हैं। यदि आप मेरा न्योता करना ही चाहते हैं तो कुछ अन्न और फल आदि वस्तु भिजवा दीजिये। मेरा ब्रह्मचारी यहीं पर भोजन बना लेगा। "यह सुनकर वह पण्डित अपने किए पर लज्जित हुआ, और घरपर जाकर उसने अन्न फलादि, स्वामी निर्दिष्ट पदार्थ उनके स्थानपर पहुँचा दिये।

स्वामीजी महाराज कई दिनोंतक टिहरी में रहे। वह निमन्त्रणदाता पण्डित उनके पास आने जाने लग गया। स्वामीजीने उससे प्रसिद्ध परन्तु दुष्प्राप्य पुस्तकोंका पतादि पूछा। उसने बताया कि यहाँ बड़े बड़े कवियोंके रचे हुए संस्कृत, व्याकरण, कोष, और तंत्र-ग्रन्थ मिल सकते हैं। श्री स्वामीजीने उन दिनों तक तंत्र ग्रन्थोंका अवलोकन नहीं किया था, इस कारण पण्डितजीको तंत्र ग्रन्थ ले आनेके लिए कहा। वह स्वल्प समयमें कुछ एक तंत्र पुस्तकें स्वामीजीको दे गया। स्वामीजी उनमेंसे एक पुस्तकको उठाकर ज्योंही खोलकर पढ़ने लगे तो अकस्मात् उनकी दृष्टि एक ऐसे लेखपर पड़ी, जिसमें अत्यन्त लज्जाजनक, अशुद्ध और ऊटपटाँग बातें लिखी हुई थीं। उस लेखको पढ़कर वे काँप उठे। उन्होंने उस पुस्तकमें यह लिखा देखा कि माता, भागिनी कन्या, चूहड़ी, चमारीसे अनुचित सम्बन्ध धर्म है। मद्य, तथा मत्स्य आदि अनेक जन्तुओंके मांसका सेवन, और ब्राह्मणसे लेकर चण्डालपर्यंत सबका एक स्थानमें भोजन करना तंत्र धर्ममें विहित है! यह भी लिखा देखा कि मद्य, मांस, मछली, मुद्रा और मैथुन इन पाँच मकारोंके सेवनसे मोक्ष प्राप्त होता है। इस प्रकारके लेख तंत्रग्रन्थोंमें पढ़कर स्वामीजीको पूर्ण निश्चय हो गया कि उनके रचयिता कवि धूर्त, स्वार्थी और दुष्ट थे।

टिहरीसे प्रस्थान कर स्वामीजीने श्रीनगरमें पधार केदार घाटपर एक मंदिरमें आसन लगाया। श्रीनगरके पण्डितोंसे उनकी जब कभी बातचीत होती तो स्वामीजी, टिहरीमें पढ़े हुए तंत्रग्रन्थोंके प्रमाणोंसे उन्हें ऐसा लज्जित करते कि, वे अपनी हार स्वीकार कर लेते। श्रीनगरके समीप, एक बनावृत्त पहाड़ीपर गंगागिर नामके एक अच्छे विद्वान् महात्मा निवास

करते थे। वे महात्मा दिनके समय कभी उस पहाड़ीसे नीचे नहीं उतरते थे। स्वामी दयानन्दजीका उस एकान्तवासी शान्तात्माके साथ मिलाप हो गया; प्रति-दिनके वार्तालापसे दोनों परस्पर मित्र हो गये। वे नित्यप्रति मिलकर योगादि उत्तम उत्तम विषयोंकी चर्चामें समय बिताते। नित्यके समागम और तर्क-वितर्कसे स्वामीजीको यह निश्चय हो गया कि हम और गंगागिरिजी आपसमें मिलकर रहनेके सर्वथा योग्य हैं। स्वामीजीको तो उस एकान्तवासी महात्माकी संगति ऐसी अच्छी लगी कि वे दो माससे अधिक काल तक उनके साथ रहे।

ग्रीष्म-ऋतुके आरम्भमें गङ्गागिरिजीसे बिदा होकर श्री स्वामीजी अपने एक ब्रह्मचारी और दो पहाड़ी साधुओं-सहित, केदारघाटसे चलकर रुद्रप्रयाग आदि स्थानोंमें घूमते हुए अगस्त्य मुनिकी समाधिपर पहुँचे। इस स्थानसे उत्तरकी ओर आगे एक पर्वत-शिखर 'शिवपुरी' नामसे प्रख्यात है। स्वामीजी उसपर गये। वहाँ उन्होंने शरद् ऋतुके चार मास व्यतीत किये। शिवपुरीसे पीछे लौटते समय स्वामीजीने साथियोंके संगको भी एक प्रकारका खटका ही समझा। इस लिए उनसे पृथक् होकर, एकाकी, फिर केदारघाटमें आ गये। यहाँसे जाकर कुछ समय, गुप्तकाशी में रहे। गुप्तकाशीसे गौरीकुण्ड, भीमगुफा, त्रियुगी नारायण होते हुए थोड़े ही दिनोंमें तीसरी बार फिर केदारघाटमें सुशोभित हुए। केदारघाटका वास उन्हें अति प्रिय था और वहाँ गङ्गागिरिजीका सत्सङ्ग-सुख भी मनोभावना था। इस लिए इस बार, वे वहाँ चिरकालतक, उस स्थानमें रहे, जहाँ जंगम जातिके कुछ एक पुजारी ब्राह्मण निवास करते थे। इसी बीचमें स्वामीजीके साथी दोनों पर्वतीय साधु और एक ब्रह्मचारी भी उन्हें आ मिले। यहाँ स्वामीजी केदारघाटवासी ब्राह्मणों और पण्डितोंकी करतूतोंको भी देखते रहे। उन लोगोंकी जो बात स्मरण रखने योग्य थीं उन्हें वे ध्यानगत कर लेते। जब वहाँ रहते हुए स्वामीजीने वहाँवालोंकी रीति और प्रकृतिको भली भाँति समझ लिया तब उनके मनमें निकटवर्ती हिममण्डित हिमालयकी पर्वतमालाओंमें भ्रमण करनेकी उमङ्ग पैदा हुई। उन्होंने चलते समय सुदृढ़ निश्चय करलिया कि चाहे जो हो, जिन सन्तों-सिद्धोंकी इतनी कथायें-वार्त्तायें सुनते आये हैं उनका पता अवश्य लगाना चाहिये। वे

महात्मा इन शिखरों और गिरि-गुहाओंमें हैं भी या नहीं इसका निश्चय करना चाहिये। दुर्गम, विषम पर्वतोंकी यात्राकी कठिनाइयाँ स्मरण कर, शरदृऋतुके दिनोंदिन बढ़ते हुए अति शीतको सोचकर स्वामीजीने पहले पर्वतवासियोंसे महात्माओंके सम्बधमें पूछताछना आरम्भ कर दिया। इस सारे प्रयत्नसे उन्हें पता लगा कि पर्वतवासी भोले भाले लोग, एक तो भ्रममूलक गप्पें हाँकते हैं और दूसरे महात्माओंके विषयमें अनभिज्ञ हैं। स्वामीजीके साथी शीतसे पीड़ित होकर दो दिन पहले ही उनसे पृथक् हो गये थे,इस लिए वे अकेले ही हिमाच्छादनसे श्वेत, आकाश-स्पर्शी, अति उत्तुङ्ग और अतिशीतल शैलशिखरोंके ऊपर नीचे, इधर उधर बीस दिन तक घूमकर पीछे लौट आये, परन्तु उन्हें किसी महात्माका साक्षात् न हुआ।

इसके पश्चात् स्वामीजीने तुङ्गनाथकी चोटीपर चढ़ना आरम्भ किया। वहाँ पहुँचकर उस स्थानके मन्दिरको उन्होंने मूर्तियों और पुजारियोंसे परिपूर्ण पाया पुजारियोंके ऐसे जमघटेको देख वे उसी दिन वहाँसे उतर आये। परन्तु कुछ आगे चलकर उन्हें दो मार्ग दीख पड़े। उनमेंसे एक मार्ग पश्चिमको जाता था और दूसरा नैर्ऋतको। इनमेंसे स्वामीजी उस ओर झुके, जो एक बड़े विकट वनको जाता था थोड़ी दूर जानेपर ही वे ऐसे सघन अरण्यमें जा निकले जो बड़ी बड़ी शिलाओं और छोटे मोटे अगणित पत्थरोंसे आकीर्ण था। वहाँके नाले जलहीन और भयावने हो रहे थे। इस पर विपत्ति यह कि आगे चलनेके लिए मार्गका कोई चिह्न तक न दिखाई पड़ता था। इस प्रकार वृक्षसमूहसे घनीभूत, लता-पताओंसे आवृत विषम वनमें स्वामीजी महाराज घिर गये। नभभेदी घने वृक्षोंके घोर आवरणने सूर्यके प्रकाशको रोका हुआ था। इस लिए दिनके समय ही उन्हें रातसी प्रतीत होने लगी। ऐसी दशामें स्वामीजीने सोचा कि अब ऊपरको लौटें या नीचेको ही चलते चलें। पहले उन्होंने ऊपरकी ओर दृष्टि डाली। जो मार्ग उतरते समय, अति ढलवानके कारण सुगम जान पड़ा था वही अब एक सीधी रेखाके समान, चोटीतक खड़ा दिखाई दिया इस लिए फिर ऊपर चढ़ना उन्होंने प्रायः असम्भव समझा। सोच विचार कर उन्होंने निर्धारित कर लिया कि नीचे उतरनेसेही निस्तार होगा। तब वे शुष्क घास और झाड़ियोंको, पत्रहीन सूखी शाखाओंको पकड़

पकड़ कर एक नालेके तटपर आ पहुँचे। वहाँ एक ऊपरको उठी हुई शिला पर आरूढ़ होकर उन्होंने चहुं ओर दृष्टि डाली। उन्हें पर्वतोंकी अगम्य चोटियों और मनुष्यके चलनेके लिए असम्भव जटिल जङ्गलके बिना और कुछ भी दिखाई न पड़ा। उस समय सूर्य भी अस्त ही हुआ चाहता था। ऐसे कड़े कालमें, स्वामीजी महाराजके चित्तमें चिन्ताकी रेखा रह रह कर उत्पन्न होती थी। वे सोचते थे कि ऐसे सुनसान निर्जन वनमें, जहाँ पीनेको पानी नहीं, निशाके घोर शीतपातसे परित्राण पानेके लिए अग्नि जलानेका कोई साधन नहीं, मेरी क्या दशा होगी। अन्तमें उन्होंने यही निश्चय किया—

पुरुषार्थ और यत्नको कभी न त्यागें धीर,
सकल विघ्नको बाध कर अन्त सफल हों वीर।

परन्तु उस विकट जङ्गलमें ऐसे स्थानोंमेंसे होकर निकलना पड़ा, जहाँ कण्टकाकीर्ण झाड़ियोंमें उनके वस्त्र उलझ कर खण्ड खण्ड हो गये। नुकीले पत्थरोंकी ठोकरोंसे और काण्टोंके चुभनेसे उनके पाँव लङ्गड़े हो गये शरीरपर भी घाव दीखने लगे। रक्त बहता था, वेदना होती थी। अन्तको दुःख संकट सहते हुए बड़ी कठिनतासे उस गहन वनको पार करके नीचे—तुङ्गनाथ पर्वतकी तलेटीमें—आ पहुंचे, वहाँ आकर उन्होंने देखा कि अब वे साधारण मार्गपर गमन कर रहे हैं। उस समय निस्तब्ध, नीरव रजनीका राज्य था। सर्वत्र अन्धकार छा रहा था। इसलिए स्वामीजी बड़ी सावधानीसे मार्ग टटोल टटोल कर चल रहे थे। वे बड़े ध्यानसे मुख्य मार्गसे इधर उधर होनेसे बचते थे। अन्ततः वे चलते चलते एक ऐसे स्थानपर आ पहुँचे जहाँ कतिपय पर्ण-कुटियाँ दीख पड़ीं। पूछनेपर पता लगा कि जिस मार्गपर चल रहे हैं वह ओखी मठको जाता है। महाराज आगे चल पड़े और बड़ी रात बीते ओखी मठमें पहुँचे।

शेष रात उन्होंने उसी मठमें निश्चिन्ततासे काटी। प्रातःकाल जब सुख-पूर्वक सो उठे तो उत्तरकी ओर चल पड़े। परन्तु थोड़ी दूर जाकर उन्हें लौट आना पड़ा; क्योंकि मठको देखनेकी अभिलाषा उनके मनमें ही रह गई थी। साथ ही वे वहाँके कन्दरा-निवासी साधुओंकी भी अवस्थाको जानना चाहते थे। पीछे लौट आनेसे स्वामीजीको मठ देखनेका एक अच्छा अवसर मिल

गया । उस समय मन्दिरमें ऐसे साधुओंकी भरमार थी जो प्रायः पाखण्डपरायण थे । वे लोग बड़े आडम्बरसे रहते थे । स्वामीजीके ज्ञान और गुणोंपर उस मठका मुख्य महन्त मोहित होगया और चेला बन जानेके लिए उन्हें प्रेरणा करता हुआ बोला—"यदि हमारे शिष्य बन जाओ तो गद्दीके स्वामी हो जाओगे । लाखों रुपयोंकी सम्पत्ति तुम्हारे हाथमें होजायेगी । तुम महन्त कहलाओगे इसलिए मानप्रतिष्ठाका भी पार न रहेगा । इस प्रकार स्वच्छन्दता पूर्वक यथेष्ट सुख भोगोगे ।"

ओखी मठके महन्तका वह प्रलोभनपूर्ण सूत्र महात्यागी दयानन्दको बांधनेके लिए उतना ही दृढ़ था, जितना, ऐरावत हाथी को बद्ध करनेके लिए सूतका कच्चा तार । महाराजने महन्तको कहा कि यह तुम्हारा कथन, सब व्यर्थ है । मेरे पिताकी सम्पत्ति आपकी पूजापाठके पाखण्डद्वारा एकत्रितकी पूंजीसे कई गुना अधिक है । जब मैं उसे भी काष्ठ-लोष्टसमान त्याग आया हूँ तो आपके धन-धान्यकी ओर कब ध्यान कर सकता हूं ? जिस उद्देश्यसे प्रेरित होकर मैंने सकल सांसारिक सुखोंसे मुख मोड़ा और ऐश्वर्यशाली पितृ-गृहको सदाके लिये छोड़ा है, मैं देखता हूं उस उद्देश्यपर न तुम चलते हो और न उसका तुम लोगोंको कुछ ज्ञान ही है । इस अवस्थामें चेला बनना दूर, मेरा तुम्हारे पास रहना भी असम्भव है ।

वह महन्त स्वामी-मुखसे लक्ष्मीके तिरस्कारके वचन सुनकर कहने लगा कि अच्छा, बताइए- आपका वह उद्देश्य क्या है ? किस वस्तुकी जिज्ञासामें मग्न तुम इतने कष्ट-क्लेश उठा रहे हो ? श्रीस्वामीजीने उत्तरमें कहा कि मैं सत्य योग-विद्या और मोक्ष चाहता हूँ । जब तक यह प्रयोजन सिद्ध न होगा तब तक तपश्चर्या करता हुआ मनुष्यमात्रके कर्तव्य, 'स्वदेशोपकार को, बराबर करता रहूँगा । वह महन्त उनके महात्याग और उच्च उद्देश्यको सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ और बोला, "यह बहुत अच्छी बात है । पर कुछ दिन तो हमारे समीप निवास करो ।" स्वामीजी बहुत वार्तालापमें कुछ सार न देख उस समय तो मौन रहे; परन्तु अगले दिन प्रातःकाल ही उठकर जोशी मठकी ओर चले गये

जोशीमठमें संन्यासाश्रमकी चौथी श्रेणीके बहुतसे सच्चे महाराष्ट्र संन्यासी वास करते थे। श्रीस्वामीजीने भी उन्हींके समीप अपना निवास नियत किया। वहाँ उन्हें कई योगीजन सत्संगके लिए मिल गये। स्वामीजीने उनसे कई नवीन भेद भी प्राप्त किये और साथ ही विद्वान् साधु-सन्तोंसे परमार्थ-विषयक वार्त्तालाप करते रहे।

पाँचवाँ सर्ग ।

जोशीमठसे प्रस्थानकर स्वामीजी बद्रीनारायण पहुँचे। वहाँके मुख्य महन्त उस समय 'रावलजी' थे। स्वामीजीने उनके निकट कई दिनतक निवास किया। कभी कभी रावलजीके साथ स्वामीजीका वेदों और दर्शनों पर बड़ा वाद विवाद छिड़ जाया करता था। एक दिन स्वामीजीने रावलजीसे पूछा कि आसपासके पर्वतोंमें कोई सच्चा योगी भी निवास करता है! रावलजीने अति शोकके साथ कहा कि इन दिनों उधर कोई ऐसा योगी महात्मा नहीं है। परन्तु मैंने सुना है कि इस मन्दिरके दर्शनार्थ प्रायः योगी जन आया करते हैं।

वहाँ श्रीस्वामीजीने दृढ़ सङ्कल्प कर लिया कि इस समस्त प्रान्त में और विशेषतः पार्वत्य प्रदेशों में सर्वत्र भ्रमण करके ऐसे महापुरुषोंका अन्वेषण अवश्य-मेव करेंगे। एक दिन सूर्योदयके साथ वे बद्रीनारायणसे चल पड़े और पर्वतके पाँवके साथ चलते हुए अलखनन्दा नदीके तटपर जा पहुँचे। नदीके दूसरे पार एक 'मांस' नामक ग्राम था। उसे वे पहले कभी देख चुके थे, इसलिए उस पार न जाकर पूर्वावलम्बित तटके साथ साथ नदीके ऊपरकी ओर जाने लगे। पर्वतोंकी ऊँची ऊँची चोटियाँ, सघन-हिममयी चिट्टी चद्दर ओढ़े स्फटिककी भाँति, ऐसी चमक रही थी कि देखकर आँखोंमें चकाचौंध लगता था, अलखनन्दाका जल उसके बहावमें पड़ी हुई शिलाओंसे टकराकर चट्टानोंसे टक्कर खाकर गिरता था, उछलता था, फेन फेंकता था, गरगराता था, गर्जता था, और चीत्कार करता हुआ बड़े वेगसे नीचेको दौड़ा चला जा रहाथा। इस प्रकार श्रीस्वामीजी अपनेचारों ओर प्रकृतिके स्वाभाविक सौन्दर्यको

निहारते हुए नदीके स्रोतकी ओर बढ़ रहे थे। मार्ग बड़ा बीहड़ और विषम था। अतिकष्ट उठाकर बड़ी कठिनतासे वे अन्तको नदीके निर्गम स्थानपर जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने देखा कि मैं इन स्थानोंसे अपरिचित हूँ; हिमाच्छादित नालोंसे, निकलनेके मार्गोंसे और पर्वत मालाओंके भेदोंसे अजान हूँ। उन्हें वहाँ सब ओर गगनभेदी गिरिशिखर ही दिखाई दिये और आगे चलनेके मार्गका सर्वथा अभाव ही जान पड़ा। इस अवस्थामें थोड़ी देरके लिए वे किंकर्तव्यकी चिन्तामें निमग्न हो गये। अन्तमें मार्ग-अन्वेषणके निमित्त उन्होंने अलखनन्दा पार करनेका निश्चय किया।

स्वामीजीके शरीरपर वस्त्र बहुत ही थोड़े थे। इसलिए हिमप्राय हेमोप्रदेशका अतिशीतल पवन तनको तीरकी तरह आरपार करने लगा। क्षण क्षणमें बढ़ते हुए शीतका सहन करना एक बार तो उन्हें असम्भवसा जान पड़ा। प्यासके कारण मुख सूख रहा था; होठ शुष्क हो रहे थे। कण्ठमें काँटे पड़ गये थे और क्षुधाने भी घोर रूप धारण कर रक्खा था। इन दोनों बाधाओंसे बचनेके लिए स्वामीजीने हिमका एक टुकड़ा लेकर चबाया, परन्तु उसने कुछ भी सहारा न दिया। उदरकी आग उससे शान्त न हुई। तब वे नदी पार करनेमें साहससे प्रवृत्त हुए। उस जगह अलखनन्दा कहीं तो बहुत गम्भीर और कहीं एक दो हाथ गहरी थी। उसका पाट आठ दस हाथका था। वह हिमके छोटे छोटे, तिरछे और नुकीले टुकड़ोंसे भरी हुई थी। नदीको चीरकर पार करते समय ये नुकीले हिमखण्ड श्री स्वामीजी महाराजके नङ्गे पाँवपर बार बार आघात करते थे। इससे उनके पैरोंके तलुए छिल गये, उङ्गलियोंमें घाव हो गये, और स्थान स्थानसे रक्त बहने लगा। परन्तु अति शीतलताके कारण उनके पाँव ऐसे सन्न हो गये थे कि कितने ही काल तक उन्हें इन बड़े बड़े घावोंका भान ही न हुआ। इस समय भूमि, आकाश और पवन सभी अतिशीतल हो रहे थे। इन सबने स्वामी-शरीरकी स्वाभाविक ऊष्माको अभिभूत कर लिया था महाराजकी कायापर शून्यता छाई जा रही थी। उनके हृदयपर अचेतनता धीरे धीरे बढ़ रही थी। यहाँ तक कि वे शून्य अव-स्थामें मूर्छा खाकर हिममय जलमें गिरनेकोही थे कि उनके अन्तःकरणमें चैतन्यकी रेखा चमक उठी, और वे संभल गये। अपने आपको थाम कर

महाराजने विचारा कि यदि एक बारभी मैं यहाँ गिर गया तो फिर न उठ सकूँगा; यहीं सन्न होकर समा जाऊँगा।

वे साहससे सावधान होकर बड़े बलके साथ उस नदीसे बाहर निकले और दूसरे तट पर जा पहुँचे। वहां पहुँचकर भी उनकी अवस्था कुछ कालपर्यन्त मृततुल्य बनी रही। परन्तु तो भी साहसका अवलम्बन कर उन्होंने अपने तनके उपरि भागके सारे वस्त्र उतार कर, उनके साथ पाँवसे लेकर घुटनों तकका सारा भाग लपेट लिया। उस समय वे चलनेमें अशक्त, हिलने जुलनेमें असमर्थ और व्याकुलचित्त थे। विगतशक्ति खड़े खड़े इस बातकी प्रतीक्षा करते थे कि कोई सहायता मिल जाय तो इस संकटसमाकुल स्थानसे निकलकर कहीं आगे चलूं। ऐसे सुनसान शीतप्रधान प्रदेशमें कोई मनुष्य मिल जायगा यह आशा भी नहीं बंधती थी। वे उस स्थानमें निस्सन्देह विवश थे, निस्सहाय थे, अजान थे, निराश थे, परन्तु उत्साहहीन नहीं थे, इसलिए विकसित लोचनोंकी ज्योतिको चारों ओर संचालन कर रहे थे। जैसे घटाटोपसे घिरी हुई अमावास्याकी महाकाली रात्रिमें अकस्मात् बिजलीकी रेखा दौड़ जाय, ठीक वैसेही स्वामीजीको दो पहाड़ी पुरुष सामनेसे आते दिखाई दिये। उन आगन्तुक भद्र जनोंने एक परमहंसको दुःखाकुल दशामें पड़ा देख पहिले तो नमस्कार किया और फिर समादरपूर्वक निवेदन किया कि महाराज! आइए हमारे संग हमारे घर चलिये। आप शीतसे ताड़ित और भूख प्याससे व्यथित हैं। हमारे गृहपर आपको पूर्ण सुख और पुष्कल भोजन मिल जायगा। स्वामीजीकी क्लेश-कहानीको सुनकर उन पहाड़ियोंने कहा कि आप चिन्ता न करें; हम आपको 'सिद्धपत' तीर्थस्थान तकभी पहुँचा देंगे। स्वामीजी चलनेमें असमर्थ थे, इसलिए उन्होंने उनका कथन स्वीकार नहीं किया और कहा, "महाराज, खेद है मैं आपकी इस कृपापूर्ण सहायताको स्वीकार नहीं कर सकता; क्योंकि मुझमें चलनेकी किंचित् भी शक्ति नहीं है।" उन भद्र गृहस्थोंने फिरभी भक्तिभावसे आग्रह और अनुरोध किया कि हमारे साथ अवश्य पधारिये। परन्तु स्वामीजी यह कहकर कि इस समयमें हिलने जुलनेकी अपेक्षा यहाँ मर जानाही उत्तम समझता हूँ मौन होगए; फिर उनके कथनपर उन्होंने कर्णपात नहीं किया। अन्तको वे पहाड़ी मनुष्य अति खेदके साथ

वहाँसे चल पड़े और किंचित् कालहीमें पर्वतके टीलों और उतराईकी ओटमें स्वामीजीकी दृष्टिसे ओझल हो गए।

चिरकालतक वहीं विश्राम लेनेसे स्वामीजीका शरीर स्वस्थ और उनकाचित्त शान्त हो गया। उसी समय चलकर वे 'वसुधारा' तीर्थस्थानपर जा पहुँचे। वहाँ थोड़ी देर विश्राम लेनेके अनन्तर फिर चल पड़े और 'मग्रम' के समीपवर्ती प्रदेशोंसे होते हुए रातके आठ बजे बद्रीनारायणमें जा विराजे। उनकी देहकी दशाको देखकर रावलजी तथा उनके संगी-साथी सब घबरा गए। विस्मित होकर उन्होंने पूछा—"आप आज सारा दिन कहाँ रहे? आपकी अवस्था ऐसी क्यों हो रही है?" उस समय स्वामीजीने उन्हें अपनी सिद्धोंके दर्शनार्थ की गई संकट-संकुल यात्रा आद्योपान्त कह सुनाई। रावलजी आदिने स्वामीजीको कुछ भोज्य पदार्थ दिये। उनको खाते हुए उन्हें ऐसा प्रतीत होने लगा कि अशक्त शरीरमें अब शक्तिका संचार हो रहा है, निकला हुआ सामर्थ्य फिर प्रवेश कर रहा है। स्वामीजी फिर सुखपूर्वक रातभर सोते रहे। दूसरे दिन सवेरेही शीघ्र उठकर रावलजीसे प्रस्थान निमित्त आज्ञा मांगी। सम्मानपूर्वक एक दूसरेसे मिलकर स्वामीजी महाराजने वहाँसे प्रस्थान किया और रामपुरको चल पड़े। चलते चलते उसी सायंको एक योगीके स्थानपर आ निकले। वह महात्मा बड़ा तपस्वी था। तत्कालीन ऋषियों और साधु-सन्तोंमें उच्चकोटिका ऋषि होनेका गौरव रखता था। स्वामीजी महाराजने ऐसे महापुरुषके पास ही रात्रि विश्राम लेना उचित समझा। योगीराजजीके साथ स्वामीजी धार्मिक विषयोंपर बहुत देर तक वार्त्तालाप करते रहे। वहाँ स्वामीजीने अपने सङ्कल्पोंको पहिलेसे भी अधिक दृढ़ कर लिया। प्रातःकाल उठते ही यात्रा आरम्भ कर दी। मार्गमें कई वनों और पर्वतोंको उल्लंघन करते चिलका घाटी उतरकर रामपुरमें आ गए। इस नगरमें सदाचार और आध्यात्मिक जीवनके लिए प्रसिद्ध, रामगिरि नामके एक महात्मा निवास करते थे। श्री स्वामीजीने उन्हींके पास अपना आसन लगाया। उन्होंने उस पुरुषकी प्रकृतिमें यह विचित्रता देखी कि वह सारी रात जागता रहता और ऊँचे ऊँचे बातें करने लग जाता था। कभी चिल्लाने लगता था और कभी ऊँची ध्वनिसे रोदन करता हुआ जान पड़ता था। स्वामीजी जब कौतूहलवश

उठकर देखने गये तो उन्हें वहाँ उसके बिना अन्य कोई भी दृष्टिगोचर न हुआ । अत्यन्त विस्मित होकर उन्होंने उस महात्माके चेलोंसे पूछा कि रातको यह क्या कौतुक होता है? वे बोले "गुरुजी महाराजकी ऐसा करनेकी प्रकृति ही है ।" परन्तु स्वामीजी इतने उत्तरसे कब सन्तुष्ट होनेवाले थे । अन्तमें उन्होंने महात्माजीसे जा पूछा, और कई बार एकान्तमें चर्चा की, तब स्वामीजीको सारा भेद ज्ञात हो गया । स्वामीजीने यह सार निकाला कि यह पूर्ण योगी नहीं है, प्रत्युत अभी अधूरा है । हाँ इसकी योगमें गति अवश्य है । इसे योगके पूरे फल अभी प्राप्त नहीं हुए । परन्तु जिस वस्तुको मैं प्राप्त करना चाहता हूँ वह इसके पास नहीं है ।

छठा सर्ग ।

कालान्तरमें रामपुरसे चलकर श्री स्वामीजी काशीपुर होते हुए 'द्रोणासागर'में आये और उन्होंने सारा शरदृऋतु यहीं बिताया। द्रोणासागरमें निवास करते समय एक बार उनके हृदयमें यह विचार स्फुरित हुआ कि हिमालयके हिममय भागमें जाकर देह त्याग देना चाहिए। परन्तु तुरन्त दूसरे विचार उत्पन्न हो आये कि अभी ज्ञान संचय करना उचित है । शरीर त्यागना हो तो पूर्ण ज्ञानी होकर त्यागना चाहिए। भागीरथके प्रयत्नसे प्रेरित जैसे गङ्गाजीका पवित्र प्रवाह, हिमालयके उत्तुंग शिखरोंको त्यागकर, नीचे समभूमिकी ओर बहने लगा था वैसे ही ज्ञानसंचयके विचारोंसे संचालित, योगाभ्याससे विमलात्मा, स्वामी दयानन्दजी हिमालयमें समाधि ले लेनेके विचारको त्याग कर, पार्वत्य प्रान्तको छोड़कर, समभूमिपर विचरते हुए किसी ज्ञानी गुरुके अन्वेषणमें प्रवृत्त हुए ।

द्रोणासागरसे स्वामीजी मुरादाबाद आये । वहांसे सम्भल, गढ़मुक्तेश्वरमें होते हुए गङ्गा-तटपर आ पहुँचे। उस समय उनके पास कई धर्म्मपुस्तकोंके अतिरिक्त शिव-संध्या, हठ प्रदीपिका, योगबीज, और केशराणीसंगति नामक पुस्तकें भी थीं । उनमेंसे कई पुस्तकोंमें नाड़ीचक्रका बड़ा विस्तृत वर्णन था । वह भ्रान्त करने वाला विषय न तो कभी पूर्ण रीतिसे स्वामीजीकी बुद्धिमें

समाया और न ही वे उसे ध्यानपूर्वक स्मरण ही कर सके। उसकी सत्यतामें उन्हें सदैव सन्देह रहा करता था। यहाँ तक, उन्होंने साधारण साधनोंसे उस संशयको निवारण करनेका यत्न भी किया। पर यह संशय निवृत होनेके स्थान दिनों दिन बढ़ता ही गया। गङ्गा-तटपर विचरते हुए दैवयोगसे एक दिन उन्होंने जलमें एक शव बहता देखा। शवको देखते ही वे मनही मन विचारने लगे कि नाड़ीचक्रके विषयमें जो संशय सदा बना रहता है आज इस शव द्वारा परीक्षा करके उसे मिटा लेना चाहिए। मनमें यह आते ही उन्होंने पुस्तकोंको नदी-तटपर रख दिया वस्त्र संभाल कर गङ्गा-प्रवाहमें कूद पड़े और तुरन्त ही बहते हुए शवको पकड़कर किनारे पर ले आये। अपने उपकरणोंमेंसे एक तीक्ष्ण चाकू निकाल कर लगे शवको चीरने। सावधानीसे चीरकर प्रथम हृदय निकाला। उसकी आकृतिको, स्वरूपको, और लम्बाई चौड़ाईको पुस्तक-लिखित वर्णनके साथ देर तक मिलाते रहे। इसी प्रकार सिर, ग्रीवा आदि अङ्गोंकी भी तुलना की। नाभि आदि चक्रोंका भी परीक्षण किया। परन्तु उन पुस्तकोंमें वर्णित चक्रों और अङ्गोंको उन्होंने वास्तविक चक्रों और अङ्गोंसे लवलेश मात्र भी मेल खाते न देखा। उस परीक्षणसे स्वामीजीको पूर्ण निश्चय हो गया कि इन पुस्तकोंके ऐसे लेख, सब काल्पनिक हैं। इससे उन्होंने उन पुस्तकोंको तुरन्त ही फाड़ कर खण्ड कर डाला और शवके साथ ही गङ्गाके प्रवाहमें बहा दिया। उसी समयसे विचारते हुए वे इस परिणामपर पहुँचे कि वेदों, उपनिषदों, पातञ्जल और सांख्य शास्त्रके अतिरिक्त शेष समस्त पुस्तकें, जो विज्ञान और योगपर लिखी गई हैं, मिथ्या और अशुद्ध हैं।

ऐसे ही गङ्गाके साथ साथ चलते हुए सम्वत् १९१२ की समाप्तिपर स्वामीजी फर्रुखाबाद गये। वहाँसे श्रृंगीरामपुर होते हुए छावनीसे पूर्व दिशावाली सड़कसे कानपुरकी ओर प्रस्थान किया। सम्वत् १९१३ में पाँच मास तक स्वामीजी कानपुर और प्रयागके मध्यवर्ती स्थानोंमें विचरते रहे। भाद्रपदके प्रारम्भमें गङ्गाके तीरपर विचरते हुए मिर्जापुरमें जाकर एक माससे कुछ अधिक समय तक विन्ध्याचल अशोलजीके मन्दिरमें जा विराजे। आश्विन मासके आरम्भमें काशी आये। वहाँ वरुणा और गङ्गाके सङ्गमके पासही एक गुफामें जाकर टिके। उस गुफा पर उस समय भवानन्द सरस्वतीका अधिकार

था। काशीमें रहते हुए स्वामीजीका परिचय काकाराम, राजाराम इत्यादि अनेक शास्त्रियोंसे हो गया। इस बार आप केवल बारह दिनही काशीमें रहे।

महाराज काशीसे चलकर आश्विन सुदी २, सम्वत् १९१२ को चण्डाल गढ़में दुर्गाकुण्डके मन्दिरमें दस दिन तक रहे। वहां चावल खाना सर्वथा परित्याग कर दिया। केवल दूधपरही निर्वाह करके रात दिन योग-विद्याके अध्ययन और अभ्यासमें परायण रहते थे। हिमालयमें विचरने वाले और गङ्गा-तीरपर अटन करने वाले अच्छे अच्छे साधुओंमें भी प्रायः यह दोष पाया जाता है कि पानी-लागसे बचनेके लिए वे भाँगका सेवन करने लग जाते हैं। इस प्रदेशमें आया हुआ कोई नवीन साधु उन्हें मिल जाय तो उसे भी जल-दोषसे बचे रहनेकी औषधि विजया ही बताते हैं। इस प्रकार संगति दोषसे विजया-सेवनके संस्कार साधुओंमें अतीव प्रबल हैं। इस व्यापक संस्कारके प्रभावसे परमहंस स्वामी दयानन्द जी भी न बचे जब वे चण्डालगढ़में थे तो यह संसर्ग-जन्य दोष उनमें लगा हुआ था कई बार भाँगके प्रभावसे वे अचेत हो जाया करते थे।

एक दिनका वर्णन है कि स्वामीजी चण्डालगढ़से निकलकर उसके निकट-वर्ती एक ग्रामको चल पड़े। मार्गमें उन्हें एक पुराना साथी मिला। उससे शिष्टाचार आदि करके गाँवके दूसरी ओर एक शिवालयमें रात्रिको विश्राम लेने लगे। जब, वे भाँगकी मादकतामें, बेसुध सो रहे थे तो उन्होंने स्वप्न-लीलामें देखा कि, महादेव और पार्वती दोनों उनके समीप खड़े परस्पर बातें कर रहे हैं। गौरीने शङ्करसे कहा कि महाराज, अच्छा हो यदि दयानन्द सरस्वतीका विवाह हो जाय परन्तु शिवजी भाँगका संकेत करके अपनी सम्मति पार्वतीके प्रस्तावके विरुद्ध देते थे। इतनेमें ही स्वामीजीकी तंद्रा टूट गई। स्वप्नको स्मरण कर उन्हें बहुत दुःख और क्लेश हुआ। उस समय आकाश मेघावृत था। मूसलाधार वर्षा हो रही थी। स्वामीजी मन्दिरके भीतरसे निकल कर वराण्डेमें आये। वहाँ नन्दी वृषभकी एक विशाल मूर्त्ति स्थापित थी। उन्होंने अपने पुस्तकादि उपकरण वृषभ देवताकी पीठ पर रख दिये, और आप उसके पीछे बैठ विचारमें निमग्न हो गये। विचारते हुए उनकी दृष्टि अचानक मूर्त्तिके भीतर जा पड़ी। उन्हें वहाँ कोई मनुष्य छिपा बैठा दिखाई दिया। कौतूहलवश,

स्वामीजीने ज्योंही उसकी ओर हाथ पसारा वह अति भयभीत होकर कांप उठा और तत्काल छलाङ्ग मारकर, एकदम ग्रामकी ओर भाग गया। उसके पश्चात् उस नन्दी वृषभके भीतर प्रवेश कर स्वामीजी सुखसे सो रहे। प्रातः-काल होनेपर वहाँ एक वृद्धा स्त्री आई और उसने आकर उस वृषभ-देवताका पूजन किया। स्वामीजी वहीं तन्द्रामें बैठे यह दृश्य देखते थे। वह स्त्री पूजा करके चली गई, परन्तु स्वल्प समयमें ही कुछ गुड़ और दही लेकर फिर लौट आई। उस भोलीने स्वामीजीको मूर्त्तिका अभिमानी देवता समझ लिया। इस लिए उसने उनका भी अर्चन किया और भक्ति-भावनासे दही-गुड़का नैवेद्य उनको निवेदन किया। साथ ही कहा—"हे नन्दी वृषदेव! आप इस मेरी भेंटको ग्रहण कीजिए और दयालु होकर इसमेंसे कुछ भोग लगाइये।" स्वामीजीको भी इस समय भूख बहुत सता रही थी। उन्होंने सारा नैवेद्य खा लिया। दही बहुत ही खट्टा था। उनकी भाँगकी मादकताको तुरन्त उतारनेमें एक औषध बन गया। भाँगका प्रभाव दूर होनेपर उन्हें आराम प्रतीत हुआ।

चैत्र १९१४ में वहाँसे आगे चलकर स्वामीजी महाराजने नर्मदा नदीका स्रोत देखनेकी लालसासे यात्रा आरम्भ की। पहाड़ी मार्ग बड़ा विखड़ा था। चलते हुए वे किसीसे भी मार्ग न पूछते थे। दक्षिणाभिमुख चुपचाप चलते चले जाते थे। इस प्रकार चलते हुए मार्गमें एक विस्तृत घना जङ्गल आ गया। उन्हें वह वन जन-संचार-शून्य जान पड़ा, परन्तु विशेष देखनेसे सुदूर झाड़ि-योंमें अनियमित रूपसे कुछ मलिन झोपड़ियाँ दिखाई पड़ीं। स्वामीजी उस समय क्षुत्पिपासासे पीड़ित थे, इस लिए वे एक झोपड़ीमें गये और उसके अधिपतिसे माँगकर कुछ दूध ग्रहण किया। वहाँसे आगे चलकर कोई पौन कोस पहुँचने पाये थे कि मार्गका लोप दिखाई दिया। हाँ छोटी छोटी पग-डंडियाँ, जो वास्तवमें भेड़-बकरियोंके आने जानेसे ऐसे वनोंमें बन जाया करती हैं चारों ओर फैली हुई थीं। उन्होंने उनमेंसे एकको चुन लिया और चल पड़े। थोड़ी दूर जाकरही वे एक निबिड़ निर्जन वनमें जा फँसे। इस वनमें बेरीके बहुतसे वृक्ष थे। घास अति घनी और लम्बी थी। ऐसे स्थानमें ऐसी पद-पंक्तियाँ भी प्रलुप्त हो गई थीं। स्वामीजी थोड़े समयके लिए वहाँ ठहर-

कर यह सोचतेही थे कि किस ओरसे आगे बढ़ें; इतनेमें अचानक एक काला रीछ बड़े बेगसे दौड़ता चला आता सामने दिखाई दिया। वह हिंसक पशु चिंघड़ता हुआ अपने पिछले पांव पर खड़ा हो गया और मुँह खोलकर उनको खानेके लिए आगेकी ओर लपका। स्वामीजी महाराज कुछ क्षण तो आश्चर्य चकित, निष्क्रिय होकर खड़े रहे, परन्तु जब अन्तमें देखा कि वह पशु कुच-लनेही लगा है तो अपना सोटा उन्होंने रीछकी ओर बढ़ाया। वह पशु स्वामी-दण्डको देखकर वहांसे उलटे पांव भाग गया। उस भालूका चिङ्घाड़ना सुनकर जिन झोपड़ियोंमें स्वामीजीने दुग्ध ग्रहण किया था वहाँके लोग शिकारी कुत्ते लेकर घटना-स्थलपर आ गये। वे परमहंसजीको सुरक्षित देख प्रसन्न हुए और बोले—"महाराज, इस जङ्गलमें यदि और थोड़ा भी आगे बढ़ोगे तो आपको घोर संकटोंके सन्मुख होना पड़ेगा। इस पर्वतमें इस सघन वनमें बड़े बड़े विकट बनैले पशु बास करते हैं। यहां आपको सिंह, आदि अति क्रूर और भयङ्कर जीव अवश्यमेव मिलेंगे। कृपा करके आप हमारे साथ हमारे गांवमें पीछे चले चलिये। हम आपकी सेवाशुश्रूषा करेंगे।"

स्वामीजीने उन वनवासी हितेच्छुओंके वचन आदरसे सुने और फिर कृत-ज्ञताके साथ कहा "आप मेरे लिए चिन्ता न कीजिए। मेरे कुशल-मङ्गलका भय छोड़ दीजिए। क्योंकि मैं सकुशल और सुरक्षित हूं।" स्वामीजी महा-राजने नमर्दाका स्रोत देखनेका दृढ़ संकल्प कर लिया था। वे जानते थे कि मार्गमें भीषण प्रकृतिके हिंस्र जन्तुओंसे पूर्ण, भयावने वन आयेंगे। इस लिये, पहिले उन्होंने अपने हृदयसे समस्त भय निकाल दिये और फिर वे स्रोत दर्शनकी कामनासे चले। ग्रामीण भक्तोंने देखा कि भयकी बातोंसे श्रीपरम-हंसजीका हृदय यत्किंचित् भी डांवाडोल नहीं हुआ और वे अपने विचारमें पक्के हैं तो उन्होंने स्वामीजीको एक ऐसा लट्ठ दिया जो उनके अपने सोटेसे मोटा और लम्बा था। फिर स्वामीजीके धैर्यको धन्य कहते हुए वे लौट गये।

धृति धर्म्मका मूल है, है जीवनका सार,
की जिसने धारण धृति, उस पाये फल चार।

ग्रचला धरणीपै धरें, पाँव निश्चयके जो,
उनको बाधक कार्यमें, भय संकट न हो ।

स्वामीजीने ग्रामीणोंका दिया हुआ लट्ठ वहीं फेंक दिया और अति साहससे आगे बढ़ने लगे । उस दिन मार्गमें उन्हें बड़ी बड़ी कठिनाइयाँ झेलनी पड़ीं । चलते चलते सायंकाल हो गया, पर दूर दूर तक मानव वस्तीका कोई चिह्न दिखाई न देता था न ही मार्गमें आता जाता कोई मनुष्यही मिलता था । चारों ओर सघन वन था जिसमें स्थान स्थानपर मत्त हाथियोंके उखाड़े हुए ऊँचे ऊँचे पेड़ भूतल-शायी हो रहे थे । सर्वत्र सुनसान और सन्नाटा था; परन्तु स्वामी दयानन्दका हृदय निष्कम्प, चित्त निश्चिन्त, बुद्धि स्थिर और मन क्षोभरहित था । इस विकट विस्तीर्ण वनको पार करते हुए श्रीस्वामीजीको बड़ा कष्ट सहन करना पड़ा । प्रथम तो उस वनमें प्रवेश करतेही छोटी छोटी कण्टकाकीर्ण अविरल झाड़ियोंने उनके तनको छलनी बनाना आरम्भ कर दिया । ज्यों ज्यों वे आगे बढ़ते थे उनके शरीरके वस्त्र पगपगपर काँटोंमें फँसकर, झाड़ियोंमें अटककर, और शाखाओंमें उलझकर उन्हें पीछेको खींचते थे । इस बंधनसे बचनेके लिए उन्हें अपने वस्त्रोंको फाड़कर टुकड़े टुकड़े कर देना पड़ा । पर क्या इतनेसे ही विपत्तिकी समाप्ति हो सकती थी ? तीक्ष्ण काँटोंसे लदी हुई घनी झाड़ियोंकी डालियों और छोटी छोटी टहनियोंने परस्पर ओतप्रोत होकर, किसी के लिए निकलनेका मार्ग न छोड़ा था । स्वामीजीको थोड़ी देरतक तो वह वन-दुर्ग उल्लंघन करना दुस्तर दीखने लगा । उस समय वे मानों काँटोंके कोटमेंसे लांघ रहे थे । सीधे खड़े खड़े चलना वहां असम्भव था । टेढ़े होकर आगे बढ़ना भी महादुष्कर था । ऐसे स्थानोंमें स्वामीजी घुटनोंके सहारे सरककर और पेटके बल रेंगकर आगे निकले । अनेक बार उनके पाँवपर आघात हुए, तलुवे लहूसे लाल हो गये, देह अगणित काँटोंके चुभनेसे रक्तस्राव करने लगी, तनपरसे कहीं कहीं मांसकी बोटियां उड़ गईं, परन्तु धुनके धनी स्वामी दयानन्दजी सकल विघ्न-बाधाओंको अपने साहससे पार करके अन्तको उस वन-दुर्गपर विजयी हुए । जब वे वनसे बाहर आये तो बहुत घायल थे और उनकी अवस्था अधमुईसी हो रही थी ।

उस समय सर्वत्र अन्धकार छा रहा था। दृष्टि पसारनेपर कुछ भी दृष्टि-गोचर न होता था। यहाँ भी मार्ग कहीं प्रतीत न होता था, पर स्वामीजी थे कि इतने कष्ट पानेपर भी उत्साहहीन नहीं हुए। उन्होंने अपनी अग्र-गतिको बन्द नहीं किया। वे इस अन्धकारपूर्ण रात्रिमें इस आशासे चले जा रहे थे कि कहीं तो मार्ग मिल ही जायगा। आगे जाकर ऐसे भयानक प्रदेशमें पहुँचे, जहां, चारों ओर पर्वत और टीले ही दृष्टिगत होते थे। वह स्थान वनस्पतिसे ढका हुआ था। परन्तु उन्हें वहां मानव-निवासके कुछ चिन्ह प्रतीत होने लगे। ज्योंही, कुछ आगे गये तो उन्हें टिमटमाते हुए दीपक दिखाई पड़े। ये दीपक मानों आनेवाले पथिकको वहाँ पहुँच जानेका बधाई देते हुए उसका स्वागत कर रहे थे। समीप जानेपर स्वामीजीको गोबरके ढेरसे घिरी हुई कुछ झोंपड़ियाँ दिखाई दीं। उन कुटियोंसे थोड़ी दूरीपर स्वच्छ जलकी एक धारा बह रही थी। उस जल-धाराके तटपर बकरियोंका एक रेवड़ चर्वन कर रहा था। वहीं एक विशाल वृक्षके नीचे स्वामीजीने विश्रामके लिए स्थान बनाया। यह वृक्षराज खुली भूमिपर शाखाओंका एक चँदुआसा ताने था। इसके नीचे एक कुटिया भी थी।

उस समय स्वामीजी अपने घावोंपर विशेष ध्यान न देकर निद्रादेवीकी गोदमें चले गये। सवेरे उठनेपर शौचादिसे निवृत्त होकर उन्होंने नदी-जलसे अपने घावोंको धोया। हाथ पाँव प्रक्षालन किये। दण्डको भी जलसे साफ करलिया। तत्पश्चात् सन्ध्योपासनामें बैठाही चाहते थे कि उन्हें एक घोर गर्जन सुनाई दिया। इसे उन्होंने किसी जङ्गली पशुकी ध्वनि समझा। परन्तु थोड़ी देरमें वे क्या देखते हैं कि एक टमटम चली आ रही है। वे समझ गये कि यह उच्च गर्जना इस गाड़ीकीही थी। कुछ कालके अनन्तर स्त्री-पुरुष और बालक-बालिकाओंका एक समूह उन झोंपड़ियोंमेंसे बाहर निकला। उनके साथ बहुतसी गायें और बकरियाँ थीं। ऐसा प्रतीत होता था कि वे लोग किसी धार्मिक त्योहारकी रीतिका पालन करनेके लिए गत रात्रिको वहाँ आये थे। जब उस जन-समूहने नदी-तीरपर एक परमहंसको बैठे देखा तो वे उनके समीप आये। उन्होंने आकर आदिसे यह भी समझ लिया कि यह सन्त इस प्रान्तके नहीं और इन स्थानोंसे अपरिचित हैं। उन्होंने आदर आदि प्रदर्शन करके स्वामी-

जीके इर्द गिर्द घेरा डाल लिया। अन्तमें एक वृद्धने पूछा—"महाराज! आप कहाँसे पधारे हैं?" स्वामीजीने उत्तर दिया—"मैं काशीसे आया हूँ और नर्मदा नदीका स्रोत देखनेके लिए जा रहा हूँ।" तत्पश्चात् स्वामीजी उपासनामें निमग्न हो गये और वे लोग भी वहाँसे चले गये। आध घण्टेके पश्चात् उस जन-मण्डलीका प्रधान पुरुष दो पर्वतीय मनुष्योंको साथ ले स्वामीजीके पास आया और एक ओर बैठकर उसने स्वामीजीसे अपनी झोपड़ियोंमें पधारनेकी प्रार्थना की। पहले आनेवाले लोगोंकी ओरसे वह वास्तवमें एक प्रतिनिधि होकर आया था; परन्तु स्वामीजीने यह जानकर कि ये सब लोग मूर्त्ति-पूजा परायण हैं, उसका कुटियोंमें जानेका निमन्त्रण अस्वीकार कर दिया। उस प्रधान पुरुषने अपने साथियोंको अग्निप्रज्वालनका आदेश देकर कहा कि तुम दोनों यहाँही रहो और रात्रिभर जागते हुए सावधानीसे परमहंसजीकी रक्षा करो। तत्पश्चात् उस श्रद्धालु भक्तने हाथ जोड़कर स्वामीजीसे भोजनके लिए प्रार्थना की, स्वामीजीने उत्तर दिया कि मैं आजकल अन्नग्रहण नहीं करता किन्तु कुछ दूधहीपर निर्वाह किया करता हूँ। यह सुन कर उस सदय-हृदय मुखिया पुरुषने स्वामीजीसे उनका तूँबा माँग लिया। वह उसे लेकर कुटियाकी ओर चला आया। फिर, थोड़ी देर पीछे दुग्धसे आकण्ठ-पूर्ण तूँबा लेकर स्वामी-सेवामें उपस्थित हुआ। स्वामीजीने उसमेंसे कुछ दूध ग्रहण कर लिया। वह प्रधान पुरुष परमहंसजीको नमस्कार आदिसे पूजन करके जब स्वस्थानको जाने लगा तो उसने फिर उन दोनों पुरुषोंको सचेत किया कि सारी रात जागते हुए परमहंसजीका रक्षण करना। उस मुख्य व्यक्तिके चले जानेके पश्चात् स्वामीजी उसी स्थानपर विराजते रहे और रात होनेपर वहीं सो गये। पिछले दिनके परिश्रमसे उनका सारा शरीर श्रान्त था, इस लिए, उस रात उन्हें ऐसी गाढ़ निद्रा आई कि सूर्योदयके समय ही जागे। संध्योपासनादिसे अवकाश पाकर स्वामीजीने फिर यात्रा आरम्भ कर दी। इसी प्रकार तीन वर्षपर्यंत श्री परमहंसजी नर्मदातीरपर पर्यटन करते रहे। इस अन्तरमें उन्हें अनेक सन्त-महात्माओंके सत्संग प्राप्त हुए। उन्होंने अपने अन्तःकरणके सुवर्णको, सन्तोंके सत्संग और तपस्याकी आगमें तप्त करके, मल विक्षेप-आवरणरूप तीनों दोषोंसे विमुक्त,

कुन्दन बना लिया । उस समय उनका आत्मा अभ्यासकी ऊपरी पौड़ियोंपर पदार्पण कर रहा था । इतनेमें, वे स्वामी श्रीविरजानन्दजीका विमल यश श्रवण कर, विशेष ज्ञानकी जिज्ञासासे मथुरा आ पहुंचे ।

सातवाँ सर्ग ।

स्वामी श्री विरजानन्दजीका जन्म स्थान पञ्जाब प्रान्त अन्तर्गत कर्तारपुरके समीपवर्ती कोई ग्रामविशेष था । कहते हैं कि उनका जन्मग्राम कपूरथलेके पाससे बहनेवाली बेईं नामक नदी के तीरपर है । वे शारद शाखाके सारस्वत ब्राह्मण थे । उनका गोत्र भारद्वाज था । उनके पितका नाम नारायणदत्त था । जब विरजानन्दजी पाँच वर्षके थे तो उनपर शीतला रोगका घोर आक्रमण हुआ । जीवन तो उनका बचा रहा, परन्तु वे इस रोगसे चक्षुहीन हो गये । वे अभी ग्यारह वर्षकेही थे कि उनके माता पिताका देहान्त हो गया । मातृ-पितृविहीन, छोटे अँधे भाईको बड़े भाईने अनेक प्रकारसे दुःख देना आरम्भ कर दिया । विरजानन्द, स्वबंधुओंके सतानेसे घर छोड़नेपर विवश हुए । घरसे चलकर वे हृषीकेशमें आये । यह स्थान हिमालयके एक भागसे आवृत है यहाँ वे अधिक काल गङ्गा-जलमें बैठकर गायत्री जपमें लगाया करते थे । इस प्रकार उनका एक वर्ष बीता । एक दिन स्वप्नमें उन्होंने श्रवण किया "विरजानन्द ! तुम अब यहाँसे चले जाओ । जो कुछ तुम्हारा होना था सो हो गया ।" वे इसे दैववाणी समझकर वहाँसे कनखल चले आये । वहाँ वे पूर्णानन्द स्वामीसे षड्लिङ्गादि व्याकरणके भाग पढ़ते रहे । ऐसा प्रतीत होता है कि, विरजानन्दजीने गृह-परित्यागके अनन्तरही परमहंसवृत्ति धारण कर ली थी ।

कनखलमें अध्ययन समाप्त कर वे प्रयागआदि तीर्थस्थानोंके पर्यटनमें प्रवृत्त हो गये । एक दिनका वर्णन है कि सोरोंमें गङ्गा-स्नान करके विरजानन्दजी विष्णुस्तोत्रकी आवृत्ति कर रहे थे । उस समय अलवर के राजा विनयसिंहजी वहाँ विद्यमान थे । वे स्तोत्रके उच्चारण और विरजानन्दजीके मधुर स्वरको सुनकर अतिशय प्रसन्न हुए । वार्त्तालापमें उनकी चमत्मकारिणी प्रतिभाका

परिचय पाकर राजा आश्चर्यमय हो गये। उन्होंने विरजानन्दजीसे अपने साथ चलनेके लिये अनुरोध किया। अति आग्रहसे विवश होकर विरजानन्दजीने कहा कि यदि हमसे तुम प्रतिदिन पढ़ा करो तो मैं तुम्हारे साथ चल सकता हूं, नहीं तो व्यर्थ कालक्षेप करनेके लिये नहीं चलूंगा। अलवरनरेशने अध्ययन करनेकी प्रबल इच्छा प्रकट की और उन्हें अपने साथ अलवर लिवा ले गये। अलवर स्थानमें खान-पानका पूर्ण प्रबंध राज्यकी ओरसे हो गया। ऊपरके फुटकल व्ययके लिए दो रुपये दैनिक मिलने लगे। महाराजा विनयसिंहजी नित्यप्रति तीन घण्टे उनसे अध्ययन करते। जब कभी कोई राज्य-सम्बन्धी विशेष विषय उपस्थित होता तो महाराजा स्वामीजीसे भी परामर्श लिया करते। स्वामी विरजानन्दजी, प्रतिदिन राजप्रासादमेंही नियत समयपर जाकर महाराजको पढ़ाया करते थे। एक दिन स्वामीजी तो समयपर राजप्रासादमें पढ़ानेके लिए चले गये, परन्तु अलवर-अधिपति उपस्थित न हो सके। कहते हैं कि वे, उस समय वाराङ्गनाओंके नृत्य-गायनमें कालक्षेप कर रहे थे। स्वामीजी स्वस्थानपर लौट आये, परन्तु इतने विरक्त हो गये कि अपने ग्रन्थादि सभी उपकरण वहीं छोड़कर सोरोंमें आ विराजे। वहाँ थोड़े दिन ठहरकर मथुराके समीपस्थ मुरसानके राजाके पास जाकर रहने लगे। राजा बलवन्तसिंहजीके आग्रह से मुरसानसे भरतपुर चले गये। वहाँ छः मास यापन करके फिर सोरों में चले आये। इसके पश्चात् विरजानन्दजीने अपना स्थान मथुरामें नियत किया।

रेलवे स्टेशनसे यमुनाके विश्रामघाटतक जो राजपथ जाता है उसी राजमार्गको एक ओर एक छोटीसी अट्टालिकामें विरजानन्दजी विराजा करते थे। यही छोटासा स्थान उनकी पाठशालाका भी काम देता था। उनके आहारके प्रबन्धके लिये अलवरके महाराजा विनयसिंहजी सहायता देते थे और कभी कभी जयपुरके महाराजा रामसिंहजी भी। इसके अतिरिक्त मथुरामें आनेवाले अनेक धनी लोग उनके विद्याबलसे प्रेरित होकर स्वेच्छासे द्रव्यादि प्रदान कर जाया करते थे। विरजानन्दजी अन्नाहार बहुत कम करते थे। उनका प्रायः दुग्धपर ही निर्वाह था। रातको बहुत थोड़ी देरके लिए सोते थे। ब्राह्ममुहूर्त्तमें उठ स्नानादि करके प्राणायामपूर्वक ध्यानमें निमग्न हो जाते

थे। सूर्योदयतक प्रातःकृत्यसे निवृत्त हो लेते थे। फिर अध्यापनकार्यमें प्रवृत्त हो मध्याह्न कालतक पढ़ाते रहते थे। उसके पश्चात् कुछ काल विश्राम लेकर फिर पढ़ाने लग जाते थे। चतुर्थ प्रहरतक अध्यापन होता रहता था। विद्यार्थियोंको कभी कभी विशेष शिक्षायें भी दिया करते थे। प्रतिदिन सायंसमय स्नानादि करके ध्यानावस्थित हो जाया करते थे। इस शोभन वृत्तिमें श्रीविरजानन्दजीके पुण्यमय जीवनके दिन बीतते थे। विरजानन्दजीकी विचार-शक्ति अतिशय प्रबल थी। वे विषयकी तहमें तुरन्त पहुँच जाते थे। वे अपनी असाधारण बुद्धिके कारण विख्यात होगये थे। स्मरणशक्ति और धारण-शक्तिका तो कहना ही क्या है? यदि कोई नवीन श्लोक दो एक बार भी उनके श्रुतिगोचर हो जाता तो वे, उसे इतनेमें ही स्मरण कर लेते, और फिर वह उनके स्मृति-पथसे कभी उतरने न पाता था। जो कुछ वे सुनते थे उनके मस्तिष्कमें वह अङ्कितसा हो जाता। ऐसी स्मृति ईश्वरहीकी देन समझनी चाहिए। इस अद्भुत स्मृतिके कारण अनेक ग्रन्थ उनके कण्ठाग्र थे। काशी आदि नगरोंकी पण्डित मंडलीमें उनका पाण्डित्य प्रख्यात था। जो भी शास्त्रीय विषय विरजानन्दजीके संमुख उठाया जाता था, वे उसका ऐसा उत्तम आलापन करते थे कि विद्वान् जन धन्य धन्य करने लग जाते थे। विरजानन्द एक स्पष्टवक्ता, निष्कपटस्वभाव, और सरलवृत्ति, साधु थे। वे ज्ञान-ध्यानमें निमग्न रहनेवाले अभ्यासी और उत्तम कोटिके दण्डी संन्यासी थे। दण्डीजीको अनार्ष ग्रन्थोंसे अप्रीति होगई थी। इस लिए उनकी पाठशालामें कौमुदी, मनोरमा, शेखर आदि कोई भी व्याकरणका अनार्ष ग्रन्थ नहीं पढ़ाया जाता था। उनके विद्यार्थी व्याकरणके निघण्टु, निरुक्त-अष्टाध्यायी और महाभाष्य प्रभृति ग्रन्थ पढ़ा करते थे। उन्हें श्रीमद्भागवतसे भी अति घृणा थी। उसके पढ़नेसे भी लोगोंको रोका करते थे। संक्षेपतः जिस समय स्वामी दयानन्दजी मथुरामें आये उस समय श्रीविरजानन्दजीकी प्रतिभा-व्याकरण-विद्याकी दीप्ति अद्वितीय समझी जाती थी और वे आर्ष ग्रन्थोंके एक प्रबल पक्षपाती तथा प्रचारक थे। दण्डीजीकी आयु उस समय इकासी वर्षकी थी।

सम्वत् १९१४ की भारी सैनिक हलचल प्रायः शान्त हो गई थी। अब यत्र तत्र ही उसकी सुलगती हुई चिङ्गारियां दिखाई देती थीं। शान्ति और

समानताका घोषण-नाद भी दिग्दिगन्तर गुंजायमान कर चुका था कि कार्तिक सुदी-२ सम्वत् १९१७ को स्वामी दयानन्द सरस्वती मथुरामें प्रविष्ट हुए, और सीधे दण्डीजीकी अट्टालिकापर चढ़कर उसका द्वार खटखटाने लगे, । दण्डीजीने पूछा "कौन है ?" उत्तर मिला—"दयानन्द सरस्वती" । "कुछ व्याकरण भी पढ़े हो ?" "महाराज ! सारस्वत आदि व्याकरण ग्रन्थ पढ़ा हूं।

यह सुनते ही दण्डीजीने द्वार खोल दिया । स्वामी दयानन्दजीने भीतर प्रवेश करके अतिशय सम्मानसे विरजानन्दजीको नमस्कार किया । वे निर्देश पाकर बड़े विनीत भावसे उनके समीप बैठ गये । विरजानन्दजीने आगन्तुकसे परीक्षाकी रीतिपर पहले थोड़ासा कुछ पूछा । स्वामी दयानन्दजीके उत्तरोंको सुनकर विरजानन्दजीने कहा—"दयानन्दजी ! अबतक जो कुछ तुमने अध्ययन किया है उसका अधिक भाग अनार्ष ग्रन्थ हैं । ऋषि-शैली बड़ी सरल और सुन्दर है परन्तु लोग उसका अवलम्बन नहीं करते। जबतक तुम अनार्ष पद्धतिका परित्याग न करोगे तबतक आर्ष ग्रन्थोंका महत्त्व और मर्म समझ न सकोगे ।" दण्डीजीने फिर कहा कि आधुनिक अनार्ष ग्रन्थोंके रचयिता कैसी प्रकृतिके थे इसको सारस्वत नामक व्याकरण-ग्रन्थकी रचनाकी कथासे समझ सकते हो । अनुभूतिस्वरूप आचार्य एक दिन विद्वानोंके साथ वादमें प्रवृत्त हो रहा था । बुढ़ापेके कारण उसके अगले दांत गिर गये थे । इस लिए वादप्रसंगमें 'पुंसु' पदके स्थान उसके मुखसे अशुद्ध शब्द 'पुंक्षु' निकल गया । उपस्थित पण्डितोंने 'पुंक्षु' पदपर आक्षेप किया, परन्तु अपनी अशुद्धि स्वीकार करना तो दूर रहा, उसने नूतन ग्रन्थ की रचना करके 'पुंक्षु' पद सिद्ध करनेका यत्न किया । यद्यपि उसका यह यत्न सफल नहीं हुआ तो भी अनार्ष ग्रन्थोंके कर्त्ताओंकी प्रकृति प्रकट करनेके लिये यह एक ही दृष्टान्त पर्याप्त है । यदि तुम मेरे समीप अध्ययन करना चाहते हो तो मनुष्यकृत ग्रन्थोंको विस्मरण कर दो । पठन-पाठनमें उनसे कोई भी काम न लो । स्वामी दयानन्दजीने दण्डीजीके इस प्रथम आदेशको प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कर लिया ।

दण्डीजीने फिर यह भी कहा कि हम संन्यासियोंको नहीं पढ़ाया करते । इसका कारण यह है कि उनके भोजनका यहाँ कोई प्रबंध नहीं । इस लिए
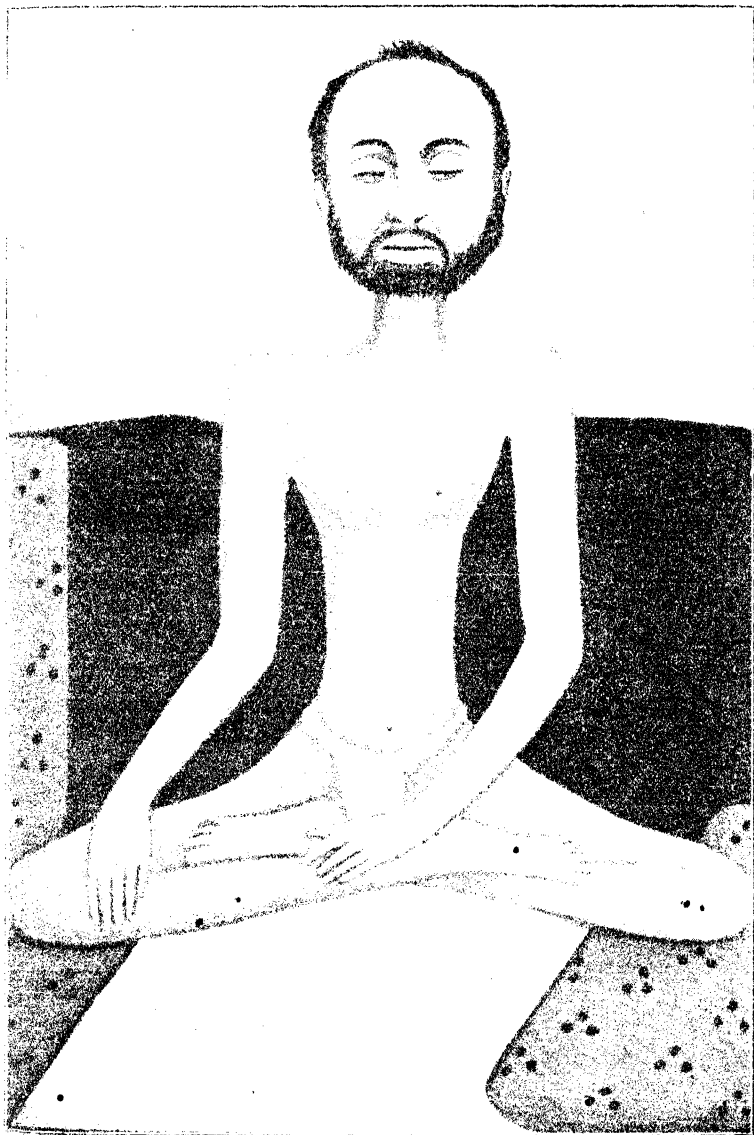
दण्डी स्वामी श्रीविरजानन्द जी ।

पढ़ना आरम्भ करनेके पहले आपको अपने भोजनका प्रबन्ध अवश्य कर लेना चाहिए। निश्चिन्तता प्राप्त किये बिना अध्ययन नहीं हो सकता। स्वामी दयानन्दजीने इस दूसरे कथनको भी सादर स्वीकार करते हुए कहा— "महाराज! आप पढ़ाना आरम्भ कर दीजिए। भोजनके विषयमें निश्चिन्तता, मैं थोड़े ही दिनोंमें लाभ कर लूँगा।"

कहते हैं, दण्डीजी सिद्धान्तकौमुदीके सम्पादक भट्टोजीदीक्षितपर इतने अप्रसन्न थे कि अपने विद्यार्थियोंसे उसके नामपर जूते लगवाया करते थे, जिससे उनके मनमें उसके लिए प्रतिष्ठाका लेश भी शेष न रह जाय, और वे अष्टाध्यायीका पूरा सम्मान करने लग जायँ। इस आज्ञाका पालन पहले स्वामी दयानन्दजीसे भी कराया गया और इसके पश्चात् उनका पाठ आरम्भ हुआ। दण्डीजीकी प्रेरणासे सारे नगरसे चन्दा करके स्वामी दयानन्दजीके लिए महाभाष्यकी एक प्रति २१) रुपयेको मँगवाई गई।

आठवाँ सर्ग।

जिस वर्ष स्वामी दयानन्दजीने मथुरामें अध्ययन आरम्भ किया उस वर्ष देशमें घोर दुष्काल पड़ रहा था। उत्तरीय भारत अति पीड़ित था। यद्यपि बहुत सहायता की जाती थी, पर फिर भी सबके पेटकी आग न बुझ सकी। सबकी भूखका विषम विषैला कीड़ा न मरा। दुर्दिनदलित सभी दरिद्रोंकी दुर्भिक्षजनित दारुण वेदना दूर न हुई। सैंकड़ों नरनारी आबालवृद्ध भूखके मारे सिर पीट-पीटकर, पाँव पीट पीटकर, पेट मसूसते हुए मर गये। बड़ा यत्न करनेपर भी उस अकालमें दो लाख मनुष्य कालके गालमें जानेसे न बच सके। इसके प्रभावसे मथुरा नगरी भी बची हुई न थी। स्वामीजीके वहाँ आनेके पश्चात् भी छः मासतक दुर्भिक्ष बना ही रहा। मथुरावासके प्रथम दिनोंमें वे चिरकालतक चनोंपर निर्वाह करके अध्ययनमें लगे रहे। फिर कुछ दिनों तक दुर्गाप्रसाद क्षत्रियने उनका आतिथ्य किया।

अमरलाल नामक एक आदर्श-दानी मथुरामें निवास करते थे। वे बड़े ज्योतिषी थे। महाराजा सिन्धया उनकी ज्योतिषसे इतने प्रसन्न हुए थे कि

उन्होंने अमरलालजीको कुछ एक ग्राम प्रदान कर दिये थे और साथ ही 'ज्योतिषी बाबा' की उपाधिसे भी विभूषित किया था। तबसे वे अमरलालजी ज्योतिषी बाबाके नामसे प्रसिद्ध थे। उनके गृहपर प्रायः एक सौ ब्राह्मग प्रतिदिन भोजन पाया करते थे। वे एक आनुष्ठानिक उदीच्यवंशज ब्राह्मग थे। एक दिन अमरलालजीने श्रीस्वामीजीकी कीर्ति सुनकर उनका मिलाप प्राप्त किया। स्वामीजीकी अद्भुत प्रतिभा, विलक्षग बुद्धि, दिव्य देह और ब्रह्मचर्य-दीप्तिसे चमकते हुए मुखमण्डलको देखकर वह उनकी ओर आकर्षित हो गया। उन्हें अपना वंशीय जानकर उसकी प्रीति और भी बढ़ी। उसने अति सन्मानपूर्वक स्वामीजीसे विनय की कि आप प्रतिदिन हमारे यहाँही भोजन ग्रहग किया कीजिए। स्वामीजीने उनके निमन्त्रणको स्वीकार कर लिया। श्रीअमरलालजी; श्रीस्वामीजीके इतने प्रेमीभक्त बन गये थे कि वे नित्यंप्रति उन्हें अपने साथ गृहपर ले जाते। प्रथम स्वामीजीको भोजन कराते और फिर पीछे आप किया करते। यदि किसी दिन उन्हें किसी अन्य गृह-पर जीमने जाना पड़ता तो प्रथम स्वगृहपर स्वामीजीको जिमाकर उसके पश्चात् जीमने जाते। इस प्रकार, एक भावनावान् भक्तने स्वामीजीको भोजनके विषयमें सर्वथा निश्चिन्त कर दिया था; उनके आतिथ्यके लिए स्वामीजीने इन शब्दोंमें कृतज्ञता प्रकट की थी—"भोजन और ग्रन्थादिके विषयमें अमरलालजीने जो मुक्तहस्तसे सहायता की उसके लिए मैं उनका अत्यन्त बाधित हूँ।"

स्वामीजी रातको भी पठन कार्यमें परायण रहते थे। उनके तेलके व्ययके लिए चार आने मासिक लाला गोवर्धन सराफ दिया करते थे। दूधका प्रबन्ध दो रुपये मासिकके व्ययसे हरदेव पत्थरवालेने किया हुआ था।

निवासके विषयमें तो स्वामीजी प्रथम दिवससे ही निश्चिन्त थे। विश्रामघाटके ऊपरी भागमें स्थित, लक्ष्मीनारायणके मन्दिरके नीचेकी एक छोटीसी कोठरीमें, वे रहा करते थे। वह कोठरी, मन्दिरमें द्वार प्रवेश करते दहिने भागमें है। वह इतनी छोटी है कि स्वामी दयानन्दजी महाराज, उसमें अति कठिनतासे पाँव पसारकर सो सकते होंगे।

उन दिनों स्वामीजी भालपर विभूति रमाया करते थे। गलेमें रुद्राक्षकी एक माला होती थी। सिरपर उपरना बाँधे रखते थे और हाथमें एक लम्बा और मोटा दण्ड हुआ करता था।

वे बहुत सवेरे उठ स्नानादिसे निवृत्त हो संध्योपासनामें निमग्न हो जाते थे। वे समीप आनेवाले ब्राह्मणादिकों और विद्यार्थियोंको भी सन्ध्यादि नित्य कर्म्मोंका उपदेश देते थे। आगन्तुकोंके साथ संस्कृतमें वार्त्तालाप किया करते थे। कण्ठी तिलकादि साम्प्रदायिक चिन्होंका खण्डन किया करते थे। स्वास्थ्य-रक्षाके निमित्त वे भ्रमण करने दूर तक जाते थे। आसनादिकी रीतिसे व्यायाम भी करते थे। इन सब क्रियाओंको करते हुए भी नियत समयपर अध्ययनार्थ गुरुसेवामें उपस्थित हो जानेमें बड़े नियमबद्ध थे।

गुरु-भक्तिमेंभी स्वामी दयानन्दजीने अपनेको एक आदर्श शिष्य सिद्ध किया है। विरजानन्दजी महाराज ब्राह्ममुहूर्तमें पुष्कल पानीसे स्नान किया करते थे। परन्तु, स्वामी दयानन्द इतने उद्यमी और परिश्रमी थे कि बड़ी रात रहते उठ कर, गुरु-स्नान-समयके पूर्वही, यमुना-जलके कई घड़े अपने कन्धेपर उठा उठा कर लाते और पर्याप्त जल इकट्ठा कर देते थे। गुरु महाराजके सायं कालके स्नानके लिए भी वे नियमपूर्वक यमुनासे जल लाते थे। स्वामी विरजा-नन्दजी पीते भी यमुनाका ही पानी थे। इस लिए, स्वामी दयानन्दजी यमु-नाके भीतर प्रवेश करके, अति प्रीतिसे पीने योग्य पानी लाया करते थे। इस बीचमें कई बार आँधियाँ आईं, बड़ी बड़ी वर्षायें हुईं परन्तु स्वामीजीका गुरु सेवा समय कभी अतिक्रान्त नहीं हुआ। अबेरे, सवेरे, अन्धेरा, चाँदना, कीचड़, कर्दम, सब कुछ, समय समयपर होता रहा पर श्रीदयानन्दजी, गुरुसेवामें घटिका यन्त्रकी सूइयोंके सदृश नियमनिष्ठ थे। वे जलके पन्द्रह बीस घड़े प्रतिदिन लाया करते थे। गुरुजीकी आज्ञापालन करनेमें उन्होंने शीत उष्ण और सुखदुःखका कभी नाम तक भी नहीं लिया। वे साधु-स्वभाव और सरल प्रकृति थे। आदेश-पालन, सेवा-शुश्रूषा, और चमत्कारिणी प्रतिभाके कारण, श्रीदयानन्द गुरुदेवके पूर्ण कृपा-पात्र हो गये थे।

शीत, उष्ण, प्रतिकूलता तथा अनुकूल समान,
मानामान जो न गिने सो सेवक गुणवान्।

सेवामें जो लीन हो, करे एक दिन रात,
हिचके न पानी पवनसे, महातम वा उत्पात।
दूर निकट जाने नहीं, क्षुतिपपासा एक मान,
दुःख सुखमें भी रत रहे, सो सेवक पहचान।
जाति-जीवन सेवा है, सभाका यह सिंगार,
नर-जीवनका सार है, कुल कुटुम्ब आधार।
सेवा जहाँ न दुःख वहाँ, जहाँ सेवा न ह्रान,
पथ है उन्नति शिखरका, स्वर्गधाम-सोपान।
आर्यजनोंकी रीति यह, करें सेवा निष्काम,
तन धन तक अर्पण करें, पर चाहें न दाम।
विश्वामित्र मुनिराजकी, सेवा की श्रीराम,
नींद छोड़ी छः रात दिन, तब, हुए पूर्ण काम।
जनक-हृदयमें जगमगा, ब्रह्मज्ञानका दीप,
याज्ञवल्क्य मुनिदेवका, सेवक हुआ समीप।
वाल्मीकि नारदादिने, इससे धोये पाप,
चरण धुलाने द्विजोंके, माधो धाये आप।
जितना हो सेवक बड़ा, उतना वही महान्,
यह बड़ाई तात्त्विकी, शेषाडम्बर जान।

श्री स्वामीजीकी स्मरण-शक्ति वैसे तो बड़ी प्रबल थी। दो एक बारहीके सुननेपर पाठ स्मरण कर लेते थे। उनकी धारणा-शक्तिके कारण दण्डीजी उनपर प्रसन्न भी थे। परन्तु एक दिन अष्टाध्यायीकी कोई प्रयोग सिद्धि कुछ ऐसी क्लिष्ट आई कि स्वामीजीको अपने निवास स्थानपर जाकर विस्मृत हो गई। पूर्व ऐसा कभी न हुआ था। इस लिए स्वयं उन्हें बड़ा खेद हुआ। अन्तमें गुरुजीसे आकर विस्मृत प्रयोग-सिद्धि पूछी। विरजानन्दजीने दयानन्दजीको पाठ कभी बार बार न बताया था। इस लिये कुछ झिड़क कर कहा "जाओ स्मरण करके आओ। यहां बार बार उसी पाठको पढ़ानेके लिए नहीं बैठे हैं।" दो तीन दिन तक श्री दयानन्दजी गुरुजीसे प्रार्थना

करते रहे "महाराज कृपा करके एक बार फिर बता दीजिए; मैं सारा बल लगा चुका, पर क्या करूं वह पाठ स्मरण ही नहीं आता ।" परन्तु विरजानन्दजीने दुबारा प्रयोग-सिद्धि न बताई और अन्तमें खिज कर श्रीदयानन्दजीको कहा "हमने एक बार तुम्हें कह दिया है कि जब तक पहलेका पढ़ा हुआ पाठ न सुना लोगे तुम्हारा पाठ आगे नहीं चलेगा । अब तुम्हें कहा जाता है, यदि वह प्रयोग, तुम्हें स्मरण न हो आवे तो यमुनाजीमें भले ही डूब मरना परन्तु मेरे पास न आना ।" स्वामीजी गुरू महाराजके चरण स्पर्श करके वहाँसे चले आये और विश्रामघाटके समीप, सीताघाटके शिखरपर आरूढ़ होकर विस्मृत प्रयोग-सिद्धिको स्मृति-पथपर लानेके लिये मस्तिष्कपर बल देने लगे । उस समय उन्होंने प्रण कर लिया कि यदि आज सायंकाल तक वह प्रयोग स्मरण न हो आया तो, अवश्यमेव, यहींसे यमुनामें कूद पड़ूंगा और अपने कलेवरको मगर आदि जलचरोंका आहार बना दूंगा। इस भीषण प्रतिज्ञाको धारण करके स्वामीजी विस्मृत प्रयोगके स्मरण करनेमें इतने लीन हुए, इतने एकाग्र हुए कि उन्हें देश और कालका भी ध्यान न रहा। वे अपनी देहके अभ्यासको भी भूल गये । उनपर स्वप्नकीसी अवस्था आ गई। उसमें उन्हें ऐसा प्रतीत होने लगा कि मानों कोई व्यक्ति लम्बी प्रयोगसिद्धि सुना रहा है । जब वे सारी प्रयोग सिद्धि सुन चुके तो सचेत हो गये और उन्हें ऐसा प्रतीत होने लगा मानो अभी सोकर उठे हैं । स्वामीजीको प्रसन्नताका पार न रहा । दौड़े हुए गुरु चरणोंमें आये और अथसे इतितक सारी प्रयोग-सिद्धि सुना दी । श्री दयानन्दजीकी धारणा और धैर्यको देखकर विरजानन्दजी भी प्रेमसे पुलकित-तनु हो गये । उनकी आँखोंमें हर्षके आंसू डबडबा आये । गुरुजीने वत्सलतासे दयानन्दजीको कण्ठ लगा लिया और भूरि भूरि आशीर्वाद दिये । उस दिनसे, स्वामीजीको, जब कभी कोई बात विस्मृत हो जाती तो वे उसी प्रकार समाधिस्थ होकर स्मरण कर लिया करते थे ।

नववाँ सर्ग।

इस समय स्वामीजीकी अवस्था ३५ वर्षकी हो चुकी थी। तप्त ताम्र और कुन्दन सुवर्णकी भाँति उनका मुखमण्डल उद्दीप्त था। अखण्ड ब्रह्मचर्य्यके कारण उनका चेहरा एक प्रकारके तेजोमय चक्रसे घिरा रहता था। उनकी विशाल आकृति और दिव्य मूर्त्तिको देखकर, सभी लोग मुक्तकण्ठसे उनके ब्रह्मचर्य व्रतकी प्रशंसा करने लग जाते थे। स्वामीजी गुरुराजके स्नानादिके लिए जलके कोई बीस घड़े लानेके लिए अनेक बार यमुनापर जाते थे। एक प्रकारसे उनका आसन भी यमुनाघाटपर ही था। ऐसे स्थानोंमें प्रायः नाना प्रकृतिके लोग वास किया करते हैं। किसी किसी समय राह-चलतोंसे भी कोई कोई व्यक्ति छेड़छाड़ और उपहासादि करनेसे नहीं चूकते, परन्तु स्वामीजी थे कि उनसे उपहास्य करनेका साहस कभी किसी अधमसे अधम नर-नारीको भी न हुआ। वे बाजारोंमें चलते, गलियोंमें जाते, और घाटसे बार बार पानी लेते थे। इन स्थानोंमें सैंकड़ों स्त्रियाँ इधर उधर आती जाती थीं, परन्तु ढाई वर्षमें कभी किसीने उन्हें किसी स्त्रीकी ओर आँख उठाकर देखते नहीं देखा। वे सदा नीची, मार्गविलोकिनी दृष्टि रखकर चला करते थे। उनकी इस वृत्तिकी सारी मथुरामें धाक थी। मन्दिरोंमें, घाटोंपर, विश्रान्तोंमें, पाठशालाओंमें, बाजारोंमें, हाटोंपर, गृहोंमें, चौबोंके अखाड़ोंमें, और विजया पानकी मण्डलियोंमें, सर्वत्र श्रीदयानन्दकी सुशीलता और अभंग ब्रह्मचर्य-व्रतका गुण-गान किया जाता था।

एक दिनका वर्णन है कि श्रीस्वामीजी यमुनाके पुलिनपर ध्यानमें मग्न बैठे थे। एक स्त्री स्नान करके आई। उसने देखा कि सामने एक परमहंस पद्मासन लगाये समाधिस्थ है। श्रद्धावती देवीने, भक्तिभावसे अति निकट आकर, स्वामीजीके चरण-कमलोंपर सिर रखकर नमस्कार किया। भीगे हुए शीतल वस्त्रके स्पर्शका अनुभव करके स्वामीजीने ज्योंही नेत्र खोले तो उन्होंने पैरोंपर एक माईका सिर पड़ा देखा। वे चौंक पड़े और माता, माता कहते हुए सहसा उस स्थानसे उठ गये। जहाँतक बन पड़ता श्री स्वामीजी स्त्री- स्पर्श नहीं किया करते थे, परन्तु उस दिन, एक स्त्रीने ध्यानदशामें उनके

पाँवपर सिर रख दिया, इसलिए वे वहाँसे उठ गोवर्द्धनकी ओर जा, निर्जन एकान्त स्थानमें स्थित एक टूटे फूटे मन्दिरमें तीन दिन और तीन रात निराहार ध्यान और चिन्तनमें लीन रहे। चौथे दिन जब पाठके लिए गुरु-सेवामें उपस्थित हुए तो गुरुजीने तीन दिवसकी अनुपस्थितिके लिए उनकी भर्त्सना की और उसका कारण पूछा। स्वामीजीने प्रायश्चित्त की कथा आदिसे अन्त-पर्यन्त गुरुचरणोंमें निवेदन करदी। स्वशिष्यकी व्रत-वार्त्ता सुनकर श्रीविरजानन्दजीको प्रसन्नतासे रोमाञ्च हो आया। अनेक साधुवाद देते हुए उन्होंने उनकी प्रभूत प्रशंसा की। यदि कभी श्री दण्डीजी पठन पाठनमें, कारणवश कुपित हो जाते और आवेशमें स्वामीजीको ताड़नातर्जना भी कर बैठते तो वे गुरुजीके कोपको कृपाके समान ही समझते थे; चिढ़ते नहीं थे। एक दिनका वर्णन है, स्वामी विरजानन्दजीने आवेशमें आकर श्रीदयानन्दजीपर लाठीका एक ऐसा प्रहार किया कि उनकी भुजापर बड़ी कड़ी चोट आई। परन्तु पीड़ाका कोई ध्यान न करके उन्होंने गुरुजीसे प्रार्थना की "महाराज मेरा शरीर कठोर है और आपके हाथ कोमल हैं। मारनेसे आपको क्लेश होता होगा। इसलिए मुझे मारा न कीजिये।" कहते हैं, उस दिनके घावका चिन्ह उनकी भुजापर जीवनभर बना रहा। वे उसे जब देखते थे गुरुजीके उपकारोंका स्मरण करने लग जाते थे।

स्वामी श्रीविरजानन्दजीकी शिष्यमण्डलीमें मणि-मुक्ताकी भाँति आभावान्, नयनसुख नामक एक जड़िया भी था। उसकी धारणा-शक्ति बड़ी प्रबल थी। दण्डीजीकी दयाका वह विशेष भाजन था। वैसे पढ़ा तो कुछ भी न था, परन्तु जिस समय विद्यार्थीगण अध्ययन किया करते वह पास बैठा सुनता रहता था। अपनी उज्वल मेधाके माहात्म्यसे उसने सुनते सुनते अष्टाध्यायी और महाभाष्य कण्ठाग्र कर लिए। उसका संस्कृत उच्चारण विशुद्ध था। संस्कृत भाषामें वार्त्तालाप करनेकी शक्ति भी उसे इसी प्रकार प्राप्त हो गई थी। स्वामी दयानन्दजीसे उसे अति प्रेम था और वह उनका बड़ा आदर-सत्कार करता था।

एक दिन ऐसा हुआ कि संथा देते समय दण्डीजी कुछ क्रुद्ध हो गये। उस समय कठोर शब्द कहते हुए उन्होंने स्वामीजीको एक लाठी भी लगाई। स्वामीजी तो समावस्थामें, पहलेकी भाँति अपने पाठमें परायण रहे, परन्तु

पास बैठे हुए नयनसुखजीसे न रहा गया। उन्होंने हाथ जोड़कर विरजानन्दजीसे निवेदन किया "स्वामीजी महाराज! ये दयानन्दजी कोई हमारे समान गृहस्थ नहीं हैं; जिनका विशेष ध्यान न किया जाय। ये संन्यासी हैं। इनको न तो अवाच्य कहना उचित है और न मारना।" दण्डीजीने नयनसुखजीके वचनको स्वीकार करते हुए कहा—बहुत अच्छा, आगेको हम इन्हें आदर और प्रतिष्ठापूर्वक पढ़ायेंगे।" संथाकी समाप्तिपर जब विद्यार्थीगण गुरु-कुटीसे बाहर निकल आये तो स्वामी दयानन्दजीने नयनसुखपर अप्रसन्नता प्रकाशित की कि तुमने मेरे लिए गुरुजीको क्यों कुछ कहा? उनका हमारे साथ कोई द्वेष तो है नहीं, फिर यदि मारते हैं तो हित-बुद्धिसे प्रेरित होकर ही मारते हैं। जैसे कुम्हार मिट्टीको पीट-पीटकर उसका एक सुडौल सुन्दर घड़ा बनाता है, ठीक उसी प्रकार श्री गुरुदेव हमारी कल्याण-कामनाके वशीभूत होकर ही हमें ताड़ना करते हैं।

एक समय, श्रीदण्डी विरजानन्दजीका शास्त्रार्थ, रंगाचार्यसे वृन्दावनमें हुआ। उस समय स्वामी दयानन्दजी भी साथ गये। वहाँ रंगाचार्यके किसी चेलेने संस्कृतमें कुछ कथन आरम्भ किया; परन्तु वह बोलता अति अशुद्ध था। उसका उच्चारण भी बड़ा भद्दा था। इसपर स्वामी दयानन्दजीने आक्षेप करते हुए उसे रोका, परन्तु दण्डीजीने उन्हें ऐसा करनेसे रोक दिया। दण्डीजी महाराज वैसे तो एक निःस्पृह संन्यासी थे, परन्तु अपनी प्रकृतिसे राजेश थे। उनकी बातचीतमें भी राजाओंके सदृश परिभाषायें पाई जाती थीं। ठीक तो है—

> चाह चिन्ताको दूर कर हुआ जो विगतक्लेश,
> इन्द्रियगणको दमन कर वही राजराजेश।
> कलह कल्पना मेटके निरपेक्षित परिव्राट्,
> उसके मानस-महलमें सोहे राजसी ठाठ।

एक समयका वृत्त है कि दण्डीजीका, कोई दूर समीपका सम्बन्धी मथुरामें आया। वहाँ आकर उसे दण्डीजीके मिलापकी भी बड़ी उत्कण्ठा उत्पन्न हुई, परन्तु दण्डीजीने उन दिनों आज्ञा दे रक्खी थी कि विद्यार्थियोंके बिना दूसरा

कोई भी मेरे स्थानपर न आये। इससे उनका सम्बन्धी अतिशय दुःखित हुआ। एक दिन कहीं मार्गमें स्वामी दयानन्दजीको मिला और बड़ी विनयसे बोला—"महाराज किसी प्रकार मुझे दण्डीजीका दर्शन करा दीजिए; मैं बड़ी दूरसे आया हूँ। यदि यहाँ आकर भी उनके दर्शनसे वञ्चित रहा तो फिर जन्मभरमें, दूसरी बार अवकाश मिलना दुर्लभ है।" स्वामीजीने आगन्तुक को बहुत समझाया कि वे पढ़नेवालोंके बिना अपने स्थानपर किसी दूसरेको नहीं आने देते, और यदि मैं अपने साथ तुम्हें ले चलूं तो वे मुझपर अत्यन्त अप्रसन्न हो जायँगे। परन्तु आगन्तुकने अति आग्रह करते हुए स्वामीजीके पैर पकड़कर कहा; मेरे लिए गुरुजीकी अप्रसन्नता सह लीजिएगा; परन्तु मुझे दर्शन अवश्य करा दीजिए। मैं चुपचाप दूरसे दर्शन करके चला जाऊंगा।" स्वभावसे दयालु श्रीदयानन्दजी सदयहृदय होनेके कारण उसे अपने साथ गुरुअट्टालिकापर ले आये। थोड़ी देरतक वह मौन साध खड़ा दण्डीजीके दुर्लभ दर्शनोंका लाहा लूटता रहा, और अन्तमें स्वामीजीका संकेत पाकर शनैःशनैः पीछे चला गया। स्वामीजी भी उसके साथ, विश्रामघाटपर जानेके लिए वहाँसे उतर आये। दोनों सीढ़ियोंसे उतरही रहे थे कि स्वामीजीको अपना एक सहाध्यायी मिला। उन्होंने उसे संकेतसे समझा दिया, परन्तु उसने जाकर स्वामी विरजानन्दजीको कहही दिया "महाराज आज दयानन्दके साथ आपके पास जो व्यक्ति आया था वह कौन था ? पहरावेसे तो पञ्जाबी प्रतीत होता था।" यह जानकर कि मेरे पास कोई चुपचाप आया और फिरकर लौट गया, श्री विरजानन्दजी क्रोधमें आ गये। स्वामी दयानन्दके आनेपर उन्हें बहुत झिड़कियाँ दीं और कहा "तूने मुझे नेत्रहीन जान कर ऐसा किया है। यहाँसे चले जाओ। तुम्हारे लिए डेवढ़ी बन्द कर दी गई है।" स्वामीजी उसी समय गुरु-चरण ग्रहण कर क्षमा-याचना करने लगे, परन्तु सुनवाई न हुई। अन्तमें कई दिनोंके अनन्तर, नयनसुखजीने विनय करके श्री दयानन्दजीका, विरजानन्द दण्डीके दरबारमें आना खुलवा दिया। जैसे पवन-कम्पित प्रफुल्ल पद्मपरसे भ्रमर उड़कर, फिर परागके अनुरागसे वहीं आ बैठता है, ऐसे ही गुरु-राग-गरिमासे मोहित श्री दयानन्दजी, तिरस्कार होनेपर भी गुरु-चरणोंके समीप बार बार आ जाते थे।

स्वामीजीका दरबारमें आना एक बार फिर बन्द हुआ । उसका वर्णन यों है कि—एक दिन श्रीदयानन्दजीने गुरुजीकी बैठकके स्थानमें झाड़ू देकर कूड़ा-कर्कट एक कोनेमें इकट्ठा कर दिया और बुहारी रखकर कूड़ाकर्कट फेंकनेके लिए किसी वस्तुका अन्वेषण करने लगे । इतनेमें श्रीदण्डीजी टहलते हुए उसी ओर आ गये और उनका पाँव उस कूड़ेमें पड़ गया, इससे वे क्रोधावेशमें आ गये । स्वामी दयानन्दजीको आलसी, अनुद्यमी आदि अनेक वचन कहकर उनकी डेवढ़ी बंद कर दी । उस समय स्वामीजीका अध्ययन समाप्त होनेमें भी थोड़ा समय शेष रह गया था । स्वामीजी नन्दन चौबे और नयनसुखके पास गये । उन्हें कहा कि, "गुरुजी वास्तवमें तो कुपित नहीं हैं, फिर भी कुछ आवेशमें आकर उन्होंने मेरा आना जाना बंद कर दिया है। अब मेरे विद्यासमाप्तिके दिन भी समीप आ रहे हैं। इस लिए मैं नहीं चाहता कि मेरे विषयमें गुरूजीकी उदासीनता बनी रहे। आप दोनों साथ चलकर मेरे अपराध क्षमा करा दीजिए" । दोनोंको साथ लेकर स्वामीजी महाराज आये और दोनों हाथोंसे गुरुचरणोंका ग्रहण कर अपराध-क्षमा कराये । श्रीविरजानन्दजी यद्यपि शिष्योंपर कभी कभी कोपका प्रकाश किया करते थे, परन्तु उनका कोप दूधके उबाल और पानीकी लकीरकी भाँति क्षणिक हुआ करता था । वे शान्त भी तुरन्त हो जाते थे । स्वामी दयानन्दजीपर भी तत्काल ही प्रसन्न हो गये ।

दसवाँ सर्ग ।

महात्मा विरजानन्दजी अपने शिष्योंसे विपुल प्रेमबद्ध भी थे। एक दिन सायंसमय उन्हें पता लगा कि उनका एक शिष्य आज इस लिए अध्ययनार्थ नहीं आया कि वह किसी पीड़ाविशेषसे अत्यन्त पीड़ित है । उसी समय एक दूसरे शिष्यको संग लेकर उस शिष्यके गृहपर पहुँचे और आश्वासन देते हुए बड़ी देरतक उसके पास बैठे रहे। स्वामी दयानन्दजीपर तो उनकी अपार प्रीति थी। उन्होंने अपने सारे शिष्योंके समक्ष कई बार यह कहा कि मेरे शिष्योंमें योग्य, तो एक दयानन्दही है । यही एक मेरे आशयको

पूर्ण रीतिसे समझा है। मुझे इस पर भरोसा है कि यह अपनी विद्याको सफल करेगा।

श्रीदयानन्दजीकी तर्क-शैलीपर भी श्री विरजानन्दजी मोहित थे। विद्याविनोदमें किसी किसी दिन गुरु-शिष्यमें परस्पर युक्ति प्रयुक्तिकी बाण-वर्षा होने लग जाती तो द्रोण-अर्जुन सङ्ग्रामका समय बन्ध जाता था। विरजानन्दजी अपने शिष्यके तर्क-चातुर्यकी प्रशंसा करने लग जाते थे। कभी कभी तो विरजानन्दजी कह देते थे, "दयानन्द! तुमसे कोई क्या वाद करे? तुम तो कालजिह्व हो! जैसे काल सब पर बली है वैसे तुम्हारी तर्क शक्ति भी प्रबल है। सब कुमतोंका खण्डन करनेमें समर्थ है।"

श्री विरजानन्दजीके निकट दयानन्दजीके बिना अन्य भी अनेक शिष्य अध्ययन करते थे; परन्तु उनकी तर्क-शक्ति प्रबल न थी। गुरुजी जैसा पाठ पढ़ाते, शास्त्रकी जैसी व्याख्या करते वे सब सुनते चले जाते थे। बीचमें कोई प्रश्नोत्तर करनेका साहस न करता था। परन्तु जब श्रीदयानन्दजी अध्ययन करने आते थे तो मध्यमें बारबार प्रश्नोत्तर छिड़ जाते थे, तर्ककी झड़ी लग जाती थी, युक्तियोंप्रयुक्तियोंका तार बन्ध जाता था। गुरुजी प्रायः कह दिया करते थे "दयानन्द! आजतक मैंने बहुतेर विद्यार्थियोंको पढ़ाया परन्तु जो स्वाद, जो आनन्द तुम्हें पढ़ानेमें आता है वह अन्य किसीको भी पढ़ानेमें आजतक नहीं आया"

शास्त्रगत वार्त्ताओंसे पृथक, पुस्तक-लिखित भेदोंसे भिन्न, ऐसे कई रहस्य और मर्म होते हैं, जो तत्त्वदर्शी गुरुजनोंके हृदय-कोशमें सुरक्षित रक्खे रहते हैं। किसी अत्यन्त श्रद्धावान्, उत्तमाधिकारी, अन्तेवासीको अकेले और एकान्तमें बताये जाते हैं। विरजानन्दजी, अपने पवित्र प्रेमके पुनीत पात्र श्री दयानन्दजीको पाठ-कालसे अतिरिक्त समय देकर ऐसे सार रहस्य समझाया करते थे। एकान्त समयमें गुरुशिष्यमें चिरकालतक वार्त्तालाप होता रहता था। प्रायः गूढ़ तत्त्वोंकी ही चर्चा चला करती थी। इस प्रकार श्रीविरजानन्द महाराजने उन अमूल्य रत्नोंको, जो उन्होंने युवा-कालसे लेकर उस समयतक अन्तःकरणमें संचित किये थे, एक एक करके श्रीस्वामीजीको सौंप दिया। और इस दानसे वे अति सन्तुष्ट हुए।

स्वामीजी महाराजने ढाई वर्षतक महात्मा विरजानन्दजीके पदपद्मोंमें बैठकर अष्टाध्यायी, महाभाष्य, वेदान्तसूत्र तथा अन्य अनेक पुस्तकोंका अध्ययन किया। इतने कालका गुरु-सत्संग स्वामी महाराजके लिए सुवर्ण और सुगंधिका योग हो गया। अपने आपको विद्यासे भरपूर कर लेनेके पश्चात् उनकी इच्छा हुई कि गुरु-महाराजका आदेश लेकर देशाटन करें। श्री विरजानन्दजी एक तो अपने विद्यार्थियोंसे द्रव्य लेनाही उचित न समझते थे, और दूसरे श्री स्वामी दयानन्दजीके पास द्रव्य था भी नहीं। स्वामीजीने विदा होनेके समय, पुरातन आर्य मर्यादाके अनुसार गुरुजीके समीप रीते हाथ जाना उचित न समझा। जाते हुए कुछ लौंग ले गये। लौंग निकट रखकर गुरुमहाराजके चरणोंको स्पर्श करके नमस्कार किया और कहा "महाराज! आपने मुझपर असीम कृपा करके मुझे विद्यादान दिया है। उसके लिए मेरा रोम रोम आपका धन्यवाद करता है। प्रभो, अब आपका आज्ञाकारी आपसे देशाटनकी आज्ञा ग्रहण करना चाहता है। ऐसी कोई वस्तु नहीं जो आपकी भेंट कर सकूं; परन्तु सेवकके पास ये कुछ लौंग हैं, जो सम्मानपूर्वक श्री-सेवामें समर्पित हैं।"

सच्चे गुरुओंके समीप सच्चे शिष्य किसी अवस्थामें, सन्तानसे भी अधिक स्नेहके पात्र हुआ करते हैं। महात्मा विरजानन्दजीने तो सन्तान-स्नेहका आस्वादन ही न किया था; उनके लिए तो शिष्यसे परे इस संसारमें स्नेह पात्र और कोई दूसरा सम्बन्ध ही न था। शिष्योंमें भी वह शिष्य, जिसे सम्पूर्ण शास्त्रीय भेद बताये, जिसके आगे हृदय खोलकर रख दिया, जिससे कुछ भी छिपा न रक्खा—जो स्वयं उज्ज्वल ज्वलन्त बुद्धिका धनी था, आज पृथक् होता है, यह जानकर उनका जी भर आया। पाँवमें, नम्रीभूत शिष्यके सिरको हाथसे स्पर्श करके कहा—वत्स! मैं आपके लिए मंगल-कामना करता हूँ। ईश्वर आपकी विद्याको सफलता प्रदान करें। परन्तु गुरु-दक्षिणामें इन लौंगोंसे भिन्न वस्तु माँगता हूँ। वह वस्तु तुम्हारे पास भी है"

स्वामीजीने निवेदन किया—"गुरुदेव! यह सेवक अपने मनसहित तनको आपके चरणोंमें अर्पण किये हुए है। श्रीमुखसे जो भी आदेश होगा, उसे शिरोधार्य्य करूंगा—आजीवन निभाऊँगा। गुरुमहाराज! आज्ञा कीजिए।" अपने प्यारे शिष्यके प्रोत्साहनपूर्ण वाक्य सुनकर विरजानन्दजीका

रोमराजी हर्षित हो गया—उनके हृदयमें शिष्य-स्नेहका स्रोत प्रबलतासे प्रवाहित होने लगा । उन्होंने फिर आशीर्वादपूर्वक स्वामीजीको कहा—"वत्स भारत देशमें दीन-हीन जन अनेकविध दुःख पा रहे हैं; जाओ उनका उद्धार करो। मत-मतान्तरोंके कारण जो कु-रीतियाँ प्रचलित हो गई हैं उन्हें निवारण करो । आर्य-जनताकी बिगड़ी हुई दशाको सुधारो । आर्य-सन्तानका उपकार करो । ऋषि-शैली प्रचलित करके वैदिक ग्रन्थोंके पठन-पाठनमें लोगोंको प्रवृत्तिशील बनाओ । गंगायमुनाके निरन्तर गतिशील प्रवाहकी भाँति लोक-हित-कामनासे क्रियात्मक जीवन बिताओ । प्रिय पुत्र ! गुरु-दक्षिणामें यही वस्तु मुझे दान करो । अन्य किसी सांसारिक पदार्थकी मुझे चाह नहीं है।"

स्वामी दयानन्दजीने गुरुदेवके एक एक वचनको स्वीकार किया और गद्‌गद् कण्ठसे कहा कि, "श्रीमहाराज देखेंगे कि उनका प्रिय शिष्य इन आज्ञाओंका किस प्रकार प्राणपणसे पालन करता है।" श्रीविरजानन्दजीने पुलकित गात्र होकर अन्तमें फिर नतशिर शिष्यके सिरपर हाथ रक्खा, और भूयोभूय आशीर्वाद देकर कहा, "बहुत अच्छा, दयानन्दजी जाइए । ईश्वर आपको सुख-सफलतासम्पन्न करे ! आप सफल-मनोरथ, सिद्ध-काम होवें।"

स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी गुरु-चरण-कमलोंका गाढ़ आलिंगन करके वहाँसे विदा हुए और आगरेको जानेकी तैयारी करने लगे। पृथक् होते समय शिष्यको विरजानन्दजीने जो अन्तिम बात कही वह यह थी—"दयानन्द ! स्मरण रखना, मनुष्यकृत ग्रन्थोंमें परमात्मा और ऋषि-मुनियोंकी निन्दा भरी पड़ी है, परन्तु आर्ष ग्रन्थोंमें इस दोषका लेश भी नहीं है । आर्ष और अनार्ष ग्रन्थोंकी यही बड़ी परख है । इस कसौटीको हाथसे कभी न छोड़ना।

गङ्गा काण्ड ।
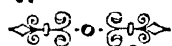
पहला सर्ग ।

पूर्व समयमें, लोकहितार्थ मृत्युको भी वशमें करनेवाले महायोगी, महात्मा अगस्तके आश्रमसे जैसे श्रीरामजी दिव्य-अस्त्र-सम्पन्न होकर जनस्थानको अग्रसर हुए थे, वैसेही महात्मा विरजानन्दजीकी कुटीसे, महाराज दयानन्द विद्याके अलौकिक अस्त्रोंसे सुसज्जित होकर कार्यक्षेत्राभिमुख हुए। श्रीकृष्णसे प्रोत्साहनको पाकर जैसे श्रीअर्जुनकी नाड़ी-नाड़ी और नसनसमें वीरताका रक्त खौलने लग गया था, ऐसे ही विरजानन्दजीके वचन-विद्युत्ने श्रीदयानन्दजीकी कायामें क्रियात्मक जीवनकी कल्पनातीत गति उत्पन्न कर दी। वे एक सुशिक्षित, निपुण सेनापतिकी भाँति अति साहससे उस क्षेत्रमें उतर आये, जहाँ, मत-मतान्तरोंका घोर संग्राम हो रहा था, ईर्ष्याद्वेषके धूम्रसे लोगोंके साँस घुटे जाते थे—आँखें बंद हुई जाती थीं; पैशुन, निन्दा और लांछनाकी जहाँ धूल उड़ रही थी; और जहाँ बड़े बड़े वीरोंने भी स्वार्थपाठकाही सबसे अधिक माहात्म्य मान रक्खा था।

स्वामीमहाराजके पास परहित-साधना और परमार्थोपदेशरूदी दो वरुणास्त्र थे। इन्हींको लेकर, वे रण-रङ्गमें अपनी वीरताका परिचय देकर साम्प्रदायिक सैनिकोंके उत्पन्न किये हुए धुँवे-धूलको उपशमन करनेमें प्रवृत्त हुए।

महाराज वैशाख सम्वत् १९२० के अन्तमें आगरा नगरमें पधारे। यह नगर उस समय बड़ी रौनकपर था। हाईकोर्ट वहाँ होनेसे इस नगरकी बड़ी शोभा थी। स्वामीजीने वहाँ यमुनाके किनारे भैरवमन्दिरके निकट लाला गल्लामल रूपचन्द अग्रवालके बगीचेमें अपना आसन किया। उसी उद्यानमें एक और साधु निवास करता था। वह स्वामीजीके दर्शनोंसे ही उनका श्रद्धालु भक्त बन गया और उसने पोस्टमास्टर जनरलके कार्यालयमें रायबहादुर पंडित सुन्दरलालजीको और नगरमें अनेक सद्गृहस्थोंको जाकर समाचार दिया कि

अमुक उद्यानमें एक बड़े विद्वान् परमहंस पधारे हैं। उनका उपदेश तो पृथक् रहा, उनके दर्शनोंसे ही शान्ति प्राप्त हो जाती है।

अब स्वामीजीके पास बहुतसे नगरवासी आने लगे। पं० सुन्दरलालजीने दर्शन करके अति तृप्ति प्राप्त की। उन्हीं दिनोंमें एक कैलाश पर्वत नामक संन्यासी उसी उद्यानमें आकर ठहरे। स्वामीजीसे भी उनका मेलजोल हो गया। एक दिन कैलास स्वामीजीसे किसी भक्तने पूछा "महाराज! गीताके 'सर्वधर्मान् परित्यज्य' इस पदका अर्थ समझाइए।" कैलास-स्वामीजीने जो अर्थ किया उससे लोगोंको सन्तोष न हुआ। उनमेंसे एक जनने वही निवेदन स्वामी दयानन्दजीसे जा किया। स्वामीजीने कहा कि इस पदमें जो समास है उसमें अकारका लोप हुआ है, इस लिए "सर्व अधर्मोंको छोड़कर" अर्थ करना चाहिए।

यह सुनकर लोग परम सन्तुष्ट हुए और धन्य धन्य करने लगे। इस यशोगानमें कैलासजीने भी भाग लिया। उन्होंने लोगोंसे यह भी कहा "वास्तवमें दयानन्द बहुत बड़े विद्वान् हैं। यदि आपमेंसे किसीको कुछ पढ़ना हो तो उन्हींसे पढ़ना चाहिए।" इस वृत्तान्तने नगरमें बड़ा विस्तार प्राप्त किया, जिससे श्रीस्वामीजीकी धवल-कीर्त्ति, पूर्णमासिके चाँदकी चाँदनी की भाँति सारे नगरमें चमकने लगी, और धर्म-जिज्ञासुओंकी मण्डलियाँ उनके पास आने लगीं।

कैलासस्वामी तो दस दिनपर्यन्त उद्यानमें रहकर भरतपुर चले गये, परन्तु स्वामीजी वहीं रहे। उन्होंने भगवद्गीताकी कथा करना आरम्भ कर दिया। उनकी, गीताके अर्थोंको वर्णन करनेकी शैली मनोरंजक और अपूर्व थी। उनके श्लोक-उच्चारणपर, अर्थ-वर्णनपर, व्याख्याआलापनपर, रससम्पादन पर, और वचन-माधुर्यपर श्रोताजन मोहित हो जाते थे। प्रायः घरोंको लौटते समय यह कहते जाते थे "गीताका ऐसा रसीला और सारगर्भित व्याख्यान हमने पहले कभी नहीं सुना।" यह कथा एक माससे अधिक कालतक, प्रतिदिन रातको दो घण्टेपर्यन्त होती रही। स्वामीजीने लोगोंके कहनेपर कुछ दिन पँचदशीकी भी व्याख्या की। परन्तु पढ़ते हुए एक दिन उसमें यह पद आया कि कदाचित् ईश्वरको भी भ्रम हो जाता है। इसपर

उन्होंने उसे भ्रममूलक समझकर पटक दिया । स्वामीजीके सत्संगमें नगरके साधारण और गण्य-मान्य सभी लोग आते थे । पण्डितवर भी प्रायः उपस्थित हुआ करते थे ।

एक बार आदित्यवारके दिन पं० सुन्दरलालजीने स्वामीजीसे निवेदन किया "संस्कृत भाषा तो अब मृत मानी जाती है, कहीं व्यवहारमें काम नहीं आती तो आपने इसपर इतना परिश्रम क्यों किया?" स्वामीजीने उत्तर दिया "इससे अपना परलोक सुधारेंगे और यदि कोई अन्य पुरुषभी स्व-कल्याण करना चाहे तो साहाय्य देनेके लिए उद्यत हैं ।" इस उत्तरसे प्रेरित होकर पं० सुन्दरलालजी और बालमुकुन्दजीने अष्टाध्यायी अध्ययन करना आरम्भ कर दिया । पं० सुन्दरलालके मस्तकमें कोई दोष था, जिससे सुगन्धि दुर्गन्धिका ज्ञान उन्हें नहीं होता था । स्वामीजीने नेती, धोती, और न्योली कर्म विधिपूर्वक कराकर उन्हें स्वस्थ कर दिया और उनका वह दोष सर्वथा दूर हो गया । अन्यभी अनेक जन स्वामीजीसे योग-क्रियायें सीखने लग गये थे । कुछ एकने अच्छी उन्नति भी कर ली थी, परन्तु जब स्वामीजी वहाँसे चलने लगे तो नेती आदि कर्म उनसे छुड़वा दिये; क्योंकि गृहस्थ होनेके कारण वे निभा नहीं सकते थे ।

आगरेमें रहते हुए स्वामीजीकी देहपर फुंसियाँ निकल आईं । एक दिन कुछ मनुष्योंके साथ वे यमुनाके राजघाटपर गये और वहाँ उन्होंने वस्ती-कर्मकी विधिसे तीन चार बार मूलाधारसे अँतड़ियोंमें जल भरकर न्योली—कर्म-विधिसे नाभि-चक्रको घुमाकर जलको बाहर निकाल दिया। फिर स्नान करके स्वस्थान पर आ गये । उस दिन उन्होंने केवल दालभातही ग्रहण किया । स्वामीजी कहते थे कि यह क्रिया उन्होंने नर्मदाके समीप विन्ध्याचलपर रहनेवाले एक कन-फटे नाथके पास कई दिन रहकर सीखी थी। इस क्रियासे उनकी फुंसियाँ शान्त हो गईं । उन्होंने वहाँ यह भी कहा था कि हम जलमें बहुत देरतक बैठकर तप करते रहे हैं, इस लिए सिरपर शीतका अधिक प्रभाव हो गया है । उसके निवारणार्थ कभी कभी अभ्रक भस्मका सेवन कर लिया करते हैं। पं० सुन्दरलालजीने स्वामीजीसे अभ्रक-भस्म-विधान भी सीखा था ।

आगरेमें श्रीस्वामीजीने सन्ध्याकी एक पुस्तकका सम्पादन किया था। उसके अन्तमें लक्ष्मीसूक्त रक्खा गया था। महाशय रूपलालजीने डेढ़ सहस्र रुपये लगाकर उस पुस्तककी तीस सहस्र प्रतियाँ छपवाई थीं। उसमें विनियोग न होनेसे अनेक पंडितोंने पहले आक्षेप किया, परन्तु अन्तमें सबने उसे क्रय कर लिया। स्वामीजी तीनों वर्णोंके लिए सन्ध्या करना शास्त्रसम्मत बताते थे।

उस समय स्वामीजी प्रतिमा-पूजनका खण्डब किया करते थे। इसपर प्रसिद्ध पण्डित चेतूलाल और कालीदासजीके साथ बातचीत भी हुई। वे दोनों स्वामीजीके साथ सहमत तो हो गये, परन्तु कहने लगे कि गृहस्थ होनेसे हम स्वतंत्र नहीं,इस लिए इसके विरुद्ध नहीं कह सकते। कहते हैं कि स्वामीजीके उपदेशसे पं० सुन्दरलालजीने भी शिवपूजन छोड़ दिया था। स्वामीजी भागवतका बड़ा कड़ा खण्डन किया करते और महाभारतको विचारा करते थे।

एक मथुरावासी पण्डित, घासीराम आगरेमें आया। वह स्वामीजीके सत्सं-गसे इतना प्रभावित हुआ कि मूर्त्ति-पूजासे उसे अति घृणा हो गई।

एक अपढ़ ब्राह्मण वहाँ आया। वह योगके चौंसठ आसन लगाना जानता था। स्वामीजीने उसे वस्त्रादि धोनेके कार्यपर पास रख लिया। वह था जित-न्द्रिय और सदाचारी। कभी कभी विनोदवश उससे आसन लगवाकर देखा करते थे। एक ब्रह्मचारी भोजन बनानेवाला उनके साथ था। लिहाफके बिना दूसरा कोई सिला हुआ वस्त्र नहीं पहरते थे। महाभाष्य आदि पुस्तकें उनके पास थीं। उन्हीं दिनों भागवतखण्डनपर एक 'पाखण्ड-खण्डन' नामक पुस्तक उन्होंने संस्कृतमें लिखी थी। वेदको विचारनेका,आपका बहुत विचार था। कालीदासजी वेदके पत्रे आपके पास लाये, पर उनसे काम न चला। कहा जाता है कि पं० सुन्दरलालजीने जयपुरसे वेद मँगवाकर स्वामीजीको दिया था। यदि किसी विषयमें सन्देह हो जाता तो स्वामीजी पत्रव्यवहारद्वारा अथवा स्वयं जाकर गुरुजीसे निवारण करा लेते थे।

स्वामीजी उन दिनों दोनों समय नियमसे योगारूढ़ हुआ करते थे। किसी किसी दिन पहरों अचल भावसे ध्यानावस्थित रहते थे। आगरेमें लोगोंने उनको अठारह घण्टों तक भी समाधिस्थ देखा था।

आगरेसे वेदोंके अन्वेषणमें चलकर श्रीस्वामीजी धौलपुर पधारे । वहाँ पन्द्रह दिनतक ठहरकर फिर आबू पर्वतपर चले गये।

माघ वदी १२ सम्वत् १९२१ को स्वामीजी महाराज ग्वालियरमें आये। उस समय उनके साथ चार विद्यार्थी थे । वहाँ उन्होंने रामकुई बापूआपाड़ जरनैलके गङ्गा-मन्दिरमें डेरा किया । उन दिनों महाराजाजीने राजधानीमें भागवतका सप्ताह बड़ी धूमधामसे बिठलाया था । दूर दूरके पण्डित लोग बुलाये गये थे । श्रीमहाराजने अपने कर्मचारियोंद्वारा भागवत-सप्ताहका माहात्म्य श्रीस्वामीजीसे भी पुछवाया । उत्तरमें श्री स्वामीजी महाराजने कहा "ऐसे कार्य्योंके फल कष्ट-क्लेशसे भिन्न कुछ नहीं हुआ करते । विश्वास न हो तो करके देख लो ।" यह सुनकर महाराजा हंसकर बोले, "स्वामीजी संन्यासी हैं, इसलिए चाहे जो कह सकते हैं; परन्तु हम गृहस्थ हैं । हमें तो सब कुछ करनाही पड़ता है । अब तो वैसे भी सप्ताहकी सामग्रीका उद्योग पूर्ण कर लिया गया है ।" अन्तमें स्वामीजीको महाराजाकी ओरसे कथामें सम्मिलित होनेके निमित्त निमन्त्रण आया । उसके उत्तरमें स्वामीजीने कहला भेजा "गायत्रीका पुरश्चरण होना चाहिए। भागवतके सप्ताहमें हम सम्मिलित नहीं होंगे।" इस विषयमें भी राजाने यही कहा कि भागवतसप्ताहका तो अब पूर्ण रीतिसे उद्योग हो चुका है । ऐसे समयमें गायत्रीपुरश्चरण कैसे किया जा सकता है ।

सम्पूर्ण राज्यमें प्रसन्नताका सागर उमड़ा पड़ा था । सारा नगर स्वच्छ, सुसिक्त और सुसज्जित था । काशीके, कलकत्तेके, दक्षिणके, तथा अन्यान्य स्थानोंके अनेक शास्त्री-शिरोमणि निमन्त्रित होकर आये थे। आसपासके राज्योंके सुप्रतिष्ठित सज्जन और राजा लोग तथा राजबंधुवर्ग आकर स्ववेष-भूषासे नगरकी शोभा बढ़ा रहे थे । समग्र राज्यकी विभूति वहाँ एकत्रित हो रही थी। उत्तुङ्ग राज-प्रासादसे लेकर एक घासियारेकी पर्ण-कुटीतक, सब कहीं एक उत्सव मनाया जा रहा था। घरबाहर, हाट-बाट, जहाँ देखो भागवत-कथाकी चर्चा चल रही थी । उसी समय श्री स्वामीजी महाराजने रामकुईपर भागवत-खण्डनपर व्याख्यान देना आरम्भ कर दिया । उन निर्भय परमहंसजीके व्याख्यानोंमें भी भारी भीड़ होने लगी । स्वामीजीकी अभयताने नगरनिवा-

सियोंको भी निडर बना दिया। वे उत्साहसे भागवतखण्डन सुनते और स्वामीकथनकी सत्यताको स्वीकार करते थे। स्वामीजी यह भी कहते थे कि लश्करमें बड़ा भारी विघ्न होनेवाला है। महा उपद्रव उपस्थित हुआ है।

सप्ताह-समाप्तिपर सारी राजधानीमें प्रसन्नताके बाजे बजे; परन्तु तुरन्तही जब लोगोंने सुना कि 'महारानीका पंचमासिक गर्भ गिर गया है' तो सारी प्रसन्नता एकाएक शोक-सागरमें डूब गई! उसी मास विशूचिका महारोग भीषणरूपसे नगरमें फैला। छोटे राजकुमार, जिनकी दीर्घायुकी कामनासे कथा बिठलाई गई थी और जिस कुमारको सप्ताह समाप्तिपर पण्डितोंने आशीर्वाद दिया था, उसका देहान्त होगया!! इससे नगरी-सहित सारे राज्यमें हाहाकार मच गया।

स्वामीजी नित्यप्रति व्याख्यानमें पण्डितोंको शास्त्रार्थके लिए ललकारते रहे; विज्ञापनोंद्वाराभी निमन्त्रित करते रहे। परन्तु इतने विख्यात विद्वानोंमेंसे एकने भी उनके सम्मुख आनेका साहस न किया। विषूचिकाके कारण रामकुईपर बहुत रोना पीटना होने लगा, इस लिए स्वामीजी वहांसे डेरा उठाकर बाबाजीके उद्यानमें चले गये।

दूसरा सर्ग।

ग्वालियरसे चलकर श्रीस्वामीजी अन्तिम मईके लगभग करौलीमें पधारे। वहां श्रीराजाजीके साथ धर्म्म-विषयपर वार्त्तालाप होता रहा। पण्डितोंसे भी कुछ थोड़ीबहुत शास्त्र-चर्चा चलती रही। उस स्थानमें स्वामीजी वेदाभ्यासमें विशेष समय लगाया करते थे। करौलीमें स्वामीजीने कई मासतक निवास किया।

करौलीसे प्रस्थान कर आश्विन १९२२ में आप जयपुर आये। वहां रामकुमार और नन्दराम मोदीके उद्यानमें डेरा किया। उस समय उनके साथ सच्चिदानन्द, चेतराम और एक ब्रह्मचारी, ये तीन विद्यार्थी थे। सच्चिदानन्दने स्वामीजीसे गायत्रीका उपदेश लिया था, और प्रतिदिन सायंकाल सूर्याभिमुख खड़े होकर जप किया करता था, बादमें एक गोपालानन्द नामक परमहंस निवास

करता था । उसने जीव-ब्रह्मविषयक कुछ प्रश्न स्वामीजीकी सेवामें भेजे । स्वामीजीने उनका उत्तर ऐसा उत्तम और पांडित्यपूर्ण दिया कि वह उसे पढ़कर स्वामीजीकी विद्वत्तापर लट्टू हो गया । यहाँतक कि अपना स्थान छोड़कर स्वामीजीके समीपही आकर ठहर गया और रातदिन अपने सन्देह निवृत्त करता रहा ।

श्रवणनाथके शिष्य, लक्ष्मणनाथजी वहाँ निवास करते थे । उनको महाराजा रामसिंहजी जोधपुरसे लाये थे । उन्होंने स्वामीजीके साथ ब्रजनन्दनजीके मन्दिरमें संभाषण किया । उन्हें निश्चय हो गया कि ये सकलशास्त्र-ज्ञाता और योगीजन हैं । स्वामीजीसे उन्होंने निवेदन किया "कृपा करके श्रीमन्त इसी मन्दिरमें विराजें । हमारा साम्प्रदायिक लोगोंके साथ एक शास्त्रार्थ होनेवाला है । दया कर उसमें सहायता दीजियेगा ।" स्वामीजीने कहा "यदि शास्त्रार्थमें मुझे बुलाना चाहते हो तो स्मरण रखिए, मैं वहाँ जो कुछ कहूँगा अपने निश्चयके अनुकूल ही कहूँगा ।" नाथजीने यह बात स्वीकार करली। जयपुरमें स्वामीजीने व्याकरण-सम्बन्धी पन्द्रह प्रश्न लिखकर पण्डितोंके पास भेजे । पण्डित-प्रवरोंने उत्तरमें गालीप्रदान करना ही पर्याप्त समझा ! स्वामीजीने उनके लेखमें आठ प्रकारके दोष निकालकर हरिश्चन्द्र आदि भद्र पुरुषोंके पास पत्र भेजा । उन्होंने स्वामीजीके पक्षकी पुष्टि करते हुए पण्डितोंके व्यवहारकी अति निन्दा की । स्वामीजीने पण्डितोंके पास जो प्रश्न भेजे थे उनमें दो ये भी थे—१ "कलम च किं भवति ?" २ "येन कर्मणा सर्वे धातवः सकर्मकाः किं तत्कर्म ?"

एक दिन सब पण्डित मिलकर व्यास बक्षीरामजीके निकट गये और बोले "किसी प्रकार आप स्वामी दयानन्दजीसे हमारा शास्त्रार्थ करा दीजिए ।" पण्डितोंकी प्रेरणासे, व्यासजीने स्वामीजीको महलोंमें निमन्त्रित किया । पण्डित भी वहाँ एकत्रित हो गये । सब पण्डितोंकी ओरसे एक पण्डितने स्वामीजीसे पूछा "क्या पन्द्रह प्रश्न और आठ प्रकारके दोष आपनेही लिखकर भेजे थे ?" स्वामीजीने कहा "हाँ, मैंने भेजे थे ।" तत्पश्चात् पण्डितने 'कलम' शब्दकी व्याख्या की । स्वामीजीने उसका तुरन्त खण्डन कर दिया । इसपर पण्डित लोग अति विस्मित हुए और कहने लगे, "अच्छा, इसका

अर्थ आपही कीजिए।" स्वामीजीने कहा कि जो कुछ परस्पर कथन हो वह लिखा जाना चाहिए, परन्तु पण्डितोंने स्वीकार न किया। तब स्वामीजीने 'कल्म' शब्दकी बड़ी योग्यतासे व्याख्या की। अन्य पण्डित तो चुपचाप सुनते रहे, परन्तु एक मैथिल पण्डितने आक्षेप करते हुए कहा, "यह अर्थ कहाँ लिखा है?"

स्वामीजीने उत्तर दिया "जो मैंने वर्णन किया है उसका तात्पर्य महाभाष्यके अनुकूल है।" मैथिल पण्डितजीने कहा, "महाभाष्य तो व्याकरण ही नहीं।" यह सुनकर स्वामीजीने उसे, यही बात कि महाभाष्य की गिनती व्याकरणमें नहीं है, लिख देनेके लिए बाधित किया, परन्तु वे पण्डित यह कहते हुए "अब जाने दो, रात बहुत बीत गई आपको भी नगरसे बाहर उद्यानमें जाना है, द्वार बन्द हो जायँगे, फिर आपको कष्ट होगा" वहाँसे उठ खड़े हुए। स्वामीजीने उठते हुए कहा "यह एक विलक्षण सभा है, जिसमें महाभाष्य व्याकरण नहीं माना जाता और यह पण्डितजी भी एक विचित्र बुद्धिके धनी हैं, जो भाष्यकी गणना व्याकरणमें नहीं करते।"

तदनन्तर एक जैन-गुरुने स्वामीजीसे शास्त्रार्थ करनेकी इच्छा प्रकट की। स्वामीजीने उत्तर भिजवा दिया कि, 'जब आपका जी चाहे पधारिए, मैं वार्त्तालापके लिए उद्यत हूँ।' जैन-यतिने कहलवा भेजा कि 'किसीके स्थानपर जानेसे हमारे नियमोंमें बाधा पड़ती है। परन्तु यदि कहीं आते जाते उद्यान आदिमें मिलाप हुआ तो धर्मचर्चा करेंगे। स्वामीजीने यह कहकर कि जब ऐसा मिलाप होगा तो देखा जायगा, १५ प्रश्न लिखकर जैन-यतिके पास भेज दिये। प्रश्नोंका उत्तर तो यतिजीकी समझमेंही नहीं आया, परन्तु स्वमतानुसार आठ प्रश्न लिखकर स्वामीजीकी सेवामें पहुँचवा दिये। उनका उत्तर तत्काल प्राप्त करके, यतिजी मौनावलम्बी हो गये।

अचरौलके ठाकुर रणजीतसिंहजी एक सत्संगी पुरुष थे। साधु-सन्तोंमें उनकी बड़ी भक्ति थी। वे राधाकृष्ण नामका जाप करते और इसी के उपासक थे। बीकानेर राज्यके निवासी ठाकुर हमीरसिंह, किसी मुकद्दमेमें जयपुर आये हुए थे। वे स्वामीजीसे भी परिचित थे। मूर्ति-पूजामें अनास्थावान् थे। एक दिन उन्होंने अचरौलके ठाकुरजीको समझाया "आप पूजा-पाठके किस

मिथ्याडम्बरमें खचित हो रहे हैं ? यदि अन्तःकरणमें आत्मिक कल्याण कामना है तो सन्मार्गका अवलम्बन कीजिए।"

श्री रणजीतसिंहजी अपने मित्रके वचनोंको सुनकर विस्मयके साथ बोले, "तो इस पूजा-पाठको छोड़कर हम किससे सदुपदेश ग्रहण करें ?" तब ठाकुर हमीरसिंहजीने कहा "इस समय सद्गुरु स्वामी श्रीदयानन्दजी महाराज हैं। उनके उपदेशसे सत्यका बोध हो जाता है और सौभाग्यवश वे आजकल जयपुरमें ही विराजमान हैं।" इन शब्दोंने ठाकुरजीके हृदयमें स्वामीजीके प्रति श्रद्धाका स्रोत खोल दिया। वे स्वामीजीके दर्शनार्थ जयपुर आये और अचरौल पधारनेके लिए अतिशय सम्मानपूर्वक निमन्त्रण दे गये। स्वामीजीको लिवा लानेके लिए अगले दिन उन्होंने एक मझोली भिजवाई, परन्तु वे पैदल ही चलकर वहाँ पहुँच गये। स्वामी-सत्संगसे ठाकुरजीको बड़ा लाभ हुआ। उनके सारे भ्रम मिट गये; संपूर्ण संशय निवृत्ति होकर उन्हें सन्मार्गका ज्ञान प्राप्त हो गया, और उनकी मूर्ति-पूजासे धारणा उठ गई।

प्रथम चार दिवस तो स्वामीजीका आसन राजमन्दिरमें ही लगा रहा, परन्तु स्वामीजी एकान्तसेवी थे, इसलिए उनकी आज्ञासे, एक विविक्त प्रदेशमें ठाकुरजीने एक स्वच्छ पर्ण-कुटी प्रस्तुत करा दी। वह पर्णकुटी बारहदरीके आकारपर निर्मित हुई थी। वहाँ प्रतिदिन ठाकुरजी तथा अन्य अनेक सत्संगी सज्जन श्री स्वामी-सेवामें उपस्थित हुआ करते थे। स्वामीजी मनुस्मृति, उपनिषद्, और गीता आदि ग्रन्थोंके प्रकरण सुनाकर कृतार्थ किया करते थे। बहुतसे विद्यार्थी भी स्वामीजीके पास जाते थे। उन्हें, वे ब्रह्मचर्य आदिका उपदेश देते थे। एक दिनका वर्णन है कि, ठाकुरजीका कार्यकर्त्ता, हीरालाल कायस्थ मदिरापान किये हुए उसी मार्गसे जारहा था, जिसके समीप स्वामीजीकी कुटी थी। उसे वहाँ पहुँचकर स्मरण हो आया कि स्वामीजीको श्री ठाकुरजीने बुलवाया है। उनके पास भी चलना चाहिए। वह स्वामीजीके पास चला गया और नमस्कार करके विनीत भावसे पास बैठकर सुनने लगा। उस समय स्वामीजी मनुस्मृतिका प्रायश्चित्ताध्याय सुना रहे थे। गोवध, सुवर्ण-चोरी, सुरापान आदि पापोंके जो फल अगले जन्ममें मिलते हैं, उनका व्याख्यान स्वामीजीने कुछ ऐसे शब्दोंमें—कुछ ऐसे भावमें, कुछ

ऐसे ढंगसे—किया कि हीरालालका भयके मारे हृदय काँप उठा; वह रोमांचित होगया । पूर्वकर्मोंपर, पश्चात्तापके अश्रुपात करते हुए उसने वहीं यह व्रत धारण किया कि भविष्यमें यह दुराचरण कदापि नहीं करूंगा । उस दिनके अनन्तर-भ्रमण करने जाते समय, वह प्रतिदिन स्वामी-शरणमें जाया करता था ।

स्वामीजी महाराज चार मासके लगभग वहाँ टिके । नित्यप्रति उपनिषदों और गीताकी कथा सुनाया करते थे । प्रतिमा-पूजनका खण्डन करते थे और कहते थे कि ध्यान भीतर करना चाहिये। उस समय उन्होंने भागवत-खण्डनमें एक पत्र भी छपवाया था । एक पत्र 'तत्त्वबोध' के नामसे लिखकर ठाकुरजीको दिया था । स्वामीजी शिवसे निराकार ईश्वरका वर्णन करते थे । और पार्वतीके पति, पौराणिक शिवका उनके कथनमें कोई सङ्केत न होता था।

उन्हीं दिनोंमें महाराजा रामसिंहजी, वैष्णवों और शैवोंके शास्त्रार्थ-संग्रामका उद्योगपर्व करा रहे थे। दोनों सम्प्रदायों के सन्त-महन्त, प्रवर पण्डित एकत्रित हो रहे थे। इस समरके सूत्रपातकर्त्ता शैव सम्प्रदायके सेनापति लक्ष्मणनाथजी थे । यद्यपि नाथजीके कारण शैव प्रबल थे, परन्तु शास्त्रवादमें जीतनेका भरोसा वे अपने किसी भी पण्डितपर न रखते थे । व्यास बक्षीराम और उनके भाई कनीराम, ये दोनों शास्त्रार्थ-सम्बन्धी प्रबन्धके अधिष्ठाता थे। स्वामी महाराजके विद्याबल और अतिशय बुद्धि-शक्तिका ये लोग, पण्डितोंके प्रथम सम्वादमें, परिचय पा ही चुके थे । वे जानते थे कि दयानन्दके समक्ष खड़े होनेका साहस कोई विरलाही कर सकता है । उसे जीतना नितान्त असम्भव है । अपनी विजयको निश्चित बनानेके लिए व्यास बक्षीराम आदि शैव पण्डितोंने, साम्प्रदायिक संग्राममें, अपनी ओरसे स्वामीजीको सेनापति नियत करनेका निश्चय कर लिया । इस विषयमें वार्त्तालाप करनेके लिए व्यास बक्षीरामजी स्वामीजीके पास भी गये और महाराजाजीसे मिलनेके लिए भी कहा; पर स्वामीजीने इसे उपेक्षाभावसे सुना । बक्षीरामजीने फिर महाराजा रामसिंहजीसे निवेदन किया कि स्वामी दयानन्दजी अखण्डब्रह्मचारी और अद्वितीय विद्वान् हैं । आगामी शैव-वैष्णवसंग्राममें वे वैष्णव-मत-निराकरण करनेके लिए शैव सम्प्रदायकी ओर ही खड़े होंगे । आप उनके दर्शन अवश्य करें । महाराजाके

हृदयमें स्वामी-दर्शन-लालसाका भाव जागृत हो गया। उन्होंने ठाकुर रणजीत-सिंह द्वारा स्वामीजीको राजभवनमें लानेके लिए यत्न किया। प्रातःकाल वही कनीराम व्यास स्वामीजीके पास आ गया। दिनके दस बजे स्वामीजी पीनस पर आरोहण करके राजराजेश्वरके मन्दिरमें जा विराजे।

स्वामीजीके जीवनमें, शिवरात्रिकी घटनाके अनन्तर, प्रतिमा-पूजनके भावका लेशमात्र भी शेष न रह गया था। इसलिए मन्दिरमें प्रवेश करते समय उन्होंने मूर्त्तियोंके लिये कोई सम्मान प्रदर्शित न किया। व्यास बक्षीरामजी, स्वामीजीको यह कह कर कि मैं आपके शुभागमनकी सूचना महाराजाको देता हूँ, वहाँसे चल पड़े। परन्तु किसी मनुष्यने व्यासजीको समझाया कि स्वामीजी तो सब देवताओंकी मूर्त्तियोंका खण्डन करते हैं, यदि इनका मेल-मिलाप श्री महाराजाजीसे हो गया तो तुम्हारी बात बिगड़ जायगी—वर्षोंकी जमी हुई पटड़ी सदाके लिए उखड़ जायगी। इससे व्यासके हृदयमें भी स्वार्थवश आशङ्का उत्पन्न हो गई। अन्तमें कोई बहाना बनाकर संन्यासी-राजके मिलापसे महाराजाको वंचित रक्खा गया।

दो जातियोंके संग्रामके समय जैसे किसी निरपेक्ष जातिका वीर सेनानी, समर-रससे संचालित होकर, स्वजातिसे अपेक्षाकृत अधिक सम्बंध-सूत्र-आबद्ध जातिके पक्षमें संग्राम-भूमिमें उतर आवे ठीक उसी प्रकार वैष्णव सम्प्रदायकी अपेक्षा अधिक समीपवर्ती शैव-सम्प्रदायके पक्षको अवलम्बन करके, शास्त्रीय रण-रंग-रसिक, स्वामी दयानन्द वैष्णवाचार्योंके साथ भिड़ गये। उनका प्रति-पक्षी, वैष्णव सम्प्रदायका परम पण्डित श्रीयुत हरिश्चन्द्र था। स्वामीजीको यह सिद्ध करना था कि वैष्णव सम्प्रदाय बहुत आधुनिक है, काल्पनिक है, निर्मूल है, और भद्र भी नहीं है। स्वामीजीने जब वैष्णव धर्मकी पुस्तकोंसे प्रमाण दे देकर इस सम्प्रदायकी समालोचना की तो जहाँ वैष्णवोंको लज्जा और पराजयने अभिभूत कर लिया वहाँ शैवोंकी प्रसन्नताकी कोई सीमा न रही! मारे हर्षके शैव उछल रहे थे। उनके मुखमण्डल प्रफुल्ल कमल बन रहे थे। उस विजयसे प्रभावित होकर लोग धड़ाधड़ शैव बनने लगे। कण्ठियोंका स्थान रुद्राक्षकी मालायें लेने लगीं। महाराजा रामसिंहने भी शैव सम्प्रदायको स्वीकार कर लिया। इससे राजकीय हाथियों और घोड़ोंके गलेमें

भी रुद्राक्षकी मालायें पड़ गईं। स्वामीजीके हाथसे भी मालायें वितरण कराईं गईं।

वैष्णव सम्प्रदायके दिग्गजको जीतनेसे स्वामी-केसरीकी कीर्ति दसों दिशाओंमें विस्तृत हो गई। उनके पाण्डित्यका सिक्का पण्डित मात्रपर बैठ गया। इस प्रकार साढ़े चार मास स्वामीजीने जयपुरमें निवास किया। उस राज्यके अनेक ठाकुर उनके भक्त हो गये। अगरूके ठाकुरजीने अपने ग्राममें पधारनेके लिए स्वामीजीसे बहुत प्रार्थना की। इस प्रार्थनाको स्वीकार कर श्री महाराज वहां गये और दो दिन विराजकर फिर दूदूको चले गये। दूदूके ठाकुर इन्द्रसिंहजीने दो दिनतक स्वामीजीके उपदेश श्रवण किये और वे भक्तिभावसे स्वामीजीके शिष्य बन गये। तत्पश्चात् श्री स्वामीजी कृष्णगढ़में जाकर दो दिन रहे। वहांसे अजमेर पधारे और राय दौलतरामजीके उद्यानमें चार दिन ठहरे। इसके पश्चात् आप पुष्करराज चले गये।

तीसरा सर्ग।

स्वामीजी महाराज चैत्र कृष्णपक्ष ११ सम्वत् १९२२ को पुष्कर पहुंचे। वहाँ उन्होंने अपना डेरा ब्रह्माके मन्दिरमें किया। मन्दिरके बाहरी भागके द्वारसे भीतर जानेपर दहिने भागमें स्वामीजीका निवास था। वहाँ आकर उन्होंने प्रतिमापूजनका खण्डन बड़े बलपूर्वक करना आरम्भ कर दिया। बहुतसे ब्राह्मण चिढ़कर स्वामीजीके पास शास्त्रार्थके लिये आये; परन्तु वहाँ पहुँचकर उनमेंसे किसीको भी स्वामीजीका सामना करनेका साहस न हुआ। वे सब मिलकर व्यंकटशास्त्रीके समीप गये। यह पण्डित बालशास्त्रीके समान विद्वान् था। तर्कशास्त्रमें अति निपुण था। नागपर्वतकी एक कन्दरामें रहा करता था। उसका गुरु एक अघोरी था। व्यंकटशास्त्रीने प्रथम तो स्वामीजीके समीप जाकर शास्त्रार्थ करना स्वीकार कर लिया, परन्तु अन्तमें वह आनेसे टल गया। उसे टलता हुआ जान श्रीस्वामीजी स्वयं उसके पास जा खड़े हुए। उस समय कोई तीन चारसौ ब्राह्मण वहाँ एकत्रित हो गये थे। वादका विषय नियत हुआ, 'भागवत'। शास्त्रीजीने भागवतका मण्डन किया, परन्तु स्वामीजीने

अपने समयमें उसका खण्डन इतनी प्रबल युक्तियोंसे इतने प्रबल प्रमाणोंसे किया कि व्यंकटजीको अपना बचाव उस विषयसे किनारा खींचनेमेंही सूझा वह एक शब्दके शुद्धाशुद्ध उच्चारणपर वाद करने लगा ।स्वामीजी उस शब्दको "देवासुर" कहते थे और वह "देवासुर" कहता था । अन्तमें उसने स्वामी पक्षको स्वीकार करते हुए कहा कि स्वामीजीकी विद्या बड़ी प्रबल है । स्वामीजीने शास्त्रीजीसे व्याकरणपर भी घण्टाभर वाद किया और विजयी हुए । शास्त्रीजीने स्वामीजीकी विद्याकी प्रभूत प्रशंसा की और उन्हें अपने अघोरी गुरुजीसे भी मिलाया । वह अघोरी अति हृष्ट-पुष्ट, बड़ा लम्बा-चौड़ा मनुष्य था । जो कोई उसके पास जाता उसे वह पत्थर उठा उठाकर मारा करताथा गालियां भी दे दिया करता था । मृतकोंकी देहोंको चिताओंपरसे उठाकर खा जाया करता था । परन्तु संस्कृत भाषाका एक अच्छा विद्वान् था । स्वामीजी महाराज उसके साथ देरतक बातें करते रहे । समाप्तिपर उसने सबको अभिमुख करके संस्कृतमें कहा "दयानन्दजीका कथन सत्य है; इनसे झगड़ा न करो ।" फिर उन्हीं शब्दोंको व्यंकटजीने आर्यभाषामें सब उपस्थित जनोंको सुनाते हुए कहा "स्वामी दयानन्दजीका पक्ष सर्वथा सत्य है । इनसे व्यर्थकी कलह न करो ।" यह सुन, सब ब्राह्मण उदासीनमुख होकर वहांसे चले गये । व्यंकटशास्त्रीजीका उतने ही समयमें स्वामीजीके साथ इतना सख्यभाव हो गया कि स्वामीजीको उसने कहा "जब कभी आपको शास्त्रार्थमें सहायताकी आवश्यकता पड़े तो मुझे स्मरण कीजिएगा । मैं बिना विलम्ब उपस्थित हो जाऊंगा ।"

मेलेकी बड़ी धूमधाम थी । उधर स्वामीजी महाराज भी कुरीतियोंका धुंआधार खण्डन कर रहे थे, जिससे उस महामेलेमें एक भारी हलचल मच गई थी । साम्प्रदायिक सागर, श्रीदयानन्दजीके वाणी-वायुसे विचालित होकर, संशयके झकोले खाने लगा था । स्वामीजी महाराजके उपदेशोंसे लोग इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने कण्ठियां उतार उतारकर ब्रह्माजीके मन्दिरके एक कोनेमें ढेर लगा दिया । ब्राह्मण लोग भागते हुए, फिर व्यंकटशास्त्रीके समीप गये । उसने कहा "हम उनसे क्या वाद-विवाद करें ? जो कुछ वह कहता है सब सत्य कहता है, परन्तु इतना अवश्य है कि उसकी चलेगी तब, जब कोई राजा महाराजा उसका शिष्य बन जायगा ।"

एक दिन स्वामीजीने पण्डित नानूराम नामक एक प्रतिष्ठित व्यक्तिको कहा कि, 'आप इस कण्ठीका क्या बखेड़ा गलेमें डाले हुए हैं? इस अवैदिक चिन्हको उतार क्यों नहीं डालते?' उसने उत्तर दिया कि 'यदि आप लोगोंमें अब्राह्मण संन्यासी न बने तो मैं भी कण्ठी बाँधना छोड़ दूंगा'। स्वामीजीने कहा, 'हम क्या करें? यहाँ तो आकाश ही बदला पड़ा है। यदि मुझसे हो तो मैं स्पष्ट कहता हूँ कि विद्वान् ब्राह्मणके बिना अन्य किसीको भी संन्यास लेनेका अधिकार नहीं है'।

ब्रह्माजीके मन्दिरके महन्त मानपुरीजी थे। वे बड़े सज्जन पुरुष थे। पहले पहल, एक बार जब मूर्तिभोगके अनन्तर स्वामीजीको उन्होंने दूध दिया तो स्वामीजीने यह कहकर अस्वीकार कर दिया कि पत्थर-पूजाका मैं दूध नहीं पीता; उस समय मानपुरीजी रुष्ट हो गये और स्वामीजीको दूध देना बंद कर दिया, परन्तु पीछेसे प्रसन्न होकर उनके सहायक बन गये। स्वामीजीके साथ उनका सौहार्द भी हो गया। स्वामीजी विनोदमें कभी कभी उन्हें कह दिया करते थे "पुरीजी! आपको तो यह ढाई मनकी मूर्त्ति पारसपत्थर मिल गया है। इससे जितना सुवर्ण सिद्धि करो वह साधु-संन्यासियोंको लड्डू आदिसे समार्चन करनेमें समर्पण कर दिया करो। भाँड धूर्त्त लोगोंके लिए कुत्सित व्यय न किया करो।" महन्त मानपुरीजी सुदृढ़-अंग और बलवान् थे। वे स्वामीजीकी सहायताके लिए बद्धपरिकर रहते थे।

एक दिनका वर्णन है कि, बहुतसे ब्राह्मणोंने ऐक्य करके स्वामीजीको शास्त्रार्थ करनेके लिए गौ-घाटपर आह्वान किया। वे तो सदाही सन्नद्ध रहते थे। समाहूत होनेपर तुरन्त वहाँ पहुँच गये। शास्त्रार्थ थोड़ी देरही चला था कि पण्डितोंके पैर उखड़ गये। निरुत्तर होकर लगे दायें बायें झाकने। इतनेमें कई लठैत बीचमें आ कूदे, और स्वामीजीको अवाच्य बकने लगे। वे लोग उस समय ऊधम मचानाही चाहते थे कि मानपुरीजी भी वहाँ जा पहुँचे। उन्होंने डाट डपटकर उन लोगोंको वहाँसे खदेड़ दिया। उसी समय सैंकड़ों मनुष्योंने कण्ठियाँ उतारकर पुष्करार्पण कर दीं।

स्वामीजीने वहाँ रामानुजियोंको भी शास्त्रार्थके लिए पत्र लिखा, परन्तु उन्हें शास्त्रार्थका साहस न हुआ। स्वामीजी महाराज इस सम्प्रदायके भ्रममूलक

विचारोंका खण्डन करते हुए कहते थे "तप्ततनूः स्वर्गं गच्छति" यह श्लोकही ठीक नहीं। और यदि इसे मान भी लिया जाय तो इसका अच्छा अर्थ यह है कि शम-दम, जप-तप, स्वाध्याय आदि तपस्यासे तप्त तनवाला स्वर्गको जाता है। तप्तका अर्थ 'जलाना' करना भूल है।

एक पण्डा स्वामीजीको कहने लगा कि मैं संन्यासियोंका पुरोहित हूं। आगे कई संन्यासियोंने मुझे श्लोक बना दिये हैं, आप भी बना दीजिए। स्वामीजीने उसे हँसकर कहा कि अरे तू हमारा भी पुरोहित बनता है। उन्होंने श्लोक तो न बनाकर दिया, परन्तु उपदेश करके उसके कण्ठसे कण्ठी उतरवा दी!

उन्हीं दिनोंमें एक द्राविड़ संन्यासी चन्द्रघाटपर आकर ठहरा था। वह पुराणोंकी कथा कराकर ब्रह्मभोज कराया करता था। उसके साथ शास्त्रार्थ करनेके लिए, कोई दोसौ ब्राह्मण, स्वामीजीको वहाँ ले गये। परन्तु द्राविड़ संन्यासी सम्मुख नहीं हुए।

शिवदयाल नामका एक पुजारी ब्रह्माकी पूजा किया करता था। स्वामीजीने उसे कहा कि शिवदयालजी! क्या आपका देव आपसे वार्त्तालाप भी किया करता है? जब वह नक्कारा बजाता तो महाराज उससे कहते कि चमड़ा कूटने से क्या लाभ है? झाँझ बजानेसे भी उसे रोकते थे। शिवदयालने प्रार्थना की कि मुझे ईश्वरका नाम बताइए। स्वामीजीने उसे ईश्वरका नाम 'सच्चिदानन्द' बताया, उसने स्वामीजीसे उपदेश लेकर कण्ठी उतार दी, मूर्त्ति-पूजन छोड़ दिया और घाटोंपर अन्य पण्डोंकी भाँति माँगने जाना भी त्याग दिया। डाक-घरमें नौकरी करके निर्वाह करने लगा।

एक दिन, एक वृद्धा देवी ब्रह्माजीके मन्दिरमें मूर्त्ति-दर्शन करके लौटते समय स्वामीजीके दर्शनार्थ भी पधारी। स्वामीजीने पूछा "माता कहाँसे आ रही हो?" उसने कहा "ब्रह्माजीके दर्शन करके आई हूं।" स्वामीजी बोले "क्या ब्रह्माजीने आपको कोई उपदेश भी दिया है?" वृद्धाने कहा "हाँ, दिया है।" तब स्वामीजी तुरन्त अपने आसनसे उठ खड़े हुए और उसी वृद्धादेवीको साथ लेकर ब्रह्माजीकी प्रतिमाके समीप जा उपस्थित हुए और उस

वृद्धाको बोले "माता? अब मेरे सम्मुख इस मूर्तिको कहो कि बोले।" उस वृद्धाने हँसकर कहा—"स्वामीजी! यह मूर्ति तो क्या आपके सामने सभी चुप हो जाते हैं। जो बोलता है आपकी पीठ पीछे ही बोलता है।"

एक दिन एक सेठने स्वामीजीसे आकर पूछा "महाराज! मैं मन्दिर बनवाना चाहता हूँ। इसमें आप क्या सम्मति देते हैं?" महाराजने गम्भीर भावसे उत्तर दिया "सेठजी! किसी अन्य धर्म-कार्यमें धनव्यय करो, जिससे अपना और दूसरोंका कल्याण हो। मन्दिर बनाना तो सन्ततिके लिए अविद्याका एक गहरा गढ़ा खोदकर छोड़जाना है।" स्वामीजीका उपदेश सुन कर उस सेठने मन्दिर बनानेका विचार छोड़ दिया।

स्वामीजी प्रायः कहा करते थे कि अनेक स्तोत्र जो आचार्योंके नामसे प्रचलित हैं वास्तवमें पण्डितोंने बनाकर उनके नामसे विख्यात किये हैं। भागवतभी व्यासकृत नहीं, किन्तु बोपदेवका बनाया हुआ है। वे पण्डेपुरोहितोंको कहा करते थे कि सत्यके प्रचारसे इसलिए न हिचकिचाओ कि आजीविका जाती रहेगी। खीर पूड़ी आदि प्रारब्धजन्य भोग तुम्हें सत्यप्रचारसे भी पुष्कल प्राप्त होते रहेंगे। यहाँ रंगाचार्यके एक शिष्यने भी स्वामीजीसे गीताके एक श्लोकपर कुछ वार्त्तालाप किया था, परन्तु वह अत्यन्त हठीला था।

एक जनके पूछनेपर स्वामीजीने कहा कि 'शिव कल्याणकारी परमेश्वरका नाम है, उसे मैं मानता हूँ, परन्तु पार्वतीके पतिमें मैं विश्वास नहीं रखता।'

स्वामीजीके सन्तोषका, क्षमाका, शान्तिका, सरलताका सभी सन्त लोग यश गाते थे। उनकी विद्वत्ताका लोहा सारी पण्डित-मण्डलीने मान लिया था। उनके विजय-नादकी गम्भीर ध्वनिसे पुष्करसे लेकर मरुभूमिके दूर दूरके प्रदेश गुंजायमान होगये थे। अनेक सज्जनोंने स्वामीजीको अपने अपने नगरोंमें पधारनेके लिए निमन्त्रण भी दिये। जोधपुरके एक वकील महाशय भी आये और अपने नगरमें पधारनेके लिए आग्रहपूर्वक प्रार्थना करने लगे। स्वामीजी स्वयं भी मारवाड़की यात्राके इच्छुक थे। परन्तु अचरौलके ठाकुरके भेजे हुए जोशी रामस्वरूप, स्वामीजीको अचरौल लिवा ले जानेके लिए वहाँ बहुत दिनोंसे डेरा डाले बैठे थे। उनके अत्याग्रहसे स्वामीजीने अपनी यात्राका पथ-परिवर्तन कर लिया।

पुष्करसे तीन कोस पूर्वकी ओर मार्कण्डेयकी एक गुफा है। पुष्करनिवासके दिनोंमें स्वामीजी वहाँसे विभूति मँगाकर रमाया करते थे । उनके कण्ठमें रुद्राक्षकी माला थी । उसके बीच-बीचमें एक एक दाना श्वेत काँचका भी था। स्वामीजी उन दिनोंमें उपनिषदोंका अनुशीलन किया करते थे । इस प्रकार २२ दिन पुष्करमें निवास करके श्रीस्वामीजीने अजमेरकी ओर प्रस्थान किया।

चौथा सर्ग ।

द्वितीय ज्येष्ठ बदी प्रथमा १९२३ को स्वामीजी अजमेरमें पहुँचे और बंसीलालजीके उद्यानमें उतरे। उस समय स्वामीजीके साथ पाँच मनुष्य थे; जिनमेंसे एक ९० वर्षका वृद्ध ब्रह्मचारी संस्कृतका विद्वान् था । उनके आतिथ्यका प्रबंध सेठ कृष्णचन्द्रजी करते थे ।

स्वामीजीने आते ही सारे नगरमें विज्ञापन लगवा दिये कि मूर्ति-पूजन आदि विषयोंपर किसीको शंका हो तो आये, समाधान किया जायगा; कुछ लोग इधर उधरकी बातें तो बनाते रहे, परन्तु सम्मुख कोई न हुआ। पण्डितोंने प्रश्न लिखकर स्वामीजीके समीप भेजे कि, संन्यासीको तीन दिनसे अधिक किसी ग्राममें ठहरना उचित नहीं है । बग्घी आदि यानपर आरोहण करना नहीं चाहिए। स्वामीजीने उत्तरमें लिख भेजा कि उपकारके लिए, संन्यासीको, एक स्थानमें अधिक काल ठहरनेमें कोई दोष नहीं है । शुभ वृत्तिमें, यदि यानारोहण करना पड़े तो वह भी निर्दोष है । महाराजने उनके पत्रमें बहुतसी अशुद्धियाँ भी प्रदर्शित कीं । मन्दिरको वे अड्डा कहा करते थे। बहुत मनुष्योंने उनसे भागवतकी भूलोंके विषयमें पूछा, तो उन्होंने तीन चार पन्ने अपने हाथसे लिखकर लोगोंको दिये। वहाँ उन्होंने शैव सम्प्रदायका भी बहुत खण्डन किया ।

अजमेरमें स्वामीजीका पादरी राबिन्सन, ग्रे और शूलब्रेडके साथ जीव, ईश्वर, सृष्टि-क्रम और वेद विषयपर, तीन दिनतक सम्वाद होता रहा। स्वामीजी बड़ी योग्यतासे उत्तर देते रहे। चार दिन, ईसाका ईश्वर होना, मरकर जी उठना, फिर आकाशपर आरोहण करना इत्यादि बातोंपर स्वामीजीने प्रश्न किये। इनका पादरियोंसे कोई उत्तर न बन आया । इसपर लड़कोंने ताली पीट दी,

परन्तु स्वामीजीने उनको ऐसा करनेसे रोक दिया। उस शास्त्रार्थमें पादरियोंने एक वेद-मंत्रका नाम लेकर कुछ पाठ पढ़ा। परन्तु स्वामीजीने जब उसका पता पूछा, तो वे कुछ न बता सके। अगले दिन सम्वादके लिए पादरी नहीं आये। कहते हैं कि वादमें, किसी आक्षेपके कारण चिढ़कर, पादरी शूलब्रेडने स्वामीजीसे कहा कि ऐसी बातोंसे आप कभी कारावासमें चले जायँगे। स्वामीजीने बड़ी गम्भीरतासे मुस्कराते हुए कहा, "सत्यके लिए कारावास कोई लज्जाजनक वार्ता नहीं है। धर्म्म-पथपर आरूढ़ होकर, मैं ऐसी बातोंसे सर्वथा निर्भय हो गया हूँ। प्रतिपक्षी लोग, यदि अपने प्रभावसे ऐसा कष्ट दिलायँगे, तो जहाँ कष्ट सहते हुए मेरे चित्तमें शोककी कोई तरंग भी न उत्पन्न होगी, वहाँ मैं अपने प्रतिपक्षियोंकी अकल्याण-कामना भी कभी नहीं करूँगा। पादरीजी! मैं लोगोंके डरानेसे सत्यको नहीं छोड़ सकता। ईसाको भी लोगोंने फाँसीपर लटका ही तो दिया था"।

बड़े पादरी राबिन्सनके निमन्त्रणपर, स्वामीजी उनसे मिलने गये। शिष्टाचारके अनन्तर पादरीजीने पूछा कि, ब्रह्माजीने जो अपनी पुत्रीसे व्यभिचार किया था उसका आप क्या समाधान करते हैं? स्वामीजीने तुरन्त उत्तर दिया कि एक नामके अनेक मनुष्य हुआ करते हैं। इसमें कोई प्रमाण नहीं कि यह वही ब्रह्मा थे। महर्षि ब्रह्मा तो अत्यन्त पवित्र थे। स्वामीजीके कथनपर पादरी अति प्रसन्न हुए और उनको अपने हाथसे लिखकर एक पत्र दिया कि स्वामी दयानन्द सरस्वती वेदोंका एक विख्यात विद्वान् है। मैंने अपने सम्पूर्ण जीवनमें इन ऐसा संस्कृतका पण्डित दूसरा नहीं देखा। ऐसे महापुरुष संसारमें बहुत थोड़े होते हैं। इनसे जो भी मिलेगा लाभही उठायेगा, जो सज्जन इनसे मिले इनका संमान करे।

मेजर ए. जी. डेविडसन महाशयसे मिलनेके लिए भी स्वामीजी गये थे। वार्त्तालापके क्रममें स्वामीजीने कहा, "राजा प्रजाके लिए पितावत् होता है और प्रजा राजाके निकट पुत्रतुल्य होती है। यदि कोई पुत्र विपरीत मार्गपर चले तो पिताका कर्त्तव्य है कि उसे सन्मार्गपर लाये। आपभी एक प्रकारके राजा हैं। देशमें अन्धकार फैल रहा है। आपके शासनमें मत-मतान्तरोंके लोग भोली प्रजाको नोच-नोचकर खा रहे हैं। इससे भारतीय प्रजामें अगणित

दुःखोंकी सृष्टि हो गई है। आपका धर्म्म है कि इसका कोई प्रबन्ध करके प्रजाका रक्षण करें।" कमिश्नर महाशयने उत्तर दिया "यह विषय धर्म्मसे सम्बन्ध रखता है। शासक लोग इसमें हस्तक्षेप नहीं करसकते। यदि किसी अन्य प्रकारकी सहायता आपको चाहिए तो वह दी जा सकती है" इसके पश्चात् आप सहायक कमिश्नर, रेपटन महाशयसे भी मिले।

उन दिनों, कर्नेल ब्रुक महाशय गवर्नर जनरलके एजण्ट थे। वे गेरूए कपड़ों-वालोंसे बहुत चिढ़ा करते थे। एक दिनका वर्णन है कि वे लाला बंशीलालके उद्यानमें आ गये। स्वामीजी उस समय कुरसीपर बैठे थे। समीप उपस्थित लोगोंने दूरसे कर्नेल ब्रुकको आते देख, स्वामीजीको कुरसी हटा लेनेके लिए कहा; परन्तु स्वामीजीने उलटा कुरसी और भी आगे बढ़ा ली। कर्नेल महाशय भीतर प्रवेशकर आये। उस समय लोग और भी अधिक घबराने लगे, परन्तु स्वामीजीने उन्हें कहा कि डरो नहीं, शान्त रहो। जब वे समीप आये तो स्वामीजी कुरसीसे उठकर टहलने लग गये। समीप आतेही श्रीकर्नेल महाशय टोपी उतारकर स्वामीजीकी ओर बढ़े। स्वामीजी भी सम्मुख हुए और दोनोंने हाथ मिलाकर परस्पर सम्मानप्रदर्शन किया। फिर दोनों आमने सामने कुर-सियोंपर बैठकर शिष्टाचारके वार्त्तालापमें प्रवृत्त हुए। तत्पश्चात् श्रीस्वामीजीने कहा कि, आप धर्म्मकी स्थापना करते हो अथवा उत्थापन? कर्नेल महाशयने उत्तर दिया कि धर्म्मकी स्थापनाको तो हम भी अच्छा समझते हैं, परन्तु जिसमें लाभ होता है वही किया जाता है। स्वामीजीने कहा कि मैं तो यही कहूँगा कि आप लोग लाभका काम नहीं करते, किन्तु हानिका करते हैं। उन्होंने पूछा, भला कैसे? स्वामीजीने उत्तर दिया कि यहतो आपभी मानते होंगे कि एक गायके जीवनसे कितना बड़ा लाभ होता है और उसे मारकर खा जानेसे कितनी भारी हानि है। एजण्ट महाशयने स्वीकार किया कि गोवध-से हानि अवश्य होती है। तब स्वामीजीने कहा कि फिर आप गोवध क्यों करते हैं? एजण्ट महाशयने कहा, "आपकी यह बात हम मानते हैं। आप कल हमारे बंगलेपर आइयेगा। उस समय फिर वार्त्तालाप करेंगे"। अगले दिन श्रीमान् कर्नेल ब्रुकके यहाँसे स्वामीजीके लिए गाड़ी आ गई। स्वामीजी जोशी रामस्वरूपसहित गाड़ीमें बैठ बंगलेपर पहुँच गये। कोई पौन घण्टाभर गो-

रक्षा विषयपर वार्तालाप होता रहा। जब कर्नेल महाशयने गौ-रक्षासे लाभ और बधसे हानि स्वीकार करली तो स्वामीजीने कहा कि आप यत्न करके गोवध बन्द करा दीजिए। इसपर उन्होंने उत्तर दिया कि स्वामीजी महाराज! गोवध बन्द कराना मेरे अधिकारमें नहीं है। मैं आपको चिट्ठी देता हूँ, आप लाट महाशयको मिलें। अन्य भी जिस राजकर्मचारीको आप मेरी चिट्ठी दिखायँगे वह आपको अवश्य संमानपूर्वक मिलेगा। वह चिट्ठी लेकर स्वामीजी स्व-स्थानको चले आये।

श्रीमान् कर्नेल ब्रुकने स्वामीजीसे जयपुरका समाचार सुनकर एक पत्र महाराजा रामसिंहजीको भी लिखा था कि शोक आपने एक अपूर्व पण्डितके साथ सम्भाषण न किया। उस पत्रको पढ़कर महाराजाजीको बड़ा पश्चात्ताप हुआ और अचरौलके ठाकुरजीके द्वारा स्वामीजीके दर्शन प्राप्त करनेका प्रयत्न करने लगे।

एक दिन साँवले रङ्गके दो युवक तपस्वी, नाग-पर्वतके जङ्गलसे, स्वामीजीके मिलापार्थ वहाँ आये। स्वामीजीने उन्हें बड़े आदरसत्कारसे बिठलाया। वे संस्कृतके बिना किसी दूसरी भाषामें बातचीत नहीं करते थे। कुछ कालतक योग-सम्बन्धी चर्चा होती रही। चलते समय वे कहने लगे "स्वामीजी! हम तो अब तृप्त हैं, पूर्ण शान्त हैं।" स्वामीजीने कुछ हँसकर कहा, "नहीं, महात्माजी! अभी अहंकार जीतना शेष है।" उन्होंने कहा, "हमने अहंकार सर्वथा जीत लिया है।" तपस्वी अभी भीतरसे निकलकर बाहर गये ही थे कि स्वामीजीके संकेतसे, एक ब्रह्मचारीने उनसे कलह करना आरम्भ कर दिया। वह झगड़ा इतना बढ़ा कि दोनों तपस्वी और ब्रह्मचारी, आपसमें गुत्थमगुत्था हो गये और एक दूसरेको पटकते हुए ऊपर नीचे होने लगे। कलहका कलकल नाद सुनकर भीतर बैठे हुए सब मनुष्य स्वामीजीसहित बाहर आ गये और उन्हें पृथक् पृथक् कर दिया। फिर स्वामीजी महाराजने उन तपस्वियोंको भीतर ले जाकर समझाया कि आप हमारा कहना नहीं मानते थे; परन्तु अब परीक्षासे सिद्ध हो गया कि आपमें अहङ्कारकी कला अभी मन्द नहीं हुई। मुनियोंको और विशेषतः अभ्यासियोंको अभिमान कदापि नहीं करना चाहिए। क्योंकि—

कलश पूर्ण छलके नहीं घोषण ऊना करे,
गर्व करें न ज्ञानी जन अज्ञानी दम्भ करे ।
गरजे बहुत बरसे नहीं ओछेमें अहंकार,
बजे घना थोथा चना कह गये ज्ञानी सार ।

उन दोनों तपस्वियोंने महाराजसे क्षमा-याचना की और 'नमो नारायण' कहकर चले गये । वे तपस्वी स्वामीजीके दर्शनोंको दो बार आये ।

उन दिनों अजमेरमें रामस्नेहियोंके सबसे बड़े महन्त आये हुए थे। स्वामीजीने उन्हें शास्त्रार्थ करनेके लिये आहूत किया । उन्होंने उत्तर दिया कि,हमारा आपसे शास्त्रार्थ नहीं होसकता; क्योंकि हम किसीके स्थानपर नहीं जाते और यदि कोई हमारे स्थानपर आये, तो हम अपनी गद्दीसे उतरकर उसका अभ्युत्थान आदि आदर-सत्कार नहीं करते। जब स्वामीजीको यह बात ज्ञात हुई तो उन्होंने कहला भेजा कि मुझे आव भगतकी कोई आवश्यकता नहीं, आप सुखपूर्वक अचल आसनसे गद्दीपर बैठे रहिए, परन्तु शास्त्रार्थ कीजिए । जब महन्तने देखा कि वह मानादिका कोई ध्यान न करके, यहाँ ही आना चाहते हैं तो उन्होंने स्पष्ट शब्दोंमें कह दिया कि; भाई हम तो राम राम रटते हैं और भोजन आदि पाकर सुखसे समय बिताते हैं। हमें शास्त्रार्थ आदि कुछ नहीं आता। इसपर स्वामीजीने संस्कृतमें एक पत्र लिखकर उस महन्तके पास भेजा। उसमें रामस्नेही मतपर प्रश्न थे । "इसका कल उत्तर देंगे" यह कहकर महन्तजीने वह प्रश्न-पत्र रख लिया, परन्तु अगले दिन, प्रातःकालही वहाँसे अपना अस्त्र वस्त्र समेटकर भाग गये ।

पण्डित हरिश्चन्द्रके गुरु-भाई देहलीनिवासी अजमेरमें आये । स्वामीजीसे उपनिषदों और मनुस्मृतिपर सम्वाद करते रहे और सन्तोष पाकर अति प्रसन्न हुए ।

धन्नालाल नामक एक जैन श्रावक, अपने मतकी एक पुस्तक लेकर स्वामीजीके निकट आया। उसने कुछ प्रश्न भी किये। स्वामीजीने उनका यथायोग्य उत्तर देकर, उसके हाथसे पुस्तक ले ली और अपने पास रख ली । साथ ही कहा कि फिर यहाँ आइएगा, आपका समाधान भली भांति कर

दिया जायगा। वह उस समय तो चलागया, परन्तु घर जाकर उसके हृदयमें न जाने क्या विचार उत्पन्न हुआ, स्वामीजीके समीप उस पुस्तकके रह जानेसे न जाने किन गुप्त भेदोंके प्रकट हो जानेका भय उसे प्रतीत होने लगा, उसने कमिश्नरको प्रार्थनापत्र देकर अपनी पुस्तक, स्वामीजीसे मंगा ली।

एक दिन बहुतसी देवियाँ स्वामीजीके समीप आईं। स्वामीजीने पूछा, "बहिनो! कहाँसे आई हो?"

उन्होंने उत्तर दिया, "महाराज, साधुओंके पाससे होकर यहाँ आई हैं।"

स्वामीजी बोले, "साधुओंके पास क्यों गई थीं?"

"आप कहें तो आपके पास आ जाया करें।"

"हमारे पास आनेका क्या प्रयोजन है?"

"महाराज हम उपदेश लेना चाहती हैं।"

"यदि यही प्रयोजन है तो हम स्त्रियोंको उपदेश नहीं दिया करते। अपने पतियोंको हमारे पास भेज देना। वे यहाँसे उपदेश सुनकर आपको भी सुना देंगे।"

यह सुनकर वे चली गईं और फिर कभी नहीं आईं।

यहाँ भी बहुतसे लोगोंने कण्ठियाँ उतार दीं। सावरके ठाकुरजी स्वामीजीके उपदेश सुनने आये और प्रभावित होकर गये।

जयपुराधीश महाराजा रामसिंहजीने, लाट महोदयके मिलापार्थ आगरे जाना था। उन्होंने सोचा कि मथुरामें उतरनेपर, यदि रङ्गाचार्यसे शास्त्रार्थ हो गया तो बड़ी कठिनाई होगी। वे यह भी जानते थे कि स्वामी दयानन्दजीको छोड़कर, उसको निश्चितरूपसे परास्त करनेवाला, दूसरा कोई भी नहीं। इस लिए, उन्होंने अचरौलके ठाकुरद्वारा, स्वामीजीकी सेवामें जयपुर पधारनेके लिए, अजमेरमें फिर निवेदन किया।

स्वामीजीको दो एक भक्त कृष्णगढ़ ले गये और शुभसागरके तीरपर उनका उतारा कराया। यहाँके सुयोग्य पण्डित कृष्णवल्लभ जोशी और महेशदास ओसवाल स्वामीजीसे अति प्रेम करते थे। महेशदासने स्वामीजीका आतिथ्य भी किया। कृष्णगढ़के राजा वल्लभ-कुलसेवक थे, जब उन्होंने सुना कि एक स्वामी भागवतपर तीव्र आलोचना करता है, तो अनेक पण्डितोंके साथ,

ठाकुर गोपालसिंहजीको विघ्न-बाधा करनेके लिए भेजा। मनुष्योंके अन्तरंगको जाननेवाली दृष्टिसे स्वामीजीने उनके गुप्तभावोंको लख लिया। स्वामीजी, शौच,स्नानादिसे निवृत्त होकर, तनपर विभूति रमा काष्ठके आसनपर आ बैठे। महाराजने उस मण्डलीसे वहाँ आनेका कारण पूछा। उस समय एक ब्राह्मणने कुछ पत्रे उथल पुथलकर स्वामीजीके आगे रक्खे। महाराजने कहा, "तुम स्वयं पढ़ो।" तब पण्डितने वे पत्रे पढ़े। उनका तात्पर्य यह था कि वल्लभमत ही सर्वोत्तम है। यह सुनकर स्वामीजीने उसका बहुत ही खण्डन किया। इसका उत्तर तो उनसे कुछ न बन पड़ा, परन्तु हल्ला गुल्ला करनेपर उतारु हो गये। उनके इस गड़बड़ाध्यायको देख, स्वामीजी महाराज अपने काष्ठासनपर खड़े होकर, गम्भीर-गर्जनापूर्वक बोले. "मुझे अकेला समझकर आगे हाथ न बढ़ाना। अकेला तो मैं अवश्य हूं, परन्तु तुम सबकी हेकड़ी तोड़नेके लिए पर्याप्त हूँ। यदि शास्त्रार्थ करना हो तो कटिबद्ध हूं, परन्तु 'यदि शस्त्रार्थ' ही करना चाहते हो तो भी पीछे नहीं हटूंगा, तुम्हारा मान-मर्दन करनेको सुसज्जित हूँ।"

इतनेमें श्रीमाली वंशके ब्राह्मण, तीस चालीसकी संख्यामें स्वामीजीकी सहायताके लिए आ पहुँचे, और उसी समय कलह-प्रिय लोग वहाँसे भाग गये।

रव शृगाल-समूहका यथा सुन सिंह-सुत वीर,
हस्ति-यूथको देखकर होवे नहीं अधीर।
तथा साहस सुसत्त्वयुत डरे न पुरुष प्रधान,
क्षुद्र मनुज मिलकर करें चाहे विरोध महान।

पाँचवाँ सर्ग।

कृष्णगढ़से चलकर, स्वामीजी महाराज दूदू पधारे और राजमन्दिरमें ठहरे। यहाँ तीन दिन उपदेश हुए। फिर एक रात बगरूमें ठहरकर जयपुर चले गये। अचरौलके ठाकुरजीने श्रीस्वामीजीके पधारनेका समाचार महाराजाको दे दिया। उन्होंने व्यास बक्षीरामको स्वामीजीकी सेवामें भेजकर निवेदन किया कि कृपया राजमंदिरमें पधारकर कृतार्थ कीजिए। स्वामीजीने

व्यासजीको कहा कि आप भली भाँति जानते हैं कि राजमन्दिरमें जानेकी मुझे कुछभी आकांक्षा नहीं है। यदि महाराज़ाजी कुछ वार्त्तालाप करना चाहते हैं तो किसी समय वे यहीं आ जायँ। व्यासजीने यही बात महाराजाजीसे जाकर निवेदन कर दी। तत्पश्चात् महाराजाजीने ठाकुर रणजीतसिंहजीको कहा कि आप किसी प्रकार श्रीस्वामीजीको यहाँ लाकर मुझे दर्शन करायें। ठाकुर श्री रणजीतसिंहजीने अन्य अनेक प्रतिष्ठित पुरुषोंको साथ ले, श्रीस्वामीजीकी सेवामें उपस्थित हो, राजमन्दिरमें पधारनेके लिये बड़ी अनुनय विनय की। अत्याग्रह पर स्वामीजीने स्वीकार कर लिया, और वे वहाँसे आकर मौजमन्दिरमें विराजमान हुए।

उस समय पण्डित लोग भी बड़े समारोहसे वहाँ एकत्रित हुए थे। कारणवश महाराजा रामसिंह अन्तःपुरमें गये हुए थे, इसलिए चेलेने आकर कहा कि इस समय महाराजाजीका आना न होसकेगा। यह सुन, सब उठकर चले आये। उसके पश्चात् महाराजा रामसिंहने बहुत प्रयत्न किया कि श्रीस्वामीजी राजमन्दिरमें पधारें, परन्तु स्वामीजी सर्वथा अस्वीकार करते रहे। इस बार स्वामीजी वहाँ आश्विन मासके आधतक ठहरे। जब वहाँसे आगरे जाने लगे तो ठाकुर रणजीतसिंहजी तथा उनके कार्यकर्त्ता रामदयालजीको रुलाई आ गई। उनको अश्रुमोचन करते देख स्वामीजीने कहा कि हमने जो उपदेश आपको दिया है वह हँसानेवाला है, न कि रुलानेवाला। फिर प्रतिष्ठित पुरुषोंने अतिशय सम्मानसे स्वामीजीको बिदा किया।

कार्तिक वदी नवमी सम्वत् १९२३ को श्रीस्वामीजी आगरेमें पधारे। वहाँ बड़े समारोहके साथ एक भारी दरबार होनेवाला था। दूर दूरसे राजे महाराजे बुलाये गये थे। उस समय वहाँ एक अद्भुत सजधज और ठाठ बाट था। स्वामीजी महाराजने भी धर्म्मोपदेशके लिए ऐसे समयको उपयोगी समझा। मौखिक उपदेशोंके अतिरिक्त; सात आठ पृष्ठकी एक छोटीसी पुस्तक भागवतखण्डनपर लिखी। इसकी कई सहस्र प्रतियाँ छपवाकर, वहाँ वितीर्ण करादीं और कई सहस्र हरिद्वारपर बाँटनेके लिए, मथुरा जाते हुए, साथ ले गये।

पाँच विद्यार्थियोंसहित स्वामीजी अपने गुरुकी चरण-शरणमें गये और नम्रीभूत होकर गुरुराजको नमस्कार किया। एक सुवर्णमुद्रा और एक मलमलका

थान भेंट किया। भागवत-खण्डनका पुस्तकका परिचय भी कराया। गुरुदेव अपने कृपापात्र, सुयोग्य और विजयी शिष्यको मिलकर अति प्रसन्न हुए। कृपा-हाथ सिरपर फेरकर भूरि २ आशीर्वाद प्रदान करने लगे। उनका हृदय हर्षोत्कर्षके पूरसे भर गया और उन्हें यह जानकर पूर्णसन्तोष हुआ कि उनके लगाए हुए पेड़ पर मनोवाञ्छित फल आया है, उनका उद्देश्य भलीभांति सिद्ध होरहा है ।

स्वामीजी महाराज कई दिनतक गुरु-सेवामें रहकर संदेहास्पद विषयोंको पूछते रहे, शास्त्रीय तत्त्वोंको समझते रहे, और फिर हरिद्वारका कुम्भमेला समीपआया जान, वहाँ जानेके लिए उन्होंने गुरुदेवसे अनुमतिकी प्रार्थना की गुरु-महाराजका आदेश उपलब्धकर विनीत नमस्कार पूर्वक, वे गुरु-चरणोंसे बिदा हुए। आदर्श-गुरु और आदर्श-शिष्यका यह अन्तिम ही मिलाप था।

मथुरासे चलकर श्रीस्वामीजी मेरठमें आए और एक देवीके मंदिरमें आसन किया। उस समय उनके साथ एक ब्रह्मचारी भी था। स्वामीजी दोशाला ओढ़ते थे, पांवमें जुराब रखते थे, और उनके गलेमें स्फटिककी एक माला भी होतीथी। गङ्गाराम नामक एक प्रतिष्ठित व्यक्तिसे उनका साक्षात् होगया। स्वामीजीने उससे कहा कि गो-रक्षा और वैदिक शिक्षाका प्रचार इस समय बड़ा आवश्यक कार्य है। उन्होंने यह भी कहा कि इस शुभ कार्यमें सुयोग देनेके लिए, आगरा दरबारमें सम्मिलित हुए राजाओंने हमें अभिवचन दिया है। गङ्गारामजीने कहा यदि राजा लोग सहायतार्थ अग्रसर हुए, तो हम लोग अति प्रसन्नतासे सम्मिलित हो जायेंगे।

गङ्गारामजीने एक दिन अभ्रक भस्म की चर्चा चलाई। स्वामीजीने कृष्ण अभ्रकके भस्मकी एक पुड़िया उसे दी। उसने सारी भस्म भी देखनी चाही। स्वामीजीने वह भी उसे दिखा दी। गङ्गारामने कहा, "स्वामीजी! अभ्रक तो बड़ा वाजीकरण औषध है। इसका सेवन करके सबको वशीभूत करलेनेवाले कामदेवसे आप कैसे बचगये हैं?" स्वामीजीने उत्तर दिया, "काम-वासना जीतनेका यह विधान है कि एकांत स्थानमें रहे, नाच आदि कभी न देखे। अनुचित स्वरूपका देखना, अनुचित शब्दका सुनना और अनुचित वस्तुओंका स्मरण करना परित्याग कर देवे। स्त्रियोंकी ओर न निहारे,

नियमपूर्वक जीवन व्यतीत करे। इन साधनोंसे वासना मन्द हो जाती है। मनुष्य जितना वासनाकी तृप्तिका यत्न करेगा वह शान्त न होकर उतनी ही बढ़ती चली जायगी। इस लिए विषय वासनाकी चिन्तन भी न करे। जितेन्द्रिय बननेके अभिलाषीको, रातदिन प्रणवका जप करना चाहिए। रातको यदि जप करते हुए आलस्य बहुत बढ़ जाय तो दो घण्टा भर गाढ निद्रा लेकर उठ बैठे और पूर्ववत् प्रणवपवित्रका जप करना आरम्भ कर दे। बहुत सोनेसे स्वप्न अधिक आने लग जाते हैं, ये जितेन्द्रिय जनके लिए अनिष्ट हैं। प्रातःकाल मालकंगनीके पाँच दाने खा लिया करे। इस प्रकार जप आदि साधनोंसे काम-वासना जीत ली जाती है।

विषयका विषधर जब डसे आम् जड़ीको चबा,
है नाग-दमन हि ओषधी ढूँढन दूर न जा।
उपशम होवे वासना मनके मिटें विकार,
यदि विधिसे यह लीजिए नाम अमोल अपार।

स्वामीजी यहाँ कई दिन निवास करनेके पश्चात् हरिद्वारको चल पड़े।

इतने चिरसे खण्डनके क्षेत्रमें उतर कर महाराजने मूर्तियोंका खण्डन किया; वैष्णव, शैव, और शाक्त आदि सम्प्रदायोंको अमूलक प्रमाणित किया; वाम आदि कु-पथोंकी पोल खोली; कण्ठी, तिलक, छाप, मालाका निराकरण किया; अवतारवाद और पुराण-उपपुराण वेदविरुद्ध सिद्ध किये; गङ्गादि नदियोंके स्नान और एकादशी आदि व्रतोंके माहात्म्यको अलीक ठहराया; और वेद तथा आर्ष ग्रन्थोंको प्रामाणिक बताया।

छठा सर्ग।

हरिद्वारका कुम्भ-मेला, समस्त आर्यावर्तमें एक अद्भुत और अतुल मेला होता है। साधु-सन्त, जपी-तपस्वी, और चारोंवर्णोंके उत्तम, मध्यम तथा निकृष्ट कोटिके गृहस्थ लाखोंकी संख्यामें, दूर दूरसे यहाँ एकत्रित होते हैं। संन्यासियों तथा गुसाइयोंके मठ, उदासियों और निर्मलोंके अखाड़े, साधु-सन्तोंसे भर जाते हैं। वैरागी लोग सहस्रोंकी संख्यामें वहाँ रहते हैं। अन्य

छोटे छोटे सम्प्रदायोंके लोग भी अपनी अपनी टोलियाँ बनाकर वहाँ निवास करतेहैं।मण्डलेश्वर साधु-महात्मा मण्डलियों सहित विविक्त प्रदेशोंमें पर्ण-कुटियाँ डालकर, कथा-वार्त्ता करते और शिष्योंसे परस्पर वाद-वितण्डा कराते हुए, अति गौरवसूचक ढंगसे कालयापन करते हैं। परन्तु विरक्त सन्त इस कोलाहल-आकुल स्थानसे अति दूर, एकान्त और भू-भागमें रहकर, आत्माकार वृत्तिमें निमग्न संन्यासधर्मका एक ज्वलन्त उदाहरण दिखाई पड़ते हैं। राजे महाराजे सेठ साहूकार वहाँ आकर, अपनी उदारताका द्वार खोल देते हैं । जप-तप, भजन--पाठ, पूजन-आराधन, ज्ञान-ध्यान, और दान-पुण्य करते हुए सहस्रों नर-नारी, उस समय उस स्थानके वायुमण्डलको बदल देते हैं । सर्वत्र एक अपूर्व शोभा छा जाती है ।

स्वामी दयानन्द महाराजने ऐसे समयको अपने उद्देश्यकी उद्घोषणाके लिए बहुत अनुकूल समझा । इस लिए कुम्भ-संक्रान्तिके एक मास पूर्व, चैत्र संवत् १९२४ के आरम्भमें तदनुसार फाल्गुन सुदी ७ सं० १९२३ को वे हरिद्वार पधारे। वहाँ भीमगोड़ेके ऊपर, सप्तस्रोतपर एक बड़ा बाँध, कुछ पर्णकुटियाँ निर्माण कर, वहाँ, शंकरानन्दजी आदि पाँच छः जनोंके साथ रहने लगे। महाराजने सत्यके प्रचारके स्थानपर एक "पाखण्ड खण्डिनी" नामक पताका स्थापित कर दी और प्रतिदिन सत्यका उपदेश करना आरम्भ कर दिया । जिस दिन, साम्प्रदायिक धर्मकी राजधानीमें पौराणिक धर्मके केन्द्रमें, एक निर्भय आत्मत्यागी महात्माने सत्यका नाद बजाया वह दिन धर्मके इतिहासमें सदा स्मरणीय रहेगा। पौराणिक धर्मके उस गढ़में उन्होंने वैदिक धर्मकी घोषणा की। साम्प्रदायिक सघन वनपर समालोचनाके कठोर कुठाराघात किये । पौराणिक कथा और माहात्म्यकी कोमल. ललित, लताओंपर तीव्र खण्डनका प्रखर खड्गप्रहार किया । स्वामीजी महाराजके आश्रमपर झूलते हुए, निराले झण्डेको देखकर लोग शत शत संख्यामें भीतर चले जाते और उनमेंसे बहुतेरे स्वामीजीके कथनोंको स्वीकार कर लेते थे । उस सारे महा-मेलेमें, जहाँ सुनो श्रीमद्दयानन्दजीके प्रबल प्रचारकी ही चर्चा सुनाई देती थी। आजतक लोगोंने एक संन्यासीके मुखसे मूर्ति-पूजनका खण्डन, श्राद्धोंका निराकरण, अवतारोंका अमूलकपन, पुराणों तथा उप-पुराणोंका

काल्पनिक होना और पर्व-स्नान-माहात्म्यका मिथ्यात्व नहीं सुना था। इस लिए कई लोग इस नवीन दृश्यको अति विस्मयसे देखते थे। कई एक इसका दोष कलिकालके माथे मढ़ते थे। और फिर कितने ही पण्डित, संन्यासीको 'नास्तिक' कहकर अपने शिष्यों सेवकों और यजमानोंका मुँह मूँदनेकी चेष्टा करते थे। पण्डितों और साधुओंने स्वामीजीके विरुद्ध व्याख्यान देना भी आरम्भ कर दिया। उनके प्रति कुवाच्य कहनेमें भी उन्होंने कोई त्रुटि उठा न रक्खी। परन्तु वहाँ तो इतना भारी भूकम्प हो रहा था कि देवमालारूपी गिरिमाला उसके धक्केसे, बार बार हिल हिल जाती थी। बहुतसे ब्राह्मण और साधु स्वामीजीकी कुटीपर शास्त्रार्थ करने जाते और दो एक प्रश्नोत्तरमें ही निरुत्तर हो जाते थे।

एक दिन सन्त अमीरसिंह निर्मलेने चित्सुखीकी एक पंक्ति स्वामीजीसे पूछी। स्वामीजीने उसे उत्तर देते हुए कहा कि आपके लिए मैं इसका अर्थ कर देता हूँ, परन्तु यह अनार्ष ग्रन्थ है इसे प्रमाण-कोटीमें नहीं मानना चाहिए।

स्वामी महानन्दजी संस्कृत-पठित थे। उन्होंने अपने जीवनमें पहिली ही बार वेदोंके दर्शन श्रीस्वामीजीके पास किये। कनखल पाठशालाके प्रसिद्ध पण्डित वस्तीरामजीने स्वामीजीसे व्याकरणपर सम्वाद किया। अन्य भी अनेक विद्वान् और वादीजन श्रीसंगतिमें जाते रहे। जो सन्तमहन्त, अपनी गद्दीके गौरवसे कहीं आते जाते नहीं थे वे अपने शिष्योंको भेज स्वामीजीकी बातें सुनते थे। कुछ एक राजे महाराजे भी संन्यासिराजके दर्शनोंको पधारे थे।

काशीके सुप्रसिद्ध पण्डित, स्वामी विशुद्धानन्दजीने एक दिन "ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत् बाहू राजन्यः कृतः, ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत" इस मंत्रका अर्थ यह किया कि ब्राह्मण ब्रह्माके मुखसे, क्षत्रिय भुजाओंसे, वैश्य ऊरूसे, और शूद्र पैरोंसे उत्पन्न हुए हैं। स्वामीजीने विशुद्धानन्दजीके अर्थोंपर कटाक्ष करते हुए श्रोताओंको सदर्थ सुनाया कि चतुर्वर्ण-युक्त, मनुष्य समाजमें ब्राह्मण मुख हैं, अर्थात् मुख-सदृश हैं, क्षत्रिय भुजा हैं, वैश्य ऊरु हैं और शूद्र पाँव हैं।

उन्हीं दिनोंमें, गुसाइयों और स्वामी विशुद्धानन्दमें परस्पर खटपट हो गई, जिससे गुसाइयोंने स्वामी विशुद्धानन्दपर अभियोग चला दिया। गुसाईं

स्वामीजीके समीपजा सहायतार्थ-प्रार्थी हुए। स्वामीजीने उन्हें स्पष्ट कह दिया कि इसविषयमें तुम दोनों हमारे लिए समान हो। इस लिए हम किसी एक की सहायता नहीं कर सकते।

उस महा-मेलेपर स्वामीजीने बहुतसे व्याख्यान दिये। अनेक शास्त्रार्थ किये। बीसियों वादियोंको जीता। सैंकड़ों जिज्ञासुओंको समझाया और भागवत-खण्डनकी सैंकड़ों पुस्तकें बाँटी, परन्तु अन्तको उनके निर्मल चित्तचन्द्रमें उदासीनताकी एक रेखा उभर आई। स्वामी दयानन्दजी ने अकाल-पीड़ित प्राणियोंके करुणक्रन्दनको अपने कानों सुना था। अवध आदि प्रांतोंमें भ्रमण करके वहाँ दीनदुर्बल दुःखियोंकी हृदय-विदारक दशाको अपनी आँखों देखा था। विंध्याचल आदि प्रदेशोंकी यात्रा करते हुए कोल, भील, और संथाल आदि भारतमाताके पुत्रोंको अमानुष अवस्थामें अवलोकन किया था। उन्होंने क्षत्रियोंकी तेजोहीन क्षीण देहोंको, उनके ऐतिहासिक स्थानोंमें जाकर दृष्टि-गोचर किया था। वैश्योंकी अवस्था भी उनसे छिपी न थी। सत्य धर्मके सूर्यको साम्प्रदायिक राहुने ग्रस लिया है, यह वे जानते ही थे। ईसाई धर्मकी बढ़ती हुई बाढ़, किस प्रकार अबोध ग्रामीण प्रजाको प्लावित किये जारही है, यह उन्हें विदित हो ही गया था। मिथ्या संस्कारोंका विषम विषैला कीड़ा, जातीय जीवनकी जड़ोंमें किस प्रकार घुसा जाता है, यह उन्हें ज्ञात हो चुका था। वे यह भी जानते थे कि पश्चिमी विचार, पुरातन आर्यसभ्यताको, आर्य संस्कारोंको, आर्यधर्म-कर्मको, और रीति-नीतिको, किस प्रकार घुनके सदृश खोखला किए जा रहे हैं। इसी कारण उनके अन्तःकरणमें उष्मा बढ़ गई थी, हृदय-स्रोतसे भूतदयाका प्रबल प्रवाह प्रवाहित होगया था। मस्तिष्क-तन्तु जालमें एक विचित्र संचालन उत्पन्न हो आया था, और कायामें क्रिया-त्मक जीवनकी एक अद्भुत उत्तेजनाका प्रादुर्भाव हुआ। किसी भी महान् कार्यका एकाकी सिद्ध करना सुगम नहीं। इस लिए सहायतार्थ स्वामीजीने पहले आर्यजातिके सिरको हिलाया। ब्राह्मणोंको जगानेमें वे यत्नशील हुए। उन्होंने पंडितों-पुरोहितोंको बहुतेरा उकसाया, भड़काया, उत्तेजित किया, प्रोत्साहन दिया, परन्तु ऋषि-मुनियोंके वंशजोंके, पुरातन आर्यसन्तानोंके अंग, इतने शिथिल होगये थे; उनके मस्तक-मज्जातन्तु इतने मन्द पड़ गये

थे कि उनमें गति उत्पन्न होनेमेंही न आई। उनके चित्त, काल-चक्रकी विचित्र पेचोली चालसे सचेत न होसके। आगरा, ग्वालियर, जयपुर, पुष्कर और अजमेर आदि स्थानमें भ्रमण करते हुए उन्हें प्रत्यक्ष होगया था कि ये पण्डित-पुरोहित जन, अपने पुरातन पुरुषोंके पौरुषको खोचुके हैं। ये तो अब इतने असमर्थ होगये हैं कि परोपकारके लिए एक साधारणसी सामयिक स्वार्थ-शृंखलाको तोड़नेका भी साहसनहीं करते। विरोधके घनघोर घटाटोपसहित निराश और हताशकी महातमोमयी अमावस्याकी रात्रिमें उन्हें अति दूरपर, आशाका एक टिमटिमाता हुआ दीपक दिखाई दिया, और वह हरिद्वार के द्वादशवर्षीय कुम्भपर साधु-सन्यासियोंका सम्मिलिन था। स्वामीजीके हृदय-कमलमें आशाकी ऐसी सुगन्धका उद्भव होना स्वभाविक था कि साधु-संन्यासी लोग, घर-बारत्यागी हैं, विरुक्त हैं, भिक्षामात्रोपजीवी होनेसे स्वार्थ-कीचड़से पार पागये हैं, ब्रह्मचिन्तनके कारण आत्मज्ञानी और समदृष्टि हैं, लोभ-मोहके बन्धन तोड़ बैठे हैं। यदि वे जागृत होजायँ, सत्यके सहायक बन जायँ, भूतदयाके प्रभावसे प्रभावित होजायँ, परहित कामनासे कटिबद्ध होकर कार्य-क्षेत्रमें उतर आयँ तो आर्यसन्तानके सिरपरसे दुःखदरिद्रके दिन दूर होते देर न लगेगी। इसके भाग्यका पूर्ण चंद्रमा, उन्नतिके विशाल, विमल, नील, नभमें फिरसे चमकने लग जाएगा। आर्यधर्मका प्रचार, आर्यवर्तमें ही क्यों, देश-देशांतरोंमें भी हो जायगा। सर्वत्र ही आर्यग्रंथोंका पठन-पाठन प्रवृत्त हो जायगा, परन्तु साराबल लगानेपर भी, वहां महा-मेलेमें एक भी सत्यका सहायक साधु-संन्यासी न मिला, हिमालयके चरणोंमें उन्होंने एक भी ऐसा यति न देखा जो बन्धुप्रेमसे प्रेरित हुआ हो, जो पर-पीड़ाके लिए अनुकम्पा भाव रखता हो। एक ब्रह्मज्ञानी कर्मवीर भी, जागतिक हितकी जोत जगा कर सब ठौर चांदना कर देता है, परन्तु वहां सैकड़ों ब्रह्मज्ञानका अभिमान करने वालोंमें किंचित भी क्रिया-धर्म और पराक्रम न पाया। गङ्गाके निर्मल नीरके तीरपर एकभी भगवद्भक्ति और प्रजा-प्रेमकी इकट्ठी माला जपता हुआ न मिला वेष था, नाम था, आकृति थी, रङ्ग था, परन्तु उस सारे मेलेमें वह आत्मा नहीं था जो अनुभव करता—जो, सत्यपरायण होकर स्वामीजीका संगी-साथी बनजाता उस समय सचमुच, महाराजने अपने आपको अकेला अनुभव किया।

जिसमें जातीय हित नहीं-पर सुधार उपकार,
धर्म-उत्तेजनारहित जो सो नर देह असार।
जीना परहित-शून्यका ऐसा जगमें जान,
धौंकनी ज्यों लुहारकी ले सांस नहीं प्राण।
लिए सत्यके जो जिए सत्यता करे प्रचार,
पर-हित में भी रत रहे उसपै जाइए वार।

उन्होंने सोचा कि परोपकार एक महायज्ञ है। इसीको पूर्णकरनेके लिए मैं दीक्षित हुआ हूं। परन्तु यह सर्वोपरि यज्ञ तबतक सिद्ध न होगा जबतक इसकी पूर्णाहुतिमें सर्वस्व स्वाहा न किया जायगा। स्वामीजीने सारे उपकरण वहीं त्याग दिये, और महाभाष्यकी एक पुस्तक, एक स्वर्णमुद्रा, और मलमलका एक थान श्रीगुरुदेवकी सेवामें मथुरा भेज दिया। कैलासपर्वतजीने पुस्तकें आदि त्यागते देखकर स्वामीजीसे पूछा कि यह क्या करने लगे हो? स्वामीजीने उत्तर दिया कि जबतक आवश्यकतायें अल्प न की जायें, पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त नहीं होती और प्रयोजनभी सिद्ध नहीं होसकता। मैं सब पन्थाईयोंके विरुद्ध स्पष्ट स्पष्ट कहना चाहता हूं। इसके लिए निर्द्वन्द्व होना परमावश्यक है।

स्वामीजी पुस्तकें आदि सब त्यागकर सारे तनपर राख रमा, एक कौपीन-मात्रधारी, मौनावलम्बी होगये। व्याख्यान देना और वादविवाद करना तो दूर, वाणीका व्यापारभी बंद करके, केवल अपनी कुटीमें ही रहने लगे। जो केसरी अपने गम्भीरनादसे सारे मठोंको हिला रहा था, अखिल अखाड़ोंको कंपा रहा था, जिसकी गर्जनासे सब सम्प्रदायी थर्राते थे, वही स्वदेशवासियोंकी अकर्मण्यताके कारण मौन धारण करके चुप हो गया। वाणीका सर्व-व्यापार निरोधकर, अपनी कुटीहीमें काल काटने लगा।

परन्तु जिसमहात्माने "मौनात्सत्यं विशिष्यते" अर्थात् "चुप्पी साधनसे सत्य बोलना बढ़िया है" यह पाठ पढ़ाहो, वह भला कब तक मौन रह सकता है? हरद्वारमें ही एकदिन किसी मनुष्यने स्वामीजीकी कुटी-द्वारपर आकर यह वाक्य उच्चारण किया "निगमकल्पतरोर्गलितं फलम्" वेदसे भागवत उत्तम है। असत्यका संमान और सत्यका हनन स्वामीजीसे कैसे सहन

हो सकता था? उन्होंने यह वाक्य सुनते ही मौन-व्रत छोड़कर भागवतका खण्डन करना आरम्भ कर दिया।

स्वामीजीके कुटी स्थानसे ठीक उत्तरको, सप्तस्रोतसे ऊपरकी ओर, हिमालयकी अनेक ऊँची चोटियाँ दिखाई देती हैं। ये वास्तवमें परोपकार, परहित और तपकी मूर्तियाँ बनी हुई हैं। ये ही हैं, जो सागरसे उत्थित आकाश-विहारी अर्णवको, तिब्बतमें जाकर बरसनेसे रोक, भारतको लौटा देती हैं; आकाश-सागरके असंख्य धक्के सहन कर लेती हैं, परन्तु उसे सीमाका उल्लंघन नहीं करने देतीं; जो वेगवान् तरंग उनके सिरके ऊपरसे उछलकर पार जाना चाहते हैं, उन्हें ये घनीभूत हिम बनाकर अपने ऊपर बैठा लेती हैं; हिमके लाखों मन बोझसे दिनों दिन जर्जरीभूत हो रही हैं, परन्तु भारत भूमिकी रक्षामें सदा तत्पर हैं। इन्हींके तपोबलसे वर्षा है; इन्हींके प्रतापसे गङ्गा आदि नदियोंकी सृष्टि है; लाखों एकड़ भूमि सिंचन होती है और करोड़ों प्राणी पालन पाते हैं। यदि ये न होतीं, तो सारा आर्यावर्त मरुस्थल बन जाता। स्वामीजीके अति समीप कलकल ध्वनि करता हुआ गङ्गाजीका प्रवाह बह रहा था; जो शीतमें, ग्रीष्ममें, वर्षामें, रातमें, दिनमें निरन्तर बहा करता है। यह कुम्भ-मेलेकी महा-पूजासे न ही प्रसन्न और इसके अंग भंग करके नहर निकलनेसे न कुछ उदास होता है। यद्यपि गङ्गाजल स्वच्छ है, शीतल है, कोमल है, पतला है, परन्तु इसके विश्राम रहित अश्रान्त कर्मयोगने, पर्वत-मालाओंके वक्षस्थलोंको घोल घोलकर अपना मार्ग बनाया है। गतिमें बाधक चट्टानोंको चूर चूर करके बालूमें बदल दिया है। निरन्तरगतिसे, निरन्तर कर्मसे, क्या क्या नूतन परिणाम निकलते चले जाते हैं इसका ज्वलन्त उदाहरण, गङ्गाजीका प्रवाह, स्वामीजीके सम्मुख उपस्थित था।

प्रकृतिके पुस्तकालयमें स्वाध्याय करनेवाले, श्री स्वामीजीने प्रण कर लिया कि ईश्वर-कृपासे जितना ज्ञान मुझे प्राप्त हुआ है धर्म्म-प्रचार और लोकहित करते हुए मैं सफल बनाऊँगा। देववाणीमें वार्त्तालाप करता हुआ कुछ कालके लिए गङ्गाके किनारे किनारे भ्रमण करूँगा। क्रियात्मक जीवनके ज्योतिस्तम्भ, कर्मयोगके उच्च आदर्श, भगवान् दयानन्द सप्तस्रोतसे उठकर हृषीकेश चले गये। फिर पाँच छः दिनके अनन्तर वहाँसे लौटकर हरिद्वार, कनखल होते

हुए लण्ढौरामें आ विराजे । यहाँ वे तीन दिनसे निराहार थे । भूखने जब बहुत बाधित किया तो उन्होंने गङ्गातीरके समीपवर्ती खेतके स्वामीसे बैंगन माँगे, और उससे तीन बैंगन लेकर क्षुधा-वेदनाको शान्त किया । वहाँसे चलकर शुक्रताल और परीक्षितगढ़ होते हुए वे गढ़मुक्तेश्वरमें पहुँचे । यहाँ पंद्रह दिन निवास किया । उन दिनोंमें, स्वामीजी एक मांझीकी कुटीके समीप, रातदिन रेतमें पड़े रहते थे । जो कोई पास आता उसे संस्कृतहीमें उपदेश देते थे । वहाँ पण्डितोंसे भी कुछ वार्त्तालाप हुआ था । वहाँ भी आप तीन दिन तक निराहार पड़े रहे । चौथे दिन जब मांझीकी रोटी आई तो उसने विचारा कि यह परमहंस तीन दिनसे यहीं पड़ा है । न तो उसके पास कोई अन्न लाया है और न ही यह माँगने गया है । निरन्नपेट है । उसने स्वामीजीके पास जाकर अपनी रोटीमें से आधी तोड़कर आदरसे उन्हें दी, जिसे स्वामीजीने ग्रहण कर लिया ।

इसके पश्चात् मीराँपुर, चासी आदि स्थानोंमें होते हुए कर्णवास आये । यहाँ एक दिन गङ्गाके पुलिनपर आसन लगाये बैठे थे कि दो विद्यार्थी एक दो सज्जनोंके साथ वहाँ आ निकले । उन्होंने देखा कि एक परमहंस बालूपर विराजमान हैं । समीप जाकर वे उनके तनपर गङ्गा-रज लगाने लगे । स्वामीजीने विद्यार्थियोंको अष्टाध्यायी, उपनिषद् और मनुस्मृति अध्ययन करनेका उपदेश दिया । फिर क्रमशः विचरते हुए ज्येष्ठ १९२४ में फरुखाबाद पहुँचे और विश्रान्त-घाटपर ठहरे । एक दिन बहुतसे सज्जन स्वामीजीके दर्शनार्थ गये उस समय स्वामीजी ध्यानावस्थित थे, इस लिए वे लोग चुपचाप बैठे रहे । जब उन्होंने समाधि खोली तो पण्डित मणिलालने पूछा "महाराज, गङ्गा और सूर्य क्या वस्तु हैं ?" स्वामीजीने कहा कि ये जड़ पदार्थ हैं ।

फरुखाबादमें दो तीन दिन निवास करके स्वामीजी फिर विचरते हुए चासी आये । यहाँपर पण्डित नन्दरामने लोगोंको शंख चक्र आदिसे दीक्षा देकर वैरागी बनानेका बड़ा कोलाहल मचा रक्खा था । इसका वर्णन यहाँके छत्रसिंह नामक जाटने स्वामीजीसे कर्णवासमें भी किया था, और यह भी निवेदन किया था कि कभी चासीमें पधारकर उपदेश दीजिएगा । छत्रसिंहने सबको कह दिया कि स्वामी दयानन्दजी इस समय सर्वोत्तम पण्डित हैं । यदि

वे कह दें कि वैरागी धर्म ग्रहण कर लो तो मुझे स्वीकार है। कोई बीस पच्चीस सुपठित ब्राह्मण और जाट मिलकर पण्डित नन्दरामको साथ लिये स्वामीजीकी सेवामें उपस्थित हुए। नन्दरामको जब, स्वामीजीका पूरा परिचय प्राप्त हुआ तो वह वहाँसे, आतेही चुपका खिसककर परली धाराकी ओर चला गया। जब बुलानेके लिए वहाँ मनुष्य भेजा गया तो वहाँसे भागकर अहारमें जा पहुँचा। चाहे नन्दरामने शास्त्रार्थ न किया, परन्तु भागनेसेही उसकी पूरी पोल खुल गई। सारे जाट, वैरागी मतसे बच गये। यहाँ महाराज १५ दिन-तक उपदेश देकर लोगोंको कृतार्थ करते रहे।

चासीसे चलकर, श्रीमहाराज थारपुर गये और फिर रामघाटमें आकर एक पर्ण-कुटीमें निवास करने लगे। रामघाटमें टीकाराम नामका एक ब्राह्मण रहता था। वह वास्तवमें कर्णवासका निवासी था। आषाढ़ सुदी ५ सं० १९२४ का वर्णन है कि टीकाराम बिना 'नमो नारायण' कहे स्वामीजीकी कुटियाके पाससे चला गया। उसे क्या मालूम था कि इस कुटीमें विराजमान, महात्मा एक दिन अपने धर्म्मगुरु बनेंगे। जब बनखण्डीमें उसने केशवदेव ब्रह्मचारीसे स्वामीजीके गुण सुने तो ब्रह्मचारीको साथ लेकर श्री स्वामीजीकी सेवामें उपस्थित हुआ और 'नमो नारायण' निवेदन करके बैठ गया। स्वामीजीने पूछा, "कौन होते हो?" उसने कहा, "ब्राह्मण हूँ।"

"क्या सन्ध्यादि पढ़ा है?"

" नहीं महाराज; परन्तु गायत्री कण्ठाग्र है "।

" अच्छा सुनाओ "।

" किसीके सम्मुख गायत्रीका पाठकरना, गुरुने विवर्जित किया है।"

" भद्र! संन्यासी, ब्राह्मणोंकाभी गुरु होता है, इस लिए हमारे सामने पढ़ते हुए कोई संकोच न करो। "

ब्रह्मचारीनेभी टीकारामको गायत्री सुनानेके लिए प्रेरित किया। उसके मुखसे गायत्रीका शुद्धोच्चारण सुनकर स्वामीजी बड़े प्रसन्न हुए; और उन्होंने प्रोत्साहित करके सन्ध्यादि कर्मोंमें उसकी रुचि उत्पन्न कर दी। स्वामीजीने उसे सन्ध्याका सारा पाठ अपने करकमलोंसे लिखकर दिया।

टीकारामने सिद्धान्तकौमुदीपर कुछ वार्त्तालाप किया, परन्तु स्वामीजीकी विद्याको अथाह देखकर शान्त हो गया । प्रतिदिनके सत्संग और प्रश्नोत्तरोंसे उसके सारे सन्देह मिट गये । श्री उपदेशोंसे वह इतना प्रभावित हुआ कि उसने विष्णुसहस्र नाम, गङ्गालहरी आदि सभी स्तोत्र, एक रुद्रीको छोड़कर गङ्गा-अर्पण कर दिये । अपने ठाकुरोंकोभी उसी महानदमें स्थापित कर दिया। अन्य भी अनेक पण्डित स्वामी-सेवामें आते रहे और उनके कथनोंको सुनकर स्वीकार करते रहे । स्वामीजीके विद्याबलकी सभी ब्राह्मण प्रशंसा करते थे । प्रति सायं, चार बजे सैकड़ों मनुष्य सत्संग करने आते थे। गुसाईं शम्भुगिरि जी आते हुए तुलसीदल ले आते और स्वामीजीको समर्पण करके विनोदमें कहते कि स्वामीजी महाराज, हमारे तो आपही शालिग्राम हो । उन दिनों स्वामीजीके मसूड़ोंमें पीड़ा हुआ करती थी, इस लिए वे तम्बाकू मला करते थे ।

सातवाँ सर्ग ।

श्री पण्डित टीकारामजी स्वामीजीसे उपदेश लेकर अपने पुराने पूजा-पाठके कामोंसे विरक्त हो गये। नवीन विचारोंकी उत्तेजना भी कुछ कम न थी । वे सीधे कर्णवास आये और ठाकुर गोपालसिंह, जयरामसिंह आदि यजमानोंको एकत्रित करके कहने लगे कि रामघाटमें एक स्वामी ठहरे हुए हैं । वे अद्वितीय विद्वान् और महात्मा जन हैं । उनके सत्संगसे मुझे विश्वास हो गया है कि कण्ठी, तिलक आदि चिन्ह पन्थाइयोंके मनघड़न्त हैं, अशास्त्रीय हैं । वेद-शास्त्रमें प्रतिमा-पूजनका विधान नहीं है । पुराण, तीर्थ, व्रत, माहात्म्य ये सब कल्पित हैं । तीनों वर्णोंके लिए एकही गायत्री है । भाई ! मेरा निश्चय परिवर्तित हो गया है, इस लिए मैं अब आपके मन्दिरकी पूजा नहीं करूँगा । अच्छा तो यही है कि आपभी गुरु महाराजके दर्शनोंसे अपने भ्रम नाश करके यज्ञोपवीत धारण कर लें; मूर्ति-पूजा आदि अमूलक कार्योंका परित्याग कर दें ।

अपने पुरोहितकी नूतन वार्ताको सुनकर सारे ठाकुर एक वार तो आश्चर्य-निमग्न हो गये; परन्तु तुरन्तही, एक ऐसे महापुरुषके दर्शनोंकी लालसासे लाला-

यित होकर ठाकुर धर्मसिंह और गोपालसिंहजीने टीकारामजीको भेजकर स्वामीजीको कर्णवासमें लिवा लानेका प्रस्ताव किया। उधर प्रस्ताव अभी होनेही पाया था कि स्वामीजी स्वयं कर्णवासमें आ विराजे। उन्होंने नागाबाबाकी मढ़ीके आगे बसेंदू वृक्षके तले आसन लगाया। अगलदिन टीकाराम रामघाटसे लौट आये, और उन्होंने स्वामीजीके पधारनेका समाचार ठाकुरोंको दिया। फिर सब मिलकर श्रीदर्शनोंको गये। ठाकुर गोपालसिंहजीने नीचे बिछानेके लिए घास लाकर दी।

ठाकुर धर्मसिंह कुछ संस्कृत भी जानते थे उन्होंने स्वामीजीके समीप जाकर संस्कृतमें अपना नाम, गोत्र आदि उच्चारण करके उनको नमस्कार किया। प्रत्युत्तरमें आशीर्वाद देकर स्वामीजीने उनको बड़े प्रेमसे समझाना आरम्भ किया। प्रश्न करके स्वामीजीने जान लिया कि ये क्षत्रिय हैं, और कुलकी रीतिके कारण अभीतक यज्ञोपवीत विहीन हैं। स्वामीजीने सशोक कहा कि यहाँके पण्डित-पुरोहितोंने लोगोंमें भ्रष्टाचार फैलाया हुआ है। भला, इससे बढ़कर अनाचार और कु-रीति और क्या होगी कि क्षत्रियोंके पुत्रोंके डाढ़ी मूञ्छ मुँहपर निकलने लगी है, परन्तु अभीतक यज्ञोपवीत नहीं हुआ! इन्हीं अधर्माचरणोंके कारण यह देश दिनोंदिन अधोगतिको प्राप्त हो रहा है। इस प्रकार स्वामीजीने युवकोंको उपनयनके लिये बड़ा उत्तेजित किया।

एक दिन एक पण्डितने स्वामीजीको निमन्त्रित किया और ठाकुरोंको भोग लगाकर उन्हें देने लगा। स्वामीजीने यह कहकर कि हम उच्छिष्ट नहीं खाया करते, उसे ग्रहण नहीं किया।

कर्णवाससे प्रस्थान कर श्रीस्वामीजी महाराज अनूपशहरमें सुशोभित हुए। पहले एक सप्ताहतक बाँसोंके टालके निकट एक कुटियामें निवास किया। उस समय स्वामीजी कुछ रुग्ण हो गये थे। इस लिए टालके अधिपति लाला गौरीशङ्करजीने तुलसीके पत्ते काली मिर्चोंके साथ घोटकर पिलाये और सोंठ डालकर मूंगकी दालका पथ्य दिया। इससे स्वामीजी स्वस्थ हो गये। बूँदीके राजाके गुरु रामदास वैरागी वहीं रहते थे। वे बड़े सज्जन पुरुष थे और मूर्त्ति-पूजन नहीं करते थे। स्वामीजी उनसे बड़े प्रसन्न थे। एक दक्षिणी स्वामी भी यहाँ रहा करता था। वह सूर्यपुरीको स्वामीजीके पास प्रश्न पूछनेके लिए बार

बार भेजा करता था । एक दिन सूर्यपुरीने उनसे एक ऐसा प्रश्न पूछा जो उसकी अपनी समझकी पहुँचसे परे था । महाराजने कहा कि यदि कोई विचारवान् जिज्ञासु होता तो हम उसे इसका तात्पर्य समझा देते, परन्तु आप तो सीखे हुए प्रश्न पूछते हो। आपकी स्थूल बुद्धि इसके सूक्ष्म अर्थको ग्रहण नहीं कर सकती । बालूमें मिश्रित चीनीके कण चिउँटी निकाल सकती है, परन्तु हाथीकी सूँडकी पकड़में वे नहीं आ सकते ।

स्वामीजी टालसे उठकर नगरकी दूसरी ओर निवास करनेके विचारसे जब चलने लगे तो रामदासजीने कहा, "भगवन्, नगरमें आजकल भागवत की कथा बड़ी धूमधामसे हो रही है और आप भागवतका तीव्र खण्डन करते हैं । कहीं ऐसा न हो कि नगरमें माँगी मधूकड़ी भी न मिले ।" स्वामीजीने मुस्कराकर कहा, "इसकी कोई चिन्ता नहीं । हमारा प्रारब्ध हमारे साथ है ।"

१० भाद्रपद १९२४ को स्वामीजी अनूपशहरके निकट लालाबाबूकी कोठीमें एक सप्ताहपर्यन्त रहे । इसके पश्चात् नर्मदेश्वरके मन्दिरके समीप सतीकी मढ़ीमें निवास किया । सतीकी मढ़ीसे कोई दस बारह पैरके अन्तरपर नवलजङ्ग नामक महामल्लका अखाड़ा था । कहा जाता है कि उसकी जन्मभूमि पञ्जाब थी । वह सारस्वत ब्राह्मण था; और किसी कारणसे वहाँ जाकर रहने लगा था । वह बारह मासोंमें ही, जब चाहे तैरकर गङ्गापार कर जाता था ! बड़ा सदाचारी और सुशील था। उसकी एक ब्रह्मचारिणी बहिन भी थी । वह भी ऐसी शक्तिमती थी कि वर्षाऋतुमें एक हाथमें तलवार लेकर तैरती हुई गङ्गाको पार कर जाया करती थी ! ! नवलजङ्ग श्रीस्वामी-चरणोंका प्रिय भक्त बन गया था । वह प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर स्नानादि करके गङ्गाकी शुद्ध मिट्टी लाता और अति प्रीतिसे चन्दनकी भाँति रगड़कर स्वामीजीके सम्पूर्ण शरीरपर रमा देता । श्री स्वामीजी अपने कार्य कदाचित् ही किसीसे कराते थे, परन्तु भक्तकी भावनाके वशीभूत होकर उन्हें इस सेवाका सौभाग्य नवलजङ्गको देना ही पड़ा था ।

एक दिन ऐसा हुआ कि अकस्मात् छः सात वामी हाथमें मदिराकी बोतल लिये, मुखसे ऊटपटाँग बकते, स्वामीजीके आसनकी ओर आये । वे यह भी

कह रहे थे कि आज हम दयानन्दको वारुणी-स्नान कराकर ही छोड़ेंगे। समीप आते ही उन्होंने चिल्लाकर पुकारा "अरे दयानन्द, निकल बाहर, तुझे शुद्ध करें, वीर बनायें। अब हम तुझे यह बताकर ही जायेंगे कि शास्त्रधर्म-खण्डनका फल कितना मीठा है।" स्वामीजीने जब देखा कि वे दुष्ट जन मद्यमें मत्त—बौड़ाते, बड़बड़ करते हुए—सीधे मढ़ीकी ओर चले आ रहे हैं तो उन्होंने पुकारकर कहा "नवलजङ्ग, भाई ये मंदिरामें मतवाले वामी कोलाहल कर रहे हैं। आगे आकर इनका मद उतारना।" स्वामीजीके वचन सुनकर भक्त नवलजङ्ग उन मदान्ध, पामर वामियोंपर ऐसे दौड़ा, जैसे मदोन्मत्त हाथियोंपर शार्दूल दौड़ता है। नवलजङ्गको आते देख वे वामी तुरन्त पिछले पाँव भाग गये और फिर कभी नहीं आये। उसके पश्चात् नवलजङ्ग बड़ी सावधानीसे स्वामीरक्षणमें तत्पर रहता था।

एक मथुरा निवासी पण्डित वहाँ भागवतकी कथा करने आया। उसका साक्षात् होनेपर स्वामीजीने उससे एक पद पूछा। उसका वह उत्तर तो न दे सका, परन्तु कुपित होकर लगा स्वामीजीको कोसने! स्वामीजी तो उसकी बाल-बुद्धिपर हंसते ही रहे, परन्तु लोगोंने उस कथक्कड़को लज्जित करके शान्त कर दिया।

पण्डित अम्बादत्तजीसे स्वामीजीका बड़ा मनोरंजक शास्त्रार्थ हुआ। उस दिन पण्डितोंका समारोह स्वामी-स्थानपर उमड़ आया था। वार्त्तालापमें जब स्वामीजीने युक्ति और प्रमाणोंकी झड़ी लगा दी तो जहां अन्य पण्डित आश्चर्य-सागरमें डूब गए वहां अम्बादत्तजीका हृदय उखड़ गया। मनमें किं-कर्त्तव्य-विमूढता छा गई। सांस फूल गया और लगे हांपने। स्वामीजीने धैर्य और आश्वासन देकर कहा कि घबड़ाइये नहीं। आप वृद्ध भी हैं और सम्भवतया आपको अधिक बोलनेका अभ्यास भी न हो।

जब अम्बादत्तजीका श्वास प्रश्वास ठिकाने आया और हृदयका धड़कना भी बन्द हो गया तो फिर महादेवकी पूजाका प्रकरण चलाया गया। स्वामीजीने इस पर समालोचना की कि जब महादेव अपनी ही रक्षा करनेमें समर्थ नहीं तो उसकी पूजासे मनुष्योंको क्या लाभ होगा? तुम यह भी कहा करते हो कि महादेव कैलाशपर निवास करते हैं और विष्णु वैकुण्ठमें; इससे भी यही

परिणाम निकलता है कि वे दोनों देव यहां मन्दिरोंमें नहीं हैं । जब वे यहां हैं ही नहीं तो फिर पूजा किसकी सिद्ध करना चाहते हो ? अन्तमें अम्बादत्तजी स्वामीजीके साथ सहमत हो गये ।

इस शास्त्रार्थका लोगोंपर बड़ा प्रभाव पड़ा, जिससे भगवान्वल्लभ वैद्य और पण्डित रविशंकर आदि सज्जनोंने अपने शालिग्राम गङ्गामें प्रवाहित कर दिये; कण्ठियां तोड़ डालीं ।

उसी नगरमें, 'बुद्धा' नामक, संस्कृतका एक धुरन्धर विद्वान् वास करता था । वह भी स्वामीजीसे वाद करनेके लिए आया और बड़ी देरतक धाराप्रवाह संस्कृत बोलता हुआ शास्त्रार्थ करता रहा । अन्तमें स्वामी-सिंहके सन्मुख स्व-सामर्थ्यको अति तुच्छ समझ कर नम्रशिर हो गया। उसने स्वामीजीके कथनोंको स्वीकार कर लिया । वह प्रबल बुद्धिका धनी स्वामी-प्रेमियोंमें प्रथम समझा जाने लगा । स्वामीजी भी उसपर अति प्रसन्न थे; और वत्सलतासे उसे 'बुद्धि-सागर' नामसे पुकारा करते थे ।

अनूपशहरमें स्वामीजीने रामलीलाका भी खण्डन किया । वे कहा करते थे कि श्रीराम जैसे महाराजों और जानकी ऐसी देवियोंके स्वांग बनाकर गली बाजारोंमें घुमाते फिरना एक अपमान जनक और लज्जास्पद कर्म है। इस कथनका लोगोंपर बड़ा प्रभाव पड़ा और आगामी वर्ष, वहां उन्होंने रामलीला नहीं की ।

राजा जयकृष्णजी स्वामीजीके दर्शनोंसे, पहले पहल, अनूपशहरमें ही कृतार्थ हुए । एक रात स्वामीजीकी सेवामें रहकर फिर चले गये ।

उन दिनों सय्यद मुहम्मद वहांके तहसीलदार थे । वे अरबी फारसीके एक अच्छे विद्वान् थे । नित्यप्रति स्वामीजीके समीप आया करते थे। स्वामीजीके सत्संगके प्रभावसे, उनके कथनके माधुर्यसे, और विद्याबलसे मोहित होकर वे, एक प्रकारसे, स्वामीजीके भक्तोंमें ही सम्मिलित हो गये थे ।

स्वामीजीके उपदेशोंसे अनेक लोग बहुत चिढ़ गये थे । उनको नानाविध विघ्न-बाधाओं और विविध वेदनाओंसे पीड़ित करनेमें भी आगा पीछा नहीं देखते थे । शत्रु बनकर, मित्र बनकर, जैसे भी हो, कभी कभी उस कल्पतरुको समूलोच्छेदन करनेपर तुल जाते थे ।

एक दिन एक ब्राह्मण स्वामीजीके समीप आया । विनयपूर्वक नमस्कार करके उसने स्वामीजीके सामने पान निवेदन किया । महाराजने सहज स्वभाव-से वह पान मुखमें रख लिया, परन्तु उसका रस लेते ही वे जान गये कि यह विषयुक्त है ! पर उन्होंने उस नराधमको कहा सुना कुछ नहीं, परन्तु वस्ती और न्योली कर्म करनेके लिए आप गङ्गापार चले गये । देरतक क्रिया करके फिर आसनपर आ विराजे । जैसे रुईमें लपेटी हुई आग छिप नहीं सकती, ऐसे ही पाप भी छिपा नहीं रहता । स्वामीजीको विष देनेका भेद किसी प्रकार तहसलिदार महाशयको भी ज्ञात हो गया । स्वामी-चरणोंमें श्रद्धा होनेके कारण, अति कोपाविष्ट होकर उसने तुरन्त उस पापिष्ठ पामर को पकड़ मंगवाया और बन्दीगृहमें डाल दिया। तत्पश्चात् स्वामीजीके दर्शनार्थ चला । मार्गमें प्रसन्नतासे उसके हृदयमें ये विचार उत्पन्न होते थे कि आज मैंने स्वामीजीके शत्रुको दण्ड देकर उनका बदला लिया है, इसलिए सम्मुख जाने पर वे प्रफुल्ल वदनसे आशीर्वाद देंगे । परन्तु निकट जानेपर जब स्वामीजीने उसे देखकर दृष्टि हटा ली और बोलना तक बन्द कर दिया तो उसके आश्चर्य-की कोई सीमा न रही । बड़ी प्रार्थनासे तहसलिदार महाशयने स्वामीजीसे उनकी अप्रसन्नताका कारण पूछा । स्वामीजीने कहा, "मैंने सुना है कि मेरे लिए आज आपने एक मनुष्यको आबद्ध किया है;परन्तु मैं मनुष्योंको बँध-वाने नहीं आया हूँ,किन्तु छुड़वाने आया हूँ । यदि दुष्ट अपनी दुष्टताको नहीं छोड़ते तो हम क्यों स्व-श्रेष्ठताका परित्याग करें ?" ये शब्द सुनकर तहसील-दारके रोमांच हो आये । उसने आजतक क्षमाका ऐसा धनी, प्रशान्त पुरुष, दूसरा न देखा था । वह महाराजको कर जोड़, नमस्कार करके चला गया । उसने जातेही उस ब्राह्मणको स्वतन्त्र कर दिया ।

स्वामीजी महाराज आधा माससे अधिक कालतक सतीकी मढ़ीमें रहे और फिर वहाँसे रामघाटको प्रस्थान कर गये ।

आठवाँ सर्ग।

मार्गशीर्ष सम्वत् १९२४ में स्वामीजी रामघाटमें आकर गङ्गाके बालूपर आसीन हो गये। बैठे बैठे जब सायंकाल हो गया तो क्षेमकरण नामक एक ब्रह्मचारी अपने मित्रसहित उधर आ निकला और पद्मासनस्थित एक संन्यासीको अवलोकन कर सोचने लगा कि सम्भव है ये सवेरेसे निराहार बैठे हों। उस समय उसने "ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनः" यह पद गान किया। इसे पुन स्वामीजीने मुस्कराकर हूँ कहा। फिर उनके निवेदनसे स्वामीजी बनखण्डी महादेवमें चले गये, और वहाँ रामचन्द्रजीने उनका आतिथ्य किया। अनेक पण्डित वहाँ आये,परन्तु स्वामीजीसे शास्त्रार्थ करनेका किसीको भी साहस न हुआ।

स्वामी कृष्णानन्द नामक एक संन्यासी स्वामीजीसे थोड़े अन्तरपर ठहरा हुआ था। बहुतसे ब्राह्मण मिलकर उसके पास गये और कहा कि दयानन्दजी यहाँ आये हुए हैं। वे भागवत आदि सब पुराणोंका खण्डन करते हैं। देवता और देव-मूर्तियोंके विरुद्ध बोलते हैं। इस लिये,आप चलिए और शास्त्रार्थ करके उन्हें परास्त कीजिए; परन्तु वह समुद्यत न हुआ। स्वामीजीने भी उसे आहूत किया, परन्तु निष्फल। अन्तमें, लोगोंके अत्यन्त विवश करनेपर आज कल करते हुए, वह तीसरे दिन स्वामीजीके समीप आकर इस बातपर अड़ गया कि पहले कोई मध्यस्थ नियत करो। स्वामीजीने कहा कि शास्त्रही मध्यस्थ हैं। बड़ी कठिनतासे कृष्णानन्दजीने इस बातको स्वीकार किया। वादका विषय वेदान्त था। कृष्णानन्दजीने कहा कि जगत् ऐसाही मिथ्या है जैसे रज्जुका सर्प। स्वामीजीने उत्तर दिया कि सच्चे सर्पका ज्ञान मनुष्यके अन्तःकरणमें विद्यमान होता है। केवल भयके कारण रज्जुको तदाकार देखकर सर्प मान लेता है। परन्तु ज्योंही सच्चे सर्पके लक्षणोंको रज्जुके साथ मिलाने लगता है उसी समय भय निवृत्त हो जाता है। अब आप बतावें कि सच्चे सर्पकी तरह वह सत्य जगत् कौनसा है, जिसकी सदृशताकी भ्रान्ति इस जगत्में हो रही है?

इतनेमें, एक वैरागीने स्वामीजीको कु-वचन कहना आरम्भ कर दिया। टीकारामजीने इसे डाँट डपट कर ठण्डा कर दिया। तीन दिनतक, प्रतिसायं

कृष्णानन्दजी और स्वामीजीका शास्त्रार्थ होता रहा। एक दिन शास्त्रार्थके समय किसीने कृष्णानन्दजीसे कहा, "महाराज, महादेवपर जल चढ़ा आऊं?" स्वामीजीने बीचमें कह दिया कि यहाँ तो पत्थर है, महादेव नहीं। इससे चिढ़कर कृष्णानन्दजीने साकारवादका अवलम्बन किया और इसीपर शास्त्रार्थ चलाया। स्वामीजीका तो यह मन-चाहता विषय था। उन्होंने धाराप्रवाह संस्कृत बोलते हुए निराकार सिद्धान्तपर वेदों और उपनिषदोंके प्रमाणोंकी एक लड़ी परोदी; और कृष्णानन्दजीको उनका अर्थ माननेके लिए बाधित किया। कृष्णानन्द कोई प्रमाण न दे सका। केवल गीताका यह श्लोक "यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत" लोगोंकी ओर मुँह करके पढ़ने लगा। स्वामीजीने गर्जकर कहा कि आप वाद मेरे साथ करते हैं, इसलिए मुझे ही अभिमुख कीजिए। परन्तु उसके तो विचारही उखड़ गये थे; वह चौकड़ीही भूल चुका था। मुखमें झाग आ गये। गलेमें घिघी बँध गई। चेहरा फीका पड़ गया। किसी प्रकार लाज रह जाय इससे उसने तर्क-शास्त्रकी शरण लेकर स्वामीजीको कहा कि अच्छा, लक्षणका लक्षण बताइए। स्वामीजीने उत्तर दिया कि जैसे कारणका कारण नहीं वैसेही लक्षणका लक्षण भी नहीं है। लोगोंने अपनी हँसीसे कृष्णानन्दजीकी हार प्रकाशित कर दी और वह घबराकर वहाँसे चलता बना।

क्षेमकरणजीके पास नाना देवताओंकी मूर्त्तियाँ थीं। वह बहुतसा समय उन्हींके पूजनार्चनमें बिताया करता था। परन्तु स्वामीजीके सत्संगसे, उसे यह सब, पाखण्ड मालूम होने लगा। वह रुद्राक्षकी मालायेंभी रक्खा करता था। उनके धारण करनेसे स्वामीजी बर्जा करते थे। परन्तु वह उन्हें त्यागनेसे झिझकता था। स्वामीजीका भक्त जानकर एक दिन कृष्णानन्दने उसे चिढ़ाया। इससे उसने वह सारा पाखण्ड परित्याग कर दिया।

यहाँ पण्डित बालमुकुन्दजी आदि अनेक ब्राह्मण, क्षत्रिय, और वैश्य श्री स्वामीजीके पास आते और अपने संशय निवारण कराते थे। प्रायः सभी लोग स्वामीजीके उपदेशोंकी सत्यताको तो स्वीकार कर लेते, परन्तु आजीविका-वश, वेद-विरुद्ध कर्म्मोंको त्यागनेका साहस नहीं करते थे। इसपरभी बीसियों वीर ऐसे निकल आये थे, जो निर्भय होकर मूर्त्तियोंको जलार्पण करनेमें किंचित्

भी संकोच न करते थे । नन्दकिशोर ब्रह्मचारी आदि अनेक विवेकियोंने, आस्था उठ जानेपर मूर्त्तियोंको जलमें विसर्जन कर दिया ।

स्वामीजी यहाँ लोगोंको सन्ध्योपासना और पञ्चमहायज्ञोंके करनेका बल-पूर्वक उपदेश देते रहे । उन्होंने सहस्रों वर्षोंकी आयुका होना वेदविरुद्ध बताया । रामघाटके स्वामी-भक्तोंमें भैरवनाथजीभी बड़े श्रद्धालु थे । वे विशुद्धानन्द आदि सभी पण्डितोंसे स्वामीजीकी विद्या कहीं अधिक मानते थे । भोजनके अनन्तर स्वामीजी तुलसीके पत्ते चबाया करते थे और कहा करते थे कि इससे मुख शुद्ध हो जाता है । घरके आँगनमें तुलसीका पेड़ हो तो घरका पवनभी पवित्र रहता है ।

रामघाटके लोगोंको कृतार्थ करके स्वामीजी विचरते विचरते बेलौन आये और खेराके स्थानपर पीपलके नीचे आसन लगाया । लोगोंने स्वामीजीके आसनके ऊपरके स्थानको सिरकियोंसे आच्छादित कर दिया ।

श्रीकृष्ण नामक पण्डेने श्रीरामजी तथा श्रीकृष्णजीके विषयमें पूछा । इस पर स्वामीजीने कहा कि वे अवतार नहीं थे, किन्तु प्रतापी राजे थे। साथही कहा कि रास-लीलासे तो कृष्णजीका गौरव घट जाता है ।

जोभी कोई श्रीसंगतिमें आता उसे नित्यकर्म करनेके लिए बल देते । पूछनेपर जो यह कहता कि मुझे गायत्री-पाठ नहीं आता तो उसे स्वयं सिखाने लगजाते । पण्डित इन्द्रमणि नामक एक सम्भ्रान्त व्यक्ति वहाँ रहते थे । उन्होंने गायत्रीकी अनेक प्रतियाँ लिखकर स्वामीजीके निकट रख दीं । स्वामीजी उन्हें लोगोंमें बाँटते थे । उनके नीचे सहस्रका अङ्क होता था, जिसका तात्पर्य यह था कि सहस्र बार इसका जप करना चाहिए । स्वामीजीने वहाँ कोई पचास मनुष्योंको गायत्रीपाठ सिखाया होगा । वहाँके अनेक सज्जन महाराजके प्रेमी बन गये थे ।

एक जनने पूछा, स्वामीजी, आप देहपर गङ्गाकी मिट्टी क्यों लगाते हैं ? उन्होंने उत्तर दिया कि ऐसा करनेसे शरीरपर मच्छर-काटनेका प्रभाव नहीं होता ।

एक सज्जनने समीप आकर कहा, "स्वामीजी, दण्डवत्" ।

स्वामीजीने हँसकर कहा, "दण्डवत् तुमही होओ ।"

यहाँ महाराज केवल तीन चार दिन ही रहे।

बेलौनसे प्रस्थान कर स्वामीजी कर्णवास पधारे। उनके आते ही पण्डितोंने शास्त्रार्थ करनेका कोलाहल मचाया और पण्डित अम्बादत्त, अनूपशहर-निवासी को इस कार्यमें कुशल समझकर बुला भेजा। वह तो पहले ही, अनूप शहरमें स्वामी-वचनोंके सामने सिर झुकाचुका था। इसलिए कर्णवासमें थोड़ेसे वार्त्तालापके पश्चात् ही स्वामिजीके कथनोंको 'सत्य है' कहकर नम्री-भूत हो गया। स्वामीजीकी इस विजयसे ठाकुरोंके उत्साह चौगुने बढ़ गए; और वे यज्ञोपवीत परिग्रहण करनेका दृढ़ संकल्प करके स्वामीजीसे पूछने लगे कि यज्ञोपवीत ग्रहण करनेके समय क्या क्या कर्म कर्त्तव्य है? महाराजने उन्हें सम्पूर्ण विधि बता दी। उसके अनुसार बड़ी आयु वालोंको प्रायश्चित्त कराना निश्चित हुआ। अनूपशहर, दानपूर, अहमदगढ़, रामघाट, जहांगीरा-बाद और कर्णवासके पण्डित गायत्रीजपके लिए निमन्त्रित होकर अनुष्ठान करने लगे। यह गायत्रीपुरश्चरण आधे शुक्ल पक्षमें समाप्त हो गया और स्वामिजीकी कुटियापर एक बृहद् हवन हुआ। उसमें होता, उद्गाता, और ऋत्विज् कर्णवासके ही पण्डित थे। इसके अनन्तर, श्री स्वामीजीने टीकारामके छोटे भाईको और गोपालसिंह, भूमसिंहजी आदि दस बारह क्षत्रिय युवकोंको यज्ञोपवीत देकर दीक्षित किया और श्रीमुखसे गाय-त्रीका उपदेश दिया। यज्ञकी समाप्तिपर सब उपस्थित जनोंमें यज्ञशेष बाँटा गया, जप और यज्ञके कर्त्ताओंको भी सामर्थ्यानुसार दक्षिणाद्वारा सन्तुष्ट किया गया। ठाकुरोंके इस यज्ञकी चर्चा कर्णवासके आसपास सर्वत्र फैल गई। इस शुभ कर्मका सभी यश गाते थे। उसका लोगोंपर इतना प्रभाव पड़ा कि ब्राह्मण,क्षत्रिय, और वैश्य टोलियां बनाकर जाह्नवीके तटपर श्रीमद्दयानन्द-जीके पास आते और उनके शुभ कर-कमलसे जनेऊ ग्रहण करते। ठाकुरोंमें यह कार्य नूतन था, और कर्णवासके ठाकुरोंकी प्रतिष्ठा भी बहुत थी। इस लिए, राजपूतोंमें इसका प्रभाव बड़ी उत्तेजनाके साथ फैलता चला गया। कोई, दो दो सौ कोसके राजपूतोंने आकर स्वामीजीके हाथसे उपवीत लिए। जो राजपूत गंगास्नान करने आते थे, वे साथ ही यह भी एक माहात्म्य समझते थे कि स्वामी दयानन्दजीसे दीक्षा लेकर गायत्रीका उपदेश ग्रहण

किया जाय। चालीस चालीस, पचास पचास राजपूत पंक्ति बांधकर गंगाके किनारे खड़े हो जाते और स्वामी दयानन्दजी महाराज, उन्हें यज्ञोपवीत देकर पतितपावनी, त्रिलोकतारणी, भगवती, गायत्रीका उपदेश देते। गंगा-तीरपर विचरते हुए भगवान् दयानन्दने इस प्रकार सावित्रीके उपदेशसे सहस्रों मनुष्योंका कल्याण किया।

कर्णवासमें तो इस यज्ञका विलक्षण प्रभाव पड़ गया था। प्रायः सभी छोटे बड़े स्वामीजीसे दीक्षित हो रहे थे। घरोंमें, गलियोंमें, बाजारोंमें, हाटोंपर, घाटोंपर जिधर जाओ नर-नारी यही कथा कहते थे—दयानन्दहीके गीत गाते थे।

वहाँ एक ९० वर्षकी वृद्धा, बालविधवा हंसा ठकुरानी रहा करती थी। यह देवी ठाकुर गोपालसिंहकी ताई थी। यद्यपि वह पांच छः ग्रामोंकी स्वामिनी थी, परन्तु उसका भोजन था जौकी रोटी और मूंगकी दाल। और वह इसे बनाती भी अपने हाथसे ही थी। ठाकुरोंके परिवारोंमें उसका बड़ा आदर था। छोटी बड़ी सभी बहू बेटियाँ उसको मानती थीं और माँ कहकर पुकारा करती थीं। जब सब ठाकुर एक एक करके श्रीस्वामीजीके शिष्य हो गए तो उस देवीने भी स्वामी-दर्शनोंकी लालसा प्रकटकी। ठाकुर गोपालसिंहके पूछनेपर स्वामीजीने उसको आनेकी आज्ञा देदी। वह वृद्धा स्वामीजीके समीप आई। उसने अतिशय श्रद्धासे भूमिके साथ सिर लगाकर स्वामीजीको नमस्कार किया। हाथ जोड़कर स्वकल्याणका, जन्म-सुधारका पथ पूछा। महाराजने उसे ठाकुर-पूजा छोड़ देनेको कहा और गायत्री मन्त्रका उपदेश किया। साथ ही ओम् पवित्रका जप करते रहनेकी शिक्षा दी। चिरकालपश्चात्, यह प्रथम समय था जब दयालु, दयानन्दजीद्वारा एक स्त्रीको गायत्रीजप करनेका अधिकार उपलब्ध हुआ। हंसा देवी, इस प्रकार श्री उपदेशसे निहाल होकर स्वगृहको लौट आई और अन्तिम दिनतक स्वामी-वचन-परायण रही।

पण्डित हीरावल्लभ भी एक बड़ा विद्वान् था। ऋग्वेद और यजुर्वेद उसे कण्ठाग्र थे। दर्शनोंमें भी वह निपुण था। व्याकरणमें तो वह प्रसिद्ध पण्डित माना ही जाता था। एक दिन अन्य अनेक पण्डितों सहित वह अनूप शहरसे स्वामीजीके साथ शास्त्रार्थ करनेके लिए कर्णवासमें आया। यह पोपक

मास था। जिस समय हीरावल्लभजी स्वामीजीके समीप आये उस समय वहाँ कोई दो सहस्र मनुष्योंकी भीड़भाड़ हो गई थी। उन्होंने आते ही सभास्थलके मध्यमें एक छोटेसे सुंदर सिंहासनपर गोमती चक्र, बालमुकुन्द, और शालिग्राम आदि मूर्त्तियाँ स्थापित करके ऊँचे स्वरसे प्रतिज्ञा की कि अब मैं यहाँसे तब उठूँगा, जब स्वामीजीके हाथसे इन्हें भोग लगवा लूँगा! पहला दिन तो अविराम संस्कृत भाषणमें ही बीता। अगले दिन फिर शास्त्र-संग्राम प्रारम्भ होगया। हीरावल्लभको, उसके साथीभी पर्याप्त सहायता देते थे, परन्तु वह प्रत्येक दिवस उदासीनही लौटा करता था। यह वाद लगातार छः दिन तक चलता रहा। एक दिन तो नौ घण्टोंतक विराम-विश्राम रहित वाद होता रहा। 'सर्वादीनि सर्वनामानि' इस सूत्रपर भी वाद चला, परन्तु स्वामीजीके महाभाष्यके प्रमाणोंको सुनकर हरिवल्लभ पराभूत होगया। उसमें आगे बोलनेका साहस न रहा। सारी सभाके समक्ष उसने कहा "स्वामीजी जो कुछ कहते हैं वह सब सत्य है, प्रामाणिक है। इनकी विद्या अगाध है। इनका शास्त्रानुशीलन अपार है।" और उसने उसी समय, मूर्तियोंको सिंहासनपरसे उठाकर गङ्गामें फेंक दिया और उनके स्थान सिंहासनपर वेद स्थापित कर दिये।

स्वामीजीने हीरावल्लभजीके सारग्राही होनेकी प्रभूत प्रशंसा की। हीरावल्लभके परास्त होनेसे प्रतिमा-पूजनसे अनेक सज्जनोंकी आस्था उठ गई। उन्होंने भी पण्डित प्रवरका अनुकरण करते हुए अपने शालिग्राम जलतलमें लीन कर दिये।

वहाँ कृष्णवल्लभसे भी वार्तालाप हुआ। स्वामीजी महाराजने उसे अंगद नामके एक पण्डितकी भूलें प्रदर्शित कीं। नन्दकिशोर पुजारीको महाराजने कहा कि मन्दिरमें जाकर टन टन पूँ पूँ करनेसे कोई लाभ नहीं। पुजारीने कहा कि महाराज हम तो इसी पूजा-पाठके प्रतापसे सात सहस्रके स्वामी बन गये हैं। इसपर स्वामीजीने उपदेश दिया कि जो कुछ तुम्हें मिल रहा है वह तुम्हारा प्रारब्ध है; पूर्वार्जित भोग है। वह जितना नियत है पाखण्ड परित्याग करनेपर भी उतना मिलकर ही रहेगा।

यहाँसे स्वामीजीने एक विद्यार्थीको प्रेरित करके मथुरामें स्वामी विरजानन्दजीके पास अध्ययनार्थ भिजवाया।

दारोगा अलफखाँने कुरानके सम्बन्धमें कुछ बातचीत की, परन्तु स्वामीजीके उत्तर सुनकर वे फिर न बोले। धर्मपुरके नवीन अधिपति मुसलमानने स्वामीजीसे पूछा कि क्या मैं भी किसी प्रकार शुद्ध हो सकता हूँ? स्वामीजीने उत्तर दिया कि हाँ, वेदानुकूल आचार-व्यवहार करनेसे आप अवश्य शुद्ध हो सकते हैं।

नववाँ सर्ग।

माघ वदी १५ सम्वत् १९२४ को सूर्यग्रहण था। इस लिए सहस्त्रों नर-नारी स्नानार्थ कर्णवास आ रहे थे। ऐसा प्रतीत होता था कि आज जन-सागरमें ज्वार-भाटा आ रहा है। स्वामीजी महाराज भी उस सुसमयको अनुकूल समझकर अपने भोलेभाले भारतवासी भाइयोंको विवेकदान देने लगे। उनके चरित्र-चन्द्रकी चटकीली चाँदनी पहलेही दूर-दूरतक छिटक रही थी; इस लिए मनुष्योंके झुण्डके झुण्ड दर्शनोंको आते, प्रश्न पूछते, संशय निवारण कराते, और उपदेश सुनकर धन्य धन्य करने लग जाते थे। उस महामेलेमें लोगोंके लिए कोई चित्ताकर्षक वस्तु थी तो आनन्दकन्द श्रीदयानन्द; कोई दर्शनीय सुन्दर आकृति थी तो दयानन्दकी मनोमोहिनी मधुरिमामयी मूर्ति; कोई श्रोतव्य वचन थे तो श्रीदयानन्दजी महाराजके सारगर्भित रसीले सत्योपदेश। सारांश यह कि सारा मेला उन्हींकी ओर झुका पड़ा था।

महाराज बसेन्दूके नीचे बैठे हुए धर्म्म-कर्म और आचार-विचारका उपदेश करते थे। साथ ही वे इन आठ गप्पोंका भी खण्डन करते थे।

१. प्रथम गप्प अठारह पुराण व्यासकृत हैं।

२. मूर्त्ति-पूजन।

३. शैव, शाक्त और रामानुजादि वैष्णव सम्प्रदाय।

४. तंत्र ग्रन्थ, वाममार्ग आदि।

५. मदिरा, भाँग इत्यादि मादक वस्तुयें।

६. व्यभिचार।

७. चोरी करना।

८. छल, कपट, अभिमान, झूँठ इत्यादि।

इन आठों गप्पोंका मनुष्योंको परित्याग करना चाहिए। इस मेलेमें भी सैकड़ों मनुष्योंने स्वामीजीसे गायत्रीका उपदेश लिया।

डिबाई निवासी शिवदयालजी सूर्य्य-ग्रहणके अवसरपर वहाँ आये हुए थे। उन्होंने स्वामीजीसे पूछा कि ग्रहण लगा हो तो भोजन किस समय करना चाहिए? महाराजने उत्तर दिया कि जब भूक लगे खालेना चाहिए।

शिवदयालने यज्ञोपवीतके विषयमें पूछा कि इसका किसको अधिकार है? इसके न धारण करनेसे क्या दोष हैं और धारण करनेमें क्या गुण हैं? स्वामीजीने कहा कि ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्यके बालकोंको जनेऊ लेनेका अधिकार है। जिसने यज्ञोपवीत धारण नहीं किया वह वैदिक कर्म करनेका अधिकारी नहीं हो सकता। यह सूत्र आर्य्योंका धार्मिक चिन्ह है और कर्त्तव्यचिन्ह है।

शिवदयालजीने संस्कारोंके लाभ पूछे, जिसपर स्वामीजीने वर्णन किया कि संस्कारोंसे जाति प्रबल हो जाती है; जैसे एकीकरणसे सूत्रके तारोंमें बल आ जाता है, जैसे वस्त्रोंको धोनेसे उनमें श्वेतता तथा दृढ़ताका आविर्भाव हो आता है, और जैसे औषधियोंको पुट और भावना देनेसे उनका प्रभाव बढ़ जाता है, ऐसेही संस्कार मनुष्यके जन्मको प्रबल बनानेमें कारण हैं।

स्वामीजी संस्कृतहीमें उत्तर देते थे, परन्तु जो लोग संस्कृत नहीं जानते थे उनको टीकारामजी भाषानुवाद करके समझा दिया करते थे।

उस समय लाला इन्द्रमणिजीने स्वामीजीको कहा कि आप अवधूत होकर इतने खण्डन-मण्डनके झगड़ेमें क्यों फँस गये हैं? उन्होंने उत्तरमें कहा कि मेरे लिये यह कार्य झगड़ा नहीं है, किन्तु ऋषि-ऋणका उतारना है। स्वार्थी लोग इस समय ऋषि-सन्तानको कु-मार्गपर चलाकर, उसे कु-रीतियोंके नुकीले काँटोंपर घसीटकर छलनी बना रहे हैं। मुझसे आर्य्यसन्तानकी यह दीन-दुर्दशा देखी नहीं जाती। मैंने प्रण करलिया है कि इसे सन्मार्गपर लानेका प्राणपणसे प्रयत्न करूंगा।

कर्णवासमें एकदिन बुलन्दशहरके कलेक्टर महाशय पधारे। स्वामीजीकी कीर्ति उन्होंने पहले ही सुन रक्खी थी, परन्तु कर्णवासमें आकर जब उन्होंने स्वामी-

यश सुना और साथही उन्हें यह भी पता लगा कि वह परमहँस महात्मा यहीं टिके हुए हैं तो मिलापार्थ स्वामीकुटीपर जा पहुँचे । उस समय महाराज कुटिया के भीतर ज्ञान-ध्यानमें परायण थे । कुटीसे दूरीपर खड़े होकर कलेक्टर महाशयने एक मनुष्यको स्वामीजीकी सेवामें भेजा और दर्शनोंकी इच्छा प्रकटकी । स्वामीजीने उत्तरमें कहा कि मुझे इससमय अवकाश नहीं । कलेक्टरने फिर पुछवाया कि आपको अवकाश किस समय होगा? उत्तरमें स्वामीजीने पूछा कि कलेक्टर महाशयको किस समय अवकाश होगा ? कलेक्टर महाशयने इसका उत्तर भिजवाया कि मुझे चार घण्टे पश्चात् अवकाशही अवकाश है । यह वाक्य सुनतेही स्वामीजी कुटीसे बाहर निकल आए शिष्टाचारके पश्चात् वेद-मंत्रों और मनुस्मृतिके श्लोकोंसे कलेक्टर महाशयको राज्यधर्म्मका उपदेश देते हुए बोले, "जिसके सिरपर एक परिवारके भरण-पोषणका भार होता है उसे बड़ी दौड़धूप करनी पड़ती है, रातों जागना पड़ता है और सिर खुजलानेका भी अवकाश नहीं मिलता; परन्तु आपके कथनसे बड़ा आश्चर्य्य हुआ कि सहस्रों मनुष्योंका बोझ आपके कन्धोंपर है, दीन दुखियोंके संकट निवारण करना आपका कर्त्तव्य है और तिसपर भी आपको चार घन्टोंके पश्चात् अवकाशही अवकाश है ।" स्वामीजीके स्पष्ट कथनको कलेक्टर महाशयने स्वीकार किया और वे प्रसन्नतापूर्वक वहाँसे विदा होकर चले आए ।

स्वामीजीका तेज आगन्तुकको कुछ ऐसा प्रभावित कर लेता था कि उनके समीप आनेपर अहङ्कारमें ऐंठे हुए बड़े बड़े अभिमानियोंका गर्व भी गल जाता था । रतीराम एक बड़ा प्रसिद्ध पहलवान था । वह अपने बलपर अति घमण्ड किया करता था । एक दिन, वह अभिमानमदमें मस्त, झूमता झामता स्वामीजीके आसनके पास आ निकला । महाराजको देखकर उसने तिरस्कारपूर्वक कहा, "अरे यह बाबा तो बड़ा हृष्ट-पुष्ट है ।" यही वाक्य दुहराते दुहराते जब वह स्वामीजीके बहुत निकट आ पहुँचा तो महाराजने उसपर एक दृष्टि डाली । उनके नेत्रस्रोतसे उस समय कुछ ऐसी मोहिनी शक्ति स्रावित हुई कि रतीराम दौड़कर श्रीचरणोंमें आ गिरा और पद-पद्म रज बारबार भालपर रमानेलगा । इस दृश्यको देखकर सभी दर्शक श्रद्धामय हो गये ।

बहुतसे पण्डित लोग जब स्वस्थानसे स्वामीजीके पास आते तो अपने मनमें युक्तियों और प्रमाणोंकी मालायें पिरो लाया करते थे—उत्तर प्रत्युत्तर सब सोच विचारकर आते थे। परन्तु स्वामीजीके सम्मुख आते ही सब सट्टी पट्टी भूल जाते थे।

एक दिनका वृत्तान्त है कि अहमदगढ़के पण्डित कमलनयन और अलीगढ़के पण्डित सुखदेव, अपने साथी पन्द्रह पण्डितों सहित स्वामीजीके पास आये। उन्होंने पूछनेके लिए कुछ अति कठिन प्रश्न चुने हुए थे। विद्यामें भी वे कुछ साधारण न थे। जिस समय, वे स्वामीजीके आसनपर पहुँचे उस समय महाराज गंगापर गए हुए थे। स्वल्पकालके प्रतीक्षणके अनन्तर ही स्वामीजी आते दिखाई दिये। उनके समीप आनेपर सबने अभ्युत्थानपूर्वक विनीत नमस्कार किया। महाराज तृणासनपर बैठकर कुछ कालतक अचलभावसे ध्यानावस्थित रहे। फिर आँखें खोलकर सबकी ओर देख उपदेश करने लगे। महाराजके विशाल भाल, मोहन मुखमण्डल, दिव्य, तेजोमयी मूर्ति और वचन-माधुर्यका पण्डित-मण्डलीपर ऐसा प्रभाव पड़ा—वे ऐसे विमोहित हुए—कि स्वामीजीके यह कहनेपर भी कि आप कोई प्रश्न करना चाहते हैं तो कीजिए, उन्हें कुछ भी पूछनेका साहस न हुआ। स्वामीजीके वचनोंको सत्य सत्य कहते हुए कु-रीतियोंका खण्डन सुनते रहे। दिन बहुत चढ़ आया था, इसलिए वे गंगापर स्नानार्थ चले गये।

वे मार्गमें एक दूसरेसे कहने लगे कि घरसे चलते समय तो प्रश्नोंके बहुतेरे बाँधनू बाँधकर चले थे, परन्तु स्वामीजीका कुछ प्रभाव ही ऐसा है कि उनके सामने आकर एकभी बात न सूझी। भाई यह स्वामी तो सचमुच कोई सिद्ध पुरुष है।

स्वामीजीकी ज्ञानदृष्टि कभी कभी आंखोंसे ओझल बातका भी पता दे दिया करती थी। इससे स्वामी-भक्त आश्चर्यमय हो जाया करते थे।

एक दिन, नन्दकिशोर उपाध्याय स्वामीजीके समीप आते समय एक खेतसे रमासकी कुछ फलियाँ तोड़ ले गये और वहाँ पहुँचकर स्वामीजीकी भेंट कीं। स्वामीजीने कहा तुम चोरी कर्मसे यह फलियाँ लाये हो, इस लिए हम ग्रहण नहीं करते। उसने कहा स्वामीजी! आप यह क्या कह रहे हैं!

मैंने किसीकी चोरी नहीं की। स्वामीजीने हंसकर कहा अच्छा बताओ, जिस खेतसे यह लाये हो, क्या लेते समय तुमने उसके स्वामीसे पूछ लिया था? नन्दकिशोरका सिर नीचा होगया और वह मन ही मन स्वामीजिके ज्ञान और व्रतकी प्रशंसा करने लगा।

स्वामीजी बड़े तपस्वी थे। उन्होंने भूख-प्यास, शीत-उष्ण आदि सब द्वन्द्व जीते हुए थे। पौष माघका शीत पड़ता था, घास-तृणपर हिम दिखाई देने लग जाता था, खेतोंपर कुहरा चमकने लगता था, जौहड़ोंका जल जम जाता था, पर कौपीनमात्रधारी परमहंसजी कभी कभी गङ्गाकी अत्यन्त शीतल रेतीहीमें पद्मासन लगाये सारी सारी रात बिता देते थे। महाराजको इस दशामें देख कभी कोई भक्त उनके तनपर कम्बल भी डाल जाता तो भी उसे नहीं ओढ़ते थे। यदि वह अपने आप खिसककर न उतर जाय तो ध्यानादिसे निवृत्त होनेपर उसे स्वयं उतार देते थे।

माघ मासका वर्णन है कि एक दिन, प्रातःकाल अत्यन्त शीतल पछवा पवन बड़े वेगसे वह रहा था। स्वामीजी महाराज स्नान-ध्यानसे निवृत्त होकर कुटियासे वाहर बद्धपद्मासन बैठे थे। और दर्शनको आये हुए ठाकुर लोग श्रीमुख-वचन श्रवण कर रहे थे। यद्यपि उन सम्पन्न लोगोंने रूई और ऊनके वस्त्र पहर रक्खे थे, परन्तु अतिशीतपातसे उनके अंग ठिठुर रहे थे। तन काँपते थे, नाकसे, आँखोंसे पानी बह रहा था। हाथ-पांव शून्य हुए जाते थे। परन्तु श्रीमद्दयानन्द थे कि निश्चल भावसे उपदेश-कार्य्यमें संलग्न थे। बाणोंकी भाँति आर-पार करनेवाला वायु शरीरको स्पर्श कर रहा था, पर वे अटल थे—अकम्प थे। सारे भक्त अपने भक्ति-भाजनकी इस सहनशीलताको अवलोकन कर आश्चर्य-निमग्न थे।

उस समय ठाकुर गोपालसिंहजीने हाथ जोड़कर पूछा, "भगवन्! घोर शीतपातके कारण हम सबके शरीर सिकुड़ रहे हैं, दांतोंसे दाँत बज रहे हैं परन्तु महाराजपर इस महाशीतका किंचित् भी प्रभाव दिखाई नहीं देता, इसका क्या कारण है?" स्वामीजीने मुस्कराकर कहा, कि "ब्रह्मचर्य और योगाभ्यास ही इसका कारण है।" उसने कहा, "तो हम कैसे जानें?" उस समय स्वामीजीने अपने हाथोंके अंगूठे घुटनोंपर रखकर, ऐसे बलसे दबाये

कि तत्काल ही उनके भालपर, ओसके कणोंकी तरह प्रस्वेदके बिन्दु चमकनेलगे; तनपर रमाई हुई सारी मिट्टी भीग गई; बगलोंमेंसे पसीना टपटप करके टपक पड़ा। शीतकालके भरे यौवनमें, इतनी ठण्डी पवनके तीव्र प्रवाहमें, शरीरका इस प्रकार पसीना पसीना होजाना दर्शकोंके लिए एक कल्पनातीत दृश्य था। सभी लोग मुक्तकण्ठसे स्वामीजीके योगबलकी प्रशंसा कर उठे।

स्वामीजीसे एक जनने पूछा कि आप गङ्गाको क्या मानते हैं? महाराजने कहा कि जो कुछ दीखती है। उसने कहा आपको क्या दीखती है? स्वामीजीने उत्तर दिया, जो आपको दीखती है परन्तु कहना सत्य ही सत्य। वह बोला मुझे तो जल दीखता है। स्वामीजीने कहा, सो मैं भी यही मानता हूँ।

कर्णवाससे प्रस्थान कर स्वामीजी ग्रामानुग्राम विचरने लगे। एक रात, स्वामीजी गङ्गाके दूसरे किनारे आसन लगाए समाधिस्थ थे। अधिक रात हो जानेके कारण गङ्गाके गरगरानेके अतिरिक्त कोई दूसरा शब्द सुनाई न पड़ता था। कभी कभी बीचमें कूलपातको 'धड़ाम' ध्वनि अवश्य सुनाई देती थी। शुक्लपक्षका चन्द्रमा विस्तीर्ण विमल व्योमकी शोभा बढ़ा रहा था। उसकी शुभ्र ज्योत्स्नामें मानों भूमि अपने वनों-उपवनोंसहित स्नान कर रही थी। ऐसा प्रतीत होता था मानों रुपहरे सागरने उमड़कर आज भूम्याकाशको एकाकार कर दिया है। रेतीपर चाँदनी और भी चमक उठी थी। उसके साथ नीलमकी लम्बायमान रेखाके सदृश गङ्गा-धारा अपूर्व सौन्दर्य दिखा रही थी। ऐसे समयमें, बदायूँके कलेक्टर अपने किसी योरुपीय मित्रसहित आखेटके लिए गङ्गातीरपर फिर रहे थे। अचानक उनकी दृष्टि उस स्थानपर जा पड़ी, जहाँ स्वामी दयानन्द योगारूढ़ आसीन थे। वे साथीसहित समीप जा पहुँचे। चाँदीकी विशाल शिलापर जैसे तप्त स्वर्णकी प्रतिमा विराजमान हो उसी प्रकार दीप्तिमान् स्वामी-देहको, उन्होंने बालूपर विराजते देखा। बड़ी देरतक विस्मयोत्फुल्ल लोचनोंसे संन्यासीके सुन्दररूपको, समाधिस्थ निमग्नताको, तपश्चर्याको, वे अवलोकन करते रहे। अन्तमें जब महामुनिने नेत्र उन्मीलन किये तो शिष्टाचार-प्रदर्शनमें प्रवृत्त हुए। चलते समय कलेक्टर महाशयने विनयपूर्वक कहा, "हमें बड़ा आश्चर्य है कि इतना शीत पड़ रहा है, नदीका किनारा है, रात्रिका समय है और आप हिमसमान शीतल रेती-

पर लङ्गोट मात्र लगाये मग्न बैठे हैं ! क्या आपको पाला नहीं लगता !" स्वामीजी उत्तर देनेही लगे थे कि कलेक्टर महाशयका साथी बीचमें बोल उठा, "हृष्ट-पुष्ट मनुष्य है, खानेको अच्छे माल मिलते होंगे; इसे पाला क्या करे?" स्वामीजीने हंसकर कहा, कि "हम दाल चपातीके खानेवाले क्या माल खायेंगे ? बहुत बल लगाया तो कुछ दूध पी लिया। परन्तु आप मांस अण्डे आदि पौष्टिक पदार्थ खाते हैं और समय पड़नेपर मदिरापानमें भी कोई अड़चन न होती होगी, इस लिए यदि माल खाकर शीत सहा जाता है तो कपड़े उतारकर आइए और थोड़ी देर मेरे साथ बैठिये।" इसपर वह लज्जित हो गया और विषय बदलकर कहने लगा "अच्छा तो बताइए आपको शीत क्यों नहीं लगता ?" उत्तरमें महा-राजने कहा, "इसका सहजसे समझमें आने योग्य एक कारण तो अभ्यास है। आपका मुख सदा नग्न रहता है; इस लिए आपको उसे ढाँपनेकी आव-श्यकता इस समय भी प्रतीत नहीं होती।" कलेक्टर महाशयने संकेत करके साथीको बहुत बोलनेसे रोक दिया और वे स्वामीजीको नमस्कार करके चले गये। कहते हैं कलेक्टरका वह साथी कोई पादरी था, जो कारणवश उनके साथ आया था।

दसवां सर्ग

स्वामीजी महाराज सैकड़ों राजपूतोंको जनेऊ धारण कराते हुए, सहस्रों मनुष्योंको उपदेश देकर सन्मार्गपर लाते हुए, फरुखाबादतक गये और फिर वहांसे लौटकर विचरते हुए चासीमें आ गये।

चासी अहारसे कोई ढाई मीलके अन्तरपर है। गङ्गाका तीर है, वनस्थान है; अति एकान्त, शान्त और रमणीक प्रदेश है। वहाँ स्वामीजी एक कुटिया-में टिके। उनके पास ग्रामीण लोग बहुत आने लगे। वे महाराजका अति सम्मान करते थे। इससे, वहाँ रहनेवाला एक वैरागी बहुत चिढ़ गया। वह रातदिन इसी उधेड़ बुनमें रहने लगा कि किस प्रकार दयानन्दको यहाँसे चलता किया जाय। स्वामीजीका नियम था कि जो पहले भोजन ला देता वे उसेही खा लेते। वैरागीने उसी नियमसे लाभ उठाना चाहा। वह सबसे

पहले, एक दो जले भुने टिक्कड़ स्वामीजीके आगे रख देता और वे वीतराग वही खा जाते ! परन्तु कुछ कालके अनन्तर वही वैरागी महाराजका अनुरागी हो गया । उसके पीछे एक जाट महाराजको नियमसे भोजन लाकर दिया करता था ।

ठाकुर महावीरसिंहजी चाँदोख निवासी स्वामीजीके श्रद्धालु भक्त थे। वे आठ दिवसतक चासी वनमें स्वामीजीकी सेवामें रहे । उन्हें आठ दिनतक श्रीसंगतिमें रहकर जो लाभ और जो आनन्द प्राप्त हुआ उसका अनुभव उन्होंने अपने जीवनमें अन्यत्र कहीं नहीं किया ।

जहाँगीराबाद-निवासी, ओङ्कारदास बहुरा गङ्गा-स्नानार्थ चासीमें गया । उस समय श्री स्वामीजी वहीं विराजमान थे । वह जब दर्शनार्थ स्वामीजीके समीप गया तो उनके पवित्र स्वरूपसे ऐसा प्रभावित हुआ कि उसके हृदयमें स्वामी-श्रद्धाका स्रोत स्रावित हो आया। उसने कुछ भोज्य पदार्थ स्वामीजीको समर्पित किया, जिसे महाराजने ग्रहण कर लिया । एक दिन तो सत्संगमें अपने आत्माकी पिपासाको शान्त करूं, इस सङ्कल्पसे उसने स्वामीजीकी कुटीके निकट डेरा डाल दिया । ओंकारदास व्यायाम करनेवाला था । पुष्ट, सुगठित और बलवान् था । सायंकाल होनेपर उसके हृदयमें इस भावका प्रादुर्भाव हुआ कि चलो पाँव दाबकर स्वामीजीकी सेवा करें । इससे स्वामी-जीके बलका भी ज्ञान प्राप्त हो जायगा । ओंकारदासने प्रार्थना की कि सेवकको पाँव दबानेकी सेवा प्रदान कीजिए । स्वामीजीने उत्तर दिया कि हमारे पाँव दबे दबाये हैं । परन्तु अत्याग्रहसे वह चरण-सेवा करने लग ही गया । उसने जब महाराजकी पिण्डलियोंपर हाथ लगाया तो वे उसे लोहेके दण्डके सदृश कड़ी प्रतीत हुईं । उनमें हाथ न धसता था;कहीं बल न पड़ता था; सम्पूर्ण बल लगानेपर भी मांस हाथोंमें न आता था । ओंकारदास थोड़ी ही देरमें एड़ीसे चोटीतक पसीनेसे तर होकर हाँपता हुआ पाँव दबानेसे पीछे हट गया । उसने स्वामीजी ऐसा बलिष्ठ व्यक्ति अपने सारे जन्ममें नहीं देखा था ।

पण्डित गङ्गाप्रसादजी भी स्वामीजीके एक श्रद्धालु अनुयायी थे । जिस प्रकार प्रशंसित परमहंस जाटोंको, राजपूतोंको, बणियोंको यज्ञोपवीत देते थे उनका अनुकरण करके गङ्गाप्रसादजी उसी प्रकार गाँवगाँवमें विचरण करते हुए

जनेऊ धारण कराते थे। उनके इस कार्यसे स्वामीजी बहुत प्रसन्न थे । एक दिन, गङ्गाप्रसादजीने स्वामी चरणोंमें उपस्थित होकर निवेदन किया कि महाराज! मैंने बहुत बड़ी जन-संख्याको जनेऊ धारण कराये हैं । स्वामीजीने उसके इस कार्यकी आशीर्वाद सहित स्तुति करते हुए कहा कि यज्ञोपवीत देते ही जाते हो कि किसीका उतारते भी हो? उसने विनय की—"भगवन्! कभी जनेऊ उतारा भी जाता है?" स्वामीजीने कहा हाँ, जो जन धर्म-कर्म-हीन हो जायँ उनके उपवीत उतार लेने चाहिएँ।

पण्डित गङ्गाप्रसादका गुरु प्रायः स्वामीजीके निकट आया जाया करता था। एक दिन वह स्वामीजीकी कुटियापर अपने वस्त्र रख, गङ्गा-तीरपर स्नानार्थ जाने लगा। स्वामीजीकी दृष्टि उसकी भुजामें धारण किये हुए अनन्तपर जा पड़ी। महाराजने विस्मयाकारमें पूछा कि आपकी भुजामें क्या है ? वह बोला महाराज, यह "अनन्त" है । स्वामीजी झट उसके पास चले गये और उङ्गलियोंसे नापकर कहने लगे कि यह तो इतने अंगुलका है; अनन्त कहाँ है ? उसने लज्जाके मारे वह अनन्त तुरन्त उतारकर गङ्गामें बहा दिया।

स्वामीजी नवीन वेदान्तियोंके वचनमात्रके ब्रह्मवादसे घोर घृणा करते थे। वे कहा करते थे कि आलस्य-निमग्न साधु-पण्डितोंने, धर्म-कर्म और लोक-हित करनेसे बचनेके लिए मायावादका ढकोसला बना रक्खा है । ये लोग ब्रह्मसत्ताका अनुभव तो करते ही नहीं, उलटे "अहं ब्रह्म जगन्मिथ्या" कह-कर रात-दिन मिथ्या वचन बोलनेके भागी बनते हैं ।

खन्दोई गाँवका निवासी छत्रसिंह जाट, जो स्वामीजीका प्रेमी तो था परन्तु वैसे था पक्का नवीन मायावादी, एक दिन स्वामीजीके पास आया। नमस्कारा-दि करके वेदान्त-विषयपर वार्त्तालाप करने लगा। वार्त्तालापक्रममें छत्रसिंहने कहा, "स्वामीजी! आप चाहे जो कहें, परन्तु यह दृश्यमान जगत् आकाश-पुष्पसमान मिथ्या है, स्वप्न-सृष्टिके तुल्य भ्रममात्र है; वन्ध्या-पुत्रसमान कल्पित है, शश-शृङ्गवत् असत्य है, वास्तवमें यह है ही नहीं ।"

स्वामीजीने हाथको थोड़ासा आगे बढ़ाकर छत्रसिंहके मुखपर एक हलकासा थप्पड़ लगाया! चपत खातेही वह चौंक उठा और कपोल मलता हुआ कहने लगा, "महाराज! सिद्धान्तभेद होनेपरही, विचार न मिलनेपर ही आप ऐसे

ज्ञानी जनोंको आवेशमें आकर थप्पड़ मार देना शोभा नहीं देता।" स्वामी-जीने मन्द मुस्कानसहित कहा' "चौधरीजी, जब आपके निश्चयानुसार ब्रह्मही एक वस्तु है, दूसरी कोई भी नहीं, और जो कुछ दिखाई पड़ता है वह सब मिथ्या है, तो वह आपसे भिन्न दूसरा कौन है जिसने आपके थप्पड़ लगाया है? आपको मिथ्याकी प्रतीति कैसे होगई?"

छत्रसिंहने यह सुनकर स्वामीजीके चरण पकड़ लिए और कहा, "महाराज! आपने मेरी आँखें खोल दीं, वास्तवमें हम लोग अनुभव शून्य हैं। केवल बौड़ाहे मनुष्यकी भाँति वेदान्तवादकी बड़ बड़ करने लग जाते हैं।"

एक धुनिया विनयपूर्वक नित्यप्रति, स्वामीजीकी सत्सङ्ग-गङ्गामें स्नान करके अपने अन्तरङ्गको निर्मल बनाया करता था। स्वामीजीने उसपर अपार दया करके उसे 'ओम्' पवित्रका जप करना सिखाया। एक दिन भक्त धुनिएने श्रीसेवामें प्रार्थनाकी कि स्वामीजी! जपके अतिरिक्त मुझे और क्या कर्म करना चाहिए जिससे मेरा कल्याण हो? स्वामीजीने कहा, "सदाचार पूर्वक जीवन बिताओ। जितना रुई किसीसे लो तूमकर उतनी ही उसे पीछे लौटा दो। यही सद्व्यवहार तुम्हारे लिए एक उत्तम कल्याणकारी कर्म है।"

चासीसे स्वामीजी, बीच-बीचमें कभी कभी कर्णवासादि स्थानोंमें भी हो आया करते थे, परन्तु निवास वहीं रखते थे। महाराज रात्रिका अधिक भाग ध्यानहीमें व्यतीत करते थे। यह स्थान उनके इतना अनुकूल प्रतीत हुआ कि यहाँ वे चार पाँच मासपर्यन्त टिके रहे।

चासीसे उठकर श्रीमहाराज अनूपशहर पधारे, वहाँ उन्होंने नर्मदेश्वरके समीप सतीकी मढ़ीमें आसन लगाया। प्रत्येक समय बीसियों पण्डितों और अनेक श्रोताजनोंकी वहाँ भीड़ लगी रहती थी। स्वामीजी पुराणादि आठ गप्पोंका बड़े बलसे खण्डन करते थे, परन्तु शास्त्रार्थका, अब कोई प्रतिपक्षी नामतक न लेता था। यहाँ भी लोगोंने अपनी देवमूर्तियां जल-मग्न कर दीं।

ठाकुर गिरवरसिंह चाँदोख-निवासी यहाँ स्वामीजीकी सेवामें आये। उस समय, उनके पास नर्मदाके मंगवाये हुए गोल पिण्ड भी थे। वे उनका प्रतिदिन पूजन किया करते थे। ठाकुर महाशयने स्वामीजीसे पूछा कि क्या शिव-पूजा अच्छी है? स्वामीजीने उत्तर दिया कि इससे तो चिउंटियोंकी पूजा

करना अच्छा है; क्योंकि जो नैवेद्य उसपर चढ़ाया जाता है उसे वह बटिया तो नहीं खा सकती परन्तु चिंउंटियोंपर चढ़ाओगे तो वे अवश्य खा जायँगी।

ठाकुर महाशयने फिर ईश्वर-सिद्धिपर प्रश्न किया। इसका उत्तर देते हुए महाराजने कहा कि कारणके बिना कार्य नहीं होता; इस जगत्‌में जो गति है इसका कोई कारण अवश्य होना चाहिए और वह कारण ईश्वर है, तीनों गुणोंकी साम्यावस्थामें विषमताजनक वस्तु प्रकृतिसे भिन्न ही होनी चाहिए, सो वह परमात्मा ही है, सृष्टिमें जो नियम दीख पड़ता है उसका नियन्ता सर्वज्ञ परमेश्वरके बिना अन्य कोई भी नहीं हो सकता। ठाकुर महाशय अन्तमें स्वामीजीके अनुगामी हो गये। महाराजने उन्हें कहा कि जबतक आप जनेऊ धारण न कर सकें तबतक यह प्रार्थना किया करो। स्वामीजीने उन्हें यह प्रार्थना लिखवा दीः—"हे परमेश्वर, हे सर्वजगत्पितः, हे नित्य-शुद्ध बुद्ध-मुक्तस्वभाव, हे सर्वसुहृद्, हे सर्वान्तर्यामिन्, हे धर्मार्थ-काम-मोक्षप्रद, भवत्कृपया धर्मे मे सदा प्रीतिर्भवेत्, नाधर्मे कदाचित्। अधर्मे बुद्धीन्द्रियाणां च प्रवृत्तिर्न भवेत्।"

स्वामीजीने यह जप भी लिखाया।—"ओम् नमः परमेश्वराय, सच्चिदानन्दस्वरूपाय सर्वगुरवे नमः।"

श्री स्वामीजीमें दयाका भाव बहुत था। दुःखितको देख वे कृपा-पूरसे प्लावित हो जाया करते थे, और उसके दुःखको दूर करनेके लिए भरसक यत्न करते थे। बरौलीके राव कर्णसिंह वैष्णव मतकी दीक्षा लेकर कुछ ऐसे हठीले पक्षपाती हो गये थे कि अपने अधीन सबको वैष्णव बनाना चाहते थे। उनको इतना रंग चढ़ा था कि नौकर-चाकरोंकेभी माथेपर तिलक और गलेमें कण्ठियां पड़ गई थीं। यहां तक कि गाय, भैंस और घोड़ेतकके माथेपर तिलक विराजता था!

एक दिन, राव महाशयने अपने पुरोहितको पकड़कर, बलात्कारसे चक्राङ्कित कर दिया। वह किसी प्रकार वहांसे छुटकारा पाकर भागता हुआ स्वामीजीके समीप आया और रोदन करके अपने घाव दिखाने लगा। स्वामीजीने उसे आश्वासन दिया और उसके घावपर अपने हाथसे औषध आदिक

उपचार किया। जबतक उसके घाव पुरा न गये, तबतक महाराजने उसे अपने पासही रक्खा।

स्वामीजीकी दृष्टि सम थी। वे आर्योंमें छूआछूतके बखेड़ेको अति घृणाकी दृष्टिसे देखते थे और शुद्ध शूद्रोंका बनाया हुआ भोजन पा लेनेमें कोईभी दोष नहीं मानते थे; किन्तु वे कहा करते थे कि पाक-क्रियाका विधान ही शूद्रोंके लिए है।

एक उमेदा नाई अनूपशहरमें रहता था। उसकेभी हृदय-मंदिरमें स्वामीजीका महत्त्व बस गया। एक दिन वह भक्ति-भावनासे थालमें भोजन परसकर स्वामीजीकी सेवामें लाया। स्वामीजीने भक्तके भोजनको लेकर भोग लगाना आरम्भ कर दिया। उस समय, वहाँ कोई बीस पचीस ब्राह्मण विद्यमान थे। वे कह उठे "छि छि छिः! स्वामीजी क्या करते हो? यह रोटी तो नाईकी है!" महाराजने हंसते हुए कहा "नहीं, यह रोटी तो गेहूंकी है, इसलिए मैं इसे अवश्य खाऊँगा।"

स्वामीजीके स्वरमें विधाताने अपूर्व माधुर्य भरा था। उनके कोमल कण्ठसे निःसृत नाद कोकिल-कूजनकाभी तिरस्कार करता था। एक दिन सत्संगियोंने नम्र निवेदन किया कि हम श्री-मुखसे साम-गान सुननेके इच्छुक हैं। स्वामीजीने 'बहुत अच्छा' कहकर सामका आलाप आरम्भ कर दिया। वह गान क्या था आनन्दकी वर्षा थी; आत्मामें सुधाका संचार था। उनके स्वरके मिठाससे, नादकी मोहिनी शक्तिसे और अश्रुतपूर्व संगीतसे लोग धीरे धीरे ऐसे प्रभावित हुए कि सारी सभा, देश और कालके भावको भूलकर, संगीत रस-सागरमें हिलोड़े लेने लग गई। किसीको कुछ पता न रहा कि मैं कहाँ बैठा हूं। सबकी चित्त-वृत्तियाँ मूर्छित हो गईं। ऐसा प्रतीत होनेलगा, मानों नर्मदेश्वरका मन्दिर, सतीकी मढ़ी, नवलजंगका अखाड़ा, ये सब स्वामी-स्वरका अनुकरण कर रहे हैं; उत्ताल-तरङ्गसंकुल गङ्गाभी अपने कूलों सहित गा रही है। कोई आध घड़ीसे अधिक कालतक लोग सङ्गीत-रस-आस्वादन करतेरहे। स्वामीजीके गाना बन्द करनेके उपरान्त भी, कई पलोंतक वही समय बंधा रहा। लोग वैसेही मौन, निस्तब्ध बने रहे। तत्पश्चात् उन्हें ऐसा प्रतीत होता था कि मानों अमृतसे सिंचित किये गये हैं, सुखकी नींद सोकर,अभी उठे हैं

एक भक्तने पूछा कि महाराज, पुराकालमें जैसी उत्तम, मनोवाञ्छित, सु-पात्र सन्तान हुआ करती थी वैसी अब क्यों नहीं होती? स्वामीजीने उत्तर दिया कि, प्राचीन कालमें आर्य जन वैदिक संस्कार किया करते थे, वैदिक आचारयुक्त होते थे, इसलिए उनकी सन्तानमें ओज होता था, तेज होता था, और शूरवीरता होती थी। परन्तु इस युगमें लोग इन्द्रियाराम और विषयानन्दहीको प्रधानता दिये हुए हैं, वैदिक संस्कारोंका त्याग कर बैठे हैं। लोगोंके गृहोंमें कु-रीतियोंकी भरमार है, इसीलिए उनकी सन्तान भी निस्तेज, दीन, दुखिया उत्पन्न होती है।

अनूपशहरमें सुखानन्दजीने श्राद्धोंपर विचार किया। जिसमें स्वामीजीने श्राद्धोंका बलपूर्वक खण्डन करके यह सिद्ध कर दिखाया कि श्राद्ध जीवित पितरोंका ही होना चाहिए।

अनूपशहरसे चलकर महाराज फाल्गुन मासमें कर्णवास पधारे। इस बार भी एक महायज्ञ किया गया। दस दिनतक गायत्रीका जप होता रहा और फिर बारह भद्र जनोंने यज्ञोपवीत धारण किये। अबकी बार महाराज वहाँ दस पन्द्रह दिन ही ठहरे।

गढियामें स्वामीजीने चक्राङ्कितोंसे बातचीत करके उन्हें परास्त किया। अनेक पण्डितोंसहित गुसाईं बलदेव गिरिजी स्वामीजीके दर्शनोंको गये। उनकी भव्य मूर्तिके दर्शन और वार्तालापसे वे ऐसे विमोहित हुए कि प्रतिदिन स्वामी-सेवामें उपस्थित होने लगे। उन्होंने एक मासतक, स्वामीजीका भावना-पूर्वक आदरातिथ्य किया।

स्वामीजीको यहाँ ठहरे एक मास हो चुका था कि एक दिन ओडेसरका ठाकुर चार साथियों सहित वहाँ आया। उनमेंसे दोके हाथोंमें खड्ग थे। यह ठाकुर आतेही स्वामीजीके बराबर बैठ गया। गुसाईंजी उपस्थित थे। उन्होंने उसे ऐसा करनेसे वर्जा कि गृहस्थोंको संन्यासियोंके समीप समान आसनपर बैठना उचित नहीं है; पर वह कड़ा वैष्णव था। उसने गुसाईंजीकी एक न सुनी और वहीं अकड़ा बैठा रहा। स्वामीजीने महाभारतका एक श्लोक पढ़कर उसे समझाया, पर उसने इधर ध्यानही न दिया! अन्तमें, यह सोचकर कि ऐसे मूढ़से क्या मथा पच्ची करें स्वामीजी कुटियाके भीतर चले गये। उष्ण काल था,

इस लिए गुसाईंजी नङ्गा सिर किए बैठे थे। ठाकुर महाशयका कोप-वज्र उन्हींपर बरसने लगा। आपने अपने साथियोंको आज्ञा दी कि यह नङ्गेसिरवाला क्या कह रहा है? इसे पकड़कर सीधा करो। गुसाईंजी भी सामर्थ्यवान् थे। ज्यों ही ठाकुरके मनुष्य उन्हें पकड़नेके लिए आगे बढ़े उन्होंने एकके हाथ, और दूसरेके पाँवको पकड़कर दूर फेंक दिया! शेषकी गत उनके शिष्योंने बना दी। गुसाईंजीको कोई भय था तो यह कि कहीं उनकी इस कोप-क्रीड़ासे स्वामीजी अप्रसन्न न हों। परन्तु स्वामीजीने उनके साहसकी भूरि भूरि प्रशंसा करके उन्हें प्रोत्साहन दिया।

दैवयोगसे गढ़ियामें कैलासपर्वतजी आनिकले। सायंसमय वे गङ्गा-तीरपर अपना नित्यकर्म कर रहे थे कि उन्हें सिरपर एक संन्यासी खड़ा दिखाई दिया। पूछा "कौन है?" उत्तर मिला "मैं दयानन्द सरस्वती हूं।" यह सुनतेही कैलासपर्वतजीने स्वामीजीको समीप बैठा लिया और हरिद्वारके त्यागके पीछेका वृत्तान्त पूछने लगे। सब वृत्तान्त सुनाते हुए महाराजने कहा "कैलास पर्वतजी! मैं आपसे सहायता लेने आया हूं।" उन्होंने कहा "सहायता किस प्रकारकी?" स्वामीजीने कहा "रामानुज बल्लभ आदि साम्प्रदायिक मतोंने पुरातन धर्म्म-कर्म्म, रीति-नीतिको नष्ट भ्रष्ट कर दिया है। सो आप इनके खण्डनमें मेरे सहायक बनें।" कैलासजीने कहा, "आपका विचार उत्तम है। इन मतोंका खण्डन अत्यावश्यक है। मैं आपको प्रत्येक प्रकारकी सहायता देनेको भी समुद्यत हूं, परन्तु आप प्रथम मेरी दो बातें स्वीकार कर लीजिए। एक तो मूर्ति-पूजाका खण्डन करना परित्याग कर दीजिए। मन्दिर सर्वत्र बने हुए हैं और इनसे अज्ञानी लोगोंको लाभ भी बड़ा है। सैकड़ों की आजीविका लगी हुई है। दूसरे आप पुराणोंका खण्डन भी छोड़ दीजिए। यह न कहिये कि ये व्यासकृत नहीं हैं और स्वार्थी लोगोंके निर्माण किए हुए हैं।"

स्वामीजीने कहा, "महात्मन्! इन सम्प्रदायोंका आधार-आश्रय यही मूर्ति-पूजा और पुराण हैं। इन्हीं दोकी आड़में मतवाले अपने अपने मतोंका प्रचार करते हैं। इसी टट्टीकी ओटमें मत-मृगया हो रही है। जबतक इनका खण्डन न होगा आर्ष ग्रन्थोंका आदर न हो सकेगा। श्रुतिस्मृति-प्रतिपादित

धर्म्मको लोग नहीं समझ सकेंगे। कृपया आप बद्धपरिकर होकर जयपुराधीश आदि राजाओंको वैदिक धर्म्मपर लाइए । आप संन्यासी हैं, निर्भयतासे लोगोंमें सत्यका प्रचार कीजिए।"

कैलासपर्वतजी विद्वान् तो थे ही, पर साथ ही वयोवृद्ध भी थे । इससे स्वामीजी उनका समादर करते थे। उनके समीप निवास भी कर लिया करते थे । साम्प्रदायिक संग्राममें सम्मिलित होनेकी संधि करनेके लिए, कैलासपर्वत-जीने जो दो बातें उपस्थितकी थीं उन्हींका घोर प्रतिवाद करते करते सारी रात बीत गई और सवेरा हो गया । स्वामीजी एक वृद्ध संन्यासीसे निराश होकर स्वस्थानको जानेके लिए प्रस्तुत हुए। कैलासपर्वतजीने कहा "दयानन्दजी अभी न जाइये । भिक्षा पाकर मध्यान्होत्तर कालमें चले जाइएगा । इतनी क्या शीघ्रता है?" परन्तु स्वामीजी यह कहते हुए वहांसे चल पड़े, कि "मैं आपके पास कोई भिक्षाका भूखा न आया था। मैं आया था कि आप सत्यमें मेरी सहायता करेंगे। सो आपने नहीं की । ऐसी अवस्थामें ईश्वर ही सहायता करेगा।"

कैलासपर्वतजी स्वामीजीके सत्याग्रहसे अतिशय प्रसन्न थे । वे कहा करते थे, "दयानन्द जैसा धैर्यका धनी, सुदृढ़-संकल्प संन्यासी, न हमने कहीं देखा और न ही सुना है । यह अप्रतिम पुरुष है।"

गुसाईं बलदेव गिरिका मठ सोरों हीमें था। वे नित्य निवेदन करते थे कि स्वामीजी! सोरों चलिए। वहां अत्युपकार होगा। सोरोंसे कुछ भक्तजन भी स्वामीजीकी सेवामें उपस्थित होकर वहां पधारनेके लिए प्रार्थी हुए । उन सबके आग्रहसे स्वामीजी सोरों पधारे । गङ्गाके तीर पर गुसाईंजीके मन्दिरमें ठहरे । अगले दिन गुसाईंजीने उन्हें अम्बागढ़के स्थानमें जा टिकाया ।

सोरोंमें स्नान-माहात्म्यका बड़ाभारी मेला था। कोई दस सहस्र तो ब्राह्मण ही वहां एकत्रित हुए होंगे । वहां बहुतसे चक्राङ्कित पण्डित स्वामीजीके समीप वाद करनेके लिए आए, परन्तु आधी घड़ी भी कोई सामने न ठहर सका। वैष्णवोंका मुखिया हरगोविन्द था और स्वामीजीका सहायक राम-नारायण तिवाड़ी था। चक्राङ्कित हुल्लड़ बहुत मचाते थे, जिससे विवश होकर रामनारायण और गुसाईंजी उन लोगोंको झिड़कना भर्त्सना भी करते थे।

जैसे समुद्रके उत्ताल तरल तरङ्ग प्रबल चट्टानसे टक्कर खाकर—हत-प्रतिहत होकर, उपशम हो जाते हैं—पीछे हट जाते हैं—ऐसेही पौराणिक पण्डित और साम्प्रदायिक वादीगण, बड़े आवेशमें स्वामीजीके निकट आते और युक्ति-प्रमाणोंसे प्रतिहत होकर, प्रत्याघात खाकर शान्त हो जाते अथवा लौट जाते थे।

कुछ एक उपद्रवी लोगोंने परस्पर मिल, स्वामीजीको विष देकर मार डालने अथवा जलमग्न करदेनेका षड्यंत्र रचा। एक रात वे मिलकर आये। उस समय, स्वामीजीके समीपवर्ती स्थानमें एक और साधु सुख से सो रहा था। उन्होंने उसीको, दयानन्द समझकर खटिया सहित उठा लिया और ले जाकर गङ्गाकी धारामें फेंक दिया! जब उसने डूबते हुए चिल्लाकर बचानेकी याचना की तो उन धूर्तोंको ज्ञात हुआ कि यह दयानन्द नहीं है। उसपर वह साधु जलमेंसे निकाल लिया गया।

श्री स्वामीजी, एक दिन, उपदेश दे रहे थे और बीसियों मनुष्य दत्तचित्त होकर श्रवण कर रहे थे। उस समय वहाँ एक हट्टा कट्टा,, डण्डपेल पहलवानसा जाट आ गया। एक मोटा सोटा कन्धेपर रक्खे सभा सरोवरको चीरता फाड़ता सीधा स्वामीजीकी ओर बढ़ा। उसका चेहरा मारे क्रोधके तमतमा रहा था। आंखें रक्तवर्ण थीं, भौंवें तन रही थीं और माथेपर त्योरी पड़ी हुई थी। होठोंको चबाता और दांतोंको पीसता हुआ वह बोलाः—"अरे साधु, तू ठाकुर-पूजाका खण्डन करता है, और श्री गङ्गामैयाकी निन्दा करता है, देवताओंके विरुद्ध बोलता है! झटपट बता, तेरे किस अङ्गपर यह सोटा मारकर तेरी समाप्ति कर दूँ?" ये वचन सुनकर, एक बारतो सारी सभा विचलित हो गई। परन्तु श्री स्वामीजी महाराजकी गम्भीरतामें रत्तीभर भी न्यूनता न आई। उन्होंने प्रशान्त भावसे मुस्कराते हुए कहा, कि "भद्र! यदि तेरे विचारमें मेरा धर्म-प्रचार करना कोई अपराध है तो इस अपराधका प्रेरक मेरा मस्तिष्क ही है। यही मुझे खण्डनकी बातें सुझाता है। सो यदि तू अपराधीको दण्ड देना चाहता है तो मेरे सिरपर सोटा मार; इसीको दण्डितकर।" इन वाक्योंके साथही, स्वामीजीने अपने नेत्रोंकी ज्योति उसकी आँखोंमें डालकर उसे देखा। जैसे, बिजली कौंध कर रह जाती है; धधकता हुआ अङ्गारा जल-धारा-पातसे शान्त हो जाता है, वैसेही, तत्काल वह बलिष्ठ व्यक्ति ठण्डा

हो गया; श्रीचरणोंमें गिर पड़ा; अविरत अश्रुमोचन करता हुआ अपना अपराध क्षमा करानेकी याचना करने लगा। स्वामीजीने उसे आश्वासन दिया और कहा, "तुमने कोई अपराध नहीं किया। मुझे मारते तो भी कोई बात थी, अब योंही क्यों रो रहे हो? जाओ ईश्वर तुम्हें सत्य मार्ग प्रदान करे।"

इस दृश्यको देख लोग स्वामीजीकी सहनशीलताकी अत्यन्त प्रशंसा करते हुए आपसमें कहते थे कि सोरोंमें बहुतेरे साधुसन्त आये; परन्तु ऐसा शान्त, ऐसा निर्भय, ऐसा क्षमावान् कभी कोई न आया होगा।

स्वामीजी विचरते हुए सरदोलमें आ विराजे। उनके उपदेशोंसे यहाँ ठाकुर हुलाससिंह तथा अन्य सज्जन पक्के आर्य-धर्मावलम्बी बन गये।

गढ़ीमें वैरागी लोग स्वामीजीका बड़ा विरोध करते थे इसका कारण यह था कि जिस समृद्ध ठाकुरके स्थानपर स्वामीजी ठहरे हुए थे उसने कण्ठी तोड़ डाली थी, मूर्तिपूजा छोड़ दी थी। वह कई ग्रामोंका भूमिहार था। इस लिए वैरागियोंको अपनी आजीविकाके जाते रहनेका भय था। स्वामीजी तो वैरागियोंसे सदा ही सावधान रहते थे। उन्होंने सुन रक्खा था कि कानपुरसे चार कोसके अन्तरपर वैरागियोंका एक डेरा है। वहां विरजानन्द नामक एक साधु जा निकला। वैरागियोंने उसे दयानन्द समझकर पकड़ लिया और गङ्गामें धकेल दिया। वह था तैरनेवाला इस लिए हाथ पैर मार कहीं किनारे जाही लगा।

उदासी साधु मायाराम गढ़ीमें स्वामीजीकी निन्दा सुन उनके पास आकर कहने लगा कि दयानन्दजी! आप इस खण्डन मण्डनके झमेलेमें क्यों पड़ गए? हमारी तरह आनन्दसे खा पीकर सुखमें रहा करो। क्यों वैर बढ़ाते हो? स्वामीजीने उत्तर दिया कि हम तो ब्रह्मानन्दमें रहते हैं, और जो आनन्द वेद-प्रचारमें आता है वह तो तुलनातीत है।

ग्यारहवां सर्ग।

ज्येष्ठ वदि १२ सम्वत् १९२५ को स्वामीजी कर्णवासमें अपनी पुरातन कुटियामेंही आकर ठहरे। उसी मासमें गङ्गा-स्नानका मेला था। सहस्रों नरनारी एकत्रित हुए। उस समय राव कर्णसिंह भी स्नानार्थ आए।

राव महाशय जबसे वैष्णव सम्प्रदायके अनुयायी, रङ्गाचार्यके चेले बने थे तबहीसे, वे अति पक्षपाती हो गये थे। कर्णवासमें उनकी सुसराल भी थी। वे स्वामीजीकी कुटियाके थोड़े अन्तरपरही उतरे थे। रात्रिके समय उनके उतारेपर रास होने लगा। कुछ पण्डित लोग स्वामीजीको भी बुलाने आये। परन्तु स्वामीजीने कहा कि हम ऐसे निन्दनीय कार्यमें कदापि सम्मिलित नहीं हो सकते। तुम लोग जो अपने पुरुषाओंके स्वांग बनाकर देखते हो यह अति लज्जास्पद,शोककी वार्त्ता है। स्वांग भरना स्मृतिमें दोष वर्णन किया है।

अगले दिन पण्डित लोगोंने स्वामीजीके कथनको, अपनी टीका-टिप्पणी सहित, दुहराकर राव महाशयको बहुत भड़काया। वे भी उत्तेजित होकर पण्डितों और अपने नौकरोंको साथ ले स्वामीजीकी कुटियापर चढ़ आये। सायं समय था। महाराज उपदेश कर रहे थे। श्रोतागण एकाग्रचित्त उपदेशामृत-पान करनेमें निमग्न थे। ऐसे समयमें खट खट करती हुई राव महाशयकी सेना आ पहुँची। स्वामीजी महाराजने 'आइए, बैठिये' इत्यादि शब्दोंसे उनका सत्कार किया, परन्तु राव महाशय अपनी ग्रीवाकी ऐंठन किंचित् भी न्यून न करके बोले "कहाँ बैठें?" स्वामीजी भी उनके अहङ्कारके पारेकी चढ़ी मात्राको ताड़ गये। इसलिए उत्तरमें बोले, "जहाँ इच्छा हो बैठ जाइए।" राव महाशय बोले "जहाँ तुम बैठे हो वहीं बैठेंगे।" स्वामीजीने सीतलपाटी हटा ली और कहा, "आइए, यहीं बैठिये।'

"आप हमारे यहां रासमें क्यों नहीं आये? संन्यासी होकर ऐसा करना अत्यन्त बुरा कर्म है। हमारे स्थानपर जब रास-लीला होती है तो सभी पण्डित संन्यासी सम्मिलित होते हैं।"

"आपके सम्मुख आपके पूज्य पुरुषाओंके रूप भरकर मलिन मनुष्य आते हैं, नाचते हैं और आप लोग बैठे बैठे देखा करते हैं! उस समय आप लोगोंको लज्जा नहीं आती? आश्चर्य है! आप कैसे क्षत्रिय हैं? किसी साधारण पुरुषके माता-पिता, परिजनका स्वरूप भरकर कोई नचावे तो उसे कितना बुरा लगता है? परन्तु आप कुलीन लोग अपने मान्य महापुरुषोंके स्वांग बनाकर नचाते हैं और प्रसन्न होते हैं!'

"हम तुमसे बातचीत करने आये हैं। हमने सुना है कि तुम अवतारोंकी और गङ्गाजीकी निन्दा करते हो। स्मरण रक्खो, यदि मेरे सामने निन्दा की तो मैं बुरी तरह बर्त्ताव करूंगा।"

"मैं निन्दा नहीं करता हूँ, किन्तु जो वस्तु जैसी है उसे वैसीही कहता हूँ। गङ्गा भी जैसी और जितनी है उसे वैसी और उतनीही वर्णन करता हूँ! सत्यके कथन करनेमें सर्वथा निर्भय हूँ।"

"तो फिर गङ्गा कितनी है?"

स्वामीजी अपना कमण्डलु उठाकर बोले, "मेरे लिए तो इतना जल उपयुक्त है, सो यह इतनी ही है।"

राव कर्णसिंह बोला:—"गङ्गा गंगेति" इत्यादि श्लोकोंमें नाम, कीर्त्तन, दर्शन, स्पर्शनसे पाप-नाश कहा है।"

"ये श्लोक साधारण लोगोंके कपोलकल्पित हैं। माहात्म्य सब गप्प है। पाप-नाश और मोक्ष-प्राप्ति वेदानुकूल आचरणसे होगी, अन्यथा नहीं।"

स्वामीजीने पूछा "राव महाशय, आपके भालपर यह रेखासी क्या है?" राव महाशयने उत्तरमें कहा "यह श्री है। जो इस श्रीको धारण नहीं करता वह चाण्डाल है।" "आप कबसे वैष्णव हुए हैं?" "कुछ बरसों से"। "क्या आपके पिता भी वैष्णव सम्प्रदायमें दीक्षित हुए थे?"

"नहीं वे नहीं हुए।"

"तब तो आपहीके कथनानुसार आपके पिता और कुछ वर्षोंके पूर्व आप भी चाण्डाल सिद्ध हो गये।"

इस बातपर राव महाशयको क्रोध आ गया और वे तलवारपर हाथ रखकर बोले, "मुँह सम्भालकर बोलो।" उनके साथी दस बारह जन भी शस्त्र-सन्नद्ध थे, इस लिए टीकाराम भयभीत हो गये। परन्तु स्वामीजीने उसे कहा, डरते क्यों हो? कोई चिन्ताकी बात नहीं। हमने जो कुछ कहा है सत्य कहा है।"

उधर, राव महाशय छड़ीसे छेड़े हुए नागकी भाँति कोपावेशमें बल खा रहे थे। उनकी आँखोंमें लहू उतर आया। चेहरा क्रोधानलसे लाल हो गया, उसने स्वामीजीपर कुवचन-वर्षाकी झड़ीसी लगा दी। परन्तु स्वामीजी हँसते

हुए कहने लगे, "रावमहाशय ! यदि शास्त्रार्थ करना अभीष्ट है तो वृन्दा-वनसे रङ्गाचार्य्यजीको मँगाइए। उसमें जो हार जाय वह दूसरेके सिद्धान्तको स्वीकार करेगा, यह प्रतिज्ञा हो जानी चाहिये।" रावमहाशयने कोपमें कड़क कर कहा कि तुम रङ्गाचार्यसे क्या वादाविवाद कर सकते हो? तुम्हारे जैसे जन तो उनकी जूतियां झाड़ते हैं। इत्यादि बातोंके साथ रावमहाशय गाली भी प्रदान करते जाते थे, और बायें हाथसे थामे हुए खड्ग-कोशकी मुट्ठीपर बार-बार दहिना हाथ रखते थे। इसपर स्वामीजीने हंसते हुए कहा कि "राव-महाशय ! खड्गको बारबार क्यों संचालन करते हो? शास्त्रार्थ करना हो तो अपने गुरूजीको यहां ले आइए, हम कटिबद्ध हैं। परन्तु यदि आपको शस्त्रार्थ करनेका चाव है तो संन्यासीसे क्यों टकराते हो? जयपुर जोधपुरसे जा भिड़ो।"

फिर क्या था, रावमहाशय आपेसे बाहर हो गये। उनकी आँखोंसे चिङ्गा-रियाँ छूटने लगीं। हाथोंकी मुट्ठियां ऐंठ गईं। होंठ फड़क उठे। भीषण रूप धारण करके, वे उचितानुचितका कोई विचार किये बिना मुखसे खरीखोटी बातें सुनाते, खड्गहस्त, स्वामीजीकी ओर लपके। स्वामीजीने "अरे धूर्त्त" कहते हुए उन्हें हाथसे ढकेल दिया। इससे रावमहाशय एक बार तो लुढ़क गए, परन्तु फिर सम्भलकर चौगुने कोपावेशमें, महाराजपर तलवारका वार करनेके लिए आगे बढ़े! वे तलवार चलाना ही चाहते थे कि महाराजने झपट कर उसे उनके हाथसे छीन लिया और भूमिके साथ टेक देकर दबावसे उसके दो टुकड़े कर डाले। स्वामीजीने रावमहाशयका हाथ पकड़कर कहा, "क्या तुम यह चाहते हो कि मैं भी आततायीपर प्रहार कर बदला लूं?" राव-महाशयका मुख पीला पड़ गया, तनपर मूर्च्छासी आगई। उस समय स्वामी-जीने कहा, "मैं संन्यासी हूं, तुम्हारे किसी भी अत्याचारसे चिढ़कर तुम्हारा अनिष्ट चिन्तन नहीं करूंगा। जाओ, ईश्वर तुम्हें सुमति प्रदान करें!" महा-राजने तलवारके दोनों खण्ड दूर फेंककर रावमहाशयको बिदा कर दिया।

जिस समय, यह घोर घटना घटित हुई स्वामीजीके समीप कोई पचास मनुष्य बैठे थे। वे सब, रावकर्णसिंहजीके कु-कर्मकी निन्दा करते हुए, स्वामी-जीको सम्मति देने लगे कि राजकर्मचारियोंको सूचना देकर इसका पूरा परि-णाम निकलवाना चाहिए। स्वामीजीने कहा, हम अभियोग कदापि न चला-

गेंगे। हमारा धर्म्मतो संतोष करना है। यदि वह अपने क्षत्रियत्वका पालन नहीं कर सका तो हम अपने ब्राह्मणत्वसे क्यों गिरें ? जो धर्म्मका हनन करता है अन्तको उसका अपना हनन होजाता है। इसपर स्वामीजीने मनुका यह श्लोक सुनाकर लोगोंको शान्त किया:—

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।
तस्माद् धर्मो न हन्तव्यो मानो धर्मो हतोऽवधीत् ॥

वहाँ अनेक पण्डितों और स्वामी विशुद्धानन्द, कृष्णानन्द आदि संन्यासियोंसे धर्म्म-मीमांसा होती रही, और कार्त्तिकतक महाराजने वहीं निवास किया।

स्वामीजी सोरोंमें पधारकर अम्बागढ़में विराजमान हुए। श्रद्धालुगण और वादीगण प्रत्येक समय आते रहते थे। पण्डित अंगद उस समय न्याय और व्याकरणमें तुलनातीत विद्वान् समझा जाता था। कोई भी विद्वान् उसके साथ शास्त्रार्थ करनेका साहस न करता था। वह पहले पहल विरजानन्दजीसे कौमुदी पढ़ता रहा था।

रामनारायण पण्डित, जो स्वामीजीके विचारोंको, उनके पिछले आगमनमें मान चुका था, अंगद शास्त्रीके पास गया और कहने लगा कि स्वामी दयानन्दजीके तेजसे सभी पण्डित अभिभूत हो रहे हैं ! अब आप चलिए और उनसे शास्त्रार्थ कीजिए।

साम्प्रदायिक धर्म्मकी नौकाको गंगामें निमज्जित होता देख अंगदजी स्वामीजीके निकट आकर मूर्ति-पूजा सिद्ध करनेमें प्रवृत्त हुए। स्वामीजीने शास्त्रीय प्रमाणोंकी प्रबलतासे उसके पक्षका खण्डन करके भागवतादिकी भी तीव्र आलोचना की। स्वामीजीने भागवतकी कविताप़र भी ऐसे आक्षेप किये कि जिन्हें अंगदजीने भी अंगीकार कर लिया। शास्त्रीजीने कुछ देरतक तो अपने पक्षके पोषणमें बहुतेरे हाथ-पैर मारे, परन्तु अन्तमें स्वामीजीकी शुद्ध, सरल, धारा-प्रवाह संस्कृत वक्तृतासे, ओजस्विनी कथनशैलीसे, अकाट्य युक्तियोंसे, प्रभूत-पुष्ट प्रमाणोंसे, समयोचित तात्कालिक उत्तर-प्रत्युत्तरप्रदानसे और अप्रतिम प्रतिभा-प्रभासे वे ऐसे चकित हुए, ऐसे विमोहित हुए कि मुक्तकण्ठसे कह उठे, "स्वामीजी महाराज ! आप जो कुछ कह रहे हैं वह सब

सत्य है। अब पुराणपोल अधिक सुननेकी आवश्यकता नहीं रही।" शास्त्रीजीने तत्काल अपनी कण्ठी तोड़ दी, शालिग्राम गङ्गागत कर दिये और आगेके लिए भागवत-कथा कहनेका परित्याग कर दिया। उनके सम्बंधियोंनेभी उनका अनुगमन करते हुए अपनी मूर्त्तियाँ जलमग्न कर दीं। उस समय गुसाईं बलदेव गिरिजीको भी आवेश आ गया। उन्होंने भी अपनी प्रतिमायें गङ्गाके बहावमें बिदा कर दीं।

अङ्गदशास्त्रीजी उस समय पण्डित-मण्डलमें संस्कृत विद्याका सूर्य माने जाते थे। उनकी सर्वत्र धाक थी। बड़े बड़े धुरन्धर विद्वान्‌भी, उनके समक्ष आते हुए, दूरहीसे पक्ष-परिवर्तन करके निकल जाते थे। जब वही विद्या-दिग्गज परास्त हो गये, उन्होंने हार मान ली तो स्वामीजी महाराजकी विजय-वैजयन्ती अनिवार्य रूपसे फहराने लगी, उनकी निर्दोष कीर्ति-चन्द्रिका सर्वत्र विस्तृत हो गई, सुगुण सुमनोंकी सुगंधि वायुवेगसे दसों दिशाओंमें संचरित हो गई।

रङ्गाचार्य प्रत्येक वर्ष सोरों आदि स्थानोंमें आया करता था। लोगोंको दीक्षा देता था; चक्राङ्कित करता था। परन्तु अङ्गदजीके पराजयका उसपर इतना प्रभाव पड़ा कि उसके सैकड़ों शिष्योंने कण्ठियाँ तोड़ डालीं, प्रतिमायें बहा दीं, पर, जैसे, केसरीकी गुहाके समीप जानेसे हस्ति भयभीत होता है ऐसे रङ्गाचार्य भी श्री दयानन्दजीके आतङ्कसे कम्पित था। इस लिए उस ओर आनेका उसने नामतक न लिया।

सोरोंमें इतना धर्म्म-प्रचार हुआ कि ब्राह्मणादि कुलोंके सैकड़ों लोग कण्ठियाँ त्यागकर, मूर्तियाँ छोड़कर भागवत-कथाके स्थान महाभारत और मनुस्मृति सुनने लग गये।

चौबे रामदयाल वैद्य स्वामीजीके दर्शनार्थ वहां आये। उस समय महाराज संध्या और गायत्रीका वर्णन कर रहे थे। और तो और ब्राह्मण कुलोंकी यह अवस्था थी कि सहस्रों ब्राह्मणवंशीय यज्ञोपवीत-विहीन, सन्ध्या-गायत्रीसे शून्य थे! वैद्यजी स्वामीजीके मनोहर आपणसे प्रसन्न हुए। स्वामीजीने उन्हें सन्ध्या लिखकर बाँटनेकी प्रेरणा की।

स्वामीजीके कथनोंके प्रभावसे गङ्गाके आसपासके सहस्रों लोग नित्यकर्मोंमें परायण हो गये।

बदरिया-निवासी अङ्गदशास्त्री, जिन्होंने स्वामीजीके समीप अपना पराजय स्वीकार कर सब पाखण्ड-जाल तोड़ डाला था, एक अच्छे कवि भी थे। कैलास पर्वतजीकी प्रेरणासे उन्होंने वराह-स्तुतिके सौ श्लोक रचे थे। जब वे स्वामीजीके शिष्य बन गये तो उन्होंने स्वामीजीके कार्यके अनुकूल बहुतसे श्लोक निर्माण किये।

पण्डित जगन्नाथ बाँसबरेलीवालेने स्वामीजीके निकट आनेका तो साहस न किया, परन्तु "इतिहासपुराणानि धर्म्मशास्त्राणि श्रावयेत्" यह मनु-वाक्य लिख भेजे। स्वामीजीने उत्तरमें लिखा कि यहाँ पुराणसे तात्पर्य पुरातनसे है, न कि भागवत आदिसे।

वैद्य रामदयालने स्वामीजीसे कहा कि ग्वालियर राज्यका रहनेवाला एक ब्राह्मण हमें कचुरामें मिला था। वह कहता था कि मेरे पास कालीदासरचित संजीवनी नामक एक पुस्तक है। उसमें कालीदासने अपने समयमें महाभारतके ग्यारह सहस्र श्लोकों और दस पुराणोंकी विद्यमानता प्रकट की है।

वंग प्रान्तान्तर्गत, मकसूदाबाद परगणेके, शक्तिपुर नामक ग्रामके निवासी बोपदेव और जयदेव दो भाईयोंने भागवत पुराणकी रचाना कीथी। श्रीधर तिलकभी इसे बोपदेवनिर्मित बताता है। स्वामीजीने उस पुस्तकको लेनेकी रुचि प्रकट की, परन्तु रामदयालजी, यत्न करनेपर भी उसे न ले सके।

पीलीभीत-निवासी एक पण्डित अङ्गद भी सोरोंमें आया था। वह भूतलपर अपने समान किसीको न समझता था। जब वह स्वामीजीके साथ शास्त्रार्थ करनेके लिए उत्सुक हुआ तो महाराजने अपने शिष्य बदरियाके अङ्गदशास्त्रीको आज्ञा दी। पीलीभीतका पण्डित स्वामीजीके शिष्यहीसे परास्त होकर पलायन कर गया।

स्वामीजी महाराजको यदि कभी लहर आ जाती तो झूठेके घरतक पहुँच जाते और अन्तमें उसके पैर निकालकर ही पीछे हटते। चिद्घनानन्द नामके एक संन्यासी मूर्तिपूजा सिद्ध करनेके लिए सोरोंमें आ गये। स्वामीजीने उनको शास्त्रार्थ-सम्बंधी निमन्त्रण-पत्रमें लिखा कि सत्यासत्यका निर्णय करनेके

लिए कहो तो मैं आपके स्थानपर आनेके लिए उद्यत हूँ, नहीं तो आप मेरे आसनपर पधारिये। परन्तु उन तिलोंमें तेल न था। वह दूरहीसे बातें बनाता रहा। न आप सामने आया और न स्वामीजीको ही आहूत किया। एक दिन चार घड़ी दिन रहे वह गङ्गाकी ओर निकला। पता लगनेपर श्री स्वामीजी भी उसके पीछे हो लिये। अन्तमें पौनकोसके अन्तरपर उसे पकड़ ही लिया। वहीं दोनों बैठ गये। श्री स्वामीजीने कहा कि चिद्घनानन्दजी! आप प्रतिमा-पूजन सिद्ध करते हो, भला उसकी पुष्टिमें कोई मन्त्रप्रमाण तो दो। जो दशा सूर्य्य-तेजसे अभिभूत ग्रह-नक्षत्रोंकी होती है, उस समय, चिद्घनानन्द-जीकी भी ठीक वही हुई। सिंहके पँजेमें पड़ा हुआ हिरन अब निकले तो किस प्रकार? वह तो उसी चिन्तामें चूर हो गया। मौन साधकर उसने कुछ भी उत्तर न दिया। जब ऐसे ही बैठे हुए एक घण्टा बीत गया तो स्वामी-जीने कहा, "असत्यने आपके मुखपर मुहर लगा दी है। यदि आपका पक्ष यथार्थ है, तो फिर मुँह मूँदे क्यों बैठे हो?" पर बोलता कौन? वहाँ तो वह दशा हो रही थी जो रामके बाणको देखकर परशुरामजीकी हुई थी। अन्तपर्यन्त उस साधुने अपनी चुप्पी न खोली। तब स्वामीजी अपने डेरेपर आ विराजे।

कैलासपर्वतजीको भी शास्त्रार्थ करनेके लिये उत्तेजना दी गई। परन्तु वे दो कारणोंसे स्वामीजीके अभिमुख न हुए। एक तो वे स्वामीजीकी विद्वत्तासे भलीभाँति परिचित थे। दूसरे स्वामीजीके कार्योंके साथ गुप्त सहानुभूति भी रखते थे। उनको वराहके मन्दिरसे बड़ी भारी आय थी। राजा-महाराजोंमें प्रतिष्ठाका भी कोई पार न था। इस कारण यही नहीं कि प्रगट रूपसे अनु-मोदन न करके वे स्वामीजीके कार्योंके सहायक ही न बनते थे, प्रत्युत लोक-मनोरञ्जनके लिए उन्होंने स्वामीजीके विरुद्ध एक पुस्तक भी प्रकाशित की थी। कैलासपर्वतजी भीरु भी बहुत थे। चटपट लोगोंके डराने और बहकानेमें आ जाते थे।

एक दिन, बलदेव गिरिके विरोधियोंने उन्हें जा बहकाया कि, वह मूर्त्तियाँ आदि गङ्गामें फेंककर दयानन्दका अनुयायी हो गया है। समय पानेपर आपको अवश्य पीट डालेगा। यदि हमें एक सहस्र रुपया दो तो हम बलदेव गिरिको

पहले ही पीटकर ठीक कर दें? कैलासजी सहमत हो गये । बलदेव गिरिके पास और स्वामीजीके स्थानपर आना जाना छोड़ बैठे । भेद ज्ञात होनेपर बलदेव गिरिजी स्वयं उनके निकट गये और समझाया कि आपको धूर्त्त लोग योंही बहकाते हैं। आप और हममें कोई वैर-विरोध तो है ही नहीं, तो फिर मैं आपको क्यों मारूंगा ? और स्मरण रखिये कि यदि आपने धूर्त्तोंको मुझपर आक्रमण करनेके लिए भेजा तो उनके पिटने अथवा मेरे मार खानेपर भी आप पकड़े जाओगे—बचे नहीं रहोगे ।

कैलासजीकी मति सन्मार्गपर आ गई और जिस वाटिकामें स्वामीजी उतरे हुए थे वहाँ पूर्ववत् आने जाने लग गये । स्वामीजी उनकी स्वार्थपरता, उनकी लोकलाज और भीरुतापर तो प्रसन्न न थे, परन्तु उन्हें विद्वान् और वृद्ध जानकर, उनका आदर-सत्कारही किया करते थे । कभी कभी उपहास-रसमें भी उन्हें पुकार किया करते थे। एक दिन कुटियाके भीतर कैलासपर्वत-जीने प्रवेश किया तो स्वामीजीने हँसते हुए कहा, "अहो! इतना बड़ा कैलासपर्वत इस छोटीसी कुटीमें कैसे आ गया ?"

एक दिन, गङ्गा-तीरपर एक साधु कमण्डलु आदि प्रक्षालन करके वस्त्र धोनेमें प्रवृत्त था। वह था एक घुटा हुआ मायावादी। दैवयोगसे भ्रमण करते हुए स्वामीजी भी वहीं जा पहुँचे । उसने स्वामीजीको सम्बोधन करके कहा- "इतने त्यागी परमहंस—अवधूत —होकर आप खण्डनमण्डनरूप प्रवृत्तिके जटिल जालमें क्यों उलझ रहे हो? निर्लेप होकर क्यों नहीं विचरते?" महा-राज मुस्कराकर बोले, "हम तो यह सब कुछ करते हुए भी निर्लेप हैं। अब रही प्रवृत्तिकी बात, सो शास्त्रीय प्रवृत्ति प्रजा-प्रेमसे प्रेरित होकर सबहीको करनी उचित है ।"

साधुजीने कहा, "प्रजा-प्रेमका नया बखेड़ा क्यों डालते हो? आत्मासे प्रेम करो, जिसके लिए कि श्रुति पुकार रही है। उस समय उसने मैत्रेयी और याज्ञवल्क्यके सम्वादके वाक्य भी बोले । तब स्वामीजीने पूछा, महात्मन् ! आप किससे प्रेम करते हैं?" साधु बोला, "आत्मासे" स्वामीजीने पूछा, "वह प्रेममय आत्मा कहाँ है?" साधुने कहा, "वह राजासे लेकर रङ्कपर्यन्त और हस्तिसे लेकर कीटतक सर्वत्र ऊँच-नीचमें परिपूर्ण है ।" स्वामीजी बोले,

"जो आत्मा सबमें रमा हुआ है क्या आप सचमुच उससे प्रेम करते हैं?" साधुने उत्तर दिया "तो क्या हमने मिथ्या वचन बोला है?" तत्पश्चात् स्वामीजीने गम्भीरता पूर्वक कहा, "नहीं, आप उस महान् आत्मासे प्रेम नहीं करते। आपको अपनी भिक्षाकी चिन्ता है, अपने वस्त्र उज्वल बनानेका ध्यान है, अपने भरण-पोषणका विचार है। क्या आपने कभी उन बन्धुओंका भी चिन्तन किया है, जो आपके देशमें, लाखोंकी संख्यामें भूखकी चितापर पड़े हुए रातदिन बारहों महीने, भीतर-ही-भीतर जलकर राख हो रहे हैं? सहस्रों मनुष्य आपके देशमें ऐसे हैं, जिन्हें आजीवन उदर भरकर खानेको अन्न नहीं जुड़ता। उनके तनपर सड़े गले मैले-कुचैले चिथड़े लिपटे रहे हैं। लाखों निर्धन, दीन ग्रामीण भेड़ों और भैंसोंकी भाँति, गन्दे कीचड़ और कूड़ेके ढेरोंसे घिरे हुए, सड़े गले झोपड़ोंमें लोटते हुए जीवनके दिन काट रहे हैं। ऐसे कितनेही दीन दुखिया भारतवासी हैं, जिनकी सार-सम्भार कोई भूले भटके भी नहीं लेता। बहुतेरे कु-समयमें राजमार्गोंमें पड़े पड़े पाँव पीटकर मर जाते हैं, परन्तु उनकी बात तक पूछनेवाला कोई नहीं मिलता! महात्मन्! यदि आत्मासे, और विराट् आत्मासे प्रेम करना है तो अपने अंगोंकी भाँति सबको अपनाना होगा। अपनी क्षुधा-निवृत्तिकी तरह उनकी भी चिन्ता करनी पड़ेगी। सच्चा परमात्म-प्रेमी किसीसे घृणा नहीं करता। वह ऊंच-नीच-की भेदभावनाको त्याग देता है। उतनेही पुरुषार्थसे दूसरोंके दुःख निवारण करता है, कष्ट-क्लेश काटता है; जितनेसे वह अपने करता है। ऐसे ज्ञानी जन ही वास्तवमें आत्म-प्रेमी कहलानेके अधिकारी हैं।" वह साधु यह सुनकर स्वामीजीके चरणोंमें गिर पड़ा, अपने अपराधको क्षमा कराने लगा।

बारहवाँ सर्ग।

कासगंजके बहुतसे भद्रजन स्वामीजीको अपने नगरमें लिवा लेजानेके लिए आये। स्वामीजीने कहा कि अभी तो मैं गंगाके तीरपर प्रचार कर रहा हूं, इससे दूर जाना नहीं चाहता, परन्तु यदि पाठशाला स्थापित करनेका कोई प्रबन्ध हो तो जा भी सकता हूं। कासगंजके सभ्योंने स्वनगरमें

आकर इस बातपर पूर्ण रीतिसे विचार किया और पाठशालाकी योजना करनेके लिये समुद्यत हो गये। तत्पश्चात्, पण्डित सुखानन्दजी आदि, एक सौके लगभग, भद्रजन सोरोंमें स्वामीजीकी सेवामें उपस्थित हुए, और अपना प्रयत्न निवेदन करके स्वामीजीको बलदेव गिरिजीकी बग्गी में ले आये। नगरके समीप पहुँचकर गाड़ी ठहरा ली गई। जब नगरवासी बड़ी भारी संख्यामें स्वामीजीके स्वागतके लिए वहाँ पहुँच गये तो महाराजका नगरमें शुभागमन अति समारोहके साथ कराया गया। परमहंसराजको आगे करके नगरनिवासी बड़े भक्ति-भावसे पीछे धीरे धीरे चलते थे। सोरोंद्वारसे प्रवेश करके बाजारमेंसे होते हुए नगरकी दूसरी ओरसे निकल पण्डित मुकुन्दरामके उद्यानमें जा पहुँचे। वहीं स्वामीजीका निवास कराया गया। उस नगरके सज्जनोंने परस्पर मिलकर चन्दा किया और स्वामीजीके हाथसे पाठशाला स्थापित करादी। यहाँ स्वामीजी ज्येष्ठ १९२५ में पधारे थे। वहाँसे चले जानेपर भी सोरों और कर्णवास आदि स्थानोंसे कभी कभी आकर पाठशालाको देख जाया करते थे।

कासगंजवासियोंने कुँवार वदी १३ सम्वत् १९२५ को स्वामी विरजानन्दजी महाराजके देहान्त हो जानेका, जब समाचार सुना तो वे इसकी सूचना देनेके लिए स्वामी दयानन्दजीको ढूँढने लगे। सोरोंमें उनको पता न लगा। ज्ञात होनेपर पण्डित चेतसिंहजी आदि तीन भद्र पुरुष शाहबाज़पुरमें पहुँचे। नमस्कारके अनन्तर उन्होंने श्री स्वामीजीको महात्मा विरजानन्दजीकी मृत्युका समाचार सुनाया! वज्रपातसे मूर्छित लताके कोमल पुष्पोंकी भाँति स्वामीजीका मुखमण्डल तत्काल कुम्हला गया। कुछ देरतक सबसे चुप रहकर कहने लगे, "आज व्याकरणका सूर्य अस्त हो गया।" जिस महापुरुषने स्वाभाविक स्नेह-रससे सने हुए अपने सगे सम्बन्धियोंको, इष्टमित्रोंको और सम्पत्तिशाली घर-वारको त्यागते हुए कुछ भी चिन्ता नहीं की थी, ज्ञान-गुरुका मरण-समाचार सुनकर, उस दिन, उसके भी चित्त-चन्द्रमापर शोक-राहुकी छाया पड़ गई। वास्तवमें आदर्श गुरु,शिष्यका सम्बन्ध एक अलौकिक सम्बन्ध है।

उन दिनोंमें, स्वामीजीकी सचमुच वही अवस्था थी, जो एक आनबानवाले महावीर सैनिककी संग्राम स्थलमें हुआ करती है। भेद केवल इतना ही था कि महाराज सब मत मतान्तरोंसे अकेले संग्राम कर रहे थे। उनको धरा-धामसे

उठा देनेके लिए, स्थान-स्थानपर क्षुद्र जन नाना भाँतिके षड्यन्त्र रचते थे, परन्तु वे अपनी धारणापर अटल थे। शाहबाजपुरमें दो बैरागी बावे ठाकुर गंगासिंहजीके पास जाकर कहने लगे कि हम इस गप्पाष्टक दयानन्दको तलवारके घाट उतारना चाहते हैं; इस लिए आप हमें अपना खड्ग दीजिए। ठाकुर महाशय उन साधु-वेष-विडम्बकोंकी वार्त्ता सुनकर कहने लगे कि मैंने उन महात्माजीके श्रीमुखवाक्य श्रवण किये हैं। वे एक उत्तम सन्त हैं। यदि तुमने फिर ऐसे शब्द कहे तो तुम्हारी दुर्गति की जायगी। जाओ, मेरे स्थानसे निकलकर दूर हो जाओ। इसके अनंतर वह ठाकुर महाशय दो चार मनुष्य साथले, शस्त्रसन्नद्ध हो स्वामीजीके निकट आया, उसने वैरागियोंकी सारी दुष्ट लीला कह सुनाई। स्वामीजीने कहा कि उनका क्या सामर्थ्य है कि मेरा वध कर सकें। परन्तु ठाकुर महाशयके चित्तमें चिन्ता वैसीही बनी रही, इस लिए, वह रातभर स्वामीजीके आसनपर पहरा देता हुआ जागता रहा।

सं० १९२५ आश्विन सुदी ११ से १५ तक ककोड़ेमें मेला था। उस मेलेपर प्रचार करनेके लिए श्री स्वामीजीभी पधारे। महाराजको ढूँढ़ते हुए भक्त बलदेव गिरिजी भी अन्य सज्जनोंसहित वहाँ आ गये। स्वामीजीके निवासार्थ सोरोंके लोगोंने एक पर्णकुटिया बना दी थी, परन्तु बलदेव गिरिजीको महाराजका उसमें निवास शोभा जनक न प्रतीत हुआ। उन्होंने आतेही एक कनात लगवा दी और उसमें उचित स्थानपर गद्दी लगाकर उसपर महाराजको बिठाया। सारे मेलेमें महाराजके प्रचारकी धूम थी। सैकड़ों वैष्णव आते रहे और शान्त तथा मौन होकर लौट जाते रहे। पादरियों और मौलवियोंने भी प्रश्न किये परन्तु स्वामीजीके प्रखर तर्कआतपको वे देर तक सहार न सके।

पण्डित उमादत्तजीने, कई पण्डितोंसहित आकर मूर्तिपूजनपर वाद चलाया परन्तु अल्प समयमें ही वे लड़खड़ा गये। जब कहीं पाँव न टिका तो कहने लगे कि देखो, एकलव्यने द्रोणाचार्यकी मूर्ति बनाकर पूजा की थी। स्वामीजीने कहा कि एक अज्ञानी भीलका कर्म प्रमाण नहीं हो सकता; किसी सभ्य मनुष्यका प्रमाण दो। तब उसने दुर्योधनका उदाहरण दिया, जिसपर स्वामीजीने कहा कि महामूढ़ दुर्योधनका कथनकर्म भी धर्म्ममें अमान्य है।

स्वामीजीके पूछनेपर पण्डित श्यामलालने कहा कि मैं कायमगंजमें रहता हूं; पुराणोंकी कथा कहाकरता हूं; और आजकल ब्रह्मवैवर्तका श्रीकृष्णखण्ड सुना रहा हूं । स्वामीजीने मुस्कराकर कहा कि शीघ्र समाप्त कर लो, नहीं तो तुम्हारी हानि होगी; क्योंकि यह शरीर बीस दिनतक यहाँ पहुँच जायगा। इस ब्रह्मवैवर्तमें तो सबसे अधिक गप्पें भरी पड़ी हैं ।

एक दिन, संस्कृतका पण्डित गोविन्ददास कायस्थ, आठ दस विद्यार्थियों-सहित आकर स्वामीजीसे मिला । उन लोगोंमे अपने हाथ गोमुखियोंमें डाल रक्खे थे वह सबको "हरि भजो छोड़दो धन्धा" यह जप सिखाता था। महाराज पुलिनपर बैठकर गोविन्ददासको कहने लगे कि आप सारे कर्म छोड़नेका उपदेश क्यों देते हैं? भला सत्यकर्म कैसे छोड़े जा सकते हैं ? और यदि कोई आपके कथनपर चले तो क्या आँख, कान, नाक, जीभ आदि अंगोंके व्यापार और अन्न जल छोड़ दे या अन्य कुछ? साथही महाराजने अनवरत संस्कृत भाषण करते हुए ऐसे निष्क्रिय वादों और कु-मतोंका प्रभूत खण्डन किया । गोविन्ददासको स्वामीजीके कथनका एक भी उत्तर न सूझा और वह सारा समय अवाक् बैठा रहा ।

महाराजने मेलेकी समाप्तिपर गुसाईं बलदेवगिरि आदिको विदा करते हुए कहा कि वत्स, अब आपभी स्वगृहोंको जाइए । हम यहाँसे काशीकी ओर जायेंगे ।

ककोड़ेके मेलेमें कलेक्टर महाशयभी आए हुए थे । वे भी स्वामीजीके सत्संगमें टोपी उतार, नमस्कारपूर्वक आकर बैठा करते थे ।

ककोड़ेसे चलकर स्वामीजी नरोली पधारे । वहाँ उनके उपदेशोंसे गुसाईं रामपुरी इतना प्रभावित हुआ कि उसने अपने ठाकुर गंगाकी धारामें बहा दिये! नरोलीसे कपला रामघाट होते हुए महाराज अतरोलीमें पधारे । वहाँ भैरवके मन्दिरमें आसन किया । वहाँ एक भैरवनाथ सारस्वत ब्राह्मणने स्वामीजीसे कहाकि सामवेदके ब्राह्मणमें यह लिखाहै कि प्रतिमा हँसती है, रोती है—उसे पसीना आता है । स्वामीजीने उसी वाक्यको लेकर मूर्त्तिपूजनका खण्डन कर दिया ।

अतरोलीमें स्वामीजी कार्त्तिकके अन्तमें आये थे और दस दिवसतक ठहरकर वहांसे प्रस्थान कर गये।

गंगा-तीरपर विचरते हुए स्वामीजीका जीवन, एक उग्र तपस्वीका जीवन था। उनके तनपर कौपीन के बिना अन्य कुछ न होता था। इस दिगम्बर दशामें उन्होंने वनोंमें, जङ्गलोंमें, जन-रहित स्थानोंमें, गङ्गाकी रेतीमें पौष-माघकी लम्बी शीतल रातें काटीं, वैशाख-ज्येष्ठकी कड़ी धूपें और तनको झुलस देनेवाली लूयें सहन कीं; वर्षाऋतुकी बोछाड़ें—सावनभादोंकी झड़ियां झेलीं वे स्नान एकान्त स्थानमें जाकर किया करते थे। कौपीन धोकर सूखने डाल देते और आप सिद्धासन लगाकर बालूपर बैठ जाते। जब कौपीन सूख जाती तो फिर उसे बाँधकर अपने आसनपर और मनुष्योंके गमनागमनके स्थानपर आते थे। योगिराजका रात्रिका समय प्रायः तुर्यावस्थामें बीता करता। कई परीक्षक जन आधीरात, तीसरे पहर उन्हें देखने गये परन्तु महाराजको ध्यानावस्थित ही पाया।

वे प्रायः माँगने नहीं जाते थे, इस लिए, रूखा सूखा जैसा भी अन्न कोई पहले लाकर दे देता श्री महाराज वही पा लेते थे। उन्होंने किसीकी दी मधूकड़ीका दोष कभी भी प्रदर्शित नहीं किया। भोजन सम्बन्धी व्यंजन आदिकी न्यूनाधिकताकी चर्चा कभी नहीं चलाई।

उनके सत्सङ्गमें लोक-निन्दा, व्यक्तिगत कथा, परदोषवर्णन, जनवाद, भोजनवाद कुछ भी नहीं होता था। श्री-चरणोंमें आकर सभी लोग धर्म-कर्मपर ही वार्त्तालाप किया करते।

श्री महाराज अपने आगमनका समाचार किसीको नहीं देते थे। प्रायः अचानक ही आपहुंचते थे। स्थान-स्थामपर उनके शिष्य थे। और अतिप्रेमी शिष्य थे, परन्तु प्रभु दयानन्द, प्रस्थानसमय ऐसे चुपचाप चले जाते थे कि किसीको पतातक न लगता था! जो कुछ भी वस्तु किसीकी उनकी कुटीमें पड़ी होती, वह उसे किसीको बिना सौंपेही चल देते। उनके इस निर्मोह और निःस्पृहा की सर्वत्र प्रशंसा होती थी।

महाराजसे बड़े बड़े ठाकुरोंने, सम्पन्न और समर्थ लोगोंने यज्ञोपवीत धारण किये थे। वे लोग श्री गुरु-चरणोंमें अत्यन्त श्रद्धा, अतिशय भक्ति-भावना

रखते थे । समय पड़नेपर तन, धन और प्राणतक न्योछावर कर देनेके लिए सुमुद्यत थे । परन्तु महाराज ऐसे वीतराग थे, ऐसे समदृष्टि थे, ऐसे साम्य-वादी थे कि उनकी एक-रसवर्षिणी कृपापर पक्षपातका कटाक्ष कभी किसी विरोधीने भी नहीं किया । जो सवेरे कु-वचन बाणोंसे बेधता गया था, सायं-काल फिर आजानेपर, उसके साथ भी मन्द-मुस्कानसहित वैसे ही मीठी बातें करने लग जाते; जैसे कि अपने अनन्य भक्तों और प्रेमियोंके साथ करते थे। उनके हृदय-स्फटिकमें कोई रङ्ग नहीं रहता था। उनके अन्तरंग-गंग में राग-द्वेषकी कोई रेखा स्थिरता नहीं पकड़ सकती थी । उनके समीप ऊँच-नीच- सधन-निर्धन, अपने पराये सब समान आदर पाते थे ।

शिष्य-समूह-सरोवरमें भी, कमलपत्रकी भांति ममताके लेपसे निर्लेप रहने वाले भगवान दयानन्दजीने गंगासमीपवासी सहस्रों जनोंको जनेऊ देकर द्विज बनाया, संध्या सिखाई, गायत्रीका जप बताया, और लाखों जनोंको सदुप-देशसे सन्मार्ग दिखाया । ढाई वर्षतक भगवती भागीरथीके साथ २ विचरते हुए, स्वामीजी महाराज श्रोताओंकी भीतरी प्यास शान्त करने से, ज्ञान में स्नान कराकर पाप-मल धोनेसे तरणतारिणी गङ्गा बने रहे ।

स्वामीजी महाराज परिभ्रमण करते हुए मार्गशीर्ष संवत् १९२५ वि० को कायमगंज पधारकर हरिशङ्कर पाण्डेयके शिवालयमें उतरे । 'कोई योग्य परम हंस पधारे हैं' यह सुनकर पण्डित गंगाप्रसादजी आदि सज्जन दर्शनार्थ आए। महाराजको स्नानके लिए कहा गया तो कहने लगे कि इस समय स्नान तो करना है, परन्तु एक-कौपीनमात्रधारी होनेसे यहाँ नहीं कर सकते। तब भक्त लोग स्वामीजीको लाला गिरिधारीलालजीके एकान्त स्थानमें लेगये। उन्होंने वहीं स्नान किया और भोजन भी पाया ।

उस स्थानके पाँच भद्र पुरुषोंने स्वामीजीसे संध्या लिखकर कण्ठ कर ली । कायमगंजमें कोई विशेष शास्त्रार्थ नहीं हुआ, परन्तु फिर भी पौराणिक लोग आकर अपनी शङ्का निवारण कराते रहे। मुर्शदाबादके दस पंद्रह मुसलमानों-ने आकर कुछ पूछा । उसका उचित उत्तर पाकर वे मौन हो गये ।

कई ईसाई सज्जन स्वामीजीके डेरेपर आए और इधर उधर ऊँचे स्थानोंपर बैठ गये । स्वामीजीके भक्तोंने इसे बुरा मनाया, परन्तु महाराजने कहा कि

एकके केवल ऊँचे स्थानपर बैठ जानेसे दूसरा नीचा नहीं होजाता। यदि उसीमें ऊँचाई हो तो पक्षी भी तो सबसे ऊँचे स्थानपर बैठते हैं। पादरियोंके पूछने-पर, स्वामीजीने कहा कि पाप-क्षमा नहीं किया जाता।

भागवत, शिवालय और शिव-पूजनका भी स्वामीजीने खण्डन किया। एकने कहा कि सत्यनारायणकी कथाके लिए हम लोग एक रुपये की मनौती मनाते हैं तो कार्य सिद्ध होजाता है। इसे आप कैसे मिथ्या कहेंगे? महाराज-ने कहा 'कि हम पांच रुपये मनौतीमें दिखाते हैं 'कि लखपति हो जायँ, तो क्या हो जायँगे?'

यहाँ तिलकका भी युक्तियुक्त खण्डन किया गया।

भोग-विलासके जीवनको स्वामीजीने अति-दुःखदायक वर्णन करके उसके अनिष्टके परिणामोंके उदाहरणमें एक दुर्बल मनुष्यकी ओर संकेत किया और संयमके जीवनके दृष्टान्तमें एक पुष्ट व्यक्तिको दिखाकर कहा कि यह गृहस्थ नियमसे रहता है, इसीलिए हृष्ट पुष्ट और बलिष्ठ है।

स्वामीजीने लोगोंको संध्या-गायत्री, हवन-यज्ञका बहुत उपदेश दिया, जिससे लोग इन कर्मोंके करनेमें प्रवृत्त भी हो गए। भक्तजन आधी आधी राततक सत्संगमें बैठे उपदेश श्रवण किया करते थे।

कायमगंजमें श्रीमहाराजकी रसोई बनानेके लिए एक पहाड़ी ब्राह्मण नियत था। लोग उत्तम पदार्थ उस रसोइएको दे आते थे कि स्वामीजी को खिला देना, परन्तु वे तो सादा और नियमित भोजन पातेथे, वह सामग्री लोगोंको बाँट दी जाती थी। महाराज बहुत थोड़ी नींद लिया करते थे।

तेरहवाँ सर्ग।

कायमगंजसे प्रस्थान कर, श्री स्वामीजी शमसाबाद होते हुए सम्वत् १९२५ के पौष मासके आरम्भमें फरुखाबाद पधारे, और लाला जगन्नाथके विश्रान्त घाटपर ठहरे। महाराजके वहाँ पहुंचतेही उनकी कीर्ति, वायु-वेगसे सारे नगरमें फैल गई। प्रत्येक श्रेणीके सहस्रों नागर नित्य श्री-सत्संगमें आते, प्रश्न पूछते, भ्रम मिटाते और संध्या-गायत्री सीखते थे। लोक

हितकी बातोंका भी स्वामीजी उपदेश दिया करते थे। पण्डित विश्वम्भरदास-जी एक दार्शनिक विद्वान् थे । वे स्वामीजीके उपदेशोंसे मोहित होकर उनके अनुगामी बन गए ।

स्वामीजीके समझानेकी शैली अत्युत्तम थी । वे बातोंके चक्रमें डालकर वादीके ही मुखसे उसकी भूल स्वीकार करा लेते थे ।

पण्डित गंगारामशास्त्रीने प्रसिद्ध करदिया कि मैं स्वामीजीसे शास्त्रार्थ करके उन्हें परास्त करूंगा। उसने परीक्षाके लिए अपने पुत्र और एक विद्यार्थीको स्वामीजीके निकट भेजा । जब वे दोनों आए तो स्वामीजी महाशय दुर्गाप्र-सादजीके पुरोहितको मनुस्मृति पढ़ा रहे थे। आगन्तुक युवकोंमेंसे एकने कहा कि अहंकारी चाण्डाल होता है। जब स्वामीजी अध्ययन करा चुके तो उस विद्यार्थीसे पूछने लगे कि तुमने क्या कहा था? उसने वही शब्द फिर दुहरा दिये। स्वामीजीने कहा कि भद्र! तू तो अभी यह भी नहीं जानता कि अह-कार क्या वस्तु है; परन्तु यह तो बताओ कि क्या तुमने ऐसा शब्द कहते हुए अहङ्कार नहीं किया? युवकने कहा, महानुभावोंको तो कदापि नहीं करना चाहिए। फिर स्वामीजीने कहा कि तुमने अभी शास्त्रानुशीलन नहीं किया। तुम्हारा ज्ञान अति संकुचित है, इसलिए तुम महापुरुषोंकी गति मति नहीं जान सकते। महात्माजन मिथ्याभिमान कदापि नहीं करते, परन्तु सच्चा अहङ्कार उनमें अवश्यमेव होता है! अच्छा मैं तुमसे पूछता हूँ कि श्री रामचन्द्र और श्रीकृष्णचन्द्रजी महापुरुष थे कि नहीं? इसपर युवक निरुत्तर होकर अपने साथीसहित वहाँसे चला गया । इसके पश्चात् गंगारामने भी स्वामीजीके सन्मुख आनेका साहस न किया ।

स्वामीजीने गंगारामको गीताका एक श्लोक लिखकर भेजा और कहा कि तुम गीताकी कथा कहते हो। यदि इसका ठीक ठीक अर्थ कर दो तो हम इतनेही में अपनी हार मान लेंगे। परन्तु उस कथक्कड़ से कुछभी न बन पड़ा ।

एक दिन कायमगंज-निवासी पण्डित बलदेवप्रसाद और चौबे परमानन्दजी स्वामीजीके निकट गये। बलदेवप्रसादजीने हाथ जोड़ कर पूछा कि यदि, राजादि क्षत्रिय लोग हिंस्र जीवोंका बध करें तो इस कर्ममें पाप क्यों नहीं माना जाता! स्वामीजीने उत्तर दिया कि हिंस्र जीवोंके मारनेमें पाप इस लिए नहीं

है कि उनके वधसे किसीकी कोई हानि नहीं होती। बलदेवप्रसादने फिर पूछा कि आपके विचारमें पाप क्या है? स्वामीजीने उत्तर दिया कि इस विषय-में, मैं पाप हानिको मानता हूं। तदनन्तर यह प्रश्न उठाया गया कि तब तो निकम्मे और वृद्ध मनुष्यके वधमें पाप न होना चाहिए! इसपर महाराजने कहा कि अति वयोवृद्ध और निकम्मे जनके मारनेमें कृतघ्नताका महादोष है और गाय आदि अत्यन्त उपयोगी पशुओंके हननेमें भी कृतघ्नतारूप पाप होता है।

लाला जगन्नाथजीने पूछा कि महाराज! मनुष्यका कर्तव्य क्या समझा जाय? स्वामीजीने उत्तर दिया कि आदर्श-प्राप्तिके लिए कर्तव्य कर्म किया जाता है। मनुष्यके आगे आदर्श-प्राप्त 'परमात्माकी प्राप्ति' करना है, इस लिए इसका कर्तव्य है कि जैसे दयालु ईश्वर सबपर दया करता है, यह भी सबपर दया करे, ईश्वर सत्य स्वरूप है, मनुष्य भी सत्यवादी बने, इस प्रकार ईश्वरके गुणोंको अपनेमें धारण करनेका अभ्यास करे और अन्तमें परमेश्वरको उपलब्ध करे।

फरुखाबादमें कुछ लोग ऐसे हैं जिन्हें वहांके रहनेवाले 'साधु' कहते हैं। वे सभी काम-धन्धा करके निर्वाह करते हैं, और घर-बारी होते हैं। उनके हाथका बना हुआ भोजन ब्राह्मण-वैश्यादि नहीं खाते। एक दिन ऐसा हुआ कि एक साधु कढ़ी और भात थालमें परसकर बड़ी प्रीतिसे स्वामीजीके लिए लाया। महाराजने उस अन्नको प्रसन्नतासे ग्रहण कर लिया। परन्तु इसपर ब्राह्मणलोग असंतोष प्रकट करते हुए कहने लगे "स्वामीजी! आप तो सा-धुका भोजन पाकर भ्रष्ट हो गए। आपको ऐसा करना कदापि उचित न था।

स्वामीजीने हंसते हुए कहा "अन्न दो प्रकारसे दूषित होता है, एक तो तब जब दूसरेको दुःख देकर प्राप्त किया जाय, और दूसरे जब कोई मलीन वस्तु उसपर अथवा उसमें पड़ जाय। इन लोगोंका अन्न परिश्रमके पैसेका है और पवित्र है। इस लिए इसके ग्रहण करनेमें दोषका लेश भी नहीं है।"

फरुखाबादमें भी स्वामीजीने लोगोंको यज्ञोपवीत धारण कराए। एक पण्डितने कहा कि शुक्र अस्त हो रहा है, इस लिए, ऐसे समयमें यज्ञोपवीत धारण करानेका निषेध है। स्वामीजीने कहा, "जिनका शुक अस्त हो गया हो

वे न करायें, परन्तु हमारा तो अस्त नहीं हुआ। इस लिए हम अवश्य करायेंगे।"

लाला जगन्नाथजीके यज्ञोपवीतपर ग्यारह पण्डित, प्रतिदिन एक सहस्र गायत्रीजप करनेके लिए नियत हुए। यजमानको भी एक सहस्र गायत्री जपनेका आदेश था। यजमानसे उपवास भी कराए गए। यह जपादि कर्म और बृहद् हवन सब स्वामीजीके निरीक्षणमें, उन्हींके डेरेके स्थानमें ग्यारह दिन तक होता रहा। यज्ञोपवीत नगरमें होना था। इस लिए स्वामीजीने गायत्री मंत्र एक यजुर्वेदी ब्राह्मणको लिखकर कह दिया कि इसका उपदेश दे देना। परन्तु अति विनय करनेपर भी आप नगरमें न गये। लाला जगन्नाथको अनेऊ यद्यपि एक पण्डितने धारण कराया, परन्तु उन्होंने अपना गुरु श्री स्वामीजीको ही माना।

श्री भीष्म गंगा नदीके पुत्र थे, इसका स्वामीजीने खण्डन किया। सन्ध्या दो कालहीमें करनी चाहिए, इसकी पुष्टिमें उन्होंने महाभारतसे श्रीकृष्णजीकी द्वारकासे हस्तिनापुरकी यात्राका प्रसंग निकालकर दिखाया।

एक दिन तीसरे प्रहर चार पाँच मुसलमान स्वामीजीके निकट आकर पूछने लगे कि आपके विचारमें परमेश्वरने श्री मुहम्मदको हमारे लिए भेजा है कि नहीं? स्वामीजीने उत्तर देते समय उन्हें तीनबार कहा कि 'हमारे कथनसे अप्रसन्न न हूजियेगा'। हम तो मुहम्मदीजीको अच्छा नहीं समझते हैं। आप लोगोंने भी अच्छा नहीं किया, जो उसके अनुयायी बन गए। जब चोटीके बाल कटवा डाले थे तो इतनी लम्बी दाढ़ी रखनेसे क्या लाभ?

फरुखाबादमें स्वामीजीने नामधारी ब्राह्मणोंका खण्डन करते हुए कहा "गुणकर्मानुसार ही ब्राह्मण होता है।" इसपर नगरवासी ब्राह्मण अति क्षुब्ध और कुपित हो अपने बचावकी चेष्टा करने लगे। उन्होंने मेरठसे हरिगोपालशास्त्रीको बुलाकर शास्त्रार्थके लिए सुसज्जित किया। शास्त्रार्थके लिए स्वामीजीका द्वार तो सदा खुला ही रहता था। इस लिये पौराणिक लोगोंका एक बड़ा दल वहाँ पहुँच गया। पण्डित पीताम्बरदासजी मध्यस्थ नियत हुए। पूर्वपक्ष स्थापन करते हुए हरिगोपालजीने कहा, "स्वामीजी!

मूर्ति-पूजा तो सब ग्रन्थोंमें मिलती है, तो फिर आप उसका खण्डन कैसे करते हैं ?

स्वामीजीने उनसे पूछा "बताइए किस आर्ष ग्रन्थमें मूर्त्ति-पूजनका विधान है ?" इसपर शास्त्रीजीने "देवताभ्यर्चनं चैव समिदाधानमेव च" यह मनु-वाक्य कहा और इसका अर्थ करते हुए देवता शब्दसे प्रतिमा-पूजन बताया।

उत्तरमें हरिगोपालजीके पक्षका खण्डन करते हुए स्वामीजीने व्युत्पत्तिसे, युक्तियोंसे और प्रकरणक्रमसे यह सिद्ध कर दिया कि, यहाँ मनुमहाराजका देवार्चनसे तात्पर्य अग्नि-होत्र और विद्वानोंका आतिथ्य-सत्कार है। शास्त्रीजी इसके पश्चात् थोड़े समयतक तो इधर उधरकी बातें बनाकर सिर-पड़ा संकट टालते रहे, परन्तु अन्तमें भाग जानेके बिना उन्हें बचावका कोई अन्य मार्ग दिखाई न दिया।

हरिगोपालजी स्वामीजीके पाससे तो अपनासा मुँह लेकर चले आये, परन्तु कुछ नगरवासी ब्राह्मणोंको साथ मिलाकर दूसरे प्रकारकी प्रवंचनाकी चोटें चलाने लगे। उन्होंने काशीमें पहुँचकर मूर्ति-पूजनकी पुष्टिमें वहाँके पण्डि-तोंकी हस्ताक्षरयुक्त व्यवस्था प्राप्त की। फिर फरुखाबादमें आकर स्वामीजीके डेरेके निकट एक विस्तृत खुले स्थलमें झंडा गाड़ दिया और लोगोंको वह व्यवस्थापत्र सुनाने लगे। वहाँ सहस्रों मनुष्य एकत्रित हो गये और अत्यन्त कोलाहल मचने लगा। स्वामीजीके समीप भी मनुष्यपर मनुष्य भेजा जाता था कि खुले स्थानमें आओ और शास्त्रार्थ करो। परन्तु स्वामीजी उनके कपट कौशलको भलीभाँति जानते थे, इसलिए उन्होंने निरे ऊधम मचानेवालोंके मण्डलमें जाना उचित न समझा, और बारबार यही कहला भेजते रहे कि नीचे खड़े गड़बड़ क्यों कर रहे हो? शास्त्रार्थ करना चाहते हो तो ऊपर हमारे यहाँ क्यों नहीं चले आते? इसके उत्तरमें हरिगोपाल कहते थे कि 'मैं स्वामी दयानन्दके निवासस्थानपर नहीं जाऊँगा। उसने विश्रान्तको कील रक्खा है। इसलिए वहाँ जानेसे हार अवश्य हो जायेगी।'

इस हल्लेगुल्लेका समाचार कलेक्टर महाशयको भी मिल गया। उन्होंने कोतवालको वहाँ तत्काल पहुँचनेकी आज्ञा की। आज्ञा पाते ही कोतवाल महा-शय सीधे स्वामीजीके स्थानपर पहुंचे और स्वामीजीको बाहर बुलवाया। महा-

राज भीतर बैठे थे। वे बाहर नहीं आये। अन्तमें लाला जगन्नाथने कोतवालको कहा कि त्यागी संन्यासीको आप चपरासीद्वारा बाहर बुलाते हैं यह उचित नहीं। उन्हें क्या पड़ी है कि दौड़ते हुए आपके पास चले आयें ?

तत्पश्चात् कोतवाल स्वामीजीके आसनके समीप चला गया और कहने लगा "बाबाजी ! यह क्या बखेड़ा हो रहा है?" स्वामीजीने उत्तर दिया "हम तो अपने स्थानपर बैठे हुए हैं, न किसीको कोई कटुवचन कहते हैं और न किसीसे झगड़ते हैं, यहाँ तक कि लोग कु-वचन भी कहते हैं तो भी मौन और शान्त रहते हैं। आप राजकर्मचारी हैं। आपका कर्त्तव्य है कि उनसे जाकर पूछें, जो सचमुच बखेड़ा कर रहे हैं।" कोतवालने वास्तविक वार्त्ताको समझकर स्वामीजीके स्थानपर दो सिपाहियोंका पहरा नियत कर दिया कि वे किसी क्षुद्राशय, उपद्रवी मनुष्यको वहाँ न जाने दें।

तदन्तर कोतवाल महाशयने पण्डित हरिगोपालको आहूत किया। कोतवालका नाम सुनते ही उसके प्राण काँप गये। परन्तु करता क्या? सामने आना ही पड़ा। कोतवालने उसे ऐसा डाँटा कि वह मारे डरके नगरही छोड़कर चला गया।

हरिगोपालके किये हुए गोलमालके दो तीन दिन पश्चात्, उसका साथी ज्वालाप्रसाद मदिरामें चूर, एक कुर्सी लिये स्वामीजीके स्थानपर आया; वहाँ कुर्सी रखकर उसपर बैठगया और लगा अनाप शनाप बकने ! उपस्थित जनोंने उसे ऐसा करनेसे बहुतेरा रोका, परन्तु वह गालीप्रदानसे न रुका। मणिलाल आदि स्वामीजीके सेवक अपने आवेशको न थाम सके। स्वामीजी यह कहते ही रहे कि 'यह उन्मत्त है, इसे कुछ न कहो' परन्तु उन्होंने उस उद्दण्ड मनुष्यको पकड़कर बहुत पीटा और उसकी कुर्सी वहीं जला दी।

अगले दिन लाला जगन्नाथ स्वामीजीके पास आये। वृत्तान्त ज्ञात होनेपर कहने लगे, "स्वामीजी ! यदि वह दुष्ट राजद्वारमें जाकर आपके सेवकोंपर मार-पीटका अभियोग चलावे और आपको वहाँ साक्षी देनेके लिए बुलावें तब आप क्या कहेंगे?" स्वामीजीने कहा, "कोई मिथ्या कथन थोड़े ही करेंगे। जो कुछ हुआ है वह सब कह देंगे।"

उसी ज्वालाप्रसादका सम्बन्धी ठाकुरदास भी बीस पच्चीस मनुष्य लेकर स्वामीजीको मारने आया; परन्तु महाराजके सामर्थ्यसे और पकड़े जानेके भयसे पीछे भाग गया। दुष्ट जनोंके आक्रमणका वृत्तान्त सुनकर लाला जगन्नाथजी, कुछ मनुष्योंसहित तुरन्त विश्रान्तमें पहुँच गये; परन्तु उनके आनेसे पूर्व ही उपद्रवी लोग वहाँसे चले गये थे।

उस समय लाला जगन्नाथने श्री-चरणोंमें बिनती की, "क्षुद्र लोग आपके अमूल्य जीवनको लेनेके लिए बार बार आक्रमण करने लगे हैं, इसलिए आप हमारे भीतरके स्थानमें चलकर रहना स्वीकार कीजिए।" स्वामीजीने कहा, "महाशयजी! यहाँ तो इस प्रकार मेरी आप रक्षा कर लेंगे, परन्तु अन्यत्र कौन करेगा? मेरी रक्षा तो सर्वत्र परमात्मदेव ही करते हैं। इसी लिए मैं सर्वथा निर्भय हूँ।

विश्रान्तिस्थानमें एक दिन सहस्रों मनुष्य महाराजका उपदेश सुननेके लिए एकत्रित हो रहे थे। उस समय एक पण्डितने खड़े होकर मूर्ति-पूजनपर प्रश्न करना आरम्भ कर दिया। महाराज भी उसे सन्तोषजनक उत्तर देने लगे। बीचमें कालीके उपासक, मद्यमें मत्त, एक ब्राह्मणने उठकर कुवचन बोलते हुए महाराजपर जूता फेंका, जूता स्वामीजीतक न पहुँचकर बीचमेंही गिर पड़ा। परंतु इससे सत्संगमें बैठे हुए सत्यनामिये साधुओंकी आँखोंमें लहू उतर आया। उन्होंने तुरन्तही उस नराधमको पकड़ लिया और लगे पीटने। उसको पिटते देख स्वामीजीको अति अनुकम्पा आ गई। महाराजने साधुओंको समझाया, "इसकी चेष्टासे हमें कोई दुःख नहीं हुआ; और यदि जूता लग भी जाता तो भी कौनसा रामबाण था? इसने जो कुछ किया है अज्ञान और सुराके वशी भूत होकर किया है। इसलिए इसपर दया करो, इसे छोड़ दो।" तब साधुओंने उसे छोड़ दिया। ये सत्य-नामी साधु स्वामीजीके बड़े प्रेमी थे; उनकी सहायतामें सदा तत्पर रहते थे।

उन दिनोंमें वहाँके सम्पत्तिशाली लोग प्रायः हाथमें दो चार ऐसे उद्दण्ड लठैत रखते थे, जो समय पड़नेपर काम आयें। ऐसे मनुष्योंसे प्रायः मारपीट का काम लिया जाता था। बहुतसे उपद्रवियोंने एक प्रसिद्ध महाबली गुण्डेको स्वामीजीको पीटनेके लिए समुद्यत किया। उसने पुष्कल द्रव्य लेकर उनको

वचन दिया कि मैं लाठियोंसे दयानन्दकी ऐसी गत बनाऊंगा कि यदि किसी प्रकार वह जीता भी बच गया तो शास्त्रार्थ करनेके योग्य तो कदापि न रहेगा।

एक दिन वह उद्दण्ड व्यक्ति समय ताककर स्वामी-स्थानमें प्रविष्ट हुआ। स्वामीजीने भी देखा कि सामनेसे एक हट्टा कट्टा बलवान् व्यक्ति, एक मोटा लट्ठ उठाये झूमता हुआ सीधा चला आता है। समीप आकर उस उद्दण्ड मनुष्यने कहा कि बाबा! क्या तुम मूर्तिको ईश्वर नहीं मानते हो? स्वामीजीने गम्भीरतासे उत्तर दिया कि भद्र! तुम जानते हो ईश्वर का स्वरूप क्या है? वह बोला कि हां मैं जानता हूं। स्वामीजीने कहा कि फिर बताइए तो। वह बोला कि ईश्वर सच्चिदानन्द, सर्वशक्तिमान् है; भक्त-वत्सल दयालु देव है और सर्वत्र परिपूर्ण है। तब स्वामीजीने किंचित् हंसकर कहा, कि ईश्वरके जो गुण तुमने कथन किये हैं वे सब सत्य हैं। तुम्हारी इस समझकी मैं प्रशंसा करता हूं। परन्तु अब तुमही इन वर्णित ईश्वरीय गुणोंको मंदिरकी मूर्तियोंके गुणोंके साथ मिलाओ। यदि वे मिल गए तो मैं तुम्हारा साथी बन जाऊंगा, और यदि न मिले तो तुम्हें भी वही मानना चाहिए, जिसकी साक्षी तुम्हारा आत्मा देता है।

समझानेके इस ढंगसे उसका चित्त पिघल गया और वह लठ्ठको फेंककर श्रीचरण-शरणमें गिर पड़ा। उस दिनसे उसकी काया पलट गई। वह सारे बुरे कर्मोंको त्यागकर धीरे धीरे साधु-स्वभाव और सदाचारी बन गया।

पण्डित हरिगोपालके परास्त हो जानेसे कुछ पौराणिक भक्त लज्जितसे थे, इसलिए लाला प्रेमदास आदिने हलधर ओझाको कानपुरसे मंगवाया। उसके आनेपर प्रसिद्ध किया गया कि कोई पण लगाए तो शास्त्रार्थ हो सकता है। यह बात लाला जगन्नाथ तक भी पहुँच गई। उन्होंने झटपट ढाई सहस्र रुपये एक ब्राह्मणके हाथ लाला देवीदासके पास भिजवाकर कहलवाया कि इतनेही रुपए आप अपने पाससे डालकर किसी सेठके पास रख दीजिए। शास्त्रार्थमें यदि स्वामीजी विजयी हुए तो रुपये मैं ले लूंगा, और यदि हलधर-की विजय हुई तो आप लेलीजिएगा। देवीदासजीने रुपये पीछे लौटा दिये कि पण्डित हलधर मैथिल कानपुरमें आये हुए थे। हमने उन्हें यहाँ इसलिए बुलाया है कि स्वामीजीके स्थानपर लेजाकर बात चीत करायँगे।

ज्येष्ठ सुदी १० सम्वत् १९२६ को रातके ९ बजे लाला देवीदासजी आदि सेठों और अनेक पण्डितोंके साथ हलधर ओझा स्वामीजीके स्थानपर आये। लाला जगन्नाथने आगे जाकर उनके आगमनका समाचार स्वामीजीको दिया। अतिथियोंके आनेपर महाराजने उनको यथायोग्य सत्कारसे उचित स्थानपर बैठाया। शास्त्रार्थका विषय मूर्त्ति-पूजन था, परन्तु हलधर थे पक्के तांत्रिक, इसलिए उन्होंने आरम्भमेंही सुरापानपर बातचीत चला दी। मदिरापान करना चाहिए इस पक्षकी स्थापनामें उन्होंने "सौत्रामण्यां सुरां पिबेत्" यज्ञोंमें मदिरा-पान करे यह प्रमाण उपस्थित किया।

स्वामीजीने हलधरके पक्षमें दोष प्रदर्शित करते हुए कहा कि वहाँ यज्ञमें मदिरा-पानका विधान नहीं है किन्तु सोमलताके रससे तात्पर्य है।

फिर हलधरने स्वामीजीसे संन्यासीके लक्षण पूछे, उन्होंने संन्यासीके लक्षण बताते हुए हलधरको कहा कि आप ब्राह्मणके लक्षण बताइये। इसका उत्तर तो उसने कुछ न दिया, परन्तु गड़बड़ करने लग गया। इसपर महाराजने उसे कहा कि प्रकरणसे बाहर न जाइये, विषयपरही बोलिए।

हलधर बचना तो चाहताही था, इस लिए वह तुरन्त कह उठा कि आप बारबार प्रकरण शब्दका उच्चारण करते हैं, भला यह तो बताइए कि यह शब्द बनता कैसे है? महाराजने कहा प्र पूर्वक 'कृ' धातुसे 'ल्युट्' करनेपर प्रकरण शब्द सिद्ध होता है। तब हलधर बोला—"कृ धातु समर्थ है वा असमर्थ?" स्वामीजीने कहा, "वह समर्थ है।" फिर उसने पूछा—"अच्छा तो यह बताइए, 'समर्थ' किसे कहते हैं?" इसपर स्वामीजीने यहां भाष्यका एक वाक्य बोलकर कहा, "अपेक्षा करने वालेको असमर्थ कहते हैं।" उसने कहा कि यह वाक्य आपकी संस्कृत है, महाभाष्यका नहीं। स्वामीजीकी आज्ञासे पण्डित ब्रजकिशोरजीने महाभाष्य निकालकर दूसरे अध्यायके प्रथमाह्निकमें वह वाक्य दिखा दिया। उसपर उसने कहा कि मैं इसे प्रमाण नहीं मानता, क्योंकि मैं भी महाभाष्यके कर्त्तासे कुछ न्यून विद्वान् नहीं हूँ, मेरी विद्या भी उसके समानही है। तब स्वामीजीने कहा, "तुम महाभाष्यके कर्त्ताके सामने तुच्छ हो।"

इस प्रकार रातके एक बजेतक वाद होता रहा। अन्तमें उठते समय यह निश्चित हुआ कि "समर्थः पदविधिः" सूत्र यदि सर्वत्र लगे तो स्वामीजीकी जय समझी जाय, और यदि यह सूत्र एक स्थानपर लगे तो हलधरकी।

दूसरे दिन लाला जगन्नाथ और लाला मणिलालजी स्वामीजीके समीप आकर विनय करने लगे कि रातको जाते समय सारे पण्डित कह रहे थे कि हलधरका पक्ष सत्य था, स्वामीजी व्यर्थही हठ करते हैं, सो यदि वह सूत्र सर्वत्र न लगता हो तो यथा तथा करके वादाविवादका बखेड़ा टाल दिया जाय। स्वामीजी अपने प्रेमियोंको स्वपक्षका परिचय देते हुए कहने लगे कि यदि आप उसे न लावें तो तुम्हें गोहत्याका पाप लगेगा और यदि वह न आया तो वह भी गो-हत्याके पापका भागी बनेगा !

दूसरी रात फिर सभा लगी। महाराज भी आकर चटाईपर विराजमान हुए। प्रथम रात्रिमें जो प्रतिज्ञा हुई थी उसको महाराजने उद्घोषणा की। और तो सबने उसका समर्थन किया, परन्तु हलधरजी मौन बैठे रहे। कुछ लोग उपद्रव भी करना चाहते थे, परन्तु उनको कह दिया गया कि यदि किसीने कुछ भी गड़बड़ की तो उसे तुरन्त यहाँसे निकाल दिया जायगा। इससे शांति स्थापित होगई।

श्रीमहाराजने हलधरको हँसते हुए कहा कि, हलधर ! हम तो सन्यासी हैं यदि हार गये तो कोई बात नहीं। परन्तु आप घरबारी गृहस्थ हैं; पराजय होनेपर आपकी बड़ी भारी हानि होगी। किन्तु हलधर यही कहता था कि मैं हारूंगा क्यों? मेरा तो पक्ष सर्वथा सत्य है।

रात चाँदनी थी इस लिए पहले दीपकका प्रबन्ध नहीं किया गया था। महाराजने व्रजकिशोरजीको पुकारकर कहा कि दीपक और महाभाष्यकी पुस्तक ले आइए। वे तत्काल दोनों वस्तुएं लेकर श्रीसेवामें उपस्थित हो गये। महाराजने महाभाष्य खोलकर उस सूत्रको सर्वत्र लगाकर दिखाया। यह देखकर हलधर चुप हो गया।

कुछ पण्डित बीचमें दूसरी बात छेड़ना चाहते थे, परन्तु स्वामीजीने बलपूर्वक कहा कि प्रथम इसका निर्णय कीजिए कि जय किसकी हुई। एक बार तो सारे पण्डित शून्यसे हो गये। परन्तु लाला जगन्नाथके यह कहनेपर कि आप सत्य सत्य कहनेसे क्यों झिझकते हैं, सबने एक वाक्य होकर कह दिया कि गत दिनके निश्चयानुसार आज हलधरजीकी प्रतिज्ञा अशुद्ध सिद्ध हो गई।

पण्डितोंके व्यवस्था-वचन हलधरके कानोंपर वज्रसमान गिरे। उसका हृदय चूर चूर हो गया। मान मर्दित और घमण्ड खण्ड खण्ड होकर उसकी गौरव-गरिमा मिट्टीमें मिल गई। उसने इस पराजयजन्य धक्केको यहाँतक अनुभव किया कि मूर्छा खाकर गिरने लगा। परन्तु लोगोंने उसे थाम लिया और वे वहाँसे उठाकर ले गये। उस दिन वहाँ जन-संघट्ट भी अत्यधिक था। स्वामीजीकी विजयसे सारा जन-समूह चकित हो गया। उनके पाण्डित्यका गौरव सबपर छा गया। उनकी धारा-प्रवाह संस्कृत, चमत्कारिणी बुद्धि, तात्कालिक उपज और अकाट्य युक्तियाँ सबको प्रभावित किये हुए थीं। उस समय प्रत्येक पुरुषकी हृदयतन्त्रीके तार, सुर मिलाकर, परमहंस श्रीदयानन्दके जयकारकी झंकार कर रहे थे।

मूर्छित हलधरको उठा ले जानेके पश्चात् प्रेमपूर्वक ज्ञान-चर्चा करते हुए सवेरा हो गया। तब समागत सज्जन स्वामीजीको नमस्कार कर श्रीसत्संगसे बिदा हुए और स्नानादि करके अपने घरोंको चले गये।

उस समय वेश्याओंका रखना, समृद्ध लोगोंमें बड़ाईका एक अंग समझा जाता था। इसमें लोक-लाज और जाति-बिरादरीका किंचित् भी भय न होता था। मान्य और धनी लोग खुल्लम खुल्ला वेश्यायें लिये डोलते थे और कोई किन्तु-परन्तुतक न करता था! स्वामी दयानन्दजी महाराजने इस सर्वनाशी कु-व्यसनका घोर खण्डन आरम्भ कर दिया। महाराजके दृष्टान्तोंसे, युक्तियोंसे और समझानेकी शैलीसे युवक और परिपक्व आयुके जन इतने प्रभावित हो जाते थे कि बरसोंके व्यसनी भी इस कर्मको त्यागने लग गये; इस नीचताके कीचसे निकलकर पार पा गये। लोगोंमें इस दुर्व्यसनके लिए घृणाका भाव उत्पन्न हो गया। सर्वत्र प्रसिद्ध हो गया कि वेश्याओंके विकट जालमें फँसनेसे बचानेके लिए, उनके दाँव-पेचसे निकालनेके लिए महात्मा दयानन्दजीके उपदेश मोहिनी मन्त्र हैं।

सेठ पन्नालालजी स्वामीजीके एक श्रद्धालु भक्त थे। उनको एक प्रतिष्ठित पुरुषने कहा कि यदि आप मेरे लड़केको स्वामीजीसे सुधरवादें तो मैं आपका बड़ा भारी उपकार मानूँगा। इससे मेरे वंशको बचा दोगे।'

वह युवक बहुत बिगड़ा हुआ था। अपने घरकी भूमिहारीकी कुछ भी सार-सम्भाल न किया करता था। प्रतिदिन वाराङ्गनाओंके साथ उद्यान-विहारके लिए जाता और रातदिन उन्हींके यहाँ पड़ा रहता था।

पन्नालालजीने उस युवककी दशाका श्रीगुरु-चरणोंमें वर्णन करके उसके सुधारनेकी विनय की। महाराजने कहा कि यदि आप उसे एक बार मेरे निकट ले आयें तो मैं उसका पाप-कर्म छुड़ा दूँगा। पन्नालालजीने घर जाकर दो सुशील युवकोंको बुलाया और कहा कि किसी प्रकार उस कु-व्यसनी युवकको समझा बुझाकर स्वामीजीके पास ले चलो। वे सुशील कुमार पहिले भी उसके अच्छे परिचित थे। इसलिए, दो तीन दिनहीके मेल-मिलापसे परस्पर-प्रेम-बद्ध हो गये। समय पानेपर वे युवक उस कु-व्यसन-ग्रस्त युवकको स्वामी-जीके दर्शन करनेकी बार बार प्रेरणा करते थे। और कहते थे कि स्वामीजी बड़े त्यागी परमहंस हैं, न किसीसे कुछ लेते हैं, और न झगड़ते हैं, अति शान्त स्वरूप हैं। उनके वचनोंमें बड़ा माधुर्य है। उनकी युक्तियोंमें बड़ा रस है। ऐसा साधु-संन्यासी हमारे नगरमें पहले कभी नहीं आया।

जैसा चम्पाके पुष्पोंके संसर्गसे तेलमें भी सुगंधिका संचार हो जाता है ऐसेही उस व्यसनी युवकका हृदय, उन सुशील कुमारोंके सत्संगसे, स्वामी-श्रद्धाकी सुगंधिसे सुवासित हो गया। एक दिन तीनों युवक स्वामीजीकी सेवामें उप-स्थित हुए और विनीततासे नमस्कार करके बैठ गये।

महाराज अपने प्रेम-भरे नेत्रोंकी पवित्र ज्योतिसे युवकोंके मुखमण्डलोंको उज्ज्वल करते हुए उपदेश देने लगे, "सौम्य युवको! वैसे तो व्यसन सभी बुरे हैं, परन्तु वेश्या सबसे अधिक नाशकारिणी है। इस व्यसनसे सुरापानकी बान सहजमें पड़ जाती है। सभ्य वेष, सभ्य भाषा, सभ्याचार आदि सभी गुण नष्ट हो जाते हैं। कुलाचारपर कठोर कुठाराघात हो जाता है। रातदिन राग-रङ्गमें मग्न रहनेसे व्यवहार बुद्धिका अभाव होने लगता है। ऐसा व्यसनी धर्म्म-कर्म्मसे सदा दूर भागता है। वाराङ्गना अपने वशीभूत जनके मनको कृत्रिम प्रेमसे, बनावटी बातोंसे और हावभावसे सदा उत्तेजित रखती है, जिससे व्यसनी लोग अल्पकालहीमें निस्तेज और जीर्ण-शीर्ण-शरीर

हो जाते हैं। वेश्याका प्रेम स्वार्थपूर्ण होता है। जब स्वार्थसिद्धि नहीं होती तो वह बाततक नहीं पूछती।"

'वेश्यासक्तके परिवारमें आचारकी शुद्धि नहीं रहती। उसका वंश नष्ट हो जाता है। यदि वंश नष्ट न भी हो, तो भी उसकी सन्तानका सदाचारी होना महाकठिन है।"

महाराजने फिर कहा, "युवको! भला यह तो बताओ कि वेश्यासक्तिसे यदि लड़की उत्पन्न हो तो वह लड़की किसकी हुई?" युवकोंने कहा, "उस वेश्यासक्त पुरुषकी।" तब स्वामीजीने पूछा कि "वह युवती होकर क्या काम करेगी?" युवक बोला, "और क्या करेगी? वेश्या बनकर बाजारमें बैठेगी।" तब स्वामीजीने मर्मस्पर्शी शब्दोंमें कहा कि, "देखिए, संसारमें कोई भी भला मनुष्य नहीं चाहता कि उसकी पुत्री वेश्या बनकर बाजारमें बैठे, परन्तु वेश्याके अनुरक्त जन ही ऐसे हैं जो अपनी बेटियोंको वेश्या बनाते हैं, चकलेमें बैठाते हैं, और द्वार-द्वारपर नचाते हैं। तुमही सोचो कि क्या यह बहुत बुरी बात नहीं है?"

यह उपदेश सुनकर कु-व्यसनी युवकके रोंगटे खड़े हो गये। उसका अन्तः-करण पाप-कर्मसे काँप उठा। उसके सारे शरीरमें सनसनी छा गई, और उसने भी अपने साथियोंसहित यह कहा कि स्वामीजी! आपका कथन सत्य है। वास्तवमें वेश्या-प्रेम एक घृणित नीच कर्म है। उस व्यसनी युवकने स्वामी-जीके चरण छूकर वहीं यह प्रण किया कि आजसे मैं वेश्याओंके समीप नहीं जाऊँगा, और जो रक्खी हुई हैं उनका अब परित्याग करता हूँ।

भगवान् दयानन्दने उसे साधुवाद सहित आशीर्वाद दिया और कहा कि सौम्य! ईश्वरकृपासे तेरा जीवन पवित्र हो—तेरी इस समयकी बुद्धि सदा बनी रहे।

उस युवकने फिर श्रीपदपद्मको स्पर्श करके अपने नये जीवनदाताको नम-स्कार किया, और साथियों सहित अपने घरको चला आया। पीछेसे वह युवक स्वामीजीका एक भावनावान् शिष्य बन गया और उनके स्थानीय तथा प्रान्तीय कार्योंमें बड़ी सहायता देता रहा।

एक दिन स्वामीजीके व्याख्यानमें बहुतसी वेश्यायेंभी यह देखने गईं थीं कि वह कौन ऐसा मनुष्य है, जो हमारे पिंजड़ेमेंसे पखेरुओंको निकाल, हमारी आजीविकाका सत्यानाश कर रहा है।

स्वामीजीके विषयमें यह प्रसिद्ध था कि वे पूर्ण योगी हैं और सम्पूर्ण आध्यात्मिक तत्त्वोंको जानते हैं। सारी रात समाधिमें लीन रहते हैं।

एक दिन गढ़ीके नवाबने पूछा कि क्या महाराज! कोई ऐसी विद्या भी है जिससे दूर स्थानके समाचारका ज्ञान हो सके? स्वामीजीने उत्तरमें कहा कि योगीजन ऐसी गुप्त बातोंके जाननेकी इच्छा नहीं करते। उनका मुख्योद्देश्य तो सर्व वस्तुओंसे गुप्त ब्रह्म-सत्ताको जानना है। इस उत्तरसे नवाब महाशयको अति सन्तोष प्राप्त हुआ।

फरुखाबादमें लाला वंशीलालजी एक प्रतिष्ठित पुरुष थे। उन्होंने एक शिवालय बनवाया था और उसमें शिव प्रतिमा स्थापित करनेको ही थे कि स्वामीजीके उपदेश सुनकर उनका निश्चय बदल गया। मूर्त्ति-पूजन उन्हें वेद-विरुद्ध कर्म दिखाई देने लगा। उधर श्री स्वामीजी पाठशालाकी स्थापना करनेका यत्न कर रहे थे। वंशीलालजीने स्वामीजीसे विनय करके वहीं, शिवालयके स्थानपर, पाठशाला स्थापित करा दी।

उस पाठशालामें पचासके लगभग विद्यार्थी प्रविष्ट हुए। सभी अष्टाध्यायी पढ़ने लगे। स्वामीजीने महाशय दुर्गाप्रसादजीको धर्म-कर्मका पवित्र जीवन प्रदान किया था, इस लिए वे गुरु महाराजके कार्यमें पूरे सहायक थे। विद्यार्थियोंके भोजन और वस्त्रकी व्यवस्था वे ही करते थे। पण्डित ब्रजकिशोर अध्यापक नियत किए गए। उनके ३०) तीस रुपए मासिक वेतनका भार लाला पन्नालालजीने अपने ऊपर ले लिया। स्वामीजीने वहीं अमेरीसे वेद मंगाये थे।

एक दिन स्वामीजी गङ्गामें पाँव फैलाये पड़े थे। कुछ लड़कोंने उन्हें देखकर परस्पर कहा कि देखो यह कितना मोटा मनुष्य है। वे गीले रेतके गोले बना बनाकर स्वामीजीपर मारने लगे! महाराज बहुत देर तक तो उन अबोध बालकोंके क्रीड़ास्थल बने रहे, परन्तु जब बालूकण आँखोंमें पड़ने लगे तो उस स्थानसे उठकर चले गये।

एक दिनका वर्णन है कि स्वामीजीके बलकी चर्चा सुनकर बहुतसे मल्ल उन्हें देखने आये; उस समय स्वामीजी स्नान करके आ ही रहे थे। महाराजने अपने दहिने हाथसे कौपीनको पकड़कर बलपूर्वक निचोड़ डाला, और फिर उन मल्लोंको कहा कि यदि आपमेंसे किसीको अपने बलका अभिमान हो तो वह इस कौपीनमेंसे पानीका एक और बूँद निकालकर दिखाये। उन सबने एक एक करके बल लगाया। वे दोनों हाथोंसे दबा-दबाकर थक गये, परन्तु पानीका एक बूंद भी न निकाल सके!

महाराजमें क्षमा अपार थी। दूसरा कोई उनका कितनाही अपकार करता, उनको कितनाही कटुवचन कहता, पर वे सब भुला देते थे। ऐसी बातोंकी गाँठ उनके चित्तमें कभी नहीं पड़ती थी।

स्वामीजी एक दिन प्रातःकाल घूमने जा रहे थे। मार्गमें एक मनुष्यने उन्हें बहुतही कु-वचन कहे। उसने यह भी कहा कि तू ईसाइयोंका नौकर है। हमें कृस्टान बनाना चाहता है। महाराज उसकी अज्ञानलीलापर मुस्कराते ही रहे और घूमकर अपने आसनपर आ विराजे।

वही गाली देनेवाला मनुष्य यह सोचकर कि अब दयानन्दको उसके स्थान-पर जाकर चिढ़ायें, महाराजके समीप आया। स्वामीजीने उसका 'आइये, बैठिये' इत्यादि शब्दोंसे स्वागत किया और मधुर वचनोंसे उसके वहाँ आनेका कारण पूछा। वह मनुष्य, यद्यपि हृदय, पाषाण समान कठोर रखता था, स्वामी-जीको सताने आया था; परन्तु उनके कृपाभावसे वीतराग स्वभावसे, सुजन-ताके बर्तावसे उसका मन मोम हो गया; पश्चात्तापके उद्रेकसे उसका जी भर आया। श्री-चरणोंको अपने अनर्गल अश्रुओंसे सिंचन करके क्षमाकी याचना करने लगा। स्वामीजीने उसे ढाढस बँधाया और कहा, "शब्द आकाशमें उत्पन्न होकर वहीं लय हो जाता है, इस लिए तुम्हारे वे वचन भी नष्ट हो गये हैं। वे मेरे पास नहीं हैं। उन्होंने मुझे स्पर्श नहीं किया। इसी कारण उनसे मुझे यत्किंचित् भी दुःख नहीं हुआ।"

स्वामीजीके आनेसे पूर्व, वहाँके युवक एक बड़ी संख्यामें ईसाई होने लगे थे। परन्तु जब स्वामीजीने आकर ईसाई धर्मके भी दोष प्रदर्शित किये तो वे युवक प्रभावित हो गये। उन्होंने पादरियोंको कह दिया कि अब हमको

आपके धर्म्ममें कोई ऐसी विशेषता नहीं दिखाई देती जिसके लिये हम अपने पुरातन धर्म्मका परित्याग करें । इस प्रकार आर्य जातिके युवकोंके ईसाई होनेसे बच जानेसे—जातिके अङ्गोंके न टूटनेसे—विचारवान् लोग स्वामी-जीकी स्थान-स्थानपर प्रशंसा करते थे। परन्तु कुछ ऐसे स्वार्थ-सिन्धु भी विद्यमान थे, जिनका धर्म्म-कर्म पेटपूजासे परे न था ! उन्होंने अपनी यह नीति बना रक्खी थी कि जैसे भी हो आदर्श संस्कारक दयानन्दको लोगोंकी दृष्टिमें गिराया जाय। वे सर्वत्र कहते फिरते थे कि यह ईसाई है, ईसाइयोंका नौकर है। संन्यासीका वेष धारण करके लोगोंको किरानी बनानेका यत्न कर रहा है!

अनेक भद्र पुरुष स्वामीजीके दर्शनोंसे इस कारण भी वञ्चित रहे कि वे उन पेटू-पुरोहितोंकी कोरी कपट-लीलाको नहीं समझ सके ।

एक सरवरिया धुरन्धर पण्डित, उन्हीं दिनोंमें, फरुखाबादमें आया था । उसको वहाँ एक पण्डितने कहा कि बहुत लोग दयानन्दको ईसाइयोंका मनुष्य कहते हैं। चलो, किसी समय उसके पास चलें और इस बातका पूरा पता लगायें । वे दोनों, रातके दो बजे स्वामीजीके समीप पहुँचे । महाराज उस समय आसन लगाये बैठे थे। शिष्टाचारके पश्चात् सरयूपारी पण्डितने स्वामी-जीसे अनेक श्रौत, स्मार्त और दार्शनिक प्रश्न पूछे । उनका उत्तर पाकर वह परम तृप्त हो गया। चलते समय श्रीचरणस्पर्श करके कहने लगा, "भगवन्! हमने सुना तो यह था कि आप कपटवेषी, प्रच्छन्न ईसाई हैं, परन्तु दर्शनोंसे पता लगा कि आप एक धर्म्मावतार हैं ।" अगले दिन उस ब्राह्मणवर्य्यने सर्वसाधारणको कहना आरम्भ कर दिया, "श्री दयानन्दजी ऐसा दूसरा पण्डित भारतभरमें नहीं है। उन्होंने मुझे ऐसे शास्त्रीय रहस्य बताये हैं कि जो मैंने पहले कभी नहीं सुने थे । उनका कथन सर्वांशमें सत्य है । "

चौदहवाँ सर्ग ।

फरुखाबादसे प्रस्थान कर श्री स्वामीजी श्रीशृङ्गी रामपुरमें दो दिन ठहरे, और फिर वहाँसे जलालाबाद पधारे। वहाँ पहिले तो आप एक उजड़े उद्यानमें ठहरे, परन्तु जब गयाप्रसाद शुक्लको पता लगा तो वे बड़ी विनयसे उन्हें सरनदास उदासीकी कुटियामें ले गये। बिछौनेके लिए बहुत कहा गया

परन्तु महाराजने स्वीकार न किया। सोते समय ईंटोंका ही सिरहाना बनाकर सो गये!

आषाढ़ वदी सं० १९२६ के अन्तमें स्वामीजी कन्नौज आ गये। वहाँ हरिश्चन्द्र नामका एक प्रसिद्ध पण्डित था। वह स्वामीजीके साथ महाभाष्य आदि व्याकरण ग्रन्थोंके विषयोंपर वार्त्तालाप करने लगा। स्वामीजी प्रमाणमें ग्रन्थोंके स्थलोंके पते इस प्रकार देते कि सुनने वाले पण्डित उनकी स्मृतिकी प्रशंसा करने लग जाते थे।

महाराजने हरिश्चन्द्रको पञ्चयज्ञोंके करनेका भी उपदेश दिया। हरिश्चन्द्रने कहा कि मूर्ति-पूजा करना सदाचार है। स्वामीजीने इसका खण्डन करके बताया कि पञ्च महायज्ञोंका करना ही सदाचार है प्रतिमा-पूजनको वे लोग सदाचार कहने लग गये हैं कि जिनसे बलि वैश्वदेव नहीं होता।

उपहास-रसमें स्वामीजीने हरिश्चन्द्रजीको यह भी कहा कि आपका नाम अच्छा नहीं है। देखिए हरिके दो अर्थ होते हैं—एक वानर, और दूसरा चोर। यहाँके लोग नाम तक रखना नहीं जानते।

एक दूसरे ब्राह्मणका नाम गयादीन था। स्वामीजीने उसे भी कहा कि आपका नाम भी भूंडा और भद्दासा है। भला जिसका दीन (धर्म) चला गया उसका शेष रहा ही क्या? उस समय महाराजने आर्य नाम रखने की रीतिका एक अत्युत्तम उपदेश दिया।

रामप्रसादजीके पूछनेपर महाराजने कहा कि कायस्थ वैश्य हैं। अपनेको चित्रगुप्तका वंशीय बताते हैं। और गुप्त शब्द वैश्य लोगोंके लिए ही उपयुक्त होता है। परन्तु आज कल ये लोग अधिकांश मांसमदिराका सेवन करने लग गये हैं। इसे छोड़ दें तो फिर उत्तरोत्तर उन्नत हो सकते हैं।

कन्नौजमें भी एक तुच्छ प्रकृतिका मनुष्य श्रीचरणोंका अनिष्ट-चिन्तन करता रहा, उनके हनन करनेकी डींग मारता रहा, परन्तु उसे कभी उनके पास तक जानेका साहस न हुआ।

वर्षाऋतुके आरम्भमें श्रीस्वामीजी महाराज कानपुरमें सुशोभित हुए। भैरवके मन्दिरके निकट गङ्गाके तटपर दरगाहीलालकी विश्रान्तमें ठहरे। उनका आतिथ्य प्रायः पण्डित हृदयनारायणजी करते थे।

स्वामीजीने इस नगरमें आते ही उपदेश देना आरम्भ कर दिया, और स्थान-स्थानपर विज्ञापन लगवा लोगोंको सत्यकी खोजके लिए उत्तेजित किया। यह विज्ञापन संस्कृत भाषामें था। उसमें महाराजने चार वेद, चार उपवेद, छः अङ्ग, श्वेताश्वतर और कैवल्यसहित दशोपनिषद्, ब्रह्मसूत्र, कात्यायनादि सूत्र, योगभाष्य, वाकोवाक्य, मनुस्मृति और महाभारत ये ग्रन्थ प्रमाण रूप से स्वीकार किये। इनमें भी जो वेदसे भिन्न ग्रन्थ हैं, यदि उनमें कोई वेद-विरुद्ध बात पाई जाय तो वह भी अप्रमाण माननी चाहिए, यह प्रकाशित कर दिया।

महाराजने उस विज्ञापनमें पुराण आदि आठ गप्पोंका खण्डन और निम्न लिखित आठ सत्योंका मण्डन किया:—

१. उपर्युक्त ऋग्वेदसे महाभारतपर्यन्त परमेश्वर और ऋषि-प्रणीत ग्रन्थ सत्य हैं।

२. ब्रह्मचर्याश्रममें गुरु-सेवापूर्वक अपने धर्म अनुष्ठान निभाते हुए वेदाध्ययन करना चाहिए।

३. वेदोक्त वर्णाश्रमका धर्म्म और सन्ध्यावन्दन, अग्निहोत्र आदि कर्म करने उचित हैं।

४. जैसा धर्म्मशास्त्रमें ऋतुकाल आदिके नियमोंसे गृहस्थ-धर्म लिखा है उसके अनुसार चलना। पञ्च महायज्ञों और श्रौत, स्मार्त कर्मोंका करना कर्त्तव्य है।

५. शम, दम, तपश्चरणका धारण, यम आदिसे समाधिपर्यन्त उपासनाका करना और सत्संगपूर्वक वानप्रस्थाश्रमका अनुष्ठान करना विधिविहित है।

६. विचार, विवेक, वैराग्य, परा विद्याका अभ्यास करना और सन्यास ग्रहण करके सकल कर्मोंके फलकी वांछा को छोड़ देना उचित है।

७. जन्म-मरण, हर्ष-शोक, काम, क्रोध, लोभ-मोह, और संग-दोष ये सब अनर्थकारी हैं, इस लिए इन्हें त्यागना शुभ है।

८. अविद्या, अस्मिता, राग-द्वेष, अभिनिवेश रूप क्लेशोंसे और तमो-रजस्-सत्व गुणोंसे निवृत्ति पाकर पंचमहाभूतोंसे अतीत मोक्षरूप स्वाराज्यको प्राप्त करना परम लक्ष्य है।

स्वामीजीके उपदेशोंसे, उनके विज्ञापनमें लिखे हुए आठ गप्पोंके खण्डनसे नया पुराना सारा कानपुर एक प्रकार चलायमान हो गया। श्रद्धालु लोगोंमें उत्साहसे, नये सुधारसे आवेश था, और विरोधीजन ईर्ष्याद्वेषके आवेशमें आपेसे बाहर हो रहे थे। उस समय विरोधियोंके शिरोमणि ब्रह्मानन्द सरस्वती बने हुए थे। वह स्थान स्थानपर इस बातका प्रचार करते फिरते थे कि दयानन्दके पास नहीं जाना चाहिए। उसका तो मुख देखना भी पातक है! वह नास्तिक है; देव-निन्दक है; कृस्टान है, और धर्म भ्रष्ट करने आया है। उसे भैरवघाटसे निकाल देना चाहिए। ब्रह्मानन्द कुछ पण्डितोंको साथ लेकर एक दिन स्वामीजीके पास गया भी, परन्तु गालीप्रदान करके चला आया।

ब्रह्मानन्द तो अपनी प्रकृतिके कारण ही स्वामीजीके विरुद्ध उधार खाये बैठा था, परन्तु दो बड़े प्रतिष्ठित व्यक्ति, प्रयागनारायण और गुरुप्रसाद, भी स्वामीजीके प्रतिपक्षमें खड़े हो गये। इसका कारण यह था कि इन दोनोंने कैलास और वैकुण्ठ नामके दो मन्दिर बनवाये थे। जब वे दोनों महाशय स्वामीजीको मिले तो उन्होंने उपदेश किया, कि आपने लाखों रुपये लगाकर मन्दिर खड़े किये हैं, परन्तु यह तो बताइए इससे लाभ क्या हुआ है? अनधिकारियोंको खिला पिलाकर, ईंट पत्थरोंमें व्यय करके आपने इतना रुपया यों ही खो दिया है। क्या ही अच्छा होता यदि वह द्रव्य जाति और देशके भलेमें लगता, मनुष्यमात्रके हितकर कार्यमें व्यय होता! तीस तीस वर्षकी बड़ी लड़कियाँ, बिना व्याही कनौजियोंके घरोंमें बैठी हैं। यदि उनके व्याह करा देते अथवा बालक-बालिकाओंकी कोई पाठशाला स्थापित करके जनहितका परिचय देते तो भी अच्छा था। देशमें शिल्पका अभाव है। उस द्रव्यसे, आप यदि, एक शिल्पशाला स्थापित करके स्वदेशवासियोंमें कला-कौशलका प्रचार करते तो कितना भारी लोक-हित होता!"

उन महाशयाको ऐसी खरी खरी, स्पष्ट बातोंके सुननेका स्वभाव न था, इसलिए वे स्वामीजीसे कुछ रुष्ट होकर वहाँसे चले आए और ब्रह्मानन्द, आदिके साथ मिलकर स्वामीजीसे शास्त्रार्थ करनेके लिए हलधर ओझाको समुद्यत करने लगे। अन्तको श्रावण वदी ८ सं० १९२६ को लक्ष्मण शास्त्री और हलधर

ओझा शास्त्रार्थके लिए समुद्यत हो गये। सारे नगरमें प्रसिद्ध हो गया कि आज एक बड़ा भारी शास्त्रार्थ होगा। भैरवघाटपर दरियां बिछ गईं। नगरके सेठ साहूकार सब आकर एकत्रित होने लगे। ठीक शास्त्रार्थके समय, वहाँ बीस पचीस सहस्र मनुष्योंकी भीड़ लग गई। इस शास्त्रार्थमें अनेक उच्च-पदाधिकारी-कर्मचारी भी आये। सहायक कलेक्टर, महाशय थेन भी वहाँ विद्यमान थे। वे संस्कृत भाषाके भी ज्ञाता थे, इस लिए, सर्व सम्मतिसे श्रीमान् थेनको ही मध्यस्थ नियत किया गया।

लोग तो दिनके एक बजेसे पहले आगए थे, परन्तु शास्त्रार्थ नियमानुसार दिनके दो बजे आरम्भ किया गया। प्रारम्भ करते समय हलधरने कहा, "स्वामीजी! आपने विज्ञापनमें जो 'गप्पम्' लिखा है वह व्याकरण की रीतिसे अशुद्ध है।" इसपर स्वामीजीने कहा, आप इस समय मूर्ति-पूजन आदिमेंसे किसी विषयपर वाद चलाएं। शुद्धाशुद्धपर वाद करते रहना विद्यार्थियोंका काम है। इन सहस्रों मनुष्योंका समय इस शुष्क वादमें क्यों गँवाना चाहते हो? इस बातको पूछना ही हो तो कल मेरे पास आजाइएगा। प्रमाणसहित उत्तर दे दूंगा।

फिर हलधरने पूछा, "आप महाभारतको मानते हैं या नहीं?" स्वामीजी ने उत्तर दिया, "हाँ, मानता हूं" ओझाने एक श्लोक पढ़कर कहा "इसका यह अर्थ है कि एकलव्य भीलने द्रोणाचार्यकी मूर्ति सामने रखकर धनुर्विद्या सीखी थी।" इसपर स्वामीजीने कहा, "मैं यह कह रहा हूँ कि वेद-शास्त्रमें कहीं प्रतिमा-पूजनकी आज्ञा दिखाओ। आपने जो प्रमाण दिया है उसमें प्रतिमा-पूजनकी आज्ञा नहीं है। केवल यही लिखा है कि एक भीलने ऐसा किया था। उसको ऐसा करनेकी किसीने शिक्षा नहीं दी थी, और न ही वह आप भी कोई ऋषि मुनि था, जिससे उसका कर्म प्रमाण माना जाय। जैसे अङ्गरेज लोग चाँदमारी करते हैं वैसे ही वह भी लक्ष्यवेधका अभ्यास करता था। कोई पूजन करनेके लिए द्रोणकी प्रतिमा उसने भी नहीं रक्खी थी। यदि कहो कि द्रोणकी प्रतिमा पास रखनेसे वह धनुर्विद्यामें निपुण हो गया था तो यह भी मिथ्या है। धनुर्विद्यामें प्रवीण होनेका कारण मूर्ति नहीं थी, किन्तु उसका निरन्तर अभ्यास था।"

यह उत्तर सुन ओझा थोड़ी देर तो चुप रहा; परन्तु फिर उसने दूसरे ढँगसे पूछा कि यदि वेदमें मूर्ति-पूजाका विधान नहीं है तो निषेध कहाँ है? इसपर महाराज बोले, "जब कोई स्वामी अपने सेवकको कहता है कि तुम पश्चिमको जाओ, तो अन्य तीन दिशाओंका निषेध अपने आप समझ लिया जाता है।"

उस समय महाराजने शास्त्रोंके प्रमाणोंसे यह सिद्ध कर दिया कि वेद आदि धर्म-ग्रन्थ ईश्वरके स्वरूपको निराकार, सर्वत्र परिपूर्ण और अमूर्त माननेकी आज्ञा करते हैं। स्वामीजीने ओझाको बलपूर्वक कहा कि आप अपने पक्षमें वेदका एक तो प्रमाण दीजिए। परन्तु वह न दे सका।

विषयको टालनेकी इच्छासे लक्ष्मण शास्त्रीने कहा कि स्वामीजी! शास्त्रमें कहा है कि गुरु, देवता, राजा और कोढ़ी मनुष्यकी छायाको लाँघना नहीं चाहिए। पर ग्रन्थोंमें लिखा है कि देवताकी छाया नहीं होती, इस लिए यहाँ देवताकी छायासे तात्पर्य मूर्तिकी छायासे है।

लक्ष्मणशास्त्रीके उत्तरमें स्वामीजीने कहा, "जो आपने कहा कि देवताओं की छाया नहीं होती यह सत्य नहीं है। पूर्वकालमें जब यजमान यज्ञ करते थे तो देवजन वहाँ आजाया करते थे। देवों और दैत्योंकी लड़ाइयाँ भी हुआ करती थीं। उनमें देव मारे भी जाया करते थे। उनके खान पान आदि व्यवहारोंका भी वर्णन लिखा मिलता है। यदि देवोंकी देह न हो तो पूर्वोक्त क्रियायें कैसे हो सकती हैं? और जहाँ देह होती है वहाँ छाया भी अवश्य होती है। इस लिए धर्मशास्त्रमें देवताकी छायाका उल्लङ्घन न करनेकी आज्ञाका तात्पर्य यह है कि यज्ञादि कर्मोंमें उन्हें लाँघकर अवज्ञा नहीं करनी चाहिए।"

ओझा महाशय बीचमें बोल उठे यदि जड़ वस्तुओंमें देवत्व नहीं है तो हवनके समय अग्निहीमें आहुति क्यों देते हैं? और जलादि भी तो तत्त्व हैं, उनमें सामग्री आदि क्यों नहीं डाली जाती? इसका उत्तर श्रीस्वामीजीने यह दिया, कि "पांचों तत्त्वोंमें केवल अग्निही एक ऐसा तत्त्व है, जिसमें डाली हुई आहुति भस्म हो जाती है। इसी लिए, इसमें हवन करते हैं और वेदकी भी यही आज्ञा है। परन्तु आप यह तो बतायें कि अग्निहोत्ररूप देव-पूजनके साथ पत्थर-पूजाका क्या सम्बन्ध है? मूर्तिको किसी भी शास्त्रमें देव नहीं कहा गया है।"

फिर लक्ष्मणशास्त्रीने कहा कि ईश्वर सर्वव्यापक होनेसे मूर्तिमें भी विद्यमान है तो फिर मूर्ति-पूजनमें आप क्यों दोष मानते हैं? उत्तरमें स्वामीजीने कहा, "जब ईश्वर सर्व व्यापक है तो मूर्तिमें क्या विशेषता है जो उसीकी पूजा की जाय? और चेतनको छोड़कर जड़-पूजनमें कोई महत्त्व भी नहीं है।" यह उत्तर सुनकर, स्वामीजीके सारे प्रतिपक्षी अवाक् हो गये। किसीको आगे कुछ न फुरा। उस समय थेन महाशयने हलधरसे कुछ प्रश्न किए, और फिर थोड़ी देर स्वामीजीसे वार्तालाप करके उनको नमस्कार की और फिर वे उठकर चले गये।

मध्यस्थके उठनेपर सारी सभामें भूकम्पसा आ गया, कोलाहल मच गया, और उस गड़बड़में विरोधियोंने महाराजपर ईंटें भी बरसाईं! उसी समय प्रयागनारायण तिवारीने एक रुपयेके पैसे हलधरके सिरपरसे न्योछावर कर लुटा दिये और कहा कि उन्हींकी विजय हुई है! फिर क्या था। 'गङ्गाकी जय' और 'हलधरकी जय' के नाद गूंजने लगे। पौराणिक लोग विजय मनाते बड़े समारोहसे नगरमें आये और उन्होंने 'शोलातूर' समाचारपत्रमें भी अपनी जय-घोषणा कर दी। कुछ आर्य पुरुष 'शोलातूर' समाचारपत्र लेकर श्री स्वामीजीके समीप गये और उन्होंने पौराणिकोंकी मिथ्या जय-घोषणाका लेख पढ़कर सुनाया। स्वामीजीने कहा, "शास्त्रार्थ तो सत्यासत्यके निर्णयके लिए किया जाता है। उसमें यदि वे लोग अपनी जीत समझते हैं तो उन्हें प्रसन्न हो लेने दो। मुझे इसका कुछ भी हर्ष शोक नहीं है।"

परन्तु स्वामीजीके भक्तोंका मन कब मानता था कि यों ही मिथ्या समाचार फैल जाय और वे मौन बैठे रहें। वे सहायक कलेक्टर महाशय थेनके पास गए और उन्हें सारा वृत्तान्त आद्योपान्त सुना दिया। उन्होंने उसी समय निम्नलिखित व्यवस्था लिखकर उन्हें दे दी:—

"महाशयो! मेरी सम्मतिमें शास्त्रार्थके समय स्वामी दयानन्द सरस्वती संन्यासीकी विजय हुई। उनकी युक्तियाँ वेदानुकूल थीं। यदि आप चाहें तो मैं अपनी व्यवस्थाकी पुष्टिमें कुछ दिनोंमें प्रमाण भी दे दूंगा।

कानपुर } आपका
थेन।

स्वामीजीके प्रेमियोंने, श्रीमान् थेन महाशयकी व्यवस्थासहित, शास्त्रार्थका पूर्ण वृत्तान्त विज्ञापनोंद्वारा सारे नगरवासियोंको विदित कर दिया ।

समाचारपत्रोंमें भी छपवा दिया, जिससे सर्वसाधारणको सचाईका ज्ञान हो गया; स्वामीजीकी विजयका पता लग गया, और प्रतिपक्षियोंका कोरा कपट-कौशल दीखने लगा ।

मध्यस्थ महाशयके निर्णयसे, लोगोंके हृदयोंपर, स्वामीजीके पक्षकी सत्यता का सिक्का बैठ गया । वे ऐसे प्रभावित हुए कि अपनी प्रतिमाओंको धड़ाधड़ जल-तलालीन करने लगे । कहते हैं कि उस समय, कानपुरकी वह अवस्था थी कि यदि एक घरमें चार मनुष्य थे तो उनमेंसे, दो तो अवश्य ही स्वामी-जीके अनुगामी हो गये थे ।

श्री स्वामीजी नसवार लिया करते थे । एक मनुष्यने पूछा कि क्या इसमें कोई दोष नहीं है? उन्होंने उत्तर दिया कि यदि परोपकार करते हुए शरीर-के दोषनिवारणार्थ इसे ग्रहण करना पड़े तो इसमें कोई दोष नहीं ।

एक दिन, श्रीयुत गङ्गासहायजीने स्वामीजीके समीप जाकर पूछा कि प्रतिमा-पूजनमें क्या दोष है ? स्वामीजीने उत्तर दिया, "वेदोंकी आज्ञापर चलना धर्म्म है । वेदोंमें प्रतिमा-पूजनकी आज्ञा नहीं है । इसलिए उनके पूजनमें आज्ञाभंग करनेका दोष है । पुराणोंमें जो मूर्त्तियोंका पूजना लिखा है वह सब गप्प है और असार है । जो यह कहते हैं कि अपनी भावनाका फल होता है उनका कथन भी सत्य नहीं है । तुम बैठे चक्रवर्ती राजा बननेकी भावना करते रहो तो इतनेसे सार्वभौम राजा नहीं बन सकोगे । भावना भी सच्ची होनी चाहिए । "

एक महाशय रुद्राक्षकी माला धारण किये स्वामीजीके निकट आया । महाराजने उसे हँसकर कहा कि यह क्या गुठलीसी गलेमें डाले डोलते हो ? ऐसी बातोंसे मुक्ति न होगी । मोक्षकी अभिलाषा है तो ब्रह्मज्ञान प्राप्त कीजिए ।

उपहासमें महाराजने एक मनुष्यको कहा कि बिल्वपत्र शिव-प्रतिमापर चढ़ाने जाते हो तो वह तो इन्हें नहीं खायगी, परन्तु यदि ऊंटके आगे डाल दो तो उसकी भूख इनसे अवश्य मिट जायगी ।

एक मनुष्यने स्वामीजीसे लोटा माँगा। महाराजने पूछा क्या करोगे? वह बोला कि शिवपर जल चढ़ाऊँगा। स्वामीजीने पूछा—तुम अपने लोटेसे क्यों नहीं चढ़ाते? उसने उत्तर दिया, मेरे पास इस समय लोटा नहीं है। स्वामीजीने कहा कि लोटा नहीं तो मुख तो है। कुल्ले भर भर उसपर फेंकते जाओ!

महाराजने एक दिन विनोदमें कहा कि पण्डित लोग भोले भाले मनुष्यों-को आधे आधे मन्त्र बताकर उनके गुरू बन बैठते हैं। परन्तु हम तो पृष्ठोंके पृष्ठ बता रहे हैं। क्या हम गुरू नहीं बन सकते?

भैरवका मन्दिर स्वामीजीके निवास स्थानके अति निकट था। उसके विषय-में लोग अनेक प्रकारकी गप्पें उड़ाते थे। वे कहते थे कि यह भैरव जो चाहता है कर देता है। इसने कई मनुष्योंको अपनी शक्तिका चमत्कार दिखाया है। एक दिन इसने कई पहरेवालोंको पटक दिया था। स्वामीजीको भी यह कपोल कल्पित कथायें सुनाई गईं। महाराजने हंसकर कहा, "मैं रातदिन भैरवके सिरपर बैठा उसका और उसके साथी देवताओंका खण्डन करता रहता हूँ। यदि इसमें कोई सत्ता है तो मुझे तो उठाकर फेंकदे।"

एक दिन स्वामीजी गङ्गामें लेटे पड़े थे। एक बड़ा भारी मगर उनके अति निकट आ निकला। भक्त प्यारेलालजी स्वामीजीको संकटके समीप देख भागते हुए समीप आये और पुकारने लगे, "स्वामीजी! झटपट पानीसे बाहर निकल जाइए; एक बड़ा भारी मगर निकल आया है।" महाराज यह सुन-कर भी गम्भीरतासे ज्योंके त्यों पड़े रहे और बोले, "जब हम इसे कुछ नहीं कहते तो यह भी हमें कुछ न कहेगा।"

गङ्गामन्दिरके पुजारियोंको लोग गङ्गा-पुत्र कहते हैं। एक गङ्गा-पुत्र स्वामी-जीके समीपही रहता था। उसके प्रातःकालके नैत्यिक कर्मोंमें यह भी एक कर्म था कि वह स्वामीजीसे थोड़ीदूर खड़ा होकर, नित्य नियमपूर्वक उन्हें गालियाँ सुनाया करता था। उसका यह पामरपनका पाठ बीसियों दिनोंतक निरन्तर होता रहा; परन्तु महाराजने उसे कभी कुछ भी तो नहीं कहा।

श्री स्वामीजीके पास नित्य अनेक भक्तजन आया करते थे। उनमेंसे कोई लड्डू भेंट कर जाता, कोई पेड़े चढ़ा जाता, और कोई बादाम मिश्री आदि

भोज्य पदार्थ अर्पण कर जाता था। स्वामीजी महाराज ऐसे सम्पूर्ण पदार्थ, अपने सत्संगियोंमें प्रसादरूपमें, वितरण कर दिया करते। एक दिन सायंकाल को कुछ लड्डू पेड़े आदि पड़े रह गये। महाराज यह सोच ही रहे थे कि ये उत्तम भोज्य पदार्थ किसे दें कि इतनेमें उन्होंने देखा कि वही गालीप्रदान करनेवाला गङ्गा-पुत्र सामनेसे जारहा है। उन्होंने उसे आदरसे अपने समीप बुलाकर प्रेमपूर्वक, वे सकल पदार्थ उसे दे दिये, और साथ ही कहा कि सायं समय नित्य ही हमारे पास आया करो; हम तुम्हें पुष्कल खाद्य वस्तुयें दिया करेंगे।

जब छः सात दिनतक वह गङ्गा-पुत्र स्वामीजीसे मिष्ट मोदक पाता रहा और महाराजने उसकी गन्दी गालियोंकी एक बार भी बात न चलाई तो पश्चात्तापके उत्पन्न हो आनेसे उसका चित्त उसे भीतर-ही-भीतर कचोटने लगा। अन्तमें वह महाराजके चरणोंमें आ पड़ा और आँसू भरकर कहने लगा "भगवन्! यदि मेरी कठोरताका कोई पार नहीं तो आपकी सहनशीलता भी असीम है। आपकी सुजनताने मेरी दुर्जनताको सर्वथा जीत लिया है। श्री-चरणोंमें मेरे पिछले सारे अपराध क्षमा किये जायँ।" महाराजने उसे आश्वासन और आशीर्वाद देकर कहा, "हमने आपके वचनोंको स्मृतिमें स्थान नहीं दिया है। आप भी अब उन गई-बीती बातोंको स्मरण न कीजिए।"

महाराज एक आदर्श संन्यासी थे। कानपुरमें उनके प्रेमियोंकी पंक्तिमें धनी लोग भी सम्मिलित हो गये थे। उनके भक्त उनके लिए सुखकी यथेष्ट सामग्री उपस्थित करनेको समुद्यत थे। परन्तु द्वन्द्वातीत भगवान् वहीं भैरव-घाटपर बिछौनेके बिना ही ऊंचे नीचे भूतलभागको शय्या बनाकर, मोटी २ ईंटोंको सिरहाने रक्खे सुखसे सो जाते थे। जलके लिए एक कलसा और एक कौपीन एक प्रेमी अत्याग्रहसे उनके स्थानपर रख गया था।

उस समय भक्तोंमें शिरोमणि हृदयनारायणजी थे। ये अपने भाइयोंसहित अपने भक्तिभाजनकी सेवा-सुश्रूषामें तत्पर रहते। महाराजके कानपुर-वासमें सेवा करनेका अधिक सौभाग्य हृदयनारायणजीको ही प्राप्त हुआ था। जैसे सूर्यदेवकी किरण चन्द्रमाको प्रकाश प्रदान कर उसे चमका देती है, वैसे ही,

गुरुदेवके शुभ सत्संगसे हृदयनारायणजीका हृदय भी उज्ज्वल हो गया था। संस्कृत भाषाका अध्ययन विशेष न करनेपर भी वे देववाणीमें बोलने तक लग गये थे। हृदयनारायणजीने श्री स्वामीजी विपुल प्रेम भी करते थे। परन्तु जब उन्होंने पूछा कि भगवन्! सुना है अब आप इस स्थानसे जाना चाहते हैं; किस दिन प्रस्थान कीजियेगा ? तो महाराजने उत्तर दिया कि मैं नहीं बता सकता। लोगोंने पत्रव्यवहारका पता माँगा तो भी किसीको कुछ नहीं बताया। जिस दिन स्वामीजीको प्रस्थान करना था रसोइएने पूछा कि भगवन्, भोजन बनाऊँ, तो महाराजने उसे न कर दी। वे, लोटा और नई कौपीन वहीं छोड़कर चुपचाप चले गये। अधिक दिन चढ़नेपर प्रेमी जन श्रीदर्शनोंको आये तो स्वामीजी आसनपर न थे। भक्तजन, इस विचारसे कि सम्भव है श्रीमहाराज दूरतक भ्रमण करने निकल गये हों और देरसे आयँ, दर्शनोंकी लालसासे वहीं बैठ गये। जब प्रतीक्षा करते करते सायंकाल हो गया और श्री स्वामीजी न लौटे तो भक्तोंने समझ लिया कि जिनकी मोहिनी मूर्तिको, तीन मासतक, अपने मनोमन्दिरमें अति ममताके साथ हम पूजते रहे हैं वे इतने वीतराग हैं, इतने निर्मम हैं कि चुपचाप प्रस्थान कर गये हैं। अन्तमें बड़े उदास भावसे वे सब अपने अपने घरोंको लौट आये।

कानपुरसे चलकर श्री स्वामीजी शिवराजपुर, फतेपुर और मिर्जापुर आदि स्थानोंमें उपदेश देते हुए प्रयाग पधारे। वहाँ एक शिवसहाय नामका ब्राह्मण रहता था। उसने वाल्मीकि रामायणपर टीका रची थी। स्वामीजीने पहले वह टीका मंगाई। उसे देखनेके पश्चात् उसके रचयिताको अपने पास बुलवाया और उसकी रची हुई टीकामें अनेक दोष प्रदर्शित किये। शिवसहाय था बड़ा अभिमानी। अपने दोषोंको स्वीकार करना तो दूर रहा, वह उलटा शास्त्रार्थपर उतर आया। थोड़े ही समयमें, वादीगज-केसरी दयानन्दने शिवसहायके घमण्ड घटाटोपको अपने पाण्डित्यकी प्रबल पवनसे छिन्न भिन्न कर दिया। वह ब्राह्मण, वादमें इतना लज्जित और स्वामीजीसे इतना भयभीत हुआ कि स्थान छोड़कर काशीकी ओर भाग निकला! स्वामीजी भी उसके पीछे पीछे हो लिये।

काशी काण्ड।

पहला सर्ग।

आश्विन व० १ सं० १९२६ को श्रीस्वामीजी रामनगर पहुँचे। पहली रातको, राजवाटिकाके समीप, मिट्टीके एक ढेलेको सिरके नीचे रख रेतीहीमें सो रहे, सवेरे नित्य कर्मोंसे निवृत्त हो जब एक स्थानपर विराजमान हुए तो दर्शकोंका आना जाना आरम्भ हो गया। महाराजको ज्ञात था कि शिवसहाय काशीनरेशके पास आकर छिपा बैठा है। इसलिए उन्होंने उसकी टीकाका खण्डन करना आरम्भ कर दिया; यहाँ तक, वे राजा महाशयके द्वारपर जाकर खड़े हो गये। जो भीतर जाता उसे कहते कि शिवसहाय भीतर छिपा हुआ है उसे बाहर निकालो। वह इन बातोंसे इतना लज्जित और अपमानित हुआ कि वहाँसे घर भाग गया। गङ्गाके तटपर राजाजीकी हस्तिशाला थी। स्वामीजी उसीके एक स्थानमें टिक गए।

मूर्ति-पूजनका खण्डन रातदिन होता रहता था। लोगोंको सन्ध्या आदि कर्म करनेकी प्रेरणा होती रहती। महाराजकी विद्याकी शुभ्र ज्योत्स्ना काशीवासी पण्डितोंके मन्दिरों और पाठशालाओंमें भी अपनी छटा दिखाने लगी। वहाँ भी उनकी विद्वत्ताकी, उनके तर्ककी, उनकी खण्डन-शैलीकी चर्चा चलती रहती। एक धुरन्धर विद्वान्, पण्डित ज्योतिःस्वरूप काशीमें वास करते थे। वह उदासीन साधु थे। श्री अविनाशीलाल खत्री और श्री हरवंशलाल, ये दो प्रतिष्ठित सज्जन एक दिन, ज्योतिःस्वरूपजीके पास जाकर कहने लगे कि हमने सुना है दयानन्द नामके एक संन्यासी रामनगरमें आए हैं वे पुराण और मूर्ति-पूजन आदिका अति खण्डन करते हैं। आप हमारे, साथ उनके पास चलिए। हम सत्य जाननेके उत्सुक हैं।

पण्डित ज्योतिःस्वरूपजी प्रसन्नता-पूर्वक अपने प्रेमियोंके साथ स्वामीजीके समीप आये और यथाविधि नमस्कार करके बैठ गये। वे तीनों दो घण्टेतक

श्री-कथनोंको श्रवण करते रहे। ज्योतिःस्वरूपजी स्वामीजीके निर्मल विचारोंसे, अनुपम ज्ञानसे और कुशाग्र बुद्धिसे बहुत प्रभावित हुए। उनके हृदय-सरोवरमें उसी समय, स्वामीजीके लिए अनुरागकी लहरें उठने लगीं। उनके दोनों साथियोंने कहा कि महाराजके कथनपर आप भी कुछ किन्तु परन्तु कीजिए। पर उन्होंने कहा कि श्री स्वामीजी जो कुछ कहते हैं वह सब सत्य शास्त्रानुकूल है, फिर मैं क्या कहूं ?

महात्मा ज्योतिःस्वरूपजी चौदह दिनपर्यन्त निरन्तर स्वामीजीकी संगतिमें आते रहे और उनके विचारोंके अनुकूल हो गए।

पण्डित ज्वाहरदासजी भी, स्वामीजीके मिलापार्थ रामनगरमें आया करते थे और उनके हितेच्छुक बन गये थे।

महाराज ईश्वरीनारायणसिंहजीको भी पता लग गया कि एक अतुल प्रतिभाका धनी संन्यासी यहाँ ठहरा हुआ है और प्रतिमा पूजन आदिको वेद विरुद्ध बताता है। उन्होंने स्वामीजीके भोजनका पूर्ण प्रबन्ध करनेकी आज्ञा कर दी और स्वामीजीको लिवा लानेके लिए एक चौबेको भेजा। महाराजने कहा कि मुझे महाराजके समीप जानेकी कोई आवश्यकता नहीं, परन्तु यदि उन्हें कुछ पूछना है तो वे, जब चाहें आ सकते हैं।

श्री स्वामीजी राम-लीलाका खण्डन करते थे। एक दिन, महाराज निरञ्जनानन्दजीके पास गौ-घाटपर बैठे थे। वहाँ काशीनरेश भी आ निकले। शिष्टाचारके पश्चात् महाराजने, निरञ्जनानन्दजीसे पूछा कि स्वामी दयानन्दजी कहते हैं, वेदमें मूर्ति-पूजन और रामलीला नहीं है; इसमें आपकी क्या सम्मति है ? उन्होंने उत्तर दिया कि वेदमें तो नहीं, परन्तु लोकाचार चला आता है। इस लिए इसे चलाये ही रखना चाहिए। इस उत्तरसे महाराजा अति असन्तुष्ट हुए।

महाराजाके दूसरे भाई वैरागी थे, इस कारण वैरागियोंका वहाँ बड़ा बल था। एक दिन, साठके लगभग वैरागी इकट्ठे होकर स्वामीजीपर चढ़ आये और बहुत देर तक गालियाँ देते रहे। महाराजने उनके इस अज्ञान-काण्डपर ध्यानतक भी न दिया।

यह बात, महाराजा श्री ईश्वरीनारायणसिंहजीको भी विदित हो गई। उन्होंने वैरागियोंको कहला भेजा कि स्वामीजीसे शास्त्रार्थ तो जिसका जी चाहे करे, परन्तु गाली देना अच्छा नहीं है। वे हमारे यहाँ ठहरे हुए हैं, उनका अपमान करना हमारा ही अपमान है।

महाराजने स्वामीजीको राम-लीला देखनेके लिए भी आहूत किया। परन्तु स्वामीजी वहाँ नहीं गये और बोले कि ऐसी लीलायें देखना संन्यासियोंका काम नहीं है।

रामनगरमें निवास करके स्वामीजीने काशीके पण्डितोंके विद्याबलका, शास्त्र-सामर्थ्यका और गति-मतिका पूर्ण परिमाण जान लिया। उनकी कोटियोंके दुर्गोंके भेदोंको समझ लिया। पौराणिक महादुर्गके दो धुरन्धर विद्वान् वीर—पण्डित ज्योतिः स्वरूप और ज्वाहरदासजी—अपने पोषक बना लिये, और फिर एक अस्त्र-शस्त्रसम्पन्न सेनापतिकी भाँति, शास्त्रसन्नद्ध होकर काशी-जानेके लिए उद्यत हो गये। रामनगरसे जब स्वामीजी चलने लगे तो महाराजा ईश्वरीनारायणसिंहने उन्हें कहला भेजा कि यहाँसे हमारी नौकामें बैठकर जाइए और काशीजीमें जाकर हमारे ही उद्यानमें निवास कीजिएगा। परन्तु महाराज उनकी दोनों बातोंको अस्वीकार कर वहाँसे चल पड़े।

भारत भूमिमें काशी नगरी चिरकालसे अपनी महत्त्वमालाको अम्लान लिये चली आती है। आर्योंके इतिहासमें यह सदा विद्यापीठ ही बनी रही है। श्रौत, स्मार्त और दार्शनिक ग्रन्थोंका रहस्योंसहित, जैसा इस स्थानमें अध्ययन कराया जाता रहा है वैसे उत्तम अध्ययनका सौभाग्य किसी दूसरे स्थानको कदाचित् ही मिला होगा। संस्कृत भाषा और संस्कृत साहित्यको सजीव रखनेसे काशी भूखण्डने अपनी कीर्तिको अखण्ड रूपसे स्थापित कर दिया है। यह भूप्रदेश आर्य धर्म्मका, आर्य विद्याका, आर्य आचारका और आर्य सभ्यताका पूर्व समयोंमें जैसा आदर्श था, वैसा ही, पौराणिक कालमें पौराणिक धर्म्मका भी प्रमाणरूप बन गया है। अब भी, भारतके प्रत्येक भागसे सहस्रों विद्यार्थी यहाँ आकर विद्याध्ययन करते हैं। बीसियों विद्वान् साधारणसी वृत्ति लेकर विद्याध्ययन कराते हैं। सैकड़ों कोसोंसे आकर जिस त्याग-भावसे, जिस सादा रहन सहनसे, जितने सहस्र विद्यार्थी, इस गये बीते

समयमें भी, भारतके इस एक नगरमें विद्या-लाभ कर रहे हैं उसका दृष्टान्त दूसरे देशोंकी अति सम्पत्तिसम्पन्न जातियोंमें भी मिलना दुर्लभ है ।

स्वामी दयानन्दजीका काशीमें आनेका यह प्रयोजन था कि यहाँके पण्डित समूहमें उत्तेजना उत्पन्न करके उनमें आन्दोलनका भाव उत्पन्न करें । उन्हें जाग्रत अवस्थामें लायें, जिससे काशीवासी पण्डितगण अपने महत्त्वको, अपने सामर्थ्यको, अपने कर्त्तव्य कर्मको और निरन्तर चले आनेवाले अपने विमल यशको जान जायँ; अपने चित्त-दर्पणपरसे पौराणिक परदेको उठाकर वैदिक धर्मके सच्चे स्वरूपका दर्शन कर सकें, आर्य जातिकी वास्तविक दशाको अच्छी तरह देख सकें ।

स्वामीजी महाराजके दिव्य नेत्रोंसे यह भेद छिपा नहीं रह सकता था कि भारतभरमें जो देवमालाके एक-से गीत गाये जाते और एक स्वर होकर पौराणिक माहात्म्य मनाये जाते हैं। इसका अधिकांश कारण काशी है। विद्यार्थीजन वर्षोंके काशीवाससे पौराणिक कल्पनाओंमें ऐसे घुट जाते हैं कि ये सैकड़ोंकी संख्यामें, प्रतिवर्ष पुराण-प्रचारक बनकर निकलते हैं। यदि काशीमें सुधार और नया संस्कार आजाय तो देश देशान्तरोंसे आये हुए विद्यार्थी विद्योत्तीर्ण होकर अपने अपने प्रान्तोंको एक भाषा, एक धर्म्म, एक आचार-विचार, एक रीति-नीति और एकताके सूत्रमें पिरोकर एक सुन्दर माला बनानेके एक अत्युत्तम साधन बन सकते हैं ।

कार्तिक व० २ सं० १९२६ को श्रीस्वामीजी काशी नगरमें सुशोभित हुए। राजा माधोसिंहके आनन्दोद्यानमें आसन किया । उनके शुभागमनका समाचार तार-समाचारकी भाँति सारी काशी नगरीमें तुरन्त फैल गया । पण्डित श्रीजवाहरदासजी और ज्योतिः स्वरूपजी को ज्योंही समाचार प्राप्त हुआ वे तत्काल महाराजके स्थानपर मिलने आये। अन्य पण्डित लोग भी मण्डलियाँ बनाकर आने और प्रश्न पूछकर अपने भ्रम निवारण कराने लगे । महाराजके समीप दिनभर विद्यार्थियोंकी, पण्डितोंकी वादविवाद-प्रिय विद्वानों और जिज्ञासु जनोंकी भारी भीड़ लगी रहती थी । लोग चिढ़ाने और खिजानेकी भी चेष्टा करते थे। व्यर्थ वादमें समय बिताते थे; कुटिल कटाक्षोंकी व्यंगवर्षा भी करते थे। परन्तु आचार्य दयानन्दजी सबको गम्भीरतासे उत्तर देते थे।

और दुर्वादियोंतकका भी मुंह बंद करके छोड़ते थे। चिढ़ने और खिजनेको उनकी प्रकृतिहीमें कोई स्थान न था। उकताना और थकना मानो वे जानते ही न थे। वे अकेले परन्तु अपने अलौकिक साहससे आठ आठ घण्टेतक लगातार वादी-दिग्गजोंके साथ जूझते रहते थे, श्रोताओंको उपदेश देते चले जाते थे।

उदासीन साधु मायारामजीने स्वामीजीसे पूछा कि शङ्कर तो वेदान्त भाष्यमें ब्रह्मसूत्र अद्वैतपर लगाते हैं और रामानुज आदि अपने भाष्योंमें जीव ब्रह्मका भेद वर्णन करते हैं; इनमेंसे किसका पक्ष सत्य समझा जाय?

स्वामीजीने उत्तरमें कहा कि दोनोंका ही पक्ष ठीक नहीं। ईश्वर सर्वव्यापक है इसलिए अभेद ठीक है और जीव एकदेशीय है, इसलिए भेद सत्य है। जो एक एक पक्षको पकड़कर खेंचातानी कर रहे हैं, उनका निश्चय मिथ्यामूलक है।

स्वामीजीके समीप ही दुर्गा-मन्दिर था। मन्दिरमें आनेजानेवाले लोग स्वामीजीके उपदेशोंको भी सुना करते थे। स्वामीजीके कथनका इतना प्रभाव पड़ा कि, मन्दिरमें जानेवालोंकी संख्या और मन्दिरकी आय दिनों दिन घटने लगी। एक दिन पुजारियोंने स्वामीजीसे आकर प्रार्थना की कि महाराज! आपके यहाँ रहनेसे तो हमारी आजीविका मारी जायगी, इसलिए, अब कृपा करके आसन किसी दूसरे स्थानपर लगा लीजिए। स्वामीजी उनके ऐसे कथनपर हँस पड़े।

दूसरा सर्ग।

महाराजने काशी-नरेशको कहला भेजा, "आपका कर्त्तव्य है कि मूर्ति-पूजा आदि विषयोंपर शास्त्रार्थ कराकर सत्यासत्यका निर्णय करायें।" इधर महाराजा स्वयं भी पुराण-खण्डनके अखण्ड पाठसे घबरा उठे थे। इस लिए, उन्होंने पण्डितोंको बुलाकर शास्त्र-समरके लिए सुसज्जित होनेकी प्रेरणा की। पण्डितोंने महाराजासे निवेदन किया कि स्वामी दयानन्द वेदोंके प्रमाण पूछा करता है, इसलिए वेदोंके प्रमाण आदि एकत्रित करनेके लिए पन्द्रह दिनका अवकाश मिलना चाहिए। पण्डितोंको मुँह माँगा अवकाश मिल गया और वे

शास्त्रार्थमें सफलता लाभ करनेके ढंग सोचने लगे। स्वामीजीका विद्या-बल जाँचनेके लिए विद्यार्थी और पण्डित भी आते थे। और अनेक प्रकारसे प्रश्न करते करते अन्तमें हार जाते थे, परन्तु वे उस अथाह ज्ञान-गङ्गाकी थाह नहीं पा सकते थे। कहते हैं कि एक दिन, राजारामशास्त्री भी गेरुए वस्त्र धारण करके स्वामीजीके पाण्डित्यकी परीक्षा लेने आये; परन्तु आगे वह पानी न था, जिसकी पेंदीतक वे पहुँच सकते!

पण्डित मण्डलीने कुछ बातें जाननेके लिए शालिग्राम राजशास्त्री आदि चार पण्डितोंको स्वामीजीके निकट भेजा। उन्होंने आकर नमस्कार आदिके अनन्तर कुछ प्रश्न किये, परन्तु उस समय उनको उत्तर देना उचित न समझा गया। अतः वे लौट गये। नगरके कोतवाल महाशय स्वामीजीका बड़ा आदर करते थे उनके आग्रह करनेपर स्वामीजीने पण्डितोंको उत्तर देना मान लिया।

उन शास्त्रियोंने फिर आकर पूछा कि आप कितने ग्रन्थ प्रामाणिक मानते हैं? स्वामीजीने उत्तरमें चार वेद, चार उपवेद, छः वेदाङ्ग, छः उपाङ्ग और मनुस्मृति ये २१ ग्रन्थ लिख दिये। उन्होंने फिर पूछा कि यही ग्रन्थ प्रामाणिक हैं इसमें क्या प्रमाण है? मनुस्मृतिमें कितने श्लोक मानते हो?

स्वामीजीने कहा कि इन प्रश्नोंका उत्तर शास्त्रार्थके समय दिया जायगा। तत्पश्चात् पण्डित लोग वहाँसे चले गये।

महाराजा ईश्वरीनारायणसिंहने पण्डितोंकी दान-दक्षिणाका सारा बोझा अपने ऊपर लिया और शास्त्रार्थकी तिथि कार्तिक सुदी द्वादशी सम्वत् १९२६ नियत कर दी। इसकी सूचना कलेक्टर महाशयको भी दी गई। इसपर उन्होंने कहा कि शास्त्रार्थ यदि आदित्यवारको होता तो हम भी सम्मिलित हो सकते थे। परन्तु, वहाँ तो सोच समझकर, इसी लिए मङ्गलवार नियत हुआ था कि राजकर्मचारियोंकी उपस्थितिमें गोलमाल करना कठिन होजायगा। शास्त्रार्थ किस स्थानपर हो इसका निश्चय करनेके लिए कोतवाल रघुनाथसहाय स्वामीजीके समीप आये। पूछनेपर उन्होंने उसे कहा कि विवश करके हमें कोई चाहे कहीं ले जाय परन्तु मैं संन्यासी हूँ, अपनी इच्छासे किसीके स्थानपर जाकर उत्तर प्रत्युत्तर नहीं करूंगा। मैं शास्त्रार्थके लिए किसीके भी स्थान-

पर नहीं जाया करता। यहाँ भी, जिसका जी चाहे मेरे ही आसनके पास आकर प्रश्न पूछे।

स्वामीजीका उत्तर सुनकर, काशीराजने भी आनन्द उद्यानमें अपने दल-बल सहित जाना स्वीकार कर लिया।

स्वामी दयानन्दके साथ काशीके सारे पण्डितोंका शास्त्रार्थ होगा, इस समाचारकी सारे नगरमें धूम मच गई। घाटोंपर, अन्नसत्रोंमें, पाठशालाओंमें, मन्दिरोंमें, गृहस्थोंके घरोंमें, गली-कूचेमें, बाजार और कचहरीमें जहाँ जाओ इसी नूतन विषयपर बात होती सुनाई देती थीं। महात्मा ज्वाहरदासजीने स्वामीजीको कहा, "काशीमें तो अनेक पण्डित हैं, आप किसे किसे जीतेंगे? सबको कैसे परास्त करेंगे?" उन्होंने उत्तर दिया, "काशीके सकल विद्वन्मण्डलमें दक्षिणी बालशास्त्री ही ऐसा है, जो कुछ कालतक हमारे साथ वार्त्तालाप कर सकेगा; शेष तो सब काकभाषामें—नवीन न्यायादिमें—ही निपुण हैं। वेदार्थमें उनकी गति नहीं है।"

कार्त्तिक सुदी द्वादशी, मङ्गलवारके दिन, प्रातःकालहीसे सारे काशी नगरमें एक विचित्र हलचल मच गई। काशी नरेशके यहाँसे पालकियाँ, चँवर, छत्र इत्यादि पण्डितोंके निवास-स्थानोंपर पहुँचाये जा रहे थे। विश्वनाथ और दुर्गा आदिके मन्दिरोंमें विजयके लिए प्रार्थनायें हो रही थीं। पण्डित लोग परस्पर मिलकर स्वामीजीको जीतनेके लिए न्यायकी पंक्तियाँ, व्याकरणकी फक्किकायें, वेदान्तकी कोटियाँ, चातुर्यकी अनेक चालें और प्रवंचनाकी चोटें चलानेके ढँग, सोच रहे थे; श्रुति, स्मृति आदिके प्रमाग एकत्रित करनेमें लगे हुए थे।

श्री काशीधाममें जहाँ प्रवर पण्डित निवास करते हैं वहाँ परले सिरेके दुर्दण्ड उपद्रवियोंकी भी कुछ न्यूनता नहीं। उस समय, ऐसे लोग भी स्वामी-चरणोंको पीड़ा देनेके लिए, अपने षड्यंत्रका ताना बाना तन रहे थे।

पूर्वोक्त दृश्यको देखकर भक्त बलदेवका हृदय थरथरा उठा। उसने अति शीघ्रतासे स्वामीजीके निकट पहुँचकर निवेदन किया, "महाराज! आज आपके स्थानपर सहस्रों मनुष्योंका जमघटा लगेगा। उसमें केवल हुलड़ मचानेके लिए भी कुछ उद्दण्ड जन आयँगे। यदि फरुखाबाद होता तो ऐसे समयमें

श्रीचरणोंके समीपभी बीस पच्चीस सेवक बैठ जाते। परन्तु यहाँ तो उपद्रव होनेकी बड़ी भारी आशङ्का है।"

महाराजने मुस्कराकर कहा, "बलदेव! कुछ भी चिन्ता न कीजिए। योगीजनोंका यह दृढ़ विश्वास है कि अविद्याकी तमोराशिको सत्यका सूर्य, अकेलाही तुरन्त जीत लेता है। बलदेव! जो मनुष्य पक्षपातका परित्याग करके केवल लोकहितके लिए, ईश्वरकी आज्ञानुसार सत्योपदेश करता है उसे भय कहाँ है? सत्पुरुष किसीसे भयभीत होकर सत्यको नहीं छुपाया करते। जीवन जाय तो जाय, परन्तु वे अन्तरात्माके आदेश—सत्य—को नहीं छोड़ते। बलदेव! चिन्ता किस बातकी है? एक मैं—आत्मा—हूँ, एक परमात्मा है और एक ही धर्म्म है। दूसरा है कौन, जिससे डरें और काँपें? उन सबको आ जाने दो। जो कुछ होगा उसी समय देख लिया जायगा।"

महाराजने इस प्रकार बलदेवको धैर्य्य प्रदान किया। फिर क्षौर कराकर स्नान किया। तत्पश्चात्, वे भोजन पाकर चटाईपर बैठ गये।

उधर पण्डितोंको सवेरेसे सुसज्जित होते दिनका तीसरा प्रहर आ गया। उस दिन पाठशालाओंमें अनध्याय किया गया था। इसलिए, नये और पुराने सभी विद्यार्थी, लम्बी लम्बी पंक्तियाँ बाँधकर अपने अपने गुरुओंके निवासस्थानों-के आगे उपस्थित हो गये और जय-ध्वनिसे ऊँची अट्टालिकाओंको प्रतिध्वनित करने लगे। नियत समयपर, शकुन मना और मङ्गलोपचार कर सभी पण्डितगण अपनी अपनी पालकियोंमें आरूढ़ हो गये। उनके सिरोंपर छत्र और चँवर झूलने लगे। गुरुजनकी आज्ञासे विद्यार्थीगण जय-नादसे मन्दिर मालाओंको और बाजारके दोनोंओरकी दूकानोंको निनादित करते पालकियोंके आगे आगे चलने लगे। पण्डितोंकी चढ़ाईको देखकर सारा नगर चलायमान हो गया। आनन्दउद्यानकी ओर उस दिन मानो जन-सागर उमड़ पड़ा। नाना भाँतिके साम्प्रदायिक चिन्होंसे सुसज्जित, साधु-संन्यासी भी टोलियाँ बनाकर उसी ओर चलने लगे। ऐसा प्रतीत होता था कि सब सम्प्रदायोंकी समुचित शक्ति अकेले दयानन्दपर चढ़ आई है। सारा पौराणिक दल, एकाकी परम-हंसपर एक बार ही टूट पड़ा है।

काशी-नरेशसहित सैकड़ों विद्वान् अद्वितीय दयानन्दसे शास्त्रार्थ करनेपर उतारु हुए। उस पण्डित-सैन्यके प्रसिद्ध महारथी, स्वामी विशुद्धानन्दजी, बालशास्त्री, शिवसहाय, माधवाचार्य, वामनाचार्य्य, ताराचरण, जयनारायण तर्कवाचस्पति, राधामोहन तर्कवागीश और अम्बिकादत्तजी आदि सत्ताईस अठाईस विद्वान् थे। ये लोग अपनी अपनी सेना-पंक्तिका संचालन करते बढ़ते चले आ रहे थे। परन्तु कोतवाल महाशय इन सबके पहिले ही श्री स्वामीजीके पास पहुँच गये। उन्होंने एक कोठरीके द्वारके निकट आसन बिछाकर उसपर स्वामीजीको बैठा दिया और उनके सामने एक आसन प्रतिपक्षी पण्डितके लिए लगा दिया। काशी-नरेशके लिए भी एक अलग आसन स्थापित किया गया। कोतवाल महाशयका, इस प्रकार केवल तीन ही आसन लगानेका तात्पर्य यह था कि स्वामीजीके समीप एक समयमें केवल एक ही पण्डित बैठे, जिससे कोई कोलाहल न होने पाये।

कोतवाल महाशय अभी आसन-व्यवस्था कर ही चुके थे कि इतनेमें उमड़ा हुआ पण्डित-पूर आ पहुँचा, और लगा सारे स्थानको प्लावित करने। उन्होंने आते ही भीतर आनेके सभी मार्ग रोक लिए। वे स्वामीजीके सहायक पण्डित ज्वाहरदासजी तथा पण्डित ज्योतिःस्वरूपजी आदिको भी नहीं आने देते थे। स्वामीजीको एक भक्तने पत्र लिखकर सूचित किया कि हमें जान बूझकर भीतर आनेसे रोका जाता है। स्वामीजीने तब कोतवाल महाशयको कहकर अपने सहायक परमहंसोंको भीतर बुला लिया और पण्डित ज्वाहरदासजी तथा पण्डित ज्योतिःस्वरूपजीको अपने निकट बैठाया।

पण्डित ज्योतिःस्वरूपजी एक प्रतिष्ठित और धुरन्धर विद्वान् थे। उनकी विद्याका लोहा सारे पण्डित मानते थे। उन्होंने स्वामीजीके समीप बैठते समय यह कह भी दिया, "पण्डित लोग पहले हमसे तो शास्त्रार्थ कर लें। यदि फिर भी उनमें कुछ शक्ति शेष रह जाय तो पीछेसे भले ही स्वामीजीसे प्रश्नोत्तर करनेको समुद्यत हों।"

ज्योतिःस्वरूपजी काशीवासी पण्डितोंकी नस नस और नाड़ी नाड़ीको जानते थे। वे यह भी जानते थे कि कौन कितने पानीमें है। इस लिए, उन्हें स्वामीजीके निकट बैठा देखकर पण्डितोंका माथा ठनक गया। उनको अपने

भेदों और चालोंके प्रकट हो जानेका खटका हो गया। वे यह सोच ही रहे थे कि ज्योतिःस्वरूपजीके पँजेसे कैसे छूटें कि उसी समय, महाराजा ईश्वरी-नारायणसिंह आ पहुँचे। महाराजाको आते देख सारे पण्डितोंने उठकर उनको आशीर्वाद दिया और वे उनके साथ ही आगे बढ़ आये, यहाँतक कि उन्होंने स्वामीजीको घेर लिया।

यदि वे लोग इस पहिले नियमको तोड़नेपर ही सन्तोष करते तो भी कोई बात न थी, परन्तु उनकी आँखोंमें तो ज्योतिःस्वरूपजीका वहाँ बैठना काँटेकी भाँति रड़क रहा था। उन्होंने आशीर्वाद देते समय महाराजासे कह दिया, "एक तो दयानन्द स्वयं सिंहके सदृश है, उसका परास्त करना दुष्कर है, दूसरे व्याघ्रसमान ज्योतिःस्वरूप उसके साथ बैठ गया है। उसकी उपस्थितिमें तो किसी भी चालसे जय-लाभ करना सम्भव नहीं।"

महाराजने मर्मको समझ लिया और बैठते ही श्री जवाहरदास तथा श्री ज्योतिःस्वरूपजीको कहा कि यह स्थान पण्डितोंके लिए नियत है। आप इससे कुछ पीछे हटकर बैठें। इतनेसे भी प्रतिपक्षियोंकी सन्तुष्टि नहीं हुई। उनके संकेतसे, महाराजाने ज्योतिःस्वरूपजीको पकड़वाकर वहाँसे बाहर कर दिया।

स्वामीजीने अपने सहायकोंको अपमानित होते देखकर इस अन्यायका घोर विरोध किया और उनकी इस धींगाधींगीपर घृणा प्रकट की। परन्तु, वे तो सभी एक ही रँगमें रँगे हुए थे। इस लिए फल कुछ भी न निकला। कोतवालने भी उपालम्भरूपसे कहा कि हमारा किया नियम तोड़ दिया गया है, और इतने पण्डित अकेले स्वामीजीको घेर कर बैठ गये हैं, यह सब अनुचित है। परन्तु उस समय तो उचितानुचित की चर्चा कोई भी न सुनता था।

श्रीस्वामीजीने महाराजाको कहा कि अपने सरस्वती-भण्डारसे पुस्तकें मँगा लीजिए। महाराजाके भाईने कहा कि पुस्तकें क्या करनी हैं? योंही शास्त्रार्थ होगा। स्वामीजीने फिर कहा कि क्या वेद मँगा लिए हैं? इसपर महाराजाने कहा कि, वेदकी पुस्तकोंकी कोई आवश्यकता नहीं, वे तो हमारे पण्डितोंके कण्ठाग्र हैं।

तत्पश्चात् कोतवाल, श्रीरघुनाथसहायजीने सबको सुनाकर कहा, "शास्त्रार्थका यह नियम निश्चित हो गया है कि श्रीस्वामीजीके साथ एक समयमें एक ही पण्डित शास्त्रार्थ करेगा। इस बीचमें दूसरा कोई भी न बोले।"

सबसे प्रथम पण्डित ताराचरणजी नैयायिक स्वामीजीके सम्मुख हुए। स्वामीजीने उनसे पूछा, कि "क्या आप वेदोंको मानते हैं?" ताराचरणजीने कहा, "जो भी वर्णाश्रम-धर्ममें हैं वे सभी वेदको प्रामाणिक मानते हैं।" तब स्वामीजीने कहाः—"वेदमें पाषाण आदिकी मूर्त्तियोंके पूजनेका यदि विधान है तो उसका प्रमाण दीजिए, नहीं तो अप्रमाणता स्वीकार कीजिए।

ताराचरणः—"वेदमें मूर्त्ति-पूजनका प्रमाण है अथवा नहीं है, यह उसे कहा जाय, जो एक वेदको ही प्रमाण मानता हो।"

स्वामीजीः—"अन्य ग्रन्थ प्रमाण हैं अथवा अप्रमाण इसपर फिर विचार किया जायगा। इस समय मुख्य प्रमाण तो वेद ही है। वेदोक्त कर्म्म ही मुख्य कर्म हैं, दूसरे ग्रन्थोंके बताये कर्म गौण हैं। वे वेदानुकूल होनेहीसे माने जा सकते हैं। इस लिए यदि वेदमें प्रतिमा-पूजनकी आज्ञा नहीं है तो उसका पूजन नहीं करना चाहिए।"

ताराचरणजीः—"तो फिर आप मनुस्मृतिको वेद-मूलक कैसे मानते हैं?"

स्वामीजीः—"सामवेदके ब्राह्मणने कहा है कि जो कुछ मनुने वर्णन किया है वह औषधियोंका भी औषध है।"

विशुद्धानन्दजीने कहा, "रचनाकी अनुपपत्ति—असिद्धि होनेसे अनुमान-द्वारा वर्णित प्रधान जगत्का कारण नहीं है; व्यासके इस सूत्रको वेदमूलक सिद्ध कीजिए।"

स्वामीजीः—"उपस्थित वादके भीतर यह प्रश्न नहीं आता।"

विशुद्धानन्दजीः—"प्रकरणसे बाहर है तो क्या हुआ? यदि, तुम्हें इसका समाधान आता है तो कह दो।"

स्वामीजीः—"इसका पूर्वापर पाठ देखकर समाधान किया जा सकता है।"

विशुद्धानन्दजीः—"यदि सब कुछ स्मरण नहीं था तो काशीमें शास्त्रार्थ करने आये ही क्यों थे?"

स्वामीजीः—"क्या आपको सब कुछ कण्ठाग्र है?"

विशुद्धानन्दजीः—“हाँ, हमें सब कुछ स्मरण है।”

स्वामीजीः—“तब बताइये धर्म्मके कितने लक्षण हैं ?”

विशुद्धानन्दजीः—“जो वेदमें कहे फलसहित कर्म हैं वही धर्म्म है।”

स्वामीजीः—“यह तो आपका वाक्य है। कोई शास्त्रीय प्रमाण दीजिए।”

विशुद्धानन्दजीः—“धर्म्मका लक्षण ‘प्रेरणा’ कहा गया है।”

स्वामीजीः—यह तो ठीक है कि प्रेरणा धर्म्मका लक्षण है, परन्तु प्रेरणा कहते हैं श्रुति-स्मृतिकी आज्ञाको। सो श्रुति-स्मृतिकी प्रेरणामें धर्म्मके लक्षण कितने हैं, यह बताइये ?”

विशुद्धानन्दजीः—“धर्म्मका एक ही लक्षण है।”

स्वामीजीः—“शास्त्रमें तो धर्म्मके दस लक्षण कहे हैं। तब आप एक कैसे कहते हैं ?”

विशुद्धानन्दजीः—“धर्म्मके दस लक्षण किस ग्रन्थमें हैं ?”

उस समय स्वामीजीने मनु-स्मृतिमें वर्णित ‘धृति’ आदि धर्म्मके दस लक्षणोंवाला श्लोक पढ़कर सुनाया। इसपर विशुद्धानन्दजी तो अवाक् हो गये; परन्तु बालशास्त्री कहने लगे, “हमने सम्पूर्ण धर्म्मशास्त्रका अध्ययन किया है। इस विषयमें कुछ पूछना हो तो हमसे पूछिए।”

स्वामीजीने कहा, “बहुत अच्छा, आप ‘अधर्म’ के लक्षण बताइए।”

बालशास्त्रीको इसका उत्तर कुछ भी न सूझा, इस लिए वे मौन हो गये!

अपने मुखिया सेना-पतियोंके पाँव उखड़ते देख सारे पण्डित एक बार ही चिल्लाकर पूछने लगे, “बताओ, वेदमें ‘प्रतिमा’ शब्द है अथवा नहीं ?”

स्वामीजीने शान्त भावसे उत्तर दिया, “वेदमें ‘प्रतिमा’ शब्द तो है।”

फिर उन लोगोंने क्रमसे पूछा, “यदि वेदमें प्रतिमा शब्द है तो किस प्रकरणमें ? और आप इसका खण्डन क्यों करते हैं ?”

स्वामीजीने उत्तरमें कहा, ‘प्रतिमा’ शब्द यजुर्वेदके ३२ वें अध्यायके तीसरे मंत्रमें है। यह सामवेदके ब्राह्मणमें भी विद्यमान है। परन्तु पाषाण आदिकी प्रतिमाके पूजनका विधान कहीं भी नहीं है, इस लिए मैं इसका खण्डन करता हूँ।”

उनके पूछनेपर स्वामीजीने उन प्रकरणोंका विस्तारपूर्वक वर्णन कर दिया, जिनमें प्रतिमा शब्द आया है । इसपर उच्छृंखल पण्डित चुप हो गये ।

इतने कालमें बालशास्त्रीजीको विश्राम मिल गया और वे फिर प्रश्न करने लगे । परन्तु दो तीन प्रश्न करके फिर मौनी बन गये। इसके पश्चात् विशुद्धानन्दजीने स्वामीजीसे पूछा, "वेद कैसे उत्पन्न हुए हैं ?"

स्वामीजीः—"वेदोंका प्रकाश ईश्वरने किया है।"

विशुद्धानन्दजीः—"वेदोंका प्रकाश किस ईश्वरसे हुआ है ? न्यायवर्णित ईश्वरसे, या योग-कथित ईश्वरसे अथवा वेदान्त-प्रतिपादित ईश्वरसे ?"

स्वामीजीः—"क्या आपके निश्चयमें अनेक ईश्वर हैं ?"

विशुद्धानन्दजीः—"ईश्वर तो एक ही है, परन्तु वेदोंके प्रकाशक ईश्वरका क्या लक्षण है, यह बताइए।"

स्वामीजीः—"उसका लक्षण है सच्चिदानन्द ।"

विशुद्धानन्दजीः—"ईश्वर और वेदमें क्या सम्बन्ध है ?"

स्वामीजीः—"वेद और ईश्वरमें कार्य्य-कारणभाव सम्बन्ध है।"

विशुद्धानन्दजीः—"जैसे मनमें और सूर्य आदिमें ब्रह्मबुद्धि करके 'प्रतीक' उपासना करनी कही है वैसेही शालिग्राम आदिमें ईश्वरभावना करके पूजनेमें क्या हानि है ?"

स्वामीजीः—"शास्त्रमें मन आदिमें ब्रह्मोपासना करनेका तो विधान है, परन्तु पाषाणादिमें उपासना करनेका वचन किसी भी शास्त्रमें नहीं मिलता।"

यह उत्तर सुनकर विशुद्धानन्दजीको तो अपनी वाणीको विराम देना पड़ा, परन्तु माधवाचार्यने पूछा, " 'उद्बुध्यस्वाग्ने' इस मंत्रमें जो 'पूर्त' शब्द पड़ा है उसका आप क्या अर्थ करते हैं ? और मूर्ति-पूजन अर्थ क्यों नहीं करते ?"

स्वामीजीः—" यहाँ 'पूर्त" शब्दसे कुआँ, तड़ाग, वापी और उद्यान आदि लोक-हितकर कार्यों का ग्रहण किया जाता है । 'पूर्त' शब्द 'पूर्त्ति' का वाचक है । इससे मूर्त्ति-पूजाका ग्रहण कदापि नहीं हो सकता । विशेष जानना चाहते हो तो इस मन्त्रका निरुक्त और ब्राह्मण देख लीजिए।"

मूर्त्ति-पूजनके पक्षमें माधवाचार्य्य निरुत्तर हो गये और किंचिद् विश्राम लेकर फिर पूछने लगे, "पुराण शब्द वेदोंमें आया है कि नहीं ?"

स्वामीजीः—"पुराण शब्द तो वेदके अनक स्थलोंमें विद्यमान है, परन्तु वह है पुरातन कालका वाची सनातन अर्थका बोधक । उससे ब्रह्मवैवर्त्त और भागवतादि पुराण ग्रन्थोंका ग्रहण नहीं हो सकता ।"

विशुद्धानन्दजीः—"बृहदारण्यक उपनिषद्में 'पुराण' शब्द आया है, वह आपको प्रमाण है कि नहीं? यदि प्रमाण है तो बताओ, वहाँ 'पुराण' शब्द किसका विशेषण है ?"

स्वामीजीः—"बृहदारण्यकका 'पुराण' शब्द मुझे प्रमाण है, परन्तु वह किसका विशेषण है यह, पुस्तक दिखाइए, बतादूंगा !"

तब, जो पुस्तक लाकर स्वामीजीको दिखाने लगे वह बृहदारण्यक नहीं थी, किन्तु गृह्यसूत्रका एक ग्रन्थ था ! माधवाचार्यने उस ग्रन्थका पन्ना पकड़कर कहा, "इसमें पुराण शब्द किसका विशेषण है ?"

स्वामीजीः—"पाठ तो पढ़िये ।"

माधवाचार्यजीने "ब्राह्मणानीतिहासपुराणानीति" यह पढ़कर सुनाया ।

स्वामीजीः—"यहाँ 'पुराण' शब्द 'ब्राह्मण' शब्दका विशेषण है । इसका तात्पर्य यह है कि ब्राह्मण पुरातन अर्थात् सनातन है ।"

बालशास्त्रीजीः—"क्या कोई ब्राह्मण नूतन भी हैं ?"

स्वामीजीः—"ब्राह्मण नवीन तो नहीं हैं, परन्तु किसीको सन्देह करनेका अवकाश ही न मिले इस लिए यह विशेषण रक्खा गया है ।"

विशुद्धानन्दजीः—"इस पाठमें ब्राह्मण और पुराण इन दो शब्दोंके बीच इतिहास शब्द व्यवधानरूप पड़ा है, इस लिए 'पुराण' शब्द विशेषण नहीं हो सकता ।

स्वामीजीः—"यह कोई भी नियम नहीं है कि व्यवधान होने पर विषेशण न हो सके। देखिए, भगवद्गीताके 'अजो नित्यः शाश्वतोयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे' इस श्लोकमें विशेषण कितना दूर पड़ा है ।"

विशुद्धानन्दजीः—" 'इतिहासपुराणानि' इस पाठमें यदि 'इतिहास' शब्दका 'पुराण' शब्द विशेषण नहीं है तो क्या इससे यहाँ नवीन इतिहास ग्रहण करोगे ?"

स्वामीजी:—"इतिहासपुराणः पञ्चमो वेदानां वेदः" छान्दोग्यके इस पाठमें 'पुराण' शब्द 'इतिहास' शब्दका विशेषण है।

इसपर वामनाचार्य आदि अनेक पण्डित कहने लगे कि यह पाठ उपनिषद्में नहीं है। स्वामीजीने उनको बलपूर्वक कहा, मैं लिख देता हूं और आप भी लिख दीजिए कि यदि ऐसा पाठ उपनिषद्में निकल आए तो आपकी हार समझी जाय और यदि न निकले तो आप की जय।"

यह सुनकर सबके मुख बन्द हो गए और कितनी ही देरतक सारे सभास्थलमें एक सन्नाटा सा छा रहा। जब देर तक किसीने कोई प्रश्न न किया तो विद्यावारिधि दयानन्दने सब पण्डितोंको ललकार कर कहा, "आपमेंसे जो व्याकरण जानते हैं वे बतायें कि व्याकरणमें कहीं 'कल्म' संज्ञा की गई है अथवा नहीं ?"

बालशास्त्रीजी:—"संज्ञा तो नहीं की है, किन्तु एक स्थलमें एक भाष्यकारने उपहास अवश्य किया है।"

स्वामीजी: —"आप अपने कथनकी पुष्टिमें कोई प्रमाण उपस्थित करें और बतायें कि भाष्यकार ने कहां उपहास किया है।"

यह कथन सुनकर बालशास्त्री चुप हो गए और दूसरे पण्डितोंकी भी मौन-मुद्रा किंचिन्मात्र भंग न हुई।

चार घण्टों तक निरन्तर शास्त्र-समरमें पौराणिक दलका प्रत्येक अगुआ आगे बढ़कर स्वामीजीसे युद्ध करता रहा और अन्तमें महाराजकी अकाट्य युक्तियोंके तीक्ष्ण तीरोंसे, उनके प्रबल प्रमाणोंके परमास्त्रोंसे हत-प्रतिहत होकर—परास्त होकर—पीछे लौट आता रहा। इतनी बड़ी संख्यामें, ऐसी बड़ी सभामें, इतना बड़ा उद्योग करनेपर भी इतने बड़े विद्वानोंका, इस प्रकार, ऐसा पराजय इस नगरीमें पहले कदाचित् ही हुआ होगा।

सारे महारथी सकल सामर्थ्यसे भी जब सफल न हुए तो काशीके महामल्लोंने कूटनीति और दाँव-पेच चलानेकी सोची। उस समय सूर्य अस्त हो गया था। धीरे धीरे अंधकार गाढ़तर होता चला जा रहा था। ऐसे समयमें, माधवाचार्यने वेदके नामसे दो पत्रे निकालकर पण्डितोंके मध्यमें रख दिये और कहा "यहाँपर लिखा है कि, यज्ञकी समाप्तिपर यजमान दसवें दिन

पुराणोंका पाठ श्रवण करे। अब स्वामीजी! बताइए कि यहाँ 'पुराण' किसका विशेषण है ?

स्वामीजी:—'आप पाठ पढ़कर तो सुनाइए।"

विशुद्धानन्दजीने पत्ने पकड़कर स्वामीजीकी ओर किए और कहा, "आप ही पढ़ लीजिए।"

स्वामीजीने पत्ने विशुद्धानन्दजीको लौटा दिए और कहा कि आपही पढ़कर सुनाइए; विशुद्धानन्दजीने फिर उन्हें स्वामीजीके हाथमें दे दिया और कहा कि मैं चश्मेके बिना नहीं पढ़ सकता, इसलिए आपहीको पढ़ना होगा।

स्वामीजीने वे पत्ने हाथमें ले लिए परन्तु अंधेरेके कारण अक्षर स्पष्ट नहीं दिखाई देते थे, इसलिए दीपक मंगाया गया। उन पत्रोंपर वेदका कोई नाम न था! मण्डल अध्याय और मन्त्र आदिका भी कोई पता न लगता था। इस लिए स्वामीजी "दशमेऽहनि किंचित्पुराणमाचक्षीत" इस पाठके पूर्वापरको, ग्रंथके नाम और प्रकरणको सोचने लगे। स्वामीजीको विचारते हुए कुछ बहुत पल न होने पाए थे कि श्री विशुद्धानन्दजी यह कहकर उठ खड़े हुए कि अब सन्ध्याका समय हो गया है; इन्हें अधिक कष्ट भी नहीं देना चाहिए। परन्तु स्वामीजी उनका हाथ पकड़कर बल देते थे कि बैठ जाइये। निर्णय किए बिना, बीचहीमें उठ खड़े होना आप ऐसे विद्वानोंको कदापि उचित नहीं। परन्तु विशुद्धानन्दजीने बैठना स्वीकार न किया और उपहासमें स्वामीजीकी पीठपर हाथ फेरकर कहने लगे कि अब बैठिए, जो कुछ होना था सो तो हो चुका।

विशुद्धानन्दजीके सङ्केतसे महाराजा ईश्वरीनारायणसिंहजी भी उठ खड़े हुए और अपनी जय प्रख्यात करनेके लिए करतालिका बजाने लगे। महाराजाके अनुकरणमें सारे पण्डित तालियाँ पीटते और जयजयनाद करते हुए एकाएक उठ खड़े हुए। पचास साठ सहस्र मनुष्योंके सभा-सागरमें बड़ा भारी क्षोभ उत्पन्न हो गया। सर्वत्र गड़बड़ मच गई। उस समय, अविवेकी मनुष्योंने स्वामीजी महाराजपर ईंटें मारीं, पत्थर और कंकर फेंके, गोबर और जूते उछाले, अन्य अनेकविध अवहेलना और अपमान किया, परन्तु महाराजके प्रशान्त चित्त-दर्पणपर उदासीनताकी यत्किंचित् भी छाया न आई।

कोतवाल महाशयने उद्दण्डजनोंको वहाँसे खदेड़ दिया और महाराजाको कहा कि ताली पीटनेका कार्य आपने अनुचित किया है। उन्होंने उत्तर दिया कि प्रतिमा-पूजन करना हमारा तुम्हारा परस्परका धर्म्म है। उसकी रक्षाके लिए शत्रुसे जैसे भी जय लाभ हो करनी चाहिए।

पक्षपाती लोगों और अबोध जन-समुदायने अपनी बड़ी भारी जीत समझी। उन लोगोंने सारे नगरको जयकारसे गुँजा दिया। परन्तु फिर भी ऐसे बीसियों विचारवान् मनुष्य वहीं उपस्थित थे कि जिन्होंने पण्डितोंकी चालको ताड़ लिया, और स्वामीजीके साथ जो अनीति, अन्याय और धोखा किया गया था, उसपर घृणा प्रकट की।

पण्डित ईश्वरसिंह नामके एक निर्मले सन्त काशीमें वास करते थे। वे वेदान्तके निष्ठावान् विद्वान् थे। उन्होंने उस दिन आनन्दोद्यानसे लौटता हुआ जन-समुदाय देखा। उसमें विद्यार्थी, पण्डित और साधारण लोग स्वामी महाराजको अनेक कु-वचन बोलते हुए जा रहे थे। ईश्वरसिंहजीने वहाँ यह भी सुना कि स्वामीजीपर लोगोंने आज ईंट, पत्थर, गोबर और जूते फेंके हैं, उन्हें अगणित अपशब्द कहे हैं। उनके चित्तमें, उसी समय, यह सङ्कल्प उत्पन्न हुआ कि चलो इसी समय चलकर दयानन्दजीकी दशा देखें। यदि इस महा निरादरसे, घोर अपमानसे, विपरीत नीतिसे, निष्ठुर अन्यायसे उनका चित्त विचलित न हुआ तो समझेंगे कि वह सच्चा ब्रह्मज्ञानी और एक पहुँचा हुआ महात्मा है।

जिस समय ईश्वरसिंहजी आनन्दोद्यानमें पहुँचे तो महाराज चान्दकी चाँदनीमें टहल रहे थे। ईश्वरसिंहजीको आते देखकर भगवान्ने मुस्कराते हुए, बड़े आदरसे उनका स्वागत किया। दोनों मिलकर बड़ी राततक आत्मा और परमात्मा-सम्बंधी विषयोंपर वार्तालाप करते रहे। इतनी लम्बी बातचीत में, ईश्वरसिंहजीको स्वामीजीके चन्द्रसमान चमकते हुए मुखमण्डलपर उदासीनताका एक भी धब्बा दिखाई न दिया। उनकी मुस्कराहटकी चन्द्र-छटामें उन्होंने किंचिन्मात्र भी न्यूनता न पाई। उनके हृदयगत साहस और उत्साहकी ज्वाल-माला-संकुल ज्वलन्त अग्निसे एक बार भी तो लम्बी साँसका धुआँ न निकला। ध्यानपूर्वक देखनेपर भी उनके विमल चिदाकाशमें, निराशा

बदलीकी एक भी टुकड़ी न दीख पड़ी। उन्होंने लोगोंके अन्याय और अत्याचारको कुछ भी तो चर्चा न चलाई ।

पण्डित ईश्वरसिंहजीने महाप्रभु दयानन्दके चरण छूकर कहा, "महाराज! आजतक मैं आपको वेद-शास्त्रका ज्ञाता, एक पण्डित मात्र समझता रहा हूँ। परन्तु आज पण्डितोंके घृणित उत्पातसे, अपमानसे, और विरोधकी घोर आँधीसे आपके हृदय-सागरमें राग-द्वेषकी एक भी लहर उठते न देख, मुझे पूर्ण विश्वास हो गया है कि आप वीतराग महात्मा और सिद्ध पुरुष हैं।" तत्पश्चात् सन्त ईश्वरसिंहजी महाराजसे विदा होकर अपने स्थानको चले आये।

अगले दिन स्वामीजीने एक विज्ञापनमें "दशमेऽहनि किंचित्पुराणमाचक्षीत" इस वाक्यका विस्तारसहित अर्थ छपा दिया और पण्डितोंको सत्यासत्यके निर्णयके लिए आह्वान किया । परन्तु उनके सामने दुबारा आनेका साहस किसीमें भी न था। काशी-शास्त्रार्थ विस्तार सहित पुस्तकाकार मुद्रित कराकर वितरण किया गया । समाचार पत्रोंमें भी टीका टिप्पणीसहित छपा। प्रसिद्ध पण्डित सत्यव्रत सामश्रमी भी शास्त्रार्थके समय वहाँ विद्यमान थे। उन्होंने अपने मासिकपत्र "प्रत्नकमरनन्दिनी" के मार्गशीर्ष वा पौष सं० १९२६के अङ्कमें काशीमें स्वामीजीका विजय-समाचार प्रकाशित किया !

रुहेलखण्ड, समाचारपत्रने अपने कार्तिक सं० १९२६ के अङ्कमें लिखा, "स्वामी दयानन्दजी मूर्ति-पूजाके विरुद्ध हैं। उनका शास्त्रार्थ कानपुरके पण्डितोंसे भी हुआ था, और अब उन्होंने काशीके पण्डितोंको भी जीत लिया है।"

'ज्ञान-प्रदायिनी' पत्रिका लाहौरसे निकलती थी। उसके चैत्र सम्वत् १९२६ के अङ्कमें काशी-शास्त्रार्थके सम्बंधमें प्रकाशित किया गया कि "इसमें सन्देह नहीं कि पण्डित लोग मूर्ति-पूजाकी आज्ञा वेदोंमें नहीं दिखा सके।"

हिन्दू 'पेट्रियट' के पौष सु० १५ सं० १९२६के अङ्कमें काशी-शास्त्रार्थके विषयमें यह प्रकाशित हुआ कि 'कुछ काल हुआ रामनगरके महाराजने एक सभा बुलाई । इसमें काशीके बड़े बड़े पण्डित आहूत किए गये। वहाँ स्वामी दयानन्द और पण्डितोंके बीच एक लम्बा वाद होता रहा। पण्डित

लोग यद्यपि अपने शास्त्र-ज्ञानका अति गर्व करते थे, परन्तु हुई उनकी बड़ी भारी हार।"

स्वामीजी महाराज शास्त्रार्थके पश्चात् भी सत्योपदेश देते रहे और अनेक सज्जन उनके सत्संगसे लाभ उठाते रहे। यद्यपि काशीमें घोषणा हो गई थी कि दयानन्दके पास कोई न जाय और जो जायगा वह पातकी हो जायगा, परन्तु जिज्ञासुओंने जाना न छोड़ा। वाद-विवाद करने वाले पण्डित भी आते ही रहे।

यहाँ एक रामस्वामी मिश्र, महामहोपाध्याय निवास करता था। वह युवा अवस्थाके प्रभावसे स्वामी दयानन्दके लिए बहुत ऊँच नीच वचन बोला करता था। उसे गर्व था कि यदि मैं एक बार भी स्वामी दयानन्दसे बातचीत करूँ तो उनसे प्रतिमा-पूजन आदिका खण्डन छुड़वाकर उन्हें सीधा कर दूँ। वह महाराजके पास आता इस लिए नहीं था कि उनका मुख देख लेनेसे पातक लग जायगा।

यह सोचकर कि अँधेरेमें दयानन्दका मुख देखे बिना भी उसे सीधा किया जा सकता है, वह एक दिन, रातके समय स्वामीजीके पास आया और कहने लगा, "तेरे जैसे पतित पुरुषके साथ मैं देववाणीमें बोलना पाप समझता हूँ। इस लिए देश-भाषामें बातचीत होगी, परन्तु पहले तुम्हें मेरी एक शर्त माननी पड़ेगी।"

स्वामीजीने हँसकर कहा, आप मुझे संस्कृत भाषा बोलनेसे तो रोकते हैं, परन्तु संस्कृत भाषाके शब्द तो बोलने देंगे? अच्छा, यही सही, अब आप अपनी शर्त कहिए।"

उसने कहा, "मैं अपने साथ एक छुरी लेता आया हूँ। वह दोनोंके बीच रक्खी जायगी। जो शास्त्रार्थमें हार जायगा उसकी इससे नाक काट दी जायगी।"

स्वामीजीने हँसते हुए कहा, "पण्डितजी! एक शर्त मेरी भी मान लीजिए। वह यह है कि एक चाकू भी पास रख लिया जाय। जो हममेंसे हार जाय उससे उसकी जीभ काट ली जाय; क्योंकि नाक तो इन बातोंमें निर्दोष है। वाद-विवादमें जो कुछ अनर्थ होता है वह जीभद्वारा ही होता है।

कोई आध घड़ीतक स्वामीजीने उसके साथ वार्त्तालाप किया । इससे वह इतना प्रभावित हुआ कि सरलता और सभ्यतासे वर्त्ताव करने लग गया ।

काशीमें स्वामीजी मुसलमानी मतकी भी त्रुटियाँ दिखाया करते थे । इससे कुछ मुसलमान बहुत रुष्ट हो गये थे । एक दिन सायंकाल, महाराज गङ्गा-तटपर आसन लगाये बैठे थे । उसी समय, दैवयोगसे मुसलमानोंकी एक मण्डली भी वहाँ आ निकली । उस टोलीमें बहुतसे मनुष्योंने स्वामीजीको पहचानकर कहा कि यह वही बावा है, जो कुछ दिन हुए हमारे मतके विरुद्ध व्याख्यान दे रहा था । उनमेंसे दो मनुष्य बहुत अधिक आवेशमें आकर आगे बढ़े और स्वामीजीको उठाकर गङ्गामें फेंकनेका यत्न करने लगे ! उन दोनों व्यक्तियोंने दोनों हाथोंसे स्वामीजीकी दोनों भुजायें, कन्धोंके पाससे दृढ़तापूर्वक पकड़ लीं । वे उन्हें झुलाकर गङ्गाधारामें फेंका ही चाहते थे कि स्वामीजीने अपनी दोनों भुजायें सिकोड़कर अपने शरीरके साथ लगा लीं और वे बलपूर्वक आगेको उछलकर दोनों मनुष्योंसहित पानीमें कूद पड़े ! उन दोनों व्यक्तियोंके हाथ कुछ कालतक तो शिकञ्जेमें कसे रहे, परन्तु नदीमें डुबकी लगाते समय, महाराजने उनपर दया दिखाकर उन्हें मुक्त कर दिया । वे दोनों मनुष्य बड़ी कठिनतासे पानीसे बाहर निकले और अपने साथियोंके साथ, हाथमें मिट्टीके ढेले आदि लिये, बड़ी देरतक नदी-तटपर खड़े देखते रहे कि वह बावा सिर निकाले तो उसे मारें ! स्वामीजी भी उनकी इच्छाको जानते थे । इस लिए, वे प्राणोंको रोक पानीकी पेंदीपर पद्मासन लगाकर बैठे रहे । अँधेरा हो जानेपर उस मण्डलीने मनमें समझ लिया कि वह बावा डूब गया है । इस लिए वे चले गये और स्वामीजी भी जलसे निकल अपने आसनपर आ विराजे ।

एक दिन एक मनुष्यने भक्तिभाव प्रदर्शित करते हुए स्वामीजीको भोजन लाकर दिया । स्वामीजी उस समय भोजन पा चुके थे, इस लिए उन्होंने वह स्वीकार न किया । तब उस कपटी भक्तने कहा कि यदि भोजन ग्रहण नहीं करते तो यह पान तो ले लीजिए । महाराज उसके हाथसे पानका बीड़ा ले उसे खोलकर देखने लगे तो वह वंचक झटपट वहाँसे हिरणकी भाँति भाग

गया! इस पानकी जाँच राज्य-औषधालयमें कराई गई। वह उस पानमें हलाहल विष मिश्रित करके लाया था।

बनारसके बहुतसे गुण्डे स्वामीजीके वधके लिए षड्यंत्र रच रहे थे। उनकी इस दुर्भावनाका पता, घुणाक्षर न्यायसे, बाबा श्री जवाहरदासजीको भी लग गया। वे दौड़े हुए स्वामीजीके पास आये और समाचार सुनाकर बड़ी चिन्ता प्रकाशित करने लगे। स्वामीजीने उन्हें कहा, "आप घबरायें नहीं, यह कोई नई बात नहीं है। मेरे साथ तो ऐसी बातें बहुत बीत चुकी हैं। जिन दिनों मैं घरमें रहता था, उन दिनों, हमारे एक पड़ोसी भूमिहारने हमारे एक खेतपर अपना अधिकार कर लिया। पिताजीने जब पड़ोसीकी इस धींगाधींगीकी बात मुझे सुनाई तो मैं आवेशसे हाथमें तलवार लेकर उनपर जा टूटा। यद्यपि वे कई मनुष्य थे, परन्तु मेरे साहसके आगे उनके पाँव उखड़ गये और वे भाग निकले। अब भी, यदि यहाँके गुण्डे इकट्ठे दस पन्द्रह भी मुझपर आक्रमण करेंगे तो उनको शान्त करनेके लिए मैं अकेलाही पर्याप्त हूँ।"

महाराजका हुङ्कारनाद ऐसा ऊंचा और तीव्र होता था कि पास-बैठोंको कानोंमें उङ्गलियाँ दे लेनी पड़ती थीं। एक दिन महाराज गम्भीर मुद्रामें हंस और हस्तीकी चाल चलते भ्रमण करने जा रहे थे। उसी समय एक हट्टा कट्टा, डण्डपेल, महामल्लसमान, बलवान् मनुष्य उनके पीछे हो लिया। उसके हाथमें एक सुदृढ़ लट्ठ भी था। जब महाराजने पीछे पलटकर दृष्टि फिराई तो वह मनुष्य उन्हें घातक स्वभाव का जान पड़ा। श्री महाराजने, वहीं ठहरकर हुङ्कारनाद ऐसा गुंजाया कि वह उद्दण्ड मनुष्य भयभीत होकर, चीत्कार करता हुआ पिछले पाँव भाग गया।

जवाहरदासजीके साथ श्री स्वामीजीका बहुत वार्तालाप हुआ करता था। वे मित्रोंकी भाँति परस्पर मिला करते थे। उनके वार्त्ताविनोदमें कभी कभी उपहास-रस भी मिश्रित हो जाता था।

एक दिनका वर्णन है कि स्वामीजी जवाहरदासके डेरेपर जा पहुँचे। जवाहरदासजीके यहाँ उस समय भाँगका रगड़ा लग रहा था। महाराजको आते देखे उन्होंने कूण्डी सोटेको इधर उधर छिपानेकी बहुतेरी चेष्टा की, पर वे तो

बहुत पास पहुँच चुके थे। महाराजने हँसते हुए कहा, "अच्छा, यह शिवकी बूटी है। क्या आप भी शिव बनना चाहते हैं, शिव बननेमें लगता भी क्या है? भाँग पीकर उसके मदमें झूमते हुए 'शिवोऽहम्' का जाप और 'अहं ब्रह्मास्मि' का पाठ करने लग गये। बस, शिव बने बनाये हैं।"

स्वामीजीने बावा ज्वाहरदासको यह भी कहा, "आप भी उपदेश करने लग जाइए।" इसका उत्तर उन्होंने उपहास रसमें यह दिया, "आपका तो कोई ठौर ठिकाना है नहीं, इस लिए देश-देशान्तरमें चक्कर लगाते फिरते हो। मैं डेरेवाला हूं। मुझसे उपदेशका काम नहीं हो सकता।"

यह सुनकर स्वामीजीने कहा, "महात्मन्! यह स्थान और डेरा पहले भी आपके पास नहीं था और अन्तमें भी नहीं रहेगा। बीचमें योंही ममता बाँधे बैठे हो। इसे छोड़ो और लोकहितके कार्यमें लग जाओ।"

बावा ज्वाहरदासजी प्रतिदिन स्वामीजीके समीप आया करते और उपनिषदों तथा वेदान्तपर वार्तालाप किया करते थे।

कठोर प्रकृतिके मनुष्य भी प्रश्न पूछने आते और परुष-व्यवहार करते थे, परन्तु महाराज प्रशान्त स्वभावसे कोमल और मीठे शब्दोंमें उत्तर देते चले जाते थे। वे कटु अथवा परुष भाषण कदापि नहीं करते थे। उनके वचनमें व्यक्तिगत कटाक्षोंका नाम तक न होता था। उनका खण्डन साधारण और समुच्चय रूपसे हुआ करता था। उनकी वाणीमें कोई अद्भुत आकर्षण था, कोई अनिर्वचनीय प्रभाव था और कोई अलौकिक रसास्वाद था, जिससे उनके वचन सुनकर दुर्जन, सज्जन बन जाता, पाषाणसमान कठोर मनुष्य मोम हो जाता, प्रकोपसे संतप्त जन शान्ति लाभ कर लेता और अति विरोधी भी वैरबुद्धि छोड़कर श्री चरणोंकी सेवा तक करने लग जाया करता था।

अपने सदुपदेशोंसे काशीवासी धर्माभिलाषियोंको निहाल करके स्वामीजी प्रयागके कुम्भमेलेपर प्रचार करनेके लिए वहाँसे चल पड़े। यह मेला मकर संक्रान्तिको था।

तीसरा सर्ग।

माघ व० ५ सं० १९२६ को श्री महाराज प्रयागमें पधारे और गङ्गाके तीर-पर ही टिक गये। वहाँ आपने बड़ी धूमधामसे प्रचारका कार्य आरम्भ कर दिया। महाराजके व्याख्यानोंमें सैकड़ों साधु सन्त भी आते थे। साधु, वेदान्त-पर—निष्क्रिय वादपर—वादविवाद किया करते थे। एक दिन, एक साधुने स्वामीजीसे प्रवृत्ति और निवृत्ति मार्गपर शास्त्रार्थ किया। उसको पराभूत करनेके अनन्तर स्वामीजीने अपने व्याख्यानमें कथन किया, "क्रियात्मक जीवन ही शुभ जीवन है। सारा दृश्यमान जगत अपनी नित्यक्रियामें निरन्तर प्रवृत्त है। हमारे शरीर भी इस विशाल सृष्टिके अंशमात्र हैं। जब विराट् देहमें निरन्तर गति है, क्रिया है और प्रवृत्ति है तो हम जो उसके एक अंश-रूप हैं उनमें निवृत्ति और निष्क्रियताका होना असम्भव है। आर्य धर्म्ममें वेदविहित कर्मोंका करना, और निषिद्ध कर्मोंका त्यागना ही निवृत्ति मार्ग है। जो इस मर्मको मनमें धारण किए बिना निवृत्तिका राग अलापते हैं, उन्हें अभी वैदिक धर्मका बोध ही नहीं हुआ है। जो लोग सत्योपदेश, प्रजा-प्रेम और लोक-हितके कार्योंको छोड़कर अपनेको परम निष्क्रिय मानते हैं, उनसे भी देहका भरण-पोषण नहीं छूट सकता। मधूकड़ी मांगनेके लिए वे भी दो दो कोस तक जाते हैं। यों ही तीर्थोंपर घूमते फिरते हैं। सच तो यह है कि सत्य और पर-कल्याणके लिए अपने सुखोंका त्यागना—जीवन तकको लगा देना—ही सर्वोत्तम त्याग है।"

महाराजने यह भी कहा, परोपकारके बिना नर-जीवन मृग-जीवनसे उच्च नहीं है। सैकड़ों साम्प्रदायिक साधु लोग इस मेले पर आये हुए हैं। ये गृहस्थोंका नित्य आठ आनेका पदार्थ खाकर जङ्गलमें पड़े रहते हैं। सोचिए तो सही, इनमें और मृगोंमें भेद ही क्या है। मृग भी तो इसी प्रकार किसानों-के खेत नोचकर वनोंमें घुस जाया करते हैं। इस जीवनका लाभ ही क्या है? यह तो पशु-पक्षियोंको सहजहीसे उपलब्ध है।"

महाराज उन दिनों अवधूत वृत्तिमें रहा करते थे। माघका घोर शीत पड़ता था, परन्तु उनके तनपर कौपीनसे भिन्न कोई भी वस्त्र न था और न

ही वे किसीका दिया हुआ वस्त्र ओढ़ते ही थे। उन्हें देखकर ऐसा प्रतीत होता था कि शीत उनके समीप एक शब्दसे बढ़कर कुछ भी न था। लोग उनकी इस तपस्याको देखकर 'अहो आश्चर्य !' कहने लग जाते थे।

सारे मेलेमें स्वामीजीके प्रचारकी बड़ी धूम थी। सैकड़ों लोग अपनी देव मूर्तियोंपरसे विश्वास हटा बैठे थे।

स्वामीजीमें दयाका भाव अतीव प्रबल था। दीन-दुःखियोंको देखकर उनका हृदय तुरन्त द्रवीभूत हो जाता था। परोपकारकी यह वृत्ति, वास्तवमें धर्म-कर्मसे रहित और दुःख-दारिद्रसे पीड़ित मनुष्योंको ही देखकर उन्होंने धारण की थी।

महाराज एक दिन गङ्गा-तटपर बैठे हुए प्रकृतिका स्वाभाविक सौन्दर्य निहार रहे थे। उस समय उनके सामने एक स्त्री मरा हुआ बच्चा हाथोंपर उठाए गङ्गामें प्रविष्ट हुई। कुछ गहरे जलमें जाकर उसने बच्चेके शरीर पर लपेटा हुआ कपड़ा उतार लिया और बालकके निर्जीव कलेवरको 'हाय हाय' के आर्त्तनादके साथ पानीमें प्रवाहित कर दिया।

स्वामीजी महाराज, उस समय अपने हृदयको थाम न सके। जब उन्होंने देखा कि वह स्त्री बच्चेके कलेवरपर लपेटे हुए कपड़ेको धोकर वायुमें सुखाती और रोती हुई घरको जा रही है, उन्होंने खेद-सागरमें निमग्न होकर मन ही मन कहा कि भारत देश इतना निर्धन इतना कङ्गाल है कि माता अपने कलेजेके टुकड़ेको तो नदीमें बहा चली है, परन्तु उससे वस्त्र इसलिए नहीं बहाया गया कि उसका मिलना कठिन है! इसके बिना उसका निर्वाह न हो सकेगा। इससे बढ़कर देशकी दरिद्रताका दृष्टान्त मिलना दुर्लभ है। उस समय वहाँ महाराजने प्रण किया कि कुछ कालतक, मैं इन्हीं लोगोंकी भाषामें प्रचार करके इनके दुःख दूर करनेके साधन उपस्थित करूंगा।

प्रयागके कुम्भ मेलेपर प्रचार करनेके उपरान्त श्री महाराज मिर्ज़ापुर चले गये। वहां आप रामरत्न लड्डाके उद्यानमें उतरे। मूर्ति-पूजन और कुरीतियोंका बड़े बलसे खण्डन होने लगा।

मिर्ज़ापुरमें बालकृष्णदास नामक एक वैरागी महन्त रहता था। वह महाभारतके संशोधनमें लगा हुआ था। वास्तवमें तो वह महाभारतके चौबीस

सहस्र श्लोक रखना चाहता था, परन्तु उस समय उसने जो पुस्तक छपवाई थी उसमें तीस सहस्र ही श्लोक थे। उसने भगवद्गीताको भी प्रक्षिप्त समझकर निकाल दिया था।

सुगन्धिलाल नामक एक धनिक व्यक्ति गीताका बड़ा भक्त था। वह वैरागी बाबाकी इस अनधिकार चेष्टासे बहुत ही चिढ़ गया। उसने बाबाजीके इस अनर्थकी दुहाई, स्वामी दयानन्दजीके आगे आकर दी। महाराजने कहा, "उसका गीताको प्रक्षिप्त कहना सत्य नहीं है। इसपर जब उसका जी चाहे शास्त्रार्थ करले।" छोटूराम नामका एक व्यक्ति स्वामीजीसे उपनिषद् पढ़ने आया करता था। उसने महाभारतकी वह पुस्तक भी स्वामीजीको लाकर दिखा दी। महाराजने सबके सामने उस पुस्तकको दोषपूर्ण सिद्ध कर दिया। छोटूरामने बाबाजीको भी स्वामीजीकी सम्मति सुना दी। इससे बाबाजी रुष्ट तो बहुत हुए, परन्तु शास्त्रार्थसे यह कहकर टलते रहे कि हम दूसरेके स्थानपर नहीं जाया करते। स्वामीजीने उन्हें बहुतेरा कहलाया कि यह स्थान भी हमारा नहीं है। यहाँ नहीं आ सकते तो पासके उद्यानमें आजाइए अथवा गङ्गाके पुलिनपर बैठकर विचार कर लीजिए, परन्तु बाबाजीने एक न मानी। वह इतना भयभीत हुआ कि जिस मार्गपर स्वामीजी आया जाया करते थे, उसने उधर आना ही छोड़ दिया!

स्वामीजीके धर्म-प्रचारसे बहुतसे मतवादी विरोध करने लगे थे। जैसे भी बन पड़े उन्हें दुःख देनेमें आगा पीछा कुछ भी न देखते थे।

उन्हीं दिनोंमें एक ओझा, मंत्र-शास्त्री मिर्ज़ापुरमें आकर ठहरा हुआ था। उसने प्रसिद्ध कर दिया कि मेरे पास ऐसे सिद्ध मन्त्र यन्त्र हैं कि यदि कोई उनका पुरश्चरण कराये तो इक्कीसवें दिन, निश्चयरूपसे, दयानन्दका देहपात हो सकता है! लोग उसके मारण, मोहन और उच्चाटन आदिके कोरे ढोंगमें विश्वास भी करते थे। एक सेठने ओझाजीको कह दिया कि जो भी व्यय हो मुझसे लेते जाइए और स्वामी दयानन्दपर विधिपूर्वक मन्त्र-प्रयोग चलाइए। अतः वह मन्त्र-शास्त्री स्वामीजीपर मन्त्र-प्रयोग चलानेकी क्रियायें करने लगा।

ओझाके मन्त्र-प्रयोगका समाचार लोगोंने श्रीस्वामीजीको भी दे दिया। परन्तु, वे ऐसी भ्रममूलक लीलाओंसे भला, कब चलायमान होने लगे थे! मंत्र-प्रयोग करते अभी तीन चार ही दिन होने पाये थे कि दैवयोगसे मंत्र प्रयोग बैठानेवाले सेठके गलेपर एक फोड़ा निकल आया। वह दिनोंदिन भयङ्कर रूप धारण करता चला गया। यहाँतक कि उसे खाने,पीने, थूकने और बोलने-चलनेमें भी अतिकष्ट होने लगा। एक दिन ओझा उसके पास गया और कहने लगा कि प्रयोग-समाप्तिका दिन समीप आ गया है। बलिदानकी सामग्री प्रस्तुत करा दीजिए। समाप्तिपर जब विधिसे इधर बलि दी जायगी तो उसी समय, उधर दयानन्दका सिर धड़से कटकर भूमिपर गिर पड़ेगा!

उस सेठने बड़ी कठिनतासे बोलकर कहा कि मंत्र-शास्त्रीजी! दयानन्दका सिर तो गिरते ही गिरेगा, परन्तु मेरा तो अभी गिराही चाहता है। पीड़ाके मारे मेरे तो प्राण निकले जाते हैं। कृपा करके आप अपना पुरश्चरण बंद कर दीजिए। इस प्रकार वह मन्त्र-प्रयोग बीचमें ही अधूरा छोड़ दिया गया।

मिर्जापुरमें एक छोटूगिर नामका गुसाईं निवास करता था। वह प्रचण्ड प्रकृतिका, एक उद्दण्ड मनुष्य था। एक दिन, वह और जगन्नाथ मालवीय, सैकड़ों मनुष्योंको साथ लिये स्वामीजीके स्थानपर चढ़ आये। छोटूगिर आते ही स्वामीजीके पाँवपर पाँव रखकर बैठ गया और मुखसे ऊटपटाँग बातें बकने लगा! महाराजने पूछा कि यह मनुष्य कौन है? जगन्नाथने उत्तरमें कहा कि काशीके विश्वनाथके समान ही यहाँ बूढ़े महादेव हैं; उनका यह पुजारी है। स्वामीजीने यद्यपि उनके कलह-प्रिय अन्तःकरण और द्वेष-दूषित दृष्टिको अपने दिव्य नेत्रोंसे पहले ही देख लिया था, परन्तु गुसाईंकी चेष्टासे उन्हें पूरा प्रमाण मिल गया कि उनके आनेका प्रयोजन केवल लड़ाई लड़ना ही है। तब उन्होंने और भी बलपूर्वक, विश्वनाथ आदि मन्दिरों तथा मूर्त्तियोंका खण्डन आरम्भ कर दिया।

स्वामीजी हुल्लास लिया करते थे। इस लिए हुल्लासकी एक डिबिया और चबानेका कुछ तम्बाकू उनके पास पड़ा था। छोटूगिर उन वस्तुओंको उलटने पलटने लगा। महाराजने उसे कहा कि यदि तुम नसवार सूंघना चाहते हो तो ले लो। परन्तु वह तो छेड़ना ही चाहता था।

स्वामीजीके समीप एक दौनेमें बतासे रक्खे थे । गुसाईंने उनपर भी हाथ डाला। महाराजने उसे कहा कि यदि आप खाना चाहते हैं तो बीचमेंसे मुट्ठी भरकर ले लीजिए और प्रसन्नतासे खाइए, परन्तु एक एक करके खानेसे जूठे मत कीजिए। छोटूगिरतो आया ही लड़ने झगड़नेके लिए था । उसने स्वामीजीके कथनपर कुछ ध्यान न दिया और एक एक बतासा उठाकर खाता रहा! स्वामीजीने उसे ऐसा करनेसे रोका, परन्तु वह तो कलह उत्पन्न करनेके ये सब बहाने बना रहा था । स्वामीजीको झिड़ककर बोला कि बच्चा हमारी जूठनसे घृणा करते हो ! हम तुम्हारे गुरु हैं । किंचित् ठहर जाओ, आज तुम्हें खण्डनका सारा स्वाद चखा देते हैं !

स्वामीजी उसकी ऐसी गीदड़ भबकियोंसे भयभीत होनेवाले नहीं थे । वे किसीभी अत्याचारीका डर और दबाव नहीं माना करते थे । उन्होंने देखा कि यह गुसाईं सिर चढ़ा जाता है तब उन्होंने उसे डाँटकर कहा, "तुम मुझे डराना चाहते हो ! मैं यदि डरनेवाला होता तो देशान्तरोंमें घूमकर प्रचार कैसे कर सकता ?" उस समय स्वामीजीने सिंह नादसे अपने सेवकको कहा, "बाहरके किवाड़ बंद कर दो । मैं अकेला ही इन सबको सीधा करके छोडूंगा !"

उस समय महाराजका बदन तेजोमय हो गया; उनकी आँखें उद्दीप्त दीपककी भाँति चमकने लगीं । उस दिव्य आकृतिको देखकर छोटूगिरका हृदय काँप उठा । उसकी सारी हेकड़ी टूट गई और वह भलमनसीसे पीछे हटकर बैठ गया ।

जगन्नाथने हाथ जोड़कर स्वामीजीसे विनय की, "हम कैसे जानें कि प्रतिमा-पूजन अच्छा नहीं है ?" स्वामीजीने उत्तर दिया, "मूर्त्ति पूजनके लिए वेदमें कोई आज्ञा नहीं है । और ईश्वर सर्वत्र है, उसे कोई वशमें नहीं कर सकता। तुम मूर्त्तियोंको ईश्वर मानते हो और फिर अपने हाथसे ताला लगा कर उन्हें मन्दिरमें बंद कर देते हो । तुम्हीं सोचो कि इनमें ईश्वरीय शक्ति कहाँ है ? वे न वर दे सकती हैं और न शाप। जड़रूप हैं। यदि कल्याण चाहते हो तो हृदयमें परमात्माका पूजन किया करो ।"

अन्तमें जगन्नाथने नमस्कार करके कहा कि 'हमें लोगोंने बहका रक्खा था कि आप राम, कृष्ण आदिके विरुद्ध बोलते हैं । परन्तु यह तो आज ही ज्ञात हुआ है कि आप केवल मूर्त्तियोंका खण्डन करते हैं ।' तत्पश्चात् वे लोग चले गये ।

छोटूगिरका सारा घमण्ड स्वामीजीके पास तो खण्ड खण्ड हो गया था, परन्तु घरमें जाकर वह फिर स्वामीजीका अनिष्ट चिन्तन करने लगा । एक रात उसने दो बलिष्ठ मनुष्य स्वामीजीको सतानेके लिए भेजे । जब वे स्वामीजी के निवासस्थानपर पहुँचे तो उस समय महाराज पण्डित रामप्रसादजीको कुछ शास्त्रीय रहस्य समझा रहे थे । वह उजड्ड गुण्डे बार बार हँसने और छेड़छाड़ करने लगे । एक दो बार तो महाराजने उन्हें कोमल शब्दोंसे समझाया, परन्तु जब देखा कि ये टलनेहीमें नहीं आते तो स्वामीजीने प्रबल हुङ्कार-गर्जना की । जैसे मिथिलामें श्रीरामके धनुष-टङ्कारसे सारी सभा कम्पित हो गई थी और दिशामूढ़ बन गई थी, उसी प्रकार स्वामीजीके हुङ्कारसे वे दोनों पामर पुरुष काँप उठे और मूर्छा खाकर भूमिपर गिर पड़े! उस समय रामप्रसादजी को भी अपने दोनों कानोंमें उङ्गलियाँ डाल लेनी पड़ीं ।

महाराज और रामप्रसादजीने उन उद्दण्डोंको जलके छींटे देकर सचेत किया । जब वे उठकर बैठे तो पसीना पसीना हो रहे थे और उनका मूत्र-पुरीष भी निकल चुका था ।

स्वामीजीने कहा कि संन्यासी लोग किसीको मारा पीटा नहीं करते, इस लिए डरो नहीं । कपड़े सम्भालकर निर्भयतासे चले जाओ ।

एक दिन, कुछ पण्डितोंने स्वामीजीको एक पत्र लिख भेजा । उस पत्रमें, उन्होंने उसी दिन शास्त्रार्थ करनेकी इच्छा प्रगट की और साथ ही स्वामीजीको धमकी दी कि यदि वादके समय तुमने मूर्ख आदि कोई शब्द कहा तो तुम्हें तत्काल दण्ड दिया जायगा ।

महाराजने उनके पत्रको अशुद्धियोंसे पूर्ण पाया और कहा, कि धर्म्म-चर्चा करनेका तो बालक को भी अधिकार है, परन्तु गोविन्द भागवत-पाठी ऐसे मिथ्याभिमानियोंका तो गर्व तोड़कर, उन्हें मूर्ख सिद्ध करना ही पड़ता है ।

पत्र भेजनेके दो घण्टेके पश्चात् पण्डित लोग स्वामीजीके पास आ गये और शिष्टाचार आदिके अनन्तर गोविन्द भट्टने 'भागवत' विषयमें बातचीत की,

परन्तु उसे थोड़ी ही देरमें चुप हो जाना पड़ा । फिर देरतक प्रतिमा-पूजनपर शास्त्रार्थ होता रहा । स्वामीजीने वेदके प्रमाणोंसे सिद्ध कर दिया कि ईश्वर अवतार धारण नहीं करता और उसकी कोई प्रतिमा नहीं । पण्डित पराभूत होकर शान्तिसे चले गये ।

यहाँ पण्डित गजाधरसे वार्त्तालाप करते समय महाराजने मनुस्मृतिमें आये 'चक्री' शब्दका अर्थ कुलाल किया । इसपर गजाधरने कहा कि इसका अर्थ तेली है और कुल्लूकने भी तेली ही अर्थ किया है । स्वामीजीने हँसकर कहा कि कुल्लूक तो उल्लूक है; उसकी बात जाने दो । आप यह तो सोचो कि तेलीके पास चक्र नहीं होता, वह कोल्हूसे काम करता है । चक्र कुम्हारहीके पास होता है, इसलिए उसीका नाम चक्री है ।

एक मनुष्यने स्वामीजीसे पूछा जीवात्मा परमेश्वर हो जाता है कि नहीं ? महाराजने उसे कहा कि यह अति सूक्ष्म प्रश्न है; तुम्हारी बुद्धि इसे ग्रहण नहीं कर सकती ।

मिर्ज़ापुरमें स्वामीजीके उपदेशोंसे अनेक मनुष्य सुधर गये । निराकार परमात्माका आराधन और चिन्तन करने लग गये । बीसियों मनुष्योंने मूर्त्ति पूजन त्याग दिया । सन्ध्योपासन आदि नित्य कर्म धारण कर लिये ।

चौथा सर्ग

जेठ सम्वत् १९२७ के आरम्भमें स्वामीजी मिर्ज़ापुरसे प्रस्थानकर गङ्गाके किनारे विचरते हुए बनारस जा पहुँचे, और दुर्गा कुण्डके निकट लाला माधोदासके उद्यानमें ठहरे ।

काशीमें जाकर स्वामीजीने "अद्वैत मत खण्डन" नामक एक छोटीसी पुस्तक प्रकाशित कराई । उस पुस्तकने मायावादके माननेवालोंमें बड़ी हलचल उत्पन्न करदी । इस विषयपर भी अनेक भद्र जन स्वामीजीसे शास्त्र-चर्चा करते रहे ।

काशीसे स्वामीजी एक बार मिर्ज़ापुर गये और वहाँ जेठ माससें एक पाठशाला स्थापित करके पुनः काशी लौट आये ।

महाराजा ईश्वरीनारायणसिंहजीने, एक दिन स्वामीजीके पास अपना मनुष्य भेजकर, उनके दर्शनोंकी इच्छा प्रकट की। स्वामीजीने इस विषयपर बाबा जवाहरदाससे सम्मति ली कि महाराजाके पास जाना चाहिए वा नहीं। जवाहरदासजीने कहा कि शास्त्रार्थमें आपके साथ जो अनीति और अनुचित व्यवहार हुआ है, महाराजा अब आपका सम्मान करके, उसका प्रायश्चित करना चाहते हैं। उन्हें पश्चात्ताप भी हुआ है। परन्तु अच्छा तो यही है कि वे आपके स्थानपर आकर क्षमा माँगें।

एक दिन महाराजाके मनुष्य गाड़ी लेकर स्वामीजीको लेने आ गये। स्वामीजी यह सोचकर कि हमारी ओरसे उनके मनमें कोई उद्वेग न बना रहे, गाड़ीमें आरूढ़ हो गये। स्वामीजीके दर्शनोंके लिए कमक्षा देवीका स्थान नियत किया गया था। जब महाराजाने स्वामीजीको आते देखा तो उठ खड़े हुए और आगे जाकर स्वागत किया। स्वामीजीको सम्मानपूर्वक भीतर लाकर एक सुवर्ण-सिंहासनपर बैठाया। उनके गलेमें अपने हाथोंसे एक पुष्पमाला पहराई और सादर नमस्कार करके आप भी, पासके एक रजत-सिंहासनपर बैठ गये।

इसके अनन्तर महाराजाने हाथ जोड़कर स्वामीजीसे विनय की कि हमारे कुलमें मूर्ति-पूजन परम्परासे चला आता है। मैं भी बाल्यकालसे श्रद्धापूर्वक कुल-धर्मका पालन करता हूं। इसलिए चिरकालके धर्मानुरागसे ही शास्त्रार्थमें आपकी अवज्ञा हो गई थी। आप संन्यासी हैं इस लिए क्षमा कर दीजिए। स्वामीजीने गम्भीर भावसे कहा कि हमारे मनमें इन बातोंका लेश मात्र भी संस्कार नहीं है।

अन्य भी अनेक बातें होती रहीं और अन्तमें जब स्वामीजी चलने लगे तो महाराजाने बहुतसी रजत-मुद्रायें और कुछ मुरब्बे आदि भोज्य पदार्थ स्वामीजीकी भेंट किये और बड़े आदरसे गाड़ीमें बैठाकर उनको विदा किया। इस बार स्वामीजी कोई ढाई मास काशीमें ठहरे।

काशीसे चलकर श्रीमहाराज पर्यटन करते हुए कासगंजमें जा सुशोभित हुए। वहाँ महाराजने अपनी सबसे पहली स्थापित की हुई वैदिक पाठशालाका

निरीक्षण किया । स्वामीजीकी पाठशालाओंमें निम्नलिखित नियमोंका पालन कराया जाता था ।

१. विद्यार्थियोंको सन्ध्या सिखाकर पाठशालामें प्रविष्ट किया जाय और इसीसे उसकी बुद्धिकी भी परीक्षा कर ली जाय ।

२. अष्टाध्यायी, महाभाष्य, मनुस्मृति और वेद पढ़ाये जायँ ।

३. यदि विद्यार्थी सूर्योदयसे पहले उठकर सन्ध्या न कर ले तो उसे उस दिन सायंकालको सन्ध्या कर लेनेके पूर्व भोजन न दिया जाय और उसकी देखरेख भी की जाय कि वह कहीं पासकी बस्तीमें जाकर भोजन न खा आवे ।

४. विद्यार्थियोंको नगरमें जानेकी आज्ञा नहीं; परन्तु न्योतेमें जा सकते हैं ।

५. इस पाठशालाके द्रव्यसे, बाहरहीसे आये हुए विद्यार्थियोंको भोजन मिले ।

६. अध्ययनमें परिश्रम करनेवाले विद्यार्थीके भोजनका विशेष प्रबन्ध कर दिया जाय ।

स्वामीजी महाराज अपने विद्यार्थियों तथा साथ रहनेवाले पण्डितों और सेवकोंको भी छोटे २ पापोंसे बचनेके लिए शिक्षा दिया करते थे । उन दिनों पण्डित रामप्रसाद स्वामीजीके साथही रहा करता था । कासगंजमें एक दिन स्वामीजी स्नानके लिए एक समीपके उद्यानमें जा रहे थे । उस समय रामप्रसाद स्नानके उपकरण उठाए महाराजके पीछे २ चला आता था । एक पका हुआ आम पेड़से गिरकर मार्गमें पड़ा था । महाराज तो उसे लाँघ गए, परन्तु पीछे आते रामप्रसादका मुख लालायित हो गया । उसने झुककर वह फल उठा लिया । स्वामीजीने उसकी इस क्रियाको देखकर उसे कहा, "रामप्रसाद ! यह उद्यान तुम्हारा घरका नहीं है । इसलिए पराया फल उठाकर तुमने एक प्रकारकी चोरी की है ।" अपने स्थानपर आकर स्वामीजीने उसपर एक रुपया दण्ड भी लगा दिया ।

एक दिन स्वामीजी बाज़ारमें चले जा रहे थे । उस समय सामनेसे एक बलिष्ठ साँड आ निकला । वह साँड मारा करता था और मनुष्योंके पीछे भी दौड़ता था । सब लोग मारे डरके चबूतरोंपर चढ़ गए और स्वामीजीको भी ऐसा ही करनेके लिए पुकार-पुकारकर कहने लगे । परन्तु स्वामीजी एक पांव

भी इधर उधर न हुए। सीधे साँडकी ओर चलते गए। जब उसके बहुत निकट पहुँच गए तो साँड आप ही मार्ग छोड़कर एक ओरसे निकल गया। स्वामीजीके इस धैर्य और निर्भयतापर सारा बाज़ार आश्चर्य-चकित होगया। चैनसुखने कहा, "स्वामीजी! यदि साँड सींग चलाता तो आप क्या करते?"

महाराजने हँसकर कहा "और क्या करते? सींग पकड़कर उसे परे धकेल देते।"

स्वामीजी महाराजने यहाँ चिरकाल तक निवास किया। उनके सत्संगसे अनेक सज्जनोंने लाभ उठाया। परन्तु चैनसुखजीने श्री-सेवा और सत्संगका सबसे अधिक लाहा लूटा। वह ऐसा निहाल हुआ कि स्वामीजीकी संगतिके प्रभावसे संस्कृत भाषामें बातचीत तक करनेके योग्य हो गया।

कासगंज पाठशालाका जब पूरा प्रबन्ध हो गया तो एक दिन स्वामीजी चुपचाप वहाँसे प्रस्थान कर गए और ग्रामानुग्राम विचरते हुए रामघाटमें आ विराजे।

छलेसरमें सबसे बड़े भूमिहार ठाकुर मुकुन्दसिंहजी थे। वे बड़े विचारवान् सज्जन थे। छलेसरके इधर उधर चौहान राजपूतोंके कोई साठके लगभग गाँव हैं। उन सबमें मुकुन्दसिंहजी सम्मानित नेता थे। छोटे बड़े सभी उनकी बात मानते थे। नाती गोती सभी अपने झगड़े रगड़े उनसे निपटाते थे। उनके पास राजपूतोंकी सदा भीड़ लगी रहती थी।

ठाकुर मुकुन्दसिंहजीने सम्वत् १९२५ में कर्णवासमें श्री-स्वामीजीके दर्शन किए थे। यद्यपि, उस समय उन्हें दो घण्टे ही श्री-सेवामें बैठनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था और वे बहुत थोड़ा उपदेश सुन सके थे, परन्तु उतनेहीसे उनके विवेक नेत्र खुल गए थे; उन्हें सत्यका प्रकाश प्राप्त हो गया था।

मुकुन्दसिंहजीके हृदयमें स्वामीजीके लिए अगाध अनुराग और गाढ भक्ति उत्पन्न हो गई थी। उन्होंने छलेसरमें जाकर अपनी भूमिहारीके कोई बीस स्थानोंसे मूर्तियाँ उठवाकर पास बहती कालिन्दी नदीके तलालीन कर दी थीं। वे अपने विचारोंका प्रचार भी करने लग गये थे। उनके भाई मुन्ना सिंहजी भी स्वामीजीके अनुरागी हो गए थे। उनकी प्रबल कामना थी कि स्वामीजीको छलेसरमें लाकर उनकी सेवा करें। उन्होंने जब सुना कि श्रीगुरु

देव रामघाटमें विराजमान हैं तो उन्हें अतीव प्रसन्नता प्राप्त हुई। ठाकुर मुकुन्द सिंहजीने कार्तिक शुक्ला चतुर्दशी सम्वत् १९२७ को रामघाटमें जाकर स्वामीजीसे छलेसर पधारनेके लिये, बड़े भक्तिभावसे प्रार्थना की। भगवान्ने अपने अनन्य भक्तकी विनती स्वीकार कर ली और मार्गशीर्ष मासमें वहाँ पहुँचनेका वचन दे दिया। ठाकुर मुकुन्दसिंहजीने छलेसर लौटकर जब स्वामीजीके शुभागमनका सु-समाचार अपने भाई और इष्ट-मित्रोंको सुनाया तो सभीके मन आनन्दमें हिलोड़े लेने लगे।

चार मार्गशीर्षको स्वामीजीको छलेसर पधारना था। उस दिन सवेरेहीसे सारे नगरमें प्रसन्नताका सागर उमड़ आया था। सभी गाँव-वासियोंके मुख-कमल एक पवित्र प्रमोदसे प्रफुल्लित हो रहे थे। ऐसा प्रतीत होता था कि आज इस गाँवमें कोई पवित्रता और धर्म्मका अवतार आ रहा है।

स्वामीजीके स्वागतके लिए कोई ढाई सौ मनुष्य नंगे पाँव डेढ़ कोसतक आगे गये और कालिन्दी-तीरपर महाराजके दर्शन करके सबने चरण छूकर नम्रीभूत नमस्कार किया। ठाकुर मुकुन्दसिंहजीने महाराजके गलेमें पुष्पोंकी माला पहराई और अपने दाहिने हाथसे सिरपर छत्र करके पालकीमें बैठनेकी विनती की। स्वामीजी सब भक्तोंके मुख-मण्डलको अपने मधुर वचनामृतसे सींचते हुए बोले कि आप सबके साथ हम भी पैदल ही चलेंगे।

उस दिन सारे गाँवमें एक महोत्सव मनाया जा रहा था। बूढ़े बच्चे, और युवा, सभी नर-नारी अपने घरोंके आगे खड़े होकर, छतोंपर चढ़कर महाराजके शुभागमनकी बाट जोह रहे थे। जब महाराज गाँवमें पधारे तो जैसे चाँदको देखकर चकोर प्रसन्न होता है, ऐसेही सबके चित्त प्रसन्नताके पूरसे भरपूर हो गये। स्वामीजीकी स्वागत-यात्रा, छलेसर वासियोंको कृतार्थ करती हुई गाँवमेंसे घूमकर, बाहर पश्चिमकी ओर एक उद्यानमें जाकर ठहर गई। उसी उद्यानमें स्वामीजीका निवास नियत किया गया था। पहला मकान साधारणसा था। इस लिए मुकुन्दसिंहजीने थोड़े ही दिनोंमें स्वामीजीके लिए एक नया सुन्दर निवास-स्थान बनवा दिया। उसके आगे अनुमानसे बीस गज लम्बा और बीस गज चौड़ा चबूतरा निर्माण हुआ। उस चबूतरेपर प्रति-चौथे पहर एक सुन्दर और स्वच्छ जाजम बिछ जाती। फिर एक उत्तम

चौकी लगाकर उसपर कालीन डाली जाती और उसपर बैठकर महाराज लोगोंको उपदेश देते थे।

ठाकुर श्री मुकुन्दसिंहजी तथा श्री मुन्नसिंहजीने यद्यपि पहले यज्ञोपवीत लिया हुआ था परन्तु स्वामीजीकी अतुल भक्तिके कारण, अपनी बिरादरीके अनेक राजपूतों सहित, उन्होंने स्वामीजीके हाथसे दुबारा जनेऊ धारण किया और उन्हें विधिपूर्वक गुरु बनाया। बहुत लोगोंने उस समय कण्ठियाँ उतार दीं, जिससे विरोधियोंने यह समाचार फैलाना आरम्भ कर दिया कि स्वामीजी जनेऊ उतरवाते हैं। परन्तु थोड़े ही दिनोंमें लोगोंको सचाईका ज्ञान हो गया।

सैकड़ों राजपूत नित्य दूर दूरसे स्वामीजीका उपदेश सुनने आते और मुकुन्दसिंहजी उन समागत भाइयोंका बड़े भावसे आतिथ्य किया करते थे। वहाँ स्वामीजीके साथ धर्म्म-चर्चा करनेके लिए कई मौलवी और काज़ी भी आते थे। महाराज संस्कृतहीमें उत्तर देते थे। परन्तु पण्डित लोग अनुवाद करके उन्हें समझा देते थे, जिससे उन्हें पूरा सन्तोष हो जाता था।

स्वामीजीके पधारनेके कुछ दिन पश्चात्, वहाँ भी वैदिक पाठशाला स्थापित हो गई। उस पाठशालामें बीस विद्यार्थी प्रविष्ट हुए। ब्राह्मण बालक तो भोजन भी वहाँसे पाते थे, परन्तु क्षत्रियोंके पुत्रोंका अपना प्रबंध था।

ठाकुर मुकुन्दसिंहजी तथा मुन्नसिंहजी, जबतक, सवेरे स्वामीजीका शुभ-दर्शन न पा लेते तबतक जलपान भी न करते थे। जब ये स्वामीजीके पास जाते तो बड़ी दूर जूता उतारकर आगे आते और स्वामीजीके चरणोंको छूकर नमस्कार किया करते। वहाँसे, लौटते समय भी विधिपूर्वक नमस्कार करके लौटते और महाराजकी ओर पीठ नहीं करते थे।

श्री भगवान् अपने भक्तोंके घरोंके सुधारका भी यत्न किया करते थे। उनके प्रेमी मुकुन्दसिंहजी अपने पुत्र चंदनसिंहसे कुछ रुष्ट रहते थे। जब श्री स्वामीजीको इस बातका पता लगा तो उन्होंने मुकुन्दसिंहजीको कहा, "पिताको विशेष कोमल होना चाहिए। छोटे यदि छोटापन करें तो बड़ोंको भी अपना बड़प्पन त्याग देना उचित नहीं। सन्तानके साथ वैमनस्य रखना सांसारिक सुखको किरकिरा कर देना है—फीका बना देना है। परस्परके

ऐंचातानीसे अन्तमें स्नेह-सूत्र छीज जाया करता है। आपको उचित है कि अपने पुत्रके लिए वात्सल्य-भाव प्रकाशित करें।"

इस प्रकार उपदेश देकर महाराजने चंदनसिंहको मुकुन्दसिंहजीकी गोदमें बैठा दिया और पिता-पुत्रका मनमुटाव मिटाकर मेल करा दिया।

स्वामीजी महाराजके लिए उत्तम भोज्य पदार्थोंका थाल, प्रतिदिन नियत समयपर, ठाकुरोंके यहाँसे आ जाया करता था। एक दिन स्वामीजी चबूतरे-पर बैठे थे और उनके भोजनके आनेमें कुछ देर थी। उस समय एक कृषक मक्काकी मोटी मोटी रोटियाँ लिए अपने खेतको जा रहा था। मार्गमें मुनि-राजको बैठे देख उसके हृदयमें भक्तिभाव उमड़ आया। उसने आकर महा-राजको नमस्कार किया और विनती की कि भगवन्! आज मेरा अन्न ग्रहण करके इस तुच्छ किसानको भवसागरसे पार उतारिये। स्वामीजीने अति प्रसन्नतासे, वहीं बैठे अपने हाथोंपर उससे मक्काकी एक मोटी रोटी ले ली, और वे,अतीव रुचिसे उसका भोग लगाकर तृप्त हो गये।

महाराजके इस अनुग्रहसे उस कृषकका हृदय गद्गद हो गया, तनपर रोमांच हो आया, उसकी आँखें अनुराग-रसके पानी-पूरसे परिपूर्ण हो गईं।

छलेसरमें धर्म्म-प्रचार करते हुए महाराजने वहाँकी चौहान बिरादरी को पूर्ण प्रभावित कर दिया। सैकड़ों राजपूतोंने उनसे गायत्री गुरु मंत्र ग्रहण किया और सहस्रों मनुष्य आपके अनुयायी हो गये। महाराज यहाँ एक माससे अधिक ठहरे। जिस दिन महाराजने प्रस्थान करना था, दैवयोगसे उस दिन आकाशमें बादल घिरे हुए थे और कुछ बूँदाबान्दी भी हो रही थी। ठाकुरोंने अनुरागवश बहुत ही विनय की कि भगवन्! आजका दिन और ठहर जाइए। परन्तु स्वामीजी दृढ़-संकल्प थे। "जिस दयानन्दने अपने बन्धु-ओंकी मोह-ममताकी सुदृढ़ शृंखलाको तोड़कर खण्ड खण्ड कर दिया है आज वह तुम्हारे स्नेहके तारसे कैसे बँध सकता है?" यह कहते हुए वे वहाँसे चल पड़े। भक्त लोग महाराजको बहुत दूरतक पहुँचाने गए। पीछे लौटते समय ठाकुर मुकुन्दसिंहजी और मुन्नासिंहजीने महाराजके चरणोंकी रज अपने भालपर रमाई। वे नेत्रोंसे, अविरल अश्रुधारा मोचन करने लगे। उनका कण्ठ रुक गया और वे भगवान्‌की विरहवेदनासे व्यथित दिखाई देने लगे।

महाराज अपने प्रेमियोंको व्याकुल देखकर स्नेह-रससे सने हुए शब्दोंमें सम्बोधन करके बोले, "इतने अधीर क्यों होते हो? अभी तो कई बार छलेसरमें आना होगा। संन्यासी पवनकी भाँति अप्रतिबंध-विहारी होते हैं। उनसे इतनी ममता बाँधना दुःख ही उठाना है। जब तुम मेरे कथनोंपर चलोगे, अपने चरित्रको उच्च बनाओगे और परोपकार कार्यमें रत रहोगे तो मैं आपसे दूर नहीं हूं। आपके समीप ही हूं।"

इस प्रकार भक्तजनोंको ढाढस बँधाकर महाराज आगे चल पड़े और विचरते हुए सोरों जा पहुँचे। वहाँ चार मास निवास करनेके अनन्तर भ्रमण करते हुए फरुखाबादमें आ विराजमान हुए।

फरुखाबादमें स्वामीजीने पाठशालाका निरीक्षण किया। पाठशालाका एक कर्मचारी विद्यार्थियोंको मारा पीटा करता था; वह पक्षपाती भी था। महाराज उसे निकाल देना चाहते थे, परन्तु प्रबन्धकर्त्ता सेठ पन्नालालजी ऐसा करनेके लिए उनके साथ सहमत न थे। स्वामीजीको अन्तमें पाठशालाका प्रबन्ध-परिवर्तन करना पड़ा। उन्होंने मिर्ज़ापुरसे पण्डित युगलकिशोरजीको बुलाकर मुख्याध्यापक बनाया और प्रबन्धका कार्य्य श्री निर्भयरामजीको सौंप दिया।

फरुखाबादकी पाठशालाके प्रबन्धसे निश्चिन्त होकर स्वामीजी कर्णवास आदि स्थानोंमें पर्यटन करते हुए भाद्रपद सुदी चौदस सम्वत् १९२८ को अनूपशहरमें पधारे। जब लाला बाबूकी कोठीमें उतरने लगे तो महाराजने उस स्थानके नौकरको कहा कि यहाँ गोरा लोग आदि सभी आकर ठहरते हैं इस लिए इसको भीतरसे धो डालो। उसने जब भीतरके सारे भाग [illegible] बराण्डेसहित धो डाला तब महाराजने भीतर आसन लगाया।

एक दिन कुछ लोग सूर्यको अर्घ दे रहे थे। स्वामीजीने उनसे कहा "अरे भोले भाइयो! जलमें जल क्यों देते हो? यदि किसी पेड़को पानी दो तो कुछ लाभ भी हो सकता है।"

इस बार स्वामीजीने यहाँ अवतारवादका बलपूर्वक खण्डन किया। अनूपशहरसे चलकर स्वामीजी कार्तिक मास सम्वत् १९२८ को कर्णवासमें सुशोभित हुए। यहाँ ठाकुरोंके कई लड़के यज्ञोपवीत लेनेको समुद्यत थे। इसलिए स्वामीजीकी आज्ञासे कोई बारह पण्डित जप करनेपर बैठाए गए। सात

दिनतक बृहद् हवन होता रहा। फिर महाराजने पन्द्रह मनुष्योंको जनेऊ धारण कराया। उस समय स्वामीजीने कुमारोंको ब्रह्मचर्य अवस्थातक विवाह न करनेका उपदेश दिया; और जो विवाहित थे उनको आदेश किया कि कि नियमसे गृहस्थ-धर्म्मका पालन करना। अपनी पत्नीके बिना दूसरी स्त्रीको स्वप्नमें भी ध्यानमें न लाना।

ठाकुर कैथलसिंह, रातको भी स्वामीजीकी सेवामें उन्हींके स्थानमें रहते थे। उन्हीं दिनोंमें बरौलीके राव कर्णसिंह शरत्पूर्णिमाका स्नान करनेके लिए, बहुत दिन पहले ही वहाँ आ गये थे। इस बार उनके साथ नाचरङ्गकी सामग्री लिये वेश्यायें भी थीं! राव महाशयका उतारा स्वामीजीके आसनसे कोई डेढ़ सौ पगके अन्तरपर एक बारहदरीमें था। वे स्वामीजीसे पहले ही चिढ़े हुए थे। इस बार भी महाराजको सतानेके उपाय सोचनेसे परामुख न थे। वे वैरागियोंको स्वामीजीपर आक्रमण करनेके लिए उत्तेजित करते रहते थे।

कर्णवासमें मौजबाबा नामक एक अत्युत्तम महात्मा रहते थे। किसी कारण-से उनके दोनों नेत्रोंकी ज्योति जाती रही थी। वे बड़े मस्त सन्त थे। शिशुवत् दिगम्बर विचरते। जब गङ्गा स्नान करने लगते तो स्त्रियाँ भी उन्हें मल-मलकर नहलाने लग जातीं और वे 'छोड़ो माँ' कहते हुए भूमिपर गिर जाते। उनकी वासनायें शान्त थीं। भेद-भावना उनमें नहीं थी। वे प्रायःमौन रहते और पक्के घाटपर निवास करते थे। सभी लोग मौजबाबाको योगी मानते थे। स्वामीजी महाराज और मौजबाबा, दोनों गङ्गाके पावन पुलिन-पर बैठे घण्टों वार्त्तालाप करते रहते। उस समय वे किसी भी दूसरे मनुष्यको अपने पास नहीं आने देते थे।

एक दिन मौजबाबाको पता लगा कि राव कर्णसिंहके भड़कानेसे कुछ वैरागी रात्रि-समय, स्वामीजीपर अत्याचार करना चाहते हैं। वे तत्काल वैरागियोंके डेरेपर जा पहुँचे। वैरागी उनके भक्त थे। इस लिए, जिस समय बाबाजीने उन्हें समझाया तो वे सर्वथा शान्त हो गये और फिर कभी राव महाशयके उकसानेमें नहीं आये।

जब राव महाशयको वैरागियोंपर उत्तेजनाकी चाल चलनेसे भी सफलता न हुई तो वे विवेक-विचारसे इतने शून्य हो गये कि एक रात उन्होंने अपने

तीन नौकरोंको लपलपाती तलवारें देकर स्वामीजीके बधके लिए भेज दिया! कोई, आधी रातका समय होगा । सर्वत्र सन्नाटा छा रहा था। केवल गङ्गाकी सायें सायें ध्वनि ही सुनाई देती थी । यदि पवनका कोई झोंका आता तो पेड़ोंके पत्र भी मर्मर शब्द करने लगते थे। स्वामीजी, उस समय तूर्यावस्था में ध्यानारूढ़ थे । थोड़ी दूरीपर कैथलसिंह गाढ़ी निद्रामें पड़ा खर्राटे ले रहा था । ऐसे समयमें, कर्णसिंहके तीन बलिष्ठ नौकर, हाथमें नङ्गी तलवारें लिये चुपचाप चले आते थे । हाथीके कितनेही लम्बे दाँत हों, भालूके कितनेही तीक्ष्ण नख हों, परन्तु केसरीकी कन्दराके निकट जानेके लिए तो परम साहसही होना चाहिए ।

कर्णसिंहके नौकरोंके पास खड्ग तो तीक्ष्ण थे, परन्तु एक परोपकारी वीतरागको मारनेका साहस न था । उनका तन थरथर काँपता था, पाँव धूजते थे और हृदयकी धड़कन बढ़ती जाती थी। उनकी आँखोंके सामने अन्धेरा छा रहा था। यह स्थान गङ्गाके कूलपर होनेके कारण कुछ ऊँचा नीचा अवश्य था और वहाँ छोटी छोटी झाड़ियाँ भी थीं। परन्तु उन लोगोंको तो मारे भयके, वह स्थान सीधी खड़ी घाटियाँ और सघन वन प्रतीत होने लगा । वे देरतक उस स्थानमें उलझे रहे। अन्तमें उनके पाँव फूलने लगे। उनसे आगे न बढ़ा गया। इस लिए-लौटकर राव महाशयके पासही जा पहुँचे । राव महाशयने उन्हें धमकाकर फिर भेजा। उस समय स्वामीजी भी समाधिसे उतर आये थे और जो डाँटडपट कर्णसिंहने अपने नौकरों को की थी वह उन्होंने भी सुन ली थी। दूसरी बार भी वे नौकर लौट गये और राव महाशयको अपनी अशक्ति बताने लगे। पर राव कब मानते थे! उन्होंने नौकरोंको बहुत ही झिड़कियाँ और गालियाँ देकर तीसरी बार फिर, स्वामीजीपर आक्रमण करनेके लिए भेजा। वे भी ज्यों त्यों करके गिरते पड़ते स्वामीजीकी कुटीके पास आ पहुँचे। आततायियोंको अति समीप आते देख महाराजने उठकर बलपूर्वक 'हुंकार' किया, और भूमिपर एक लात भी मारी । स्वामीजीका 'हुंकार' उनके लिए सिंह-नादके समान हो गया । वे मारे डरके मूर्छित होकर गिर पड़े, उनके हाथोंसे तलवारें गिर पड़ीं! बड़ी देरके पश्चात् वे सम्भलकर वहाँसे भाग गये ।

महाराजकी गम्भीर गर्जनासे कैथलसिंहकी भी आँख खुल गई। वह काँपता हुआ स्वामीजीसे बोला, "वे दुष्टजन कहीं फिर न आ जायँ, इस लिए चलिये किसी ऊँचे नीचे स्थानमें छिपकर रात बिता लें।"

स्वामीजीने "नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।" यह श्लोक पढ़कर उसे कहा, "कैथलसिंह! संन्यासिजन अपनी रक्षानिमित्त गढ़ और गुहाका आश्रय नहीं ढूंढा करते; हमारा रक्षक तो केवल एक भक्त-वत्सल भगवान् ही है। तुम्हें घबराना नहीं चाहिए। हम चाहें तो उनके ही शस्त्रोंको छीनकर उन्हें सीधा कर सकते हैं।"

कैथलसिंह उसी समय दौड़ा हुआ नगरमें गया। उसने ठाकुर कृष्णसिंह आदिको जगाकर इस घटनाका समाचार कह सुनाया। स्वामीजीके प्रेमी ठाकुर लोग राव कर्णसिंहके अत्याचारसे अति कुपित हुए और उसके उतारेके आगे आकर उसे डाँटने लगे। कृष्णसिंहजीने कर्णसिंहको ललकार कर कहा कि यदि तुझमें कुछ भी क्षत्रियत्व है तो एक बार हमारे सामने बाहर आ। परन्तु राव महाशय इतने भयभीत हुए कि उन्होंने अपने मकानके द्वार बंद कर लिए!

उन दिनों राजघाटपर पंजाबी सेनाकी एक मण्डली रहती थी। अगले दिन किसी प्रकार उन लोगोंको भी रावमहाशयके अत्याचारका समाचार मिल गया। निराकार ईश्वरको माननेवाले सन्तपर आक्रमण हुआ है, इस समाचारने उन वीरोंकी नाड़ियोंमें रक्तके वेगको बहुत बढ़ा दिया। पचीस पंजाबी वीर शस्त्र बाँधे स्वामीजीके पास आ गए और हाथ जोड़कर कहने लगे कि सन्तजी महाराज! आप हमें एक बार आज्ञा दीजिए और फिर देखिए कि हम उन साधुसन्तोंके द्वेषियोंको कैसा स्वाद चखाते हैं! इस कार्यमें चाहे हमारी नौकरी भी चली जाय, परन्तु उनको तो भगाकर ही लौटेंगे।

श्रीस्वामीजीने अति प्रेम-भरे शब्दोंसे उन वीर सैनिकोंको शान्त किया और सत्संगमें बैठकर एक अत्युत्तम धर्मोपदेश सुनाया।

राव महाशयको उनके सम्बन्धियोंने समझाया कि यहाँके ठाकुर अब आपके विरोधी हो गए हैं, इसलिए अब आपका यहाँसे चले जाना ही अच्छा है। वे भयभीत तो पहले ही थे, वहाँसे तुरन्त भाग गए। कहते हैं कि घर

जाकर वे रुग्ण होगए और उनकी दशा उन्मत्तकीसी होगई ! उनका पचास सहस्रका एक मुकद्दमा प्रयागमें चल रहा था, उसमें भी उनकी हार हो गई ।

महाराजके श्रीउपदेशोंसे अनेक पतितोंका परित्राण हुआ; अबोध जनोंको विवेकके नेत्र प्राप्त हुए। लोगोंने दूर दूरसे आकर उनसे गुरुमन्त्र ग्रहण किया।

स्वामीजीका स्वभाव अति शान्त था। वह कुपित कभी नहीं होते थे। दुर्वचन अथवा अपशब्द तो उनके मुखसे निकलता ही न था। उनकी मधु-वर्षिणी वाणीमें अश्लीलताका लेश भी नहीं होता था। उनपर लोगोंने क्या रातको और क्या दिनको अनेक बार हाथ चलाए, परन्तु उन्होंने कभी किसी-को ताड़ना नहीं की। समर्थ होते भी अत्याचार सहन करते रहे। महाराज खाँसने, खखारने और हुङ्कार आदिसे जो कभी अधम जनोंको कम्पित कर दिया करते थे वह केवल विभीषिका ही दिखाते थे। उनके चित्तमें किसीको सतानेका भाव किंचित् भी नहीं होता था।

लोग लट्ठसे, तलवारसे, ईंट-पत्थर और विष तकसे उनके प्राण लेनेके लिए तुले रहते। चालीस चालीस और पचास पचास मनुष्य मिलकर उनको मारने आते। स्थान-स्थानपर उनके विरोधी विद्यमान थे। उनका चिन्ह-चक्र तक मिटा देनेके लिए अनेक स्थानोंमें षड्यन्त्र रचे जाते थे। परन्तु दयानन्द थे कि विरोधसे व्याप्त वायुमण्डलमें अकेले, कौपीनमात्रधारी गंगाके किनारे गांव गाँवमें चक्कर लगाकर प्रचार करते थे। बस्तीसे बाहर वनोंमें रहते थे, निर्जन स्थानोंमें रातें काटते थे और बालूपर ही सो रहते थे।

उनमें आश्चर्यजनक साहस, असीम उत्साह, परम निर्भयता और अलौकिक धैर्य्य था।

पाँचवाँ सर्ग ।

कर्णवाससे प्रस्थान करके स्वामीजी भ्रमण करते हुए मार्गशीर्ष सम्वत् १९२८ को फर्रुखाबाद पहुँचे। यहाँ महाराजने तीन मास निवास किया। फाल्गुन बदी सम्वत् १९२८ को स्वामीजी फर्रुखाबादसे प्रस्थान कर

प्रयाग मिर्ज़ापुर आदि स्थानोंमें विचरते हुए बनारसमें पधारे और लाला माधोदासजीके उद्यानमें ठहरे। प्रतिदिन धर्म्म-प्रचार होता रहा। फिर चैत्र सुदी रामनवमी सम्वत् १९२९ को महाराजने पूर्वकी यात्रा आरम्भ की।

महाराज भ्रमण करते हुए डुमराऊँ पधारे और नागजी उदासीके स्थानमें ठहरे। नागजी अतीव सज्जन और स्वामीजीके अनुयायी थे। उन्होंने अति भक्ति-भावसे स्वामीजीका अतिथ्य किया। १९ एप्रिलतक यहाँ ठहरकर स्वामीजी २० एप्रिलको नागजीके साथ आरामें आये! उस समय उनके साथ एक ब्रह्मचारी भी था। स्वामीजीने आरामें हरवंश राय नामक एक भद्र व्यक्तिके यहाँ आसन किया। हरवंशरायजीने बड़ी श्रद्धासे स्वामीजीकी सेवा-शुश्रूषा की और प्रस्थानके समय, कलकत्ता आदिके व्ययके लिए, अत्याग्रहसे एक सौ रुपया भेंट किया! महाराजने वह रुपया अपने ब्रह्मचारीको रखनेके लिए दे दिया।

आश्विन १९२९ में महाराज पटनेमें आये और डिपटी सावनमल आदि सज्जनोंने उनका स्वागत करके महाराजा भूपसिंहके ऐश बागमें डेरा कराया।

उन दिनों पटनेमें पण्डित रामजीवन भट्ट प्रसिद्ध थे। वे पचास साठ मनुष्य साथ लेकर स्वामीजीसे शास्त्रार्थ करने आये; परन्तु दो एक बातोंमेंही निरुत्तर होकर चले गये।

एक छोटेलाल नामक व्यक्तिने स्वामीजीके पास आकर पूछा, "जीव मर-कर कहाँ जाता है?" स्वामीजीने यजुर्वेदके अनुसार उत्तर दिया, जीव देह छोड़नेके अनन्तर वायुरूप होकर आकाशमें रहता है। फिर जलमें जाता है। उसके पश्चात् क्रमशः ओषधियोंमें, अन्नमें और पुरुषमें होकर गर्भमें स्थान करता है और फिर समयपर जन्मता है।" उस समय स्वामीजीने स्वर्ग-नरकके मिथ्या विश्वासका खूब खण्डन किया।

गुरुप्रसाद नामके एक सम्भ्रान्त व्यक्ति पटनामें निवास करते थे। वे अनेक सज्जनोंसहित स्वामीजीके दर्शनार्थ गये और नमस्कार करके पूछने लगे, "भगवन्! संसाराश्रम त्यागना उचित है अथवा नहीं?" स्वामीजीके पूछ-नेपर गुरुप्रसादजीने कहा, "संसाराश्रमसे मेरा आशय पुत्र, स्त्री, परिवार, गृह इत्यादिसे है।" स्वामीजीने उत्तरमें वर्णन किया, "संसारमें तो खाना-

पीना, सोना, जागना, श्वास-प्रश्वास लेना और विद्याभ्यास करना आदि सभी कर्म आ जाते हैं और इसका त्याग करना असम्भव है।"

गुरुप्रसादजीको स्वामीजीके उत्तरसे पूर्ण सन्तोष हो गया।

स्वामीजीने विज्ञापनों द्वारा नगरमें घोषणा कादी कि मूर्त्ति-पूजन और अवतार-वाद आदि विषयोंपर चाहे जो आकर शास्त्रार्थ कर ले। हम उसके भ्रम-निवारणार्थ सर्वश सर्वथा समुद्यत हैं। परन्तु किसी भी पण्डितको उनके सामने आनेका साहस न हुआ।

एक दिन एक मैथिल पण्डित स्वामीजीके पास आया और बड़ी देरतक संस्कृतमें बातचीत करता रहा। प्रसंगवश स्वामीजीने भागवतका खण्डन आरम्भ कर दिया। इसपर उस पण्डितने कहा कि स्वामीजी! आप कुछ भी कहें, परन्तु भागवतके अठारह सहस्र श्लोक हैं, ऐसे और श्लोक रचनेकी सामर्थ्य आजतक किसी भी दूसरे विद्वानमें तो नहीं हुई।

महाराजने हंसकर कहा कि जैसे कल्पित कथाके अठारह सहस्र श्लोक भागवतमें हैं वैसेही कल्पित श्लोक हम अड़तीस सहस्र रच सकते हैं। नमूनेकी रीतिसे जूते और खड़ाओंके प्रश्नोत्तरही पहले लिखिए। स्वामीजीने अभी उसे दस श्लोकही लिखाए थे कि वह उन श्लोकोंके वचन-माधुर्यपर और पद-विन्यासके लालित्यपर ऐसा लट्टू हुआ कि उसने महाराजके चरण पकड़ लिए! वह ब्राह्मण स्वामीजीकी रचनाशक्तिकी भूरि-भूरि प्रशंसा करता हुआ वहाँसे चला गया।

महाराजके निकटवासी भक्त इस बातका विश्वास करते थे कि स्वामीजी चाहें तो उनके मनोरथों और उनके सङ्कल्पोंको जान सकते हैं। एक दिन, वहाँ स्वामीजीके रसोइएका चाचा आया और रसोइएको कहने लगा कि स्वामीजीके भोजन कर चुकनेपर ही तुम भोजन पाते होगे। इस प्रकार तो रसोई जूठी हो जाती है। इसलिए, तुम लकीर निकाल लिया करो और उस लकीरसे बाहर ही उन्हें भोजन दिया करो।

स्वामीजी महाराज उस समय स्नान करने गये हुए थे। जब स्नान करके आये तो चौकेके बाहर ही बैठ गये और कहने लगे कि हमें भोजन यहीं दे दो। रसोईएने विनयकी कि भगवन्! आगे तो आप चौकेमें बैठकर

भोजन पाया करते थे । आज क्या कारण है कि आप चौकेसे बाहर बैठ गये हैं? स्वामीजीने कहा कि तुम्हें और तुम्हारे चचाको तो बिरादरीसे बाहर निकाले जानेका भय है, मैं कहीं भी भोजन पा लूँ, मुझे किसीका डर नहीं । उस रसोइएको बड़ा आश्चर्य हुआ कि महाराजने मेरे मनकी बातको कैसे जान लिया !

राजनाथ तिवाड़ी नामक एक युवक पटनेके नार्मल स्कूलमें पढ़ता था । वे मुजफ्फरपुर जिलेके अन्तर्गत जोरानपुर ग्रामका रहनेवाला था । लोगोंसे स्वामीजीके वैदिक ज्ञानकी प्रशंसा सुनकर उसके मनमें भी वेदाध्ययनका विचार उत्पन्न हो आया । उसने एक दिन श्रीचरणोंमें आकर निवेदन किया कि यह सेवक रसोई आदि बनाकर आपकी सेवा करता हुआ आपसे विद्या-ग्रहण करना चाहता है । स्वामीजीका पहला पाचक भोज्य वस्तुयें चुरा लिया करता था । इसलिए स्वामीजीने उसे निकालकर राजनाथकी आग्रहपूर्ण प्रार्थना पर उसे रख लिया ।

अगले दिन भोजनादिके अनन्तर, राजनाथने नार्मल स्कूलसे अपना नाम कटा लिया; पर डिपटी सोहनलालजीके पास बैठे बैठे उसे रात हो गई । सोहनलालजीके मकानसे स्वामीजीके उतारेका स्थान कोई दो कोसकी दूरीपर था । वे नित्य नियमसे स्वामीजीके लिए दूध भेजा करते थे । उस दिन उन्होंने राजनाथहीको दूध लेते जानेके लिए कहा । उस समय अंधकार छा गया था । कुछ वर्षा हो जानेके कारण कीचड़ भी हो रहा था । स्वामीजीके स्थान पर जानेसे राजनाथ कतराने लगा । सोहनलालजीने कहा कि तू अभी इतने अंधेरेसे डरता है, परन्तु स्वामीजी तो वनोंमें वास करते हैं । उनके पास तेरा निर्वाह कैसे हो सकेगा ? सोहनलालजीके प्रोत्साहनसे राजनाथने मिश्री कमरके साथ बाँध ली, और एक हाथमें दूधका लोटा और दूसरेमें बाँसकी लकड़ी लेकर वह चल पड़ा । थोड़ी दूर जाकर उसने देखा कि एक भयङ्कर सर्प जलसे निकलकर मार्गमें पड़ा है । राजनाथ डरकर पीछेको हटने लगा तो उधर भी उसे पथपर एक भीषण नाग दिखाई दिया । वह कुछ देर तो किंकर्त्तव्यविमूढ़तामें निमग्न खड़ा रहा, परन्तु अन्तमें स्वामीजीकी ओर जानेका निश्चय करके सर्पपरसे छलाँग मारकर पार हो गया ! जब वह स्वामीजीके

पास पहुंचा तो एड़ीसे चोटीतक पसीनेसे भीग रहा था। महाराजने मुस्करा-कर कहा, "क्या तुम मार्गमें डर गये थे ? क्या तुम सर्प देखकर भयभीत हो गये थे ?" राजनाथको इस बात पर अतीव आश्चर्य हुआ कि मार्गमें घटित घटनाओंका ज्ञान, गुरुजीको, मेरे पहुँचनेसे पहले ही कैसे हो गया है! उस दिनसे उसके हृदयमें स्वामीजीके लिए अनन्य श्रद्धा उत्पन्न हो गई।

पण्डित रामावतार तिवाड़ी उस समय पटना कालेजमें पढ़ाते थे। उन्होंने स्वामीजीसे भट्टोजिदीक्षितके एक श्लोकपर थोड़ी देरतक बातचीत की, परन्तु लोगोंने उनको यह कहकर रोक दिया कि तुम स्वामीजीके साथ शास्त्रार्थ करनेके योग्य ही नहीं हो।

आश्विन सु० १ सं० १९२९ को सायंकाल स्वामीजी मुङ्गेरको प्रस्थान करने लगे। तो श्रीयुत सोहनलालजी आदि सज्जनोंने उन्हें बड़े सम्मानसे रेलवे स्टेशन तक पहुँचाया और गाड़ीमें बैठाकर घरको लौटे।

सायंकाल ८ बजे पटनेसे चलकर, गाड़ी रातके बारह बजे जमालपुर जंकशन पर पहुँची। उस समय मुङ्गेरको जानेवाली गाड़ीके छूटनेमें एक घण्टा शेष था। स्वामीजी पटनेकी गाडीसे उतरकर वहीं स्टेशनके आङ्गनमें टहलने लग गये। उस समय वहाँ एक अंगरेज इंजिनियर पत्नीसहित खड़ा था। उस इंजिनियरकी पत्नीने कौपीनमात्रधारी एक परमहंसको अपने सामने घूमता देख-कर बुरा मनाया। इंजिनियर महाशयने तुरन्त जाकर स्टेशन मास्टरको कहा, "यह कौन नंगा टहल रहा है ? इसे इधर उधर घूमनेसे बंद कर दो।" स्टेशन मास्टरने महाराजको अति विनीति भावसे कहा, "भगवन्! दूसरी ओर चलकर कुर्सीपर आराम कीजिए। मुङ्गेरकी गाड़ीके जानेमें अभी बड़ी देर है।"

स्वामीजी पहले ही सब कुछ समझ गये थे। इस लिए उन्होंने स्टेशन मास्टरको कहा, जिस महाशयने मुझे हटा देनेके लिए आपको यहाँ भेजा है उसे जाकर कह दीजिए कि हम उस युगके मनुष्य हैं, जिस युगमें बाबा आदम और माता हव्वा, अदन उद्यानमें, नग्न घूमनेमें किंचित् भी लज्जा न करते थे।" महाराजने टहलना पहलेकी भान्ति जारी ही रक्खा। इंजिनियरने स्टेशन मास्टरको पुनः बुलाकर अपना आदेश दुहराया। इसपर स्टेशन मास्टर ने कहा कि महाशय! वह कोई भिखमँगा तो है ही नहीं, जिसे मैं आँगन-

से निकाल दूँ। वह तो हम और आप ऐसोंको कुछ भी न समझनेवाला एक स्वतंत्र संन्यासी है। इंजिनियरने तब महाराजका श्री नाम पूछा। इसपर स्टेशन मास्टरने कहा कि इनका नाम दयानन्द सरस्वती है। इंजिनियर महाशय यह कहता हुआ कि क्या ये प्रसिद्ध सुधारक दयानन्द सरस्वती है, तत्काल उठ खड़ा हुआ और स्वामीजीके समीप जाकर उसने विनीतभावसे नमस्कार किया, और कहा, "चिरकालसे मेरे चित्तमें आपके दर्शनोंकी अभिलाषा थी। यह मेरा सौभाग्योदय है कि यहाँ आपके दर्शन हो गये हैं।"

जबतक मुङ्गेरको गाड़ी खड़ी रही, इंजिनियर महाशय महाराजसे वार्त्तालाप करते रहे और गाड़ीके चलनेपर नमस्कार करके चले गये।

प्रातःकाल चार बजे स्वामीजीने मुंगेर पहुँच, एक कबीर पन्थीकी पुष्पवाटिकामें डेरा लगाया। वह स्थान अति रमणीय और स्वच्छ था। उसके पास ही अभंग-तरंगा गङ्गा भी लहरें मार रही थी।

महाराजको मुंगेर आये तीन दिन हुए थे कि भोजनके समय, एक मौनी मुनि उनके पास आकर बैठ गया। स्वामीजीने उसे भोजनके लिए पूछा तो उस समय तो वह बोल पड़ा, परन्तु भोजनानन्तर फिर चुप्पी साध बैठा। स्वामीजीने उसे उपदेश दिया कि इस प्रकारका मौन मूढ़ जन तो भले ही करें, परन्तु ज्ञानियोंको सत्यके कथनमें ही कल्याण मानना चाहिए। उनके उपदेशको सुनकर उसने मौन छोड़ दिया, और मूर्त्ति-पूजा तथा पुराणोंका मिथ्यामूलक होना मान लिया।

चौका-बर्तनके कार्यके लिए स्वामीजीके पास, वहाँ एक कहार भी रहता था। उसने एक दिन, एक टालवालेको जाकर कहा कि समीरकी वाटिकामें एक महात्मा ठहरे हुए हैं, उनकी रसोईके लिए कुछ लकड़ियाँ दीजिए। टालवालेने उसे झिड़क दिया और एक भी लकड़ी न दी। जब वह लौटकर वाटिकामें पहुँचा तो स्वामीजीने तत्काल राजनाथको कहा कि इस धृष्टको ताड़ना करो कि यह क्यों लकड़ियाँ माँगने गया था।

जब राजनाथ उसे ताड़ने लगा तो वह कहार बड़ा विस्मित हुआ कि बिना बताये महाराजको कैसे ज्ञात होगया कि मैं टालपर लकड़ियाँ मांगने गया था।

कुछ दिनोंके पश्चात् वहाँके प्रतिष्ठित लोग स्वामीजीके पास आने और सेवा शुश्रूषा करने लगे। नगरके अनेक सुप्रतिष्ठित पण्डित भी धर्म्म-चर्चा करते रहे।

मुंगेरसे चलकर श्री स्वामीजी भागलपुर पधारे। वहाँ युधिष्ठिरनाथ महोदयके मन्दिरमें उतारा किया। इस नगरके पण्डितोंमें स्वामीजीके आनेसे हलचल मच गई। एक पण्डित स्वामीजीके आनेसे पहलेतो लोगोंके सामने बड़ी बड़ी डींग मारता था, परन्तु उनके पधारनेपर नगरही छोड़कर चला गया!

वहाँका एक वैश्य स्वामीजीके लिए भोजनकी सामग्री भेजा करता था, परन्तु स्वामीजीको पता लगा कि उसकी भावना यह है कि मेरा आतिथ्य करनेसे उसे सन्तानकी प्राप्ति हो। महाराजने उसी समयसे उसके स्वार्थके अन्नका ग्रहण करना छोड़ दिया।

एक दिन स्वामीजीके पास कुछ मौलवी और पादरी आकर धर्म्मचर्चा करने लगे। उनपर महाराजके कथनका इतना प्रभाव पड़ा कि, एक बङ्गाली ब्राह्मण, जो कुछकालसे ईसाई हो गया था, फूट-फूटकर रोने लगा। उसने यह भी कहा, "यदि ऐसे उपदेश पहले प्राप्त होते तो हम लोग अपने पुरातन धर्म्मका परित्याग क्यों करते!"

महाराजको एक दिन नन्दन ओझा मिला। उन्होंने उसे गायत्री मंत्रका आराधन करना बताकर कृतार्थ किया। इसके अगले दिन महाराजने बङ्गीय सज्जनोंकी एक बड़ी उपस्थितिमें संस्कृत भाषामें एक अत्युत्तम व्याख्यान दिया इस व्याख्यानसे लोग बहुत प्रभावित हुए। उस दिन किसी पर्वके कारण गङ्गाके उस पार एक भारी मेला था। उसमें लोग अपनी लड़कियाँ भी पुरोहितोंको दान कर रहे थे! स्वामीजी सायंसमय घूमने गये तो बड़ी रात हो जानेपर भी लौट कर न आये। नन्दन महाशय स्वामीजीका भोजन मन्दिरमें पहुंचाकर अपने घर चला गया। जब सवेरे स्वामीजीके दर्शनोंको आया तो क्या देखता है कि वह भोजन वैसाका वैसा रक्खा पड़ा है। उसने स्वामीजीसे विनय की, "भगवन्! आपने रातको भोजन क्यों नहीं पाया?" स्वामीजीने कहा, "महाशय! इस देशमें इतना अधर्म्म और अज्ञान फैल रहा है कि गत दिनके मेलेपर लोग अपनी लड़कियाँ तक पण्डोंको दान कर

रहे थे। देशकी इस अधोगतिको देखकर मेरा हृदय अतीव व्यथित हुआ। इसी शोक और चिन्तामें निमग्न बैठे; एक तो गंगापरहीसेमैं बड़ी रात बीते यहाँ आया और दूसरे यहाँ आकर भी, वही मानस वेदना व्याकुल करती रही। इसी लिए भूख और भोजनका ध्यानतक नहीं आया।" महाराजका यह कथन सुनकर नन्दन महाशय भी अति दुःखित हुए और उनके नेत्रोंसे अटूट अश्रुधारा बह निकली।

स्वामीजीके प्रचारका धीरे धीरे इतना प्रभाव हो गया कि लोगोंने आप ही शामियाने आदिके लगानेका प्रबन्ध कर दिया। व्याख्यानोंमें सहस्रोंजन आने लगे। व्याख्यानके समय वहाँ एक प्रकारका बाज़ारसा लग जाता था। बग्घीपर बग्घी आती थी।

महाराजा वर्द्धमानने स्वामीजीके पास चार नैयायिक पण्डित भेजे। वे देर तक तर्कशास्त्रपर बातचीत करते रहे। जब वे लोग जाने लगे तो उन्होंने कहा कि 'हम आपके दर्शन महाराजाको भी करायेंगे।'

सायंकालके चार बजे, स्वामीजीके पास मौलवी और पादरी लोग धर्मचर्चा करने आया करते थे। उसी समय, महाराजा वर्द्धमान वहाँ आ गये और वार्त्तालाप सुनकर चले गए। महाराजाने पण्डितोंको भेजकर स्वामीजीको अपने स्थानपर बुलाया और उसी कोठीमें निवास करनेकी विनती की। परन्तु उस कोठीमें गड़बड़ अधिक थी इस लिए महाराजने वहाँ निवास करना स्वीकार न किया। इसके पश्चात् भी महाराजा श्रीसेवामें उपस्थित होते रहे।

स्वामीजी एक मास पर्यन्त भागलपुरमें निवासकर फिर कलकत्तेकी ओर प्रस्थान कर गये।

छठा सर्ग।

महाराज पौष सं० १९२९ के लगभग कलकत्तेमें पहुंचे। उनको यहाँ बुलानेका उद्योग श्रीयुत चन्द्रशेखर सेन बैरिस्टरने किया था। स्वामीजीके उतारेके लिए सेन महाशय पहले देवेन्द्रनाथजी ठाकुरके पास गए, परन्तु जब उन्होंने स्थान देनेमें सङ्कोच प्रकट किया तो फिर उन्होंने श्रीयुत सुरेन्द्र

मोहनको कहा। सुरेन्द्रमोहन स्थान देनेमें कुछ हिचकते थे सही, परन्तु जब, सेन महाशय स्वामीजीको रेलके स्टेशनसे उनके मकानपर ही ले आए तो सुरेन्द्रमोहनने प्रसन्नतासे स्वामीजीकी आव भगत की और उनको अपने प्रमोद-काननमें उतारा।

स्वामीजीके पधारनेका समाचार सारे नगरमें फैल गया। अनेक जिज्ञासुजन सत्संगमें आने लगे। पण्डित हेमचन्द्र चक्रवर्ती बड़े पक्के ब्राह्मसमाजी थे। उन्होंने एक दिन स्वामीजीसे पूछा कि आप जाति भेद स्वीकार करते हैं अथवा नहीं? उत्तरमें महाराजने कहा कि मनुष्य जाति, पशु जाति और पक्षी जाति आदि भेद तो प्रसिद्ध ही हैं, परन्तु यदि आपका आशय चार वर्णोंसे है तो वर्ण जन्म-भेदसे नहीं हैं, वे तो गुण-कर्मके भेदसे हैं। महाराजने वर्णोंके कर्मोंकी व्याख्या करके उन्हें ऐसी रीतिसे समझाया कि वे अतीव सन्तुष्ट हो गए।

चक्रवर्ती महाशयके पुनः पूछनेपर स्वामीजीने कहा कि ईश्वर निराकार है। उसका लक्षण सच्चिदानन्द है। उसकी उपलब्धि चिरकालतक योगाभ्यास करनेसे होती है। चक्रवर्ती महाशयने स्वामीजीसे योग-साधनकी विधि पूछी। इसके उत्तरमें स्वामीजीने उनको उपदेश दिया कि अभ्यासीको चाहिए कि तीन घड़ी रात रहते उठ बैठे। उस समय मुंह हाथ धोकर पद्मासनसे बैठ जावे और दत्तचित्त होकर गायत्रीका ध्यान करे।

स्वामीजीने हेमचन्द्रजीको अष्टांग योगकी विधि और गायत्री मंत्र अर्थ-सहित लिख दिया। आसन भी लगाकर बताया।

उनके पूछनेपर स्वामीजीने अच्छे प्रकार सिद्ध कर दिखाया कि सांख्यके कर्त्ता कपिल भगवान् परम आस्तिक थे।

उन दिनों श्रीयुत केशवचन्द्र सेन यज्ञोपवीत धारण करनेवाले ब्राह्मसमाजि-योंकी निन्दा किया करते थे, इस लिए हेमचन्द्रजीने इस विषयमें स्वामीजीसे प्रश्न किया। स्वामीजीने कहा कि शुभ-गुणयुक्त मनुष्यको यज्ञोपवीत धारण करना उचित है। आप भी विद्वान है, ब्राह्मणवंशीय हैं, इस लिए यज्ञोपवीत अवश्य ही धारण कीजिए। चक्रवर्ती महाशयने फिर जनेऊ पहन लिया और अन्य अनेक सज्जनोंने भी उनका अनुकरण करते हुए, दुबारा यज्ञोपवीत धारण कर लिए।

पण्डित हेमचन्द्रजी स्वामीजीके अनुयायी बन गये और उनसे उपनिषद् अध्ययन करने लगे। वे स्वामीजीके साथ रहकर चिरकालतक पढ़ते रहे। कई मासके पश्चात् फरुखाबादमें उनका पाठ समाप्त हुआ।

जिस समय स्वामीजी कलकत्ते गये उस समय श्री केशवचन्द्रसेन वहाँ नहीं थे। वे जब आये तो महाराजके मिलापार्थ प्रमोद-काननमें गये और दर्शन करके देरतक वार्तालाप करते रहे। महाराजने उनका नाम आदि कुछ भी न पूछा। केशवचन्द्रसेनजीने वार्त्तालापमें स्वामीजीसे कहा, "क्या आप कभी केशवचन्द्र सेनको भी मिले हैं?" स्वामीजीने उत्तर दिया, "हाँ, मिला हूँ।" उन्होंने कहा "वह तो कलकत्तेमें नहीं था, आप उसे कब मिले थे?" स्वामीजीने हँसकर कहा, "अभी मिला हूँ और आप ही केशवचन्द्रसेन हैं।" सेन महाशयने कहा, "यह आपने कैसे जान लिया कि मैं ही केशवचन्द्रसेन हूँ?" स्वामीजीने उत्तर दिया, "जैसी बात आपने की है ऐसी किसी दूसरेकी नहीं हो सकती।" स्वामीजीकी ऊहा-शक्तिसे वे अति प्रसन्न हुए और उसी समयसे उनके हृदयमें महाराजके प्रति प्रेम और आदरका भाव उत्पन्न हो गया।

एक दिन केशवचन्द्र सेनजीने स्वामीजीसे पूछा, "इस समय हमारे सामने बाइबल, कुरान और वेद इन पुस्तकोंके आधारपर तीन बड़े धर्म्म हैं। सभी अपनेको सच्चा कहते हैं। हमें कैसे ज्ञात हो कि इनमेंसे वास्तवमें कौनसा सच्चा है?"

स्वामीजीने उत्तरमें बाइबल और कुरानमें दोष दिखाकर कहा, "पक्षपात और इतिहासादि दोषोंसे विवर्जित केवल वेद ही है! वह केवल उपदेश ही करता है, इस लिए वैदिक धर्म्म ही सच्चा धर्म्म है।"

स्वामीजीकी युक्तियाँ सुन और उनकी अपरिमित प्रतिभाका परिचय पाकर एक बार केशवचन्द्र सेनने कहा, "शोक है कि वेदोंका अद्वितीय विद्वान् अँगरेजी नहीं जानता, अन्यथा इङ्गलेण्ड जाते समय वह मेरा इच्छानुकूल साथी होता।" स्वामीजीने भी हँसकर कहा, "शोक है कि ब्राह्म समाजका नेता संस्कृत नहीं जानता और लोगोंको उस भाषामें उपदेश देता है, जिसे वे समझते ही नहीं।"

श्री केशवचन्द्र सेनजीने अँगरेजीमें एक ग्रन्थ बनाया था। उसके आरम्भमें उन्होंने एक ऐसा श्लोक रक्खा था जिससे ईश्वरके हाथ पाँव आदि सिद्ध होते थे। स्वामीजीने केशवजीको कहा कि ईश्वर तो व्यापक है। उसके ऐसे वर्णन अच्छे नहीं हैं। उन्होंने स्वामीजीका कथन स्वीकार कर लिया।

एक दिन, केशवचन्द्रजीने स्वामीजीको कहा कि आप संस्कृत ही में बात-चीत करते हैं। जो लोग संस्कृत नहीं जानते उनको पण्डित लोग कुछ और ही समझा देते हैं। इस लिए आप देशभाषामें व्याख्यान आदि देनेका यत्न करें। स्वामीजीने उनकी सम्मतिको मान लिया।

केशवचन्द्र सेनजीने स्वामीजीसे यह भी निवेदन किया कि अब आप सभा आदिमें जाते हैं इसलिए वस्त्र धारण कर लें तो अच्छा है। महाराजने इस प्रस्तावको भी अनुमोदित किया।

श्री केशवचन्द्र सेन प्रतिदिन सायंसमय श्री-सत्संगमें सम्मिलित होते थे। उन्होंने, एक बार महाराजके साथ पुनर्जन्म और अद्वैतवादपर प्रश्नोत्तर किये, जिनका उन्हें सन्तोषजनक उत्तर मिल गया।

स्वामीजीने एक सभ्यके पूछनेपर कहा कि हवन मूर्त्ति-पूजा नहीं है, किन्तु वायुमण्डलको शुद्ध बनाये रखनेकी रीति है।

महाराजने एक समय यह भी कहा था कि धर्ममें तंत्रोंको प्रमाण मानना अयुक्त है। प्रमाणमें महाभारत तक ही ग्रन्थोंको लेना चाहिए।

हेमचन्द्रको विजय करनेपर स्वामीजीकी कीर्तिने नगरको प्रभावित कर लिया। महाराजके निवासस्थानके आगे गाड़ियोंका ताँता लगा रहता था। सत्संगमें सहस्रों मनुष्य आते थे। शत शत मनुष्य प्रश्नोत्तर करके तृप्ति लाभ करते थे।

श्री केशवचन्द्र सेनजीने अपने आवासपर स्वामीजीका व्याख्यान कराना निश्चित किया। अङ्गरेजी और बङ्गलामें विज्ञापन बाँटे गये। नियत समयपर सहस्रों नर-नारी एकत्रित हो गए। उस समय कलकत्तेके गण्य-मान्य सज्जन, प्रायःसभी, वहाँ उपस्थित थे। यद्यपि व्याख्यान संस्कृत भाषामें था परन्तु महाराजकी कथन शैली इतनी सरल थी कि उनका कथन सर्वसाधारणकी समझमें आ जाता था। महाराजके तर्कसे, युक्तियोंसे, दृष्टान्तोंसे और प्रमाणोंसे

सभी श्रोताजन प्रसन्न हो गये। पश्चिमी ज्ञानमें पारङ्गत लोग परमहंसके वैज्ञानिक बलको जानकर आश्चर्य करने लगे।

कलकत्ता नगर, उस समय, एक तो हास-विलासमें बहा चला जाता था, दूसरे वह पश्चिमका अन्धाधुन्ध अनुकरण कर रहा था। वहाँके लोग तो यह स्वप्नमें भी स्वीकार करनेको समुद्यत न थे कि कोई पूर्वीय दर्शनका पण्डित उनको सन्तुष्ट कर सकता है। परन्तु श्री स्वामीजीके उपदेशोंसे उन्हें आपही आप अपनी कल्पनायें मिथ्यामूलक दीखने लगीं। भारतके प्राचीन ज्ञानकी गौरव-गरिमा उनपर गहरा प्रभाव कर गई। महाराजके व्याख्यानमें श्रोताओंके सहस्र सहस्र शिर झूमते थे। शत शत मुख 'धन्य धन्य' उच्चारण करते थे। बार बार तालियोंका नाद सभा-स्थानको निनादित करता था।

व्याख्यानकी समाप्तिपर महाराजकी भूरि भूरि प्रशंसा की गई। लोग एक अत्युत्तम प्रभाव लेकर घरोंको गये।

उपर्युक्त व्याख्यान, कलकत्ता नगरमें महाराजका पहला व्याख्यान था। यह पौष सुदी ११ सम्वत् १९२९ को हुआ था।

उन्हीं दिनोंमें कलकत्ता ब्राह्म-समाजका वार्षिकोत्सव आ गया। ब्राह्म लोग स्वामीजीसे उपदेश देनेके लिए विनती करने लगे। श्रीदेवेन्द्रनाथजीने अपना ज्येष्ठ पुत्र द्विजेन्द्रनाथ, स्वामीजीकी सेवामें भेज महोत्सवमें पधारनेकी प्रार्थना की। जिस समय स्वामीजी द्विजेन्द्रनाथके साथ गाड़ीमें बैठकर उत्सव-मण्डपमें पधारे तो ब्राह्म समाजके मुख्य सभासदोंने उनका भक्ति-भावसे स्वागत किया। वहाँ स्वामीजीका एक प्रभावशाली उपदेश भी हुआ। बहुतसे भद्र लोग धर्मालोचना भी करते रहे।

महात्मा देवेन्द्रनाथने महर्षि दयानन्दजीकी अति सन्मानसे सेवा-शुश्रूषा की। भोजन भी वहीं कराया। जब सायंकाल, श्री स्वामीजी अपने उतारेपर आनेके लिए प्रस्तुत हुए तो श्री देवेन्द्रनाथजीने निवेदन किया कि अब आप हमारे ही आवासमें आकर निवास करें। परन्तु स्वामीजीने कहा कि यह एकान्तस्थान नहीं है, इस लिए मैं प्रमोद-काननमें ही रहूँगा।

फाल्गुन व० १० सं० १९२९ को स्वामीजीका, ईश्वर और धर्म विषयपर, गौरीचरणदत्तके मकानपर व्याख्यान हुआ। महेशचरण न्यायरत्नने उसका

अनुवाद सुनाते समय बीचमें बहुत उलट पलट करदी। इससे कालेजोंके विद्यार्थियोंने उसे बहुत लज्जित किया।

स्वामीजी महाराज एक दिन, प्रमोद-काननमें बैठे सत्संगियोंको समझा रहे थे। उसी समय किसी मनुष्यने आकर कहा कि राजा सुरेन्द्रमोहनजी आये हैं और आपको बुलाते हैं। स्वामीजीने कहा कि मैं एक व्यक्तिके लिए बहुतों-के लाभकी हानि नहीं कर सकता। यदि राजा महाशय मिलना चाहते हैं तो यहीं आ जायँ। राजा महाशय वहाँ तो न आये, परन्तु रुष्ट होकर चले गये।

फाल्गुन वदी ४ सम्वत् १९२९ को स्वामीजीका व्याख्यान दिनके ३ बजे अँगरेज़ बोरनियो कम्पनीके भवनमें हुआ। श्रोताओंकी संख्या बहुतही अधिक थी।

फाल्गुन सु० ११ को स्वामीजीका व्याख्यान ब्रहान गोरके स्कूलमें हुआ। जब महाराज व्याख्यानके स्थानमें पधारे तो उस समय उन्होंने एक रेशमी वस्त्र धारण किया हुआ था। व्याख्यान साढ़े तीन बजे आरम्भ हुआ। महा-राजने पहले जगत्पिता परमात्माकी स्तुति-प्रार्थना अति गम्भीर भावसे की। तत्पश्चात् वेदके प्रमाणों और युक्तियोंसे ईश्वरकी निराकारता और एकत्व सिद्ध किया। जन्मसे वर्ण माननेमें बहुत दोष दिखाये। महाराज तीन घण्टोंसे अधिक कालतक भाषण करते रहे।

कलकत्तेमें उन्होंने दो तीन व्याख्यान और भी दिये। महाराजके सभी व्याख्यानोंको छपा देनेका भार केशवचन्द्र सेनजीने अपने ऊपर ले लिया था, परन्तु न जाने किस कारणसे वे छप न सके।

प्रसन्नकुमार ठाकुरने मूलाजोड़में एक संस्कृत कालेज स्थापित किया था। स्वामीजीने वहाँ जाकर प्रस्ताव किया कि केवल इसका नामही संस्कृत न हो, प्रत्युत इसमें संस्कृतकी शिक्षा भी होनी चाहिए।

कलकत्तेमें एक मनमथ महाशय निवास करते थे। वे स्वामीजीकी सौम्य मूर्त्ति, विशाल भाल, साधु स्वभाव और तेजोमय मुखमण्डलसे अतीव प्रभावित हो गये। वे महाराजकी सेवामेंही बहुतसा समय बिताते। कभी कभी रात्रिनिवास भी वहीं कर लेते।

महाराजके पास दो एक बार ईश्वरचन्द्र विद्यासागर भी आये।

एक दिन स्वामीजी अपने स्थानपर विराजमान थे। उनके पास अनेक जिज्ञासु सन्देह मिटा रहे थे। उस समय एक मुसलमान सज्जन वहाँ आ गया। वह सत्संगमें तो आना चाहता था, परन्तु मकानके भीतर प्रवेश करनेमें झिझकता था। स्वामीजीने उसे आदरसे कहा, "बिना सङ्कोच भीतर चले आइए और समीप आकर बैठिए। मैं ऐसे तुच्छ भेद-भाव अच्छे नहीं समझता।" उस सज्जनको स्वामीजीके सत्संगसे अति प्रसन्नता प्राप्त हुई।

स्वामीजी बहुत रात रहते उठते और ध्यानारूढ़ हो जाते थे। फिर शौचादिके लिए बाहर, दूर जाते। स्नान कुएंपर करते। फिर नित्य कर्म्मोंसे निवृत्त होकर ग्यारह बजेतक सत्संग लगाते। तदनन्तर भोजन करके किंचित् विश्राम करते। इसके उपरान्त फिर उपदेश-कार्यमें लग जाते। रातके आठ बजेतक सत्संग लगा रहता। इस प्रकार महाराज कलकत्ता-निवासियोंको तीन मासपर्यन्त कृतार्थ करते रहे।

वृन्दावन नामक सम्भ्रान्त व्यक्ति स्वामीजीको हुगली ले गए और उन्हें अपने उद्यानमें ठहराया। वृन्दावन महाशय एक बहुत बड़े भूमिहार थे। उनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। स्वामीजीका निवास उनके स्थानमें सुनकर सहस्रों जन सत्संगमें सम्मिलित होने लगे।

यहाँ पण्डित ताराचरण भी लोगोंकी प्रेरणासे शास्त्रार्थके लिए आए। शास्त्रार्थ आरम्भ होनेके पहले स्वामीजीने इस बातपर बल दिया कि शास्त्रार्थ लेखबद्ध हो और पीछे छपा दिया जाय। ताराचरणजीने भी इस बातको स्वीकार कर लिया। वाद थोड़ी देर ही होने पाया था कि ताराचरणजी पराजित हो गये और हाथ बांधकर कहने लगे, "भगवन्! यह शास्त्रार्थ मैंने लोगोंके अनुरोधसे किया है। आप जो कुछ कहते हैं वह सब सत्य है। हम लोगोंकी यह धृष्टता है कि आपके सदुपदेशोंको स्वीकार न करके समाजकी प्रेरणासे और उदर पूर्त्तिके निमित्त उलटे विरोध करने लग जाते हैं।" महाराजने पण्डित ताराचरणकी सत्यवादिताकी प्रशंसाकी और विपुल प्रेमसे उनका हस्त आलिंगन किया।

लोग स्वामीजीके सुन्दर मुखकमलको देखते तृप्त न होते थे। उनके विकसित व विशाल नेत्र कृपा-रसपूर्ण रहते थे। उनमें कोई अपूर्व आकर्षण था; कोई मोहिनी शक्ति थी। उनकी नाक उन्नत और अत्यन्त सुन्दर थी। दोनों भौयें अतीव सुहावनी थीं और उनके ऊपर अर्द्धचन्द्राकार भाल बहुत भला प्रतीत होता था। उनका शरीर अतीव सुगठित और सुडौल था। उनके कंधे और पार्श्व परिपुष्ट थे। उनकी दोनों भुजायें हाथीकी सूँडकी भाँति लम्बायमान, घुटनोंको स्पर्श करती थीं। उनके हाथकी हथेलियाँ, लम्बायमान अंगुलियोंसहित, तप्त ताम्रकी तरह दीखती थीं। अरुणवर्ण नख शोभा बढ़ा रहे थे। उनका वक्षस्थल विस्तृत और पुष्ट था। उनकी जङ्घायें कदलीस्तम्भकी भाँति सुगठित थीं। उनका प्रत्येक अंग-प्रत्यंग उनके मनोहर रूपके अनुरूप था। ऐसा प्रतीत होता था कि विधाताने उनकी तेजस्विनी और प्रभावपूर्ण अप्रतिम प्रतिमा रची है।

हुगलीसे चलकर वैशाखबदी ५ सम्वत् १९३० को श्री० स्वामीजी भागलपुरमें पधारे और एक मास पर्यन्त नगरवासियोंको उपदेश द्वारा कृतार्थ करते रहे। इसके पश्चात् ज्येष्ठ बदी ६ सम्वत् १९३० को महाराजने पटना नगरको शोभा प्रदान की। वहाँ एक सप्ताहतक प्रचार हुआ और फिर जेठ सुदी ४ सम्वत् १९३० को स्वामीजी छपरामें सुशोभित हुए। छपरामें शिवगुलाम शाह बहादुरने स्वामीजीके निवासादिका पूरा पूरा प्रबन्ध कर दिया।

यहाँके पौराणिक पण्डित स्वामीजीके विरुद्ध खड़े होगये और प्रसिद्ध पण्डित जगन्नाथसे सहायताकी याचना करने लगे। उसने कहा, "मैं शास्त्रार्थ करनेके लिए तो उद्यत हूँ, परन्तु उस नास्तिकका यदि मुख देख लिया तो मुझे प्रायश्चित करना पड़ेगा।" जब यह समाचार श्री स्वामीजीको मिला तो उन्होंने हँसकर कहा, "यदि उसके यहाँ आनेमें यही रुकावट है तो मेरे मुखके आगे पड़दा डाल दीजिए। परन्तु उसे यहाँ लाइए अवश्य ही।"

लोगोंकी बड़ी प्रेरणासे जगन्नाथ आया और पड़देकी ओटमें बैठकर शास्त्रार्थ करने लगा। थोड़े ही चिरमें उसके पांव उखड़ गये और वह पराजित होकर चला गया।

सर्वसाधारणको स्वामीजीके उपदेशोंसे बड़ा लाभ हुआ। छपरासे चलकर महाराज विचरते हुए श्रावण सुदी १५ सम्वत् १९३० को मिर्ज़ापुरमें पधारे। अध्यापकोंकी गड़बड़से उस समय वहाँकी वैदिक पाठशाला टूट चुकी थी। उसको दुबारा चलाना उन्होंने उचित न समझा।

मिर्ज़ापुरमें स्वामीजीने महात्मा ज्वाहरदासको काशीसे बुलाया और वहाँ पाठशाला खोलनेका उनसे परामर्श किया। ज्वाहरदासजी काशीमें पाठशालाकी स्थापनामें सम्मत हो गये और उसके लिए द्रव्य एकत्रित करनेके निमित्त चक्कर लगाने लगे।

सातवाँ सर्ग।

मिर्ज़ापुरसे प्रस्थान करके स्वामीजी कुछ दिन प्रयागमें ठहरे और फिर कानपुरमें आकर उन्होंने टूका घाटपर डेरा किया। उस समय पण्डित हेमचन्द्रजीभी स्वामीजीके साथ थे और उनसे पढ़ते थे। कानपुर-वासियोंको अपने उपदेशोंसे लाभ पहुँचाकर महाराज फरुखाबाद जानेके लिए प्रस्तुत हुए। मार्गशीर्ष व० १५ सं० १९३० को स्वामीजी फरुखाबाद पहुँचे और पाठशालाहीमें ठहरे। नगरवासी महाराजका शुभागमन सुनकर सहस्रोंकी संख्यामें सत्संगमें जाने लगे।

इस बार, महाराजका मिलाप, संयुक्त प्रान्तके छोटे लाट मेयोर महोदयसे और उसी प्रान्तके शिक्षा-विभागके डायरेक्टर कमसन् महाशयसे हुआ। महाराजके हृदयमें गौ-रक्षाका गहरा भाव था। इस लिए वार्त्तालापमें, उन्होंने लाट महोदयको कहा, "अब आप स्वदेशयात्रा करनेवाले हैं। वहाँ जाकर आप भारत-सचिवकी सभामें सम्मिलित होंगे। उस समय भारतके हितका ध्यान आवश्य रखिएगा। गोवधं बन्द करानेका यत्न कीजिएगा।"

लाट महोदयने स्वामीजीके कथनको दत्तचित्त होकर सुना और वचन दिया कि मैं आपके कथनानुसार अवश्यमेव यत्न करूंगा।

श्रीहेमचन्द्रजी यहाँ भी स्वामीजीके साथ थे। महाराजने उन्हें वे लोग भी दिखाये जो पहली बार मारने आये थे और इस समय भक्तिभावसे सेवा कर रहे थे।

एक दिवस हेमचन्द्रजीने नमस्कारपूर्वक पूछा, "भगवन्! बड़े बड़े धुरन्धर पण्डित आपके साथ शास्त्रार्थ करने आते हैं, क्या वह सभी भूलपर हैं?" स्वामीजीने हँसकर कहा, "सत्यासत्यका विवेक तो बहुतसे विद्वानोंको प्राप्त है, परन्तु आजीविकाके प्रलोभनमें पड़कर सन्मार्गपर आरूढ़ नहीं होते।"

हेमचन्द्रजीके हृदयमें स्वामीजीके लिए गाढ़ श्रद्धा थी। वे महाराजको योगिराज मानते थे। उन्होंने अनेक बार रातके बारह बजे एक बजे उठउठकर महाराजको देखा तो वह प्रत्येक समय पद्मासन लगाये, योगारूढ़ ही बैठे मिले। महाराज प्रातःकाल समाधिसे उतरा करते थे।

स्वामीजी फरुखाबादसे चलकर पौष व० ६ सं० १९३० को कासगंजमें आये। महाराज विद्यार्थियोंकी रक्षाका बड़ा ध्यान रक्खा करते थे। जहाँ विद्यार्थी शयन करते थे वहाँ वायुकी पूरी रुकावट न थी। इससे उनको बड़ा कष्ट होता था। स्वामीजीने सुखचैनको वहाँ दिवार खड़ी करानेको कहा, परन्तु मजूरोंके न मिलनेसे दिवार न बन सकी। स्वामीजीने कहा कि यदि दिवार नहीं बनती तो फूसका छप्पर बनाकर आगे खड़ा कर दो। इससे वायुका रुकाव हो जायगा। परन्तु सुखचैन आदि सभ्योंने छप्पर बनानेमें भी अपनी अकुशलता प्रकट की। उस समय स्वामीजी आप छप्पर बनाने लग गये जिससे पास खड़े सज्जनोंको भी उसकी विधि ज्ञात हो गई।

स्वामीजी विद्यार्थियोंको उपदेश दिया करते थे। उन्हें मालकंगनीका सेवन करनेकी प्रेरणा करते थे। उनका परस्पर वाद कराते थे। उनको व्यायामकी शिक्षा देते और समय-समयपर उनका परीक्षा भी लिया करते थे।

स्वामीजी शपथ करनेके बहुत विरुद्ध थे। एक बार, उनकी अनुपस्थितिमें सब अध्यापकोंने आपसमें परामर्श करके विद्यार्थियोंको कहा कि तुम सबको सत्यप्रचार और आर्ष ग्रन्थोंहीके पढ़ने पढ़ानेके लिए शपथ करनी चाहिए।

रामप्रसादको छोड़कर शेष सब विद्यार्थियोंने वेद उठाकर सौगन्ध खाई और कहा कि हम जीवनभर आर्ष ग्रन्थ ही पढ़ें पढ़ायेंगे। रामप्रसाद सौगन्ध न खानेके अपराधमें पाठशालासे निकाल दिया गया। इस बारकी यात्रामें जब स्वामीजीको यह समाचार मिला तो उन्होंने सबकी भर्त्सना की और

कहा कि कितना ही यत्न क्यों न किया जाय तुम लोग पोप-लीला करनेसे नहीं टलते हमारी आज्ञाके बिना तुमने ऐसा क्यों किया ?

इस प्रकार अध्यापकोंको डाँट-डपटकर उन्होंने रामप्रसादको पाठशालामें सम्मिलित करा दिया ।

पौष सुदी १ सम्वत् १९३० को महाराज कासगंजसे प्रस्थान कर छलेसर आकर विराजमान हुए। इस बार भी स्वामीजीके उपदेशोंमें सहस्रों मनुष्य आते रहे। अनेक मलिन और पतित मनुष्योंका कल्याण हुआ । स्वामीजीने अपनी पाठशालाका भी निरीक्षण और संशोधन किया ।

राजा जयकृष्णदासजी यहाँ भी श्री दर्शनोंको आये और कृतकृत्य होकर लौट गये ।

स्वामीजी महाराज पौष सु० ६ सं० १९३० को अलीगढ़में आये और राजा जयकृष्णजीके अतिथि बने । महाराजका शुभागमन सुनकर सहस्रों नगरनिवासी तथा आसपासके गाँवके लोग उपदेश सुनने आने लगे । सारे नगरमें स्वामीजीके प्रचारका प्रभाव था। आर्य्य, मुसलमान, ईसाई और युरोपीय, सभी सत्संगमें आते थे । व्याख्यानके पश्चात् शङ्का-समाधान होता था। उसमें रातके दस बज जाया करते थे। स्वामीजीके इस अनथक-पनकी सभी प्रशंसा करते थे ।

एक दिन, एक पण्डित मन्दिरके चबूतरेके ऊँचे स्थानपर बैठकर स्वामीजीसे शास्त्रार्थ करने लगा । लोगोंने उसके ऊँचे स्थानपर बैठनेको बुरा समझा। कई भद्र पुरुषोंने उसे समझाया कि सभ्य पुरुषोंकी तरह बैठकर वार्तालाप करो, परन्तु वह ऐसा हठीला था कि वहीं डटा रहा। महाराजने उस समय लोगोंसे कहा कि कोई हानि नहीं, पण्डितजी वहीं बैठे रहें । केवल ऊँचे आसनसे किसीको महत्त्व प्राप्त नहीं होता। यदि ऊँचा आसन बड़ाईका कारण हो तो पण्डितजीसे भी ऊँचा वृक्षपर वह कव्वा बैठा है ।

एक समय, महाराज व्याख्यान-स्थानपर ही विराजमान थे, वहाँ एक भंगड़ साधु आ निकला। वह बार बार लोगोंसे पूछता कि दयानन्द कौन है ? लोगोंने जब संकेतसे बता दिया तो स्वामीजीके पास जाकर उसने महाराजको

अगणित गालियाँ दीं । परन्तु स्वामीजी महाराज उसकी अज्ञान-लीलापर हँसते ही रहे ।

उन्हीं दिनोंमें, बेसवाँ-निवासी ठाकुर गुरुप्रसादके नामसे एक यजुर्वेद भाष्य निकला था। जब अलीगढ़में ठाकुर महाशय श्री स्वामीजीको मिले तो उन्होने भाष्यके विषयमें महाराजकी सम्मति पूछी। स्वामीजीने उनको कहा कि भाष्य बहुत ही अशुद्ध और वेदाशयसे विरुद्ध है। ऐसा भाष्य रचकर आपने एक भारी भूल की है ।

ठाकुर महाशय स्वामीजीकी सम्मति सुनकर बड़े रुष्ट हुए और तुरन्त वहाँ से चले गये ।

एक दिनका वर्णन है कि ठाकुर ऊधोसिंह छावली-निवासी, अपने पिता और ठाकुर भूपालसिंहजीके साथ, स्वामीजीके दर्शन करनेके लिए अलीगढ़में आये। उस दिन ऊधोसिंहजीके वस्त्र नये ढंगके थे और सबके सब विलायती कपड़ेके बने थे। ऊधोसिंहजी कुछ काल छलेसरकी पाठशालामें भी अध्यन करते रहे थे, इसलिए महाराज उन्हें भली भाँति जानते थे। स्वामीजीने अति प्यारसे कहा, ऊधव ! देखो तुम्हारे पिता कैसे मोटे, सादे और अपने देशके कपड़े के बने वस्त्र पहरते हैं ! उनका जाति बिरादरीमें कितना अधिक सम्मान है । क्या तुम, इस विदेशी कपड़ेसे बने नये वेषसे विभूषित होकर अपने पितासे अधिक सत्कृत हो गये हो ? ऊधव ! अपने ही देशके वस्तुवेषको अपनानेमें शोभा है ।"

स्वामीजीका यह उपदेश ऊधोसिंहजीके हृदयमें घर कर गया। उन्होंने अपने डेरेपर जाकर वे वस्त्र उतार दिये। और पुराने ढंगके स्वदेशी वस्त्र धारण कर लिये ।

एक दिन ठाकुर मुकुन्दसिंहजीकी प्रार्थनासे महाराजने साम-गान सुनाया। उसे सुनकर ऊधोसिंहजी आदि सभी सज्जन अत्यन्त आनन्दित हुए। सब यही कहते थे कि ऐसा मधुर स्वर और अद्भुत गान, हमने पहले कभी नहीं सुना ।

स्वामीजीको उन दिनों बहुत ही पत्र आया करते थे। आर्य भाषाके पत्रोंका उत्तर तो एक पण्डित लिखा करता था, पर उर्दूके पत्रोंका उत्तर

ऊधोसिंहजी ही, जबतक वे वहाँ रहे, लिखा करते थे। स्वामीजीके सकल कार्य्य नियमबद्ध थे। पत्र-व्यवहारका भी समय नियत था। एक दिन महाराज पत्र लिखवा रहे थे कि सर सय्यद अहमद खाँ, उन्हें मिलने आ गये। उनके साथ अन्य भी चार पाँच सज्जन थे। श्रीमान अहमदखाँजीने खिड़कीमेंसे झाँककर देखा तो स्वामीजीको कार्य्यमें निमग्न पाया। इसलिए, वे वहीं वराण्डेमें ठहर गये। ऊधोसिंहजीने सय्यद महाशयको खड़े देखलिया और उनके आनेका समाचार स्वामीजीको भी बता दिया। महाराजने ऊधोसिंहजीको आज्ञा की, "जाइए उनको स्वागतपूर्वक भीतर लिवा लाइए।"

जब सय्यदजी भीतर पधारे तो शिष्टाचारके अनन्तर स्वामीजीने कहा, "यहाँ कुर्सीकी बैठक नहीं है, इसलिए आपको फर्शपर बैठनेसे कष्ट ही होगा।" सय्यद महाशयने विनीततासे निवेदन किया, "आप ऐसे सन्तोंके पास आकर फर्शपर बैठने हीमें आराम और शोभा है।"

जब सय्यद महाशयजी सुखपूर्वक बैठ गये तो स्वामीजीने कहा, "क्षमा कीजिएगा। मैं पहले अपने नियत कामसे निपट लूँ, फिर आपके साथ निश्चिन्ततासे वार्त्तालाप करूँगा।"

जितनी देर स्वामीजी कार्य्यमें लीन रहे सय्यद महाशय भी चुपचाप बैठे रहे। कार्य्यानन्तर वे स्वामीजीके साथ देरतक बातचीत करके अति प्रभावको लिये वहाँसे उठ गये।

सर सय्यद अहमदखाँ स्वामीजीकी सेवामें प्रायःनित्य आया करते थे। उनका स्वामीजीके साथ अनुराग भी हो गया था। महाराज भी उन्हें अति सम्मान देते थे। एक दिन सय्यद महाशय, कई प्रतिष्ठित मुसलमान और अँगरेज सज्जनोंसहित स्वामीजीकी सेवामें उपस्थित हुए। वार्त्तालापके प्रसंगमें उन्होंने स्वामीजीसे कहा, "आपकी अन्य बातें तो युक्तियुक्त प्रतीत होती हैं, परन्तु यह बात कि थोड़ेसे हवनसे वायुका सुधार हो जाता है, हमें युक्तिसंगत जान नहीं पड़ती।

स्वामीजीने हवनके अनेक लाभ बताकर उनसे पूछा कि सय्यद महाशय! आपके यहाँ कितने मनुष्योंका भोजन बनता होगा? उन्होंने उत्तर दिया कि कोई पचास साठका। स्वामीजीने पुनःपूछा कि आपके यहाँ कितनेसेर

दाल पकती होगी ? उन्होंने कहा कि कोई छःसात सेर। स्वामीजीने फिर पूछा कि इतनी दालमें कितनी एक हींङ्गका छौंक दिया जाता होगा? सय्यद महाशयने कहा कि माशा भरसे कम तो हींग न होती होगी। तत्पश्चात् स्वामीजीने प्रश्न किया, क्या इतनी थोड़ीसी हींगकी सुगंधि सारी दालको सुवासित बना देती है? सय्यदजाने उत्तर दिया कि हाँ अवश्य सुगंधित बना देती है। तब स्वामीजीने कहा कि थोड़ीसी हींगकी तरह थोड़ासा किया हुआ अग्निहोत्र भी वायुको सुगन्धित कर देता है।

सय्यद महाशय स्वामीजीके उत्तरसे बहुत ही प्रसन्न हुए और उनकी स्तुति करते हुए घरको लौटे।

स्वामीजीके व्याख्यानमें अलीगढ़के उच्च-पदाधिकारी राजकर्मचारी भी आया करते थे और अत्युत्साहपूर्वक उपदेश सुनते थे। महाराजके उपदेशोंमें दस दस सहस्र जन उपस्थित होते थे, परन्तु महाराजके स्वरको यह शोभा प्राप्त थी कि आदिमसे अन्तिम मनुष्यतक, सभीको एक रस सुनाई पड़ता था। उनके शब्दोंमें इतनी सरलता और इतनी मधुरता थी कि सर्वसाधारण उनको सुगमतासे समझ जाते थे।

महाराज अपने कथनमें अद्भुत रस भरते थे। जब कभी वीरताका वर्णन करने लगते तो श्रोताओंके हृदय उछलने लग जाते, भुजायें फड़क उठतीं और ऊष्मा के आवेशसे रक्तका वेग बढ़ जाता।

महाराज जब अपने उपदेशमें देशकी दुर्दशाके चित्रको चित्रण करते थे तो लोग करुणा-सागरमें डूबने लगजाते थे। उनकी आँखोंसे आसुओंकी धारायें बहने लगती थीं। जब वे शान्तिरस बरसाते थे तो सारी सभा निस्तब्ध, नीरव और शान्त होकर सुनती थी। ऐसा प्रतीत होने लगता कि हृदय-भूमिपर, कोई आनन्दकी बदली मन्द मन्द बूँदें बरसा रही है।

उनके व्याख्यानोंमें हास्य रस भी पर्याप्त होता था। घड़ी, आध घड़ीमें कोई ऐसा वाक्य, ऐसा दृष्टान्त अथवा चुटकला वे अवश्य कहते थे, जिसे सुनकर लोग हँसते हुए लोटपोट हो जाते। हँसीके मारे पेटमें बल पड़ने लगते।

महाराजके व्याख्यानोंको सुनकर सभी कहा करते थे कि ऐसा भावपूर्ण व्याख्याता, प्रभाव-उत्पादक उपदेष्टा और सारदर्शक वक्ता कदापि दृष्टिगोचर नहीं हुआ।

आठवाँ सर्ग ।

माघ, शुक्ल ५ सम्वत् १९३० को स्वामीजी अलीगढ़से हाथरसमें पधारे। ठाकुर मुकुन्दसिंहजी भी उनके साथ थे। राजा जयकृष्णदासजीने उनके शुभागमनसे पहले ही पहुँचकर सब प्रबन्ध कर रक्खा था। हाथरसमें स्वामीजीने एक उद्यानमें निवास किया। वहाँ उन्होंने मृतक श्राद्धके विरुद्ध एक प्रभावशाली व्याख्यान दिया, जिससे पौराणिक दलमें खलबली मच गई।

पाँच छः दिनतक हाथरस-वासियोंको निहाल करके, स्वामीजी राजा टीकमसिंहकी प्रार्थनासे मुरसानमें सुशोभित हुए। हाथरससे मुरसान लिवा ले जानेके लिए राजा महाशयने अपनी फिटन भेजी थी।

राजा टीकमसिंहको धार्म्मिक जीवन प्रदान करनेके पश्चात् स्वामीजी मथुरा-वृन्दावन जानेके लिए समुद्यत हुए। उनके वहाँ जानेके अनेक प्रबल कारण भी थे। रङ्गाचार्य उस समय मूर्त्ति-पूजाके सब प्रचारकोंमें शिरोमणि था। प्रतिवर्ष सहस्रों मनुष्योंको कण्ठियाँ धारण कराकर वैष्णव बनाता था। संस्कृतका पण्डित भी था। वैष्णव सम्प्रदायमें उसकी महती मानता थी। महाराज चाहते थे कि उस युगके सबसे बड़े प्रतिमा-पूजा प्रचारकको उसके गढ़-हीमें जाकर जीतें।

एक बार महाराजने अपने सहपाठी पण्डित गङ्गादत्तको रुपए भेजकर लिखा कि आप फरुखाबादमें आकर अध्यापन कार्य कीजिए। उसने उत्तरमें स्वामीजीसे निवेदन किया कि वहाँ आनेमें मुझे आर्थिक लाभ तो अधिक है, परन्तु जबतक आप मथुरा, वृन्दावनमें पधारकर रङ्गाचार्यको न जीत लें आपके समीप आनेमें लोग मेरी निन्दा करेंगे, जातिके जन विरोधी बन जायँगे। इस लिए आप पहले यहाँ आइए और मूर्ति-पूजाका खण्डन कीजिए; फिर उत्साहित होकर मैं आपकी आज्ञा पालनमें तत्पर हो जाऊँगा। गङ्गादत्तके पत्रोत्तरमें स्वामीजीने लिख दिया कि हम मथुरामें अवश्यमेव आयेंगे।

अपने वचन और सङ्कल्पका पालन करनेके निमित्त स्वामीजीने वृन्दावन जानेके लिए ब्रह्मोत्सवका समय चुना। इस उत्सवपर सहस्रों यात्री आया करते हैं। यह मेला चैत्र वदी द्वितीयासे आरम्भ हुआ करता है। महाराजके वृन्दावन जानेके पहले ही, राजा जयकृष्णदासजीने पण्डित देवीप्रसाद डिपटी कलेक्टरके नाम पत्र लिखकर पण्डित बलदेवजीको मथुरा भेज दिया। पण्डित बलदेवजी, पण्डित देवीप्रसादजीसे पत्र लेकर, वृन्दावनमें बख्शी महबूब मसीह सुपरेण्टेण्डेण्ट चुङ्गी को मिले। उसके पश्चात् मथुरानिवासी राजा उदित नारायणसे सहायताके लिए कहा। राजा महाशय बड़े सज्जन पुरुष थे स्वामीजीकी सहायताके लिए तुरन्त उद्यत हो गये और जिस दिन महाराजने मथुरा पधारना था उस दिन अपनी गाड़ी लेकर रेलवे स्टेशनपर पहुँच गए। जब स्वामीजी गाड़ीसे उतरे तो राजा महाशय उनको स्वागतपूर्वक अपने मकान पर ले आये।

स्वामीजीने राजा महाशयको कहा कि आजकल वृन्दावनमें ब्रह्मोत्सवका मेला भर रहा है, इस लिए इस समय वहाँ जाकर प्रचार करना चाहिए। राजा महाशयने भी स्वामीजीके कथनका अनुमोदन किया। पण्डा लोग कहीं कोई उपद्रव न कर बैठें, इस लिए, उन्होंने चार मनुष्य स्वामीजीकी रक्षाके लिए, पहरेपर नियत कर दिए। फाल्गुन शुक्ला एकादशी सम्वत् १९३० को महाराज वृन्दावनमें आये और बख्शी महबूब मसीहके प्रबन्धसे मलूकदासके राधा-उद्यानमें विराजमान हुए; यह उद्यान रङ्गाचार्यके निवासके ठीक पछवाड़ेमें पड़ता था।

स्वामीजीकी आज्ञासे श्रीमान् महबूब मसीहजीने आर्य्य भाषा और उर्दूमें विज्ञापन छपाकर नगरमें जहाँ तहाँ सर्वत्र लगवा दिए। इसमें प्रकाशित किया कि मूर्त्ति-पूजन और अवतारवाद सिद्ध करनेका जिसे भी साहस हो वह शास्त्रार्थ कर ले। एक लिखित पत्र, बलदेवजीके हाथ रङ्गाचार्य्यजीको भेजकर कहा कि आप मूर्ति-पूजा, कण्ठी और तिलक वेदसे सिद्ध किया करते हैं। अब वह अवसर है कि शास्त्रार्थ करके अपनी सत्यता प्रमाणित कीजिए।

रङ्गाचार्यने उस समय तो यह कहकर अपना छुटकारा कराया कि ये मेलेके दिन हैं, हमें सर्वथा अवकाश नहीं है, मेला समाप्त होनेपर अवश्य ही शास्त्रार्थ

किया जायगा। परन्तु उत्सव-समाप्तिपर उसे आहूत किया गया तो वह रोगी होनेका बहाना बना बैठा! बुद्धिमान् लोगोंको पूर्ण विश्वास हो गया कि रङ्गाचार्य स्वामीजीके सामने आनेसे डरता है। उसे अपनी पोलके खुल जानेका पूरा भय है।

स्वामीजीके उपदेशोंसे प्रभावित होकर दो एक सज्जनोंने अपने शालिग्राम यमुना-जलमें विसर्जन कर दिये।

रङ्गाचार्यके चेले चाँटे अपने गुरुकी गति देखकर स्वामीजीसे बहुत चिढ़े और उनको मार डालनेकी विधि सोचने लगे! उन लोगोंकी षड्यंत्र-रचनाका समाचार पाकर पण्डित बलदेवजी आदि भक्तोंने भगवान्से विनयकी, "आप बाहर घूमने न जाया करें।" स्वामीजीने हँसकर कहा, "आज तो आप मुझे बाहर जानेसे रोकते हैं कल कहोगे कि कुटीके भीतर ही बैठे रहो। सो आपके कथनानुसार मुझसे नहीं चला जाता।"

बहुत दिनोंतक, श्रीस्वामीजी वृन्दावनमें धर्म्म-मेघ बनकर बरसते रहे। अनेक गृहस्थों और संन्यासियोंको विवेक प्रदान करके फिर चैत्र वदी ११को मथुरामें आकर पुरुषोत्तमदासजीके उद्यानमें ठहरे।

स्वामीजी महाराजके आगमनसे पहले मथुराकी पण्डित-मण्डली शास्त्रार्थ करनेकी गप्पें तो हाँकती थी, परन्तु उनके सम्मुख कोई न हुआ। एक दिन, कुछ मनुष्योंकी उत्तेजनासे चार पाँच सौ पण्डे मोटे २ लट्ठ लिये स्वामीजीके निवासस्थानके उद्यान-द्वारपर आ पहुंचे। द्वारपर ठाकुर कृष्णसिंहजी आदि, कर्णवासके कई राजपूत पहरा दे रहे थे। पण्डोंके समूहको आते देखकर उन्होंने द्वार बंद कर दिया और खिड़की खुली रक्खी। थोड़ी देरतक तो पण्डे धींगामस्ती करते रहे परन्तु बाँके राजपूतोंके हाथमें भी डण्डे देखकर बाहर मार्ग पर ही खड़े हो गये। वे लोग वहाँ बड़ी देरतक भूमिपर लट्ठ और लातें मार-मारकर स्वामीजीको अगणित अवाच्य बोलते रहे। स्वामीजी मकानकी छत्त-परसे, अबोध जनोंकी बालक्रीड़ाका अवलोकन करके हँसते थे। स्वामीजीके सेवकोंने पण्डों को ठण्डा करनेकी उनसे आज्ञा माँगी। परन्तु महाराजने उनको कहा, "पण्डा लोगोंकी धर्म्मान्धतापर आप लोगोंको कोप कदापि नहीं करना चाहिए। हमारे यहाँ आनेका इनको इतना तो लाभ हो गया

कि इन आलस्यके मारोंमें उत्तेजना आ गई है। ये इतनी संख्यामें इकट्ठे हो कर आये हैं, यह लाभ भी कुछ न्यून नहीं है।" यह सुनकर महाराजके सब सेवक शान्त हो गये ।

माँगीलाल नामका एक मुनीम महाराजका बड़ा कट्टर द्वेषी बन गया। वह उनकी धवल कीर्त्तिपर, उनके शुभ नामपर लाँछन लगानेके उपाय सोचने लगा। एक दिन, श्रीमहाराज लक्ष्मीदास सेठके मकानपर व्याख्यान दे रहे थे। उस समय एक कसाई और एक शराबवालेने पुकारकर कहा, स्वामीजी ! आपकी ओर बहुत दिनोंका लेखा हो गया है। दाम देकर चुका क्यों नहीं देते हो ?" उनके इस कथनको सुनकर लोगोंकी आखोंमें लहू उतर आया, परन्तु स्वामीजीने उनको शान्त कर दिया। जब व्याख्यान समाप्त हो चुका तो महाराजने दोनों मनुष्योंको अपने पास बुलाकर, अपने एक एक हाथमें उनकी ग्रीवायें पकड़ लीं और कहा, "सच कहो, ऐसा कहनेके लिए तुम्हें किसने कहा ?" उन्होंने हाथ जोड़कर कहा, "महाराज हमें माँगीलाल मुनीमने कहा था कि सभामें जाकर तुम यह वाक्य कह देना, मैं तुम्हें पीछे पुरस्कार दूँगा। यदि हमें यह पता होता कि आप बुरा मनायँगे तो हम ये शब्द कदापि न कहते।" महाराजने उन मनुष्योंको मुक्त कर दिया, परन्तु मुनीमकी निन्दा स्थान-स्थानपर होने लगी।

कहते हैं कि कुछ एक दुष्ट जनोंने, एक दुराचारिणी स्त्रीको भी समझा बुझाकर एक दिन व्याख्यान स्थानपर भेज दिया। मार्गमें तो वह बहुत कुछ बड़बड़ाती रही, परन्तु सभामें आकर, जब उसने महाराजके परम पुनीत, शान्त और तेजस्वी मुखमण्डलको देखा, तो उसके मनकी सारी मलिनता एकाएक दब गई। उसके हृदयमें मुनिराजके लिए श्रद्धा और भक्तिभाव उत्पन्न हो आया। 'मैंने मनमें इस महात्माको कलङ्कित करनेकी कल्पना की है यह मुझसे घोरतम पातक हुआ है,' यह सोच२कर वह अत्यन्त व्याकुल और व्यथित हुई। महाराजके निकट जाकर गिड़गिड़ाती हुई, भूमिपर सिर रखकर क्षमा माँगने लगी। उसने अधम मनुष्योंके बहकाकर भेजनेकी वार्त्ता सुनाते समय, रो रोकर अपना अञ्चल भी भिगो दिया।

श्री स्वामीजीने उसे ढाढस बँधाया और कहा, "देवि ! जाओ। ईश्वर करे कि तुम्हारी इस समयकी सुमति स्थिर बनी रहे।"

मथुरामें अस्सी वर्षके वृद्ध पाण्डेय मदनदत्तजी निवास करते थे। वे चालीस वर्षपर्य्यन्त केवल दुग्धाहारी रहे थे। पक्के वैष्णव भक्त बजते थे। सारे नगरमें उनका आदर था।

एक दिन, मदनदत्तजी शास्त्रार्थ करनेके लिए स्वामीजीके समीप आये। उस समय उनके साथ उनका पोता भी था। कुछ शिष्टाचारकी बातोंके पश्चात् महाराजने मदनदत्तके पोतेसे व्याकरणका एक सूत्र पूछा और फिर उसे अष्टाध्यायी पढ़नेकी शिक्षा दी। महाराजकी हित-कामनासे मदनदत्त इतने मोहित हुए कि प्रतिमा-पूजनसे उनका विश्वास उठ गया। वे पन्थाई लोगोंका खण्डन करने लग गये।

पाण्डेय मदनदत्तके परिवर्तनसे सर्व-साधारणपर गहरा प्रभाव पड़ा। सभी कहने लगे कि स्वामीजीके पास कोई मोहन मंत्र है, जिसके प्रभावसे वे शास्त्रार्थ किये बिना ही, कड़े विरोधियोंको भी अपने अनुकूल बना लेते हैं।"

राजा टीकमसिंहजी अपनी गाड़ी लेकर स्वामीजीके पास मथुरामें आए और महाराजको वहां से चैत्र सुदी द्वितीया सम्वत् १९३१ को मुरसान ले गये। महाराजने कई दिनोंतक मुरसानके लोगोंको धर्म्मामृत पान कराया और फिर वे आषाढ़ मासमें काशी चले गए। इसबार श्री स्वामीजी गुसाईं रामप्रसादके उद्यानमें विराजित हुए।

उन दिनों भगवान् आर्य्य भाषामें बात चीत किया करते थे। ज्वाहरदासजी ने कहा कि आपको संस्कृत ही में बोलते रहना चाहिये; परन्तु महाराजने उनको समझा दिया कि लोक-भाषामें उपदेश देनेसे अधिकांश मनुष्योंका अधिक हित होता है।

राजा माधोदासजीके उद्यानसे उनके घर, प्रतिदिन पुष्पोंकी एक टोकरी जाया करती थी। एक दिन महाराजने माधोदासजीको कहा, "ये पुष्प कहाँ जाया करते हैं?" उन्होंने कहा, "ठाकुर-पूजाके लिए घर भेजे जाते हैं।" स्वामीजीने कहा, "इनको यहीं बेलबूटोंके साथ लगा रहनेसे, अधिक कालतक पवन सुगन्धित होता रहता है। मुरझाकर पंखड़ियोंके यहीं गिरनेसे खेतमें

खाद पड़ जाता है। पुष्पाञ्जलि बनाकर घरमें रखनेसे भी लाभ है, परन्तु प्रतिमापर चढ़ानेसे वे तुरन्त मसले जाते हैं। लाभ तो कहाँ, उलटे पानीमें पड़े सड़कर सड़ाँद छोड़ने लगते हैं।

यहाँ भी श्रीमान् सय्यद अहमद खाँजी स्वामीजीको मिलते रहे। उन्होंने महाराजके दो तीन व्याख्यान अपनी कोठीपर भी कराये। कई उच्च राजकर्मचारियोंको साथ लाकर दर्शन कराते रहे।

स्वामीजीके इस बार काशी पधारनेसे छः मास पूर्व महात्मा ज्वाहरदास-जीने पोष वदी द्वितीया सम्वत् १९३० को पाठशाला स्थापित कर दी थी। उसके लिए केदार मन्दिरके निकट किरायेपर स्थान लिया गया था। इस पाठशालामें पण्डित शिवकुमारजी आदि अनेक विद्वान् पढ़ाते थे।

महाराजने एक दिन पाठशालाका परीक्षण और निरीक्षण किया तो उस समय पण्डित शिवकुमारजीको भी मिले। उनको सुयोग्य जानकर महाराजने कहा कि, आप यदि लोगोंको धर्म्मोपदेश किया करें तो अच्छा है। शिवकुमारजीने निवेदन किया कि यदि पचास रुपए मासिक वेतन मिलने लग जाय तो मैं उपदेशकका काम करनेको उद्यत हूं। परन्तु स्वामीजीने उन्हें वेद-ज्ञानसे शून्य जानकर इतना वेतन देना उचित न समझा।

स्वामीजीने इस पाठशालाको उन्नत करनेके लिए बहुत यत्न किये। उसकी सहायताके लिए लोगोंको प्रेरित किया। समाचार पत्रोंमें पाठविधिका ब्योरा छपवाकर उसके उद्देशका भी वर्णन किया। परन्तु यह पाठशाला भी अन्तको प्रबन्धकी त्रुटिसे माघ १९३१ को टूट गई।

काशीमें स्वामीजी दो मासतक धर्म्मोपदेश देते रहे। फिर वहाँसे प्रस्थान करके मिर्ज़ापुर आदि स्थानोंमें विचरते प्रयागमें आ गए। यहाँ उन्होंने अपना डेरा अलोपीके उद्यानमें किया। फिर एक विज्ञापनद्वारा सर्वसाधारणको विदित कर दिया गया कि जिस किसीको धर्म्मके विषयमें कुछ जाननेकी इच्छा हो, वह नियत समयपर, अलोपी देवीके उद्यानमें प्रसन्नतापूर्वक आ जाय।

स्वामीजीके शुभागमनका सु-समाचार पाकर सहस्रों गृहस्थ और सैंकड़ों विद्यार्थी आने लगे। कालेजके प्रोफेसर भी आते थे। स्वामीजीने अध्यापक

मोक्षमूलरके वेदभाष्यको भ्रममूलक सिद्ध किया। ईसाई धर्म्मकी भी तीव्र आलोचनाकी।

एक दिन, पण्डित काशीनाथ शास्त्रीने स्वामीजीको अवज्ञापूर्वक कहा, "आपने किस प्रयोजनके लिए देशभरमें कोलाहल मचा रक्खा है?"

महाराज शान्तिपूर्वक बोले, "पन्थाई पण्डितोंने लोगोंको धोखेके जालमें फँसा रक्खा है। जड़-पूजनसे मनुष्योंकी बुद्धिमें जड़ता आ गई है। देश वासियोंमें सत्यासत्यके जाननेका विवेक अति मन्द हो गया है। इन सबके सुधारहीके लिए मैं कोलाहल कर रहा हूं।" स्वामीजीके उत्तरको सुनकर काशिनाथ शान्त हो गया।

मौलवी लोग भी स्वामीजीकी सेवामें आकर अपनी शंकाओंका समाधान कराते थे।

पण्डित ठाकुरप्रसादजी, बड़े भक्तिभावसे महाराजका भोजन उनके आसन पर पहुँचाया करते थे। एक दिन, मध्याह्नके समय बड़ी कड़ी धूपमें वे नङ्गे पाँव भोजनका थाल उठाये स्वामीजीके पास पहुंचे। महाराजने अति दयासे ठाकुरप्रसादजीको कहा, "ऐसी धूपमें आप बिना छाते और नङ्गे पाँव क्यों भोजन लाये हैं?" ठाकुरप्रसादजीने विनयकी, "भगवन्! जूता पहरे कच्चा भोजन उठाना अच्छा नहीं है।" स्वामीजीने कहा, "मैं इस छूआछूतके व्यर्थके बखेड़ेको नहीं मानता। धर्म्मशास्त्रमें इसका कहीं भी वर्णन नहीं है। आप भी इस झगड़ेमें न पड़ें।"

अनेक भद्र पुरुषोंने स्वामीजीसे योगके साधन सीखे और उनको बड़ा भारी लाभ हुआ।

पण्डित ठाकुरप्रसादजीके हृदयमें स्वामीजीकी योगमुद्रा देखनेकी उत्कट इच्छा उत्पन्न हुई। एक दिन स्वामीजीके सेवकोंको पूछकर, वे उस कुटियाके द्वारपर जा खड़े हुए, जिसके भीतर श्री स्वामीजी ध्यानावस्थित थे। यद्यपि द्वार बंद थे परन्तु किवाड़ोंके छिद्रोंमेंसे महाराजकी आकृति स्पष्ट दीख पड़ती थी। ठाकुरप्रसादजी बहुत देरतक महाराजके दर्शन करते रहे! उन्होंने यह भी देखा कि महाराजका आसन धीरे धीरे भूमिसे ऊपर उठकर अधरमें अव-

स्थित हो गया। उस समय उनकी मुद्राकी अद्भुत छबि थी। उनके मुख-मण्डलपर एक प्रकाशमय चक्र बना हुआ था।

महाराजकी मानसिक शक्तियोंके प्रमाण पाकर उनके प्रेमी जन अत्यन्त विस्मित हो जाया करते थे। एक दिन, राय बहादुर पण्डित सुन्दरलालजी मित्रोंसहित स्वामीजीके समीप गये। महाराज उस समय ध्यानावस्थित थे, इसलिए, वे सब चुपचाप बैठे रहे। कोई आध घण्टेके पश्चात् स्वामीजी भीतरसे बाहर आये। उन सब सज्जनोंने झुककर नमस्कार किया। उस समय स्वामीजी आप-ही-आप हँसरहे थे। पाण्डित सुन्दरलालजीने पूछा, "आप किस बातसे हँस रहे हैं?" उन्होंने कहा, "एक मनुष्य मेरी ओर चला आता है। कुछ देर ठहर जाइए, उसके आनेपर आपको एक कौतुक दिखाई देगा।"

इस बातके आध घड़ी पश्चात् एक ब्राह्मण मिष्टान्न लिये आ पहुँचा। उसने स्वामीजीको 'नमो नारायण' करके मिठाई भेंठकी और कहा, "इसमेंसे कुछ एक भोग लगाइए।" स्वामीजीने उसे कहा, "लो थोड़ासी मिठाई तुम भी खाओ;" परन्तु उसने न ली। तब महाराजने उसे डाँटकर कहा, "लेते क्यों नहीं हो?" वह काँप तो गया परन्तु मिष्टान्न लेनेसे झिझकता ही रहा। उस समय स्वामीजीने कहा, "यह मनुष्य हमारे लिए विष-मिश्रित मिष्टान्न लाया है"

पाण्डित सुन्दरलालजी उसके लिए पोलीस बुलवाने लगे, परन्तु महाराजने कहा, "देखो यह अपने पापके कारण कितना काँप रहा है! इसे पर्य्याप्त दण्ड मिल गया है, इस लिए पोलीस न बुलाइए।" भगवान्‌ने उस ब्राह्मणको शिक्षा दी और छोड़ दिया। राय बहादुर महाशयने उस मिठाईमेंसे कुछ अंश उठाकर वहींपर, एक कुत्तेके आगे फैंका। वह कुत्ता मिठाई खाते ही छटपटाकर मर गया।

किसीका यदि हित होता हो तो स्वामीजी उसकी सहायताके लिए उद्यत हो जाते थे। वैसे तो किसीके मकानपर कदाचित् ही जाते थे, परन्तु यदि किसी मनुष्यका कोई शुभ कार्य सिद्ध होता हो तो उन्हें जानेमें किंचित् भी सङ्कोच नहीं होता था।

प्रयागमें एक लाला वंशीधरजी निवास करते थे। वे रामायणकी मुद्रित पुस्तकें विद्यार्थियोंको दान किया करते थे। परन्तु इसपर उन्होंने जो पण्डित नियुक्त किये थे वे अपने जान पहचानके विद्यार्थियोंहीमें पुस्तकें बाँटते थे।

अपरिचितोंको बार बार माँगने पर भी पुस्तक नहीं मिलती थी। एक दिन, एक विद्यार्थी महाराजके पास आकर रो पड़ा और बोला, "भगवन्! मैं अति निर्धन हूं। मुझे रामायणकी पुस्तक पाठके लिए चाहिए। मैं अनेक बार लाला महाशयके स्थानपर भटकता फिरा हूं, परन्तु पण्डितोंके कारण मुझे पुस्तक नहीं मिल सकी।" यह सुनकर स्वामीजी महाराज तत्काल उठ खड़े हुए और विद्यार्थीको साथ लिए वंशीधरजीके मकानपर गये। उस विद्यार्थीको पुस्तक दिलाकर उन्होंने दानी महाशयको उपदेश दिया कि इस कार्य्यपर ऐसे मनुष्य नियुक्त करो जो निर्धन, निस्सहाय और असमर्थ विद्यार्थियोंको पुस्तकें दान करें। लाला महाशयने महाराजको नम्रीभूत नमस्कार करके निवेदन किया कि आगेको आपकी शिक्षापर पूर्ण ध्यान दिया जायगा।

भगवान् नियत कार्य्योंको करके ही विश्राम लिया करते थे। वे नियत कार्य्यके समय शारीरिक सुख-दुःखपर कुछ भी ध्यान नहीं देते थे। एक दिन स्वामीजीके व्याख्यानकी घोषणा हो चुकी थी, परन्तु उस दिन उन्हें प्रबल ज्वर आ गया। प्रेमी जनोंने बहुतेरा कहाकि आज व्याख्यान न दीजिए। परन्तु महाराज ये शब्द कहते हुए व्याख्यानस्थानकी ओर चल पड़े कि ज्वर अपना काम करता है. और मैं अपना काम किये चला जाऊँगा!

महाराज कर्म-धर्म्मको अति प्रधानता देते थे। परहितार्थ क्रियात्मक जीवन ही सर्वोत्तम जीवन मानते थे। प्रयागमें, गङ्गा-तटपर एक महात्मा रहते थे। वे वयोवृद्ध थे। जब कभी स्वामीजी उन्हें मिलते तो बच्चा कह कर सम्बोधन करते थे। एक दिन उस वृद्ध सन्तने स्वामीजीको कहा, "बच्चा! यदि आप पहलेके ही निवृत्ति-मार्गपर स्थिर रहते, परोपकारके झगड़ेमें न पड़ते तो आपकी इसी जन्ममें मुक्ति हो जाती। अब तो आपको एक और जन्म धारण करना पड़ेगा।"

स्वामीजीने कहा, महात्मन्! अब मुझे अपनी मुक्तिका कुछ भी ध्यान नहीं है। जिन लाखों मनुष्योंकी मुक्तिकी चिन्ता मेरे चित्तको चलायमान कर रही है, उनकी मुक्ति हो जाय, मुझे भले ही कई जन्म क्यों न धारण करने पड़ें। दुःखोंके त्राससे, दीन दशासे और दुर्बल अवस्थासे परम पिताके पुत्रोंको मुक्ति दिलाते, मैं आप ही आप मुक्त हो जाऊँगा।"

नवमाँ सर्ग ।

जिस समय महाराज प्रयागमें धर्म्म-गङ्गा बहा रहे थे । उस समय उनके पास मुम्बई-वासियोंके निमंत्रण-पत्र लगातार आते थे । वहाँके जन भगवान्‌के दर्शनोंके लिए प्रबल उत्कण्ठा प्रगट कर रहे थे । उपदेश सुनने-के लिए अतीव उत्सुक हो रहे थे ।

महाराजने उनकी प्रार्थनाओंको स्वीकार कर लिया । बलदेवसिंह कान्यकुब्ज ब्राह्मणको बुलाकर सेवाके लिए साथ लिया और जबलपुरमें जाकर तीन चार दिवस तक प्रचार करते रहे । इसके अनन्तर महाराज नासिकमें पधारे । वहाँ भी आपने लोगोंके भ्रम निवारण किये और फिर वे प्रस्थान करके आश्विन सु० १२ सं० १९३१ को मुम्बई पहुँच गये ।

मुम्बई नगरमें स्वामीजीके आगमनके पहले ही उनकी प्रसिद्धि हो चुकी थी । सुशिक्षित समाज तो उस युगके आदर्श संस्कारकके नाम और कामसे परि-चित था ही, परन्तु सेवकलालजीने काशी-शास्त्रार्थ छपाकर वहाँ इतना बाँटा कि इससे सर्वसाधारणको भी महाराजके गुणोंका ज्ञान हो गया ।

जिस समय महाराज मुम्बई के रेल-स्टेशनपर पहुँचे तो उनके स्वागतके लिए अनेक भद्र पुरुष वहाँ उपस्थित थे । बड़े आदरसे उन्होंने महाराजको प्रति-ग्रहण किया और गाड़ीमें बैठाकर, वालुकेश्वर जाकर उत्तम आवासमें उतारा ।

अगले दिन गुजराती, मराठी और अंग्रेजी आदिमें विज्ञापन वितरण करके प्रकाशित कर दिया गया कि जिसको सत्यासत्यका निर्णय करनेकी इच्छा हो वह महाराजके पास आकर विचार कर ले ।

स्वामीजीका आसन तो गोसाईंयोंके अखाड़ेमें वालुकेश्वरपर था, परन्तु उनके व्याख्यानोंका प्रबंध कोटके मैदानमें मण्डप बना कर किया गया था ।

महाराज एक दिन व्याख्यान देते और दूसरे दिन केवल शङ्का-समाधान करते थे । उनके सत्संगोंमें सहस्रों मनुष्य आते थे । सारे नगरमें एक विचित्र धर्म्मान्दोलन हो रहा था ।

बहुतसे सहायकोंने स्वामीजीको यह सम्मति दी कि केवल वल्लभमतका ही खण्डन किया जाय; दूसरे सम्प्रदायोंको न छेड़ा जाय । परन्तु स्वामीजी

समदृष्टि थे। वे पन्थोंकी पोल खोलनेमें, किसी एकका पक्षपात नहीं करते थे। उनका तर्क-आतप सब पन्थोंके कीचड़को एकसा शोषण करने लगा। मतवादियोंमें इससे बड़ी भारी व्याकुलता उत्पन्न हो गई।

महाराजने वैष्णवोंके तन-मन-धन-अर्पणका घोर खण्डन किया। मुम्बईमें एक जीवनजो गोसाईं रहता था। वह वैष्णव-मत-खण्डनसे बहुत कुपित हुआ। उसने एक दिन स्वामीजीके सेवक बलदेवसिंहको गुप्त रूपसे बुलाकर कहा, "यदि तुम विषादि देकर दयानन्दकी 'इति श्री' कर दो तो, हम तुम्हें एक सहस्र रुपया देंगे।" जीवनजीने एक सहस्र रुपया देनेके लिए उसे एक पत्र भी लिखकर दे दिया, और पाँच रुपए तथा पाँच सेर मिठाई, उसी समय उसकी भेंट की।

ज्योंही बलदेवसिंह लौटकर डेरेपर आया तो मानस चक्षुओंसे दूसरोंके प्रच्छन्न कर्म्मोंको भी जान लेनेवाले, श्री दयानन्दजीने उससे पूछा, "क्या तुम आज गोकुलियोंके यहाँ गये थे?" बलदेवने कहा, "हाँ, मैं गया था।" स्वामीजीने फिर पूछा, "सच बताना, वहाँ क्या ठहराकर आए हो?" उसने सारी वार्त्ता महाराजके आगे आद्योपान्त वर्णन कर दी।

स्वामीजीने उसे कहा, "देखो, जिसे परमेश्वर न मारे उसे मारनेके लिए कोई भी समर्थ नहीं हो सकता। बनारसमें मुझे हलाहल विष दिया गया। राव कर्णसिंहने पानमें विष दिलाया; अन्य भी अनेक स्थानोंमें मुझपर विषके विषम प्रयोग किये गये, परन्तु मेरा प्राणान्त न हुआ। स्मरण रखिए अब भी मैं मारा नहीं जाऊँगा।"

बलदेवसिंह महाराजके चरणोंको पकड़कर क्षमा माँगने लगा। उसने प्रण किया कि मैं फिर कभी गोसाइयोंके पास नहीं जाऊँगा, उनके दाँवपेचमें नहीं फँसूँगा।

सेवकलालजी प्रायः स्वामीजीके स्थानपर ही सोया करते थे। एक दिन रातके समय दो बलिष्ठ मनुष्य, स्वामीजीके वधके लिए चुपचाप मकानमें घुस आये। सेवकलालजी थे तो जानते, परन्तु भयके मारे मौन-मूर्ति बन गये। उनसे बोला तक न गया। महाराजने जब उन पामरोंको देखा तो

बलपूर्वक पूछा, "तुम कौन हो?" महाराजका यह पूछना क्या था, मानो उनपर वज्रपात था। वे तुरन्त वहाँसे भाग गए।

जीवनजीने चार बलवान् मनुष्योंको, लोभ लालचके पञ्जेमें फँसाकर, स्वामीजीके मारनेके लिये सुसज्जित कर लिया। महाराज प्रतिदिन समुद्रतट-पर भ्रमण करने जाया करते थे। उसी ओर वे हत्यारे भी जाने लग गये। एक दिन महाराजने उनको ताड़ लिया और खड़े होकर उनसे पूछा, "क्या तुम मेरा हनन करना चाहते हो!" महाराजके मुखकी दीप्तिको देखकर उनकी आँखे चौंधिया गईं। पवनसे कम्पित पीपलके पत्तेकी भाँति वे थरथर काँपने लगे। उस दिन वे इतने भयभीत हुए कि उन्होंने फिर महाराजके पीछे जानेका नामतक नहीं लिया। जीवनजी भी अपने दुष्कर्म्मोंसे इतने कम्पित हुए कि वहाँसे भागकर मद्रास चले गये।

व्याख्यान और शङ्का-समाधानके समय बहुतसे लोग हल्लागुल्ला भी करने लग जाते थे। कभी कभी ईंट-पत्थरकी वृष्टि भी हो जाया करती थी। इस लिए बाबा बिशनदासजी आदि बलवान् सेवक जन, महाराजकी रक्षा करनेके लिए सदा सावधान रहते थे।

बालुकेश्वरके निम्न प्रदेशपर एक पर्णकुटी निर्माण करके एक वैरागी बाबा वास करता था। वह जटाजूट था। बड़ा हृष्ट-पुष्ट, सुगठित और बलवान् था। उसका नाम था बलदेव। वह स्वामीजीके भाषण सुनने आया करता था। महाराजके कथनोंसे वह इतना प्रभावित हुआ कि उसने अपनी प्रतिमायें उठाकर, पासके एक तड़ागमें फेंक दीं। जटायें मुण्डवा डालीं। अपनी कुटिया छोड़कर श्रीचरण-शरण हीमें रहने लगा। बलदेव महाराजका अनन्य भावसे भक्त बन गया। रातके समय, दिनके समय, भ्रमण करते समय, व्याख्यानमें और शङ्का-समाधान आदिमें, वह सदा अपने प्रभुके साथ रहता। बड़ी चौकसीसे रक्षा करता। यदि कोई उद्दण्ड अथवा अक्खड़ मनुष्य स्वामीजीको मैली आँखसे देखता, उनकी शोभाके विरुद्ध अपशब्द कह बैठता तो बलदेव उसका सिरतक तोड़नेको समुद्यत हो जाता। भक्त बलदेव भगवानपर सर्वथा न्योछावर हो रहा था।

पण्डित कृष्णराम इच्छाराम गुजरात-निवासीने महाराजकी सेवामें आकर निवेदन किया, "भगवन्! मैं आपके पास लेख आदिका कार्य करके अध्ययन करना चाहता हूँ।" स्वामीजीने उसे सुयोग्य समझकर रख लिया और कहा, "हमारे पास दो लेखक थे। हमने उनको निकाल दिया है। अब आप उनके स्थान संस्कार-विधिके लिखनेका कार्य कीजिए।" कृष्णराम इच्छाराम जीने पूछा, "भगवन्! पहले लेखकोंका क्या अपराध था?" महाराजने कहा, "यहाँ मारवाड़ी सेठ नथमल पोद्दार हमारे पक्के सहायक और सच्चे सेवक हैं। उन्होंने एक दुकानवालेको कह रक्खा है कि स्वामीजीका कोई भी सेवक जो कुछ आकर माँगे, वह उसे दे देना और दाम हमारे नाम लिखते जाना। कई दिनोंतक रसोईकी सामग्री वहाँसे आती रही। एक दिन मैंने आप पड़तालकी कि आजतक रसोईमें कितने रुपयेकी सामग्री आ चुकी है। जाँच करनेपर पता लगा कि जितनी सामग्री आवश्यक है उससे सातगुणा अधिक रसोईके नामसे आई है और उसे बेचकर कर्म्मचारी पैसे खरे करते रहे हैं। उनके इस दुष्कर्म्मसे दुःखित होकर मैंने उनको निकाल दिया है।"

महाराजने फिर कहा, "ब्राह्मण लोग दानका अन्न खाते हैं, मिथ्या महात्म्योंको सुनाकर आजीविका चलाते हैं, इस लिए इनके मन शुद्ध नहीं रहे। इन्हें अधम कार्य्योंसे घृणा नहीं होती। यही कारण है कि ये दिनोंदिन निस्तेज होते चले जा रहे हैं।" महाराजने यह भी कहा, "मेरे साथ ऐसा ही वर्ताव फरुखाबाद आदि की पाठशालाओंके अध्यापकोंने किया। वे लोग ऊपरसे मेरे शिष्य बन गये। भक्तिभावसे मेरे सम्मुख आते। अपनेको मेरा अनुयायी प्रकट करते। मेरी पीठ पीछे, मेरे सिद्धान्तोंका खण्डन करने लग जाते। मुझे जब उनकी कोरी कपट लीला प्रतीत हुई तो मैंने पाठशालायें तोड़ दीं और उन पेटार्थी बगुले भक्तोंको विदा कर दिया।

कृष्णराम इच्छारामजीको स्वामीजी समय समयपर पढ़ाया भी करते थे। उनके अन्तःकरणमें वेदान्तके विचार गहरे धसे हुए थे। इसलिए महाराजने उनको कहा कि आप 'वेदान्त-ध्वान्त निवारण, लिखने लग जाइए। इससे आपके सारे विचार निश्चयरूपसे पलट जायँगे। महाराजकी युक्तियाँ प्रयुक्तियाँ

लिखते लिखते सचमुच कृष्णराम इच्छारामके विचार परिवर्तित हो गये। उनका वेदान्त-वादका गढ़ धुँएकी तरह उड़ गया।

मुम्बईमें स्वामीजीका मूर्ति-पूजा-खण्डनपर एक प्रबल व्याख्यान हुआ। उसमें उन्होंने बतलाया, "मूर्ति जड़ है, इसे ईश्वर मानोगे तो ईश्वर भी जड़ सिद्ध होगा। अथवा ईश्वरके समान एक और ईश्वर मानो तो परमात्माका परमात्मापन नहीं रहता। यदि यह कहो कि प्रतिमामें ईश्वरांश आ जाता है तो ठीक नहीं। इससे ईश्वर अखण्ड नहीं सिद्ध हो सकता। भावनामें भगवान् है, यह कहो तो मैं कहता हूँ कि काष्ठ-खण्डमें इक्षुदण्डकी और लोष्टमें मिश्रीकी भावना करनेसे क्या मुख मीठा हो सकता है? मृगतृष्णामें मृग जलकी बहुतेरी भावना करता है, परन्तु उसकी प्यास नहीं बुझती। विश्वास, भावना और कल्पनाके साथ सत्यका होना भी अत्यावश्यक है' मूर्ति-पूजनसे जो हानियाँ हो रही हैं, महाराजने उनको भी मर्मस्पर्शी शब्दोंमें वर्णन किया। उस दिन भीड़का कोई ठिकाना न था। लोग अति प्रभावित हो रहे थे।

महाराजके प्रचारका प्रभाव नगरपर अत्युत्तम हुआ। सैंकड़ों मनुष्य वल्लभ और गोकुलीय सम्प्रदायोंसे मुख मोड़ बैठे। पन्थोंकी मनमानी बातें माननेमें मनमें ग्लानि करने लगे। कुरीतियोंके प्रचारसे देशमें जो अनर्थ हो रहे थे उनसे लोगोंको घृणा होने लगी। उससमय, ऐसा प्रतीत होता था कि पन्थाई-पर्वतमालाओंमें भारी भूकम्प हो रहा है; और कोई नया युग आया चाहता है।

जिन लोगोंने स्वामीजीको मुम्बई आनेके लिए निमन्त्रण दिया था, उनमें बहुतसे ऐसे भी सज्जन थे जो स्वामीजीके सिद्धान्तोंसे सहानुभूति तो नहीं रखते थे, परन्तु कुछ पन्थोंको दबानेके लिए उनका उपयोग करना चाहते थे। जब उन लोगोंने देखा कि श्रीमद्दयानन्द किसीका भी पक्षपात नहीं करते, वे नये पुराने सभी सम्प्रदायोंका खण्डन करते हैं, तो ऐसे लोग धीरे धीरे खिसक गये। अब, जो पीछे रह गये वे शुद्ध हृदयसे स्वामीजीके सच्चे सहायक थे, कट्टर अनुरागी थे। अनेक सज्जन श्री महाराजके व्याख्यान सुनकर उनके अनुयायी बन गये थे। उन सब सज्जनोंने यह सोचा कि श्री स्वामीजीके

विचारोंका प्रचार करने और उनको स्थिर रखनेके लिए कोई सत्संग स्थापित करना चाहिए। इसलिए मार्गशीर्ष मास सम्वत् १९३१ में बहुतसे सज्जन मिलकर महाराजके पास आये और बोले, "हम आपके उपदेशोंसे पूरा लाभ उठानेके लिए सत्संगकी स्थापना करना चाहते हैं। कृपया आप श्रीमुखसे उसका नामकरण कर दीजिए।"

प्रेमियोंके उत्साहभरे वचन सुनकर स्वामीजी अति प्रसन्न हुए और आँखें बंद करके ध्यानमें लीन हो गये। जिस प्रकार निर्वात स्थानमें रक्खे हुए दीपककी शिखा अकम्प होती है, ऐसे ही कुछ समयतक, वे अचल रहे और फिर नेत्रोन्मीलन करके बोले, "इस सत्संगका शुभ नाम 'आर्य समाज' ही रखना उचित है।" भक्तोंने 'अत्युत्तम' कहकर महाराजके वचनका आदर किया। उसी समय पच्चीस सत्संगियोंके नाम लिखे गये, परन्तु कई कारणोंसे आर्य्य समाजकी स्थापना न हो सकी।

मुम्बईमें महाराजने मौखिक उपदेशोंके अतिरिक्त लेखका भी बहुत कार्य किया। 'सत्यार्थ प्रकाश' तो वहाँ जानेके दो मास पूर्वही लिखवाकर राजा जयकृष्णदासजीको छपवानेके लिए दे गये थे, परन्तु यहाँ उन्होंने वल्लभाचार्य-मत-खण्डन, स्वामी-नारायणमत-खण्डन और वेदान्त-ध्वान्त निवारण ये पुस्तकें मुद्रित कराकर प्रकाशित कीं। संस्कारविधि भी उस समय लिखी जा रही थी।

मुम्बईसे प्रस्थान कर श्री स्वामीजी सूरत पधारे। रेलके स्टेशनपर बड़े समारोहके साथ उनका स्वागत किया गया। पहले तो महाराज रायबहादुर जगजीवनदास खोशालदासके आवासमें ठहरे, परन्तु वह स्थान एकान्त न था, इस लिए सौदागर प्रेसके प्रबंधकर्त्ताकी कोठीमें चले गये। वह कोठी, कतार-पुर गाँवके मार्गपर, नगरसे कोसभरके अन्तरपर थी।

स्वामीजीके सहायकोंने पहला व्याख्यान कन्या-पाठशालामें कराया। व्याख्यान का विषय था 'स्वामी नारायण मत, रामनुज मत, वल्लभ मत, और ब्रह्म-समाज क्या है?' महाराजने इन मतोंकी अति उत्तमतासे युक्तियुक्त समालोचना की।

स्वामी नारायण मतका एक मनुष्य, व्याख्यानमें बड़े आवेशमें आ गया और उच्च स्वरसे बोला, "जो कुछ तुम कह रहे हो वह सब असत्य है।" स्वामीजीने उसे मीठे वचनोंसे समझाया, "घबराना नहीं चाहिए। जब तुम अपने धर्म्मको लोगोंके सम्मुख रखते हो तो उसकी सत्यताकी परीक्षा भी तो करने दो। व्यापारी होते हुए जिस प्रकार अपने ग्राहकोंके साथ शान्तिसे व्यवहार करते हो, वैसे ही तुम्हें धर्म्मके ग्राहकोंके साथ भी बर्ताव करना उचित है।"

व्याख्यानकी समाप्तिपर स्वामीनारायणके अनुयायियोंको शङ्कासमाधानके लिए समय दिया गया, परन्तु प्रश्नोत्तर किसीने भी न किया। जिस समय महाराज व्याख्यान-स्थानसे जाने लगे तो वल्लभ और स्वामी नारायणके अनुयायियोंने बहुत ऊधम मचाया, अपशब्द कहे और ईंट पत्थर बरसाये!

महाराजका दूसरा व्याख्यान, रघुनाथपुरामें ठाकुरभाई चुन्नीलाल चकावालाकी हवेलीमें होना नियत हुआ। नगरके प्रतिष्ठित जनसमुदायसहित, जब नियत समयपर, स्वामीजी वहाँ पहुँचे तो हवेलीका द्वार बंद था। पूछनेपर पता लगा कि वल्लभियोंने स्थानपतिपर दबाव डालकर द्वार बंद करा दिया है। लोग किसी दूसरे स्थानमें व्याख्यान करानेके लिए सोचने लगे, परन्तु स्वामीजीने घड़ी देखकर कहा, "समय हो गया है इस लिए यहीं खुले स्थानमें व्याख्यान होना चाहिए।" लोगोंने प्रार्थना की, "आप थोड़ी देर ठहर जाइए। हम आपके बैठनेके लिए कुर्सी ले आयें।" महाराजने कहा, "मुझे अपने बैठनेकी तो कोई चिन्ता नहीं, परन्तु आप लोग जो बिना फर्शके बैठ गये हैं और धूलमें खड़े हैं इसका ध्यान अवश्य है।" यहाँ भी उनका व्याख्यान बड़ी धूमधामका हुआ।

स्वामीजीका तीसरा भाषण कवि नर्मदाशङ्करजीके प्रबंधसे उनके मकानके सामने हुआ। एक इच्छाशङ्कर नामक पण्डित व्याख्यान ही में खड़ा होगया और-प्रतिमा-पूजनके पौराणिक प्रमाण बोलने लगा। महाराजने उसे दो एक बार ही उत्तर दिया था कि वह लड़खड़ा गया और लगा थरथर काँपने। उस समय साम्प्रदायिक लोग कोलाहल करते थे; ईंट, पत्थर और धूल फैंकते थे! सहायकोंने स्वामीजीको व्यख्यान बंद करदेनेकी विनय की। परन्तु

महाराजने कहा, "अपने भाईयोंके फैंके हुए ये ईंट-पत्थर मेरे लिए पुष्प-वर्षा है । व्याख्यान तो मैं समय ही पर समाप्त करूंगा" और उन्होंने ऐसा ही किया ।

मोहनलालजी बावा नामके एक ब्रह्मचारी सूरतमें रहते थे। उनका नगरमें अति सम्मान था। वे वेदान्तके अच्छे पण्डित थे। मूर्त्ति-पूजाके बड़े कड़े विरोधी थे। जब उन्होंने सुना कि श्रीमद्दयानन्दजी सूरतमें पधारे हैं तो उन्हें अपार प्रसन्नता प्राप्त हुई। ब्रह्मचारीजी अपने शिष्यवर्गसहित स्वामीजीकी सेवामें आए और साष्टांग नमस्कार करके बोले "भगवन्! श्रीमन्तकी शोभा मैं चिरकालसे सुनता हूँ। पूज्यपादके परिभ्रमण और उपदेशोंका वृत्तान्त समाचारपत्रोंमें पढ़ता रहता हूं। परन्तु मनमें महाराजके शुभ दर्शनोंकी अभिलाषा थी सो आज आपके शुभ दर्शन करके मैं स्वात्माको सौभाग्यशाली समझता हूं।" भक्ति-भावके भूरि भारसे नम्र, ब्रह्मचारी बहुत देरतक महर्षिके साथ ज्ञान-चर्चा करते रहे। महाराज भी उनको अत्यादरसे उत्तर देते थे। चलते समय ब्रह्मचारी जीने बड़ी विनीततासे श्रीसेवामें निवेदन किया, "भगवन्! कल मेरे स्थानपर भोजन जीमनेकी कृपा कीजिए।"

स्वामीजी प्रायः किसीके घरपर भोजन पाने नहीं जाया करते थे, परन्तु उस निष्काम भक्तका निमन्त्रण उन्होंने स्वीकार कर लिया। ब्रह्मचारीजी सहर्ष अपने स्थानको लौटे और अपने आश्रमसे राजपथतक उन्होंने सड़क बनवा दी। उसके दोनों ओर पुष्पोंके गमले रक्खे गये, कदली-स्तम्भ आरोपित किये गये और जहाँसे उनका स्थान आरम्भ होता था वहाँसे लेकर मुख्य स्थान तक मार्गमें स्वच्छ कपड़ा बिछा दिया।

जिस समय भगवान् उनके आश्रमपर पधारे तो ब्रह्मचारीजी अपने प्रतिष्ठित शिष्य समूह सहित स्वागतके लिए आगे आये। महाराजपर पुष्प-वर्षा करते हुए सबने "श्रीमद्दयानन्द महाराजकी जय" का नाद बार बार गुँजाया। एक सुन्दर सजे हुए स्थानपर अत्युत्तम आसन लगा हुआ था। महर्षिको उसीपर बैठनेके लिए निवेदन किया। महाराजके विराजमान हो जानेपर, ब्रह्मचारीजीने समीप जाकर नमस्कारपूर्वक उनके कण्ठमें फूलोंका हार पहराया। तत्पश्चात् वे आप भी बैठ गये और शिष्योंसहित ईश्वर स्तुतिके भजन गाने

लगे। ब्रह्मचारीजीको गानविद्याका अच्छा ज्ञान था। उनका कण्ठ कोमल और स्वर मृदु था। स्वामीजीके प्रेमसे, वे रसमें और भी निमग्न हो गये। उन्होंने सङ्गीतका एक समय बाँध दिया। फिर, उन्होंने महाराजको भोजन कराया। भोजनानन्तर कुछ विश्राम लेकर स्वामीजी अपने डेरेको चल पड़े। ब्रह्मचारीजी बड़ी दूरतक उनको छोड़ने आये।

एक दिन स्वामीजी भ्रमण करने जा रहे थे। स्कूलोंके अनेक युवक उनके साथ हो लिये। स्वामीजीने बालकोंको ब्रह्मचर्यकी शिक्षा दी। दूध, दही आदि पौष्टिक भोजन करना बताया। मादक वस्तुओंके सेवनमें दोष दिखाये और व्यायामकी शिक्षा देते हुए कहा, "व्यायाम खानपानकी तरह नित्य करना चाहिए। बलवान् युवक सुखी और सुप्रसन्न रहते हैं। निर्बल मनुष्यका जीवन साररहित, रोगोंका घर और नरकधाम बना रहता है।"

महाराजकी सरलता, कोमलता और सु-व्यवहारका नवयुवकोंपर बहुत ही अच्छा प्रभाव पड़ा।

स्वामीजीके स्थानपर एक दिन करतारपुरके ग्रामीण लोग आकर विनय करने लगे, "महाराज! नगरवासी तो आपका उत्तमोत्तम पदार्थोंसे सत्कार करते हैं, परन्तु एक दिन हम किसानोंकी विनति भी स्वीकार कीजिए; हमारे गाँवमें पधारिये, हम आपको 'पोंक' खिलाना चाहते हैं।"

स्वामीजीने कहा, "हमारे समीप ऊँच-नीच, सधन-निर्धन सब एकसा सत्कार पाते हैं। मुझे आज तो अवकाश नहीं है। कल व्याख्यान नहीं होगा, इसलिए कल आपके गाँवमें पहुँच जाऊँगा।"

अगले दिन ग्रामीण लोग रथादि लेकर महाराजको लेनेके लिए आ गये, परन्तु उन्होंने उसमें बैठना स्वीकार न किया। पैदल ही चल पड़े। गाँवके लोग भी उनके साथ साथ जाते थे, परन्तु महाराज इतना शीघ्र चलते थे कि वे लोग पीछे रह जाते थे, महाराज बार बार खड़े होकर उन्हें साथ मिलाते और फिर इकट्ठे होकर चलते थे।

वे चलते चलते मार्गमें अपने साथियोंको उपदेश भी देते थे कि पुत्रपुत्रीका छोटी आयुमें विवाह करना बहुत बुरा है। सन्तानके परित्राणके लिए इस

कुरीतिको अपनेमेंसे निकालदो । जैसे कच्चे खेतको काट लेनेसे अन्न नष्ट हो जाता है, कच्चे फल और ईखमें मिठास नहीं होता, ठीक उसी प्रकार छोटी आयुमें जो सन्तानका विवाह कर देते हैं उनका वंश भी बिगड़ जाता है। सन्तानमें सुख और उन्नतिका सदा अभाव ही बना रहता है । इस प्रान्तके कृषकोंमें यह कु-रीति सबसे अधिक है इस लिए वे स्वामीजीके कथनसे बहुत प्रभावित हुए ।

जब महाराज गाँवके निकट पहुँचे तो उस गाँवके सभी छोटे बड़े स्त्री-पुरुष श्रीदर्शनोंके लिए बाहर आ गये । आमके पेड़के नीचे स्वच्छ वस्त्र बिछाकर महाराजको बिठाया गया। पाटीदारोंकी पंक्ति भी महाराजको चारों ओरसे घेरकर बैठ गई। कृषक जन 'पोंक' लाकर स्वामीजीको देते थे और महाराज उसे बच्चे, बूढों और युवकोंमें बाँटते जाते थे । इस प्रकार प्रसाद-वितरण करनेके अनन्तर महाराजने भी 'पोंक' ग्रहण किये और उन किसानोंको एक बहुत अच्छा उपदेश दिया। ईश्वरका भजन और सत्संग करना बताया। दिनके चौथे पहर जब महाराज सूरतको लौटने लगे तो ग्रामवासी लोगोंने विनयकी कि हम कृषिजीवी जन हैं । हमारी स्थिति साधारण है । हम इस योग्य तो नहीं थे, पर यह आपकी अपनी कृपा है, जिससे हमारा भक्ति-भाव स्वीकृत हुआ है ।

स्वामीजीने उनको कहा, "तुम अपनेको तुच्छ क्यों मानते हो? तुमतो सच्चे वैश्य हो, परिश्रमी हो । तुम्हारी आजीविका निर्दोष है । तुम्हारे ही श्रमपूर्वक उपार्जन किये अन्नसे राजा और प्रजाका पालन पोषण होता है।"

वे लोग महाराजके उपदेशसे गद्गद् हो गये और उनको दूरतक पहुँचा-कर पीछे लौटे ।

एक दिन, व्याख्यानके समय एक सेठने स्वामीजीके चरणोंमें एक बहुमूल्य शाल रख दिया । स्वामीजीने उस भद्र मनुष्यको कहा, "मैं यह वस्त्र कदापि न लूँगा । इस प्रकार कथा-व्याख्यानोंपर चढ़ावा चड़ाना अथवा लेना आर्ष रीतिके सर्वथा प्रतिकूल है।" उसने कहा, "मैं आपको यह वस्त्र कोई कथाके कारण नहीं दे रहा हूँ । यह तो केवल आपके प्रति प्रेमका प्रकाश है ।"

स्वामीजीने तब उसे कहा, "ऐसे समयमें लेना इसी बातको प्रकट करता है कि मैं भी पेटू पुरोहितोंकी भाँति, अपने पोथियोंके पाठ बेचता फिरता हूँ।" इसपर वह सन्तुष्ट हो गया।

सूरतमें महाराजको शिक्षा-विभागके अधिकारी डाक्टर बूलर मिले और देरतक संस्कृतमें वार्त्तालाप करते रहे।

जिन लोगोंने सूरतमें स्वामीजीको निमन्त्रित किया था वे यह समझे कि उनके भोजन आदिका प्रबन्ध मुम्बईके सेठोंकी ओरसे है। इस लिये द्रव्यकी सहायता किसीने भी न की। उधर रसोईके व्ययके लिए द्रव्य थोड़ा रह गया। अन्तमें महाराजने अपने कर्म्मचारियोंसहित निरी खिचड़ीपर ही निर्वाह किया, परन्तु किसीसे अर्थ-याचना नहीं की।

दसवाँ सर्ग।

सूरतसे चलकर श्री महाराज भरुचमें सुशोभित हुए। वहाँ नर्मदाके किनारे भृगु-आश्रममें उन्होंने आसन लगाया। स्वामीजीके भाषण सायं-काल हुआ करते थे और सहस्रों मनुष्य उपदेश श्रवण करते थे।

माधवराव त्र्यम्बक नामक एक दक्षिणी वहाँ निवास करता था। उसके बहुतसे शिष्य थे। वह, एक दिन सदल बल, सभा-स्थानमें आया। प्रतिमा-पूजनपर शास्त्रार्थ करनेके लिए समुद्यत हुआ और कहने लगा कि आज संहिता-से मूर्ति-पूजा सिद्ध करके ही जाऊँगा। डींग तो उसने इतनी लम्बी हाँक दी, पर था वह निरा औघड़नाथ! थोड़े ही शब्दोंमें उसके ढोलकी पोल दीखने लगी।

माधवने अंगुलीसे तर्जना करते हुए महाराजको कठोर शब्द कहना आरम्भ कर दिया। माधव भगवान्‌को तर्जना कर रहा है, यह देखकर भक्त बलदेवकी आँखें रक्तवर्ण हो गईं। उसने दाँत पीसते हुए माधवको कहा, "भलमनसीसे अब भी टल जा, नहीं तो तेरी कपाल-क्रिया अभी किये देता हूँ। यदि तूने महाराजकी ओर अब अंगुली उठाई तो तेरी हड्डी पसली एक कर दूंगा।"

भक्त बलदेवके धधकते कोपानलको देखकर माधवराव त्र्यम्बकके तोते उड़ गये । वह खड़ा खड़ा काँपने लगा । उस समय महाराजने कहा, "बलदेव! कोप किसपर? ये तो हमारे भाई हैं । इन्हींकी कल्याणकामना करते रात दिन बीतते हैं। बलदेव! शान्त हूजिए। मेरे मानापमानपर ध्यान न दीजिए। धर्म्मोपदेशकको तो भूमिके सदृश सहनशीलता सम्पादन करनी चाहिए ।" गुरुदेवका वचन सुनकर बलदेव शान्त हो गया । माधवने भी सोचा कि सहजसे पिण्ड छूट गया है, इस लिए, वहाँसे भाग गया ।

एक पारसी कैथलिक ईसाई हो गया था । उसने ब्राह्मणोंकी सहायतासे मूर्ति-पूजाकी सिद्धिपर व्याख्यान देनेके लिए विज्ञापन निकाले । व्याख्यानमें पधारनेके लिए स्वामीजीको निमन्त्रित किया । नियत समय-पर जब महाराज वहाँ गये तो लोगोंने प्रार्थना की कि आप ऊँचे आसनपर विराजिए । परन्तु वे यह कहकर सबके साथ बैठ गये कि इस समय मैं श्रोता हूँ। मुझे श्रोताओंहीमें बैठना चाहिए ।

व्याख्यानमें उस वक्ताने महाराजके लिए बहुत अपमान-सूचक शब्द कहे। उस समय वहाँ कुछ पूर्वीय सैनिक भी उपस्थित थे। वे अपने क्रोधको वशमें न रख सके। वे व्याख्यानदाताको पीटा ही चाहते थे कि श्रीमहाराजने उनको रोक लिया और कहा, "अपमानकर्त्ताका अपमान करनेसे उसका सुधार नहीं होता, किन्तु सम्मान देनेसे वह सुधर जाता है। जैसे आगमें आग डालनेसे वह शान्त नहीं होती, ऐसे ही द्वेषीकी द्वेष-बुद्धि, उसके साथ द्वेष करनेसे दूर नहीं हो सकती । अग्निको शान्त करनेका साधन जल है । इसी प्रकार द्वेषको मिटानेका साधन शान्ति धारण करना है।" महाराजके उपदेशको सुन कर सैनिक शान्त हो गये ।

जेठालालजी, वकील एक दिन स्वामीजीको कहने लगे, "महाराज! यदि आप शास्त्रोंद्वारा मूर्ति-पूजाका मण्डन करने लग जायँ तो हम आपको शङ्कर-का अवतार मानने लग जायँगे।" स्वामीजीने उत्तरमें कहा, "मुझे विश्व-नाथकी पदवीका लालच काशी-नरेशने भी दिया था, परन्तु मैं किसीकी सांसारिक वासनाके वशीभूत होकर सत्यका परित्याग कभी भी नहीं कर सकता ।"

इन वचनोंने जेठालालजीके अन्तःकरणपर गहरा प्रभाव डाला। वे सत्संगमें रुचिपूर्वक आने लगे। एक समय जेठालालजीने फिर कहा, "आपकी संस्कृत अति सुगम होती है। पण्डितों ऐसी जटिल भाषा मैंने आपसे नहीं सुनी। दूसरे, जब आप पण्डितोंसे शास्त्रार्थ करते हैं तब भी उनका मुख केवल युक्तियों और प्रमाणोंसे ही बंद कर देते हैं। पण्डित लोग तो एक एक शब्दपर ही सारा सारा दिन बिता देते हैं। वैसा आप भी क्यों नहीं करते?"

महाराजने कहा, "महाशयजी! मैं सुगम संस्कृत इसलिए बोलता हूँ कि सुननेवालोंको समझनेमें सुगमता हो। मेरा उद्देश्य जनताको समझाना है, न कि अपना पाण्डित्य छाँटना। परन्तु यह भी निश्चय रखिए कि सुगम भाषामें बोलनेकी रीति किसी भाषाके अल्प ज्ञानसे नहीं प्राप्त हुआ करती। और फिर मेरे पास इतना समय कहाँ है कि एक एक शब्दके जोड़तोड़में घण्टों बिता दूँ। एक एक शब्दपर अड़कर वे ही सारा दिन गवाँते हैं, जो कर्महीन और उद्देश्य शून्य हैं। मेरा समय जनताके निमित्त समर्पित है। उसे मैं पक्षियोंकी तरह चाँय चाँय और काँय काँयमें खो नहीं सकता।

भोजनके अनन्तर स्वामीजी अपने कर्मचारियोंको भी कुछ कालके लिए विश्राम करनेकी आज्ञा दे देते थे। एक दिन एक विद्यार्थी स्वामीजीकी ओर पाँव करके सो गया। जब सारे कर्मचारी जाग उठे तो महाराजने उनको अपने पास बुलाकर उपदेश दिया कि प्रत्येक आर्यको आर्य-मर्यादाका पालन करना चाहिए। बिना बुलाये बोलना, बड़ोंकी बातोंमें आप-ही-आप बोलने लग जाना आर्य मर्यादाके विरुद्ध है। अपने माननीय व्यक्तियोंकी ओर पीठ करना और पाँव करके सोना भी आर्य मर्यादाके प्रतिकूल है।

स्वामीजीके उपदेशको सुनकर अपराधी विद्यार्थीने उनके चरण पकड़ लिये और आगेके लिए मर्यादा-पालनका प्रण किया।

भरुचमें स्वामीजीने एक दिन एक विद्यार्थीको कूँएसे जल लानेको कहा। उसने कहा, "मैं ब्राह्मण हूँ; मेरा काम पानी ढोना नहीं है" उसी दिन सायं समय महाराजने सब कर्मचारियोंको एकत्रित करके कहा, "जिसके निकट कोई रहता हो और जिससे विद्या ग्रहण करता हो उसके वचनको अवश्य मानना चाहिए। उसकी आज्ञा कदापि भङ्ग नहीं करना चाहिए।"

फिर स्वामीजीने उनको कहा, "गुरुसेवा किस प्रकार करनी चाहिए इस-पर मैं आपको आप-बीती सुनाता हूँ। जब मैं मथुरामें अध्ययन करता था तो अपनी स्मरण-शक्ति और विनयके कारण दण्डीजीकी अपार कृपाका पात्र बन गया था। इसी लिए मेरे सहपाठी मुझसे ईर्ष्या करने लग गये। उनका और तो कुछ बस न चला, अन्तमें मुझे दण्डीजीकी दयासे वंचित करने लगे। उन्होंने एकता करके गुरुजीको कहा कि 'महाराज! दयानन्द बड़ा अविनीत है। वह आपके पास तो अति नम्रता से मीठी मीठी बातें बनाता है, परन्तु दूसरे विद्यार्थियोंके सामने आपकी नकलें करने लगता है। आँखें बंद करके आपकी तरह लाठी लेकर चलता और हंसी उड़ाता है। उसकी इस कु-चेष्टाको देखकर हमें अति क्रोध होता है। परन्तु करें तो क्या, आप तो उसको परम विश्वास-पात्र और विनीत मानते हैं।

"मेरे सहपाठियोंकी यह चाल चल गई। दण्डीजीने कोपावेशमें मुझे बहुत कटु वचन कहे और लाठीसे इतना मारा कि मेरे घाव हो गया।" स्वामीजी ने भुजा नंगी करके उस घावका चिन्ह भी उन्हें दिखाया। उस दिनसे, उनके किसी कर्म्मचारीने उनका वचन उल्लंघन नहीं किया।

एक दिन पण्डित कृष्णराम इच्छारामको ज्वर आ गया। ज्वर-पीड़ित वे एक कोठरीमें जाकर पड़ गये। जब स्वामीजीको पता लगा तो वे उनके पास जाकर उनका सिर दबाने लगे। पण्डितजीने कहा, "भगवन्! आप ऐसा न कीजिए। मैं आपसे सेवा कराना नहीं चाहता।" महाराजने कहा, "इसमें कोई दोष नहीं है। एक दूसरेकी सहायता और सेवा करना तो मनुष्यका धर्म्म ही है। बड़े यदि छोटोंकी सेवा न करें तो छोटोंमें सेवाका भाव आ ही नहीं सकता।"

भरुचसे चलकर श्री महाराज दिसम्बर मासमें अहमदाबाद पधारे अनेक सज्जन उनके स्वागतके लिए रेलवे स्टेशनपर उपस्थित थे। एक भाटिया सेठने स्वामीजीको बड़े आदरसे अपनी गाड़ीमें बैठाया और आप भी साथही बैठ गया। जिस मार्गसे गाड़ी जा रही थी उसी मार्गपर सेठका निर्माण कराया हुआ एक मन्दिर था। उस मन्दिरपर उसने दो लाख रुपया व्यय किया था। उस मन्दिरकी ओर संकेत करके सेठने उसके सौन्दर्यका वर्णन किया। महा-

राजने गाड़ीपर हाथ मारकर कहा, ऐसी अविद्या हीसे आज हम लोगोंकी यह दुर्दशा हो रही है। यदि इतना ही द्रव्य आप पाठशालापर लगा देते तो वहाँसे वेदशास्त्रके ज्ञाता पण्डित तो निकलते।"

स्वामीजीको तापती नदीके किनारे पुलके पास माणिकेश्वर महादेवके मन्दिरमें विराजमान किया गया। उनके व्याख्यान प्रतिदिन ट्रेनिङ्ग कालेजमें हुआ करते थे। महाराजके उपदेशोंमें श्रोताओंकी तुलनातीत संख्या होती थी।

वैसे तो नगरके सभी प्रतिष्ठित स्वामीजीके सहायक थे, परन्तु रायबहादुर गोपालराव हरि देशमुख तो उनके अनुयायी ही समझे जाते थे।

अहमदाबादमें रायबहादुर बेचरदासजीके मकानपर गुजराती पण्डित मण्डलीके साथ शास्त्रार्थ हुआ। शास्त्रार्थ 'आ कृष्णेन रजसा' तथा 'या ते शिवा तनूः' इन दो मन्त्रोंपर था। थोड़ी देर तो पण्डित लोग वाद करते रहे, परन्तु अन्तमें स्वामीजीके खण्डनीय प्रमाणों और अटूट युक्तियोंके आगे वे नतशिर हो गये। शास्त्रार्थके पश्चात्, उसी स्थानपर सारी सभाकी ओरसे स्वामीजीका सत्कार किया गया। महाराजको एक उत्तम सिंहासनपर बैठाकर पुष्प-माला पहराई गई और उनपर पुष्प-वर्षा की गई। तदनन्तर सारी सभाकी प्रार्थनापर भगवान्‌का, वहीं एक प्रभावशाली व्याख्यान हुआ।

एक समय, एक पण्डित स्वामीजीके निकट आकर बोला, "महाराज! हम आपके कथनसे अपना धर्म्म क्यों छोड़ें? श्रीकृष्णजीने भी कहा है कि 'श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः,' अपना धर्म्म कुछ न्यून-गुणवाला भी हो तो भी अच्छा है।"

स्वामीजीने उसको कहा कि आप गीताके तात्पर्य हीको नहीं समझे। यहाँ धर्म्मसे तात्पर्य सम्प्रदायिक मतोंसे नहीं है किन्तु इस पदका अर्थ वर्णाश्रम धर्म्म है। वह पण्डित इस अर्थसे अतीव सन्तुष्ट हो गया।

इस प्रकार अहमदाबादवासियोंको कृतकृत्य करनेके अनन्तर श्रीमहाराजने राजकोटको प्रस्थान किया।

ट्रेनिङ्ग कालेज राजकोटके प्रिंसिपल श्री हरगोविन्ददासजीकी प्रार्थनापर पौष वदी ५ सम्वत् १९३१ को स्वामीजी अहमदाबादसे चलकर राजकोटमें पधारे। एक उत्तम धर्म्मशालामें उनका आसन सुशोभित हुआ। राजकोटमें एक

राजकुमार महाविद्यालय भी है। उसमें दूर दूरके राजकुमार आकर विद्याध्ययन किया करते हैं। जब महाराजके व्याख्यान होते थे तो महाविद्यालयसे राजकुमार भी सुनने आते थे।

स्वामीजीने यहाँ आर्यसमाजकी स्थापना भी कर दी। उस समय यद्यपि नियम-उपनियम नहीं बनाये गये थे, परन्तु अधिकारी आदि सब नियत हो गये थे।

एक दिन उपर्युक्त महाविद्यालयके अध्यापक उन्हें महाविद्यालय दिखानेके लिए ले गये। निरीक्षणके अनन्तर वहाँके आचार्य महाशयने स्वामीजीसे प्रार्थनाकी कि राजकुमारोंको कुछ उपदेश दीजिए। महाराजने राजकुमारोंको सम्बोधन करके बहुत ही उपयुक्त उपदेश दिया।

उस भाषणके प्रभावको आचार्य महाशयने भी अनुभव किया।

आचार्य्य महाशयने वार्त्तालाप में स्वामीजी को कहा "आप तो अहिंसा धर्म्मका उपदेश देते हैं और राजकुमार शिकार करते हैं। आपके धर्म्म में इनको तो कोई स्थान नहीं है।"

स्वामीजीने उत्तर दिया, "हमारे पूर्वज ऋषि महर्षि बड़े ज्ञानी थे। मृगादि पशु खेतोंको, वाटिकाओंको और उद्यान आदिको न नष्ट कर दें, इस लिए क्षत्रियोंके लिए उनके वधका विधान कर गये हैं। अतः, पररक्षार्थ क्षत्रियों का यह कर्म उपकार ही है।"

जब स्वामीजी वहाँसे आने लगे तो आचार्यजीने उनको ऋग्वेद की दो पुस्तकें भेंट कीं।

राजकोट में महाराजने वेदोंके ईश्वरीय ज्ञान होनेपर एक व्याख्यान दिया। उसमें उन्होंने अनेक युक्तियां देते हुए कहा, "जिस परमात्मदेवने मनुष्योंकी आँखें आदि इन्द्रियोंके लिए सूर्यादि सहायक पदार्थ पैदा किये हैं, यह हो नहीं सकता कि उसने मनुष्यके मस्तिष्कको उज्वल और उन्नत करनेके लिए ज्ञान न दिया हो। वह ज्ञान सृष्टिके आदिही में होना चाहिए।"

श्री हरगोविन्ददासजीके साथ महाराज गुजराती भाषामें वार्त्तालाप किया करते थे। वे अति शुद्ध, सरल और सभ्य गुर्जर भाषा बोलते थे।

काठियावाड़ प्रान्तके अनेक भद्र मनुष्योंने महाराजके उपदेशोंसे धर्म्म-जीवन प्राप्त किया, शान्ति लाभ की और सत्यासत्यका परीक्षण करना आरम्भ कर दिया ।

इस प्रकार अपने जन्म-प्रान्तमें विवेकका बीज बोकर, श्री स्वामीजी पौष सुदी एकादशी सम्वत् १९३१ को अहमदाबादकी ओर चल पड़े । पौषकी पूर्णमासीको श्री महाराजने अहमदाबाद में दुबारा पदार्पण किया । इस बार उन्होंने स्वामी नारायण मतका अति ही खण्डन किया ।

महाराज बड़ोदामें जाना चाहते थे । परन्तु उन्हीं दिनोंमें मल्हारराव सिंहासनसे उतार दिये गये थे । वहाँ सेनाके गमनागमनसे गड़बड़ विद्यमान थी । उन्होंने वह समय, वहाँ जानेके लिए उपयुक्त न समझा और वे अहम-दाबाद से बलसाड़में आ गये ।

वहाँ महाराजका बड़े समारोहसे स्वागत हुआ और एक पारसीकी उत्तम कोठीमें उनको उतारा गया । अनेक विषयोंपर मनोरञ्जक व्याख्यान होते रहे । बलसाड़में उनके व्याख्यानोंमें अधिक संख्या मुसलमानों और पारसि-योंकी होती थी ।

कुछ एक धर्म्म-ध्वजी जनोंने यहाँ भी स्वामीजीका विरोध किया । उन दिनोंमें भावनगरके राज-गुरु भवानीशङ्करजी वहाँ आये हुए थे । वे लोग उनको प्रेरित करके शास्त्रार्थके लिए ले आये । स्वामीजी उस समय व्याख्यान दे रहे थे, इस लिए राजगुरु भी बैठकर सुनने लगे । भाषण समाप्त हो जानेपर स्वामीजीने घोषणा की कि जिस किसीको प्रश्न करना हो वह प्रसन्नतापूर्वक कर सकता है । कलह-प्रिय लोग राज-गुरुजीको शङ्का करनेके लिए बारबार प्रेरणा करने लगे । परन्तु उन्होंने उनको स्पष्ट कह दिया कि परमहंसजी वेद-शास्त्रके अनुसार कह रहे हैं । मैं इनके साथ कदापि व्यर्थ वाद नहीं करूंगा । राज-गुरुके कथनको सुनकर उन लोगोंके मुख मुरझा गये, परन्तु भद्र श्रोताओंके हर्षका पार न रहा ।

कई दिनोंतक बलसाड़में निवास करके महाराज जब बसईको प्रस्थान करने लगे तो अनेक प्रतिष्ठित पारसी और दूसरे सज्जन उनको रेलवे स्टेशनतक

पहुँचाने आये। जिस समय महाराज गाड़ीमें आरूढ़ हुए तो उनके कण्ठमें पुष्पमाला पहराई गई और उनपर कुसुम-वर्षा बरसाई गई।

बसईमें पधारकर स्वामीजीने एक अत्युत्तम व्याख्यान दिया। यहाँ भी अनेक भद्र जनोंने अपने नाना प्रकारके संशय मिटाये।

बसईमें स्वामीजीके एक नौकरने उनकी घड़ी चुरा ली। कर्मचारियोंने अनुसन्धान करके अपराधीको पकड़ लिया और लाकर श्री महाराजके पास उपस्थित किया।

वह नौकर स्वामीजीको देखकर रोता हुआ श्री चरणोंमें गिर पड़ा। कर्मचारी तो चाहते थे कि उसे राजदण्ड दिलाया जाय, परन्तु भगवान्ने ऐसा करना स्वीकार न किया। और कहा, "हमारा काम साँपको मारना है, न कि उसकी बिम्बीको कूटना पीटना।" महाराजने अपराधीको चोरीके ऐसे दोष और फल समझाये, जिनसे काँपकर उसने प्रण किया कि मैं फिर कभी भी इस पाप-पङ्कमें नहीं पड़ूँगा।

बसईमें धर्म्मोपदेश देकर महाराज मुम्बई जानेके लिए प्रस्तुत हो गये।

सङ्गठन काण्ड ।

पहला सर्ग ।

दूसरी बार जब महाराज मुम्बईमें पधारे तो भक्तजन उनको बड़े समारोहसे लाये और वालुकेश्वरपर, लालजी दलालके बङ्गलेमें ठहराया । स्वामीजीके अनुयायी आर्यसमाजकी स्थापना करनेके लिए बड़े उत्सुक थे। उन्होंने माघ १९३१ में रावबहादुर दादूबा पाण्डुरङ्गकी प्रधानतामें एक साधारण सभा लगाकर आर्यसमाजके नियमों और उद्देशोंपर विचार करनेके लिए एक उपसभा नियत की । उस सभाके कुछ सभासदोंने यह सम्मति दी कि कई कारणोंसे अभी आर्यसमाज स्थापित करना उचित नहीं है। इस लिए आर्यसमाजकी स्थापनाका प्रश्न, फिर कुछ दिनोंके लिए स्थगित हो गया ।

महाराजने श्रीउपदेशोंसे लोगोंको फिर उत्तेजित किया, जिससे सबने मिलकर, सर्वसम्मतिसे राजमान्य राजेश्री पानाचन्द्र आनन्दजी पारिखको नियमोपनियम निर्माण करनेके लिए चुना । पारिख महाशयने थोड़े ही दिनोंमें आर्यसमाजके नियम सङ्गठन करके सबके सामन उपस्थित कर दिये । उनको देखकर श्री महाराजने भी हार्दिक अनुमोदन किया ।

महाराजके आदेशानुसार चैत्र सुदी ५ सम्वत् १९३२ वैक्रमी शनिवारको मुम्बई नगरके गिरगाँव मुहल्लेमें, डाक्टर माणिकचन्द्रकी वाटिकामें, सायं समय आर्यसमाजकी शुभस्थापना हुई । वैदिक-धर्मप्रचारक सभाकी नींव रक्खी गई। सुधारका कल्पतरु आरोपित किया गया । आर्य जातिमें नूतन जीवन और जागृति उत्पन्न करनेका साधन उपस्थित हो गया । आर्य मान-मर्यादा, तथा आर्य गौरव-गरिमाकी रक्षाके निमित्त एक सैनिकसंघ संगठित हुआ । सर्वसाधारणको धर्मप्रदान करनेके लिए एक सत्सङ्ग-गङ्गाका स्रोत खुल गया और दीनदुःखियोंकी सहायताके लिए एक सेवकसमिति उपस्थित हो गई । उस समय आर्यसमाजके ये नियम निर्धारित हुए:—

१. सब मनुष्योंके हितार्थ आर्य-समाजका होना आवश्यक है।

२. इस समाजमें मुख्य स्वतःप्रमाण वेदोंहीको माना जायगा। साक्षीके लिए, वेदोंके ज्ञानके लिए और इतिहासके लिए शतपथादि ब्राह्मण, छःवेदाङ्ग चार उपवेद, छः दर्शन और ११२७ वेदोंकी व्याख्यानरूप शाखायें इन आर्ष ग्रन्थोंको भी वेदानुकूल होनेसे गौण प्रमाण माना जायगा।

३. इस समाजमें प्रतिदेशके मध्य एक प्रधान समाज होगा और दूसरे शाखा प्रतिशाखा समझे जायंगे।

४. सब समाजोंकी व्यवस्था प्रधान समाजके अनुकूल ही रहेगी।

५. प्रधान समाजमें सत्योपदेशके लिए संस्कृत और आर्यभाषामें नाना प्रकारके ग्रन्थ रहेंगे और एक साप्ताहिक पत्र-'आर्य प्रकाश' निकलेगा। ये सब समाजमें प्रवृत्त किये जायँगे।

६. प्रत्येक समाजमें एक प्रधान पुरुष, दूसरा मन्त्री तथा अन्य पुरुष और स्त्री, सब सभासद् होंगे।

७. प्रधान पुरुष इस समाजकी व्यवस्थाका यथावत् पालन करेगा और मंत्री सबके पत्रोंके उत्तर तथा सबके नाम व्यवस्था लेख करेगा।

८. इस समाजमें सत्पुरुष, सदाचारी और परोपकारी सभासद् बनाये जायँगे।

९. प्रत्येक गृहस्थ सभासद्को उचित है कि वह अपने गृह-कृत्यसे अवकाश पाकर, जैसे घरके कामोंमें पुरुषार्थ करता है, उससे अधिक पुरुषार्थ इस समाजकी उन्नतिके लिए करे और विरक्त तो समाजोन्नतिहीमें नित्य तत्पर रहे।

१०. प्रत्येक सप्ताहमें एक दिन प्रधान, मन्त्री और सभासद् समाज-स्थानमें एकत्रित हों और सब कामोंसे इस कामको मुख्य जानें।

११. एकत्र होकर सर्वथा स्थिर चित्त हों, पक्षपात छोड़कर परस्पर प्रीतिसे प्रश्नोत्तर करें; फिर सामवेद गान, परमेश्वर; सत्यधर्म्म, सत्यनीति, सत्योपदेश-के विषयहीमें बाजे आदिसे गान, और इन्हीं विषयोंपर मंत्रोंका अर्थ और व्याख्यान हो। फिर गान, फिर मंत्रोंका अर्थ, फिर गान आदि।

१२. प्रत्येक सभासद् न्यायपूर्वक पुरुषार्थसे जितना धन प्राप्त करे उसमेंसे

शतांश 'आर्य समाज' 'आर्य विद्यालय' और 'आर्य प्रकाश' पत्रके प्रचार और उन्नतिके लिए आर्यसमाजके कोषमें देवे।

१३. जो मनुष्य इन कार्योंकी उन्नति और प्रचारके लिएँ जितना प्रयत्न करे उसका उतनाही अधिक सत्कार, उत्साह वृद्धिके लिए होना चाहिए।

१४. इस समाजमें वेदोक्त प्रकारसे अद्वैत परमेश्वरहीकी स्तुति, प्रार्थना और उपासना की जायगी। स्तुति—निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, अजन्मा, अनंत, निर्विकार, अनादि, अनुपम, दयालु, सर्वाधार और सच्चिदानन्द आदि विशेषणोंसे परमात्माका गुण-कीर्तन करना; प्रार्थना—सब श्रेष्ठ कार्योंमें उससे साहाय्य चाहना; उपासना—उसके आनन्दस्वरूपमें मग्न हो जाना। सो पूर्वोक्त लक्षणयुक्त परमात्माहीकी भक्ति करना चाहिए, उसको छोड़ अन्य किसीका आश्रय नहीं लेना चाहिए।

१५. इस समाजमें निषेकादि अन्त्येष्टिपर्यन्त संस्कार वेदोक्त किये जायँगे।

१६. आर्य विद्यालयमें वेदादि सनातन आर्ष ग्रन्थोंका पठन पाठन हुआ करेगा; और सब स्त्री पुरुषोंको वेदोक्त रीतिहीसे शिक्षा दी जायगी।

१७. इस समाजमें स्वदेशके हितार्थ दो प्रकारकी शुद्धिके लिए प्रयत्न किया जायगा—एक परमार्थ, दूसरे व्यवहार। इन दोनोंका शोधन तथा संसारके हितकी उन्नति की जायगी।

१८. इस समाजमें न्याय पक्षपातसे रहित और प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे यथावत् परीक्षित सत्य धर्म, वेदोक्तही माना जायगा। इससे विपरीत कदापि नहीं।

१९. इस समाजकी ओरसे श्रेष्ठ विद्वान् लोग सदुपदेश करनेके लिए समयानुकूल सर्वत्र भेजे जायँगे।

२०. स्त्री और पुरुष इन दोनोंके विद्याभ्यासके लिए यथासम्भव प्रत्येक स्थानमें आर्य विद्यालय पृथक् पृथक् बनाए जायँगे। स्त्रियोंकी पाठशालामें अध्यापिका आदिका सब प्रबंध स्त्रियोंद्वारा ही किया जायगा, और पुरुषोंकी पाठशालामें पुरुषोंद्वारा, इससे विरुद्ध नहीं।

२१. इन पाठशालाओंकी व्यवस्था प्रधान आर्य समाजके अनुकूल पालने की जायगी।

२२. इस समाजमें प्रधानादि सब सभासदोंको परस्पर प्रीतिपूर्वक अभिमान, हठ, दुराग्रह और क्रोधादि दुर्गुणोंको छोड़कर उपकार और सुहृद्भावसे निर्वैर होकर स्वात्मवत् सबके साथ वर्त्तना होगा ।

२३. विचारके समय सब व्यवहारमें जो न्याययुक्त, सर्वहितसाधक सत्य बात स्थिर हो वह सब सभासदोंपर प्रकाशित करके वही बात मानी जाय ।

२४. जो मनुष्य इन नियमोंके अनुकूल आचरण करनेवाला, धर्म्मात्मा, सदाचारी हो उसको उत्तम सभासदोंमें प्रविष्ट करना; इसके विपरीतको साधारण समाजमें रखना और अत्यन्त प्रत्यक्ष दुष्टको समाजसे निकाल ही देना । परन्तु यह काम पक्षपातसे नहीं करना, किन्तु ये दोनों कार्य श्रेष्ठ सभासदोंके विचारहीसे किये जायँ, अन्यथा नहीं ।

२५. आर्यसमाज, आर्यविद्यालय, आर्य प्रकाश पत्र और आर्य समाजका कोष इन चारोंकी रक्षा और उन्नति प्रधानादि सब सभासद् तन-मन-धनसे सदा किया करें ।

२६. जबतक नौकरी करने और करानेवाला आर्यसमाजस्थ मिले तबतक औरकी नौकरी न करे और न किसी अन्यको नौकर रक्खे। वे दोनों परस्पर स्वामी-सेवक भावसे यथावत् वर्त्तें ।

२७. जब विवाह, जन्म-मरण, अथवा अन्य कोई दान करनेका अवसर उपस्थित हो तब तब आर्यसमाजके निमित धन आदि दान किया करें। ऐसा धर्मका काम दूसरा कोई नहीं है, ऐसे समझकर इसको कभी न भूलें ।

२८ इन नियमोंमेंसे यदि कोई नियम घटाया बढ़ाया जायगा तो सब श्रेष्ठ सभासदोंके विचारहीसे सबको विदित करके ऐसा करना होगा ।

ऊपर कहे नियमोंके स्वीकार करनेके पश्चात् प्रधान, मंत्री आदि अधिकारी चुने गये। कुछ कालतक तो समाजके अधिवेशन शनिवारको होते रहे, परन्तु कई एक सभासदोंको यह वार अनुकूल नहीं पड़ता था इसलिए, समयपरिवर्तन करके, सत्संगका दिवस आदित्यवार रक्खा गया ।

बम्बईमें आर्यसमाज स्थापित करके महाराज अहमदाबाद चले गये और वहाँसे लौटते हुए बड़ोदामें ठहरे। वहाँ उनका आसन विश्वामित्रीके किनारे

महादेवके मन्दिरमें किया गया। महाराजके खान पानका सारा प्रबंध राज्यकी ओरसे था ।

स्वामीजीका पहला व्याख्यान वेदाधिकारपर हुआ। इसमें दीवानादि सभी अधिकारी उपस्थित हुए। गोविन्द शास्त्री और आपा शास्त्री आदि गुजराती तथा दक्षिणी पण्डित भी आये। उपदेशमें प्रसंगवश, महाराजने वेदका एक मंत्र उच्चारण किया, उसी समय दक्षिणी पण्डित 'शिव! शिव!' कहते हुए वहाँसे उठ खड़े हुए। जब उनसे उठनेका कारण पूछा गया तो उन्होंने कहा कि इस सभामें एक मुसलमान भूमिहार और राजगायक मौलाबक्ष बैठे हुए हैं । कुछ शूद्र जन भी इधर उधर खड़े सुन रहे हैं। स्वामीजीने ऐसे अनधिकारियोंके सामने श्रुतिका उच्चारण करके एक अनर्थ ढाया है । अधिकारी वर्गने समझा बुझाकर उन भूदेवोंको बिठा लिया ।

स्वामीजीके आगमनसे बहुत पहले ही पण्डित लोग शास्त्रार्थ करनेके लिए सुसज्जित थे। इस लिए, व्याख्यानकी समाप्तिपर ही शास्त्र-समरका आरम्भ हो गया। महाराज ऐसी सुगम संस्कृत बोलते थे कि लोगोंकी समझमें सहजसे आ जाता था। परन्तु पण्डितोंको यह बात अच्छी न लगी। वे बार बार जटिल भाषा बोलनेके लिए उपहासपूर्वक ललकारने लगे ।

एक शास्त्रीने यह भी कहा, "महात्माजी! केवल 'भवति' 'पचति' मात्रसे काम न चलेगा। आज आपको दक्षिणी पण्डितोंसे पाला पड़ा है। कोई शास्त्रीय महत्त्व दिखाना होगा।"

प्रतिपक्षियोंकी प्रबल प्रेरणापर, अपनी प्रकृतिके प्रतिकूल होते हुए भी महाराजने अप्रसिद्ध-शब्द-पूर्ण, समास-बहुल, अनेकार्थ-बोधक, ऐसी जटिल संस्कृत बोलना आरम्भ किया कि प्रतिवादी देखता ही रह गया। वह तो, महाराजकी धाराप्रवाह संस्कृतके सारे वाक्योंको समझ ही न सका, तो उत्तर क्या देता! उसे मूक-मूर्त्ति ही बनना पड़ा।

व्याकरणके 'भू' शब्दपर भी एक वैयाकरणने थोड़ी देरतक वार्त्तालाप किया। महाराजकी फक्किकाओंको वह भी न समझ सका ।

ऐसे ही, अनेक शास्त्री एक एक करके, उस वाद-युद्धमें उतरते रहे और अन्तमें दयानन्द वागीशके वचनास्त्रोंसे अवाक् हो जाते रहे। कोई दो घण्टेके

भीतर ही, शास्त्रीसमूह निर्वात सरोवरकी भाँति प्रशान्त हो गया। उस समय सारी सभा साधुवादके नादसे बार बार निनादित होने लगी। पण्डित कृष्ण-राम इच्छारामको, इतने दिनोंके पश्चात्, ज्ञात हुआ कि प्रत्येक पक्षमें उनके गुरुदेवका ज्ञान अगाध है। उसकी थाह कोई भी नहीं ले सकता।

एक दिन स्वामीजी बैठे हुए क्षौर करा रहे थे। उसी समय एक शास्त्री वहाँ आ गया और कहने लगा, "संन्यासियोंको धर्म्म तो त्याग है। आप इस देह-विभूषामें क्यों लगे हुए हैं?"

स्वामीजीने हंसकर कहा, "यदि बाल बढ़ानेमें ही त्याग है, तब तो रीछ सबसे बड़ा त्यागी सिद्ध होगा! ऐसी बातोंमें त्याग और वैराग्य नहीं है। देहकी रक्षाके लिए उसे सँवारना, सुधारना धर्म्मानुकूल है। जैसे प्रमादी पुरुष पुष्ट शरीरसे अधिक पापाचरण करते हैं ऐसे ही परोपकारी जन परिपुष्ट और बलिष्ठ कायसे अधिक धर्म्म-कर्म करते हैं।"

एक दिन, एक पण्डितने भगवानको कहा, "हमने सुना है कि आप धन ले लेते हैं, परन्तु शास्त्रमें तो यह लिखा है कि 'न यतीनां काञ्चनं दद्यात्' यतियोंको सुवर्ण न दिया जाय।"

महाराजने उत्तर दिया, "वहाँ तो केवल सुवर्ण देना वर्जित किया है तो क्या आपकी मतिमें यतियोंको चाँदी, हीरा, मोती आदि देना चाहिए? भाई! यदि इसके भावको समझना चाहते हो तो वह अति सरल है। यतियोंको संग्रह नहीं करना चाहिए। परन्तु यदि परोपकारके लिए द्रव्य लेना भी पड़े तो कोई दोष नहीं है। जिन भगवद्भक्तोंने पर-हितार्थ अपनी कायाको भी अर्पण कर दिया है वे करोड़ों मन कांचन रखते हुए भी अकिञ्चन हैं। अब रही मेरी बात, मैं जब गङ्गापर पर्यटन करता था तो उन दिनोंमें केवल कौपीनधारी दिगम्बर था। उस समय मुझे कौड़ीतक छूनेकी आवश्यकता न थी। परन्तु अब मैंने जन-हितके कार्योंमें अधिक भाग लेना आरम्भ कर दिया है। इस लिए, 'कूप मृत्तिका न्याय' से लोगोंसे धन लेकर उन्हींके हितकर कार्योंमें लगा देता हूँ। पर यदि आप यह मानते हैं कि द्रव्यका स्वभाव पापमय है—इसको छू लेनेसे संक्रामक व्याधिकी भांति पाप लग जाता है—तो

आप भी तो धनवान् प्रतीत होते हैं। क्या ऐसी अवस्थामें आप अपनेको पापी मानते हैं?"

महाराजके कथनके अनन्तर, शास्त्रीने उनके चरण-चुम्बन करके कहा, "आप वास्तवमें वीतराग हैं। यह मेरी धृष्टता थी जो मैंने आपके आगे ऐसा प्रश्न किया?"

एक दिन, श्रीस्वामीजीने श्रीमान् माधवरावजीके कथनसे एक व्याख्यान राजधर्म्मपर दिया। उसमें उन्होंने आर्य्य राज्य-पद्धतिका चित्र चित्रण करके राष्ट्र—नीतिविशारदोंको भी आश्चर्यचकित कर दिया। किसीभी विद्यमान राज्यप्रबंधपर, किंचिदपि कटाक्ष किये विना, महाराजने राजा और प्रजाके धर्म्मों और सम्बंधोंका ऐसी योग्यतासे निरूपण किया कि व्याख्यानकी समाप्तिपर माधवराव महोदयने भी उनकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा की।

बड़ौदा राज्यके दीवानबहादुरने एक दिन महाराजको भोजनार्थ अपने गृह पर निमन्त्रित किया। जब महाराज भोजन पाकर लौटने लगे तो एक सहस्र-रजत मुद्रायें श्रीचरणोंमें भेंटकीं। महाराजने वह रुपया न लिया और कहा "मैं कुरीतियोंका खण्डन करता हूं। यदि यह रुपया ले लूंगा तो गोसाइयोंको अपनी पधरावनीके लिए एक दृष्टान्त मिल जायगा।"

नवसारीका एक भूमिहार, किसी अपराधके कारण, चिरकालसे कारावासमें पड़ा हुआ था। उसका निर्णय होनेमें ही न आता था। उसके सम्बंधियोंने एक दिन, पण्डित कृष्णराम इच्छारामको कहा कि स्वामीजीके पास दीवान आदि सभी अधिकारी आते हैं। यदि उनको कहकर, महाराज हमारे बन्धुका निर्णय शीघ्र करादें तो हम उन्हें पचास साठ सहस्र तक रुपया देनेको समुद्यत हैं।

पण्डितजीने ऊपरकी सारी वार्त्ता गुरुचरणोंमें निवेदन कर दी। इसपर स्वामीजीने कहा कि राज्यकार्य्यमें हस्तक्षेप करना हमारा काम नहीं और फिर शुल्क लेकर तो महापाप है! हाँ यदि वह बद्ध पुरुष निरपराधी है तो समयानुसार छूट ही जायगा। वह भूमिहार, उसके पश्चात् थोड़े ही दिनोंमें मुक्त हो गया।

एक दिन, रावबहादुर शङ्कर पाण्डुरङ्ग वेदर-अनुवादक स्वामीजीके मिलापार्थ बड़ोदामें आये और विनीत नमस्कार करके वार्त्तालाप करने लगे। प्रसंग आ पड़नेपर रावबहादुरने अपने ऋग्वेद-भाष्यका नमूना महाराजके आगे रखकर कहा कि यदि आप मेरे साथ मिलकर मेरी पद्धतिपर वेदभाष्य करें तो बहुत ही अच्छा हो। स्वामीजीने उसके कुछ पृष्ठोंको पढ़कर कहा कि आप मोक्षमूलर और सायणके पीछे चलना चाहते हैं। मैं तो इन दोनों भाष्यकर्त्ताओंको आर्षशैलीसे अनभिज्ञ समझता हूं। आप मेरे साथ मिल जाइए अथवा मुझे अपने साथ मिला लीजिए, परन्तु यह सुनिश्चित है कि मैं अनार्ष कल्पनापर कार्य्य कदापि नहीं करूंगा।

रावमहाशय इस उत्तर से निराश होकर चले गये।

उधर मुम्बई नगर में पौराणिक पण्डितोंने बड़ा ऊधम मचा रक्खा था। वे आर्य-समाजियोंको शास्त्रार्थ करनेके लिए बार बार विवश कर रहे थे। इसलिए महाराज भी वहाँ शीघ्र ही आ गये और पण्डित-दलको आह्वान करने लगे। इन लोगोंने जब सुना कि दयानन्द मुम्बई आ गये हैं तो लगे इधर उधर मुंह छिपाने। मुम्बईमें, उस समय, कमलनयनाचार्य चोटीके पण्डित गिने जाते थे। लोगोंने अत्याग्रहसे उन्हें शास्त्रार्थके लिए सुसज्जित किया। आषाढ़ ब० ३ सं० १९३२ को "फरामजी कावस्जी इन्स्टिट्यूट" में शास्त्रार्थ होना निश्चित हुआ। लोग नियत समयसे बहुत पहले ही आने लगे। दिनके तीन बजे स्वामीजी भी उस स्थानपर पधारे। उनको अति सन्मानसे चौतरे के ऊपर कुर्सी पर बैठाया गया। महाराजके सामने कमलनयनजीके लिए कुर्सी रक्खी गई। उन दोनों कुर्सियोंके मध्यमें, कोई डेढ़सौ संस्कृत पुस्तकें प्रमाणके लिए रक्खी गईं। चौतरेके नीचे समाचारपत्रोंके आठ सम्वाददाताओंके बैठनेका प्रबंध किया गया। उस सभामें नगरके प्रायः समस्त सेठ, सज्जन, गण्य, मान्य और अधिकारी जन आये हुए थे। स्त्रियोंका समूह भी पर्याप्त था। स्वामीजीके पहुँचनेके आध घण्टा पीछे, बीस पचीस शिष्यों सहित कमलनयनजी भी आ गये और स्वामीजीके सामने विराजमान हुए। उस समय, सभापति रावबहादुर बेचरदासजीको बनाया गया।

सभापति महाशयने अपनी वक्तृतामें सभाके उद्देश्य और नियम सबको सुना दिये। तदनन्तर कमलनयनजी खड़े होकर बोले, "शास्त्रार्थ तब किया जायगा, जब यहाँ आये हुए समस्त पण्डित अपने अपने सम्प्रदायका नाम बता दें।"

लोगोंने उनको बहुत समझाया कि लोगोंसे उनके सम्प्रदायका नामनिर्देश कराना सर्वथा असंगत है। इससे आपका कोई प्रयोजन भी सिद्ध नहीं होता परन्तु आचार्य महाशय अपने हठसे राई और रत्तीभर भी इधर उधर न हुए।

महाराजने अति मधुर और मृदु शब्दोंमें कहा, "कमलनयनजी! आजका दिन मैं माङ्गलिक मानता हूँ कि आप सत्यासत्यके निर्णयके लिये मेरे सामने पधारे हैं। इतना बड़ा जनसमुदाय सच-झूठके जाननेकी जिज्ञासाहीसे यहाँ सम्मिलित हुआ है। अब, आपका परम कर्त्तव्य है कि प्रामाणिक ग्रन्थों के प्रमाण देकर प्रतिमा-पूजनके पक्षका पोषण करें। यद्यपि, व्यवस्था देनेके लिए पक्षपातरहित, सभापतिजी हैं परन्तु सर्वोपरि मध्यस्थ, चारों वेद हम दोनोंके बीच स्थापित हैं। अपने पक्षकी सिद्धिके लिए, इनमेंसे एक तो प्रमाण निकालिए।"

महाराजकी ओजस्विनी वाणीसे, तेजस्विनी आकृतिसे और असीम साहस-से पराभूत होकर, कमलनयनजी तो चौकड़ी ही चूक गये। वे बार बार इसी बातकी रट लगाने लगे कि 'शास्त्रार्थ तभी होगा, जब पण्डित लोग अपने सम्प्रदायका नाम बतायेंगे' और अन्तमें वे अतीव लज्जित होकर सभासे उठकर चले गये। उनके चले जानेसे सारी सभापर स्वामीजीके पक्षकी सचाई छा गई, उनके पाण्डित्यका सिक्का बैठ गया।

उसी सभामें, एक सेठके पूछनेपर महाराजने कहा कि मूर्ति-पूजा बौद्ध और जैन लोगोंसे चली है; पुरातन नहीं है।

महाराजने मूर्ति-पूजाके विरुद्ध वहाँ, एक प्रभावशाली व्याख्यान भी दिया और जब वे डेरेको आने लगे तो उनके गलेमें फूलोंका एक अत्युत्तम हार पहराया गया।

पञ्जाब प्रान्तके होशियारपुर जिलेके अन्तर्गत हरयाना नामक एक नगर है। उस नगरकी एक कुलीन लड़की तरुणावस्थाहीमें वैराग्यवती हो गई थी।

सब परिवार परिजनका परित्याग करके कषायाम्बरके वेषमें रहती थी। उसने अपने गुरुजनोंके समीप वेदान्तके कुछ ग्रन्थ अध्ययन किये थे। उसका नाम उस समय भगवती था। स्वामीजी जब मुम्बई प्रान्तमें विचर रहे थे, उन्हीं दिनोंमें राजा जयकृष्णदासजीके प्रबंधसे 'सत्यार्थ प्रकाश' छपकर प्रकाशित हुआ था। किसी प्रकार, वह ग्रन्थ उस देवीको भी प्राप्त हो गया। उसके पाठसे उसके वेदान्तके विचारोंकी लड़ी एकाएक टूट गई।

विचारोंके परिवर्तनसे, उसके हृदयमें स्वामीजीके लिए गाढ़ भक्ति और उनके दर्शनोंकी तीव्र लालसा उत्पन्न हो गई। अन्तमें वह भाईको, साथ लेकर स्वामीजीके दर्शनोंके लिए मुम्बई पहुँची। स्वामीजी व्याख्यानके पश्चात् स्त्रियोंको अपने स्थानपर नहीं आने देते थे, परन्तु उन्होंने सुदूर देशसे दर्शनार्थ आई देवीको वस्त्रकी ओटमें बैठकर वार्त्तालाप करनेका अवसर प्रदान कर दिया। भगवान्के दर्शनोंको पाकर माई भगवती अपनेको निहाल हुई मानने लगी। कुछ एक प्रश्नोत्तरके पश्चात्, श्री स्वामीजीने उसे उपदेश दिया, "स्त्री जातिमें विद्याका बड़ा भारी अभाव है। उनको कर्त्तव्याकर्त्तव्यका कुछ भी बोध नहीं। यदि आप पुण्योपार्जन करना चाहती हो तो अपने प्रान्तमें जाकर, अपनी बहिनोंमें विद्याका प्रचार करो। जो कुछ जानती हो वहां उन्हें सिखाने लग जाओ।"

माई भगवती ही पहली पुण्यवती देवी थी, जिसको महाराजने उपदेश करके स्त्री-जातिके सुधारमें सन्नद्ध किया। उस देवीने मुम्बईसे आकर अपने नगरमें स्त्री-शिक्षा और स्त्री-सुधारका कार्य आरम्भ कर दिया।

मुम्बई नगरमें ही, श्रीमहाराजने 'संस्कार-विधि' और 'आर्याभिविनय' ये दो ग्रन्थ मुद्रित कराकर प्रकाशित किये। वेद-भाष्य करनेका उद्योग भी आरम्भ हो गया था।

श्रीयुत महादेव गोविन्द रानडे पूनेमें जज थे। उन्होंने स्वामीजीको पूने पधारनेके लिए आग्रहपूर्वक विनति की। उनकी प्रार्थनाको स्वीकार करके महाराजने आषाढ़ व० १३ सं० १९३२ को पूना पुरीमें पदार्पण किया। यहाँ उनके पन्द्रह व्याख्यान बड़ी धूमधामसे हुए। इन व्याख्यानोंसे, लोग इतने प्रभावित हुए कि स्थान-स्थानपर श्री स्वामीजीकी ही चर्चा होती थी।

महाराजके व्याख्यानोंमें श्रीमान् महादेव गोविन्द रानडे भी निरन्तर आया करते थे। व्याख्यानोंके प्रबन्धमें भी उन्हींका अधिक हाथ था।

जब महाराजकी बिदाईका दिन आया तो लोगोंने, स्वामीजीके सत्कारके लिए, नगर-कीर्त्तन करनेका प्रबन्ध किया। महाराजकी सवारीका सारा प्रबंध रानडेके ही घरपर हुआ था।

सायं समय, जब अन्तिम व्याख्यान समाप्त हुआ तो महाराजके गलेमें पुष्पमाला पहराई गई। एक पालकीमें वेद रक्खे गये और स्वामीजीको हाथीपर आरूढ़ किया गया। ऐसे भारी समारोहके साथ नगर-कीर्तन-यात्रा निकली। उधर पूना नगरमें, कुछ उपद्रव-प्रिय लोगोंने गर्द्दभानन्द आचार्यकी सवारी निकाली! जैसे जैसे नगर-कीर्त्तन आगे बढ़ता था वे लोग भी कलह और कोलाहलकी मात्रा बढ़ाते जाते थे; असंख्य अण्ड बण्ड बातें बकते थे। कई सभ्य पुरुष उन नर-पिशाचोंकी पैशाच लीलाको शतशतबार धिक्कारते थे, परन्तु वे टलनेवाली मूर्त्तियाँ न थीं। कुछ पानी पड़जानेके कारण मार्गमें कीचड़ होरहा था। उपद्रवियोंने, स्वामीजीपर कीचड़ उठाकर फेंकना आरम्भ करदिया! ईंटें और पत्थर भी बरसाये!! उस समय रानडे महाशय भी साथ थे। स्वामीजीकी सम्मतिसे उन्होंने पोलिसको कह दिया कि किसीको कुछ भी न कहा जाय।

पामर पुरुष अपमान करते, अपशब्द कहते, महामलीन कीचड़ फेंकते, विविध प्रकारसे अवेहलना कर रहे थे, परन्तु स्वामीजी थे कि हँसते थे। उनके मुखमण्डलकी रौनक लवलेश मात्र भी न घटी। उनका यत्किंचित् रोष भी नहीं आया।

रानडे महाशयपर भी कीचड़ पड़ा। जब वे घर गये तो उनके कपड़े कीचड़से लतपत देखकर लोगोंने कहा कि आपपर भी कीचड़ पड़ गया है! उन्होंने उत्तर दिया कि जब हमने एक पक्ष अवलम्बन कर लिया तो साथियोंके साथ मानापमानपर हमें भी तो ध्यान न देना ही उचित था। रानडे महोदयके मनमें महाराजके लिए बड़ा सन्मान था। वे उनको उस समयका तुलनातीत महापुरुष मानते थे।

एक दिन, पूनामें तीस चालीस पण्डित मिलकर स्वामीजीसे शास्त्रार्थ करने आये; परन्तु थोड़े समयमें ही परास्त होकर चले गये।

वेदोपदेशक श्रीदयानन्द ।

दो मासपर्य्यन्त महाराजने पूना नगरके अधिवासियोंको उपदेश दिये और फिर मुम्बई जानेका सङ्कल्प कर लिया ।

भाद्रपद सुदी २ सम्वत् १९३२ को स्वामीजी पूनासे लौटकर मुम्बईमें शोभित हुए । अबकी बार श्रीयुत नवीनचन्द्र राय, प्रतापचन्द्र मोजमदार और डाक्टर भण्डारकर आदि ब्राह्मसमाजी सज्जन स्वामीजीके निकट वेद विषयपर वार्त्तालाप करने आये । इन लोगोंका पक्ष था कि वेदमें अग्नि आदि जड़ पदार्थोंकी स्तुति है । स्वामीजीने उत्तरमें मन्त्रोंके अर्थसे और प्रमाणोंसे यह सिद्ध कर दिया कि जहाँ आपको जड़ पदार्थोंकी स्तुतिका भ्रम होता है, वहाँ वास्तवमें परमात्माका वर्णन है ।

स्वामीजीने अपने सब कर्मचारियोंको आज्ञा दे रक्खी थी कि ठीक समय-पर भोजन कर लिया करो । समयपर भोजन पा लेनेसे आप स्वस्थ और सुखी रहोगे । शीघ्र निपट जानेसे रसोइएको भी आराम मिल जायगा ।

स्वामीजीके स्वभावमें, कार्यकी नियमता और व्यवहारकी समानता समाई हुई थी । उनको इस बातका भी बड़ा ध्यान रहता था कि किसी छोटे बड़े कर्मचारीपर अन्याय, अनीति न होने पावे । भोजनमें भी वे इस बातको नहीं भुलाते थे । रसोईमें कभी कभी स्वयं आकर निरीक्षण किया करते थे कि कहीं किसीको नियत वस्तुसे थोड़ी तो नहीं मिलती ।

रसोईमें आटा, दाल, भात, और घृतादि भोज्य पदार्थ तोलकर दिये जाते थे । उन्होंने सबको कह रक्खा था कि आवश्यकतासे अधिक पदार्थ न तो परसो और न ही लो; थालीमें जूठन छोड़ना बहुत बुरा है । इसमें एक तो खाद्य वस्तुका व्यर्थमें नाश होता है और दूसरे यदि किसीको दिया भी जाय तो बिगाड़कर देना विवर्जित है । जूठा अन्न किसी मनुष्यको भी नहीं देना चाहिए ।

मुम्बईमें स्वामीजीने नियम बनाया था कि नित्यके भोज्य पदार्थोंसे, घृतादि वस्तुयें प्रतिदिन थोड़ी थोड़ी निकालकर रख ली जायँ । उन बचाई हुई वस्तुओंसे आठवें दसवें दिन कर्मचारियोंको मिष्टान्न भोज्य दिया जाता था ।

एक कर्मचारीने एक समय निवेदन किया, "आप रसोईमें तोलकर वस्तुयें देते हैं । कहीं ऐसा न हो कि आपको लोग कृपण समझने लग जायँ ।"

महाराजने मुस्कराकर कहा, "लोग मुझे क्या समझते हैं अथवा क्या समझेंगे इसकी चिन्ता तो मुझे स्वप्नमें भी नहीं होती। पाकशालामें, परिमित पदार्थ इसलिए देता हूँ कि अधिक न पकनेसे अन्नका नाश और निरादर नहीं होता। कर्मचारी जन यदि मिताहारी रहेंगे, तो उनको रोग भी न होगा और वे काम भी अच्छा करेंगे। मिताहार और मितव्ययसे कोई कृश और कृपण नहीं हो सकता।" उन दिनों, स्वामीजी भी प्रायः सायंकाल भोजन नहीं किया करते थे। रातको केवल दूध ही लेते थे।

स्वामीजी प्रतिदिन, सवेरे तीन बजे उठते और कुल्ला आदि करके जलपान करते थे। शौच-स्नानादिसे निवृत्त होनेपर आसन लगाकर योगारूढ़ हो जाते थे। विविध आसनोंद्वारा ही व्यायाम कर लेते थे। जिस समय, वे प्राणायामके कुम्भकमें अवस्थित होते थे तो उनकी मूर्ति तप्त स्वर्णकी भाँति देदीप्यमान दिखाई दिया करती थी। उनके मुखकमलकी काँति अतीव उज्ज्वल होती थी।

सूर्योदयसे पूर्व ही, वे भ्रमणार्थ निकल जाया करते। महाराज इतने शीघ्र चलते थे कि यदि कोई दूसरा उनके साथ जाता तो, उसे साथ दौड़ना पड़ता था। चलते समय साँस नाकद्वारा ही लेते थे। सुदूर एकान्त स्थानमें जाकर एक घण्टातक समाधिस्थ रहते। फिर आठ बजे आसनपर लौट आते। बाहरसे आते ही अपने पाँव और पादरक्षक झाड़ने लगते; परन्तु विद्यार्थी उन्हें यह कार्य्य प्रायः नहीं करने देते थे। वे आप दौड़कर झाड़ने लग जाते थे।

तदनन्तर श्रीमहाराज, शवासन होकर बीस पलतक विश्राम लेते। उस समय उनका शरीर निश्चेष्ट हो जाता था। विश्रामके पश्चात् सेरभर दूध पान करते थे। उसी समय कर्मचारी उनके निकट आ उपस्थित होते थे। तत्काल लिखने आदिका कार्य आरम्भ हो जाता था और दिनके ग्यारह बजेतक निरन्तर होता रहता था।

महाराज भोजनके समय भी स्नान किया करते, इस लिए, कार्यसे उठकर स्नान करके भोजन पाते। वे दो तोलेसे अधिक घी और छोटे छोटे आठ फुलकोंसे अधिक अन्न नहीं खाते थे। वे ग्रासको अच्छे प्रकार चबाते और आहार करनेमें कोई आध घण्टा लगाते थे। उसी समय समाचारपत्र भी सुन लिया करते थे।

भोजनके पश्चात् आधी घड़ीतक बायें करवटके भार पड़कर आराम करते और फिर उठकर सायंके चार बजेतक कार्यपरायण रहते । ठीक चार बजे मिलने जुलनेवाले आया करते थे। महाराज, उस समयसे रातके दस बजेतक लगातार प्रश्नोंके उत्तर देते और लोगोंके संशय मिटाते । ठीक दस बजे, श्री महाराज सादा पर स्वच्छ बिछौना बिछाकर शय्याशायी हो जाते। निद्रा उनके इतने वशमें थी कि खाटपर पड़ते ही तुरन्त उनकी आंख लग जाती । दो तीन पलपर्यन्त भी उनको निद्राकी प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती थी ।

दूसरा सर्ग ।

सुचिर कालतक, मुम्बई प्रान्तके अधिवासियोंको महाराज उपदेशामृत पिलाते और भवसागरसे पार उतारते रहे । फिर अन्तमें आगरा और अवधके प्रान्तोंकी यात्राके लिए प्रस्तुत हो गये ।

ज्येष्ठ व० १ सं० १९३३ को स्वामीजी पांचवीं बार फरुखाबादमें आकर विराजमान हुए । उस समय फरुखाबादकी पाठशालाओंमें अध्यापकोंने बड़ा गोलमाल कर रक्खा था । वे प्रच्छन्न रूपसे स्वामीजीके विरुद्ध चलते थे। इस लिए महाराज ने वह पाठशाला तोड़ दी ।

ज्येष्ठ सुदी १सम्वत् १९३३को फरुखाबादसे प्रस्थान करके स्वामीजीने कायम गंज, काशी, जौनपुर और अयोध्या आदि नगरोंमें धर्म्म-प्रचार किया। लोगोंको सरल और सन्मार्ग दिखाया। तत्पश्चात् आश्विन सुदी नवमी सम्वत् १९३३ को श्री महाराज लखनऊ पधारे । हुसैनगंजमें सरदार विक्रमसिंह आहलूवालियाकी कोठीमें ठहरे। लखनऊके अधिवासी श्रीरामाधारजी स्वामीजीसे पहलेहीसे सु-परिचित थे। इस लिए उनकी सेवा-शुश्रूषासे वही अधिक लाभ उठाते थे। स्वामीजीने वहां एक बङ्गीय महाशयको सेवामें रखकर उससे अँगरेजी सीखना आरम्भ किया था । इससे कई लेखकोंने जो यह अनुमान किया है कि वे यूरोप महादेशमें प्रचारार्थ जाना चाहते थे सो भ्रममूलक प्रतीत होता है । यदि यूरोप जानेका उनका सङ्कल्प होता तो वे अधिक कालतक अधिक समय

लगाकर अंगरेज़ी पढ़ते, परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया । महाराज ऐसे भी नहीं थे कि उनके सङ्कल्प, पानीकी रेखाकी भाँति इधर बनते और उधर मिटते रहते थे। वे सुदृढ़ सङ्कल्पके धनी थे। यदि वे यूरोप जाना चाहते तो एकाचित्त होकर थोड़े ही समयमें सुसज्जित हो जाते । यह कल्पना बहुत ही ठीक है कि सङ्गठन-कार्यमें लग जानेसे उनका पत्रव्यवहार बहुत ही बढ़ गया था। प्रतिदिन अनेक रजिस्टर्ड पत्र आते थे। रुपया भी प्रायः आता जाता रहता था। पुस्तकोंको छपने भेजना, प्रूफ आदि मंगाना और लौटाना ये कुछ ऐसे कार्य्य हैं कि उस समय अंगरेज़ी जाने बिना ठीक नहीं निभ सकते थे। इसी कारणसे वे अँगरेजी सीखने लगे थे ।

आश्विन सु० १२ सं० १९३३ को स्वामीजीका व्याख्यान 'ईश्वरकी निराकारता' पर हुआ । सुननेवालोंकी संख्या बहुत बड़ी थी । व्याख्यानको सुनकर लोग अत्यन्त प्रभावित हुए ।

लखनऊमें लाला ब्रजलालजी एक सम्भ्रान्त व्यक्ति रहते थे। उन्होंने महाराजसे प्रश्नोत्तर करके अपने सकल संशय निवारण किये ।

स्वामीजीने एक 'वाक्य-प्रबोध' नामक पुस्तक छपवाई थी । उसमें कुछ अशुद्धियाँ रह गई थीं । इसपर काशीके पण्डितोंने स्वामीजीकी योग्यतापर तीक्ष्ण आक्षेप किये । स्वामीजीके शिष्य, उन अशुद्धियोंको शुद्ध सिद्ध करनेके लिए सु-सज्जित हो गये । परन्तु महाराजने उनको कहा, "मिथ्या पक्षको ग्रहण करके झगड़ना धार्मिक जनोंका काम नहीं है ! सरलतासे अशुद्धियाँ मान लो और दूसरे संस्करणमें वह पुस्तक शुद्ध करके मुद्रित कराओ ।"

एक दिन पण्डित प्रभुदयाल ने स्वामीजीसे पूछा, "मीमांसाके जिन सूत्रों का अर्थ लोग पशु-वध करते हैं आप उनको कैसे लगाते हैं ? "

उन्होंने उत्तर दिया, "मीमांसामें पशु वध-विधायक सूत्र कोई भी नहीं है। सूत्रोंका हिंसापरक अर्थ करना भाष्यकारोंकी भारी भूल है । उन सूत्रोंमें 'आलम्भन' शब्द आता है, जिसके दो अर्थ हैं—एक स्पर्श और दूसरा वध। यदि उन सूत्रोंके आलम्भन शब्दका अर्थ स्पर्श कर दिया जाय तो उनके अर्थोंमें कोई बाधा नहीं आती और सङ्गति भी लग जाती है ।"

स्वामीजीने प्रभुदयालजीसे वार्त्तालाप करते हुए यह भी कहा, "मैंने वेदोंमें एक एक मन्त्रको भली भाँति विचार-दृष्टिसे जाँच लिया है। उनमें ऐसा एक भी मंत्र नहीं है, जो अयुक्त सिद्ध हो सके। जैसे सराफ रुपयोंको परखकर थैलीमें रखलेता है और फिर उनकी निर्दोषतामें निर्भ्रान्त हो जाता है, ऐसे ही एक एक वेदमन्त्रको युक्ति और प्रमाणकी कसौटीपर कसकर, उनकी सत्यतामें मैं निस्सन्देह हो गया हूं।"

एक व्यक्तिने स्वामीजीको कहा, "आप ग्रन्थोंके शब्दोंका अर्थ उलट देते हैं।" उन्होंने हँसकर कहा, "मैं तो अर्थ नहीं उलटता, उलटनेवाले कोई और ही हैं। हाँ, उनके उलटे हुए अर्थोंको अवश्यमेव उलट देता हूं।"

लखनऊ-निवासी लोगोंको कृतार्थ करनेके अनन्तर, महाराज वहाँसे कार्तिक पूर्णिमा सम्वत् १९३३ को चलकर शाहजहाँपुरमें पधारे। वहाँ पाँच दिवसतक टिके। फिर मार्गशीर्ष वदी पञ्चमीको बाँसबरेलीमें आ गये। वहाँ उन्होंने लाला लक्ष्मीनारायणकी कोठीमें निवास किया। बरेलीमें आपके उपदेश भी होते रहे।

मुरादाबाद निवासी, श्रीयुत इन्द्रमनजी स्वामीजीको कई स्थानोंमें मिल चुके थे। उनके उद्देश्यों और उपदेशोंसे मोहित होकर उनके अनुयायी भी बन गये थे। स्वामीजीको मुरादाबादमें पदार्पण करनेके लिए वे सदा अनुरोध पूर्वक विनति किया करते। उनकी अनुनय विनयसे महाराज बरेलीसे मुरादाबादमें आये। उनको स्वागत पूर्वक लाकर राजा जयकृष्णदासजीके बंगलेमें उतारा गया। उसी बङ्गलेके चबूतरेपर महाराज, प्रतिदिन सायं समय, सत्संग लगाते और उपदेश देते।

मुरादाबादमें लाला क्षेमकरणदास आदि कई सज्जनोंने श्री महाराजके कर-कमलोंसे यज्ञोपवीत धारण किया। इसपर अनेक जन कहने लगे कि संन्यासियोंको जनेऊ धारण करानेका अधिकार नहीं है। एक यजमानने स्वामीजीसे ऐसा प्रश्न भी कर दिया। इसके उत्तरमें उन्होंने कहा कि संन्यासी से यज्ञोपवीत लेना शास्त्रोक्त है।

पादरी पार्कर महाशय, प्रतिदिन सवेरे पन्द्रह दिवसतक महाराजसे धर्म-चर्चा करते रहे। यह धर्म-चर्चा नित्य तीन घण्टेतक राजा जयकृष्णदासके बंगलेपर ही होती थी।

उन्हीं दिनोंमें ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशनका अधिवेशन भी उसी बङ्गलेके एक कमरेमें हुआ करता था। बादके अन्तिम दिनका विषय था "सृष्टिकी उत्पत्ति कब हुई?" पादरी महाशय कहते थे कि सृष्टिको उत्पन्न हुए पाँच सहस्र वर्ष बीते हैं। स्वामीजी महाराज उठकर एक दूसरे कमरेमें गये और वहाँसे एक बिलौरी पत्थर लाकर उपर्युक्त एसोसिएशनके सदस्योंसे पूछने लगे कि आप भूगर्भ-विद्यावेत्ता हैं। कृपया यह तो बताइये कि इस पत्थरको इस अवस्थामें आनेके लिए कितना समय लगा है? उन्होंने उत्तर दिया कि कई लाख वर्षोंमें इसका यह स्वरूप बना है। तब महाराजने पादरी महाशयको कहा कि अब आपही बताइए, जब सृष्टिको बने पांच सहस्रवर्ष हुए तो लाखों वर्षोंमें यह पत्थर कैसे बन गया? इसपर पादरी महाशय बहुत कटे और लगे इधर उधरकी बातें बनाने।

इस धर्म्म चर्चाका लोगोंपर गहरा प्रभाव पड़ा और उनको ईसाई धर्म्मके विविध वाद विद्या-विरुद्ध दीखने लगे।

एक दिन स्वामीजीके उपदेशमें वेंकटेश्वरदास नामक एक चक्रांकित वैष्णव आ निकला। वह 'आ कृष्णेन रजसा' इस मंत्रको बोलकर बार बार कहता था कि दयानन्द! इसका अर्थ बता। इन्द्रमनजीने उसे बहुत कहा कि व्याख्यानमें विघ्न-बाधा न करो। इसकी समाप्तिपर यथेष्ट प्रश्न पूछ लीजिएगा। परन्तु वह महात्मा मौन साधनेवाली मूर्ति न थी। अन्तमें महाराजने उसको उस मंत्रका अर्थ ईश्वरपर घटाकर बताया। वह इससे और भी अधिक भड़क उठा और असंख्य अपशब्द सुनाने लगा।

महाराज बहुत देरतक तो उस मूढ़मतिकी मूर्खतापर मुस्कराते रहे, परन्तु जब देखा कि यह ग्रह टलनेहीमें नहीं आता तो उससे बोले कि यदि मेरा किया अर्थ ठीक नहीं तो अपना ही बताइए। वास्तवमें वह वैष्णव देवता था निरा भोजभट्ट, इस लिए कुछ भी न बता सका। इसपर सारी सभाने उसे लज्जित किया।

मुरादाबादके कई समृद्धिशाली पुरुषोंने वाराङ्गनायें रक्खी हुई थीं। स्वामीजीके उपदेशको सुनकर उनमेंसे अनेक सुधर गये। उनके पारिवारिक जीवनमें सुखका संचार हो गया।

महाशय दयालसिंहजी एक समृद्ध पिताके एकलौते पुत्र थे । वे चण्डाल-चौकड़ीके चक्रमें आकर कुव्यसनोंका घर बन गये थे । कुसंगतिवश, उनमें मदिरापानकी बान बहुत बढ़ गई थी । रात दिन मद्यमें मत्त रहते थे । मित्रोंकी प्रेरणासे, वे भी एक दिन स्वामीजीके उपदेशमें जा पहुँचे । दैवयोगसे उस दिन स्वामीजी सुरापानके दोष दिखाकर उसका खण्डन कर रहे थे । उस समय उन्होंने सुरासेवी मनुष्योंकी दुर्दशाका चित्र ऐसे मर्मस्पर्शी शब्दोंमें खींचकर दिखाया कि दयालसिंहजीका हृदय थर्रा उठा । व्याख्यानकी समाप्तिपर महाशयजीने श्री चरणोंको छूकर प्रतिज्ञाकी, "आजसे, मैं सुरापानरूप पाप-पङ्कमें कदापि पदार्पण नहीं करूंगा ।"

इस प्रणके पश्चात् उनको अतिसार लग गये । वे कई दिनों चारपाईपर पड़े रहे । प्राणान्तकारी कष्ट भी होने लगा; ऐसे समयमें ममताकी मारी माताने आप सुरा देकर पुत्रको पानके लिए प्रेरणा की । परन्तु प्रतिज्ञाके पक्के दयालसिंहजीने अपना व्रत भंग नहीं किया । श्रीमान् बक्षीरामजीने एक दिन महाराजसे अति विनयपूर्वक योगके साधन पूछे । पहले तो महाराज बतानेसे सङ्कोच करते थे परन्तु उनके अत्याग्रह करनेपर कृपा की कि जो अभ्यास कभी मैं भी किया करता था वही आपको बताता हूँ ।

स्वामीजीने यह मन्त्राभ्यास बताया :—

ओम् भूः ओम् भुवः ओम् स्वः ओम् महः ओम् जनः ओम् तपः ओम् सत्यम् । तत्सवितुर्वरेण्यं, भर्गो देवस्य धीमहि, धियो यो नः प्रचोदयात् । ओं आपो ज्योतिः रसोऽमृतं ब्रह्मभूर्भुवः स्वरोम् स्वाहा ।

महाशय बक्षीरामजीने महाराजके आदेशानुसार इस पाठका आराधन किया और उनको बड़ी शान्ति लाभ हुई ।

मुरादाबाद नगरमें धर्मप्रचार और आर्य्य समाजकी स्थापनाके पश्चात् स्वामीजी कर्णवास आदि स्थानोंमें विचरते हुए दिल्ली जानेका उद्योग करने लगे ।

दिल्लीमें महाराणी विक्टोरियाके महोत्सवके उपलक्षमें एक बड़ी राजसभा होनेवाली थी । उसके लिए सभी राजे महाराजे और प्रतिष्ठित नागर राजनि-मन्त्रणसे वहाँ एकत्र हो रहे थे । कहा जाता है कि महाराजा इन्दौरने ऐसे

अवसरपर धर्म-प्रचार करनेके लिए स्वामीजीको निमंत्रित किया था। वे राज-मण्डलमें भी उनके भाषण कराना चाहते थे।

स्वामीजी दिसम्बर मासके अन्तमें ठाकुर मुकुन्दसिंहजीके साथ अलीगढ़से दिल्लीको पधारे। वहाँ आकर उन्होंने नगरसे बाहर शेरमलके अनारबाग में डेरा लगाया। प्रचार और निवासादिके लिए उस उद्यानमें तम्बू लगा दिये गये। उद्यानके प्रवेश-द्वारपर एक पट्टेपर 'स्वामी दयानन्द सरस्वतीका निवास स्थान' लिखकर लटका दिया गया।

पण्डित भीमसेनजी, राजा जयकृष्णदासजी, छलेसरनिवासी ठाकुर मुकुन्दसिंहजी, ठाकुर भूपालसिंहजी और श्रीयुत इन्द्रमनजी आदि अनेक सज्जन स्वामीजीके पास ही ठहरे।

दिल्लीमें, विज्ञापन वितरण होनेपर स्वामीजीके सत्संगमें सहस्रों मनुष्योंकी भीड़ लगने लगी। सभी मतों और सभी जातियोंके लोग स्वामीजीके निकट आते थे। एक मुसलमान सज्जनने उनको कहा, "आप जो हिन्दुओंकी मूर्ति-पूजाका खण्डन करते हैं, यह बहुत अच्छा काम है और ठीक इसलामके अनुकूल है।"

स्वामीजीने उसे कहा "मैं तो सब मतोंकी मूर्ति-पूजाका खण्डन करता हूँ। पुराण-पन्थियोंकी प्रतिमायें परिमाणमें चार अङ्गुलसे एकहाथतककी होती हैं। इनको तो किसी प्रकार हटाया जा सकेगा। परन्तु मुसलमानोंकी मूर्तियाँ तो कब्र आदिके रूपमें तीन-खने मकानोंसे भी बड़ी हैं। उनको हटाना अति दुष्कर है" यह सुनकर वह सज्जन चुप हो गया।

एक श्रीकृष्णभक्त स्वामीजीके पास आया और उनके आगे मिट्टीकी डली रखकर बैठ गया। स्वामीजीने उससे पूछा, "यह मिट्टी कैसी है?" वह बोला, "बालकालमें श्रीकृष्णजीने मृत्तिका खाई थी इसलिए, मैं यह मिट्टी प्रसादरूप आपके निकट लाया हूँ!" उन्होंने कहा, "भोले भाई! बच्चे मिट्टी खाया ही करते हैं। सो कृष्णजीने भी खाई होगी, परन्तु तरुण मनुष्य तो मिट्टी नहीं खाते।"

वैसे तो स्वामीजीके स्थानपर उच्च कोटिके अनेक मनुष्य आया करते थे; कश्मीर राज्यके मंत्री श्री सन्तरामजीने भी उनके दर्शनोंसे लाभ उठाया था,

परन्तु स्वामीजी महाराज जो चाहते थे वह यह था कि राजों महाराजोंकी सभा करके सब आर्य्योंमें एक धर्म्म और एकताका तागा परो दिया जाय। पर अनेक कारणोंसे इसमें सफलता न हो सकी।

भारतीय भूपालोंसे आशाको सफल न होते देख, एक दिन महाराजने अपने स्थानपर, भारतके भिन्न भिन्न मतों और जातीय विभागोंके नेताओंकी एक सभा बुलाई। उनके निमन्त्रणपर पंजाबके प्रसिद्ध सुधारक कन्हैयालालजी अलखधारी, श्रीयुत नवीनचन्द्र राय, श्रीयुत हरिश्चन्द्र चिन्तामणि, सरसय्यद अहमद, श्री केशवचन्द्रसेन और श्री इन्द्रमनजी, ये छः सज्जन वहाँ पधारे उनमें सातवें श्री महाराज सम्मिलित हुए और सब मिलकर भारतके हितके साधनोपाय सोचने लगे। यह बात सहजसे समझमें आ सकती है कि आर्य्यावर्तकी उच्च आत्माओंने, उस सम्मेलनमें भारतप्रजाके सुधार और निस्तारके अनेक साधन सोचे होंगे। परन्तु प्रसंगसे सम्बंध रखनेवाली बात यह है कि इस अभूतपूर्व सभामें, स्वामीजीने यह प्रस्ताव उपस्थित किया कि हम भारत वासी सब, परस्पर एकमत होकर एक ही रीतिसे देशका सुधार करें तो आशा है, भारत देश सुधर जायगा।

उन्होंने श्री केशवचन्द्र सेन आदि सज्जनोंको यह भी कहा कि पृथक् पृथक् सभा स्थापन करनेके स्थान यदि हम मिलकर एक ही धर्म्मका प्रचार करें तो बहुत ही अच्छा हो। परन्तु कई मौलिक मन्तव्योंमें मतभेद होनेके कारण वे सब एकताके सूत्रमें सम्बद्ध न हो सके।

स्वामीजीका एक सेवक राजों महाराजोंके डेरोंपर विज्ञापन बाँटने जाया करता था। उसने स्वामीजीसे कहा, "महाराज! यदि आप ऊपरसे पौराणिक बनकर भारतके राजोंमें प्रचार करें तो आपको, अति अल्पकालहीमें, आशातीत सफलता प्राप्त हो जाय।" स्वामीजीने उसे भर्त्सनापूर्वक कहा, "मैं अमृतको विषमें मिश्रित करके देना नहीं चाहता। सचाईको छिपाना महापाप है। अन्तमें सत्यहीकी जय हुआ करती है।"

दिल्लीमें श्री महाराजके दर्शनों और उपदेशोंसे पञ्जाबी सज्जन अतीव प्रसन्न हुए। उनके हृदयोंमें महाराजके लिए भक्तिभाव उत्पन्न हो आया। अपने प्रान्तवासियोंको भी, उस महापुरुषके दर्शनोंसे निहाल करानेके लिए

एक दिन सरदार विक्रमसिंहजी आहलूवालिया, पण्डित मनफूलजी और श्रीयुत कन्हैयालालजी अलखधारी आदि सज्जनोंने श्री सेवामें जाकर प्रार्थनाकी कि भगवन्! पंजाबमें भी पधारकर उपदेश कीजिए। हमारे प्रान्तके लोग आपके उपदेश सुननेके लिए अतीव उत्कण्ठित हैं। श्री स्वामीजीने उनकी विनीत विनतीका स्वीकार कर लिया और अनुकूल अवसरपर पधारनेका वचन दे दिया।

इसके पश्चात् श्री स्वामीजी दिल्लीसे प्रस्थानकर ६ जनवरी सन् १८७७ को भीमसेनसहित मेरठ पधारे और सूर्यकुण्डके निकट महताबसिंहजी की कोठीमें ठहरे। स्वामीजीके स्थानपर मिलने जुलनेवाले लोग बहुत आते थे। शङ्का समाधान भी होता रहता था।

उन दिनों स्वामीजी हुक्का पिया करते थे। एक दिन, एक पण्डितने उनसे पूछा, "हुक्का पीना वेदमें कहाँ लिखा है?" स्वामीजीने कहा, "वेदमें कहीं इसके पीनेका निषेध भी तो नहीं है?" पण्डितने फिर कहा, कि आप संन्यासी होकर हुक्का पीते हैं। स्वामीजीने कहा, कि यदि आप हुक्केसे अप्रसन्न हैं तो लो मैं इसे परे फैंक देता हूँ।

फाल्गुन व० ७ सं० १९३३ को मेरठसे चलकर स्वामीजी सहारनपुर आ विराजे। उस समय उनके साथ पण्डित भीमसेनजी आदि कई विद्यार्थी थे। महाराजने अपना डेरा कन्हैयालालके शिवालयमें लगाया।

सहारनपुरमें चण्डीप्रसाद नामक एक सज्जनने स्वामीजीसे धार्म्मिक और सामाजिक अनेक प्रश्न पूछे, जिनका उन्हें सन्तोषजनक उत्तर मिल गया। उन्हीं प्रश्नोंमें चण्डीलालजीका एक यह भी प्रश्न था कि "भारतके लोग स्त्रियोंको इसलिए आवरणमें रखते हैं कि वे धर्म्मसे पतित न हो जाएँ। ईसाई लोग अपनी स्त्रियोंको पड़दा नहीं कराते और स्वच्छन्दतासे भ्रमणके लिए ले जाते हैं। आर्या स्त्रियोंपर पड़दा होते भी वे आचारमें ईसाई स्त्रियोंसे अधिक गिर जाती हैं, इसका क्या कारण है?" स्वामीजीने इसके उत्तरमें कहा, "आर्योंमें पड़देकी रीति पुरातन नहीं है। यह मुसलमानोंके राज्यसे प्रचलित हुई है! नित्य नये उपद्रवोंसे अपनी बहू बेटियोंको बचाये रखनेके लिए, उस अत्याचारके युगमें, आर्य्योंने यह रीति चलाई थी। परन्तु अब मूढ़ लोग इसे धर्म्म मानने लग गये हैं।"

स्वामीजीके प्रभावोत्पादक भाषण, चित्रगुप्तके मन्दिरमें होते थे। श्रोताओं-की संख्या इतनी होती थी कि कहीं तिल धरनेको स्थान न रहता था। जन संघट्टके मारे साँस घुटा जाता था। नगरके सभी प्रतिष्ठित सज्जन पंच और पुरोहित सुनने आते थे। महाराजके व्याख्यानोंमें इतनी चुपचाप होती थी कि कोई खाँसतातक न था। सभी श्रोताजन भित्तिपर चित्रित चित्रसे बन जाते थे। स्वामीजी तीन तीन घण्टोंतक एकतार और एकरस बोलते चले जाते थे। उनके कथनमें इतना प्रभाव था कि लोगोंके मुखसे आप ही आप धन्य धन्य शब्द निकलने लगता था।

एक व्याख्यानमें स्वामीजीने 'कौन सुखी है और कौन दुःखी है' इसपर यह दृष्टान्त सुनायाः—

"किसी नगरमें एक धनाढ्य मनुष्य निवास करता था। उसपर अपराध-वश कोई अभियोग चल गया। राजद्वारमें उसके अभियोगके निर्णयके लिए जो तिथि नियत हुई थी, उसके कई दिन पहिले ही वह चिन्तासागरमें डूब गया। उसके सारे नौकर चाकर बड़ी प्रसन्नतासे खाते पीते और कामकाज करते थे।

अभियोगकी तिथि आनेपर उसको न्यायालयमें पहुँचानेके लिए एक पालकी उपस्थित की गई। उसमें सुकोमल वस्त्र बिछा हुआ था और खसकी टट्टियाँ लगी हुई थीं। उसमें आरूढ़ होकर, वह धनी न्यायालयको गया, परन्तु उसके चित्तमें चिन्ताकी चिता प्रचण्ड हो रही थी। उसके मनमें सुखका नाम तक न था। उसके नौकर उस समय भी प्रसन्नतासे पालकी उठाये लिये जाते थे।" महाराजने इसका सार यह समझाया कि ऊपरके ठाठ बाट और ऋद्धि-समृद्धि में सुख नहीं है। सुख तो मनकी सम अवस्थाओं में रहता है।

सहारनपुरमें भी कुछ विरोधी लोग महाराजको कष्ट देनेका यत्न करते थे; इसीके कारण उनको डेरा भी उठाकर दूसरे स्थानमें ले जाना पड़ा।

तीसरा सर्ग ।

जिस समय स्वामीजी सहारनपुरमें धर्म्म-नाद गूँजा रहे थे उस समय, शाहजहांपुर से पाँच कोसके अन्तरपर, चाँदापुर ग्राम में ब्रह्ममेला मनानेका उद्योग हो रहा था। इस मेलेकी नीव इस प्रकार पड़ी कि चाँदापुर गाँवमें पादरी लोग जाकर अपना प्रचार किया करते थे। वहाँ के भूमिहार कबीरपन्थी थे। उनको पादरी लोग कहते थे कि कबीरको छोड़कर ख्रीष्टको मान लो; आपकी मुक्ति हो जायगी। कबीरपन्थी सन्त उनके साथ वादविवाद भी किया करते थे। परन्तु श्रीयुत प्यारेलाल आदि प्रतिष्ठित भूमिहारोंने इस बखेड़ेको निपटानेके लिए, पादरियोंकी सम्मतिसे एक मेला लगाया। उसमें मौलवी भी निमन्त्रित किये गये। पादरियों, मौलवियों और कबीरपन्थियोंमें ईश्वर आदि विषयोंपर वादविवाद होता रहा।

मेलेकी समाप्तिपर चाँदापुरके चारों ओर यह प्रसिद्ध हो गया कि 'मेलेमें कबीर-पन्थियोंकी भारी हार हुई है और मुसलमान जीत गये हैं'। श्री प्यारेलालके भाई, श्रीमुक्ताप्रसादजी लेनदेनके व्यवहारमें आसपासके गाँवमें जाया करते थे। मेलेके पश्चात्, वे जिस ग्राममें जाते वहाँके मुसलमान उनको कहते, "अब तो आपने इसलामकी सचाई देख ली है, फिर इसलामको स्वीकार क्यों नहीं करते हो? आपके कबीर पन्थ में पड़ा ही क्या है?"

लोगोंकी नित्यकी छेड़छाड़ और चिढ़ानेसे श्रीमुक्ताप्रसादजीने मन ही मन स्थिर कर लिया कि अबके वर्ष किसी ऐसे विद्वान्को बुलायँगे, जो मुसलमानी मतको अच्छे प्रकार जानता हो और मौलवियोंको वादमें नीचा दिखाकर हमारे पिछले सारे धब्बेको धो जाय।

एक समीपस्थ ग्रामवासीने उनको बताया कि इस समय आर्योंमें मुसलमानी मतके मर्मको जाननेवाले इन्द्रमनजी मुरादाबादी हैं। उनके आनेपर आपकी निश्चय ही जीत होगी।

इस विषयपर, श्रीमुक्ताप्रसादजीने श्रीइन्द्रमनजीसे पत्र-व्यवहार किया। इन्द्रमनजीने उनको उत्तरमें लिखा, "मैं तो आ जाऊँगा, परन्तु इस समय भारतभरमें वेद-शास्त्रके अद्वितीय विद्वान् श्रीदयानन्दजी महाराज हैं। उनके

सामने कोई भी मतवादी ठहरने नहीं पाता। यदि आप अपने विजयके निश्चयको सर्वथा सुनिश्चित बनाना चाहते हैं तो उनको अवश्य बुलाइए।"

इन्द्रमनजीके पत्रसे पहले, इस छोटेसे गाँवके अधिवासियोंने, महाराजका नाम भी न सुना था उन्होंने इन्द्रमनजीसे उनका पता पूछकर, सहारनपुरमें पत्रोंद्वारा उनसे प्रबल प्रार्थनाकी कि आप चाँदापुर पधारकर हमारी डगमगाती नौकाके नाविक बनें। उन्होंने महाराजके मार्गव्ययका भी प्रबन्ध कर दिया।

श्रीस्वामीजी चाँदापुरवासियोंको प्रोत्साहनका पत्र भेजकर आप भी दो एक सेवकोंसहित उसी ओर चल पड़े। शेष सेवकोंको उन्होंने सहारनपुरहीमें रहनेका आदेश दिया। स्वामीजी पालकीमें चाँदापुर पहुँचे। उस समय उनके साथ श्रीइन्द्रमनजी भी थे। स्वामीजीने गाँवमें रहना स्वीकार न किया। मेलेके स्थानपर ही एक स्वच्छ और उत्तम तम्बूमें उनका डेरा कराया गया। यह स्थान, ग्रामसे कोई आधा कोस दूर गर्रा नदीके किनारे था। वहाँ उस समय कबीरपन्थियोंका एक छोटासा आश्रम भी था। मेलेका स्थान यद्यपि नदी तटपर था। फिर भी यात्रियोंके आरामके लिए सात कूँये नये खुदवाये गये थे।

१९ मार्चको मेला भरने लगा। मौलवी और पादरी अपने दल-बल-सहित बड़ी धूमधामसे उसी तिथिको वहाँ पहुँच गये। दर्शकोंकी संख्या भी पचास सहस्रसे ऊपर थी।

रातके समय, श्री इन्द्रमनजीने कुछ भीत ध्वनिमें स्वामीजीकी सेवामें आकर कहा, "महाराज! मौलवियोंकी मण्डली आ पहुँची है। मेलेमें दर्शक मुसलमानोंकी संख्या भी बहुत बड़ी होगी। ये लोग झटपट भड़क उठते हैं, इस लिए आप वादके समय, अति कोमल शब्दोंहीसे काम लीजिएगा।"

स्वामीजीने उत्तर दिया, "असत्यका सम्भाषण और समर्थन करना मेरे लिए असम्भव है। सत्य मेरा बनाया हुआ नहीं है। वह सनातन है और ईश्वरका है। उस सत्यको यथावत् प्रगट करनेमें मैं किसीसे, किंचिन्मात्र भी भयभीत नहीं होता। आप भी न डरिये। मेरे होते कोई भी ऐसा माईका लाल नहीं जो आपका बाल भी बाँका कर सके।"

२० मार्चको सवेरेके साढ़े सात बजे पण्डित, मौलवी और पादरी सभी सभा मण्डपमें आये और यथायोग्य कुर्सियोंपर बैठ गये। बातकी बातमें वह

विशाल मण्डप दर्शकोंसे टसाठस भर गया। उस समय, श्री मुक्ताप्रसादजीने अपने भाई प्यारेलालजीकी ओरसे निम्नलिखित पाँच प्रश्न सब धर्म्मावलम्बियोंके आगे रखकर उनका उत्तर माँगा:—

१. सृष्टिको ईश्वरने किस वस्तुसे, कब और क्यों रचा? २. ईश्वर सर्वव्यापक है अथवा नहीं? ३. ईश्वर न्यायकारी और दयालु किस प्रकार है? ४. वेद, बाइबल और कुरानके ईश्वर-वाक्य होनेमें क्या युक्ति है? ५. मुक्ति क्या वस्तु है और किस प्रकार प्राप्त हो सकती है?

मुक्ताप्रसादजी जब प्रश्न उपस्थित करके बैठ गये तो थोड़ी देर, इस बातपर ही झगड़ा होता रहा कि पहले कौन बोले! अन्तमें पादरी स्काट महाशय उठे और प्रथम प्रश्नपर कहने लगे कि यद्यपि, यह निकम्मा प्रश्न है; मेरी सम्मतिमें इसपर बोलना समय ही गँवाना है, तथापि इसका उत्तर देता हूँ। पादरी महाशयके उत्तरका सार यह था कि ईश्वरने सृष्टिको नास्तिसे बनाया है। उसके बनानेके बरसोंका हमें ज्ञान नहीं। संसारके सुखके लिए सृष्टि रची गई है।

फिर पहले प्रश्नपर मौलवी महाशयने कहा कि ईश्वरने सृष्टिको अपने स्वरूपसे बनाया है। कब बनाया यह प्रश्न व्यर्थ है। हमें रोटी खानेसे प्रयोजन है, न कि यह कब पकी थी, इससे। सारी वस्तुयें ईश्वरने मनुष्यके लिए रची हैं और मनुष्यको अपनी स्तुति करनेके लिए निर्माण किया है।

अपने अपने कथनमें पादरी और मौलवी एक दूसरेको कटुवचन कहते रहे थे, इस लिए, जब श्री स्वामीजी महाराजने बोलना आरम्भ किया तो सबको सम्बोधन करके बोले, "यह मेला सत्यकी जिज्ञासासे लगाया गया है। यह सबको निश्चयपूर्वक जानना चाहिए कि विजय सत्यकी ही हुआ करती है। परस्पर पादरीको अथवा मौलवीको मिथ्यावादी और झूठा कहनेसे जीत नहीं हो सकती। हम सबका यह कर्तव्य कर्म्म है कि परस्परके मेल-मिलापसे असत्यका खण्डन और सत्यका मण्डन करें। सत्यासत्यके निर्णयके लिए वैर विरोध छोड़कर सम्वाद करना विद्वानोंका धर्म्म है। कठोर और कटु वचन बोलना सभ्याचारके सर्वथा प्रतिकूल है।"

पहले प्रश्नके उत्तरमें महाराजने कहा, कि "सृष्टिको परमात्माने अव्यक्त प्रकृतिसे बनाया। वह परमाणुरूप प्रकृति जगत्का उपादान कारण है और आदि तथा अन्तसे रहित है। अभावसे किसी वस्तुका भाव नहीं हो सकता। जैसे गुण कारकके होते हैं वैसेही कार्य्यके भी हुआ करते हैं। इस लिए यदि जगत्का कारण नास्ति मानें तो कार्य्यको भी नास्तिरूप ही मानना पड़ेगा।"

महाराजने यह भी कहा, "यदि 'यह माना जाय कि ईश्वरने सृष्टिको अपने स्वरूपसे रचा है तो जगत् भी ईश्वररूपही सिद्ध होगा। जैसे घड़ा मिट्टीसे पृथक् नहीं हो सकता, ऐसे ही जगत् और ईश्वर भी एक ही ठहरेंगे। फिर तो चोर, हत्यारा और पापात्मा होनेका आरोप परमात्मापर ही हो जायगा! इस लिए जो लोग जगत्के कारण प्रकृतिको परमात्मासे पृथक् नहीं मानते उनका मत प्रमाण-प्रतिकूल और युक्तिशून्य है।'

सृष्टि कब बनी, इसका उत्तर भी अन्यमतावलम्बियोंके पास नहीं है। हो भी कैसे? जब कि किसी मतको चले अठारह सौ, किसीको तेरह सौ, किसीको सात सौ और किसीको पाँच सौ वर्ष बीते हैं। इसका उत्तर तो हम आर्य्य लोग ही दे सकते हैं। क्योंकि हमारा ही धर्म्म सृष्टिके आदिमें प्रवृत्त हुआ है।

युगोंका ब्योरा वर्णन करते हुए महाराजने कहा कि प्रत्येक शुभ कर्म में आर्य्य पण्डित जो सङ्कल्पका पाठ उच्चारण करते हैं, उसमें सृष्टिके आदिसे आज तकके वर्षों, मासों, दिनों और तिथियोंकी गणना विद्यमान है। इस सङ्कल्पके साथ आर्य्यजन सृष्टिके जन्मके इतिहासको अनवच्छिन्न रूपसे ले आये हैं।"

सृष्टिके रचनेका प्रयोजन वर्णन करते हुए श्री महाराजने कहा, "जीव और जगत्का कारण, स्वरूपसे अनादि हैं और कार्य्य जगत् तथा जीवोंके कर्म्म प्रवाहसे अनादि हैं। जब सृष्टिका प्रलय हो जाता है तो उस समय भी जीवोंके कुछ कर्म्म शेष रह जाते हैं। उन कर्म्मोंका फल-भोग प्रदान करने के लिए न्यायकारी ईश्वर सृष्टिकी रचना करता है।

सृष्टिको रचनेकी शक्ति ईश्वरमें स्वाभाविक है। उसने अपने सामर्थ्यसे, इस लिए सृष्टि निर्माण की है कि लोग धर्म्म, अर्थ, काम और मोक्षको सिद्ध करके सुख उपलब्ध करें।"

जब महाराजने अपना कथन समाप्त किया तो उनके पक्षपर मौलवियों और पादरियोंने कुछ शङ्कायें कीं, जिनका उन्होंने उसी समय सन्तोषजनक समाधान कर दिया।

महाराजके उत्तर देते समय सारी सभामें सन्नाटा छा रहा था। सभी जन प्रभावित हो रहे थे। ये सब बातें उस सभाके लोगोंने पहले कभी सुनी ही न थीं। उनको यह भी ज्ञान न था कि आर्य्य धर्म्ममें भी कोई ऐसा वीर हो सकता है, जो दूसरे मतवादियोंको जीतकर दिखाये। इस लिए, दर्शक लोग आश्चर्य्यमय हो हो जाते थे। आर्य दर्शकोंके हृदय तो प्रसन्नता देवीके क्रीड़ा-केतन बन रहे थे। उस समय, सर्वत्र श्रीस्वामीजीका ही यशोगान होता था।

दिनके ग्यारह बजे कार्य्यवाही समाप्त हुई। सभी मतोंके प्रतिनिधि अपने अपने तम्बूओंमें चले गये। फिर दोपहरके पश्चात् एक बजे सभा लगी और सबने मिलकर यह स्थिर किया कि समय बहुत अल्प है, अन्य विषयोंको छोड़कर केवल मुक्तिपर ही विचार किया जाय। पर उस समय पादरियों और मौलवियोंमेंसे कोई भी पहले बोलना न चाहता था उनको यह भ्रम हो गया था कि सवेरे हमारा पक्ष इसी लिए निर्बल सिद्ध हुआ कि हम पहले बोले थे।

जब कोई भी न उठा तो महाराजने उठकर कहा, 'मुक्ति छूट जानेका नाम है। जितने भी दुःख हैं उनसे छूटकर सच्चिदानन्द परमात्माकी प्राप्तिसे सदानन्दमें रहना और फिर जन्म-मरणमें न गिरना मुक्ति है।'

'मुक्तिका पहला साधन सत्याचरण है, दूसरा वेद-विद्याका ठीक रीतिसे लाभ करना और सत्यका पालन करना है। तीसरा सत्पुरुषों और ज्ञानी जनोंका सत्संग करना। चौथा योगाभ्यासद्वारा अपनी इन्द्रियों और आत्माको असत्यसे निकालकर सत्यमें स्थापन करना। पाँचवां ईश्वरकी स्तुति करना, उसकी कृपाका यश वर्णन करना और परमात्मकथाको मन लगाकर सुनना। और छठा साधन प्रार्थना है। प्रार्थना इस प्रकार करनी चाहिए, हे जगदीश्वर कृपानिधे! हमारे पिता! मुझे असत्से निकालकर सतमें स्थिर करो। अविद्यान्धकार और अधर्म्माचरणसे पृथक् करके ज्ञान और धर्म्माचरणमें सदाके लिए स्थापन करो।' जन्म मरणरूप संसारसे मुक्त कर अपनी अपार दयासे मोक्ष प्रदान करो।'

'प्रार्थनाका फल यह है कि जब कोई जन अपने सच्चे मनसे, अपने आत्मासे, अपने प्राणसे, अपने सारे सामर्थ्यसे परमेश्वरका भजन करता है तब वह कृपामय परमात्मा उसको अपने आनन्दमें निमग्न कर देता है। जैसे छोटा बालक, घरकी छत्तपरसे अथवा नीचेसे, अपने मातापिताके पास जाना चाहता है तो उसके मां बाप, इस भयसे कि कहीं हमारे प्रिय पुत्रको इधर उधर गिर पड़नेसे कष्ट न हो अपने सहस्रों कामोंको छोड़, दौड़कर उसे गोदमें उठा लेते हैं, ऐसे ही परम कृपानिधि परमात्माकी ओर यदि कोई सच्चे आत्मभावसे चलता है तो वह भी अपने अनन्त-शक्तिमय हाथोंसे उस जीवको उठाकर सदाके लिये अपनी गोदमें रख लेता है। फिर उसको किसी प्रकारका कष्ट क्लेश नहीं होने देता और वह जीव सदा आनन्ददशामें रहता है। परमात्मा मातापिताकी भाँति अपने भक्तोंको सदा सुखसम्पन्न करनेकी ही कृपा करता है।"

इस प्रकार, महाराजने नाना युक्तियोंसे अलंकृत भाषण किया। फिर कुछ परस्पर समालोचनाके अनन्तर सायंकालका कार्य समाप्त हो गया।

यद्यपि स्वामीजीके कथनानन्तर दूसरे मतवादी भी बोले परन्तु उनके कथनमें लोगोंको कुछ भी तो रस नहीं आता था। जैसे सूर्य्यके सामने दीपककी ज्योति मन्द पड़ जाती है, ठीक ऐसी ही अवस्था स्वामीजीके सम्मुख अन्य-मताभिमानियोंकी हो गई।

२१ मार्चको पादरी महाशयतो सवेरे ही वहाँसे चले गये। मण्डपमें किसीने यों ही झूठ मूठ घोषणा करदी कि मेला समाप्त हो गया है। स्वामीजीने बहुतेरा बल लगाया कि यह मेला न्यूनसे न्यून पाँच दिवसतक तो होना चाहिए परन्तु मौलवी और पादरी ताड़ गये थे, इसलिए मेला बिखर ही गया।

मेलेकी समाप्तिपर, बहुतसे पादरी सज्जन श्री स्वामीजीके पास मिलापार्थ पधारे। महाराजने उनका अत्यादरसे स्वागत किया और फिर कुर्सियोंपर बैठकर, विविध धार्मिक विषयोंपर, वार्त्ताविनोद करने लगे।

एक पादरीने मनोरञ्जनकी रीतिमें स्वामीजीसे कहा, "पण्डितजी! हम भी आर्य्य हैं।" स्वामीजीने मुस्कराकर उत्तर दिया, "महाशय! आप सभ्य तो अवश्य हैं, परन्तु आर्य नहीं हैं।" कारण पूछनेपर उन्होंने कहा, "आर्य्य

कहते हैं श्रेष्ठ धर्म्मात्माको। आपकी मान्य पुस्तक आपको श्रेष्ठ धर्म्मात्मा नहीं बताती।'

'एक बार श्री ईसाके शिष्योंने उनसे पूछा था कि आप अन्धों और कोढ़ियों को चङ्गा कर देते हैं, परन्तु हम क्यों नहीं कर सकते? उत्तरमें ईसाने कहा कि तुममें राई जितना भी विश्वास नहीं है। जब गुरुके सामने ही शिष्योंमें राई जितना विश्वास न था तो आज आपमें कैसे हो सकता है?" महाराजके इस कथनको सुनकर पादरी महाशयने मूकभाव धारण कर लिया।

वार्त्तालापके प्रसंगमें, स्वामीजीने उनको यह भी कहा, "हमने बाइबलका आद्योपान्त पाठ किया है। उसमें ईसाने कहीं भी नहीं कहा कि यदि मुझपर विश्वास लाओगे तो तुम्हारी मुक्ति होगी। यह केवल पादरियोंकी ही कल्पना है।'

विदाईके समय, पादरियोंने उनके मिलापपर बड़ी प्रसन्नता प्रकट की और वे उनके विस्तृत ज्ञानका गुण गाण करते हुए चले गये।

एक दिन स्वामीजीने श्री प्यारेलालजीसे भुने हुए चने मंगाए। उस समय श्री इन्द्रमनजीने कहा, "स्वामीजी! चनोंमें घुन हुआ करता है। चने भुनने पर भाड़में वह भी भुन जाता है।"

उन्होंने उत्तर दिया कि "गेहूंमें भी तो घुन हुआ करता है और दानोंके साथ ही चक्कीमें पिस जाता है; तो क्या, आप आटा फेंकवा दिया करते हैं?" इसपर इन्द्रमनजी अवाक् हो गये।

श्रीयुत प्यारेलालजीको निश्चय था कि स्वामीजी केवल सभाको जीतनेवाले पण्डित ही हैं। योगविद्यामें इनकी गति नहीं है। वे हमारे कबीरपन्थियोंकी भाँति सन्त भी नहीं हैं। एक दिन, प्यारेलालजी श्री सेवामें गये और परीक्षार्थ प्रश्न किया कि अजपा जाप क्या है? स्वामीजीने कहा कि अजपा जाप तो सबमें निरन्तर होता रहता है। उनको सुननेके लिए कुछ दिन साधन करना चाहिए। फिर प्यारेलालजीने कहा हमारे मतमें लिखा है, सोते समय साँस शब्दरूप होकर अनहत नादमें मिल जाता है। महाराजने उत्तर दिया कि यह बात अनुभवविरुद्ध है इसलिए असत्य है। कालान्तरमें अधिक अभ्यास करनेपर प्यारेलालजीको स्वामीजीके परम योगी होनेका पूर्ण विश्वास हो गया।

एक दिन, बक्षीरामजी मुरादाबादी और श्री इन्द्रमनजी स्वामीजीके निकट बैठे हुए बातें कर रहे थे। उस समय, श्री महाराजने उनको अपनी बीती कथा सुनाई, "जिन दिनोंमें मैं एकाकी घूमता था, उन दिनोंमें मेरा एक ऐसे स्थानपर जाना हुआ जहाँ सभी शाक्त बसते थे। उन्होंने मेरी बड़ी सेवा शुश्रूषाकी। जब कई दिनके निवासके अनन्तर, मैं वहाँसे चलने लगा तो उन लोगोंने अत्याग्रहसे मुझे ठहरा लिया। मैं समझता रहा कि वे भक्तिभावसे मुझे ठहराते हैं। ऐसे ही बहुत दिन बीत जानेपर उनका पर्वदिन आ गया। उस दिन सारे शाक्त, देवीके मन्दिरमें एकत्र होकर गीत गाने लगे। उस दिन, उन्होंने मुझे भी कहा कि आज हमारे मन्दिरमें महोत्सव है, आप वहाँ अवश्य चलिए। मैंने बहुत समझाया कि देवीके दर्शनोंमें मेरा निश्चय नहीं परन्तु वे एक न सुनते थे। पाँव पकड़कर कहने लगे कि यदि आज वर्षके दिन आप मन्दिरमें न पधारेंगे तो हमारा सारा उत्साहभङ्ग हो जायगा। आप मूर्तिको नमस्कार आदि कुछ भी न करना, परन्तु हमारे लिए चले तो चलिए।'

'वह मन्दिर, नगरसे बाहर एक उजाड़ स्थानमें था। उनके विवश करनेपर मुझे उस मन्दिरमें जाना पड़ा। उस समय वहाँ, आंगनमें होम हो रहा था। और लोग उत्सव मना रहे थे। मुझे वे दुर्गाकी मूर्ति दिखलानेके बहाने भीतर ले गये। मैं सहज स्वभावसे दुर्गाकी प्रतिमाके सन्मुख जा खड़ा हुआ। मूर्त्तिके पास ही एक बलिष्ठ व्यक्ति नङ्गी तलवार लिये खड़ा था।

वहाँ, वे लोग मुझे कहने लगे कि 'महात्माजी ! माताके आगे झुककर नमस्कार अवश्य कीजिए।' मैंने उनको स्पष्ट शब्दोंमें कहा कि मुझसे ऐसी आशा करना दुराशा मात्र है। मेरे वचनोंसे पुजारी चिढ़ गया और पास आकर, मेरी ग्रीवाको पकड़कर मेरे सिरको नीचा करने लगा ! उसके इस बर्तावसे मैं चकित हो गया, परन्तु ज्यों ही मैंने दृष्टि फिराई तो क्या देखता हूँ कि वह खड्गधारी मेरे पास आ गया है और मेरी ग्रीवापर खड्ग बरसाना ही चाहता है !!

'इस दृश्यको देखकर मैं तुरन्त सावधान हो गया। मैंने झपटकर उसके हाथसे खड्ग छीन लिया। पुजारी तो मेरे बायें हाथके एक ही धक्केसे मन्दिरकी दिवालसे जा टकराया। मैं तलवार लिये मन्दिरके आँगनमें आ गया। उस

समय आँगनके सभी लोग कुल्हाड़ा, छुरी आदि शस्त्र लेकर मुझपर टूट पड़े। द्वारकी ओर देखा तो उसको ताला लगा हुआ था। अपने आपको बलिदानसे बचानेके लिए, मैं उछलकर दिवालपर चढ़ गया और परलेपार कूदकर भाग निकला। उस स्थानके समीप ही एक बन था। दिनभर तो मैं वहाँ छुपा बैठा रहा, परन्तु जब रातका राज्य विस्तृत हो गया तो रातोरात ग्रामान्तरमें जा पहुँचा। उस दिनसे मैंने शाक्त लोगोंका कभी भी विश्वास नहीं किया।"

उस समय महाराजने दोनों सज्जनोंको यह भी सुनाया, "एक बार गवर्नर जनरल महोदयसे भी मुझे मिलनेका अवसर मिला। मुझे मिलकर उन्होंने अति प्रसन्नता प्रकट की और मेरे विचारोंको बड़े सम्मानसे सुना। मेरी विपत्तियोंकी कहानी सुनकर उन्होंने आश्चर्य और खेद, दोनों प्रकाशित किये। चलते समय मुझे कहने लगे, 'यदि आप चाहें तो आपकी रक्षाके निमित्त कुछ सैनिक नियत किये जाँय और भ्रमणमें कष्ट न हो, इस लिए रेलके प्रथम दर्जेका आपको पास मिल जाय।' मैंने उनकी सहानुभूति और उदारताका धन्यवाद किया और कहा कि मैं आपकी इस सहायताको स्वीकार नहीं कर सकता। इसे स्वीकार करनेपर लोग, मुझे राजनौकर अथवा ईसाई धर्म्मका नौकर समझने लग जायँगे। उन्होंने कहा, 'क्या आप राजनौकरीको बुरा समझते हैं?' इसपर मैंने उत्तर दिया कि मैं सन्यासी हूं और सच्ची सरकार—परमेश्वरका—नौकर हो गया हूं। उसी पर भरोसा रखता हूं। इस लिए किसी मनुष्यकी नौकरी करना मैं अपने लिए अच्छा नहीं समझता। मुझसे फिर पूछा गया, 'क्या आप वर्तमान सरकारको सच्ची नहीं मानते?" मैंने कहा कि सच्चीसे मेरा तात्पर्य न परिवर्त्तन होनेवालीसे है, सो ऐसा एक ईश्वर ही है। उसका नियम अटल और न्याय निर्भ्रान्त है। मनुष्योंके न्याय और नियम तो समयानुसार बदलते ही रहते हैं। लाट महोदय मेरी बातोंसे बहुत ही प्रसन्न हुए।"

चाँदापुरसे स्वामीजी अतिसम्मानपूर्वक बिदा होकर शाहजहाँपुरसे रेल गाड़ीमें बैठ, सहारनपुर आये और राम-उद्यानमें ठहरे। उस उद्यान ही में उनके चित्ताकर्षक भाषण होते थे।

चौथा सर्ग।

वैशाख ब० २ सं० १९३४ को सहारनपुरसे प्रस्थान कर श्री महाराजने लुध्याना नगरको शोभा प्रदानकी। पञ्चनदप्रक्षालित पवित्र प्रान्तमें, ऋषि मुनियोंके पुरातन निवासस्थानमें और वीर-सन्तति-सङ्कुल भूभागमें, श्री परमहंसजीका यह पहली ही बार पदार्पण था। लुध्यानामें, वे नगरसे पौन कोसके अन्तरपर लाला वंसीधरके उद्यानमें ठहरे। उस समय उनके साथ दस बारह कर्म्मचारी थे। स्वामीजी पण्डितोंसे वेदभाष्य लिखवाते थे।

वैशाख बदी द्वितीया सम्वत् १९३४ को महाराजका पहला उपदेश श्रीयुत जटमल खजानचीके आवासमें हुआ। व्याख्यानके आरम्भहीमें महाराजने घोषणा कर दी कि यहाँ सात व्याख्यान होंगे। बीचमें कोई प्रश्नादि न करे। आठवें दिन केवल शङ्का-समाधानही होगा। उस दिन सभी स्वतंत्रतासे प्रश्न पूछ सकेंगे।

उनके सातों व्याख्यानोंमें सहस्रों मनुष्य आये और अतीव प्रभावित होकर गये। एक दिन, पादरी वेरी महाशय, अपने साथियों सहित स्वामीजीकी सेवामें आये। वार्त्तालापके प्रसंगमें उन्होंने कहा कि श्रीकृष्णजीके जो कर्म लोग वर्णन करते हैं उनसे उनका महात्मा होना बुद्धि नहीं मानती। स्वामीजीने उत्तर दिया कि श्रीकृष्णजीपर जो दोष लगाये जाते हैं वे सब मिथ्या और निर्मूल हैं; परन्तु बुद्धिके न माननेके विषयमें क्या कहा जाय? बुद्धि जब यह स्वीकार कर लेती है कि परमेश्वरकी आत्मा कबूतरके स्वरूपमें एक मनुष्यपर उतरी तो श्रीकृष्णकी लीला स्वीकार करनेमें उसे क्या कठिनाई है?

एक पादरी महाशयने पुनर्जन्मपर प्रश्न किये। इनका उत्तर देते समय स्वामीजीने उनसे पूछा, "खाना, पीना, सुनना देखना आदि कर्म देहधारीमें होते हैं अथवा देहरहितमें?" पादरीने कहा, "ये सारे कर्म देहधारीमें ही होते हैं।"

फिर महाराजने उनसे पूछा, "एक देहको छोड़कर दूसरी देहको धारण करना ही पुनर्जन्म है?" पादरी महाशयने कहा, "हाँ, यही पुनर्जन्म है।" तब स्वामीजीने कहा, "आपने मान लिया कि खान पान आदि कर्म देह धारीमें होते हैं और एक देहको छोड़कर दूसरी देहको धारण करना पुनर्जन्म

है। अब आपको मान लेना चाहिए कि मनुष्यदेह छोड़कर, जो लोग ईसाई धर्म्मके स्वर्गमें नाना भोगोंको भोगते हैं उनका वहाँ पुनर्जन्म होता है ।" यह सुनकर ईसाई महाशय चुप्प हो गये ।

रामशरण नामक एक ब्राह्मणवंशीय व्यक्ति ईसाई लड़कियोंके स्कूलमें नागरी पढ़ाता था। उसकी आर्थिक अवस्था अति दीन थी । वह पादरियोंका नौकर तो था ही, अन्तमें, उन्होंने उसे एक ऐसा चकमा दिया कि वह ईसाई बननेके लिए समुद्यत हो गया ।

मेल-मिलाप वालोंकी प्रेरणासे, एक दिन रामशरण भी श्री उपदेश सुनने आया। व्याख्यानके पश्चात्, श्रीमहाराजने ईसाई धर्म्मकी भूलभरी बातोंको बताकर उसे इस प्रकार समझाया कि वह ईसाई बननेसे बच गया ।

भूतप्रेतके भ्रमका खण्डन करते हुए, एक दिन, महाराजने एक खेल दिखाया। जिस आवासमें वे रहते थे उसके तीन द्वार और दो ताक थे । उन्होंने उन दोनों ताकोंमें दीपक जलाकर आमने सामने रख दिये । फिर उनमेंसे एक दीपक बुझा दिया और दूसरेको बुझा देनेका आदेश किया। जिस समय दूसरा दीपक बुझाया गया तो तत्काल पहला दीपक अपने आप जल उठा । इस प्रकार एक दीपकके बुझानेपर दूसरेके अपने आप जल उठनेके खेलको लोग बड़ी देरतक देखते रहे । दर्शकोंको आश्चर्य भी होता था कि बीस पच्चीस हाथके अन्तरपर रखे हुए इन दीपकोंमें यह कैसा चमत्कार हो रहा है। खेल हो चुकनेके पश्चात् महाराजने कहा कि जो कुछ आपको दिखाया गया है वह विद्याकी बात है। भूत प्रेत कोई वस्तु नहीं है । उनका भ्रम न किया करो ।

लुध्यानेमें श्रद्धाराम फिलौरी आदि कुछ पण्डित दूर दूर बैठे स्वामीजीके विरुद्ध अण्डबण्ड बोला करते, परन्तु उनके सामने आनेका साहस नहीं कर सके ।

एक ब्राह्मण स्वामीजीके निकट आकर संस्कृतमें बात करने लगा। महाराजने, थोड़ी देरतक उससे संस्कृतमें बातचीत करनेके अनन्तर कहा, "अब तो आपको ज्ञात हो गया होगा कि मैं संस्कृत जानता हूं, अब भाषामें बातचीत कीजिए जिससे पास बैठे, दूसरे सज्जन भी कुछ समझ सकें ।"

एक पण्डितने अपने साथियोंको कहा, "ऐसे दुष्टका मुख देखना अधर्म है। चलो यहाँसे उठ चलें।" इस बातको सुनकर स्वामीजीने कहा, "मेरा मुख देखनेसे यदि आपको घृणा है तो पीठ पीछे खड़े हो जाइए परन्तु मेरे कथनको अवश्य सुनिये।"

उन दिनों, श्रीमान् कार स्टीफन महाशय वहाँ जज थे। वे स्वामीजीको मानते थे। उनके उपदेशोंमें भी आया करते थे और चरण छूकर उनको नमस्कार किया करते थे। उनकी विनीतिवश, श्री महाराज लुध्यानेसे प्रस्थान करनेके समय, श्री कन्हैयालालजीके साथ उनके बंगलेपर पधारे। कार स्टीफन महाशयने बड़े आदरसे उनका स्वागत किया और विदाईके समय कुछ द्रव्य लिफाफेमें बन्द करके, श्रीचरणोंमें भक्तिभावसे भेंटस्वरूप रखकर नमस्कार किया

लुध्याना-निवासियोंके हृदयोंमें धर्मांकुर उत्पन्न करनेके उपरान्त श्रीमहाराज वैशाख सुदी ६ सम्वत् १९३४ को वहाँसे प्रस्थानकर लाहौरमें सुशोभित हुए। पण्डित मनफूलजी आदि सज्जनोंने रेलके स्टेशनपर उनका स्वागत किया और उनको अति सन्मानसे लाकर श्रीमान् रत्नचन्द्रजी डाढ़ीवालाके उद्यानमें ठहराया। उस समय स्वामीजीके साथ इतने ग्रन्थ थे कि एक चौपहिया गाड़ीमें, केवल वे ही लादकर लाये गये।

स्वामीजीके पधारनेका समाचार पाकर लाहौरवासी भद्रजन सत्संगके लिए उनके उतारेपर आने लगे। उनके उपदेशोंका अत्युत्तम प्रभाव पड़ता था। महाराजका पहला व्याख्यान वैशाख सुदी १३ को बावलीसाहबमें बड़े समारोहसे कराया गया। सायंकालके ६ बजे वेद विषयपर व्याख्यान आरम्भ होना था, परन्तु सभास्थान नियत समयसे बहुतही पहले भरपूर हो गया था। सहस्रों मनुष्योंकी भीड़ थी, दलोंके दल उमड़े चले आते थे। महाराजने अत्युत्तम रीतिसे विषयका वर्णन किया और श्रोताजन बड़े प्रभावित होकर घरोंको लौटे।

महाराजने, बावली साहबमें दूसरा व्याख्यान, वैसाख पूर्णमासी सम्वत् १९३४ को दिया। इसमें सुनने वालोंकी संख्या और भी अधिक थी। महाराजके वचन, बिजलीकी भाँति, पंजाबियोंके अन्तःकरणोंमें संचार करते जाते थे। आवेशमें आकर लोग फड़क उठते थे। इस अदृष्टपूर्व महापुरुषके दर्शनोंसे

उसके अश्रुतपूर्व उपदेशोंसे और अनुभूत उपदेशप्रभावोंसे लोग इतने मोहित हुए कि जहाँ सुनो श्री स्वामीजीके ही गुणकीर्त्तन हो रहे थे। समाचारपत्र भी उन्हींका अनुराग-राग अलापते थे। कई सज्जनोंने अपने ठाकुर रावी-धाराशायी कर दिये।

बावली साहबके उपदेशोंमें, प्रसंगानुसार उन्होंने आप-बीती तीन बातें सुनाई थीं। एक तो यह कि एक बार मैं गङ्गा-तीरपर विचरता हुआ एक निबिड़ सघन वनमें जा निकला। वहाँ मुझे सामने आता एक सिंह दृष्टिगोचर हुआ। मैं सीधा चलता हुआ जब उसके पास पहुँचा तो वह सिंह मेरी ओर देख, मुंह फिराकर जङ्गलमें चला गया।

दूसरी घटना यह थी—एक बार मैं एक पर्णकुटीमें आसन रमाये बैठा था। उसके पास ही कुछ साधु रहते थे। वे अकारण ही मेरे द्वेषी बन गये। जब महाकाली निशा, आकाशको निबिड़ कालिमाके साथ एकाकार हो रही थी तो वे साधु मुझे मार मिटानेके लिए मेरी कुटियापर आये और वधकी विधि सोचने लगे। उनकी बातें मुझे सुनाई पड़ती थीं। थोड़ी देरतक परस्पर परामर्श करनेके अनन्तर, उन्होंने मेरी झोपड़ीमें आग लगा दी! जब घासफूसकी कुटीको आगकी लपटें लपेटकर भस्मीभूत करने लगीं तो मैं छप्परको उठाकर बाहर निकल आया।

तीसरी घटना यह है—बनारसमें एक दिन, जब कि मैं व्याख्यान दे रहा था एक मनुष्यने मुझे पान लाकर दिया। ज्योंही मैंने उसे मुखमें रख उसका रस चूसा तो मुझे ज्ञात हो गया कि इसमें विष मिला हुआ है। मैंने उसी समय वमनद्वारा उसे निकाल दिया।

स्वामीजीको लाहौर बुलानेमें अधिक हाथ ब्राह्मसमाजियोंका था। उनके निवासादिका प्रबंध भी प्रायः वे ही करते थे। पर परमहंसजी अपने सिद्धान्तके इतने पक्के थे कि व्याख्यानके समय सहायकोंतकके धर्म्मऔररुचिका किंचिन्मात्र भी पक्षपात नहीं करते थे। न्यायानुकूल, सबको स्पष्ट सुना देते थे।

महाराजके दो व्याख्यान ब्राह्मसमाजियोंने अपने धर्म्म मन्दिरमें कराये। उन्होंने अपने प्रथम व्याख्यानमें यह सिद्ध किया कि वेद ईश्वरीय ज्ञान है और दूसरेमें पुनर्जन्मके वादको युक्तियुक्त बताया। ये दोनों ही व्याख्यान ब्राह्म

समाजके मन्तव्यके नितान्त विरुद्ध थे; इसलिए ब्राह्मसमाजियोंको बहुत बुरे लगे। वे लोग इतनी बातसे ही ऐसे अधीर हुए कि स्वामीजीका विरोध करनेपर उतर आये।

स्वामीजीने अपने भाषणोंमें पुराणोंकी निर्मूलकल्पनाओंकी तीव्र समालोचना की, जिससे पौराणिकोंमें बड़ी हलचल मच गई। बहुतसे पण्डित तो विघ्नविरोध करनेपर इतने तुल गये, कि जिस उद्यानमें महाराज निवास करते थे, वे उसके अधिपति श्री रत्नचन्द्रजीको भड़काने लगे कि आपने अपने उद्यानमें किस नास्तिकको उतार रक्खा है। वह सब देवताओंका खण्डन करता है। न जाने कोई कृष्टान है अथवा कोई और है। लोकापवादसे भीत, रत्नचन्द्रजीने स्वामीजीको उद्यान छोड़ देनेके लिए विवश किया। स्वामीजीके प्रेमी उनको डाक्टर रहीम खाँकी कोठीमें ले आये। यह कोठी भक्त छज्जूके चौबारेके पास थी।

पण्डित मनफूलजी, स्वामीजीके सत्कार करनेवालोंमें, उस समय मुख्य माने जाते थे। ब्राह्मसमाजियोंने तो रुष्ट होकर स्वामीजीके व्ययके लिए द्रव्य देना बन्द कर ही दिया था, इसलिए,उनके आतिथ्यका प्रबंध पण्डित मनफूलजीको ही करना पड़ता होगा। परन्तु महाराज किसीके भी अनुचित दबावमें नहीं आते थे। एक दिन, मनफूलजीने स्वामीजीसे कहा, "नगरके सारे लोग मूर्त्तिपूजाके खण्डनसे अप्रसन्न हैं। आप अब उसका खण्डन न किया करें। ऐसा करनेसे महाराजा जम्मूँ और कश्मीर भी आपपर प्रसन्न हो जायँगे।" महाराजने तत्काल उत्तर दिया, "मैं महाराजा जम्मूँ और कश्मीरको प्रसन्न करूं या ईश्वरीय ज्ञान वेदके आदेशानुसार चलूं? चाहे जो हो, मैं वेदाज्ञाको भङ्ग नहीं करूंगा" यह सुनकर मनफूलजीने मनमुटाव उत्पन्न कर लिया। और उनके समीप आना जाना छोड़ दिया।

डाक्टर रहीम खाँकी कोठीमें स्वामीजी एक दिन व्याख्यान देते और दूसरे दिन शङ्का-समाधान करते थे। उनके सत्संगोंमें सहस्रों आर्य्य मुसलमान और ईसाई आते, उपदेश सुनते और संशय दूर कराते। एक दिन स्वामीजीके पास पादरी हूपर महाशय आये और पूछने लगे कि वेदमें जो अश्वमेध और गोमेध यज्ञका वर्णन है आप उसका क्या समाधान करते हैं?

स्वामीजीने उत्तर दिया कि वेदोंमें पशु-बलिका वर्णन कहीं भी नहीं है। अश्वमेधका अर्थ न्यायपूर्वक प्रजापालन है, और गोमेधका अर्थ है अन्नका उपार्जन करना, इन्द्रियोंको पवित्र बनाना, भूमिको शुद्ध रखना और मृतकका दाहकर्म करना।

दूसरा प्रश्न पादरी महाशयने वैदिक वर्ण-व्यवस्थापर किया। इसके उत्तरमें स्वामीजीने कहा कि 'वेदोंमें वर्ण गुण-कर्मानुसार माना गया है'। तब पादरी महाशय बोले कि यदि मेरे गुण-कर्म्म उत्तम होंतो क्या मैं भी ब्राह्मण कहला सकता हूँ।

महाराजने कहा कि निस्सन्देह गुण-कर्म ब्राह्मणवर्णके होनेपर आप ब्राह्मण कहे जा सकते हैं।

डाक्टर रहीम खांकी कोठीमें एक दिन महाराज भाई दित्तसिंहको वेदान्त-वादका अधूरापन समझा रहे थे।उस समय, वहाँ पण्डित शिवनारायण अग्निहोत्री जी भी विद्यमान थे। वह आप ही आप बीचमें बोलने लग गये। स्वामीजीने पण्डित महाशयको कहा, "आप योंही बीचमें हस्तक्षेप कर रहे हैं। आप यह तो बताइए कि भाईजीने क्या प्रश्न किया और मैंने उसका उत्तर क्या दिया है?" अग्निहोत्री महाशय प्रश्न और उत्तरको ठीक ठीक न बता सके। तब महाराजने उनको कहा, "जिस बातकी समझ ही न हो उसमें हस्तक्षेप करना अच्छा नहीं।" उनकी इस शिक्षासे पण्डित महाशय रुष्ट हो गये।

एक दिन पण्डित शिवनारायणजीने स्वामीजीसे कहा कि आप वेदमें किस्से कहानी नहीं मानते, परन्तु सामवेदमें तो उल्लूकी कहानी विद्यमान है। स्वामीजीने उनको कहा सामवेदमें उल्लूकी कहानी नहीं है। परन्तु वे कब मानते थे! वे यही कहते रहे कि साममें उल्लूकी कहानी अवश्यमेव है। तब स्वामीजीने सामवेद उठाकर उनको दिया और कहा कि व्यर्थका झगड़ा क्यों करते हो? इसमेंसे वह कहानी निकालकर सबको दिखा दो। पण्डित महाशय पुस्तकके पृष्ठोंको उथल पुथल तो बहुत देरतक करते रहे, परन्तु कहानी न निकाल सके। स्वामीजीने तो उन्हें कुछ न कहा, परन्तु लोगोंने उनको उस समय बहुत ही लज्जित किया।

स्वामीजीके प्रचारसे अनेक सज्जन उनके अनुयायी बन गये और आर्य-समाजकी स्थापनाका उद्योग होने लगा । उस समय यह आवश्यक समझा गया कि समाजकी स्थापनाके पूर्व समाजके नियमोंका नूतन संस्कार किया जाय । इस लिए, महाराजने यहाँ, स्वयं आर्य समाजके नियमोंको संगठित किया । वह नियम ये हैं:—

१. सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्यासे जाने जाते हैं उन सबका आदि मूल परमेश्वर है ।

२. ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है । उसीकी उपासना करनी योग्य है ।

३. वेद सत्य विद्याओंका पुस्तक है । वेदका पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्योंका परम धर्म है ।

४. सत्यके ग्रहण करने और असत्यके छोड़नेमें सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।

५. सब काम धर्म्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्यको विचार करके करने चाहियें ।

६. संसारका उपकार करना इस समाजका मुख्योद्देश्य है, अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और समाजिक उन्नति करना ।

७. सबसे प्रीतिपूर्वक धर्म्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिए ।

८. अविद्याका नाश और विद्याकी वृद्धि करनी चाहिए ।

९. प्रत्येकको अपनी ही उन्नतिमें सन्तुष्ट न रहना चाहिए, किन्तु सबकी उन्नतिमें अपनी उन्नति समझनी चाहिये ।

१०. सब मनुष्योंको सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालनेमें परतंत्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियममें सब स्वतंत्र रहें ।

नियम बनाते समय ब्राह्मसमाजियोंने स्वामीजीसे कहा, "यदि आप तीसरा नियम न रक्खें तो हम भी आपके समाजमें सम्मिलित हो सकते हैं।" परन्तु महाराजने उनकी बातको स्वीकार नहीं किया ।

रायबहादुर लाला मूलराजजी स्वामीजीके प्रेमियोंमेंसे एक थे। नियम-निर्माणके समय वे उपस्थित थे। संशोधनमें वे सम्मति भी देते थे। उन्होंने महाराजसे निवेदन किया, "आपने जो तीसरे नियममें 'वेद सत्य विद्याओंका पुस्तक है' यह वाक्य रक्खा है, यदि इसमें 'सत्य' शब्द निकाल कर 'वेद विद्याओंका पुस्तक है' ऐसा वाक्य बना दिया जाय तो यह नियम बहुत व्यापी हो जायगा। फिर इसको माननेमें किसीको कुछ भी हिचक न होगी।" महर्षि दयानन्द आचार्य्य थे। वे लोकमतके पीछे दौड़नेवालोंमेंसे न थे, किन्तु लोकमतके निर्माता थे। उन्होंने महाशय मूलराजकी सम्मतिको सर्वथा अस्वीकार किया।

संगठनका नवीन संस्कार हो जानेपर आर्य्य समाजकी शुभ स्थापना की गई। उस समय महाशय मूलराजजी प्रधान और श्रीमान् साईंदासजी मंत्री नियत हुए। समाजका पहला सत्संग डाक्टर रहीम खाँजीकी कोठीमें स्वामीजीके पास ही लगाया गया। इसपर महाराजने आशीर्वाद देते समय कहा अब यह समाज अवश्य ही फूले फलेगा।

दूसरा सत्सङ्ग आषाढ़ वदी पंचमी सम्वत् १९३४ को सत्य सभाके स्थानपर लगाया गया। उसमें स्वामीजीने एक प्रभावशाली भाषण किया।

लाहौरमें स्वामीजीने, आर्य्यसमाजके नियमोंका नूतन संस्कार करके आर्य समाजकी नींव एक प्रबल चटानपर रख दी, आर्य्यसमाजके सिद्धान्तोंको परिमार्जित कर दिया, और उसके उद्देश्योंको एक अभेदनीय भित्तिपर चित्रित कर दिया। मुम्बईके नियमोंकी लड़ी जहाँ बड़ी लम्बी थी वहाँ साथ ही अधूरा भी था।

मुम्बईके नियमोंका निर्माण पारिख महाशयने किया था। वे महर्षिकी रचना न थे, इस लिए सिद्धान्त दृष्टिमें वे अनार्ष कल्पना थे। यह उनकी पहली त्रुटि थी। दूसरे, उनमें वेदको 'ईश्वरीय ज्ञान' कहीं भी नहीं कहा गया। तीसरे, उनमेंसे कोई भी नियम ईश्वरको सृष्टिका रचयिता नहीं बतलाता। चौथे; उनमें एक ऐसा नियम रक्खा गया है, जिसके आधारपर, श्रेष्ठ सभासदोंकी सम्मतिसे कोई भी नियम बदला जा सकता है—चाहे यह नियम ईश्वरकी उपासना और वेदोंकी प्रामाणिकतावाला ही क्यों न हो।

मुम्बईवाले नियमोंमें, यद्यपि स्त्रियोंको सभासद बननेका अधिकार है, परन्तु प्रधान और मन्त्रि-पदके साथ पुरुष शब्द लगाकर, धर्म्ममें समताके आदर्शको संकुचित कर दिया गया है। लाहौरके संस्कारमें नियमोंको सिद्धान्तका स्वरूप प्राप्त हो गया। वे सुस्पष्ट और निर्भ्रान्त बन गये। उनके परिवर्त्तनका किसीको भी अधिकार नहीं रहा। समुच्चयरूप होनेसे, वे स्त्री और पुरुष दोनोंके लिए समान हैं और प्रत्येक समाजको पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान करते हैं।

लाहौरके नूतन संस्कारमें उपनियमोंको पृथक् किया गया और उनको प्रायः स्वामीजीके भक्तोंने ही कार्त्तिक सुदी १ सम्वत् १९३४ को बनाया और स्वीकार किया। महाराजने केवल अनुमति ही प्रदान की।

एक दिन स्वामीजीने कहा, "वैदिक धर्म्म-प्रचारका कार्य बहुत बड़ा है। हम जानते हैं कि वह हमारे इस सारे जीवनमें पूर्ण न हो सकेगा। परन्तु चाहे दूसरा जन्म धारण करना पड़े, मैं इस महत् कार्यको अवश्य पूर्ण करूंगा।"

एक दिन, महाराज आर्यसमाजके साप्ताहिक सत्संगमें उस समय पधारे, जब, प्रार्थना और उपासना हो रही थी। गुरुदेवको आते देख सारे सभासदोंने उनका अभ्युत्थानपूर्वक स्वागत किया। जब प्रार्थना समाप्त हो चुका तो महाराजने उपदेश दिया, "उपासनाके समय उपासक जन ईश्वरके सत्संगमें निमग्न होते हैं; उस प्रभुसे महान् कोई भी वस्तु नहीं है, इस लिए, उपासना-कालमें चाहे कितना ही बड़ा मनुष्य क्यों न आये उठना नहीं चाहिए। ऐसे समयमें किसी व्यक्तिके लिए अभ्युत्थान आदि आदर करना उपासना-धर्म्मका निरादर है।" सब सभासदोंने बड़े विनीत भावसे श्रीवचनोंको स्वीकार किया।

यद्यपि, आर्य-समाजमें संशोधन और परिवर्तन आदिके सारे अधिकार स्वामीजीके ही हाथमें थे, परन्तु वे इतने निरभिमान और निर्लेप थे कि जिसकी दूसरा दृष्टान्त मिलना अति दुर्लभ है। आर्य्य-समाज लाहौरके साधारण अधिवेशनमें महाशय शारदाप्रसादजीने प्रस्ताव किया "आर्य्य-समाजके संस्थापकको पदवीसे विभूषित किया जाय।" सब सभासदोंने इस प्रस्तावका सुप्रसन्नतासे अनुमोदन किया। स्वामीजी महाराजने हँसकर कहा, "मैंने कोई नया पन्थ चलाकर गुरुगद्दीका मठ नहीं बनाया है। मैं तो लोगोंको मतवादियोंके मठोंसे स्वतंत्र करना चाहता हूँ। ऐसी पदवियोंसे अन्तमें हानियाँ ही हुआ करती हैं।"

शारदाप्रसादजीने दूसरा प्रस्ताव किया, कि "महाराजको इस समाजका परम सहायक नियत किया जाय।" इसपर उन्होंने कहा, "यदि मुझे परम सहायक मानोगे तो उस परम पिता परमेश्वरको क्या कहोगे! परम सहायक तो वह जगदीश्वरही है। हाँ, यदि आप मेरा नाम लिखनाही चाहते हैं, तो सहायकोंकी पंक्तिमें लिख लीजिए।"

स्वामीजीके उपदेशोंको सुनकर लोगोंके हृदयोंमें संस्कृत भाषा सीखने के लिए बड़ा उत्साह उत्पन्न हो गया था। प्रायःसभी सभासद संस्कृत पढ़ने लग गये थे। स्वामीजीके पास भी बहुतसे लोग अध्ययन करने जाया करते थे।

मुजफ्फरगढ़-निवासी महाशय गणपति राय उन दिनों लाहौरमें कानून पढ़ते थे। वे भी स्वामीजीके निकट संस्कृत सीखने आते थे। एक दिन महाराजने गणपति रायजीसे पूछा, "आप विवाहित हैं या कुमार?" उन्होंने उत्तर दिया कि "अभीतक मेरा विवाह तो नहीं हुआ, परन्तु सगाई कभी की हो चुकी है।"

स्वामीजीने कहा, "गणपति, आप विवाह कदापि न कराइयेगा। आपकी आयुका तार तीस वर्षतक पहुँचनेके पहलेही टूट जायगा।" महाशय गणपति रायको पूर्ण विश्वास था कि उसके गुरुका ज्ञान अगम्य है। उन्होंने जो कुछ कहा है वह अक्षरशः सत्य है। इस लिए उन्होंने 'मैं विवाह नहीं करूँगा' इस प्रणकी पक्की गाँठ बान्धली।

कुछ कालके उपरान्त गणपतिके बन्धु-बाँधवोंने उसे विवाहके लिए अति बाधित किया और समझाया कि साधु सन्तोंके वचन सदा सच्चे नहीं हुआ करते। भ्रम-भरी बातोंमें पड़कर विवाहसे विमुख हो जाना आपकी भारी भूल है। परिवार-परिजनकी परवशतामें पड़ गणपत रायको, अन्तमें विवाह करना ही पड़ा! परन्तु स्वामीजीके वचनोंकी सत्यताका उसे पूरा निश्चय था। वह मुलतान ज़िलेमें वकालतका काम करने लगा। वहाँ, एक दिन वह एकाएक रोगग्रस्त हो गया और थोड़े दिनोंमें ही, उसकी आयुके अट्ठाईसवें वर्ष, उसके प्राण-पक्षी परलोककी ओर उड्डीयमान होने लगे। उस समय उसने अपने कुटुम्बियोंको बताया कि गुरुदेवने जो बताया था वह आज सत्य हुआ चाहता

है। फिर प्रियजनोंकी उपस्थितिमें, गणपति रायजीने सदाके लिए नेत्र बंद कर लिये।

एक दिन महाराजके पास एक जन आकर बोला, "महाराज! आप तो यह कहते थे कि ध्यानमें तुमको प्रकाश दिखाई देगा। मुझे तो उलटा अंधकार दिखाई देता है।" स्वामीजीने उसे कहा, "श्रद्धा-भक्तिसे अभ्यास करते जाइए, अन्तमें उसी अन्धकारमें ज्योति दीखने लग जायगी।"

प्रसङ्ग चलनेपर महाराजने सत्संगियोंको कहा, "योग-शास्त्रका सारा वर्णन सत्य है, परन्तु उसके बतानेका यह समय नहीं है।"

डाक्टर रहीम खाँकी कोठीपर एक दिन बहुतसे पण्डितोंने स्वामीजीसे कहा कि आप वेदोंका प्रचार करते हैं यह तो बहुत अच्छी बात है परन्तु यदि पुराणोंको भी साथ मिलाये रखते तो सोनेमें सुगंधिका संयोग हो जाता।

महाराजने कहा कि मैं कई वर्षोंतक यह सोचता रहा कि किसी प्रकार पुराणोंकी संगति वेदोंके साथ मिलजाय, परन्तु जब मैंने देखा कि ये किसी प्रकार भी वेदोंसे मेल नहीं खाते और सर्वथा वेद विरुद्ध हैं तबसे मैंने पुराणोंकी प्रमाणताका परित्याग कर दिया।

एक भद्र पुरुषने स्वामीजीसे कहा कि आपजो मुक्तिसे पुनरावृत्ति मानते हैं, यह मन्तव्य कोई चिरकालके विचारका परिणाम प्रतीत नहीं होता।

उन्होंने उत्तर दिया कि आपका यह भारी भ्रम है। पुनरावृत्तिपर तो मैं कई मासतक विचार करता रहा हूँ। अन्तमें मैंने यही परिणाम निकाला है कि सान्त कर्मका अनन्त फल नहीं हो सकता; इसलिए मुक्तिसे पुनरागमनही मानना समीचीन है।

पाँचवाँ सर्ग।

महर्षिने पंजाब प्रान्तके मस्तिष्क, लाहोरको अपने प्रभावशाली उपदेशोंसे प्रभावित कर लिया, वेद-शास्त्रके महत्त्वपर मोहित बना दिया और अपने प्रेमके परम पुनीत तारमें पिरोकर उसे कार्य्यक्षेत्रमें उतार लिया। पंजाबियोंके सादा प्रेमसे, सरल स्वभावसे, श्रद्धा-भक्तिसे, कार्यतत्परतासे और धर्म्मावेशसे श्री महाराज अति प्रसन्न हुए।

लाहौरवासियोंमें आर्य्यत्वका सच्चा अभिमान उत्पन्न करनेके पश्चात्, श्री महाराज आषाढ ब० ९ सं० १९३४ को अमृतसरमें पधारे और सरदार दयालसिंह मजीठियाके प्रबंधसे, रामबागमें, मियाँ मुहमद खाँकी कोठीमें ठहरे। उनके पधारनेसे अमृतसरके अधिवासियोंमें, धर्म्म-प्रेम उमड़ पड़ा। शत शत और सहस्र सहस्र पुरुष, श्रीदर्शनोंको आने लगे। महाराजने लोगोंके उत्साहको देखकर उसी दिन सायंकाल, व्याख्यान देना आरम्भ कर दिया। श्री उपदेशोंको सब नरनारी श्रद्धापूर्वक सुनते थे।

यहाँ महाराजने प्रतिमापूजन, अवतारवाद और मृतकश्राद्ध आदि मिथ्या-मूलक मन्तव्योंका घोर खण्डन किया, जिससे पण्डितोंमें हलमच मच गई।

यजमान अपने पुरोहितों और पण्डितोंको शास्त्रार्थ करनेके लिए विवश करने लगे। पण्डित लोग भी स्थान-स्थानपर सभा लगाते, स्वामीजीको नास्तिक और ईसाई कहते, अगणित गालियाँ देते, परन्तु शास्त्रार्थ करनेके लिए उनमेंसे कोई भी साहस नहीं करता था।

उन दिनों अमृतसरमें श्री रामदत्तजी सबसे बड़े विद्वान् गिने जाते थे। पण्डित-मण्डलने उनसे जाकर प्रार्थनाकी, "दयानन्द धराधामसे पौराणिक मतका, बिन्दु-विसर्ग तक मिटा देना चाहता है। इस समय हमारे मतकी नौका भँवरमें पड़ी डाँवाडोल हो रहीहै। इस लिए आप चलिए और शास्त्रार्थ करके उसे परास्त कीजिए। इस समय आपही हमारी लाज रखने वाले हैं।"

पण्डित रामदत्तजीने उनको बहुत समझाया कि स्वामीजी वेदशास्त्रके धुरन्धर पण्डित हैं; उनसे मैं शास्त्रार्थ नहीं कर सकता। परन्तु वे लोग उन्हें शास्त्रार्थके लिए बहुत ही विवश करते थे। अन्तको पण्डितजी अमृतसर छोड़ कर हरिद्वार चले गये।

एक दिन, एक पाठशालाके अध्यापक पण्डितने अपने छोटे छोटे विद्यार्थियोंको कहा, "आज कथामें हम सब चलेंगे। तुम अपनी अपनी झोलियोंमें ईंटोंके रोड़े भर लो। वहाँ जिस समय मैं संकेत करूँ, तुम तत्काल, कथा कहनेवालेपर इन्हें फेंकने लग जाना। इसके बदलेमें कल तुमको लड्डू दिये जायँगे।"

वे अबोध बालक अपने अध्यापकके बहकानेमें आ गये, और झोलियोंमें ईंटोंके टुकड़े लिये व्याख्यानके स्थानपर जा पहुँचे। व्याख्यान रातके आठ बजे समाप्त हुआ करता था। थोड़ासा अन्धेरा होते ही, अध्यापकका संकेत पाकर वे अनजान लड़के स्वामीजीपर कंकड़ बरसाने लगे। एक बार तो सारी सभा चलायमान हो गई, परन्तु स्वामीजीने सभाको तुरन्त शान्त कर दिया।

पुलिसके कर्मचारियोंने, अपने चातुर्यसे उन उपद्रवी बालकोंमेंसे कुछ एकको पकड़ लिया और व्याख्यानकी समाप्तिपर महाराजके सामने उपस्थित किया। पोलिसके पञ्जेमें पड़े हुए वे बालक चिल्लाते और फूट फूटकर रोते थे। स्वामीजीने उनको ढाढस बंधाया और ईंट मारनेका कारण पूछा। तब वे हिचकियाँ लेते हुए बोले, "हमको पण्डितजीने लड्डुओंका लोभ देकर ऐसा करनेको कहा था।"

श्रीस्वामीजीने करुणारसमें आकर तत्काल वहाँ मोदक मँगाए और उन बालकोंमें बाँटकर कहा, "तुम्हारा अध्यापक तो सम्भव है तुम्हें लड्डु न दे इस लिए मैं ही दिये देता हूँ।" फिर महाराजने उन ना-समझ लड़कोंको छुड़ा दिया।

श्री स्वामीजीके उपदेशोंमें नगरके सभी सम्मानित मनुष्य आते। महाराज सिंहासनपर आरूढ़ होकर उपदेश दिया करते। अपने सामने एक कुर्सी रखवा देते कि उपदेशके अनन्तर यदि कोई प्रश्न पूछना चाहे तो उसपर बैठकर पूछे। एक दिन, एक पण्डित उस कुर्सीके पास खड़ा होकर कहने लगा, "आपने हमको नीचा आसन दिया है। मुझे भी आपके समान ही कुर्सी मिलनी चाहिए।" स्वामीजीने हँसकर कहा, "मैं तो व्याख्यानके कारण ऊंचे आसन पर बैठता हूँ, परन्तु आप यदि सामनेकी कुर्सीपर बैठना अपमान समझते हैं तो उसे मेजपर रखकर बैठ जाइए। आप विद्वान् होकर भी आसनपर बैठनेमें बड़ाई छोटाईकी कल्पना करते हैं, इसका मुझे बड़ा आश्चर्य है। क्या किसी चक्रवर्तीके मुकुटपर मक्खी, मच्छर बैठकर बड़े हो सकते हैं?"

एक दिन, एक पण्डितने कहा कि हम आपकी सभामें आकर क्या करें आप तो कहते हैं कि ब्राह्मणोंको एक श्लोक भी नहीं आता। इनको गोदान लेने का अधिकार ही नहीं है। आप ही बतायें कि यदि हम लोग गोदान न लें तो खायें क्या, राख?

स्वामीजीने कहा कि हमने दान लेनेका अनधिकार अविद्वानोंको बताया है। यदि तुम विद्वान् नहीं हो तो दान मत लो, और राख क्यों खाओ? घास खाया करो।

कमिश्नर महाशयकी प्रार्थनापर, एक दिन स्वामीजी उनके बङ्गलेपर पधारे। वार्तालापमें कमिश्नर महाशयने कहा, "स्वामीजी! यह तो बताइए, हिन्दू धर्म्मको, सूतके तारके सदृश, कच्चा क्यों कहते हैं ?

स्वामीजीने उत्तर दिया, "यह कच्चा नहीं, किन्तु लोहेसे भी पक्का है। लोहा तो भले ही टूट जाय परन्तु यह कभी भी टूटनेका नहीं।" कमिश्नर महाशयने पूछा, "यह इतना दृढ़ क्योंकर है ?"

महाराजने कहा, "हिन्दू धर्म्म समुद्रके समान है। इसमें भी अनेक अच्छे और बुरे मतोंके तरङ्ग विद्यमान हैं। इस धर्म्ममें ऐसे भी लोग हैं जो अत्यन्त दयावान् हैं, सदाचारी हैं, परोपकार-परायण रहते हैं, और एक निराकार परमेश्वरको अपने मनोमन्दिरमें पूजते हैं। इनके विपरीत, वे लोग भी हिन्दू धर्म्ममें पाये जाते हैं जो महाक्रूर, अनाचारी, वामी हैं। कोरे नास्तिक, अवतारोंके माननेवाले हैं। यहाँ योगी, ध्यानी, तपस्वी और आजीवन ब्रह्मचारी रहनेवाले भी विद्यमान हैं और ऐसे भी अनेक हैं, जिनका उद्देश्य आमोद-प्रमोद और संसारका सुख है। हिन्दू धर्म्ममें जहाँ छूआछूत करनेवाले सहस्रों हैं वहाँ सबके साथ खा लेनेवाले भी सैंकड़ों हैं। परमार्थदर्शी और तत्त्वज्ञानी लोग इस धर्म्ममें उच्च पदके पाये जाते हैं। और ऐसे भी मिल जाते हैं जो ज्ञानके पीछे डण्डा लिये डोलते हैं।'

'उत्तम, मध्यम और निकृष्ट विचारों और आचारोंके सभी मत और उनको माननेवाले मनुष्य इस मार्गमें मिलते हैं। वे सभी हिन्दू हैं, कोई उन्हें हिन्दूपनसे निकाल नहीं सकता। इस लिए मैं कहता हूँ कि हिन्दू धर्म निर्बल नहीं किन्तु परम सबल है।"

फिर कमिश्नर महाशयने पूछा कि, आप कैसे धर्म्मको फैलाना चाहते हैं? स्वामीजीने कहा कि मैं केवल यह चाहता हूँ कि लोग वेद पवित्रकी आज्ञाओंको मानें। एक निराकार परमात्माकी उपासना करें, दुर्गुणोंको छोड़कर सद्गुणोंको ग्रहण करें।

महाराज अमृतसरमें ईसाई धर्म्मपर भी युक्तियुक्त समालोचना किया करते थे। उसकी असम्भव कथायें सुनाकर लोगोंको समझाते और आर्य्य धर्म्मके साथ उसे तर्क-तुलापर तोलकर त्रुटिपूर्ण सिद्ध कर देते थे।

ईसाईयोंके स्कूलोंमें पढ़नेवाले चालीस आर्य्य युवक मनसे ईसाई बन चुके थे। उन्होंने 'प्रार्थना सभा' नामसे एक अपनी सभा बना रक्खी थी। आदित्यवारको वे वहाँ ईसाई रीतिसे प्रार्थना आदि किया करते थे।

स्वामीजीके उपदेशोंसे वे सारे युवक अत्यन्त प्रभावित हुए। उनके हृदयोंसे ईसाई मतका एक एक विचार कपूरकी भाँति उड़ गया और वे अपने पुरातन धर्म्मके महत्त्वको मानने लग गये।

पादरी क्लार्क महाशय एक दिन स्वामीजीके पास आकर कहने लगे, "आओ हम और आप मिलकर, एक दिन एक ही मेज़पर भोजन करें।"

स्वामीजीने कहा, "ऐसा करनेसे लाभ ही क्या है?"

पादरी महाशय बोले, "इकट्ठे खानेसे परस्पर प्रीति बढ़ जायेगी।"

इसपर श्री स्वामीजीने कहा, "शीया और सुन्नी मुसलमान एकही बर्तनमें खाते हैं। रूसी और अँगरेज, इसी तरह, आप और रोमन कैथोलिक ईसाई एक ही मेज़पर जा मिलते हैं परन्तु यह सब जानते हैं कि परस्पर कितना वैर-विरोध है, एक दूसरेके साथ कितनी शत्रुता है!" यह सुनकर पादरी महाशय अवाक् हो गये।

सरदार दयालसिंहने वेदोंके ईश्वरीय ज्ञान होनेपर कुछ प्रश्न किये। परन्तु वे नियमका पालन नहीं करते थे। बहुत लम्बा व्याख्यान देने लग जाते और स्वामीजीके उत्तरपर कोई ध्यान नहीं देते थे। स्वामीजीने उनको समझाया कि यदि आप निर्णय ही करना चाहते हैं तो केशवचन्द्रजीको आमन्त्रित करके बातचीत करा लीजिए। सरदार महाशयने स्वामीजीकी शिक्षाको बहुत बुरा मनाया और रुष्ट होकर चले गये।

श्री बिहारीलालजी एक्स्ट्रा असिस्टेण्ट कमिश्नरने महाराजको कहा कि 'यदि आप मूर्त्ति-पूजनका खण्डन छोड़ दें तो सभी हिन्दू आपके अनुगामी बनजायँ'। उन्होंने कहा कि मैं इस लोकको बातोंके लिए सनातन सत्यका परित्याग नहीं कर सकता।

मनसुख नामका एक सज्जन अमृतसरमें निवास करता था। वह धर्म्मकर्मसे विमुख था और किसी भी साधु-सन्तकी नहीं सुनता था। स्वामीजीके उपदेशोंके सुननेसे उसके हृदयमें भी भक्तिभावकी शुभ-लता लहलहाने लगी। एक दिन वह मिश्रीका थाल लेकर श्रीचरणोंमें उपस्थित हुआ और नमस्कार पूर्वक उसे समर्पण कर, उसने दीक्षाकी याचना की। श्री स्वामीजीने महाशय मनसुखको अपार दयासे धर्म्म दीक्षा दे दी और गुरुमंत्र, गायत्री सिखाकर कृतकृत्य कर दिया।

स्वामीजीके निकट एक साधारण स्थितिका मनुष्य आया करता और अति श्रद्धासे सत्संगका लाभ उठाया करता था एक दिन उसने हाथ जोड़कर विनय की "भगवन्! धनी लोग तो अन्नादिके दान और परोपकारसे संसार-सागर पार कर जायँगे, परन्तु मेरे ऐसे निर्धनका निस्तार कैसे होगा? मैं दान-पुण्य तो कुछ नहीं कर सकता।"

महाराजने कहा, "सौम्य! आप भी बड़े उपकारी और पुण्यात्मा बन सकते हैं। एक मनुष्य तो परोपकार और दान-पुण्य करनेसे पवित्र हो जाता है और दूसरा पर-अपकार और पापकर्म्म न करने से भी अपना मङ्गल साधित कर लेता है; सो आप अपने हृदयमें पर-अपकार और अनिष्ट-चिन्तनका भाव कदापि न लाइए। इससे आप बड़े धर्मात्मा बन जायेंगे। अपकार न करना भी संसारका उपकार है।"

एक दिन स्वामीजी महाराज अपने निवास-स्थानके एक कमरेमें बैठे पण्डितोंसे वेद-भाष्य लिखवा रहे थे। बीचमें एकाएक उठ खड़े हुए और कर्मचारियोंको कहने लगे कि पुस्तकादि सभी उपकरण, झटपट, इस कमरेसे बाहर निकालदो।

कर्म्मचारियोंने उनकी आज्ञाका पालन तो किया, परन्तु वह मन ही मन यह कहते रहे कि स्वामीजीने यह कष्ट व्यर्थ ही दिया है। जब सारे उपकरण दूसरे कमरेमें पहुँच गए तो प्रथम कमरेकी छत धड़ामसे भूमिपर गिर पड़ी! उस समय कर्मचारियोंको महाराजकी आज्ञाकी उपयुक्तताका निश्चय, अति विस्मयके साथ हुआ।

श्री स्वामीजी एक समय उपदेश दे रहे थे। उस समय एक ओरसे घोर आँधी, धूलिराशिसे भूतलाकाशको एकाकार करती, उमड़ी चली आती दिखाई दी। पवन भी प्रचण्ड रूप धारण करने लगा। झंझावातके उत्पातसे जैसे

मानसरोवर क्षुभित हो, ऐसे ही वह सत्संग-सरोवर चलायमान हो गया। उठनेके लिए लोग दायें बायें झांकने लगे।

उस समय महाराजने मेज़पर करतल-प्रहारकर उच्च स्वरसे कहा कि धैर्य्य रखिए, हिलिये नहीं, यहाँ आँधी नहीं आयगी। महाराजके कथनसे लोग शान्त हो गये और सचमुच आँधी भी वहाँ नहीं आई।

महाराजके उपदेशोंसे अमृतसरमें आर्य्यसमाज स्थापित हो गया। अनेक सज्जनोंने ज्ञान-चक्षु लाभ किये, उन्होंने परोपकारका पवित्र पथ प्राप्त किया और उनमें लोक-हितकी बुद्धि जागृत हो गई।

स्वामीजी अमृतसरके अधिवासियोंको उपदेशामृत पान कराकर गुरुदासपुर-वासियोंकी विनय-अनुनयसे वहां जानेके लिए समुद्यत हो गये। गुरुदासपुरमें स्वामीजीके प्रेमी भक्त डाक्टर बिहारीलालजी थे। उन्होंने अपने भाईको गाड़ी-सहित अमृतसर भेजा कि स्वामीजीको लिवा लाओ। गुरुदासपुरसे अमृत-सरतकके मार्गमें भी गाड़ियोंकी डाक लगा दी।

श्रावण सु० ९ सं० १९३४ को स्वामीजी अमृतसरसे गुरुदासपुरको पधारे। नगरके सभी प्रतिष्ठित सज्जन, छोटे बड़े, राजकर्म्मचारी और सर्वसाधारण नागरिक लोग महाराजकी अगुवाईके लिए पौन कोसतक आगे गये। जब वे समीप आ पहुँचे तो लोगोंने गगनगामी नमस्ते-नाद गुँजाकर, नम्र नमस्कार-पूर्वक उनका स्वागत किया। महाराज भी गाड़ीसे उतर पड़े और कुशल-क्षेम तथा आशीर्वाद आदि शब्दोंसे लोगोंको आनन्दित करने लगे। शिष्टाचारके उपरान्त महाराज फिर गाड़ीमें आरूढ़ हो गये और सज्जन-समूह-सहित धीरे धीरे डाक्टर बिहारीलालके मकानपर आकर ठहरे। उस समय सायंकाल के पाँच बजे थे। महाराजने कोई आध घड़ीतक विश्राम करके स्नानादि किया और तत्पश्चात् लोगोंको एक मधुर और मनोहर उपदेश सुनाया।

स्वामीजीके व्याख्यानों में सैकड़ों श्रोताजन आते थे। उच्च कर्म्मचारी भी सम्मालित होते थे। डेरेपर भी रात दिन सत्संगकी गङ्गा बहती रहती थी।

उन दिनों, गुरुदासपुरमें मियाँ हरिसिंह, एकस्ट्रा असिस्टेण्ट कमिश्नर और मियाँ शेरसिंह सुपरिण्टेण्डेण्ट पोलीस थे। ये दोनों महाशय कट्टर प्रतिमापूजक थे। स्वामीजीके खण्डनके व्याख्यानोंसे वे बहुत रुष्ट हुए। गणेशगिरी नामक

एक विरक्त महात्मा नगरसे बाहर एक उद्यानमें रहते थे। उन दोनोंने उनके पास जाकर कहा कि दयानन्दजी हमारी देवमूर्त्तियों का खण्डन करते हैं। आप चलिए और शास्त्रार्थ से उनका मुख बंद कीजिए।

महात्मा गणेशजीने उनको समझाया कि हम विरक्त हैं, तुम्हारे झगड़े बखेड़ेमें पड़ना नहीं चाहते। यदि अधिक सताओगे तो यह स्थान छोड़कर कहीं अन्यत्र चले जायँगे।

गणेशगिरीसे निराश होकर मियाँ हरिसिंह और शेरसिंहजीने पण्डित लक्ष्मीधर और दौलतरामको दीनानगरसे बुलाया। वे शास्त्रार्थके लिए स्वामीजीके पास आये। जिस समय वे महाराजके पास पहुँचे स्वामीजी शिवपुराणकी कथापर समालोचना कर रहे थे और बतला रहे थे कि इन पुस्तकोंमें ऐसी अश्लील लीलायें भरी पड़ी हैं।

मियाँ हरिसिंह और शेरसिंह अपने पण्डितों सहित बीच बीचमें बारबार कहते थे कि यह जो कुछ कह रहा है सर्वथा झूठ बकता है। डाक्टर महाशयने उनको बहुत समझाया कि ऐसे कठोर शब्द कहना आपको उचित नहीं है और व्याख्यानके बीचमें भी बोलना नहीं चाहिए। परन्तु उस समय वे लोग नियम, नीति और न्याय सब कुछ छोड़ बैठे थे।

महाराजने जब देखा कि ये लोग व्याख्यान आगे चलने ही नहीं देते तो भाषण बंद कर दिया और कहा कि 'दोनों पण्डितोंमें से एक सामनेकी कुर्सीपर आ बैठे। जिस विषयपर उसका जी चाहे प्रश्न करे'। इसपर मियाँ महाशयों-ने कहा कि क्या कोई कंजरियों का खेल है जो बीचमें आ जायँ। हम तो यहींसे शास्त्रार्थ करेंगे और सभी बोलेंगे।

महाराजने 'दुर्जनतोष न्याय' से उन पण्डितोंको कहा कि अच्छा, आप मनमानी विधिसे ही शास्त्रार्थ कर लीजिए।

तब पण्डितोंने 'गणानां त्वा' इस मंत्रको पढ़कर कहा कि इससे गणेशकी प्रतिमाका पूजन सिद्ध होता है। महाराजने उत्तर दिया कि अपना अर्थ किसी भाष्यमें दिखलाइये। उन्होंने महीधरभाष्य निकालकर आगे किया। महाराजने महीधरके अत्यन्त अश्लील अर्थोंको सुनाकर कहा कि इसमें न तो मूर्त्ति-पूजन है और न ही गणेशपूजन। फिर आपने इस मंत्रका सच्चा अर्थ परमात्मापर

लगाकर जनताको बताया । इससे लोगोंको पण्डितोंके पानीकी पेंदीका पूरा पता लग गया। परन्तु मियाँ महाशय आपेसे बाहर हो गये। वे दुर्वचन-बाण बरसाते हुए बोले कि यदि कोई देशीय राजा होता तो कोई आपका सिर काट डालता। यहाँपर भी मजिस्ट्रेट और पोलीस दोनों विद्यमान हैं । उनका भी कुछ ध्यान कीजिए ।

डाक्टर विहारीलालजी तो आवेशमें आ गये, परन्तु श्रीमहाराजके प्रशान्त और गम्भीर मुखमण्डलपर कोपकी एक रेखा भी तो न आई । वे हाथीकी भाँति गम्भीरतासे शंकासमाधान करते रहे । उन्होंने मियाँ महाशयोंकी अनुचित क्रियापर कर्णपात तक नहीं किया ।

उन दिनोंमें 'काक' महाशय वहाँ इञ्जिनियर थे। वेभी महाराजके व्याख्यानों-में आया करते थे । एक दिन भाषणके प्रसङ्गमें स्वामीजीने कहा कि अंग्रेज लोगोंको इस देशमें आए हुए चिर हो गया है । परन्तु इन लोगोंने अपने उच्चारणको अभी तक नहीं सुधारा। तकारके स्थान टकार ही बोलते हैं। इससे काक महाशय रुष्ट हो गये और चलते हुए बोले कि यदि तुम पश्चिममें पिशावरकी ओर जाओ तो तुम्हें स्वाद चखाया जाय ।

श्रीस्वामीजीके उपदेशोंसे लोगोंने भादों व० १ सं १९३४ को गुरुदास पुरमें आर्य्यसमाज स्थापित कर दिया। महाराजके पास आकर अनेक मौलवी और पण्डित प्रश्न पूछते थे और सन्तोषजनक उत्तर पाकर चले जाते थे ।

भादों ब० २ सं० १९३४ को गुरुदासपुरसे चलकर महाराजने बटालेमें रायभागमलके उद्यानमें एक घण्टा विश्राम किया और फिर अमृतसरमें आ विराजे । भादों सुदि ६ सम्वत् १९३४ को अमृतसरसे प्रस्थान कर उसी दिन दो बजे जालन्धर आ पहुँचे और अपना डेरा सरदार विक्रमसिंहकी कोठीमें किया । स्वामीजीका पहला व्याख्यान कुंवर सुचेतसिंहके मकानपर 'सृष्टिकी उत्पत्ति' पर हुआ । परन्तु वह स्थान संकीर्ण था इसलिए जनताको सूचना दे दी गई कि कलसे व्याख्यान सरदार विक्रमसिंहके मकानपर हुआ करेंगे । जालन्धरमें महाराजके विविध विषयोंपर कोई चौतीस पैंतीस व्याख्यान हुए ।

स्वामीजी अपने व्याख्यानोंमें प्रकरणानुसार मनोरञ्जक कहानियाँ भी सुनाया करते थे। चापलूसीपर, हाँमें हाँ मिलानेपर और सत्यवचनियापनपर

महाराज बेंगनका दृष्टान्त दिया करते थे कि एक राजाने बेंगन खानेकी इच्छा प्रकटकी। पुरोहितने अनुमोदन करते कहा कि राजन्! बेंगन एक अत्युत्तम पदार्थ है। यह श्यामसुन्दर श्रीकृष्णकी तरह श्यामल है। इसके सिरपर मनोहर मुकुट विराज रहा है और इसका नाम भी बहुगुण है।

पुरोहितके प्रशंसा करनेपर राजा महाशय अति प्रसन्न हुए और प्रतिदिन दोनो काल, बेंगनका यथेष्ट भोग लगाने लगे। बेंगनोंके अधिक आहारसे उनकी देहमें पित्त प्रकुपित हो गया और अर्श-रोगसे रक्त-स्राव होने लगा। जब राजा महाशयका स्वास्थ्य बिगड़ गया तो उसने पण्डितजीसे कहा कि बेंगन तो बहुत बुरे हैं। पुरोहितजीने कहा कि श्रीमन्तका कथन सर्वांशमें सत्य है। राजन्! इसका रङ्ग ही देखिए, विधाताने कैसा भूँडा, कोयले-सा काला-कलूटा रचा है। इसके सिरपर काँटोंका मुकुट है और सीधी शूल ठुक रही है।

लोग सुगम धर्म्मको अधिक स्वीकार करते हैं। सत्यासत्यका कोई ध्यान नहीं रखते। हमारे बड़े बूढ़े ऐसा ही करते आये हैं। इसलिए हम भी इस टेरको लिए चलेंगे; ऐसी बातोंपर स्वामीजी दिल्लीकी मिठाईका दृष्टान्त दिया करते थे कि एक बार बहुतसे गँवार दिल्लीमें आए। अच्छी अच्छी मिठाइयाँ देखकर उनके मुँहमें पानी भर आया। परन्तु पर्याप्त पैसे पास न होनेकेकारण वे मिठाई मोल न लेसके। एक हलवाईने उन्हें सस्ती मिठाई देनेकावचन दिया और भीतर जाकर ऊँटके लेंडों और बकरीकी मेंगनपर खाँड चढ़ा दी। फिर बाहर आकर उनसे कहने लगा कि लो तुम्हें सस्ती मिठाई देता हूँ। ऐसी मिठाई यहाँसे नित्य ले जाया करो। उन गँवारोंने उसे दाम देकर अपनी झोलियाँ भर लीं और उस मिठाईका आनन्दपूर्वक भोग लगाया!

वे दिल्लीमें प्रतिदिन आकर वह मिठाई मोल ले लेते थे। एक दिन एक बुद्धिमान् मनुष्यने उनको समझाया कि तुम्हारी मिठाई अच्छी नहीं है और भीतर से बकबकी सी है। गँवार बोले कि तुम हमें योंही बहकाते हो। यह तो दिल्लीकी मिठाई है। और बड़ी सस्ती है। फीकी है तो क्या हुआ? हमारे बाप दादा इसीको खाते आये हैं। इसको छोड़कर हम दूसरी मिठाई कभी भी न लेंगे।

स्वामीजी एक राजाकी कथा सुनाया करते कि एक ठग एक राजाको मिला और कहने लगा कि मैं एक ऐसा वेष निर्माण कर सकता हूँ, जो केवल उसीको दृष्टिगोचर हो सकता है जो निर्दोष मातापिताकी सन्तान है। राजाने ऐसे वेषके लिए उत्कण्ठा प्रकट की। वह वंचक मनुष्य कुछ दिनोंके अनन्तर आकर, राजा महाशयसे कहने लगा कि वह अद्भुत दिव्य-वेष बन गया है। भीतर पधारिये, श्रीमन्तको उससे विभूषित कर दिया जाय। राजा सुप्रसन्नतासे उसके साथ भीतर गया और वंचकने उसके बहुमूल्य-वस्त्र उतरवा लिये। फिर योंही इधर उधर हाथ फिराकर वह कहने लगा कि श्रीमन्तजी! अब आपको दिव्य वेष पहरा दिया है। मुझे पारितोषिक दीजिए और स्वच्छंदतासे राज्य पाटका काम-काज करने लग जाइए।

अब वह राजा, यद्यपि अपनेको वस्त्रहीन देखता था परन्तु वंचकके वचनानुसार अपनी मा ही को दूषित समझता था। जो कोई उसे उसकी अवस्था सुझाता तो वह उसके माता पितामें भी चरित्र-दोषकी कल्पना कर लेता। इस प्रकार, विहंगम दशामें राजा महाशय न्यायालयमें आ पहुँचा।

बुद्धिमान् मंत्रीने, अपने मुग्ध महाराजासे कहा कि राजन्! आपका वेष तो विदेशी है, परन्तु यदि एक स्वदेशी कौपीन कसलो तो बहुत अच्छा हो। मंत्री महाशयके बहुत समझानेसे राजाने माना कि मैं वास्तवमें ठगा गया हूँ।

स्वामीजी इस दृष्टान्तसे यह शिक्षा निकाला करते थे कि जो लोग अपनी बुद्धिसे काम नहीं लेते और दूसरेके बहकानेमें फँस जाते हैं, जो अपने धर्म्म-कर्मको आप नहीं समझते, अपने देश तथा जातिकी दशाको आप नहीं निहारते, अपने धर्म्म-ग्रन्थों और इतिहासोंको आप नहीं पढ़ते, केवल पर-कथनपर ही निर्भर करते हैं, वे अन्तमें, उस मूर्ख राजाकी भाँति, दीन हीन होकर दूसरोंकी दृष्टिमें उपहासकी वस्तु बन जाते हैं।

महाराजने वहाँ वेश्या-कुव्यसनका घोर खण्डन किया, तीर्थ-माहात्म्य और गङ्गा-स्नानके फलको भी अमूलक बताया। अमृतसरके दरबार साहबके विषयमें स्वामीजीने कहा कि "दीपमालाके दिन सिख वहाँ सकेश स्नान करते

हैं। हमारा जी तो वहाँ आचमन करनेको भी नहीं चाहता। इसपर सरदार विक्रमसिंहने कहा कि स्वामीजी, ! आजतो हमपर भी वर्षा हो गई।

स्वामीजीने उत्तर दिया कि व्याख्यानमें पक्षपात नहीं किया जा सकता। सत्य बातको कहना ही पड़ता है।

मुक्तिके विषयपर बोलते हुए महाराजने कहा, "जीव और ब्रह्मको एक मानना भारी भ्रम है। पिता-पुत्रका सम्बंध और परमानन्दकी प्राप्ति ही मुक्ति है। मोक्षसे जीव कल्पान्तरमें फिर जन्म धारण करता है। श्री कृष्ण आदि महापुरुष मोक्षसे ही आये थे। पापोंका नाश किसी तीर्थ आदि स्थानपर नहीं हो सकता। दुष्कर्म तो शुद्ध सङ्कल्प, तपस्या और फलभोगसे नष्ट होता है।"

स्वामीजीके शुभागमनके समय वेद-ज्ञानके विषयमें पञ्जाबकी यह दशा थी कि महाशय रामनाथने स्वामीजीसे निवेदन किया कि महाराज! जब हम लोग अपने पुरोहितोंसे पूछते हैं कि अथर्ववेद क्या है ? तो वे उत्तर देते हैं कि स्त्रियाँ जो गीत विवाहमें गाती हैं वही अथर्ववेद है। स्वामीजीने कहा कि अथर्ववेद ब्याहोंके गीत नहीं हैं। वह एक अत्युत्तम ग्रन्थ है। उस समय महाराजने उसे अथर्ववेदके दर्शन भी करा दिये।

मौलवी अहमद हसनने स्वामीजीके साथ पुनर्जन्म और चमत्कारपर विवाद किया। इसमें मौलवी महाशयको पूर्ण पराजय प्राप्त हुई। यह वाद कई समाचार-पत्रोंमें भी प्रकाशित हुआ था।

जालन्धर नगरमें अमृत-वर्षा करके श्री स्वामीजी आश्विन सु० ११ सं० १९३४ दसहरेके एक दिन पीछे लाहौरमें पधारे। अब की, वे नवाब रज़ा अलीखाँके उद्यानमें ठहरे। इसी उद्यानमें, एक पादरी एक कुमारी-सहित स्वामीजीके मिलापार्थ आये। वार्त्तालापमें महाराजने कहा, "सम्पत्तिका बहुत ही बढ़ जाना अन्तमें अवनतिका साधन होजाया करता है। आर्य्य जातिके अधःपतनका यही कारण है। अति धनके कारण अब अँगरेज़ोंकी प्रकृति भी बदल रही है। जिन दिनों हम जङ्गलोंमें रहा करते थे तो प्रातः-काल, जब भ्रमणार्थ निकलते तो अंगरेज़ भी घूमते हुए, बहुधा मिलते थे। परन्तु आजकल ये लोग बहुत दिन चढ़े उठते हैं।"

जिन दिनों स्वामीजी अमृतसर आदिमें उपदेश दे रहे थे उन्हीं दिनों में एक साप्ताहिक सत्संगमें, श्री शारदाप्रसादजीने एक व्याख्यान दिया और उसमें कहा, "वेद, कुरान और बाईबल आदि सभी ग्रन्थ एक-से ईश्वरीय आदेश हैं।" आर्य्य पुरुषोंने इस कथनको अच्छा नहीं समझा और स्वामीजी के आनेपर उनसे व्यवस्था माँगी। स्वामीजी ने शारदा महाशयको उपालम्भ-पूर्वक कहा, "आर्य समाजके नियमोंके विरुद्ध आपको बोलना न चाहिए था। ऐसा करनेका अधिकार किसी भी सभासदको नहीं है।" महाराजने सब सभासदोंको अभिमुख करके कहा, "चाहे प्रधान भी क्यों न हो, यदि कोई आर्य समाजमें इस समाजके नियमोंके प्रतिकूल कथन करे तो प्रत्येक सभासद् का अधिकार है, उसे रोके टोके और बैठा दे।" इस उपदेशका यह प्रभाव हुआ कि आर्य समाजके सत्संग-स्थानकी दीवारोंके साथ यह लिखकर लगा दिया गया कि आर्य समाजके नियमोंके विरुद्ध बोलनेका किसीको भी अधिकार नहीं है।

एक दिनका वर्णन है कि एक लाट पादरी महाशय स्वामीजीसे मिलने आये। बातचीतमें उन्होंने कहा, "स्वामीजी महाशय! हमें तो 'हिरण्यगर्भो' इत्यादि मंत्रसे यह प्रतीत होता है कि प्राचीन कालमें ऋषि-मुनिजन ईश्वरके विषयमें कुछ भी नहीं जानते थे।" स्वामीजीने राय मूलराजसे उस मंत्रका अँगरेज़ी अनुवाद सुना और फिर बिशप महाशयको कहा, "इस मंत्रका अँगरेजीमें अशुद्ध अनुवाद किया गया है। इसका याथातथ्य अर्थ यह है कि प्रकाशके धाम, जगत्के कर्त्ताधर्त्ता, स्वामी और सुखमय सनातन परमेश्वर की हम उपासना करते हैं।" फिर लाट पादरी महाशय बोले, "बाइबलका महत्त्व देखिये। इसकी शिक्षा सूर्यके उदयास्ततक फैल रही है।"

स्वामीजीने उत्तर दिया, "यह बाइबलका महत्त्व नहीं है, परन्तु आप लोगोंके परिश्रमका परिणाम है। आर्य लोग वेदानुसार ब्रह्मचर्य, विद्याप्राप्ति एक स्त्रीसे विवाह, दूरदेशकी यात्रा और स्वदेश-प्रेम आदि शुभ कर्मोंका परित्याग कर बैठे हैं। इसी लिए, इनकी यह अधोगति हो रही है। आप लोग इन वैदिक नियमोंके अनुसार चलते हैं इसी लिए इतनी उन्नतिके दिन

देख रहे हैं। वास्तवमें आर्य्य जातिके प्रतापसे ही दूसरी जातियोंमें शिक्षा, सभ्यता और सदाचार विस्तृत हुआ है"

आश्विन सु० १२ सं० १९३४ आदित्यवारको आर्य्य समाजका साप्ताहिक सत्संग था। उसमें महर्षि श्री सम्मिलित हुए। उसी दिन स्थानीय ब्राह्म-समाजका वार्षिकोत्सव था। साप्ताहिक सत्संग समाप्त हो जानेपर भगवान् दयानन्द अपने दो ढाई सौ भक्तोंसहित ब्राह्म-समाजके उत्सवपर पधारे। ब्राह्म-समाजियों और सर्वसाधारणपर उनकी इस उदारताका अत्युत्तम प्रभाव पड़ा।

छठा सर्ग।

लाहौरमें स्वामीजीके प्रचार और आर्य समाजकी स्थापनासे पंजाबके सारे नगरोंमें धर्म्मान्दोलन होने लगा। धर्म्मके नूतन संस्कारकर्ताकी उज्ज्वल कीर्ति सर्वत्र फैल रही थी। प्रत्येक नगरमें ऐसे मनुष्योंकी पर्याप्त संख्या उत्पन्न हो गई थी जो धर्मके नूतन संस्कारके पक्षपाती थे, जिनके हृदयोंमें जातीय सुधारके उत्ताल तरल तरङ्ग उठ रहे थे। ऐसे ही कुछ एक महानुभाव, महाशयोंने फीरोजपुर छावनीमें 'हिन्दू सभा' नामसे एक सत्संग स्थापित कर रक्खा था। इस सभाके दो एक सभ्य लाहौरमें श्रीस्वामीजीके उपदेश भी सुन गये थे। उन्होंने, अपने नगरमें जाकर, अपने भाइयोंके चित्त-पटपर महाराजके परम पवित्र चरित्रका चित्र ऐसा चित्रण किया कि वे लोग श्रीदर्शनोंके लिए अति व्यग्र हो गये। उन्होंने श्रीसेवामें विनय पत्रोंका तार लगा दिया।

इस हिन्दू सभाके प्रधान श्रीमान् मथुरादास थे। उनके हृदयमें श्री महाराजके लिए इतना गहरा, इतना प्रबल और उच्च भक्ति-भाव उत्पन्न हुआ कि उन्होंने एक नूतन आवास, इसी लिए बनवाया कि उसमें महाराजका निवास कराया जायगा।

फीरोजपुर छावनीके सभ्योंने स्वामीजीको लिवा लानेके लिए अपने एक सभ्यको लाहौर भेज दिया। स्वामीजी कार्त्तिक व० ४ सं० १९३४ को फीरोज-

पुरमें पधारे । जो आवास महाराजके निवासके निमित्त निर्माण किया गया था वे वस्तीमें था, इस लिए स्वामीजी लाला बनवारीलालकी कोठीमें ठहरे । व्याख्यानोंके लिए श्री मथुरादासजीके आवासके सामने एक स्वच्छ स्थानपर मण्डप बनाया गया और पुष्पादि से सुसज्जित किया गया । वहीं महाराजके उपदेश होने लगे ।

स्वामीजीका पहला व्याख्यान 'सृष्टिकी उत्पत्ति' पर था । व्याख्यानके बीच ही एक पण्डित कहने लगा कि हमको कुछ प्रश्न करने हैं इसलिए अवसर दिया जाय । महाराजने कहा कि व्याख्यानके पश्चात् पूछ लीजिएगा । उसने कहा कि तबतक तो मैं पूछने योग्य बातें भूल जाऊंगा । तब महाराजने कहा कि यदि भूल जानेका भय है तो लिखते जाइए । व्याख्यानकी समाप्तिपर आपका समाधान कर दिया जायगा । परन्तु वह पण्डित ऐसा अधीर हो गया कि उसे यह भी सुध बुध न रही कि मैं कह क्या रहा हूं ? उसकी जीभ तुतला गई और काया काँपने लगी । मुँहसे झाग फेंकता और अण्ड बण्ड बकता सभा-स्थानसे निकल गया ।

पण्डित कृपाराम नामक एक सज्जन प्रश्न पूछनेके लिए आया और महाराजको सिंहासनपर विराजमान देखकर कहने लगा, "आप तो ऊँचे आसनपर बैठे हैं, हम नीचे खड़े होकर आपके साथ शास्त्रार्थ क्यों करें ? हमें भी अपने बराबरकी कुर्सी दीजिए ।"

महाराजने उसके लिए कुर्सी लानेकी आज्ञा देकर कहा, "कुर्सीके बिनाभी आपके बोलनेमें तो कोई बाधा नहीं पड़ती, परन्तु यदि मेरा ऊंचा बैठना आपको खटकता है तो ईर्ष्या न कीजिए । मैं भी नीचे स्थानपर बैठ जाता हूँ ।" इन्हीं बातोंमें कुर्सी आ गई । तब कृपाराम महाशयने पूछा, "खुदा महदूद है या ला महदूद ?" महाराजने कहा, "मैं अरबी नहीं जानता; आर्य भाषामें भाषण कीजिए । क्या आपका तात्पर्य एकदेशी अथवा सर्वव्यापक से है ?" उसने कहा, "हाँ, इसीसे है !" तब उन्होंने कहा, "परमात्मा सर्वव्यापक है ।"

कृपारामजीने अपनी जेबसे तत्काल घड़ी निकालकर मेज़पर रख दी और कहा कि 'यदि ईश्वर सर्वव्यापक है तो बताइए कि इस घड़ीमें कहाँ बैठा है' ।

महाराजने उत्तर दिया कि "परमात्मा आकाशकी भाँति परम सूक्ष्म और सर्वव्यापक है । इस लिए चर्म-चक्षुओंसे अगोचर है ।' फिर अपना सोटा उठाकर कहा, "आकाश सर्वव्यापक है, इस सोटेके भीतर और बाहर भी रमा हुआ है। जैसे इस सोटेमें आकाश तो है पर दीखता नहीं, इसी प्रकार आपकी घड़ीमें ईश्वर है, परन्तु परम सूक्ष्म होनेसे इन्द्रियों द्वारा ग्रहण नहीं हो सकता।' यह सुनकर कृपाराम निरुत्तर हो गये ।

एक दिन फीरोज़पुर छावनीके बड़े मन्दिरका पुजारी रघुनाथ, स्वामीजीके निकट गया । स्वामीजीने उससे कहा कि प्रश्न पीछे कीजियेगा, पहले यह तो बताइए कि पुजारी शब्दका क्या अर्थ है ? रघुनाथ इसपर अवाक् बना रहा । तब श्री स्वामीजीने बताया कि पुजारी पदका अर्थ है पूजाका शत्रु ! आप लोग पण्डित होकर ऐसे नाम क्यों रख लेते हैं ?"

रघुनाथने महाराजसे कहा, "वेदके आधारपर सारे शास्त्र रचे गये हैं, इसलिए उनको भी तो वेदोंकी तरह प्रमाण मानना चाहिये।"

महाराजने उत्तर दिया कि "वेदके आश्रयसे तो अन्य ग्रन्थ बने हैं, परन्तु थैलीमें रक्खे रुपयोंको जैसे परीक्षक ही परख सकता है ऐसे ही दूसरे ग्रन्थोंकी सत्यताका निर्णय करना केवल विद्वानोंका ही काम है ।"

स्वामीजीसे अनेक पण्डितों और मौलवियोंने प्रश्न पूछकर अपने सन्देह मिटाये, भ्रम दूर किये और आत्मिक प्रसाद उपलब्ध किया। महाराजके प्रतापसे उस हिन्दू सभाने ही आर्य समाजका चोला धारण कर लिया । विधिपूर्वक आर्य समाजकी स्थापना हो गई ।

भक्त स्वरूपसिंहजी एक भजन-पाठ करनेवाले पुरुष थे, सत्संगरसके रसिक थे। एक दिन वे श्री महाराजसे बहुत देरतक योग चर्चा-करते रहे । भक्तजीने भगवान्‌से योग-मार्गके अनेक बहुमूल्य मोती उपलब्ध किये और अपनेको कृतार्थ बनाया ।

फीरोजपुर-निवासियोंको धर्म्म-जीवन दान करनेके पश्चात् स्वामीजी कार्तिक व० १५ सं० १९३४ की सायंको वहाँसे चलकर अगले दिन प्रातःकाल लाहौर में आ विराजे ।

कार्तिक सुदी १ सम्वत् १९३४को लाहौर आर्य समाजकी अन्तरङ्ग सभाका अधिवेशन था। उसमें आर्य समाजके उपनियम निर्मित, परिवर्त्तित और संशोधित होकर सभासदोंके सामने स्वीकृतिके लिए रक्खे गये थे; सभासद उनपर मतामत प्रकाशित कर रहे थे। दैवयोगसे उस समय उस सभामें स्वामीजी भी विराजमान थे। सभासदोंने उनसे विनयकी कि आप भी अपनी सम्मति प्रदान कीजिए। महाराजने कहा जब मैं आपकी अन्तरङ्ग सभाका सभासद् ही नहीं हूँ तो सम्मति कैसे दे सकता हूँ। महाराजकी महामूल्य सम्मतिसे अलभ्य लाभ उपलब्ध करनेके लिए, सभासदोंने सर्वसम्मतिसे, उनको उसी समय सभासद् बना लिया।

लाहौरसे प्रस्थान कर श्री महाराज कार्त्तिक सुदी द्वितीया सम्वत् १९३४ को प्रातःकाल रावलपिण्डीमें पहुँचे। वहाँ उनको श्रीयुत गिरीशचन्द्र महाशयने स्वागतपूर्वक लाकर 'जामसनजी' पारसीकी कोठीमें उतारा। गिरीश महाशयने विज्ञापन आदि बाँटकर व्याख्यानोंका उचित प्रबंध कर दिया। यहाँ स्वामीजी बीस दिनपर्यन्त प्रति सायं उपदेश देते रहे। उनके व्याख्यान मूर्ति-पूजा-खण्डन और अवतारवादके विरुद्ध भी बड़े धड़ल्लेके हुये। इससे पोठोहारके पौराणिक जगत्में भयङ्कर भूकम्प आ गया। अबोधजन विविध प्रकारके विघ्न-बाधा और विरोध करनेपर तुल गये। उस समय, उनसे और तो कुछ न बन आया, परन्तु सेठ जामसनजीको भड़काने लगे।

स्वामीजीने जब देखा कि सर्वप्रियताके बनाये रखनेके लिए, सेठ महाशय कोठी छुड़वाना चाहते हैं तो वे प्रबंध करके सरदार सुजानसिंहके उद्यानकी बारहदरीमें जा विराजे। उस उद्यानमें भी वे प्रति सायंको सत्संग लगाते और सत्योपदेश देते थे।

स्वार्थ-सिन्धु और उदरार्थी लोगोंने सारे नगरमें यह बात फैला रक्खी थी कि दयानन्द अभ्यन्तरसे ईसाई है; लोगोंको भ्रमानेके लिए भगवे पहने फिरता है। इसका उद्देश्य लोगोंको धर्मसे भ्रष्ट करना और सनातन हिन्दू धर्मको नष्ट करना है। कोई कोई यह भी कहते थे कि यह नास्तिक है; इसके पास जानेसे पातक चढ़ता है। इसका मुँह देखनेसे पाप लगता है! फिर भी, प्रेम-प्रधान पोठोहार प्रान्तके मुख्य नगरमें, ऐसे सैंकड़ों सत्संगी थे जो अति भावनासे,

अपार प्रीतिसे अतुल लग्नसे, असीम श्रद्धासे श्री उपदेशोंका श्रवण करने जाते थे। उस नगरमें महाराजकी कीर्ति-कथा कहनेवाले भक्त भी बीसियों थे। ऐसे ही सज्जनोंके उत्साहसे वहाँ समाजकी स्थापना भी हो गई।

एक दिन व्याख्यानके उपरान्त अनेक सज्जन ओसेरामें बैठे सत्संग कर रहे थे। प्रसङ्ग चलनेपर स्वामीजीने कहा, "आर्य लोगोंकी दशा अत्यन्त शोचनीय है। ये लोग अपनी रक्षा करना तो जानते ही नहीं। अन्य बातें तो जाने दो, जब कभी कोई ईसाई अथवा मुसलमान इनके धर्मपर आक्रमण करता है और ब्रह्माकी कथा सुनाता है तो यह मुँह ताकते रह जाते हैं। इनसे उत्तर तक नहीं बन पड़ता। ब्रह्माकी कहानी तो किसी प्रमाणिक पुस्तकमें नहीं है, परन्तु लूतकी कथा बाईबलमें विद्यमान है। यदि ये लोग दूसरोंके ग्रन्थ देखें तो ऐसी बातोंसे उनका मुख बंद कर सकते हैं।"

अगले दिन ईसाई आपसमें सम्मति करके स्वामीजीके पास आये और उनमेंसे एकने कहा कि आपने कल जो लूत महाशयके विषयमें सुनाया था वह सब झूठ है। महाराजने उसे बहुतेरा समझाया कि सन्यासी जन असत्य भाषण नहीं करते परन्तु वह ईसाई अपना दुराग्रह किये ही जाता था। अन्तमें महाराजने बाईबलमेंसे वह कहानी निकालकर उसके आगे रख दी। इससे वह बहुत कटा और फीका पड़ गया।

वहाँके पौराणिक पण्डित अपने घरोंमें, मन्दिरोंमें, धर्मशालाओंमें और यजमानोंके मकानों पर शास्त्रार्थ करनेके लिए भुजाएँ तो बहुत सँवारते थे परन्तु उस महामल्लके सम्मुख होनेसे, भीतर ही भीतर, सभी जी चुराते थे। उन्हीं दिनोंमें वहाँ एक विद्वान् सन्यासी, सम्पतागिरीजी आये हुए थे। पण्डितोंने अपनी विपत्ति उनके सिरपर डालनी चाही। उन्होंने उनके पास जाकर अत्याग्रह किया कि दयानन्दसे शास्त्रार्थ करनेके लिए आप हमारे साथ चलिए। उन देवताओंके टालनेके लिए गिरीजीने साथ चलना स्वीकार कर लिया, परन्तु जब पण्डित लोग उनके भरोसे दल बाँधकर स्वामीजीपर चढ़ चले तो गिरीजीने, ठीक समयपर, किनारा कर लिया। जब गिरीजी, मक्खनमेंसे बालकी भाँति, उनमेंसे बाहर निकल गये, तो 'गले पड़ा ढोल' उन्हें आप ही बजाना पड़ा!

उस दिन सारे नगरमें धूम मच गई थी कि आज भूदेव-दल स्वामीजीसे शास्त्र-समर करने जा रहा है । इस लिए दर्शकोंकी टोलियाँ भी सुजानसिंह-जीके उद्यानमें पहुँचने लगीं ।

ऐसे समयमें, एक प्रेमीने स्वामीजीसे कहा, "आज पण्डित लोग बड़ी धूम-धामसे शास्त्रार्थ करने आ रहे हैं।" जिस केसरीने ऐरावत हस्तीका मद-मर्दन किया हो वह क्षुद्र पशुओंकी कोरी भबकियोंसे कब डरता है ? जिस महात्माने काशी, वङ्ग और दक्षिणके महाविद्वानोंका मुख बन्द कर दिया हो वह भला रावलपिण्डीके पण्डितोंकी कब चिन्ता करने लगा था ! महाराजने उसे उत्तर दिया, "उन्हें आने तो दो, फिर देखना होता क्या है ।"

पण्डित-दल आकर महाराजके पास बैठ गया । थोड़ी देरतक तो इधर उधरकी बातें होती रहीं । अन्तमें पण्डित ब्रजलालजीने एक श्लोक उच्चारण किया । स्वामीजीने उनसे पूछा कि यह श्लोक किस ग्रन्थका और किस समय का है ? इसपर ब्रजलाल निरुत्तर हो गये ।

हरिपुरके पण्डित हरिश्चन्द्रजीने एक महा अशुद्ध श्लोक बोला । इसपर स्वामीजीने उनको डाँटकर कहा कि यदि कोई सार-मर्मकी बात करना जानते हो तब तो वार्त्तालाप करो; नहीं तो योंही वितण्डावादमें मेरा समय क्यों बिगाड़ते हो ? यह कोई अबोध बालकोंकी पाठशाला नहीं है कि जो भी मुँहमें आये कहते चले जाओ, शुद्धाशुद्धपर कुछ भी ध्यान न दो । ब्रजलालजीने भी हरिश्चन्द्रकी अशुद्धिको स्वीकार किया । इसपर वे सब शान्त होकर चले गये ।

रावलपिण्डीमें स्वामीजीके पास महाराजा जम्मू तथा कश्मीरका निमन्त्रण आया कि इस राजभमें पधारकर शोभा प्रदान कीजिए । स्वामीजीने उत्तरमें कहा, "महाराजा जम्मूने बहुतसे मन्दिर बनवाये हैं । वे हैं भी पक्के प्रतिमा-पूजक । मैं यदि वहाँ जाऊँ तो खण्डन अवश्य करूंगा । इससे वे चिढ़ तो जायेंगे परन्तु मुझसे लाभ नहीं उठा सकेंगे, इस लिए अभी मैं वहाँ नहीं जाना चाहता ।" उस समय स्वामीजीने एक कहानी सुनाई कि "मारवाड़के एक राजाके यहाँ हम गये । वह पन्द्रह सेरतक मालारूपमें रुद्राक्षका बोझा उठाये फिरता था । सवेरे स्नान आदिसे निवृत्त होकर पाँचसेर मिट्टीकी छोटी छोटी गोलियाँ बनाता और एक ब्राह्मण उनपर जल चढ़ाता जाता था । हमने

उसको कहा कि आप जबतक हमारा उपदेश न सुनेंगे हम आपका आतिथ्य स्वीकार नहीं करेंगे। तीस दिनतक हमने वहाँ निवास किया और प्रतिदिन उसे उपदेश देते रहे। अन्तमे उसके विचार-नेत्र निर्दोष हो गये और उसने वह अखिल दण्ड-पाखण्ड परित्याग कर दिया।"

एक दिन भ्रमण करते समय स्वामीजीको सम्पत्गिरीजी मिल गये। शिष्टाचारके अनन्तर महाराजने उनसे कहा कि कुछ उपदेश भी दिया करो। जब गिरीजी अपने डेरेपर गये तो लोगोंने उनसे पूछा कि आज दयानन्दजीसे क्या बातचीत हुई है? उन्होंने उत्तर दिया कि वह ब्राह्मणवंशीय एक विद्वान् संन्यासी है। हम दोनों कभी इकट्ठे पढ़ा करते थे। लोगोंने कहा, आप भी उनकी भाँति व्याख्यान क्यों नहीं देते? उन्होंने उत्तर दिया कि वह तो निधड़क हो गया है, परन्तु हमसे तो ऐसा हुआ नहीं जाता।

*एक दिन सरदार विक्रमसिंहजीने निवेदन किया कि सुनते हैं कि ब्रह्मचर्यसे मनुष्य महाबली बन जाता है, क्या ये सत्य है? स्वामीजीने उत्तर दिया कि ब्रह्मचर्य धारण करनेका जो महत्त्व शास्त्रोंने वर्णन किया है वह सर्वथा सत्य है।

तब सरदार महाशय बोले कि महाराज! आप भी तो ब्रह्मचारी हैं। हमें आपमें कोई विशेष बल तो प्रतीत नहीं होता। महाराजने इस बातका कोई उत्तर न दिया। सरदार महाशय बड़ी देरतक सत्संगमें बैठे रहे। चलते समय जब नमस्कार करके गाड़ीमें आरूढ़ हुए तो महाराजने उनकी गाड़ीको पीछेसे पकड़ लिया। विक्रमसिंहजीने घोड़ोंको बहुतेर कोड़े लगाये परन्तु वे गाड़ीको न खींच सके। सरदार महाशयने जब पीछेकी ओर मुड़कर देखा तो महाराजने गाड़ीको छोड़ दिया और कहा कि ब्रह्मचर्यके बलका प्रमाण आपको मिल गया है। सरदार महाशय उनके इस सामर्थ्यपर अति विस्मित हुए।

रावलपिण्डीमें धर्म प्रचार करके श्री स्वामीजी गुजरातको जाते हुए, मार्गमें झेलम ठहर गये और सेठ जामाजीके बङ्गलेमें उतरे। झेलममें महाराजने पहला व्याख्यान एक सराएमें दिया और दूसरा अपने उतारेपर। वहाँ स्थान पर्याप्त न था इसी लिए पादरी महाशयोंकी प्रार्थनापर स्वामीजीने शेष सारे व्याख्यान स्कूलमें दिये।

* नोट—ऐसा कहा जाता है कि यह घटना जालंधर की है।

दो चार दिनतक तो पादरी लोगोंने धर्म्म-चर्चा की, परन्तु बार बारकी पराजयसे बचनेके लिए उन्होंने वह क्रम तोड़ दिया। झेलमकी ईसाई-पाठशालाके मुख्याध्यापक महाशय शिवचरण घोष थे। वह बङ्गाली ईसाई थे। उन्होंने भी स्वामीजीसे धर्म्म-चर्चा की। परन्तु महाराजने बाईबलके वाक्य बोलकर उनकी ऐसी युक्तिसंगत समालोचना की कि घोष महाशय देखतेही रह गये। उनसे कोई उत्तर न बन पड़ा।

स्वामीजीके प्रभावशाली उपदेशोंसे झेलममें आर्य-समाज स्थापित हो गया और सभासद बड़े उत्साहसे धर्म्म-कार्य्यमें लग गये। आर्य-समाजके पहले संगीत शास्त्री और प्रसिद्ध भजन-निर्माता, महता अमीचन्दजीने श्रीमहाराजके दर्शन पहले झेलममें ही किये। उसी समय उनके हृदयमें श्री चरणोंकी भक्तिका अङ्कुर उग आया। अन्तको धीरे धीरे महताजी पक्के स्वामी-भक्त बन गये।

उन दिनों स्वामीजीके साथ वेद-भाष्य लिखनेके लिए तीन पण्डित थे। अँगरेज़ीके पत्रव्यवहारके लिए एक अँगरेज़ी जाननेवाला था। अन्यान्य कार्यों के लिए चार पाँच सेवक थे। स्वामीजी निवास-स्थानपर तो साधारण वेशमें ही रहते थे, परन्तु जब व्याख्यान देने जाते थे तो सिरपर एक रेशमी पीताम्बर नीचे एक पीली रेशमी धोती और ऊपर एक ऊनी चोगा पहन लेते थे। वे इस वेशमें पूर्ण तेजोधाम दिखाई देते थे; गौरवकी मोहिनी मूर्ति जान पड़ते थे। उनकी उज्ज्वल, गम्भीर, प्रभावशालिनी और दैवी आकृतिको देखकर लोगोंके अन्तः करणमें आप ही आप श्रद्धा, भक्ति और प्रेम उमड़ आता था। महाराज रातका अधिक भाग ध्यानमें बिताया करते थे। भोजन उनका परिमित था। वे हुक्का पिया करते थे।

एक वृद्ध संन्यासी बरसोंसे तटनी-तटपर निवास करते थे। वे संस्कृतके अच्छे पण्डित थे। लोगोंमें प्रसिद्ध था कि वे एक योगी महात्मा हैं। स्वामीजी और यह वयोवृद्ध महात्मा मिलकर, चिरकालतक वार्त्तालाप किया करते। इनका परस्पर प्रेम भी हो गया था।

गुजरातमें डाक्टर बिशनदासजी एक प्रसिद्ध वेदान्ती थे। वे सामाजिक सुधार भी चाहते थे। स्वामीजीकी व्यापिनी कीर्त्तिसे वे भी प्रभावित थे।

उन्होंने महाराजको पत्र लिख कर प्रार्थनाकी कि कृपया लाहौर लौटते समय गुजरात-वासियोंको भी कृतार्थ करते जाइएगा। डाक्टर महाशयकी विनतीपर स्वामीजी लगभग पोष सु० ९ सं० १९३४ को झेलमसे गुजरात आये। एक दिन तो दमदमामें ठहरे, परन्तु आगामी दिन नगरसे बाहर फतेह-सरमें जा विराजे। स्वामीजीके प्रेमियोंने, वहाँके विद्यालयके मुख्याध्यापक, ब्रुकैनयन महाशयकी आज्ञा लेकर शाखा पाठशालामें महाराजकी व्याख्यान-माला आरम्भ कराई। उनके उपदेश बड़े ही प्रभावजनक होते थे।

गुजरातमें नन्दलालजी और होशनाकरायजी, दो प्रधान पण्डित थे। होशनाकराय जम्मूमें पढ़ानेका काम करते थे। एक दिन उन्होंने स्वामीजीसे कहा, "मूर्त्ति-पूजाका विधान मनुस्मृतिमें विद्यमान है।" स्वामीजीने मनुस्मृतिकी पुस्तक उठाकर कहा, "लीजिए यह मनुस्मृति है; इसमें मूर्त्ति-पूजाका विधान जिस स्थलमें है वह दिखाइए।" पण्डित महाशयने झेपकर कहा, "यह आपकी मनुस्मृति है, इसमें न होगा, परन्तु हमारी मनुस्मृतिमें अवश्य है। कल आपको दिखा दूँगा।"

अगले दिन होशनाकरायजी श्री उपदेशमें तो आये, परन्तु सर्वसाधारणमें छिपकर बैठ गये। व्याख्यानकी समाप्तिपर श्री महाराजने कहा, "कलवाले पण्डित यदि आये हैं तो मनुस्मृतिमें प्रतिमा-पूजनका विधान दिखाकर अपनी प्रतिज्ञाका पालन करें।' होशनाकरायजी आपतो न उठे परन्तु दर्शकोंने आग्रहपूर्वक उनको खड़ा कर ही दिया। उस समय उनकी बगलमें एक पुस्तक भी थी। पण्डित महाशयने एक श्लोक बोलकर कहा, "यह मनुस्मृतिका श्लोक है। इसमें मूर्त्ति-पूजाका उपदेश विद्यमान है।"

"स्वामीजीने कहा, मिथ्या क्यों बोलते हो? यह श्लोक मनुस्मृतिका नहीं, किन्तु विष्णुपुराणका है। आपने बगलमें भी विष्णुपुराण ही दबा रक्खा है।" इसपर पण्डितजी मारे लज्जाके पानी पानी हो गये।

फिर एक दिन पण्डित होशनाकरायजीने स्वामीजीसे तर्क-शास्त्रपर वाद करनेकी इच्छा प्रकटकी। महाराज तो सदा तैयार ही रहते थे। उन्होंने स्वीकार कर लिया। इस वादका मध्यस्थ पण्डित नन्दलालजीको नियत किया गया। शास्त्रार्थ व्याप्ति-वादपर होने लगा। पण्डित महाशय नव्य न्यायकी

रीतिसे व्याप्ति के लक्षण करते थे और स्वामीजी उनके लक्षणोंमें दोष दिखाकर, महाभाष्यमें वर्णित लक्षण बताते थे। जब मध्यस्थ महाशयकी सम्मतिका समय आया तो उसने महाराजके पक्षको पुष्टिमें अपना मत प्रकाशित किया। इसके उपरान्त होशनाकरायजी शान्त हो गये।

पण्डित नन्दलालजीने भी स्वामीजीसे प्रश्न पूछकर अपने सन्देह दूर किये। अन्तमें ऊपर कहे दोनों पण्डित स्वामीजीके अनुयायी बन गये।

विरोधी जन भी चुपके नहीं बैठे थे। वे व्याख्यानोंमें ईंट पत्थर फेंकते रहते थे! एक दिन बहुत अधिक ईंट पत्थर बरसे। सारी सभा हिल गयी, परन्तु स्वामीजी स्थिरतासे उसी स्थानपर बैठे रहे।

विरोधियोंने बुकैनयन महाशयको कहना आरम्भ किया कि आप इनके व्याख्यान पाठशालामें न होने दें। एक दिन बुकैनयन महाशयने स्वामीजीके पास आकर कहा, "आप मृत देहका दाह-कर्म करना कहते हैं, परन्तु वेदमें तो भूमिमें गाड़ना लिखा है।" प्रमाणमें उसने मोक्षमूलरका अनुवाद सुनाया कि हे भूमि! तू अपनी भुजा पसार, जिसमें मृतककी देह रक्खी जाय।

स्वामीजीने मोक्षमूलरके अनुवादका भली भाँति खण्डन किया फिर उसी मंत्रसे जलाना सिद्ध कर दिया। उन्होंने कहा, "यहाँ यह वर्णन है कि भूमिको खोदकर वेदी बनाई जाय और फिर उसमें मृत देहको जलाया जाय।" लोगोंने महाराजके कथनपर अति प्रसन्नताका प्रकाश किया, जिससे बुकैनयन महाशय कुछ लज्जित होकर चले गये। अगले दिन उन्होंने स्वामीजीको लिख भेजा कि पाठशालामें व्याख्यान देना बन्द कर दीजिए। इसपर महाराजके प्रेमियोंने पाठशालाके सामनेका स्थान ले लिया और वहीं महाराजके उपदेश होते रहे।

नवीन वेदान्तका खण्डन सुनकर महाशय बिशनदासजी भी बहुत रुष्ट हुए। पहले वे प्रतिदिन स्वामीजीको व्याख्यान-स्थानपर लिवा ले जाया करते थे; अब उन्होंने यह भी छोड़ दिया। परन्तु महाराजकी हृदय-भूमिपर ऐसी बातोंका कुछ भी प्रभाव न पड़ता था।

एक दिन, एक सिख साधु लोई ओढ़े स्वामीजीके पास आया। उस समय महाराज बैठे धूम्रपान कर रहे थे। उस साधुने प्रारब्धवादपर शास्त्र चर्चा चलाई।

महाराजने युक्तिओं और प्रमाणोंद्वारा उसको बताया कि "प्रारब्ध और पुरु-षार्थ दोनों ही ठीक हैं। प्रारब्ध पूर्वके भोगका नाम है। इस जन्ममें जो शास्त्रीय कर्म किये जाते हैं वह पुरुषार्थ है। पुरुषार्थ अवश्य ही करना चाहिये।

वह साधु महाराजकी बात नहीं मानता था और यही कहे चला जाता था, "पुरुषार्थकी कोई आवश्यकता नहीं; जो होना होता है वह स्वयमेव होकर ही रहता है।"

स्वामीजीने सेवकको आदेश किया, "इस महात्माकी लोई उतारकर सड़कपर फेंक दो। देखें, पुरुषार्थ के बिना यह इसके पास कैसे आ जाती है।" जब वह सेवक उससे लोई लेने लगा तो वह साधु लोईसे इतना लिपट गया कि सेवक उसे बल लगाकर भी न उतार सका। फिर उस साधुने स्वामीजीसे कहा, "पुरुषार्थ वादको तो आपने सिद्ध कर दिया, परन्तु हुक्का आप क्यों पीते हैं? इसको पीना पराई जूठन पीना है।"

महाराजने कहा, "मैं धूम्रपान कफकी निवृत्तिके लिये करता हूँ। धर्म-शास्त्रमें कहीं इसका निषेध भी नहीं है। मैं अपना हुक्का न किसीको देता हूँ और न ही किसी दूसरेका लेकर पीता हूँ। इस लिए इसे जूठनका पीना नहीं कहा जा सकता।"

एक दिन बहुतसे मनुष्योंने मिलकर विचार किया कि स्वामीजी सबका मुख बन्द कर देते हैं। उनपर कोई ऐसा प्रश्न करो, जिससे एक बार तो उनको भी नीचा देखना पड़े। वहाँ सर्वसम्मतिसे निश्चय हुआ कि कल यह पूछा जाय कि आप ज्ञानी हैं अथवा अज्ञानी? यदि वे कहें कि मैं ज्ञानी हूँ तो उनको कहा जाय कि महापुरुष अहङ्कार नहीं किया करते; और यदि वे अपनेको अज्ञानी कहें तो उनसे कहा जाय कि जब आप स्वयं अज्ञानी हैं तो हमें क्या समझायँगे?

आगामी दिन जब यह प्रश्न स्वामीजी से किया गया तो उन्होंने तत्काल उत्तर दिया कि "मैं कई विषयोंमें ज्ञानी हूँ और कईयोंमें अज्ञानी। वेद शास्त्रादि विषयोंमें पूर्ण ज्ञानी हूँ और फारसी, अरबी और अँगरेजी आदि विषय में नहीं जानता, इस लिए उनमें अज्ञानी हूँ।' यह उत्तर पाकर प्रश्नकर्त्ता लोग हक्के बक्के रह गये और एक दूसरेका मुँह ताकने लगे। उस दिन गुजरात-वासियोंको

निश्चय हो गया कि स्वामीजीको जीतना सर्वथा असम्भव है; उनकी तात्कालिक स्फुरणशक्ति आश्चर्यकारिणी है।

एक दिन दो उच्च राजकर्म्मचारी स्वामीजीसे मिलने आये। वार्त्तालापके प्रसंगमें वे कटाक्षपूर्वक बोले, "स्वामीजी! खण्डनमें क्या पड़ा है? इससे लोग बहुत भड़क उठते हैं। हम तो जिस कर्ममें अपनेको लाभ हो उसीको अच्छा समझते हैं। परहित-चिन्तन और परोपकार एक व्यर्थका ढकोसला है"

स्वामीजीने गम्भीरतासे उत्तर दिया, "यदि, अपना भला करनाही उद्देश्य हो तो मनुष्यता क्या हुई? अपने भलेका भाव तो गधोंमें भी पाया जाता है। पशुमात्र अपने लिए जीता है। परोपकार और परहितसाधनका नाम ही तो मनुष्यत्व है। वे सज्जन इस उत्तरसे शान्त होकर वहांसे चले गये।

स्वामीजी महाराज परोपकारी और देश-हितैषी जनोंसे अतीव प्रसन्न हुआ करते; उनको प्रोत्साहन देनेमें सदा समुद्यत रहते। भारतवासियोंकी हितकामनाका भाव उनके अन्तःकरणमें कितना प्रबल था, इसका प्रकाश निम्नलिखित पत्रसे होता है। पोष सु० १५ सं० १९३४ को महाराजने गुजरातसे दानापुर आर्य-समाजके मंत्री महाशयको लिखा "जब मैं वङ्गदेशको आऊंगा तो आप सबके मिलापसे अवश्य प्रसन्नता लाभ करूँगा। आप सज्जनोंकी कामना और प्रयत्नसे देशवासियोंकी उन्नति अवलोकन कर मैं अति प्रसन्न हुआ हूँ। यह देखकर कि आप अपने देशको उन्नत करनेका यत्न करते हैं, मुझे इतनी प्रसन्नता हुई है कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता। कुछ सन्देह नहीं कि आप इसके फलोंका अपने जीवन में आस्वादन कर लेंगे।

ईश्वर आपको स्वस्थ और हरा भरा रक्खे। आप सबको मेरा आशीर्वाद।"

गुजरात। दयानन्द सरस्वती।"

गुजरात नगरमें धर्म्मका उपदेश देनेके अनन्तर स्वामीजी २ फर्वरीको वज़ीराबादमें सुशोभित हुए। इस नगरमें उनके आगमनके पूर्वही आर्यसमाज स्थापित था। सामाजिक सज्जनोंने उनको राजा फ़कीरुल्लाके उद्यानमें ठहराया। महाराजने वज़ीराबादमें एक सप्ताहपर्यन्त व्याख्यान दिये। उनके भाषणोंमें सैकड़ों लोग बड़े उत्साहसे आते थे। विरोधियोंके विघ्न डालनेपर भी श्रोताओंकी संख्या नहीं घटती थी।

स्वामीजीका आगमन सुनकर वज़ीराबादके प्रसिद्ध पण्डित तो अपना बोरिया बदना बाँधकर नगरान्तरमें चले गये। परन्तु इस नगरमें एक वासुदेव नामक पण्डित आया हुआ था। वह अच्छा हृष्ट पुष्ट था और शाक्त पुजारियोंकी तरह लम्बायमान केश रखता था। नगरके उपद्रवी लोग सौ रुपयेका प्रलोभन देकर वासुदेवको स्वामीजीके सन्मुख ले आये। उस दिन वहाँ लोगोंकी भारी भीड़ लग गई। ऐसा प्रतीत होता था, मानों सारा नगर वहाँ आ गया है।

शास्त्रार्थके आरम्भमें, पण्डितने वेद-मंत्रके नामसे एक श्लोक पढ़कर कहा कि इसमें शालिग्राम और तुलसीका पूजन कहा है, स्वामीजीने वासुदेवको कहाकि यह वेद-मंत्र नहीं है। आप झूठमूठसे वेदका नाम लेकर अनर्थ ढा रहे हैं। जब वासुदेव कोई उत्तर न देसका तो क्षुद्र प्रकृतिके लोग गोलमाल करनेपर उतर आये। दो एक राजसत्ताधारी मनुष्य भी विद्यमान थे, परन्तु ऐसे समयमें, वे चुपकेसे चल दिये। ज्यों ज्यों महाराज वासुदेवको वेदमेंसे वह मंत्र दिखलानेके लिए बल देते थे त्यों त्यों गड़बड़ बढ़ती जाती थी। उसी समय एक छोकरेने सीटी बजाना आरम्भ कर दिया। आर्यसमाजके प्रधानने उस युवकको डाँटकर ऐसा करनेसे रोका। फिर क्या था, वासुदेव-सहित पण्डित और कलहप्रिय लोग स्वामीजी तथा आर्यसमाजके प्रधान श्री लद्धारामजीपर टूट पड़े, ज्यों त्यों करके, स्वामीजी अपने पुस्तक-पत्रोंसहित अपने डेरेमें आ गये। परन्तु उपद्रवियोंने फिर भी पीछा न छोड़ा! उन्होंने ईंट पत्थर बरसाते सावन भादोंकी झड़ी लगा दी महाराज द्वार बंद करके भीतर बैठ गये और उन लोगोंकी धर्मान्धतापर हँसने लगे।

महाराजका एक कर्मचारी पीछे रह गया। उपद्रवियोंने उसे पकड़कर बहुत ही पीटा। जब स्वामीजीको उसके पिटनेका समाचार मिला तो वे आप उसे छुड़ानेके लिए बाहर आये और सिंहकी भाँति गर्जे। उनकी गम्भीर गर्जनामात्रसे, कलहकारी लोग भाग गये। इसके पश्चात् तीन चार दिवसतक उपदेश देकर उन्होंने गुजराँवालाको प्रस्थान किया।

माघ सुदी पँचमी सम्वत् १९३४ को महाराज गुजराँवालामें पधारे। सरदार सन्तसिंहजो तथा सरदार धर्म्मसिंहजी आदि सज्जन, उनके स्वागतके

लिए रेलके स्टेशनपर गये और उनको अति सम्मानसे लाकर सरदार महा-सिंहके विशाल भवनमें उतारा।

प्रतिदिन साँझको महाराज व्याख्यान देते थे। पंजाबमें वे सर्वत्र, बहुधा आर्योद्देश्य रत्नमालाके विषयोंपर ही व्याख्यान देते थे क्रमशःएक-एक विषय लेकर उसकी विस्तृत व्याख्या किया करते थे। बीचहीमें वेद-मंत्र, दर्शनोंके सूत्र और धर्म्म-ग्रन्थोंके श्लोक सुनाते थे। पाखण्ड खण्डन भी साथ ही साथ होता रहता था। समय-समयपर युक्तियोंप्रयुक्तियोंका भी तार लगा देते और प्रकरणानुकूल मनोरञ्जक कहानियाँ तथा प्रहसन-रस बना देनेवाले चुटकुले भी कहते थे।

गुजराँवालामें उन्होंने आर्योद्देश्य रत्नमालाके सारे विषय, अठारह दिनमें समाप्त कर दिये। उपदेशके पश्चात्, लोग उनके कथनपर तर्कनायें और शंकायें किया करते। उनका उत्तर वे अति कोमल शब्दोंमें तुरन्त दे देते। किसी भी उत्तरके लिए उन्हें सोचना नहीं पड़ता था।

सातवाँ सर्ग।

स्वामीजीके आगमनके पहले, पंजाबमें पादरियोंका बड़ा प्रभाव था। बहुतसे नवशिक्षित ईसाई-धर्म्मकी ओर झुक रहे थे। भाले भाले ग्रामीण भी, उनकी चिकनी चुपड़ी बातोंकी भूल भूलेयाँमें फँस जाते थे। परन्तु स्वामीजीके पधारनेपर उनका सारा मोहनमंत्र दूर हो गया। आर्य लोग समझने लगे कि हमारा धर्म्म सर्वाङ्गसम्पूर्ण है। धर्म्म-शिक्षाके लिए, हमें भिखमंगा बनकर, किसी दूसरेके द्वारपर भटकनेकी आवश्यकता नहीं। इस लिए पादरियोंकी ओरसे स्वामीजीका विरोध होना इसका एक स्वाभाविक परिणाम था। गुजराँवालाके पादरियोंने स्वामीजीसे उनके सिद्धान्त पूछे। उन्होंने उत्तरमें आर्य्योद्देश्य रत्नमालाकी पुस्तक उनके पास भेज दी। तत्पश्चात् पादरी महाशयोंने नगरके पण्डितोंको स्वामीजीसे शास्त्रार्थ करनेके लिए उत्तेजित किया। परन्तु कई पण्डित तो उन दिनोंमें नगर ही छोड़ गये थे। एकआधने स्वामीजीके सम्मुख जाना, पातकका कारण बताकर छुटकारा करा लिया।

पण्डित विद्याधरजी गुजराँवालेमें चोटीके विद्वान् थे। उन्होंने एक पाठशाला भी चला रक्खी थी। ईसाई महाशयोंने उनको जाकर कहा, "दयानन्दजी आपके और हमारे दोनों मतोंक विरोधी हैं। इस लिए हमारे साथ मिलकर उनसे शास्त्रार्थ कीजिए।

श्री विद्याधरजीने उनको उत्तर दिया, "मैं ऐसा नहीं कर सकता। स्वामीजीका और हमारा घरेलू मत-भेद है। इसपर हम आपसमें, अपनोंकी तरह, जब चाहें बातचीत कर सकते हैं। आपके साथ मिलकर उनसे शास्त्रार्थ करना तो स्वजन-द्रोहरूप महापापका भागी बनना है।" पण्डित विद्याधरजी एक दिन महाराजके निकट आकर बड़ी देरतक वार्त्तालाप भी करते रहे।

जब पादरियोंको पण्डितोंसे निराशा हो गई तो वे, आप धर्म्म-चर्चा करने के लिए उद्यत हो गये। दोनों पक्षोंकी सम्मतिसे वादका समय दिनके चार बजे और स्थान ईसाईयोंकी पाठशालाका मकान, निश्चित् हुआ। फाल्गुन वदी द्वितीया सम्वत् १९३४ को दिनके चार बजे स्वामीजी ईसाई पाठशालाके मकानमें पहुँच गये। उस दिन नगरके प्रतिष्ठित जन और प्रायः सारे राज-कर्मचारी वहाँ उपस्थित थे। मकान लोगोंसे खचाखच भरा हुआ था।

लिखित-वाद होनेका निश्चय हुआ था, इस लिए, पहले दिन ईसाईयोंने जीवके अनादित्वपर लेखबद्ध शंकायें कीं। स्वामीजीने भी उनको युक्तियुक्त उत्तर दिया। इस प्रकार दो दिनतक इसी विषयपर वाद होता रहा। वाद प्रतिदिन रातके आठ बजे समाप्त किया जाता था।

वह स्थान बहुतही संकुचित था। जन-संख्याकी अधिकताके कारण लोगोंका साँस रुका जाता था। इस कारण दूसरे दिन, वाद-समाप्तिके समय, श्री स्वामीजी ने पादरियोंको कहा कि कल किसी विस्तृत स्थानमें वाद होना चाहिए। यहाँ लोगोंको अति कष्ट होता है। यह स्थान आपका है, इस लिए प्रबंधकर्त्ता कुछ पक्षपात भी करते हैं।

उस समय तो पादरी महाशयोंने कोई स्पष्ट उत्तर न दिया, परन्तु अगले दिन, बिना स्वामीजीको बताये कुछ ईसाईयोंको घरोंसे बुलाकर दिनके बारह बजे अपनी पाठशालामें एकत्र हो गये। उसी समय, उन्होंने स्वामीजीको समाचार भेजा कि वादका समय हो गया है, शीघ्र आ जाइए। स्वामीजीको

पादरियोंसे ऐसी बातकी आशा न थी, इसलिए इस समाचारसे वे आश्चर्य-चकित हो गये। उनका वह समय वेद-भाष्य करनेका था। उस समय वे अन्य किसी विषयकी ओर ध्यान नहीं दिया करते थे।

महाराजने समाचारदाताको कहा कि पादरियोंको जाकर कहियेगा कि जब दोनों पक्षोंकी सम्मतिसे चार बजेका समय नियत हो चुका है और जनताको भी उसी समयका पता है तो आपने नियमविरुद्ध काम क्यों किया है? यदि आपको बारह बजे ही वाद करना था तो एक दिन पहले सम्मति लेते और जनताको विदित करते। आप ही आप समय-परिवर्तनका आपको अधिकार नहीं है। जब आपने धींगाधींगीसे नियम-न्यायका उल्लङ्घन किया है तो मेरे लिए आवश्यक नहीं कि वेद-भाष्य जैसे सर्वोत्तम कार्य्यको छोड़कर वहाँ आऊँ। कल मैंने किसी विशाल स्थानमें वाद करनेके लिए निवेदन किया था। यदि आप किसी ऐसे स्थानका प्रबंध नहीं कर सके तो भी चार बजेके लिए सुसज्जित रहिये। मैं निश्चित समयपर पहुँच जाऊँगा।

पादरी महाशय तो अपना पिण्ड छुड़ाना ही चाहते थे। इसलिए स्वामीजीका उत्तर पहुँचनेपर उन्होंने घोषणा की कि स्वामी दयानन्दजी नहीं आये इसलिए सभा विसर्जन की जाति है। उस समय उनके मकानमें पाठशालाके बालकों और थोड़ेसे ईसाईयोंके बिना और कोई नहीं आया था।

उसी सायंको, ठीक चार बजे, स्वामीजीके प्रेमियोंने सरदार हरिसिंहजीकी समाधिके पास वादका प्रबंध कर दिया। पादरी महाशयोंको वहाँ आकर वाद करनेके लिए बार बार आहूत किया गया, परन्तु वे अपने मकानसे बाहर नहीं निकले। जब उनके आनेकी कोई आशा न रही तो श्रीस्वामीजीने ईसाई धर्म्मपर ही व्याख्यान देना आरम्भ कर दिया। उन्होंने बाईबलकी आयतोंपर आयतें पढ़कर उनपर ऐसी यौक्तिक टिप्पणियाँ चढ़ाईं कि सुननेवाले आश्चर्य-निमग्न हो गये। उनके सामने ईसाई धर्म्मका पूरा चित्र खिंच गया। सभी सज्जन स्वामीजीके विस्तृत ज्ञानकी प्रभूत प्रशंसा करने लगे।

जिस दिन ईसाईयोंकी पाठशालामें धर्म्म-चर्चा होने लगी थी, उस दिन वजीराबादके लोग भी सुनने आये। उनमें अधिकांश वे ही लोग थे जिन्होंने स्वामीजीपर ईंटे बरसाईं थीं। जब वे पाठशालाके भीतर जाने लगे तो ईसा-

इयोंने उन्हें भीतर आनेका टिकट नहीं दिया। वे निराश होकर पाठशालाके आँगनमें मँडलाने लगे। उसी समय वहाँ स्वामीजी आ पहुँचे। उन वज़ीराबाद-निवासियोंको पहचानकर, महाराजने पूछा, "आप यहाँ घूमते हैं? भीतर क्यों नहीं जाते?" वे बोले, "महाराज! ईसाई लोग हमें टिकट नहीं देते।"

महाराजने अति प्रेमसे उनको कहा, "आप बिना संकोच मेरे साथ चले आइए। आपको भीतर प्रवेश करा दूँगा।" वे लोग महाराजके दयालु स्वभावसे प्रभावित तो उसी समय हो गये, परन्तु जब भीतर जाकर उन्होंने आर्य्य-धर्मके रक्षककी युक्तियाँ सुनीं तो अपने पिछले कर्मपर पश्चात्ताप भी किया।

भलाई, मनुष्योंको कितना कोमल बना देती है, प्रेम और सहानुभूति आदि गुण मनुष्यको कैसे खींच लेते हैं इसका ज्वलन्त प्रमाण श्री स्वामीजीके जीवनमें मिलता है।

एक दिनका वर्णन है कि श्री स्वामीजी अपने आसनपर विराजमान थे। उस समय एक मनुष्य सजलनेत्र उनके निकट आया और पाँव पकड़कर कहने लगा—"भगवन्! वज़ीराबादके अधिवासियोंने, जो, श्री चरणोंकी अवज्ञा की है उसका मूलकारण मैं ही हूँ। उस समय मैं अभिमान-मदमें मत्त और मदान्ध हो रहा था। मुझे यह ज्ञान न था कि आप ही सनातन धर्म्मके सच्चे रक्षक हैं। आपके वास्तविक गुणगणका ज्ञान मुझे तब हुआ, जब मैंने आपको ईसाइयोंके साथ धर्म्म-चर्चा करते देखा; उनका मुख बंद करने वाली आपकी युक्तियाँ सुनीं। इस समय अपने पातकके पश्चात्ताप और अनुतापसे मेरा आत्मा संतप्त होरहा है। अपनी दयालुतासे क्षमा प्रदान कर मुझे शान्त कीजिए।"

स्वामीजीने पहचान लिया कि यह पण्डित वासुदेव है। उन्होंने उसको आश्वासन देते हुए कहा, "उस समय आपने जो कुछ किया वह अपने पक्षके पोषणार्थ ही किया। मैंने, जब उसे, उस समय भी बुरा नहीं मनाया तो इस समय कौनसी बात है जिसको मैं क्षमा कर दूँ? वासुदेव! किसी कर्णकटु वचन और घोर कठोर कर्मसे संन्यासियोंके अन्तःकरण कलुषित नहीं हुआ करते।

निश्चय रखिये, किसी अवहेलना और अवज्ञासे हमारी भद्र-चिन्तन-भावना में भेद नहीं आता। स्वस्थ और शान्त हूजिये। परमात्मा आपकी यह शुभ मति बनाये रक्खे।"

एक दिन स्वामीजी प्रातःकाल भ्रमण कर रहे थे। मार्गमें पादरी मैकी महाशयसे भेंट हो गई। नमस्कारादिके अनन्तर मैकी महाशयने कहा, "स्वामीजी आप ईसाई धर्मका बड़ा कड़ा खण्डन करते हैं।" उन्होंने उत्तर दिया, "मैं जो कुछ सुनाता हूँ वह आपके ग्रन्थोंका पाठ होता है। यदि आपकी धर्म-पुस्तकोंको सुनाना खण्डन है तो ऐसा खण्डन आप भी करते हैं। मैं द्वेषबुद्धिसे कुछ नहीं कहता, और न ही अनुचित समालोचना करता हूँ।"

एक दिन, कुछ मनुष्य, पश्चिमी दर्शनके पूर्ण पण्डित, एक वङ्गीय महाशयको स्वामीजीके पास ले आये। उनका आशय यह था कि उनको दार्शनिक जटिल-जालमें उलझाया जाय। महाराजने उस वङ्गीय सज्जनके प्रश्नोंका ऐसा युक्ति-युक्त, उपयुक्त उत्तर दिया कि वह सर्वथा सन्तुष्ट हो गया। एक लम्बे दार्शनिक वार्त्तालापके अनन्तर, जब वे लोग उठकर चलने लगे तो स्वामीजीने पूछा, "क्या यह वङ्गीय महाशय कुछ दार्शनिकज्ञानसम्पन्न हैं?" उन सज्जनोंने इसका यह परिणाम निकाला कि स्वामीजी अपनेसे इतर जनोंको यों ही तृणतुल्य समझे बैठे हैं। नगरमें आकर उन्होंने उस वङ्गीय महाशयसे पूछा, "स्वामीजीका दार्शनिक ज्ञान कितना है?" उसने उत्तर दिया, "वे तो ज्ञानकी अगाध गङ्गा और विद्याके अथाह समुद्र हैं। मैं तो उनके समक्ष कुछ भी नहीं जानता।"

एक दिन, स्वामीजीने ब्रह्मचर्य्यका महत्व वर्णन करते हुए कहा, "सरदार हरिसिंहजी जो इतने वीर हुए हैं इसका प्रबल कारण यही था कि वे पच्चीस वर्षतक ब्रह्मचारी रहे थे। यद्यपि मेरी आयु इस समय पचास वर्षसे ऊपर है परन्तु कोई भी बलिष्ठ व्यक्ति सामने आये, मैं उसका हाथ पकड़ता हूँ, वह छुड़ाकर दिखलाये। अथवा मैं भुजा अकड़ाता हूँ, कोई उसे झुकाकर दिखाये।" उस बड़ी सभामें अनेक महामल्ल भी उपस्थित थे, परन्तु आगे आनेका साहस किसीने भी न किया।

गुजराँवालामें अनेक सज्जनोंके भ्रम दूर करने, संशय मिटाने और आर्य्य समाजकी स्थापना करनेके पश्चात् महाराज फागन व० १४ सं० १९३४ को लाहौर पधारे और नवाब निवाजिश अलीखाँकी कोठीमें ठहरे ।

इसी कोठीमें एक दिन महाराज व्याख्यान देते हुए मुसलमान मतकी समालोचना कर रहे थे। उस समय, नवाब, महाशय उसी उद्यानमें आये हुए थे। व्याख्यान हो चुकनेपर, एक सज्जनने उनसे निवेदन किया, "आपको कोई आर्य्य, ईसाई और मुसलमान उतरनेके लिए मकान नहीं देता । नवाब महाशयका यह बड़ा भारी अनुग्रह है कि उन्होंने कोठी दे दी है। आप यहीं मुसलमान मतपर समालोचना करने लग गये हैं। आज तो नवाब महाशय भी सुन रहे थे । कहीं ऐसा न हो कि वे भी रुष्ट हो जायँ।"

महाराजने उत्तर दिया, "मैं यहाँ वैदिक धर्म्मका प्रचार करने आया हूँ। जहाँ भी रहूँगा उसीका उपदेश दूँगा। मेरे यहाँ आनेका प्रयोजन मुसलमान मत अथवा किसी अन्य पन्थका यश गाना नहीं है । जब नवाब महाशय व्याख्यान सुन रहे थे तो मैंने उन्हें देख लिया था। मैंने जान बूझकर उनको आर्य्य धर्म्मका महत्त्व सुनाया है। मुझे एक नारायणके बिना किसी नरनारी का डर नहीं है।"

मुलतान छावनीके प्रेमीजनोंने प्रार्थनापूर्वक महाराजको आमन्त्रित किया था। उनके आग्रहवश वे फागन सु० ८ सं० १९३४ को मुलतान छावनीमें पहुँचे। स्वागतके लिए अनेक भद्र पुरुष रेलवे स्टेशनपर उपस्थित थे। उन्होंने स्वामीजीको सन्मानपूर्वक ले जाकर, बेगीके उद्यानमें ठहराया । उसी दिन, सायं समय उनके व्याख्यानोंका आरम्भ हो गया । उनके भाषणोंसे नगर और छावनीके लोक प्रभावित होने लगे ।

धर्म्म-कार्य्योंमें विघ्न डालनेवालोंका भी वहाँ अभाव न था। ऐसे लोग गली गली और कूचे कूचेमें चक्कर लगाते कहते फिरते थे कि यह ईसाइयोंका नौकर है। उन्होंने इसे कह रक्खा है कि जब सारे भारतवासियोंको ईसाई बना दोगे तो तुम्हें एक लाख रुपया दिया जायगा ।

गोसाइयोंने सबसे अधिक ऊधम मचाया । एक दिनका वर्णन है कि स्वामीजी व्याख्यान दे रहे थे, गोसाईं लोग अपने सेवक-समूह-सहित वहाँ आ

पहुँचे और लगे शंख और घड़ियाल बजाने! जयजयकारका भी उन्होंने तार बाँध दिया। महाराजने उनकी कलह-जनक कलुषित क्रीड़ापर कुछ भी ध्यान न दिया और गम्भीरतासे उपदेश देनेमें परायण रहे। अन्तमें पुलिसके कन्स्टेबलोंने उन्हें खदेड़ दिया। दूसरे दिन गोसाईं-दल फिर चढ़ आया, और विघ्न बाधातक ही बस न करके, लड़ाई लड़नेपर उतर आया! स्वामीजीको उस दिन व्याख्यान बंद कर देना पड़ा।

होलियोंके दिन थे, इस कारण क्षुद्र लोगोंको उपद्रव करनेका बहाना मिल जाता था। इसलिए सेठ दिनशाह बहरामजीने, कुछ एक सज्जनोंकी सम्मतिसे, अपनी कोठीमें व्याख्यान कराने आरम्भ किये। वहाँ भी स्वामीजीने विविध विषयोंपर अत्युत्तम भाषण दिये। मुलतान छावनीके निवासियोंके प्रबन्धसे वहाँ, महाराजके कोई छत्तीस उपदेश हुए।

एक दिन स्वामीजीने ब्राह्मणोंके धर्म्म और कर्तव्योंका वर्णन किया और कलिकालमें उनकी अधोगतिके कारण अविद्यादि बताये। उन्होंने उस समय दृष्टान्त दिया कि एक सेठ अपने मिस्सरजीके साथ देशान्तरको जा रहा था। एक मुसलमान पठान भी उनका साथी बन गया। वह सेठ जब प्रातःकाल उठता तो ब्राह्मण देवको नमस्कार करता। नहानेके समय उससे जल मँगवाता। रसोईके समय भोजन बनवाता और चलते समय, अपना कम्बल और कोटतक उतारकर उसपर लाद देता!! पठानको इन बातोंपर बड़ा अचम्भा होता था।

एक दिन चलते चलते सेठ और 'मिस्सरजी' बहुत पीछे रहगये और पठान आगे ठहरकर उनकी प्रतीक्षा करने लगा। सेठजी तो ज्यों त्यों करके पठानको जा मिले परन्तु मिस्सरजी न पहुँच सके। सेठको अकेले आते देखकर पठानने पूछा "कहाँ गया है वह नर, पुरोहित, पाचक, कहार और खर?"

इससे उन्होंने शिक्षा निकाली कि सर्व प्रकारके ऊँच नीच कर्म करनेवाले अबोध जन 'ब्राह्मण पदके अधिकारी नहीं हैं। विद्वान् जन ही ब्राह्मणत्वके योग्य होते हैं।

एक व्याख्यानमें महाराजने अन्य सर्व पन्थाई मन्त्रोंका खण्डन करके गायत्री मन्त्रकी प्रधानता बतलाई और कहा कि इसका प्रतिदिन जप करना चाहिए।

एक दिन स्वामीजीने स्वास्थ्य-रक्षापर एक उपयुक्त भाषण दिया। उसकी समाप्तिपर एक पारसी सेठने उनसे कहा कि जब आप यह कहते हैं कि मनुष्य-मात्र एक है तो हमारे साथ मिलकर आप खाना क्यों नहीं खाते? स्वामीजीने उत्तर दिया कि मुसलमानादि जातियोंके साथ आप लोग खान पानका व्यवहार करते हैं, नहीं तो दूसरी कोई रुकावट नहीं है। यदि आप आर्य लोगासे अधिक मेलजोल करने लग जायँ तो कालान्तरमें यह रुकावट हटाई जा सकती है।

एक थालमें भोजन पानेका जब विषय चला तो सेठने कहा कि इससे प्रेम बढ़ता है। स्वामीजीने कहा कि प्रेम यदि इकट्ठे होकर खानेसे बढ़ता हो तो यहाँ मुसलमान मिलकर खाते हैं। उनमें झगड़ा बखेड़ा नहीं होना चाहिये। जब तुर्कोंपर रूसने आक्रमण किया था तो इकट्ठे मिलकर खानेवाले अफगानोंने, माँगनेपर भी, तुर्कोंको सहायता नहीं दी थी।

फिर स्वामीजीने कहा कि मिलकर खानेसे कई संक्रामक रोग लग जाते हैं। चिकित्सा-शास्त्रके अनुसार भी एक दूसरेका जूठा खाना हानिकारक है।

मुलतानके वेदान्तियोंको समझाते समय स्वामीजीने कहा, "चार महा-वाक्य उपनिषद् वचन हैं। आप लोग एक टुकड़ा लेकर मनमाना अर्थ करने लग जाते हो। यदि सारा प्रकरण लगाओ तो उनसे नवीन वेदान्त सिद्ध नहीं होता।"

एक दिन आर्य्य, मुसलमान और ईसाई सब मिलकर आये। उन्होंने, महाराजपर एक बार ही, नाना विषयोंके अनेक प्रश्न कर डाले। उनलोगोंकी ऐसी धारणा थी कि एक बार ही अनेक विषयोंके प्रश्न आ पड़नेपर स्वामीजी घबरा जायँगे, वे सबका उत्तर न दे सकेंगे। परन्तु स्वामीजीने उनके एक एक प्रश्नका उत्तर, ऐसी उत्तमतासे दिया कि वे अतीव आश्चर्यमग्न हो गये। और उनके योग-बलका माहात्म्य मुक्तकण्ठसे वर्णन करने लगे।

एक दिन स्वामीजीने मांस-भक्षणको वेद-विरुद्ध बताया। इसपर महाशय कृष्ण नारायणने कहा, "इसके खानेमें कोई हानि तो नहीं है।" स्वामीजीने कहा, "परमात्माकी आज्ञाका न पालन करना यही एक बड़ी हानि है"

तब कृष्ण नारायणने कहा, "मैं मांस खाता हूँ। यदि इससे कोई हानि होती तो मैं उसका अनुभव कर लेता।"

स्वामीजीने उत्तर दिया, "आज्ञायें दो प्रकारकी होती हैं—एक शरीरके साथ सम्बन्ध रखनेवाली और दूसरी आत्माके साथ। शरीरके साथ सम्बन्ध रखनेवाली आज्ञाको भंग करनेसे रोग-शोक आदि दुःख होते हैं। आत्मासे सम्बन्ध रखने वाली आज्ञाके लोपसे शारीरिक दुःख तो नहीं होते, परन्तु आत्मा उच्च पदको प्राप्त नहीं होता। मांस खाना आत्मासे सम्बन्ध रखने वाली परमात्म-आज्ञाका भंग करना है; इसलिए मांस खानेवालेको योग-विद्या नहीं आती। उसे योगकी सिद्धियाँ भी नहीं होतीं।"

स्वामीजी अपने प्रेम-भरे पत्रोंद्वारा अपने प्रेमी जनोंको, समय समयपर, उत्साहित करते रहते थे। उनके कार्य्योंकी श्लाघा करते और अधिक अग्रसर होनेके लिए उत्तेजना भी देते थे। महाराजने चैत्र ब० १३ सं० १९२४ को मुलतानसे एक पत्र महाशय माधोलालजीको लिखा। उसका सारांश यह है—

"महाशय माधोलालजी आनन्दित रहो......आर्य समाजके ठीक नियमोंको समझकर आपको वेदाज्ञानुसार सबके हितमें अवश्य लग जाना चाहिए—विशेषतासे अपने आर्यावर्त देशके सुधारनेमें अत्यन्त श्रद्धा, प्रेम और भक्ति होनी चाहिए सबको अपने समान जानकर उनके क्लेशोंके काटने और सुखोंको बढ़ानेके लिए प्रयत्न और उपाय करना उचित है। सबका हित करना ही परम धर्म्म है। इसीके प्रचारकी वेदमें आज्ञा पाई जाती है।"

महाराज अपने अनुयायियोंको, समयपर अथवा यथायोग्य कार्य्य न करने पर, उपालम्भ भी दिया करते थे। उनके आलस्यपर भर्त्सना भी करते थे। स्वामीजीने चैत्र सुदी एकादशी सम्वत् १९३५ को मुलतानसे लाहौर आर्य्य समाजके मुखिया जनोंको लिखा कि:—

"राम रक्खाके पत्र मिल सके तो आपको भेज देंगे। अथवा नवीन लिखाकर भेज दिये जायेंगे। परन्तु जैसे...आजतक नहीं छपे ऐसी ही अवस्था

इनकी हो तो परिश्रम करना व्यर्थ है। ऐसे न हो जैसे अन्तरङ्ग सभाके नियमोंका झमेला आजतक नहीं निपट सका।

इसके लिखनेका यही प्रयोजन है कि उचित समयपर ही कार्य करना चाहिए। समयपर कार्य करना सफलताका साधन है और बुद्धिमत्ताका चिन्ह है।

यहाँ हम बहुत आनन्दमें हैं और आशा है कि आप भी आनन्दमें होंगे।"

मुलतान छावनी और नगरके अधिवासियोंको निहाल करनेके पश्चात् महाराज लाहौर पधारे। यहाँ प्रतिदिन उनके प्रभावोत्पादक उपदेश होने लगे।

महाराजका विचार था कि उनका वेद-भाष्य विद्यालयों और महाविद्यालयों में पढ़ाया जाय। लाहौरकी एक यात्रामें उन्होंने राय मूलराजको कहा कि पंजाबके छोटे लाट महोदयके पास भेजनेके लिए एक आवेदन-पत्र प्रस्तुत कीजिए और उसमें बलपूर्वक लिखिये कि राजप्रबंधान्तर्गत पाठशालाओंमें मेरा भाष्य अवश्य पढ़ाया जाय। राय मूलराजजी यह कार्य शीघ्रतासे न कर सके। अन्तको, महाराज पंजाबके लाट महोदय, सर राबर्ट अजर्टनको आप जा मिले। स्वामीजीने जब वेद-भाष्य पढ़ानेपर बल दिया तो लाट महाशयने अपने मार्गकी कठिनाईयाँ बताकर, वेद-भाष्यके प्रथम अङ्ककी कुछ प्रतियाँ लेकर, पण्डितोंकी सम्मति जानने और उसके अनुकूल कार्य करनेका वचन दिया।

राज्यकी ओरसे स्वामीजीके भाष्यके प्रथम अङ्ककी कुछप्रतियाँ मोल ली गईं और स्वदेशी तथा विदेशी पण्डितोंके पास भेजकर उनके मत मँगाए गये। वे सम्मतियाँ प्रायः स्वामीजीके भाष्यके विरुद्ध थीं। जब वे राज्यकी ओरसे मुद्रित होकर प्रकाशित हुईं तो स्वामीजीने उनका सन्तोषजनक उत्तर भी प्रकाशित कराया।

एक दिन भक्तोंके साथ वार्त्तालाप करते हुए, महाराजने प्रसंगवश कहा "आप मुझे इस समय अच्छा हृष्ट पुष्ट समझते हो, परन्तु मैं तो गङ्गातीरवास की अपेक्षा अब कृश हो गया हूँ। आप लोगोंकी हित-चिन्ताने मुझे दुर्बल बना दिया है।"

स्वामीजीका एक कर्मचारी, बाँके बिहारीलाल बड़ी चिड़चिड़ी प्रकृतिका मनुष्य था। वे उससे अतिकोमलतासे काम लेते थे। उसके सड़ियलपनपर खिजते नहीं थे। एक दिन वह नौकरी छोड़कर जाने लगा तो महाराजने उसके

वेतनके रुपयाके स्थान उसको नोट निकालकर दिया। उसने आवेशमें आकर कहा कि आपने हस्ताक्षर तो किये ही नहीं। स्वामीजीने अपना नाम लिख दिया। उसने अधिक ऊंचे स्वरमें कहा कि मेरा नाम भी तो लिखना था; महाराजने लिख दिया कि बिहारीलालको दिया। वह अवज्ञापूर्वक बोलाकि आपने बांके बिहारीलाल ठठेरा तो लिखाही नहीं। स्वामीजीने हँसकर कहा कि कुपित न हूजिए। यदि आप ठठेरा ही बना चाहते हैं तो लो यह भी लिख देता हूं!

एक प्रेमी जनने पूछा, "भगवन्! इसका क्या कारण है कि जहाँ नाच होता है, राग-रङ्ग होता है, हास-विलास होता है, वहाँ तो सारी सारी रात बैठे बीत जाती है और नींद नहीं आती, परन्तु जहाँ सत्सङ्ग हो, धर्म्मोपदेश हो वहाँ लोग थोड़ी देरमें ही ऊँघने लग जाते हैं।"

स्वामीजीने कहा, "हरि-कथा तो एक सुकोमल शय्या है। यदि उसपर नींद न आये तो और कहाँ आये? नृत्य-गीतादि उत्तेजक भाव आत्माके लिए काटोंका बिछोना है। उसपर निद्रा कैसे आ सकती है?"

लाहोरसे महाराज अमृतसरमें पधारे और सरदार भगवान्‌सिंहके मकानमें ठहरे। पण्डितोंने इस बार भी विरोध आरम्भ कर दिया। वे शास्त्रार्थ करनेके लिए उद्योग करने लगे। आर्य्य समाज अमृतसरकी ओरसे विज्ञापन द्वारा उनको शास्त्रार्थके लिए आहूत भी किया गया। शास्त्रार्थ करनेका स्थान सरदार भगवान्‌सिंहजीका मकान निश्चित हुआ।

उस दिन उस मकानमें कोई छः सात सहस्र मनुष्य एकत्र हो गये। नगरके सभी प्रतिष्ठित पुरुष भी उपस्थित हुए। आमने सामने दो चौकियाँ लगा दी गईं, जिससे वादी और प्रतिवादीको प्रश्नोत्तर करनेमें सुगमता हो और दूसरा कोई बीचमें गड़बड़ भी न कर सके।

नियत समयपर स्वामीजी तो जाकर एक कुर्सीपर विराजमान हो गये। परन्तु प्रतिपक्षियोंके आनेका कोई पता तक न था। बड़ी देरतक प्रतीक्षा करनेपर एक व्यक्तिने आकर कहा कि पण्डित लोग बाहर खड़े हैं और भीतर आनेके लिए आज्ञा माँगते हैं। उत्तरमें कहा गया कि वे लोग बिना सङ्कोच, अति प्रसन्नतासे पधारें। उन्हींकी तो प्रतीक्षा करते, यह समय होनेको आया है।

थोड़ी देरमें पण्डित-दल जय-जय-नाद गुँजाता हुआ भीतर प्रविष्ट हुआ। सात आठ पण्डित तिलक लगाये और बगलमें पुस्तकें दबाये, अकड़कर स्वामीजीके सम्मुख बैठ गये। इतनेमें ही उनके चेले चाँटोंने चारों ओरसे ईंट पत्थर फेंकने आरम्भ कर दिये। सभा-स्थानको धूलि-वर्षामें धूँआधार बना दिया। बड़ा भारी क्षोभ उत्पन्न हुआ। ऐसे समयमें, जब पुलिसके कान्स्टेबल प्रबंध करनेके लिए आगे बढ़े तो पण्डित देवता, एक एक करके, चुपकेसे चम्पत हो गये। उस समय, भगवान् दयानन्दके भक्त अपने भक्ति-भाजनका निरादर होते देखकर, कोपावेशसे शान्त न रह सके। वे चाहते थे कि उद्दण्ड और दुष्ट जनोंको वहीं दण्डित किया जाय, परन्तु स्वामीजीने उनको शान्ति प्रदान करते हुए कहा, कि "मत-मदिरासे उन्मत्त जनोंपर कोप नहीं करना चाहिए। हमारा काम एक वैद्यका है। उन्मत्त मनुष्यको वैद्य औषध देता है, न कि उसकी लीलापर उसे मारपीट करता है। निश्चय जानिये, आज जो लोग मुझपर ईंट, पत्थर और धूल बरसाते हैं वही लोग आपपर कभी पुष्प-वर्षा करने लग जायंगे।"

जब महाराज अपने डेरेपर पधारे तो एक भक्तने कहा, "महाराज! आज दुष्ट लोगोंने आपपर बहुत धूल-राख फेंकी और आपकाघोर अपमान किया।" महाराजने कहा, "परोपकार और परहित करते समय अपना मानापमान और पराई निन्दाका परित्याग करना ही पड़ता है। इसके बिना सुधार नहीं हो सकता। मैंने आर्य्यसमाजका उद्यान लगाया है। इससे मेरी अवस्था एक मालीकी है। पौधोंमें खाद डालते समय, राख और मिट्टी मालीके सिर पर भी पड़ जाया करती है। मुझपर धूलराख चाहे जितनी पड़े, मुझे इसका कुछ भी ध्यान नहीं। परन्तु वाटिका हरीभरी बनी रहे और निर्विघ्न फूले फले।"

महाराजका एक व्याख्यान मलवई बुङ्गेमें ब्रह्मचर्य्यपर हुआ। लोगोंपर उसका बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। इस बुङ्गेमें उनके और भी उत्तमोत्तम भाषण हुए। महाराजने एक भाषण ब्राह्मण-धर्म्मपर दिया। उसमें उन्होंने ब्राह्मणोंके अधःपतनके कारण ऐसे शब्दोंमें कहे और उनकी दुर्दशाका चित्र, कुछ इस प्रकार खींचकर दिखाया कि बीसियों ब्राह्मणोंकी आँखोंसे अनर्गल अश्रु-

धारा बह निकली । उनके, वज्रशिलासदृश कठोर मन मोम हो गये। उस दिन पण्डितोंने महाराजके अन्तरात्माको पहचाना । तत्पश्चात् सबने विरोध करना छोड़ दिया ।

एक दिन, स्वामीजी व्याख्यान देने जा रहे थे । बाजारमें एक प्रसिद्ध पण्डितने एक थालमें मिश्री और रुपये रख कर उनको नमस्कारपूर्वक भेंट की और स्तुति करने लगा कि आप तो कलिकालमें साक्षात् विष्णुका अवतार हैं। स्वामीजीने उसको आशीर्वाद देकर कहा कि मैं तो अगले दस अवतारोंका खण्डन करता हूँ और आप मुझे ग्यारहवाँ अवतार बना रहे हैं !

उस पण्डितकी दूकानपर एक ऊँचा सिंहासन बना हुआ था । महाराजने उससे पूछा कि यह क्या है? वह बोला भगवन्! कमा खानेकी चक्की है । कथा करनेका स्थान है । महाराजने कहा कि पण्डितजी ! यदि चक्की ही चलानी है तो सत्यकी चक्की चलाओ । आजीविकाका कोई विचार न करो । वह पुष्कल प्राप्त हो जायगी ।

कुछ भक्तजन रातके समय महाराजके डेरेपर ही सो जाया करते थे; इस प्रकार वे एक तो सत्संगका दुर्लभ लाभ उपलब्ध करते और दूसरे उनकी रक्षाका भी ध्यान रखते थे। एक दिनका वर्णन है कि एक भक्तने महाराजको सूचना दी कि आपने जो सिक्ख मतपर आक्षेप किये हैं उनसे चिढ़कर, कुछ निहङ्ग आपका वध करनेपर तुले बैठे हैं। रातको आपके पास बहुतसे महाशय सोते हैं इस लिए निहङ्गोंका दाँव नहीं चलता। यह सुनकर महाराजने वहाँ, भक्तोंका सोना बंद कर दिया और कहा कि हम अकेले ही रहेंगे । जिसकी आज्ञाका मैं पालन कर रहा हूँ वही परमेश्वर मेरा रक्षक है ।

स्वामीजीके एक व्याख्यानमें बहुतसे निर्मले आदि साधु आये और खड़े खड़े ही भाषण सुनने लगे। महाराजने उस समय कहा, सहस्रों भारतवासी पेट भर अन्न नहीं पाते, दाने दानेके लिए तरसते हैं। भूखके मारे बिल्ली-कुत्तेकी मृत्यु मरते जाते हैं । देशकी ऐसी शोचनीय दशामें धड़ाधड़ लोटेशाही और तूम्बेशाही बननेकी क्या आवश्यकता है ? इस समय तो प्रत्येकको परिश्रम करके आजीविका चलानी चाहिए ।''

पण्डित पोलोरामजीका महाराजसे बड़ा प्रेम था । उन्होंने एक दिन हाथ जोड़कर विनय की, "भगवन्! आर्य्य समाजमें केवल थोड़ेसे मनुष्य ही सम्मिलित हुए हैं । इतनी तुच्छ संख्या कोई महान् कार्य्य तो क्या ही कर सकेगी ।"

स्वामीजीने उत्तर दिया, "आप तो बहुत हैं; सहस्रों मनुष्योंको अपना संगी बना सकते हैं, परन्तु टुक मेरी ओर तो देखिये । जब मैंने कार्य्यका आरम्भ किया तो एकाकी और निस्सहाय था । आज परमात्माकी यह कृपा है कि आप जैसे सहस्रों सज्जन सच्चे हृदयसे मेरे साथी हैं, आर्य-धर्मपर न्योछावर होनेको समुद्यत हैं । पोलोराम, शुभ सबका चाहो और परिणाम परमात्मापर छोड़दो, निश्चय सफल हो जाओगे ।"

महाराजने उनसे यह भी कहा, "यदि बाल शास्त्री और विशुद्धानन्दजी मेरे साथी बन जाते तो हम तीनों सारे संसारको विजय कर लेते । शोक ! मेरे आत्मगत भावोंको जाने बिना उन्होंने मुझे भिन्न समझा, मेरा घोर विरोध किया । परन्तु मेरे हृदयमें जो मङ्गल-भावना है उसे ईश्वर ही जानता है ।"

एक दिनका वर्णन है कि पण्डित पोलोरामको किसीने एक नवीन कुरती दान की । वे उसे लिये श्री चरणोंमें आये और कहने लगे कि भगवन्, यह कुरती आज ही मुझे एक दाताने दी है । मेरा भक्ति-भाव मुझे विवश करता है कि मैं इससे आपके चरण पोंछकर, फिर यह आपके किसी सेवकको दे दूँ । स्वामीजी तो नहीं मानते थे परन्तु भक्त पोलोरामने प्रभु-पद-पद्म पकड़ लिये और कुरतीसे चरण-रज झाड़कर, वह एक नौकरको प्रदान कर दी ।

महाराजने अपार दयासे उनको उपदेश दिया कि "गायत्रीका जप प्रतिदिन किया करो । यह कल्याणकारी मंत्र है । मेरे पास यही वस्तु है जो मैंने आपको दे दी है ।"

एक दिन महाराजने उनको यह भी कहा, "जब शय्याशायी होने लगो तो प्रणव पवित्रका जप किया करो । जब तक नींद न आये पाठ करते रहो, यहाँ तक कि उसी नाम स्मरणमें ही सो जाओ । इससे उत्तमोत्तम लाभ होते हैं । वासनामय देह बदल जाती है ।"

महाराजने तालुका काग गिराकर ध्यान करना भी बताया। स्वामीजीने उनको प्राणायाम करना सिखाकर कहा कि इससे चित्त स्थिर होता है, बुद्धिकी वृद्धि होती है, बल बढ़ता है, रोग नष्ट हो जाते हैं।

पोलोरामजीने, एक दिन, महाराजके ध्यानारूढ अवस्थामें दर्शन किये। उस समय वे अचल समाधिस्थ थे। उनके अङ्गोंमें क्रियाका कोई सूक्ष्म चिन्ह भी दिखाई नहीं देता था

महाराजकी मूर्त्ति मनोमोहिनी थी। उनकी व्यक्तिका अद्भुत प्रभाव था। वे, रेशमी वस्त्र पहने अथवा कौपीनधारी, सब दशाओंमें प्रिय प्रतीत होते थे। उनका चलना, टहलना, उठना, बैठना आदि सब व्यापार प्यारा लगता था। वे सब क्रियाएँ करते मनको भाते थे। उनका कृपाकटाक्ष मनको मोह लेता था और उनकी प्रेम-भरी वाणी सबको तत्काल अपना लती थी।

उनके मुखमण्डलपर तेज, प्रभाव, उदारता, गम्भीरता, धैर्य्य, अनुग्रह और आशीर्वाद निवास करते थे। उनके रसीले नेत्रोंमें प्रेम, कृपा, आकर्षण, रस और माधुर्य था। उनका बर्ताव अति मृदु, सुकोमल और चित्ताकर्षक था। उनकी प्रकृति कोमल थी, सरल थी और निष्कपट थी। वे कभी किसी व्यक्तिकी समालोचना तथा निन्दापर कर्णपात नहीं करते थे। वे अपने प्रतिपक्षियोंको भी रुष्ट नहीं होने देते थे। प्रश्नोत्तरमें उनके भावोंपर सदा ध्यान रखते थे। वार्त्तालापमें, व्यवहारमें, कहने-सुननेमें और उपदेशमें वे इतने समदर्शी थे कि प्रत्येक छोटा बड़ा यही समझता कि महाराज मुझे ही अभिमुख कर रहे हैं; मुझे ही समझाते हैं; उनकी अधिक अनुग्रह, अधिक कृपा और अधिक प्रीति मुझपर ही है।

महाराज पूर्वकी यात्राके लिए समुद्यत थे इस लिए पंजाबी भक्त उनके प्रस्थान-दिवसका दुःखसे अनुभव करते थे। एक प्रेमीने विनयकी, "भगवन्! आपने इस प्रान्तमें आर्य्य-समाजरूपी उद्यान तो स्थान-स्थानपर लगा दिये हैं परन्तु आपके चले जाने पश्चात् इनकी रक्षा कौन करेगा ?"

महाराजने उत्तर दिया कि "इस प्रान्तके लोग उत्साह और साहसवाले हैं, श्रद्धालु और वीर हैं, मुझे इनपर बड़ी आशा है। मैंने अपने सकल सामर्थ्यसे भूमिको स्वच्छ बनाकर उद्यान लगाया है। खाद भी इसमें पढ़

गया है। जल भी सींचा जा चुका है। अब इसके मुरझाने और कुम्हलानेकी कुछ भी चिन्ता नहीं है। यह सब कुछ होते हुए भी, ऐसे सब कार्य भगवान्-भरोसे ही किये जाते हैं। इस लिए, आर्य्य समाजका भी वही रक्षक है, जो चन्द्र और सूर्यको चलाता और उनकी रक्षा करता है।"

श्री स्वामीजी श्रावण ब० १ सं० १९३५ को अमृतसरसे प्रस्थान करके लुध्याने पहुँचे और वहाँ लाला बंसीधरके उद्यानमें ठहरे। इस बार भी उनके सत्संगमें सभी मतोंके लोग बड़े उत्साहसे आते और प्रश्नादि पूछते रहे। श्रावण ब० ८ को लुध्यानेसे चलकर वे अम्बाले पहुँचे और श्रावण ब० ११ सं० १९३५ को वहाँसे रुड़कीको पधार गये।

आठवाँ सर्ग।

स्वामीजी महाराज, छः सात दिन कम डेढ़ वर्षपर्य्यन्त पंजाबमें रहे और इस प्रान्तके कोई बारह तेरह नगरोंमें घूमे। परन्तु उनका अधिक समय तीन चार नगरोंमें ही व्यतीत हुआ। वे लाहौर आदि नगरोंमें रहते हुए, बीच बीच अमृतसर आदि स्थानोंमें भी भ्रमणकर आया करते थे। यद्यपि, पञ्जाब प्रान्तका पूज्यपाद आनन्दकन्द श्री दयानन्दजीने थोड़े मासही दर्शन दिये और केवल बारह नगरोंको ही पदार्पणसे पुनीत किया परन्तु इस स्वल्प समयमें ही, उन्होंने इस प्रान्तके अधिवासियोंको इतना प्रभावित किया, उनको इतना जीवन दिया, उन्हें इतना कार्य्यपरायण बनाया और उनमें इतनी आत्मा और ऊष्मा भरी कि उसका दूसरा दृष्टान्त नहीं मिलता; उसकी तुलना नहीं की जा सकती।

श्रावण ब० १५ सं० १९३५ को महाराज रुड़की पधारे और देहलीनिवासी श्री शम्भुनाथजीके बङ्गलेमें ठहरे। उसी सायँको 'ईश्वरीय आदेश' पर उनका व्याख्यान हुआ। रुड़कीके महाविद्यालयके उपाध्याय और विद्यार्थी और शहरके लोग उस व्याख्यानमें आये और अतीव प्रसन्न हुए।

स्वामीजीके व्याख्यान प्रतिदिन होते थे। वे नियमके इतने पक्के थे कि वेद-भाष्यका गुरुतर कार्य-भार होते भी ठीक समय, व्याख्यान-स्थानपर पहुँच जाते। सभी लोग उनकी सुनियमतापर आश्चर्य करते।

श्रावण सु० ६ सं० १९३५ को महाराजके व्याख्यानका समय सायंके पाँच बजे था। श्री उमारावसिंहजी एक प्रतिष्ठित व्यक्तिको साथ लेकर सवा चार बजे श्रीसेवामें पहुँचे। महाराजने घड़ी देखकर कहा, "अभी सवाचार बजे हैं। मार्ग केवल पाच घण्टेका है इतना पहले जाकर क्या करेंगे ? मैं तो पाँच मिनिट ही पहले पहुँचना चाहता हूँ।"

स्वामीजीके समालोचनात्मक व्याख्यानोंसे कुछ एक मतवादी लोग भड़क उठे, परन्तु सामने आकर शास्त्र-चर्चा करनेका साहस किसीने न किया। प्रश्न पूछनेवाले सज्जन उनके स्थानपर भी जाकर संशय मिटाते थे।

अमेरिका-निवासी कर्नल अल्काटके पत्र स्वामीजीके पास पंजाबमेंही आ-गये थे। परन्तु उनका उत्तर अभीतक नहीं दिया गया था। पण्डित उमराव सिंहजीने उन पत्रोंका अनुवाद रुड़कीकी जनताको सुनाया। इससे लोग बड़े प्रोत्साहित हुए।

रुड़कीमें स्वामीजीने उन पत्रोंके उत्तर लिखे और उमरावसिंहजीसे उनका अँगरेजी अनुवाद कराकर बम्बई-निवासी चिन्तामणि द्वारा उन्हें अमेरिका भिजवा दिया।

एक दिन अपने आसनपर बैठे महाराज सत्संगियोंको उपदेश दे रहे थे कि भारत वर्षका ऐसा अभाग्य है कि यहाँके अधिवासी अपने धर्मकी और अपने कर्त्तव्य कर्मकी कुछ भी चिन्ता नहीं करते। उस समय उस सत्संगमें एक पंजाबी मज़हबी सिक्ख भी बैठा हुआ सुन रहा था। उसी समय एक मुसलमान डाकिया वहाँ आया। उसने उस मज़हबी सिक्खको पहचानकर ताड़ना की कि तू इन लोगोंमें क्यों आकर बैठा है? नीच! तुझे ध्यान नहीं आया कि मैं कहाँ बैठने लगा हूँ। उस डाकियेने उसे इतना डाँटा कि उसके आँसू निकल आये।

महाराजने डाकियेको ऐसा कहनेसे रोककर उस मज़हबी सिक्खको बड़े प्रेमसे आश्वासन दिया और कहा कि बिना सङ्कोच नित्य सत्सङ्गमें आया करो। हमारी दृष्टिमें ईश्वरकी सृष्टिके सारे मनुष्य समान हैं। यहाँ तुमसे कोई घृणा न करेगा। श्री वचनोंसे उत्साहित होकर वह प्रति दिन सत्संगमें आता और उपदेशामृत पान करता।

उन दिनों कन्हैयालाल नामके इञ्जनीयर रुड़कीमें रहते थे। उन्होंने श्री-स्वामीजीको कहा, "मादक वस्तुओंके सेवनसे ध्यान अत्युत्तम लगता है; चित्त इधर उधर भटकना छोड़ देता है।" स्वामीजीने उत्तर दिया, "यह तो ठीक है कि मादक वस्तुसे मत्त मनुष्यका मन एक ही विचारमें गड़ जाता है, परन्तु इससे वस्तुके यथार्थ स्वरूपका ज्ञान नहीं होता। यथार्थ ज्ञान तो एक दूसरेके साथ गुणोंकी तुलना करनेसे होता है। गुण-गुणीका ज्ञान और सत्यासत्यका विवेक मादक वस्तुओंके प्रभावमें होना असम्भव है।" स्वामीजी के कथनका कन्हैयालालजीने हार्दिक समर्थन किया।

एक दिन एक युरोपीय कर्नेल और कप्तान स्वामीजीके व्याख्यानमें आये। उस दिन स्वामीजी इञ्जीलकी समालोचना कर रहे थे। कर्नेल महाशय आक्षेप सुनकर उत्तेजित हो प्रश्न करने लगे। प्रश्नोत्तर-क्रममें, उनकी प्रकृतिमें उबाल तो अवश्य आया, परन्तु महाराजके उत्तर ऐसे युक्तिसङ्गत थे कि अन्तमें, उनके लिए मौनी बने बिना दूसरा कोई मार्ग न रहा।

मौलवी मुहम्मद कासिमने बड़ा लम्बा चौड़ा पत्र-व्यवहार किया, परन्तु सरलतापूर्वक सम्वाद करनेके लिए सामने न आये।

भोटूसिंह नामका एक वेदान्ती सज्जन स्वामीजीके पास आकर कहने लगा कि आप परा-विद्या नहीं जानते। यदि आपको परा-विद्या आती होती तो आप द्वैतवादका प्रचार कभी न करते। उस समय उसने अनेक उपनिषद्वाक्य बोलकर बताया कि यह जीवात्मा ही ब्रह्म है।

महाराजने कहा कि भोटूसिंह! क्या आप भी ब्रह्म हैं? उसने उत्तर दिया कि निस्सन्देह मैं ब्रह्म हूँ। फिर स्वामीजीने उससे पूछा कि इस चराचर सृष्टिको किसने रचा है? भोटूसिंहने कहा कि ब्रह्मने।

तब स्वामीजीने पास ही मरी पड़ी मक्खीको उठाकर उसके आगे रक्खा और कहा कि यदि आप ईश्वर हैं तो इसमें जीवन तो डाल दीजिए, जिससे आपके ईश्वरत्वका पूरा परिचय प्राप्त हो जाय। इसपर भोटूसिंह मूक और लज्जित हो गया।

स्वामीजी नियत समय पर व्याख्यान आरम्भ कर दिया करते थे। उपस्थिति-की प्रतीक्षा नहीं करते थे। मनुष्य थोड़े हों अथवा बहुत, वे समयके परि-

पालनमें नहीं चूकते थे। एक दिन, दैव-योगसे व्याख्यानके आरम्भके समय पण्डित बलदेव सहाय और उमरावसिंहजी, ये दो ही श्रोता उपस्थित थे। इन्होंने श्रीचरणोंमें बहुतेरी विनयकी कि भगवन्! दस बारह पलपर्यन्त प्रतीक्षा कर लीजिए। लोग अभी आ जाते हैं। परन्तु स्वामीजीने नहीं माना। ठीक समयपर भाषण आरम्भ कर दिया। उस दिनसे लोग इतने समयपालक हो गये कि व्याख्यानके नियत समयसे बहुत पहलेही आकर बैठ जाते।

श्री स्वामीजी सदैव सुप्रसन्न रहते थे। जब जाओ उनका मुखमण्डल सदा विकसित ही दिखाई देता था। उनकी भौंहोंमें खिचावट और उनके माथेपर बल कभी किसीने नहीं देखा। उनके दोनों होठोंपर, मन्द मुस्कानकी विद्युत् रेखा सदा अटखेलियाँ लेती रहती। कोई कितने ही कुवचन कहता उनकी चित्तवृत्ति स्वस्थानसे विचलित न होने पाती।

व्याख्यानके समय एक मनुष्यने पुकारकर कहा, "यह बावा ऊपरसे वेद वेद-पुकारता है, भीतरसे हिन्दुओंपर कैंचीका काम कर रहा है। ईसाई, भेस बदलकर हिन्दुओंके कर्म्म-धर्मको नष्ट भ्रष्ट करने आया है। यह पूरा कपट-वेषी पाखण्डी है। भोले भाले हिन्दू भाइयोंको भ्रमजालमें फँसानेके लिए संन्यासी बना फिरता है।" महाराज उसके वचनोंपर हँसतेही रहे उन्होंने उसकी बाल-लीलाको कुछ भी बुरा नहीं मनाया।

जिस कोठीमें महाराज विराजमान थे उसीके एक कमरेमें रुड़की आर्य्य समाजकी अन्तरङ्ग सभा हो रही थी। सभासद् अभी सभाके कार्य्योंको यथा-वत् परिपालन करनेमें प्रवीण न हुए थे। इस लिए उन्होंने श्रीस्वामीजीसे निवेदन किया कि सभामें पधारकर शुभ सम्मतिसे हमें कृतार्थ कीजिए। उन्होंने उत्तर दिया कि सभारूढ़ बने बिना मैं सभामें सम्मति नहीं दे सकता। इसपर तत्काल उन्हें प्रतिष्ठित सभासद् बनाया गया। उस समय स्वामीजीने परमोप-योगिनी सम्मतिके साथ उपयुक्त उपदेश दिया, "सभामें हठ और दुराग्रह-नहीं करना चाहिये। अपने पक्षकी पुष्टिमें चाहे जितनी युक्तियाँ दो, परन्तु प्रकृति और हृदयमें ऐंठन न आने दो। किसी बातको पड़ककर इतना नहीं खैंचना चाहिए। कि परस्परके भ्रातृ-भावका तारही टूट जाय। बहुमतानुसार जो मत उत्तीर्ण हो जाय उसपर फिर हठ नहीं करना चाहिए। अन्तरङ्ग सभाके कार्य्योंको

प्रकाशित करना उचित नहीं है। वह मनुष्य अतीव तुच्छ और ओछा होता है जो किसी गुप्त सम्मतिको गोपन नहीं कर सकता। ऐसा मनुष्य विश्वास-पात्र भी नहीं रहता।"

रुड़कीमें एक वैद्य, थानासिंहजी निवास करते थे उन्होंने स्वामीजीसे प्रार्थना-की कि महाराज! जब आप योग-विद्याको इतना प्रबल मानते हैं तो हम आर्य्योंको उसकी शिक्षा क्यों नहीं देते? महाराजने उत्तर दिया कि पहले दूसरी विद्याओंको उपलब्ध कर लीजिए, फिर इसकी भी बारी आ जायगी।

रुड़कीमें धर्म्मोपदेश देनेके अनन्तर महाराजने वहाँसे भादों ब० ८ सं० १९३५ को प्रस्थान किया और अगले दिन वे अलीगढ़ पहुँच गये। ठाकुर मुकुन्द-सिंहजी तथा भूपालसिंहजी आदि सज्जन श्रीमान् मूलसीकी कोठीमें ठहरे हुए थे। उन्होंने महाराजको भी अपने पास ही ठहराया। यहाँ उनके दर्शन करनेके लिए बम्बईसे श्रीयुत् हरिश्चन्द्र चिन्तामणि और श्यामजी कृष्णवर्म्मा आये। उनसे धर्म्मादि विषयोंपर बड़ी देरतक वार्त्तालाप होता रहा।"

अलीगढ़में स्वामीजीसे एक सज्जनने पूछा, महाराज! अन्य मतके लोगोंके हाथका पका भोजन खाना अच्छा है अथवा बुरा?" उन्होंने उत्तर दिया कि "ऐसा करनेमें न तो कोई भलाई ही है और न कोई बुराई।"

स्वामीजी अलीगढ़से प्रस्थानकर भादों ब० १३ सं० १९३५ को मेरठमें सुशोभित हुए और लाला दामोदर दासकी कोठीमें ठहरे। उनके शुभागमनका समाचार सारे नगरमें कानोंकान फैल गया। धर्म्म-जिज्ञासु आने लगे। उसी दिन उसी कोठीके बराण्डेमें उनका पहला भाषण हुआ। अगले दिन, लोगोंकी प्रार्थनापर, दूसरा व्याख्यान राय गणेशीलालकी कोठीपर हुआ। इस कोठीमें कई दिनतक स्वामीजीके व्याख्यान होते रहे। महाराजने घोषणा कर दी थी कि "मेरे कथनपर जिसे, जो भी शङ्का हो, वह उसे व्याख्यानकी समाप्तिपर उपस्थित करे। नियत समयपर उत्तर अवश्य दिया जायगा।" वे एक दिन शङ्का-समाधानके लिए ही नियत कर देते थे।

श्रीमान् लाला रामसरन दासजीके विनीत आग्रहसे महाराजने पाँच अगस्तको उनके मकानपर उपदेश दिया। वहाँ छः दिनतक व्याख्यानवर्षा होती रही। उन व्याख्यानोंमें पुराणोंपर अतिमनोरञ्जक समालोचना हुई।

सं० १९३५ आश्विन ब० ३ से ११ तक श्री छोटेलालजीकी कोठरीपर सत्संग लगते रहे। वहाँ महाराजाने अच्छी तरहसे पाखण्ड-खण्डन किया और ऋग्वेदके कुछ सूक्त सुनाकर लोगोंको मोहित कर लिया।

मेरठकी धर्म्म-सभाने स्वामीजीसे ये प्रश्न पूछेः—१ चार धाम और सप्तपुरी आदि नगरों और ग्रामोंमें, जो उन्नत-शिखर मन्दिर हैं और उनमें जो देव-मूर्तियाँ हैं उनका पूजन परम्परासे होता चला आता है। सुना है कि आपको इन बातोंमें सन्देह हो गया है। यदि सचमुच आपको सन्देह है तो उनकी निवृत्ति स्मृतियोंके प्रमाणोंसे कर लेना और यदि संशय न हो तो सूचना दीजिएगा।

२. गङ्गा-नदीके श्रेष्ठ और पूज्यतमा होनेमें प्रमाण दीजिये। यदि आप उसके ऐसा होनेमें सन्देह करते हैं तो वह सन्देह प्रकट कीजिए।

३. जितने अवतार हुए हैं उनको किसने अवतार बनाया और किसने अतुल सामर्थ्य दिया?

स्वामीजीने इनका जो उत्तर दिया उसका क्रमपूर्वक सार यह हैः—

१. "मुझे पाषाणादिकी प्रतिमाओंके पूजनमें सन्देह नहीं है; मैं तो मूर्ति-पूजाको निश्चयरूपसे वेद विरुद्ध मानता हूँ। किसी वेद-शास्त्रमें प्रतिमा-पूजनका विधान नहीं है। किसी भी ऋषि-मुनिने मूर्तिका पूजन नहीं किया और नहीं ऐसा करनेके लिए किसीको उपदेश ही दिया। वेदमें कहा है कि 'न तस्यप्रतिमास्ति' पवित्र परमेश्वरकी प्रतिमा नहीं है। जो लोग जड़ पदार्थोंको परमेश्वर मानकर पूजते हैं उनके लिए कहा गया है 'अन्धं तम प्रविशन्ति'—आर्थात् वे अविद्यादि घोर दुःख-अन्धकारमें फँस जाते हैं। इस लिए वेद-आज्ञानुसार एक परमेश्वरकी ही उपासना करनी चाहिए।"

'अब जड़-पूजनके भी विरुद्ध युक्तियाँ दी जाती हैं। आप यदि कहें कि हम मूर्तियोंको देव तो नहीं मानते, किन्तु देवकी भावना उनमें करते हैं इस लिए फल मिल जायगा। तो हम पूछते हैं कि आपकी वह भावना सच्ची है अथवा झूठी? यदि उसे सच्ची मानते हो तो यह बताओ कि सारा संसार जो सुखकी भावना करता है, वह पूर्ण क्यों नहीं होती? यदि प्रतिमामें देव भावसे स्वर्ग मिलता है तो पानीमें दूध और मिट्टीमें मिश्रीका भाव करनेसे

भी कार्य-सिद्ध होनी चाहिए। यदि भावना झूठी करते हो तो मिथ्या-व्यवहारवाले मनुष्यकी बात विश्वासके भी योग्य नहीं रहती। यदि ईश्वरको सर्वव्यापक मानकर मूर्तिमें पूजते हो तो वह परमात्मा पुष्पोंमें भी तो पाया जाता है। उनको तोड़कर मूर्तिपर क्यों चढ़ाते हो? सर्वव्यापकको एक स्थानमें मानकर पूजना उसकी व्यापकताके साथ उपहास करना है।'

'यदि यह मानते हो कि मूर्ति-पूजा परमेश्वरके ज्ञानके लिए एक साधन है तो यह कथन भी अयुक्त है। गुणोंसे गुणीका ज्ञान होता है। मूर्तिमें तो ईश्वरका एक भी गुण नहीं है।"

२. दूसरे प्रश्नके उत्तरमें महाराजने कहा कि "प्रथम तो आपका प्रश्न ही विचित्र है। आप मुझसे पूछते हैं कि गङ्गानदीके श्रेष्ठ और पूज्य होनेका प्रमाण दीजिए। इससे दो बातें निकलतीं हैं—प्रथम तो यह कि आपको गङ्गाके श्रेष्ठ और पूज्य होनेमें सन्देह है; दूसरे सन्देह नहीं है, तो आपको उसके श्रेष्ठ और पूज्य होनेमें कोई प्रमाण नहीं मिलता, इस लिए मुझसे प्रमाण पूछते हो।'

'मुझे तो इस बातका पूर्ण निश्चय है कि दूसरी सब नदियोंसे गङ्गाजल उत्तम है। साथ ही, मैं यह भी निश्चित मानता हूँ कि गङ्गामें स्नान करने अथवा गङ्गा-जल पान करनेसे मुक्ति नहीं होती; इससे पाप नहीं धुलते।'

श्री स्वामीजी महाराज श्रीकृष्णादि महापुरुषोंको निर्दोष मानते थे। सत्यार्थ-प्रकाश के ग्यारवें समुल्लासमें उन्होंने लिखा है कि श्रीकृष्णजीका उत्तम वर्णन महाभारतमें मिलता है। महाभारतमें ऐसी कोई बात नहीं मिलती, जिससे पता लगे कि श्रीकृष्णने जन्मसे मरणपर्यन्त कोई भी पापाचरण किया था। पुराण कर्त्ताओंने ही उनपर मिथ्यरोप किये हैं। बारहवें समुल्लासमें उन्होंने लिखा है कि श्रीकृष्णादि महापुरुष धर्म्मात्मा और महात्मा जन थे।

३. धर्म्म-सभा, मेरठके तीसरे प्रश्नका उत्तर देते हुए महाराजने लिखा था कि जिनको आप परमेश्वरका अवतार कहते हैं वे ईश्वरावतार तो नहीं, किन्तु बड़े उत्तम पुरुष थे। वे परमेश्वरकी आज्ञामें चलनेवाले थे। वे सद्धर्म्म और न्याय आदि गुणोंसे अलंकृत और वेद-शास्त्रके पूर्ण विद्वान् थे। उन ऐसा उत्तम पुरुष न पहले हुआ और न अब है।

"आप उन उत्तम पुरुषोंको ईश्वरावतार मानते हैं, यह आपकी भारी भ्रान्ति है । जो अजर, अमर और सर्वव्यापक है वह अवतार धारण नहीं कर सकता । जो सर्वत्र परिपूर्ण है उसे अवतार धारण करनेकी आवश्यकता ही क्या है ? अवतार लेनेसे वह सर्वत्र परिपूर्ण नहीं रह सकता । यदि कहो कि दुष्टोंको दण्ड देनेके लिए परमेश्वर देह धारण करता है तो यह भी अयुक्त है। जो बिना देहके सृष्टि उत्पत्ति, पालना और प्रलय करता है, क्षुद्र कार्य्यके लिए उसके काया-धारणकी कल्पना करना कितना तुच्छ और मिथ्या विचार है । "

फिर महाराजने कहा, " जो आपने पूछा कि अवतारोंको कौन बनाता और सामर्थ्य देता है, उसका उत्तर यही है कि परमेश्वर ही सबका रचने वाला है । वही बल-भण्डार सबको सामर्थ्य प्रदान करता है । बड़े शोककी बात है कि आप लोग श्रीरामचन्द्रजी और श्रीकृष्णजी आदि उत्तमपुरुषोंको परमेश्वरका अवतार मानकर भी उनका घोर अपमान करते हो । उनकी मूर्त्तियोंको बाजार और गलीमें घुमाकर भीख मँगाते हो । उनके स्वांग निकालकर तो, और भी अधिक निरादर प्रदर्शित करते हो। रामादि महापुरुषों और सीतादि सतियोंके जब आप स्वांग निकालते हैं तो परमतवाले उन्हें देखकर हँसी उड़ाते हैं । अश्लील कटाक्ष और संकेत करते हैं । दुकानवालोंके लिए तो यह रास मनो-रञ्जनका एक साधन है, परन्तु इससे आर्य्य जातिके महापुरुषकी, दूसरोंकी दृष्टिमें, बड़ी अवहेलना होती है ।'

' माखन-चोर आदिके स्वांग भी कुछ कम अपमान जनक नहीं । अपने देशके जो राजेमहाराजे लाखों मनुष्योंका शासन, पालन, रक्षण करते थे; जो महापुरुष आजीवन परमात्माकी आज्ञामें रहे; जो सत्यमें, धर्म्ममें और न्यायमें अद्वितीय थे; महाशोक है कि आप लोग उनके स्वांग बनाकर पैसे पैसेके लिए हाथ पसारते हो और साथ ही अपनेको उन महात्मओंका भक्त प्रख्यात कर रहे हो । हा ! आप तो उनके स्वांग भरते, लीला करते और उनको नाचते तथा माँगते देखते हो, परन्तु मेरा हृदय तो इस वर्णनसे ही विदीर्ण हो रहा है । इस समय शोक-सागर इतना उमड़ पड़ा है और जी इतना भर आया है कि कुछ अधिक वर्णन करना वाणीकी सामर्थ्यसे बाहर

है। केवल इसीको पर्याप्त जानिए कि ईश्वरका अवतार नहीं होता। प्रमाणके लिए एक मन्त्र भी उपस्थित करता हूँ:—

सपर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरं शुद्धमपापविद्धम्।
कविर्मनीषी परिभूःस्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान्
व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः।"

मौलवी अबदुल्ला महाशयने धर्म्म-चर्चा करनेके लिए स्वामीजीसे पत्रव्यवहार किया। स्वामीजीने उनकी प्रार्थनाको तुरन्त स्वीकार कर लिया और लिखा भेजा कि 'धर्म्म-चर्चा लेखबद्ध ही होगी'। मौलवी महाशयने लेखबद्ध वाद करना स्वीकार न किया।

महाराजने अपने प्रभावशाली व्याख्यानोंमें अमूलक मतोंकी पोल खोलकर सर्व साधारणको दिखला दी। उनकी काल्पनिक कथाओंके अच्छे चित्र खींचे। असम्भव बातोंपर मनोगम टीका टिप्पणी चढ़ाई। इससे पौराणिक दलमें हलचल मच गई। खण्डनकी प्रबल पवनसे पौराणिक सागर झकझोरे खाने लगा। पण्डित लोग स्थान स्थानपर सभा करते और हस्ताक्षरहीन पत्र भेजकर महाराजको अपनी सभामें बुलाते। परन्तु स्वामीजी यही उत्तर देते कि किसी प्रामाणिक पुरुषके हस्ताक्षरयुक्त पत्र लाइए; मैं शास्त्रार्थके लिए चाहो जहाँ चला चलता हूं! बहुतेरे मनुष्य इधर उधर गये; दोनों ओरके प्रतिष्ठित पुरुषोंने मिलकर बड़े लम्बे चौड़े नियम भी बनाये, परन्तु परिणाम फिर भी वही रहा। स्वामीजीके पास उधरसे जो भी पत्र आया वह हस्ताक्षरशून्य ही आया। अन्तमें महाराजने सारा पत्र-व्यवहार जनताको सुनाकर व्यर्थके समयनाशको बंद कर दिया।

महाशय बेनीप्रसादजी श्रीसत्संगमें प्रतिदिन जाया करते थे। उन्होंने एक दिन पूछा, "भगवन्! गङ्गा-माहात्म्य, तिलक आदिका लगाना सब योंही प्रवृत्त हो गया है अथवा इसका कोई कारण भी है?"

स्वामीजीने उत्तर दिया, "माहात्म्य तो सारे निर्मूल हैं, परन्तु ये गङ्गादि स्थान हमारे पूर्वज महर्षियोंके आश्रम-स्थान थे। इन पवित्र और स्वच्छ प्रदेशोंमें वे तप, जप और योगानुष्ठान किया करते, विद्यार्थियोंको ज्ञान-दान

देते। सांसारिक कार्य्योंके भूरि भारसे परिश्रान्त और अशान्त जन इन स्थानोंमें जाकर विश्राम किया करते थे। तपोधन महात्माओंके दर्शनोंसे उनको आत्मिक शान्ति भी लाभ हो जाती। बहुतसे जन दुर्वासनासे मलिन मनको उन सन्तोंके सत्संगमें बैठकर शुद्ध कर लेते। परन्तु आज वे बातें नहीं रहीं। अब तो ये स्थान स्वार्थ-परायण लोगोंसे घिरे हुए हैं।"

'तिलक लगानेका भी कोई पुण्य नहीं है। यह रीति व्यर्थमें ही चल गई है। हाँ, यह बात तो ठीक है कि पुरातन आर्य्य लोग दोनों भौहोंके मध्यमें ध्यान किया करते थे। अपने शिष्योंको भी इसकी शिक्षा देते थे. इस स्थानमें ध्यान करनेसे लाभ भी महान् होता है। त्रिकुटीके अभ्यासियोंमेंसे किसी किसीको बिन्दुसमान उज्ज्वल ज्योति-कण दीखने लगता है। कोई तेजोमय चक्राकारको देख पाता है। कोई अर्द्धचन्द्राकार तथा पूर्णचन्द्राकार प्रकाश-पुंजके दर्शन करता है और किसीको दीप-शिखाके आकारकी ज्योति दिखाई देती है। ये सब योग-चमत्कार हैं; आत्मिक उन्नतिके चिन्ह हैं। कोरे तिलकोंका इनके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है।"

बेनीप्रसादजीने विनय की, "महाराज! आप परमात्माकी सिद्धि युक्तियोंसे तो कर देते हैं, परन्तु युक्तियाँ सदा बदलती रहती हैं। जो युक्ति आज अकाट्य कही जाती है कोई आश्चर्य नहीं कि कालान्तरमें वह किसीके कर्णपात करने योग्य भी न रहे।"

महाराजने उत्तर दिया कि "हम निरे बौद्ध नहीं हैं, जो युक्तियोंके बिना अन्य किसी प्रमाणका आदर ही न करें। हमारे सर्वोपरि प्रमाण वेद हैं। उनमें ईश्वर-विश्वास की आज्ञा है। ईश्वरकी सिद्धिमें प्रत्यक्ष प्रमाण भी है।'

'ईश्वर सबके समीप है और प्रतिदिन सबको उपदेश देता है। जो लोग अविद्यान्धकारमें ग्रस्त हैं वे उसको नहीं समझते। सोचिये, एक मनुष्य चला जा रहा है। एक मूल्यवान् वस्तुको मार्गमें पड़ी देखकर उसका जी ललचा जाता है। उसे उठानेके लिए ज्यों ही वह हाथ आगे बढ़ाता है तो उसे, उसके भीतरसे उपदेश मिलता है; ऐं! ऐसा काम मत करना, यह महा अधम कर्म है, इसका फल अति दुःखदायक होता है। ऐसे ही, जब कोई मनुष्य परोपकारादि शुभ कर्म करने लगता है तो उसमें उत्साह तथा हर्षकी

मात्रा बढ़ जाती है । उसके अन्तःकरणमें यह ध्वनि होने लगती है कि यह कर्म अत्युत्तम और सुखमय फलका देनेवाला है। यह दोनों प्रकारका उपदेश सबके अन्तरात्मा—परमात्मा—की ओरसे होता है । यह देववाणी सबके हृदयोंमें गूंजायमान बनी रहती है । परन्तु इसे सुनते और समझते वे ही हैं जिनके अन्तःकरणसे कलिमल कालिमाका कलङ्क दूर हो गया है । ईश्वर-प्रत्यक्षतामें यही प्रबल प्रमाण है । ”

महाशय बेनीप्रसाद उन दिनोंमें तरुण थे । एक दिन वे अपने छः सात मित्रों-सहित श्रीसेवामें गये। रातके नौ बजेका समय था। उन्होंने महाराजसे निवेदन किया कि भगवन्! आज हम आपके पाँव दबाना चाहते हैं। स्वामी-जी ताड़ गये कि लोग, पैरदबानेके मिस मेरा बल देखना चाहते हैं। वे मुस्कराते हुए बोले कि पाँव पीछे दबाना, पहले आप सब मिलकर हमारे पाँवको भूमिपरसे तो उठाओ । स्वामीजीने पाँव पसार दिया और वे सात आठ युवक, सारा बल लगाकर भी, उसे न उठा सके । अन्तको पानी पानी होकर हाँपने लगे !

एक दिन अनेक मुसलमान सज्जन तथा पादरीगण स्वामीजीके साथ ईश्वरी-य आदेशपर सम्वाद करने आये। सबने स्वमतानुसार युक्तियाँ दीं और अपनी धर्म्म-पुस्तकोंको ईश्वरका आदेश बताया ।

उत्तर देते समय महाराजने अन्य मतवादियोंकी युक्तियोंका भली भाँति खण्डन किया, वेदके पक्षमें अटूट युक्तियाँ दीं, और कहा, “संस्कृत भाषा भी एक स्वाभाविक और ईश्वर-प्रदत्त भाषा है । इसके स्वरोंको लीजिए । इनकी ध्वनि सब देशोंमें पाई जाती है । सब प्रचलित भाषाओंमें इसीकी अक्षर-माली नैसर्गिक है । छोटासा बच्चा भी अ, इ, उका उच्चारण बिना सिखाए करने लग जाता है । क, ख' आदि व्यञ्जन अक्षरोंका उच्चारण भी ऐसा ही सुगम और स्वाभाविक है । जो भाषा स्वाभाविक ध्वनिके अक्षरोंसे बनी है वही भाषा स्वाभाविक और आदिम होनी चाहिए । ईश्वरीय आदेश भी उसी भाषामें होना उचित है । ”

बख्तावरसिंहजी उन दिनों मेरठमें सबजज थे । वे प्रतिदिन महाराजकी सेवामें आया करते थे । एक दिन, वे अपने एक युवक बन्धुके साथ दर्शनार्थ

आये। महाराजने जज महाशयसे कहा, "इस युवककी आयु सोलह वर्षकी प्रतीत होती है। इतनी छोटी आयुमें आपने इसका विवाह क्यों किया है? आप पढ़े-लिखे सज्जन हैं। यदि आप लोग ही इस कुप्रथाको न हटायँगे तो आर्य्य जातिका सुधार कैसे होगा? यह बालविवाह आपकी जातिके जीवन जड़में घुन बनकर उसका सर्वनाश कर रहा है। अब जो होना था सो तो हो गया, परन्तु पचीस वर्षके पहले, इसकी वधूका द्विरागमन न कराना।"

स्वामीजीका परमात्मापर परम विश्वास था। उसीके भरोसे कार्य्य करते और निर्भय होकर विचरते थे। मेरठ छावनीका एक सेठ स्वामीजीका घोर विरोधी बन गया। स्वामीजीपर छापा मारनेके लिए उसने छः सात गूजर सुसज्जित कर लिये। इस बातका पता शिवलाल आदि महाशयोंको भी लग गया। उन्होंने यह समाचार श्रीस्वामीजीको सुनाकर कहा, भगवन्! ऐसे दुष्ट लोगोंसे सावधान रहना उचित है।" स्वामीजीने उत्तर दिया कि "आप मेरी चिन्ता न कीजिए। मैं तो परब्रह्मपर ही निर्भर करता हूँ। वही मेरा एक मात्र रक्षक है।"

स्वामीजीने श्राद्ध-खण्डनपर, मेरठ नगरमें, एक व्याख्यान दिया। इससे वहाँके ब्राह्मण और आचार्य्य बहुत चिढ़े। जिस मार्गसे स्वामीजीको अपने डेरेपर जाना था उसपर वे लाठियाँ लेकर स्थान-स्थानपर बैठ गये और कहने लगे, "आज दयानन्द इधरसे निकले तो सही, हम उसे जीता न जाने देंगे।"

इस गोलमालका भेद, स्वामीजीके प्रेमियोंको भी मिल गया। व्याख्यान-के पश्चात् जब महाराज चलने लगे तो भक्तोंने विनय की, "भगवन्! कुछ देर ठहर जाइए। पहले प्रबन्ध कर लेने दीजिए। आज कुछ उपद्रवी जन मार्गमें लट्ठ लिये बैठे हैं गड़बड़ करना चाहते हैं।"

वे हँसते हुए बोले, "वे लोग कुछ नहीं कर सकेंगे। ऐसी घटनाओंसे मैं सर्वथा निर्भय हूँ। मैंने एक सभ्यको समय दे रक्खा है, इस लिए ठहर नहीं सकता।"

महाराज उस सारी गलीमें गम्भीर गतिसे चलते हुए उसके दूसरे छोरपर पहुँच गये परन्तु किसीको 'ओं' तक कहनेका साहस न हुआ। वे उपद्रवी एक दूसरेका मुँह ताकते ही रह गये।

पंडित गौरीशंकरजी ज्योतिषी, सज्जन मित्रों-सहित स्वामीजीकी सेवामें गये। उस समय मध्यान्हकाल था। स्वामीजीने उनसे कहा कि मैं पच्चीस मिनटतक नींद लेनेके उपरान्त आपसे वार्त्तालाप करूंगा। इतनी देर आप सुखपूर्वक विराजिये। वे सब कमरेसे बाहर बैठ गये। थोड़ी देरमें स्वामीजीका प्रेमी एक तहसीलदार दर्शनार्थ आया। गौरीशङ्करजीने उसे कहा कि महाराज को पच्चीस मिनटतक सोना है। उनको सोये पन्द्रह मिनट हुए हैं। दस मिनट और बीतनेपर वे अवश्य जाग उठेंगे। इस लिए आप भी बैठ जाइए। ठीक पच्चीस मिनट बीतनेपर महाराजकी निद्रा भङ्ग हो गई और वे जाग उठे। इससे उन महाशयोंको बड़ा ही आश्चर्य्य हुआ।

गौरीशङ्करसे महाराजने वार्त्ता-विनोदमें पूछा, "आप किस प्रयोजनके लिए यहाँ आये हैं?" उसने निवेदन किया, "भगवन्! मैं ज्योतिषी हूँ। कुछ प्राप्तिकी लालसासे ही यहाँ आया हूँ।" महाराजने हँसते हँसते कहा, "यहाँ आते समय, यदि आपको यह ज्ञान था कि कुछ प्राप्ति हो जायगी तो आपका ज्योतिष-ज्ञान मिथ्या है; क्योंकि मैं आपको कुछ भी न दूँगा। यदि आपका ज्योतिष यह बताता था कि कुछ प्राप्ति नहीं होगी तो आप व्यर्थ-कार्यकर्त्ता सिद्ध हो गये। तब इस बातका क्या प्रमाण है कि आप ज्योतिष-विद्या की भी व्यर्थ ही बातें नहीं बताते फिरते?" गौरीशङ्करजीको इसका कुछ भी उत्तर न सूझा।

एक दिन महाराजकी सेवामें नहरके जिलादार श्री सेवारामजी आये। जब वे जाने लगे तो उन्होंने स्वामीजीसे निवेदन किया, "भगवन्। यदि मैं नहर-विभागमें डिपटी हो गया तो पहले मासका वेतन वेदभाष्यके लिए अर्पण करूँगा।" कुछ कालान्तरमें उनकी मनःकामना पूरी हो गई। अभी उन्होंने अपने इष्ट-मित्रोंको भी इसका समाचार नहीं दिया था कि स्वामीजीका पत्र उन्हें प्राप्त हुआ; जिसमें महाराजने उन्हें नवीन पद,प्राप्तिकी बधाई देते हुए उनका प्रण भी स्मरण कराया। इसपर सेवारामजीको बड़ा आश्चर्य हुआ कि स्वामीजीको इस बातका पता कैसे लग गया।

एक दिन अनेक, तिलक-मालाधारी ब्राह्मण, स्वामीजीके निकट बैठे थे। उसी समय एक भद्र पुरुषने आकर उनको नमस्कार किया और कुशल पूछा।

महाराजने उत्तर दिया कि "हमें कुशल कहाँ?" भक्तने फिर पूछा, "भगवन्! क्या कोई मानस खेद है?"

उस समय महाराजने एक लम्बी साँस भरकर कहा, "इससे बढ़कर खेद और क्या हो सकता है कि ये ब्राह्मण, जो पास बैठे हैं अपने कर्त्तव्य कर्मसे कोसों दूर हैं। बाहरी आडम्बर और पाखण्डसे अधिक प्यार करते हैं। धर्म्मके प्रचारका इन्हें ध्यानतक नहीं। आर्य्य सन्तानकी दीन हीन दशापर इनको टुक दया नहीं आती!"

महाराजकी प्रकृति कोमल थी। उनका हृदय इतना मृदु था कि आर्य्य जाति तथा आर्य्य धर्म्मकी दुःख-कथा और दुर्दशाका वर्णन करते समय उनका जी भर आता था और नेत्र अश्रु-मोचन करने लगजाते थे।

महाराजके मेरठमें विराजनेसे नगरमें बड़ा धर्म्मान्दोलन हुआ। लोगोंमें सत्यकी जिज्ञासा प्रकट हो गई। अनेक व्यक्तियोंने अपने जीवनोंको शुद्ध किया। वहाँ आर्य्य समाज भी स्थापित हो गया। लाला रामसरणदासजी और श्री छेदीलालजी प्रभृति, अनेक प्रतिष्ठित पुरुष, उसके सभासद बन गये।

मेरठसे चलकर कोई आश्विन सु० १२ सं० १९३५ को महाराज देहली आये। सब्ज़ मण्डीमें लाला बालमुकुन्द केसरीचन्द्रके उद्यानमें विराजमान हुए। विज्ञापनोंद्वारा सारे नगरमें श्री उपदेशोंकी सूचना दे दी गई। शाहजीके छत्तेमें उनके प्रभावजनक व्याख्यान हुए।

स्वामीजी यज्ञोंमें और यज्ञोपवीत आदि संस्कारोंमें गायत्री-पुरश्चरण कराया करते। बहुतसे विद्वान् मिलकर बारह चौदह दिनतक गायत्री जप करते। यजमानसे भी यह पवित्र जप कराया जाता। जयपुरके ठाकुर श्री रणजीतसिंहने एक बड़ा भारी यज्ञ करनेका सङ्कल्प किया था। इसपर महाराजने उन्हें कह रक्खा था कि हमारे कथनानुसार गायत्रीका अनुष्ठान कराइएगा। उस चिर-कालिक सङ्कल्पको सफलीभूत बनानेके लिए, ठाकुर महाशयने, जोशी रामस्वरूपको श्री स्वामीजीकी सेवामें भेजकर, उन्हें यज्ञ करानेके लिए आमन्त्रित किया। स्वामीजीने देहलीसे जयपुर जाना स्वीकार कर लिया।

स्वामीजीके दर्शन करने और उन्हें दानापुर ले जानेके लिए भोलानाथ और मक्खनलालजी, दो सभ्य आये और नमस्ते कहकर महाराजके पास बैठ गये।

उनके नम्र निवेदनको सुनकर स्वामीजीने उत्तर दिया कि 'यहाँसे तो मैं जयपुर जानेका वचन दे चुका हूं । फिर जब पुष्कल अवकाश होगा तो आपके नगरमें अवश्य आऊँगा ।' वेद-भाष्यपर बातचीत करते हुए उन्होंने कहा कि यह कार्य मैं आप लोगोंके लिए ही कर रहा हूं; मेरे शरीर छोड़नेके अनन्तर यह अतिशय उन्नति साधन होगा ।

महाराज देहलीमें आर्य्य समाजकी शुभ स्थापना करके कार्तिक शुक्ला एकादशी अथवा द्वादशी सम्वत् १९३५ को जयपुरको प्रस्थानकर गये । जब वे जयपुरके रेलवे स्टेशनपर पहुँचे तो वहाँ जोशी रामस्वरूपजीको उपस्थित पाया । उन्होंने सारा सिर मुण्डवाया हुआ था । स्वामीजीने कारण पूछा तो जोशीजी अविरल आँसू बहाते बोले"भगवन् ! अति शोक है कि ठाकुर रणजीतसिंहजीका देहान्त हो गया है ।"

स्वामीजीने, उस समय उन्हें कहा कि ऐसे समयमें मैं जयपुर नहीं जाता। आप ठाकुर महाशयके बन्धुओंको मेरी ओरसे आश्वासन दीजियेगा और कहियेगा कि अजमेरसे लौटते समय, मैं जयपुर अवश्य आऊँगा ।

महाराज वहाँसे अजमेरका टिकट लेकर गाड़ीमें बैठ गये और कार्त्तिक शुक्ला त्रयोदशी १९३५ को, दिनके तीसरे पहर, अजमेर जा पहुँचे । कई प्रतिष्ठित सज्जन, उनके स्वागतके लिए, रेलके स्टेशनपर विद्यमान थे । स्वामीजी सरदार भक्तसिंह इञ्जनीयरकी बग्घीमें बैठकर, सेठ रामप्रसादके उद्यानमें गये, वहीं विश्राम लिया । कार्त्तिक पूर्णिमाको पुष्करजीमें मेला हुआ करता है । महाराज उसपर धर्म्म-प्रचार करना चाहते थे इस लिए उसी दिन अजमेरसे चलकर महाराज जोधपुरके घाटपर, ईश्वरनाथजीके दरीचेमें विराजे । आगामी दिन विज्ञापनद्वारा सबको धर्म्मप्रचारकी सूचना देकर सत्संग लगाया गया। महाराजके धर्म्म-नादको सुनकर पन्थाई लोगोंमें भारी हलचल मच गई ।

इसके पश्चात् महाराज अजमेर लौट आये । मार्गशीर्ष वदी चतुर्थी १९३५ को वहाँ व्याख्यान-वारि-वर्षा करने लगे। वहाँ उनके विविध विषयोंपर अनेक उत्तमोत्तम भाषण हुए ।

उनका एक भाषण ईसाई धर्म्मपर था । उसमें वे बाईबलकी आयतोंका पाठ सुनाकर उनपर समालोचना करते थे। उस समय एक योरुपीय पादरीने

कहा, "आप जिन बाईबल-वचनोंपर आक्षेप करते हैं वे सब लिखकर हमारे पास भेज दीजिए। हम जब उनको भलीभाँति विचार लेंगे तो फिर, यहाँ आकर उनका उत्तर आपको सुना देंगे ।"

अगले दिन स्वामीजीने चौबीस वाक्य लिखकर, असिस्टेण्ट कामिश्नर पण्डित भागरामजी द्वारा पादरियोंके पास भिजवा दिये । दस दिन पर्यन्त पादरी महाशय उनका समाधान सोचते रहे और अन्तमें मार्गशीर्ष सुदी चतुर्थीको सम्वादके लिए आये । उस दिन संवाद-सभामें दर्शकोंकी बड़ी भारी संख्या थी । उच्च कर्म्मचारी भी आये थे। सम्वादको आरम्भ करते समय स्वामीजीने कहा, "पादरियोंके साथ मेरा बहुत बार सम्वाद हुआ, परन्तु कभी कोई गड़बड़ नहीं हुई ।सो आशा है कि यहाँ भी शान्ति भङ्ग न होगी ।" इसके उपरान्त महाराजने पूर्व पक्षकी स्थपाना की, "तौरेतकी उत्पत्ति पुस्तक पर्व १, आयत २ में लिखा है कि पृथ्वी बे-डौल है। जब ईश्वर सर्वज्ञ है तो उसका कार्य्य बे-डौल नहीं हो सकता । यह काम तो किसी अल्पज्ञ जीवनका ही कहा जा सकता है ।"

इसपर पादरी ग्रे महाशयने कहा,"यहाँ, बे-डौलसे तात्पर्य ऊजड़से है।"

इसपर स्वामीजीने समालोचना की, "इससे पहली आयतमें यह कहा गया है कि आरम्भमें ईश्वरने आकाश और पृथ्वीको सृजा और पृथ्वी बे-डौल सूनी थी। जब सूनी शब्द विद्यमान है तो बे-डौलका अर्थ उजाड़ नहीं हो सकता ।"

इसका उत्तर पादरी महाशयने यह दिया, "एक अर्थके दो शब्द सभी भाषाओंमें प्रयुक्त होते हैं ।"

महाराज इसपर प्रत्यालोचना करने ही लगे थे कि पादरी महाशय कह उठे—"महाशय! एक वाक्यपर दो प्रश्नोत्तर ही होने चाहियें । नहीं तो चौबीस वाक्योंपर हम आज नहीं बोल सकेंगे ।" स्वामीजीने बहुत बल लगाया कि "तीसरी बार भी बोलने दीजिए । समयका ध्यान न कीजिए। जो वाक्य आज रह जायँगे उनपर कल विचार कर लिया जायगा ।" परन्तु पादरी महाशयने ऐसा करना स्वीकार न किया ।

२ स्वामीजीने कहा, "उसी आयतमें कहा है कि ईश्वरका आत्मा जलके ऊपर डोलता था । इसके पहले केवल आकाश और पृथ्वीकी रचना कही गई

है। जब जलकी रचनाही न हुई थी तो जलपर डोलना कैसे सिद्ध हो सकता है? जलपर डोलना हमारी तरह देहधारीके लिए होना सम्भव है। जब आपके मतानुसार ईश्वर देहधारी सिद्ध हुआ तो साकारसे आकाशादिकी रचना नहीं हो सकती।

इसका उत्तर पादरी महाशयने यह दिया कि "पृथ्वीकी रचनामें जल भी आ गया। तौरेतके आद्योपान्तमें ईश्वरको आत्मरूप वर्णन किया है।"

स्वामीजीने समालोचना की, "ईश्वरका जो वर्णन बाईबलमें आता है उससे प्रतीत होता है कि वह किसी प्रकारका शरीर भी रखता है—जैसे आदमकी बाड़ी बनाना, फिर ऊपर चढ़ जाना, मूसादिसे वार्त्तालाप करना तम्बूमें आना, और याकूबसे मिलकर युद्ध करना आदि।"

प्रत्युत्तरमें पादरीने कहा, "ये सब बातें उस आयतके साथ सम्बन्ध नहीं रखतीं ये केवल अनजानपनकी बातें हैं।"

फिर स्वामीजीने कहा, "उसी आयतमें वर्णन है कि तब ईश्वरने कहा कि आदमको अपने स्वरूपमें, अपने समान बनावें। इससे तो स्पष्ट ज्ञात होता है कि जैसे आदम देहधारी था ठीक वैसा ही इस आयतका ईश्वर है।"

पादरी महाशयने उत्तर दिया कि "इस वाक्यमें शरीरका कोई वर्णन नहीं है। इसका वास्तविक अर्थ यह है कि ईश्वरने आदमको पवित्र, ज्ञानवान् और आनन्दयुक्त बनाया।"

इसपर महाराजने प्रत्यालोचना करते कहा, "जब आपकी धर्म्मपुस्तकमें यह विद्यमान है कि ईश्वरने आदमको अपने समान बनाया तो इसका पवित्र और ज्ञानवान् आदि अर्थ कैसे करते हो? यदि पवित्र रचा था तो उसने ईश्वरकी आज्ञा, क्यों भङ्ग की?"

"आपके धर्म्म-ग्रन्थोंमें लिखा है कि जब आदमने ज्ञानके पेड़का फल खाया तो उसकी आँख खुली। इससे सिद्ध होता है कि वह ज्ञानवान् नहीं बनाया गया था; ज्ञान उसे पीछे प्राप्त हुआ। यदि आप आदमकी आँख खुलने और अपनेको नग्न आदि समझनेको अज्ञान मानते हो तो क्या ईश्वरको और ईश्वरसमान स्वरूपवालोंको इन अवस्थाओंका ज्ञान नहीं होता? इससे तो आपके ईश्वरकी सर्वज्ञता ही खण्डित हो जायगी।

इसके पश्चात् पादरी महाशयने कहा, "अब समय समाप्त हो गया है। इससे अधिक काल हम नहीं ठहर सकते। इस प्रकार सम्वाद करनेमें बोलना और लिखना, दोनों काम करने पड़ते हैं। इससे समय अधिक व्यय होता है। अच्छा तो यह है कि आप, अपने सारे आक्षेप लिखकर हमारे मकानपर भेज दीजिए। हम भी आपको लेखबद्ध उत्तर भेज देंगे।"

स्वामीजीने कहा, कि "जब आपने पहली प्रतिज्ञा बदल डाली तो दूसरी-का आप पालन करेंगे, यह कैसे माना जाय? लिखकर पत्र-व्यवहार करनेमें जनताको कुछ भी लाभ नहीं होता। हमारा प्रयोजन है, लोगोंको समझाना। घरमें बैठकर पत्र-व्यवहार करनेसे तो, यह क्रम, एक वर्षमें भी समाप्त नहीं हो सकेगा।" पर पादरी महाशयने स्वामीजीका कथन स्वीकार नहीं किया। और वे उठकर चले गये।

इस सम्वादका अजमेरकी जनतापर अत्युत्तम प्रभाव पड़ा। लोग ईसाई धर्मकी वास्तविक मूर्त्तिको समझ गये।

अजमेरके मुसलमान भी सम्वाद करनेकी बातें करते थे, परन्तु जब उनको कहा गया कि आप अपने गुरुसे स्वामीजीका शास्त्रार्थ कराइए तो वे संवाद करनेसे टल गये।

अजमेरमें, एक दिन व्याख्यान देते समय, स्वामीजीने ढाई पुराने पन्ने उठाकर दिखाये और कहा कि मैंने अखिल आर्य्यावर्त्तमें धनुर्वेदको खोजा परन्तु केवल ये ढाई पन्ने ही मिले। यदि मेरे जीवनकी लड़ी बनी रही तो मैं वेदोंसे धनुर्वेदका प्रकाश अवश्यमेव कर दूँगा।

स्वामीजीके हृदयमें भारतके निर्धनोंके लिए अपार दया निवास करती थी। एक दिन वे व्याख्यान दे रहे थे। उसी समय समाचार मिला कि भरतपुरियें चमारोंके गंजमें आग लग गई है और उनके घास-फूसके मकान जलकर राखका ढेर हो गये हैं। यह सुनते ही, उनके दयालु हृदयमें दया उमड़ आई। उनके त्राण तथा सहायताके लिए, उन्होंने अपने पाससे कुछ द्रव्य दिया और दूसरे लोगोंको भी इसके लिए प्रबल प्रेरणा की। उनके उपदेशसे तत्काल पर्य्याप्त रुपया एकत्र हो गया।

मसूदा राज्यके राव श्री बहादुरसिंहजीने, प्रबल-प्रार्थनापूर्वक, स्वामीजीको अपने नगरमें निमन्त्रित किया। उनके आग्रहसे स्वामीजी मार्गशीर्ष सुदी अष्टमी १९३५ को मसूदामें सुशोभित हुए। महाराजके वहाँ तीन चार व्याख्यान हुए। राव महाशय व्याख्यानोंमें तो आते ही थे, परन्तु स्वामीजीके सत्संगमें उनको इतना रस आता कि वे सारा दिन, श्री चरणोंमें ही बैठे बैठे बिता देते। मन-चाहे प्रश्न पूछते और संशय निवारण कराते रहते।

पौष बदी पड़वा सम्वत् १९३५ को स्वामीजी मसूदासे चलकर नसीराबादमें पधारे और मसूदाराज्यके उद्यानमें ठहरे। वहाँ महाराजने अपने अमृतमय उपदेशोंसे लोगोंको कृतार्थ कर दिया। नसीराबादमें तीन दिवस रहकर चौथे दिन वे जयपुरको प्रस्थान कर गये।

पौष ब० ५ स० १९३५ को स्वामीजी जयपुर पहुँचे और डेढ़ उद्यानमें ठहरे। उनके खण्डन विषयके प्रभावशाली व्याख्यान हुए। ठाकुर रघुनाथ-सिंहने महाराजा महाशयको स्वामीजीके दर्शनार्थ प्रेरित किया और वे समुद्यत भी हो गये। परन्तु दो एक ब्रह्मचारियोंने उनको कुछ उलटफेरमें डाल दिया और श्री दर्शनोंसे वञ्चित रक्खा।

जयपुर-राज्यके एक बहुत बड़े सत्ताधारी मनुष्यको एक सज्जनने कहा कि यहाँ स्वामीजी पधारे हुए हैं। आप भी उनके दर्शन कीजिए। उसने आवेशमें आकर उत्तर दिया कि आपतो दर्शनोंको कहते हैं हमारा वश चले तो उन्हें कुत्तोंसे नुचवा डालें।

महाराजने जब मृतक श्राद्ध और मूर्ति-पूजाका खण्डन किया तो महाराजा जयपुर भी अप्रसन्न हो गये। उनकी अप्रसन्नतासे कम्पित-काय होकर, ठाकुर लक्ष्मणसिंहजीने कहा, "भगवन्! ऐसी अवस्थामें आपका यहाँ रहना अच्छा नहीं है। श्रीचरणोंको कहीं कोई कष्ट-क्लेश न भोगना पड़े।"

स्वामीजीने उत्तर दिया, "ठाकुर महाशय! आप हमारे विषयमें सर्वथा निश्चिन्त रहिये। मैं, विपत्ति और बाधाओंके कारण, अपने उद्देश्यको नहीं छोड़ सकता। मुझे इन बातोंका भय भी नहीं है। हाँ, आप राजकर्मचारी हैं। इस लिए, आपको भय भी हो सकता है। सो उससे बचनेका सर्वोत्तम उपाय यह है कि श्रीमन्त मेरे समीप न आया करें, परन्तु मैं तो किसी

मनुष्यका नौकर नहीं हूं। मेरे आत्माको तो कोई मनुष्य छीन सकता ही नहीं। शेष कौनसा पदार्थ है, जिसके छिन जानेका मुझे डर हो सकता है।"

स्वामीजीके सामर्थ्यको जयपुरके पण्डित जानते थे। वे आप तो उनके सामने आनेका साहस न करते, किन्तु विद्यार्थियोंको सिखा समझाकर भेजते थे। महाराज उनकी चातुर्य्ययुक्त चालको जान गये। उन्होंने विद्यार्थियोंको कहा, "यदि तुम शास्त्रार्थ करना चाहते हो तो हमारे शिष्योंके साथ कर लो; हम तो तुम्हारे गुरुओंसे ही सम्वाद करेंगे।"

जयपुरमें स्वामीजीके तीन अत्युत्तम भाषण, ठाकुर लक्ष्मणसिंहजीकी हवेलीमें हुए। इन व्याख्यानोंमें कई ठाकुर और उच्च राजकर्म्मचारी भी आते थे।

स्वामीजीके प्रेमियोंके कोमल अन्तःकरणोंको ठेस लगानेके लिए, दुष्ट जन अनेक मिथ्या समाचार उड़ा देते थे। कभी उनकी मृत्युका समाचार और कभी उनके बन्दी बनाए जानेका समाचार उड़ा देते थे! जब स्वामीजी जयपुरमें थे, तो रुड़कीमें किसी दुर्जनने यह बात फैला दी कि महाराज जयपुरने स्वामीजीको, उनके कर्म्मचारियों-सहित, कारावासमें आबद्ध कर लिया है। यह समाचार सुननेके पश्चात् जबतक भक्त जनोंने स्वामीजीका सुख-समाचार न मँगा लिया तबतक वे व्याकुल ही रहे।

रेवाड़ीमें राव युधिष्ठिरसिंह नामक एक प्रतिष्ठित व्यक्ति वास करते थे। वे अति सज्जन थे और कोई पचास गाँवके भूमिहार थे। उन्होंने श्री महाराजके दर्शन, राजमहोत्सवके समय, देहलीमें किये थे। तभीसे उनके हृदयमें स्वामीजीकी भक्ति निवास करती थी। उनकी बार बारकी विनीत विनतीपर, श्री स्वामीजी पौष सु० १ सं० १९३५ को रेवाड़ीमें सुशोभित हुए। नगरसे दूर एक उद्यानमें उन्होंने डेरा किया। वहाँ राव महाशयके प्रबन्धसे स्वामीजीके उत्तमोत्तम व्याख्यान हुए। उन व्याख्यानोंमें उन्होंने कुरीतियोंका बड़े बलसे खण्डन किया। गायत्रीके महत्त्वपर भी उनका एक अत्युत्तम उपदेश हुआ।

गङ्गाप्रसाद नाम एक व्यक्तिने महाराजकी सेवामें निवेदन किया, "भगवन्! ब्राह्मण यह कहते हैं कि ब्रह्म गायत्रीको ग्रहण करनेका अधिकार केवल ब्राह्मणको ही है।"

स्वामीजीने उत्तर दिया कि "उनका ऐसा मानना अमूलक है। शास्त्रमें तो ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य, इन तीनों वर्णोंके लिए एक ही गायत्री और सन्ध्या विधान की है।" इसके साथ ही स्वामीजीने गङ्गाप्रसादको अपनी पञ्च-महायज्ञ-विधि पुस्तककी एक प्रति प्रदान की। एक घण्टा लगाकर, उसे गायत्रीका शुद्ध उच्चारण सिखाया। जब वह गायत्री सीखकर नगरमें गया तो ब्राह्मण उसे कहने लगे, "तू जो कुछ सीखकर आया है वह ब्रह्म गायत्री नहीं है।" गङ्गाप्रसादने आकर यही बात श्रीसेवामें निवेदन कर दी।

स्वामीजीने उसे कहा, "जो कोई आपसे कहे कि यह ब्रह्म गायत्री नहीं है, उसे मेरे पास ले आना। मैं उसे अच्छी तरह समझा दूंगा।" तब तो गङ्गाप्रसाद सिंह हो गया। नगरमें सबको ललकारने लगा कि यही ब्रह्म गायत्री है।

राव महाशयने, स्वामीजीके व्याख्यान सुननेके लिए, अपनी बिरादरीके लोग बड़ी दूर दूरसे बुलाये थे। इस लिए रेवाड़ीके आस पासके गाँवमें भी धर्म्म-प्रचार हो गया।

राव महाशयको उत्तम जीवन प्रदान करनेके अनन्तर, महाराज माघ ब० १ सं० १९३५ को रेवाड़ीसे चलकर देहली आये और सब्ज़ी मण्डीके पास बालमुकुन्द किशोरचन्दके मोती-उद्यानमें विराजमान हुए। इस बार उन्होंने वहाँ दो तीन ही व्याख्यान दिये और फिर वे हरिद्वारके कुम्भमेलेपर जानेके लिए प्रस्थान कर गये। माघ ब० ९ को महाराज मेरठमें उतरे। वहाँसे उन्होंने विज्ञापन छपवाकर साथ ले लिये और मार्गमें सहारनपुर और रुड़कीमें ठहरते हुए फाल्गुन सु० ६ सं० १९३५ को ज्वालापुरमें पहुँचे। वहाँ वे मूला मिस्त्रीके बङ्गलेमें विराजे और प्रतिदिन धर्म्मोपदेश करते रहे।

ज्वालापुरमें राव ओजखाँ नामके एक सम्भ्रान्त व्यक्ति निवास करते थे। वे स्वामीजीके सत्संगमें आया करते थे। उन्होंने एक दिन प्रार्थना की, "महाराज! क्या गो-रक्षा सब जीव-रक्षासे अच्छी है?" स्वामीजीने उत्तर दिया, "हाँ, गो-रक्षा सर्वोत्तम है और इसमें सबसे अधिक लाभ है। गो-रक्षा करना सब मनुष्योंका कर्तव्य है।"

ओजखाँ महाशयने यह भी पूछा, "आर्य्योंमें नित्य प्रातः नहानेका नियम किस नींवपर रक्खा गया है?" स्वामीजीने उत्तर दिया, "आयुर्वेद-विद्याके

अनुसार प्रतिदिन स्नान करना बल-पुष्टिका वर्द्धक, आरोग्यदाता तथा स्वास्थ्य सम्पादक है। इससे देहमें स्वच्छता और स्फूर्त्ति बनी रहती है।" राव महाशयने स्वामीजीका युक्तिसंगत कथन स्वीकार कर लिया और प्रभावित होकर मांस खाना भी छोड़ दिया।

फाल्गुन सुदी ६ सम्वत् १९३५ को स्वामीजी ज्वालापुरसे हरिद्वार पधारे। वहाँ उन्होंने श्रवणनाथके उद्यान और निर्मलोंकी छावनीके सामने, मूला मिस्त्रीके खेतमें अपना डेरा डाला। वहीं तम्बू ताने गये, पर्ण-कुटियायें निर्माण की गईं। सत्संगके लिए भी एक सुन्दर मण्डप सुसज्जित हो गया।

उस समय स्वामीजीकी सहायतार्थ उनके शिष्य श्री रामशरणदासजी मेरठसे आ गये। पण्डित उमरावसिंहजी आदि अन्य भी अनेक शिष्य, अपने गुरुदेवके साथ सहयोग देनेको उपस्थित हुए और उसी छावनीमें ठहरे। विज्ञापनोंद्वारा सर्वसाधारणको विदित करदिया गयाकि पण्डित स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी महाराज, वैक्रमी सम्वत् १९३५ फाल्गुन शुक्ला ६ गुरुवारको हरिद्वारमें आकर, निर्मलोंकी छावनीके सामने, मूला मिस्त्रीके खेतमें ठहरे हैं। जो महाशय उनसे लाभ उठाना चाहें वह उपर्युक्त स्थानमें उपस्थित होकर सभ्यता और प्रीतिपूर्वक वार्त्तालाप करें।

विज्ञापनके निकलते ही, सारे मेलेमें स्वामीजीका नाम गूँज गया। सहस्रों नरनारी उनके उपदेशोंमें आने लगे। साधु लोग भी टोलियाँ और मण्डलियाँ बनाकर आते थे। महाराजने जब, तत्कालीन कुरीतियोंपर टीका-टिप्पणी चढ़ाई, कुप्रथाओंपर कठोर कुठाराघात किया और वेषमात्रोपजीवी जनोंकी समालोचना की तो सारा साधु-सागर संक्षुब्ध हो गया। महन्तोंके आसन डोलने लगे। मण्डलेश्वर अपनी मँडलियोंसहित घबरा उठे। उन दिनोंमें जहाँ जाओ, जिधर देखो, लोग स्वामी दयानन्दजीका ही कथोपकथन करते मिलते। कई पौराणिक पण्डित विरोध करनेके लिए कटि-बद्ध हुए, परन्तु जब सारा सामर्थ्य लगाकर भी वे कुछ न कर सके तो, अन्तमें जी छोड़ बैठे।

दो नाङ्ग साधु स्वामीजीके निकट आकर, अपमान-जनक वचनों द्वारा, बातचीत करने लगे। वे दोनों विनय-विहीन बकवादी और हठीले थे। श्री

महाराज उनके साथ हँसते हँसते सादर उत्तर देते थे। इस वार्त्तालापमें नाङ्गे कई बार कुपित हुए परन्तु स्वामीजीकी प्रकृति-लतापर, उनके क्रोधाङ्गारकी एक भी चिङ्गारी उड़कर न पड़ी। वे प्रशान्त और प्रसन्न बने रहे । महाराजकी शान्तिका यह प्रभाव हुआ कि उन नाङ्गोंने अपनी जटा लटाको उसी दिन विसर्जन कर दिया और श्री-चरण-शरण लेकर अपने अपराध क्षमा कराये ।

एक दिन तम्बूके द्वार खुले हुए थे। महाराज उसमें बैठे कार्य्य कर रहे थे । उसी समय, एक आनन्दवन नामक परमहंस वहाँ पधारे। उनके एक हाथमें कमण्डलु, दूसरेमें दण्ड और तनपर एक लम्बा, उज्ज्वल चोला शोभायमान था । उनके साथ कोई दस शिष्य थे ।

ज्योंही, स्वामीजीने आनन्दवनजीको भीतर पदार्पण करते देखा, वे तत्काल, आसनसे उठ खड़े हुए और तम्बू द्वारपर जाकर उनका स्वागत किया। उनको उचित आसनपर बैठाया। उसी समय दोनोंमें शास्त्रार्थ आरम्भ हो गया। जब दिनके ग्यारह बजे तो स्वामीजीके सेवकने आकर निवेदन किया, "भगवन् ! भोजन प्रस्तुत है । "

स्वामीजीने अतिथिसे भोजनके लिए कहा तो वे बोले कि जबतक इस प्रश्नका निर्णय न हो ले, हम भोजन नहीं करेंगे। शास्त्रार्थ द्वैताद्वैतपर था । स्वामीजी, चारों वेदों और पचास साठ अन्य पुस्तकोंको अपने पास रखकर, प्रमाणोंके प्रबल अस्त्रपातसे परमहंस आनन्दवनजीके सघन संशय-वनको लगे उड़ाने। जब द्वन्द्व-युद्ध होते दिनके दो बज गये तो वे दोनों महात्मा उठ खड़े हुए। थोड़ेसे वार्त्तालापके उपरान्त आनन्दवनजीने अपने शिष्योंको सम्बोधन करके कहा, "मैंने स्वामी दयानन्दजीके द्वैत-सिद्धान्तको स्वीकार कर लिया है। आज इनकी युक्तियोंकी वायुने, मेरे अहं-ब्रह्मवादके घमण्डरूप, घोर घन-घटाटोपको उड़ा दिया है । अब आपको भी ऐसा ही करना उचित है । " तत्पश्चात् वे महात्मा चले गये ।

आनन्दवनजी श्री-उपदेशोंमें प्रायः आया करते और एकाग्र चित्तसे सुना करते थे। वे संस्कृतके धुरन्धर पण्डित थे। उनकी आयु उस समय कोई अस्सी वर्षके लगभग होगी ।

एक निर्मला साधु, जोतसिंह स्वामीजीके निकट आया और वार्त्तालाप करने लगा। वह स्वामीजीके विरुद्ध बार बार जले कटे बचन कहता था। यद्यपि स्वामीजीके शिष्य आवेशमें आजाते, परन्तु महाराज उनको शान्त करके उस मूर्ख महात्मासे कथोपकथन करते ही जाते थे। दो दिनतक तो वह साधु टेढ़ी ही चाल चलता रहा। वक्रवाक्य और व्यङ्ग-वचन-बाण वर्षामें उसने कोई त्रुटि न छोड़ी, परन्तु जब वह तीसरे दिन श्रीसेवामें आया तो उसके चित्तका चित्र और ही था। उसके दोनों कपोलोंपर आँसुओंकी धाराका तार बँधा हुआ था। वह बद्धाञ्जलि श्रीचरणोंपर गिर पड़ा और अपने किये अपराधों के लिए क्षमा मांगने लगा। जोतसिंहके पश्चातापके उत्तापसे महाराजको अति अनुकम्पा आ गई। उसे ढाढस बँधाकर उन्होंने उसे अपने पास ही रख लिया। अन्तमें वह पक्का आर्य्य बन गया।

एक दिन, एक अमृतसर-निवासी आर्यने श्रीसेवामें आकर निवेदन किया कि भगवन्! मुझे अमृतसरके आर्य समाजियोंने आर्य्य समाजकी सभासदीसे निकाल दिया है।

स्वामीजीने उससे पूछा कि आपको किस अपराध पर बहिष्कृत किया गया? उसने उत्तर दिया कि पुस्तक चुराने का दोषारोप करके उन्होंने मुझे निकाला है। भगवान्ने गम्भीर भावमें उसे कहा कि सच सच कहना, क्या आपने पुस्तकें चुराई भी थीं? उसने कह दिया कि महाराज! यह दोष हुआ मुझसे अवश्य है।

स्वामीजीने परिलक्षित कर लिया कि सच्चे अन्तःकरण से अनुताप कर रहा है। इसलिये उन्होंने उसे शिक्षा दी कि फिर ऐसे पाप-सोपानपर पदार्पण कभी न करना और आर्य्य समाज, अमृतसरके नाम भी पत्र लिख दिया कि हमने इसका अपराध क्षमा कर दिया है। अब इसे सभासद बना लीजियेगा।

एक दिन, स्वामीजीको महात्मा रत्नगिरीजी मिले। बातचीतमें महाराजने कहा "सारे मठधारियों, महन्तों और मण्डलेश्वरोंमें सुखदेव गिरिजी, जीवन गिरीजी और विशुद्धानन्दजी, ये तीन पूरे पण्डित हैं। शेष तो निरे घाऊघप हैं। केवल लड्डू-पूरी उड़ाना ही जानते हैं। आप इन तीन महात्माओंके पास मेरे प्रश्न-पत्र ले जायँ।"

स्वामीजीके कथनानुसार, रत्नागिरीजी उनका पत्र सुखदेव गिरीजीके निकट ले गये। वे श्रीदयानन्दका पत्र पाते ही तिलमिला उठे और झुंझलाकर कहने लगे, "तुम दो-घरी बिल्लीकी नाईं बन गये हो। हम तुमपर विश्वास नहीं करते। आगेको, हमारे पास उनका कोई पत्र न लाना।"

श्रीस्वामीजी महाराजका ईश्वरकी प्रार्थना और उपासनामें बड़ा विश्वास था। उन्होंने सत्यार्थ-प्रकाशमें लिखा भी है कि स्तुतिसे ईश्वर-प्रेम बढ़ता है। उसके, गुण, कर्म और स्वभावसे अपने गुण, कर्म और स्वभाव सुधर जाते हैं। ईश्वरकी प्रार्थना से निरभिमानता आती है और उत्साह प्राप्त होता है प्रभुकी सहायता मिलती है। परोपकार करनेकी प्रार्थनाहीमें परमेश्वर सहायता देता है। महाराज व्याख्यानके आरम्भमें पहले परमात्मदेवकी प्रार्थना किया करते। वे ईश्वर-गुणगान ऐसे स्वरसे करते कि उनका गला गद्‌गद् हो जाता। श्रोता भी भक्ति-रसमें झूमते हुए प्रेमाश्रु बहाने लग जाते। उनकी प्रार्थनामें एक विशेष अलौकिक रस होता था।

एक दिन, निर्मल महात्मा रामसिंहजीने स्वामीजीसे विनयकी, "महाराज! इतने पण्डित और ज्ञानी होकर भी, आप भिखारियोंकी भाँति ईश्वरसे भीख माँगते हैं। ऐसे कर्म तो अज्ञानियोंके लिए कहे हैं। जिस ज्ञानीने 'अहँब्रह्मास्मि' का मनन कर लिया उसे इस प्रकार रोने झींखनेकी क्या आवश्यकता है?" महाराजने उत्तर दिया, "मनुष्यमें प्रार्थनाकी वृत्ति स्वाभाविक है। जैसे आपमें खाने, पीने और सोनेकी वृत्ति तो विद्यमान है, परन्तु परितृप्ति प्राप्त करनेके लिए, आप उस वृत्तिको जगाते हैं। ऐसे ही प्रार्थनारूप, भक्ति-वृत्तिको जगानेकी आवश्यकता है। यह सत्य नहीं है कि ज्ञानी-जन प्रार्थना नहीं करते। आप अपनेको पूरे वेदान्ती मानते हैं, परन्तु फिर भी वेदान्त-वाक्य दुहराते रहते हैं। जिस वस्तुका किसीको जितना अधिक ज्ञान होता है। वह उसे उतना ही अधिक स्मरण करता है। जितनी अधिक प्रीति परमेश्वरमें बढ़ेगी उसका उतना ही अधिक प्रकाश होगा। भाई रामसिंहजी! ऊपरसे चाहे जो कहो, परन्तु जबतक भूक-प्यास और सुख-दुःख आदिका अनुभव करते हो तबतक आप पूर्ण नहीं हो। आपमें न्यूनता अवश्य है। अपनी न्यूनताको पूर्ण करनेके लिए—तीन गुणमयी मायासे ऊपर होनेके लिए-

प्रार्थना आवश्यक है ।" रामसिंहजीने सिर झुकाकर श्रीवचनोंको स्वीकार किया ।

स्वामीजीके व्याख्यानोंमें निर्मल साधु बड़ी भारी संख्यामें आया करते थे। उनमेंसे बहुतोंका महाराजसे प्रेम भी हो गया था । निर्मलोंके अखाड़ेमें ये साधु झण्डेको नमस्कार किया करते हैं। जब एक दिन व्याख्यानमें निर्मलोंका एक दल आया तो महाराजने मुस्कराकर कहा—"आओ भाई लकड़-पूजको! बैठ जाओ ।" यह सुनकर सारे साधु खिलखिलाकर हँस पड़े । इसके उपरान्त स्वामीजीने उनको उपदेश दिया, "आप लोग रातदिन तो आत्मवाद छाँटते रहते हो, उपनिषद् वचनोंको घोटे लगाते हो, वेदान्त-सूत्रोंकी छानबीनमें प्रवीणता प्रकट करते हो, कर्म्मकाण्डकी कतर ब्योंतमें कौशल दिखाते हो, परन्तु भ्रममें इतने ग्रस्त हो कि जड़ वस्तुओंको भी नमस्कार करते हो ।" स्वामीजीके कथनका उनपर बड़ा प्रभाव पड़ा ।

महाराजको सम्प्रदायोंके आडम्बर देखकर, देशकी अधोगतिपर अति दया आती थी। वे कहा करते थे कि इन पन्थाई लोगोंने सन्मार्गका लोप कर दिया है । ये लोग अपनी प्रतिष्ठाकी लालसामें अपनी अपनी खिचड़ी पृथक् ही पकाते हैं । जनतामें एकमत होने ही नहीं देते ।

वे, भारतके सामाजिक बिगाड़पर भी, भारी मार्मिक वेदनाका अनुभव करते थे। एक दिनका वर्णन है कि स्वामीजी बैठे बैठे लेट गये और फिर उठकर टहलने लगे । एक भक्तने विनयपूर्वक पूछा, "महाराजको आज क्या कोई वेदना हो रही है ?" उन्होंने एक लम्बी साँस भर कर कहा—"भाई ! इससे अधिक हृदय-विदारक दारुण वेदना और क्या हो सकती है कि विधवाओंकी दुःखभरी आहोंसे अनाथोंके निरन्तर आर्त्तनादसे और गो-वधसे इस देशका सर्व नाश हो रहा है।"

एक दिन सवेरे, मेरठके कमिश्नर कई राजकर्मचारियों-सहित स्वामीजीके मिलापार्थ आये। स्वामीजीके सेवकोंने उन्हें आदरसे आसन दिया। थोड़ीही देरमें महाराज भी अपने तम्बूसे बाहर आये और अतिथियोंसे सम्मानपूर्वक मिले। कमिश्नर महाशय स्वामीजीसे बातचीत करके अति प्रसन्न हुए और उनकी रक्षा आदिके लिये पुलिसके कई कानिस्टेबल नियुक्त कर गये ।

एक दिन स्वामीजी अपने आसनपर विराजमान थे। एक मनुष्यने आकर चरण-वन्दन किया और कहा—"भगवन् ! मुझे जम्मू-कश्मीरके महाराजा रणवीरसिंहजीने श्री-सेवामें भेजा है । लोगोंने आपकी मृत्युका समाचार भी उड़ा रक्खा है । परन्तु उसपर पूर्ण विश्वास न करके, महाराजाजीने कहा है कि यदि स्वामीजी जीवित हैं तो हरिद्वारके कुम्भपर अवश्य आयेंगे । उनके पास जाकर हमारा विनय-पत्र उपस्थित करना ।"

तब उस भद्र पुरुषने एक पत्र श्री-सेवामें उपस्थित किया । उसपर महाराजाकी मुहर थी । उसमें स्वामीजीसे एक ऐसी पुस्तकके बनानेके लिए प्रार्थना की गई थी, जिसमें, शास्त्रीय प्रमाणोंद्वारा, यह सिद्ध किया हो कि जो जन हिन्दू-धर्म्मसे पतित होकर मुसलमानादि मतोंमें मिल गये हैं वे फिर हिन्दू बन सकते हैं । साथ ही यह भी कहा गया था कि यदि हो सके तो इसमें यह भी सिद्ध कर दीजिए कि ईसाई और मुसलमान जातियोंके लोग भी हिन्दू-धर्म्ममें आ सकते हैं। उनके साथ खानपानका व्यवहार करनेमें कुछ भी दोष नहीं है ।

उस समय महाराजने उस आगन्तुक पुरुषको कहा, "ईसाई और मुसलमानोंको शास्त्र-रीतिसे आर्य्य बनाना सिद्ध करनेमें कोई भी कठिनाई नहीं है। यह बड़ी सुगमतासे सिद्ध होजायगा। मैं श्री महाराजके नाम, इस विषयपर आपको एक पत्र लिखकर दूँगा ।"

उमीदखाँ और पारजी इब्राहीमने स्वामीजीसे विनय की, "महाराज ! हमने सुना है कि आप मुसलमानोंको भी आर्य्य बना सकते हैं।" महाराजने उत्तर दिया, "आर्य्य, सन्मार्गपर चलने वाले श्रेष्ठ मनुष्यको कहते हैं सो यदि आप आर्य्य धर्म्माचारको ग्रहण कर लें तो आप भी आर्य्य बन जायेंगे ।"

तब उन दोनोंने पूछा, "हमारे आर्य्य बन जानेपर क्या आप हमारे साथ मिलकर भोजन करेंगे?" स्वामीजीने उत्तर दिया, "हमारे धर्म्ममें केवल किसीका जूठन खाना विवर्जित है । सहभोजनमें तो कुछ भी दोष नहीं है।"

वे बोले, "जूठा खानेसे परस्पर प्रेम बढ़ता है।" इसपर महाराजने कहा, "इस प्रकारें प्रीति बढ़ती हो तो कुत्ते भी तो इकट्ठे खाते हैं, परन्तु खाते खाते

ही एक दूसरेको काटने-नोचने लग जाते हैं ।" यह सुनकर वे दोनों महाशय अवाक् हो गये !

रुड़कीके तहसीलदार नजफ अली तो स्वामीजीका उपदेश सुनकर मोहित ही हो गये । उन्हें सिद्ध पुरुष मानने लगे । उनको निश्चय हो गया कि जैसा आत्मिक ज्ञान संस्कृत पुस्तकोंमें पाया जाता है वैसा दूसरे धर्म्मोंकी पुस्तकोंमें नहीं मिलता ।

एक दिन नजफ अली महाशयने निवेदन किया कि हमारे मतमें अनेक स्त्रियोंसे विवाह करनेकी आज्ञा है । इसमें आपकी क्या सम्मति है ?

स्वामीजीने उत्तर दिया कि अनेक स्त्रियोंसे विवाह करना सर्वथा अनुचित है और अन्याय है । बहुत विवाहमें महाराजने अनेक दोष दिखाकर कहा कि वेद पवित्रमें केवल एक स्त्री-पुरुष ही के विवाहका उपदेश है । तहसीलदार महाशयने श्री-वचनोंको सिर आँखोंसे स्वीकार किया ।

नववाँ सर्ग ।

महाराजके उपदेशों और शङ्का-समाधानसे सहस्रों मनुष्योंने अपने भ्रम निवारण किये । भक्त जनोंके लिए तो भगवान्‌का सत्सङ्ग गङ्गा-स्नान, कुम्भके पर्व और मठधारियोंके दर्शनोंसे कहीं अधिक मूल्यवान् वस्तु बन रहा था । वे लोग अति प्रेमसे श्री उपदेश श्रवण करते और अपनेको पवित्र हुआ मानते थे ।

आर्य्य भाषाके प्रचारमें सबसे पहले यदि किसीने प्रयत्न किया तो वे स्वामी दयानन्दजी थे । गुर्जर देशमें उत्पन्न होकर, देश-देशान्तरोंमें आर्य्य समाज स्थापित करनेके अनन्तर भी आर्य्य भाषाको अपनाया, यह उनका एक तुलनातीत कर्म है । उन्होंने आर्य्यसमाजका सङ्गठन करते हुए, मुम्बईके पाँचवें नियममें, संस्कृत और आर्य्य भाषाका पुस्तकालय स्थापित करना और आर्य्य भाषामें 'आर्य प्रकाश' नामक पत्र निकालना, प्रधान समाजके लिए आवश्यक ठहराया । लाहोरके संगठन-संस्कारमें, एक उपनियम बनाकर, सब आर्य्य सामाजिकोंके लिए आर्य्य भाषाका सीखना अत्यावश्यक कर दिया ।

उपर्युक्त दोनों प्रमाणोंसे बलपूर्वक कहा जा सकता है कि आर्य भाषाको राष्ट्रीय भाषाका रूप देनेवाले प्रथम पुरुष, दयानन्द ही थे।

स्वामी दयानन्द गुर्जर भाषाके पूर्ण पण्डित थे। अपने मुम्बई-वासमें उन्होंने अनेक ग्रन्थ लिखे; परन्तु वे सब आर्य्य भाषामें ही लिखे; गुर्जर भाषामें एक भी नहीं लिखा। अपने जन्म-प्रान्तमें भी, वे अपनी मातृभाषाको छोड़कर, आर्य्य भाषामें ही व्याख्यान देते रहे। उनकी सारी पुस्तकें आर्य्यभाषाहीमें प्रकाशित हुईं। इन सब बातोंको ऐतिहासिक दृष्टिसे देखते हुए, मुक्त कण्ठसे कहना पड़ता है कि आर्य्य भाषाकी मौलिक जड़में जीवन डालने वाले श्री दयानन्दजी ही थे। निम्न लिखित प्रश्नोत्तरसे उनका आर्य्य भाषाके प्रति असीम स्नेह प्रकट होता है:—

हरिद्वारमें एक दिन महाराज अपने आसनपर बैठे सत्सङ्गियोंको समझा रहे थे। बीचमें एक सज्जनने निवेदन किया, "यदि आप अपनी पुस्तकोंका अनुवाद कराकर फारसी अक्षरोंमें छपवादें, तो पञ्जाबादि प्रान्तोंमें जो लोग नागरी अक्षर नहीं जानते उनको आर्य्य धर्म्मके जाननेमें बड़ी सुविधा हो जाय।"

महाराजने उत्तर दिया, "अनुवाद तो विदेशियोंके लिये हुआ करता है। नागरीके अक्षर थोड़े दिनोंमें सीखे जा सकते हैं। आर्य भाषाका सीखना भी कोई कठिन काम नहीं है। फारसी और अरबीके शब्दोंको छोड़कर, ब्रह्मावर्तकी सभ्य भाषा ही आर्य्य भाषा है। यह अति कोमल और सुगम है। जो इस देशमें उत्पन्न होकर अपनी भाषाके सीखनेमें कुछ भी परिश्रम नहीं करता, उससे और क्या आशा की जा सकती है? उसमें धर्म्म-लग्न है, इसका भी क्या प्रमाण है? आप तो अनुवादकी सम्मति देते हैं, परन्तु दयानन्दके नेत्र तो वह दिन देखना चाहते हैं कि जब, काश्मीरसे कन्याकुमारी तक और अटकसे कटकतक नागरी अक्षरोंका ही प्रचार होगा। मैंने, आर्यावर्त्तभरमें भाषाका ऐक्य सम्पादन करनेके लिए ही, अपने सकल ग्रन्थ आर्य्य भाषामें लिखे और प्रकाशित किये हैं।"

महाराजको हरिद्वारमें मुम्बईका तार मिला कि श्रीयुत अल्काट यहाँ आ गये हैं और श्रीदर्शनोंके लिए आतुर हैं। उन दिनों महाराजका स्वास्थ्य कुछ

बिगड़ रहा था, इस लिए वे विश्राम लेना चाहते थे। उन्होंने मुम्बई समाचार भेज दिया कि अल्काट महाशय अभी आनेका कष्ट न उठायें।

स्वामीजीने यहाँ, अन्तिम उपदेशकी समाप्तिपर परमेश्वरका धन्यवाद किया कि हे जगदीश्वर! आपकी अपार कृपासे प्रचारका यह कार्य्य निर्विघ्न समाप्त हुआ है। फिर उन्होंने अपने साथियोंको सम्बोधन करके कहा, "अब आप यथासम्भव शीघ्र ही अपने अपने घरोंको चले जाईए। कोई आश्चर्य नहीं कि मेरे इस कथनका यह भी परिणाम निकाला जाय कि अँगरेज़ मेलेको बखेरना चाहते हैं और स्वामीजी भी उनके साथ ही मिल गये हैं। परन्तु मैं तो आपको चेतावनी देता हूँ। जलवायुके बिगड़ जानेसे महामारी, विषूचिकाके फैलनेका पूरा भय है। यदि आप शीघ्रही चले जायँगे तो इस संक्रामक, महा भयङ्कर रोगके चंगुलसे बच जायँगे।" स्वामीजीका कथन सत्यही हुआ। मेलेके अन्तिम दिनोंमें सचमुचही विषूचिका रोग फूट पड़ा।

महाराजकी सावधानता भी आदर्श-रूप थी। उनके डेरेपर कूड़ा कर्कट इकट्ठा करके सब जला दिया जाता था। वे अपने डेरेमें जूठनसहित पत्ते और कागज पड़े नहीं रहने देते थे। वहां इधर उधर सड़ी गली वस्तुयें सड़ांद नहीं छोड़ा करती थीं। उनकी सारी छावनी स्वच्छ और मार्जित रहती। वहाँ प्रतिदिन हवन होता, जिससे वायुमें विकार नहीं उत्पन्न हो पाता था।

उस महामेलेमें बहुत थोड़े साधु-सन्त ऐसे थे जो स्वामीजीके अतिशय उच्च आशयको जानते थे। अधिकांश सम्प्रदायिक लोग तो हठधर्म्मी और धड़ेबन्दीकी दलदलोंमें धँसे हुए थे। वे लोग महाराजका जी खोलकर विरोध करते थे। बहुतेरे ऐसे भी वेष-विडम्बक थे, जो धर्म्मकी ओटमें और भगवे बानेकी आड़में, उस महापुरुषको मार मिटानेकी चेष्टा भी करते फिरते थे। स्वामीजी महाराज भी मानवी कौशलकी परमावधिपर पहुँचे हुए थे। वे सचेत थे और ऐसी प्रत्येक खटकेकी आहट लेते रहते थे।

एक दिन, एक जटाजूट, नाँगा उनके निकट आया और कहने लगा, "मैं आपके पास रहकर अध्ययन करना चाहता हूँ। आपको कोई कष्ट नहीं दूँगा अन्न माँगकर ले आया करूँगा और आपकी सेवा करता रहूँगा।" स्वामीजी

उसके भीतरी भावको ताड़ गये और बोले, "आपको पढ़ानेके लिए मुझे अवकाश नहीं है ।"

एक दिन दो नाङ्गोंने आकर शिष्य बननेकी विनय की। उनको भी महाराजने टाल दिया। स्वामीजी प्रायः जिस किसीके हाथका लेकर नहीं खाते थे अपनी रक्षामें आप चौकस रहते थे।

हरिद्वारमें प्रचार करनेके अनन्तर महाराजने विश्राम लेनेके लिए देहरादून जानेका निश्चय किया और अपने शुभागमनकी वहाँ सूचना भेजदी । पण्डित कृपाराम गौड़ महाराजके प्रेमी थे । गुरुदेवके आगमनका प्रेम-पत्र पाकर वे पुलकित-गात हो गये । कुछ वङ्गीय सज्जनोंके साथ मिलकर उन्होंने एक बङ्गला ले लिया । साथ ही उन्होंने अपने भतीजे और दो नोकरोंको हरिद्वारकी सड़कपर खड़ा कर दिया कि जब स्वामीजीकी गाड़ी आये तो उन्हें उस बङ्गलेमें लेजाकर उतार देना ।

महाराज वैशाख ब० ८ सं० १९३६ को देहरादून पहुँचे। उससमय उनके साथ तीन चार कर्मचारी थे । बहुतसे बङ्गीय सज्जन स्वागतके लिए पहुँच गये और उपर्युक्त बङ्गलेमें उनका डेरा कराया गया ।

महाराजके पहुँचते ही सारे नगरमें उनके शुभागमनका समाचार फैल गया और सत्संगियोंकी टोलियाँ आने लगीं यद्यपि स्वामीजी स्वस्थ नहीं थे फिर भी अति प्रसन्नतापूर्वक वार्त्तालाप करते ।

कृपारामजीसे पूछनेपर स्वामीजीको पता लगा कि भोजनादिके व्ययका प्रबन्ध ब्राह्म समाजियोंने किया है । उन्होंने कृपारामको कहा, "यह आपने अच्छा नहीं किया हमारे प्रचारसे तो ये लोग रुष्ट हो जायँगे। उस समय आपको कठिनताका सामना करना पड़ेगा ।" श्री कृपारामजीने हाथ जोड़कर विनती की, "ये लोग भले ही अप्रसन्न हो जायँ; पूज्यपादका आतिथ्य करनेको सेवकके पास पत्र पुष्प पर्याप्त हैं ।"

कुछ दिन विश्राम करनेके उपरान्त स्वामीजीने व्याख्यान देना आरम्भ कर दिया। लोग बड़े प्रेमसे सुनने आते थे। एक दिन उनके व्याख्यानका विषय बाईबल और कुरानकी समालोचना था। उस दिन चार पांच यूरोपीय पादरी सुनने आये हुए थे। उनकी यौक्तिक समालोचनाको सुनकर एक पादरी

आवेशमें आ गया। व्याख्यानकी समाप्तिपर उसने कहा कि पण्डितजीने जो कुछ कहा है, निरी धूल उड़ाई है। इस धूलमें इसका वेद भी ढँप गया है।

स्वामीजीकी युक्तियोंका खण्डन करनेके लिये उसे अवसर दिया गया। जब वह बोलकर बैठ गया तो महाराजने खड़े होकर, उसका प्रत्युत्तर देना आरम्भ किया। पादरी महाशयकी प्रकृतिमें बार बार उबाल उठते थे। वे आपेसे बाहर हुए जाते थे और बात बातमें बोल पड़ते थे। अन्तमें उसके साथियोंने ही उसे शान्त किया। व्याख्यानके पश्चात् दूसरे पादरी बड़ी देरतक स्वामीजीसे धर्म्म-चर्चा करते रहे।

इस व्याख्यानमें मुसलमानोंकी उपस्थिति बहुत थी। कुछ मौलवी महाशय भी बैठे सुनते थे वे लोग भी भड़क उठे।

स्वामीजी जिस बँगलेमें रहते थे वह फूससे छता हुआ था। कृपारामजीने सुना कि कुछ एक मुसलमान, आज रात उस बँगलेको जला देना चाहते हैं। उन्होंने इसकी सूचना, तत्काल, स्वामीजीको दे दी। अपने तीन चार नौकर वहीं पहरेके लिए भेज दिये। स्वामीजी अति निर्भय थे। वे यही कहते थे कि डरो नहीं, ये विरोधियोंकी कोरी धमकियाँ हैं। परन्तु पण्डित भीमसेनजीने जागते हुए, सारी रात आँखोंमें काटी।

स्वामीजीके वेद-विषयक व्याख्यानसे ब्राह्म समाजी चिढ़ गये और सहायता देना छोड़ बैठे।

ब्राह्म समाजी कालिमोहन घोषजीने स्वामीजीको भोजनका निमन्त्रण दिया; उन्होंने कहा कि आपका भोजन ग्रहण करनेमें मुझे केवल इतना ही सङ्कोच है कि आप लोगोंके यहाँ भङ्गी भी भोजन बनाते हैं। घोष महाशयने कहा कि यह तो सत्य है कि हम लोग किसीके भी हाथसे खानेमें कोई हानि नहीं मानते, परन्तु कर्ममें ऐसा नहीं आता। तब महाराजने उनका निमन्त्रण स्वीकार कर लिया।

इस बातका पता जब कृपारामजीको लगा तो वे भोजनका थाल लेकर श्री-सेवामें पहुँचे। उस समय घोष महाशयके घरसे भी थाल आ गया था। कृपारामजीने निवेदन किया कि भगवन्! घोष महाशयके घरपर भङ्गिन पाचिका है, इस लिए उसका भोजन पीछे लौटा दीजिये और निज जनकी

रूखी सूखी चपाती स्वीकार कीजिये। महाराजने उसी समय घोष महाशयका थाल लोटा दिया और कृपारामजीका अन्न ग्रहण किया।

स्वामीजीके चित्ताकर्षक भाषणोंको सुनकर कई सज्जन उनके अनुयायी बन गये और आर्य्य समाजकी स्थापनाका यत्न करने लगे।

श्रीमान् कर्नल अल्काट और मैडम ब्लैवट्स्की सहारनपुरमें आ पहुँचे और वहाँके आर्योंने अत्युत्तम रीतिसे उनका आतिथ्य किया। उन्होंने स्वामीजीको तार दिया कि हम आपके दर्शनोंके लिए, देहरादून आते हैं। महाराजने उनको तारद्वारा सूचित किया कि आप आनेका कष्ट न कीजिए, मैं स्वयं सहारनपुर आ रहा हूँ।

महाराज वैशाख सु० १० सं० १९३६ को सहारनपुरमें आये, बड़े वत्सल भावसे अपने भक्तोंको मिले। वैशाख सु० १२ को स्वामीजी कर्नल तथा मैडम सहित मेरठ पधारे। आर्य्य समाजके सभी सभासद्, उनके स्वागतके लिए, रेलके स्टेशनपर उपस्थित थे। अपने पूज्यतम गुरुदेवको, पश्चिमी शिष्योंसहित देखकर, आर्य्य पुरुषोंके तन हर्ष-पूरसे पुलकित हो रहे थे। उन्होंने बड़े उत्साहसे उनको ले जाकर, एक कोठीमें तो महाराजको और दूसरीमें उन दोनों अतिथियोंको ठहराया।

वैशाख सु० १३ से ज्येष्ठ ब० २ तक स्वामीजीके तथा उनके शिष्योंके व्याख्यान बड़ी धूमसे हुए। कर्नल महाशय और मैडमने भाषणोंमें भली भाँति वेदका महत्त्व गान किया और क्रिश्चियन धर्म्मकी त्रुटियाँ प्रदर्शित कीं। इन व्याख्यानोंमें योरुपियन भी बहुत आते थे।

कर्नल अल्काट और मैडम ब्लैवट्स्की स्वामीजीके स्थानपर जाकर सत्संगमें ज्ञान-चर्चा करते, आत्मा-सम्बन्धी प्रश्न पूछते और योगाभ्यासकी विधियाँ सुनते थे। वे दोनों अपनेको आर्य्य कहते। नीचे बैठकर भोजन पाते। उन्होंने ओम्का पदक और यज्ञोपवीत धारण किया हुआ था। वे महाराजको गुरु मानते थे और उनके प्रति अतिविनय प्रदर्शित करते थे।

महाराज एकदिन श्रीयुत छेदीलालजीकी कोठीमें आसनारूढ़ थे। सत्संगी जन ज्ञान-गङ्गामें गोते लगा रहे थे। उसी समय अल्काट महाशय और ब्लैवट्स्की महाशया भी आ गईं। उन्होंने महाराजको भक्तिभावसे नम्रीभूत

नमस्कार किया। योग-चर्चा चलनेपर, अल्काट महाशयने विनयकी, "भगवन्! सुना है कि शङ्कराचार्य्य अपने कलेवरसे आत्माको निकालकर परकायामें प्रवेश कर जाते थे। इसमें आपकी क्या सम्मति है ?"

स्वामीजीने उत्तर दिया, "शङ्कराचार्य्यका परकाया-प्रवेश करना एक ऐतिहासिक विषय है। उसके सत्यासत्यमें, कुछ कहा नहीं जा सकता। हाँ इतना तो मैं भी दिखा सकता हूँ कि चाहे जिस अङ्गमें, अपनी सारी जीवन-शक्तिको केन्द्रित कर दूँ। इसमें, शेष सारा शरीर जीवन-शून्य हो जायगा। परकाया-प्रवेश तो इसके आगे एक पाँव उठाना मात्रही है!" अल्काट महाशय अपने गुरुके ऐसे योग-बलको जानकर अतीव हर्षित हुए।

कुछ दिनोंके पश्चात् अल्काट महाशय और ब्लैवट्स्की महाशया स्वामीजीसे आज्ञा लेकर मुम्बई चले गये।

मौलवी मुहम्मद कासिम मेरठमें आकर सम्वादके लिए मुसलमानोंको उकसाने लगे। जब स्वामीजीको पता लगा कि मुसलमान महाशय सम्वाद करना चाहते हैं तो उन्होंने अपने सदा समुद्यत होनेकी घोषणा करदी। दोनों ओरके प्रतिष्ठित पुरुषोंकी एक सभा, नियम-निर्णयके लिए जुटी। उसमें राज-पाठशालाके मुख्याध्यापक श्रीकैस्पन महाशय भी सम्मिलित कर लिये गये। अनेक नियमोपनियम बनते बनाते, जो कहीं आकर बात अटक गई और टूटने लगी तो वह इस नियमपर, स्वामीजी कहते थे कि सम्वाद लेखबद्ध हो और एक विशेष सभामें जनताके सामने हो; परन्तु मौलवी महाशय, रुड़कीकी भाँति, यहाँ भी अड़ते थे कि नहीं, सम्वाद मौखिक ही होना चाहिए। लिखने और फिर बोलनेमें चित्त उचट जाता है, स्मृति ठिकाने नहीं रहती। सम्वाद जनताके सम्मुख भी नहीं होना चाहिए। इसमें भीड़ भड़क्का बहुत होगा। कोई आश्चर्य्य नहीं कि परस्पर लड़ाई-भिड़ाईतक नौबत आ जाय।

स्वामीजीने कहा, "केवल मौखिक सम्वादसे कोई परिणामपर नहीं पहुँच सकता। कई वादी अपने सिद्धान्तको निर्बल देखकर, चातुर्य्य और प्रवंचनाकी पेचीली चालोंसे, अपने पक्षहीको बदल डालते हैं? वे अपने पहले कहे शब्दोंसे नकार कर बैठते हैं। एक एक वचनपर, अड़कर सारा समय व्यर्थमें खो देते

हैं । लिखकर बोलनेमें ऐसी बातोंकी सम्भावना न रहेगी । ठीक प्रबंधसे हो जानेसे झगड़े टण्टेका सन्देह मिट जायगा । ”

मुख्याध्यापक केस्पन महाशयने मौलवीजीको कहा, “स्वामीजीका कथन युक्ति-संगत है । प्रश्नोत्तर लिखकर बोलनेमें बहुत लाभ है । जो आपने चित्त उखड़ जाने और युक्तियाँ भूल जानेकी बात कही वह उपहास-जनक है । भला वह विद्वान् ही क्या है जिसके विचार इतनेमें ही उलट पलट हो जाते हैं और जिसकी स्मृति ठिकाने ही नहीं रहती ? ”

मौलवी महाशयने एक न मानी; किसीकी न सुनी । वे यही पुराना तराना गाते रहे कि ‘सम्वादमें लिखकर बोलना अनुचित है’ । उनकी इसी बातपर तान टूटी कि सर्वसाधारणके सामने सम्वाद न करना चाहिए ।

इस प्रकार मौलवी महाशयकी टालमटोलसे मेरठमें भी सम्वाद न हो सका, परन्तु वैदिक धर्म्मकी सचाईका सिक्का लोगोंके हृदयोंपर बैठ गया ।

मेरठमें धर्म्म-प्रचार करनेके पश्चात् स्वामीजी अलीगढ़ आये । यहाँ उनके परम भक्त ठाकुर मुकुन्दसिंहजी और भूपालसिंहजी आकर उन्हें छलेसर ले गये । उन दिनोंमें स्वामीजीका स्वास्थ्य अच्छा न था, इसलिए वे वार्त्तालाप द्वारा ही सत्संगियोंको निहाल करते रहे । श्रीयुत इन्द्रमनजी स्वामीजीके दर्शनार्थ छलेसर आये । उन्होंने स्वामीजीसे मुरादाबाद पधारनेकी प्रार्थना की । एक माससे अधिक समयपर्यन्त छलेसरमें निवास करनेके उपरान्त ३ जुलाई १८७९ को स्वामीजी मुरादाबादको प्रस्थान कर गये ।

मुरादाबादमें महाराजका निवास राजा जयकृष्णजीके बङ्गलेमें हुआ । उनका स्वास्थ्य अभीतक, पूर्ववत् नीरोग न हुआ था इसलिए इस बार उनके तीन व्याख्यान ही होसके ।

स्वामीजी जहाँ अद्वितीय दार्शनिक थे, परम योगी थे, धर्म्मके मर्मके अतुल्य ज्ञाता थे, अपने समयके असमान सुधारक थे और भारतभरमें एक ही विख्यात वक्ता थे, वहाँ वे राजनीति और राज-धर्म्मके भी एक धुरन्धर पण्डित थे । महाराजका समय, राज-पुरुष-तन्त्र-शासन और दमन नीतिके यौवनका युग था । निर्भय परिव्राजकाचार्य्य समयानुसार तीव्र समालोचना और टीका टिप्पणी भी किया करते थे । परन्तु उनके कथन इतने दार्शनिक, इतने निर्मल

और इतने व्यापी होते थे कि उन्हें सुनकर राजकर्म्मचारी भी प्रसन्नता प्रकाशित करते थे; उनसे राजा-प्रजा-धर्म्मके व्याख्यान भी कराते थे।

मुरादाबादके कलेक्टर स्पेडिङ्ग महाशयने एक दिन श्रीसेवामें निवेदन किया कि आप राष्ट्र-नीतिपर एक व्याख्यान देना स्वीकार कीजिए। उसका सारा प्रबन्ध मैं आप करूँगा। महाराजने उनकी प्रार्थनाको स्वीकार कर लिया। कलेक्टर महाशयने छावनीमें व्याख्यानका प्रबन्ध किया और लोगोंके प्रवेशके लिए टिकट वितरण कर दिये। नगरके सज्जनों और सब आर्य्य जनोंको टिकट मिल गये। नियत समयपर महाराजने भारतीय और यूरोपियन सज्जनोंको सम्बोधन करते हुए राष्ट्र-नीतिके उदात्त सिद्धान्तोंका निरूपण किया। शासकों और शासितोंके सम्बन्ध बताये, शासन-नीतिके पक्षपात आदि दोषोंका वर्णन किया।

उनका यह व्याख्यान, कई घण्टोंतक होता रहा और देशी विदेशी सभी दत्तचित्त होकर सुनते रहे। समाप्तिपर स्पेडिङ्ग महाशयने खड़े होकर धन्यवादपूर्वक स्वामीजीकी प्रशंसाकी और कहा, महाराजने जो कुछ वर्णन किया है वह सर्वथा सत्य है। यदि इस नीतिके अनुसार राजा-प्रजाके सम्बन्ध होते तो जो कष्ट हलचलमें उठाने पड़े हैं वे कभी सामने न आते।"

उसी स्थानमें, कालीप्रसन्न नामक एक वकील स्वामीजीके निकट बैठा, अँगरेजीमें बातचीत कर रहा था। उन्होंने उसे कहा "महाशय! अपनी भाषामें वार्त्तालाप करना ही उत्तम है। स्वदेशियोंमें बैठकर विदेशी भाषामें बोलने लग जाना, भला प्रतीत नहीं होता, प्रत्युत ऐसा करना भद्दा लगता है और इससे घमण्ड भी प्रकट होता है। यदि छिपाकर बात करनेका प्रयोजन हो तो भी ठीक नहीं। यहाँ अँगरेजी समझनेवाले अनेक बैठे हैं। किसीसे छिपाकर काना-फूसी करना धर्म्मविरुद्ध, चोरकर्म है।"

स्वामीजीमें हठ नहीं था। वे अति कोमल और सरल थे। यदि कोई साधारण जन भी उन्हें नीति-न्यायकी कोई बात कहता तो वे तत्काल मान लेते। एक दिन, महाराजके पास एक पण्डित आया और संस्कृतमें वार्त्तालाप करने लगा। दैवयोगसे उनके मुखसे एक अशुद्ध शब्द निकल गया। उस पण्डितने उसी समय उन्हें कहा कि 'आपसे यह अशुद्धि हुई है' स्वामीजीने मान लिया कि 'हाँ, मुझसे भूल होगई है।" थोड़ी देरके पश्चात् जब

स्वामीजीके एक दो प्रेमी वहाँ आ गये तो उस पण्डितने फिर कहा, "स्वामीजी! आज मैंने आपकी एक अशुद्धि पकड़ी थी," उन्होंने उत्तर दिया कि "ठीक, आपने आज मेरी भूल निकाली है और मैंने उसे स्वीकार कर लिया है।" परन्तु वह पण्डित महाशय तो सोंठ की एक गाँठ पाकर पूरा पंसारी बन बैठा था। लगा बार बार आलापने कि आज मैंने आपकी एक भूल पकड़ी ली है! महाराजने जब देखा कि यह सिर ही चढ़ा जाता है तो उसे कहा, "तुम परले सिरेके सिड़ी और अड़ियल मनुष्य हो। मेरी सरलतासे लाभ उठाकर वक्र चाल चलने लग गये हो। अशुद्ध शब्द पर हठ करना अधर्म्म है। मैं ऐसा हठ कदापि नहीं करूँगा, परन्तु तुममें ऐसी सामर्थ्य कहाँ कि उसे अशुद्ध सिद्ध कर सको। इस बाल-लीलामें क्या पड़ा है? यदि कुछ पूछना चाहते हो तो कोई धर्म्मकर्म्म की बात पूछो।" इससे वह पण्डित अतीव लज्जित हुआ।

श्रावण सु० १ सं० १९३६ को दुबारा आर्य्य समाज स्थापन करना नियत हुआ। राजा जयकृष्णके बङ्गलेपर हवन-सामग्री मँगाई गई। यज्ञके अनन्तर बाँटनेको मोहन-भोग भी आ गया। परन्तु ठीक समय पर वर्षा होने लगी। जब वृष्टि थमनेमें ही न आई तो स्वामीजीके आदेशसे एक कमरेमें हवन-यज्ञ करके समाजकी शुभ स्थापना की गई और सब उपस्थित सज्जनोंको मोहन-भोग वितरण किया गया।

श्री इन्द्रमनजीने स्वामीजीसे निवेदन किया "आप परस्पर 'नमस्ते' कहनेका आदेश करते हैं परन्तु हमने पहले 'जय गोपाल' शब्द चलाया था और फिर 'परमात्मा जीते' कहना आरम्भ कर दिया। पहले शब्दोंपर ही लोगोंने बहुतेरे कटाक्ष किये थे। अब यदि नया 'नमस्ते' शब्द चलाया तो लोग हमारी खिल्ली उड़ाने लग जायँगे। वैसे भी देखें तो मेल-मिलापमें 'परमात्माजीते' ऐसा कहना बहुत ही उचित है। छोटा तो बड़ेको 'नमस्ते' करता अच्छा लगता है, परन्तु पिता पुत्रको, स्वामी नौकरको और राजा अपने एक चपरासीको 'नमस्ते' कहे यह बात शोभा नहीं देती।"

स्वामीजीने कहा—"इन्द्रमनजी! अभिमानी पुरुष बड़ा नहीं होता। बड़ा वही है जिसने अपने अहङ्कारको जीता! जो वास्तवमें बड़े हैं वे अपने

बड़प्पनको आप प्रकट नहीं किया करते। हमारे पूर्वजोंमें जितने भी ऋषि महर्षि और राजे महाराजे हुए हैं उनमेंसे एकने भी अपने मुखसे अपनी बड़ाई नहीं बताई। 'नमस्ते' का अर्थ पाँवपकड़ना नहीं है; इसका अर्थ है सम्मान-सत्कार। सभी ऊँच-नीच और छोटे-बड़े-मेल-मिलापमें सम्मानसत्कारके भागी हैं। सर्वत्र होता भी ऐसे ही है। अच्छा, आपही अपने अन्तःकरणसे कहें कि जब कोई मनुष्य आपके आवासपर आता है तो उस समय आपके हृदयमें क्या भाव उत्पन्न होता है ?"

इन्द्रमनजी इसपर मौन साधे रहे। तब स्वामीजीने फिर कहा—"महाशय ! इस बातको सभी जान जाते हैं कि जब कोई पूज्य और प्रतिष्ठित मनुष्य घरपर आता है तो उसे देखकर अभ्युत्थान और झुककर सम्मान देनेको जी चाहता है। पुत्रसे प्यार करनेका भाव उत्पन्न होता है। नौकरचाकरोंको अन्न-जल और आइए, बैठिये आदि शब्दोंसे सत्कृत करनेकी हृदय प्रेरणा करता है। ऊपर कहे सारे भावोंका प्रकाश 'नमस्ते' से तो होजाता है परन्तु उस समय परमेश्वरका नाम लेना असंगत है; आत्मगत भावोंके विपरीत है। जो भाव भीतर हो उसीको बाहर प्रकाशित करना शोभा देता है।'

"पुरातन कालमें आर्य्य लोग 'नमस्ते' ही कहा करते थे। यह शब्द वेदोंमें भी अनेक बार आया है। आर्य जनोंमें इसीका प्रचार होना चाहिए।"

कायमगंजके निवासी, श्रीरामलालजी वर्षा ऋतुके कष्ट झेलते हुए, मुरादाबादमें इसलिए आकर ठहरे थे कि स्वामीजीसे यज्ञोपवीत धारण करें। वे महाशय इन्द्रमनजीके पास टिके हुए थे। एक दिन इन्द्रमनजीने रामलालजीको साथ ले जाकर महाराजकी सेवामें विनय की—"भगवन् ! यह महाशय बड़े श्रद्धालु भक्त हैं। आपसे धर्म्म-दीक्षा ग्रहण करना चाहते हैं। इसी लग्नमें कड़े कष्ट सहते यहाँ आये हैं।"

महाराजने रामलालके धर्म्म-भाव और दृढ़ धारणाको देखकर, शुभ समयपर विधिपूर्वक, उसे यज्ञोपवीत प्रदान किया। गायत्रीका उपदेश करके शुभ शिक्षा दी। जब उसने गायत्रीका शुद्ध उच्चारण स्वामीजीको सुनाया तो उन्होंने बड़े वत्सल भावसे उसे आशीर्वचन दिया अपना परम पुनीत हाथ उसकी पीठकर

प्रेमसे फेरते हुए कहा—"वत्स! हमारा शरीर बहुत देरतक नहीं रहेगा। आप आजीवन हमारी पुस्तकोंसे उपदेश लेते रहना। जहाँतक बन पड़े अपने भूले भटके भाइयोंको भी सन्मार्ग दिखलाते रहना।"

महाशय रामलालने गुरुदेवके उपदेशामृतको सिर आँखोंपर स्वीकार किया, अन्तःकरणमें बसा लिया। रामलालजी दस दिनपर्यन्त श्रीचरणशरणमें सत्संग लाभ करते रहे। एक दिन उन्होंने बद्धाञ्जलि होकर विनय की, "भगवन्! आपके आरोग्यपर कोई आघात हुआ जान पड़ता है।" महाराजने कहा—"इस देहको कई बार बिकट तथा विषम विष दिया गया है। ऐसे कालकूट विषोंको, कितना ही योग-क्रियाओंसे वमन तथा बस्ति-कर्मद्वारा, निकाल दिया जाय परन्तु रक्तमें मिश्रित हुआ हलाहल विष सर्वांशमें नहीं निकलता। उसका प्रभाव कुछ न कुछ बना ही रहता है यही कारण है जो मेरे स्वास्थ्यकी आधार-शिला हिल गई है। यदि मुझपर ऐसे भीषण विष-प्रयोग न किये जाते तो इस शरीरपर शिथिलताका चिन्ह, एक शताब्दिमें तो, कदापि न दीख पड़ता और न ही इतनी देरतक जरा-रोग इसके पास फटकने पाता।"

रामलालजीने फिर प्रार्थना की—"गुरुदेव! जब, आप अपने जनोंको नैराश्य-निशा दिखानेवाले शब्द कहने लग गये हैं तो आप ऐसे सुयोग्य शिष्य क्यों नहीं बनाते जो नौकाके निपुण नाविक बन सकें, जो सर्वस्व स्वाहा करके भी आपके उद्देश्यकी पालना करें?"

महाराजने गम्भीर भावसे कहा—"वत्स! मैंने पहले पहल पाठशालायें चलाकर अनेक पण्डित शिष्य बनाये। वे लोग मेरे सम्मुख तो बहुतेरी विनय अनुनय प्रदर्शित करते परन्तु मुझसे पृथक् होकर वैसेके वैसे पौराणिक बने रहते। कई एक तो मेरे प्रतिकूल अपनी चालोंका तानाबाना तनने लग जाते! अब तो मुझे निश्चय हो गया है कि इस जन्ममें, मुझे सुयोग्य शिष्य नहीं मिलेगा। इसका प्रबल कारण भी है। मैं तीव्र वैराग्य-वश, यौवन-कालहीमें अपने पूज्य माता-पितादि परिवार-परिजनका परित्याग कर मृत्युको जीतनेके लिए योगाभ्यास करता रहा हूँ। मैंने घर छोड़ते समय माताकी ममताका कोई ध्यान नहीं किया। पितृ-ऋण भी नहीं उतारा। ये ऐसे कर्म हैं जो मुझे सुयोग्य शिष्य मिलनेके मार्गमें प्रबल प्रतिबन्धक हैं। परन्तु निराशाकी कोई

बात नहीं है । आर्य्य समाजमें ऐसे जन अवश्य प्रकट होंगे, जो मेरे परम लक्षकी पूर्णतासे पालना करेंगे ।"

दसवाँ सर्ग ।

मुरादाबादमें धर्म्म-प्रचार करनेके उपरान्त श्रीस्वामीजी श्रावण सु० १३ सं० १९३६ को बदायूँमें सुशोभित हुए और साहू गङ्गारामके उद्यानमें ठहरे । यहाँ उनके दो तीन प्रभावशाली उपदेश हुए । लोगोंने सत्सङ्गका भी बहुत लाभ लूटा ।

बदायूँके मुसलमानोंने सम्वाद करनेके लिए मौलवी मुहम्मद कासिमको बहुतेरा बुलाया परन्तु वे अन्तिम दिनतक न आये । कुछ एक पौराणिक पण्डित स्वामीजीकी सेवामें उपस्थित हुए और अपने प्रश्नोंका यथायोग्य उत्तर पाकर चले गये ।

रक्षा-बन्धनके दिन बहुतसे तरुण और वृद्ध रक्षा बाँधनेके लिए स्वामीजीके निकट आये । महाराजने मुस्कराकर कहा कि आप लोग अपनी देश-रीति तक भूल गये हैं । पूर्वकालमें बूढ़े रक्षा बाँधे नहीं फिरते थे । उस समय, इस पर्वके दिन सब विद्यार्थियोंके हाथमें, राजाकी ओरसे रखड़ी बाँधी जाती थी । उससे यह सूचित किया जाता था कि इनकी रक्षा करना राजा-प्रजा दोनोंका कर्त्तव्य है।

एक वैद्यने अपने एक साथीको स्वामीजीके सामने करके कहा कि महाराज ! इसमें चिरकालसे भूतावेश है । स्वामीजीने हँसकर कहा कि आप वैद्य होकर भी ऐसे भ्रमजालमें फँसे पड़े हैं । भूत तो बीते हुए समयका नाम है । यह कोई योनिविशेष नहीं है । आयुर्वेदमें ऐसे अनेक रोग वर्णन किये हैं, जिनमें रोगोंकी उन्मत्त दशा हो जाती है । स्वामीजीने उसे औषध प्रदान किया और कहा कि यदि अनुपान और पथ्यपूर्वक इसका यथाविधि सेवन करोगे तो यह व्याधि उपशमन हो जायगी ।

बदायूँ-वासियोंको उपदेशामृत पान कराकर श्रीमहाराज भादों वदी द्वादशी सम्वत् १९३६ को बरेली आये और बेगम उद्यानमें लाला लक्ष्मी नारायणकी कोठीमें विराजमान हुए । वहाँ उनके कई दिनतक अति प्रभावजनक व्याख्यान हुए । उनमें पादरी महाशय और उच्च राजकर्मचारी सभी सम्मिलित होते थे ।

स्वामीजी अपने प्रण-पालनपर बड़ा ध्यान दिया करते। एक शनिवारको लोगोंने कहा, "महाराज! कल छुट्टीका दिन है। इस लिए, नियत समयसे एक घण्टा पहले व्याख्यान आरम्भ कीजिएगा। उन्होंने उत्तरमें कहा, "मैं नगरसे डेढ़ कोसके अन्तरपर ठहरा हुआ हूँ; यदि गाड़ी समयपर पहुँच गई तो समयपर अवश्य आ जाऊँगा।" लाला लक्ष्मनारायणने निवेदन किया कि गाड़ीका प्रबन्ध, मैं कर दूंगा।

अगले दिन, लोग तो समय पर पहुँच गये, परन्तु स्वामीजी पौन घण्टा पीछे, सार्वजनिक भवनमें प्रविष्ट हुए। व्याख्यानके आदिमें उन्होंने कहा, "मैं तो समयपर समुद्यत था, परन्तु गाड़ी नहीं पहुँच सकी। अन्तमें पैदल चलकर आ रहा था कि मार्गमें गाड़ी मिली। समय अतिक्रम करनेमें मेरा दोष नहीं, किन्तु बच्चोंके बच्चोंका है, अर्थात् बाल विवाहकी सन्तानोंमें ऐसी निर्बलताका होना आश्चर्य नहीं है।"

एक दिन महाराज पुराणोंकी कथाओंकी समालोचना करते हुए कहने लगे कि इन ग्रन्थोंके कर्त्ताओंने कुन्ती आदि कन्याओंपर कितने कपोलकल्पित कलंक मढ़े हैं! तारा और दामोदरीपर कैसे मिथ्या आरोप किये हैं! स्वामीजीके कथनमें उपहास-रस इतना रहता था कि व्याख्यान चाहे जितना लम्बा हो, किसीको नहीं खलता था। किसीका भी जी ऊबता न था। कभी कभी तो सारा सभा-समुद्र हँसीसे झकझोरा खाने लग जाता था।

पुराणोंकी समालोचनापर पादरी महाशय, कलेक्टर और कमिश्नर महाशय तथा अन्य योरुपीय सज्जन जी खोलकर हँसते रहे। थोड़ी देरहीमें स्वामीजीने कहा, "यह तो है पौराणिकोंकी लीला; अब किरानियोंकी सुनिये। ये लोग ऐसे हैं कि कुमारीके पुत्र होना बताते हैं और उसका दोष सर्वज्ञ शुद्ध-स्वरूप परमेश्वरपर लगाते हैं। यह घोर कर्म करते, ये लोग तनिक भी लज्जित नहीं होते।"

यह सुनकर कमिश्नर महाशयका चेहरा कोपावेशसे तमतमा उठा। स्वामीजी उसी वेगमें व्याख्यान देते चले गये और अन्ततक ईसाई मतपर ही बोलते रहे।

अगले दिन, कमिश्नर महाशयने लाला लक्ष्मीनारायणको बुलाकर कहा, "आप पण्डित महाशयको कह दीजिए कि अधिक कठोर खण्डनसे काम न

लिया करें। हम ईसाई लोग तो सभ्य और सुशिक्षित हैं। वादप्रतिवादमें नहीं घबराते। परन्तु यदि हिन्दू मुसलमान उत्तेजित हो गये तो उनके व्याख्यान बन्द हो जायँगे।"

श्रीलक्ष्मीनारायण, स्वामीजी तक यह समाचार पहुँचा देनेका वचन देकर कमिश्नर महाशयसे बिदा हो आये। परन्तु इस समाचारको स्वामीजीकी सेवामें पहुँचाए कौन, इसका उत्तर उन्हें नहीं सूझता था। आप तो वे क्या ही साहस कर सकते थे, परन्तु अपने मित्रोंमेंसे भी जिस किसीको कहते, वह कानोंपर हाथ धर लेता। अन्तमें एक नास्तिकने बीड़ा उठाया कि चलिए, मैं स्वामीजीको सब कुछ कह दूँगा। श्रीलक्ष्मीनाराण उस मनुष्य और कुछ एक अन्य सज्जनों-सहित श्री-सेवामें उपस्थित हुए। उस नास्तिकपर महाराजकी तेजोमयी मूर्त्तिका ऐसा प्रभाव पड़ा कि वह बड़ी कठिनतासे इतने ही शब्द कह सका, "कमिश्नर महाशयने लाला महाशयको बुलाया था, इस लिए ये कुछ निवेदन करना चाहते हैं।"

लाला महाशयने जब देखा कि घूम घामकर विपत्ति उन्हींके सिरपर आ पड़ी है तो वे बहुत घबराये। कितने ही पलोंतक वे किंकर्त्तव्यविमूढ बने रहे। अन्तमें खाँसते खखराते वे रुक-रुककर बोले, "महाराज! यदि नर्मीसे काम लिया जाय तो बहुत अच्छा है। इससे जनतापर प्रभाव भी बहुत अच्छा पड़ेगा और अँग्रेज़ भी प्रसन्न रहेंगे।"

यह सुनकर स्वामीजी हँस पड़े और कहने लगे, "इतनीसी बातपर ही आप गिड़गिड़ा रहे हैं! इसीके लिए ही आपने हमारा इतना समय नष्ट किया है। कमिश्नर महाशयने यही कहा है न कि आपका पण्डित बड़ा खण्डन करता है। उसके व्याख्यान बन्द हो जायँगे। भाई मैं कोई हौआ तो नहीं था जिससे आप इतना डरते रहे। सरलतासे, यही बात सुनानेमें झिझकते क्यों रहे हो?"

इस समय एक विश्वासी जन बोल उठा—"स्वामीजी तो सिद्धपुरुष हैं; मनकी जान लेते हैं।"

अगले दिनका व्याख्यान आत्माके स्वरूपपर था। जब स्वामीजी नागरिक भवनमें पधारे तो वह श्रोताओंसे खचाखच भरा हुआ था। पादरी स्काट

महाशयको छोड़कर, पहले दिनवाले अन्य सभी योरुपीय सज्जन उपस्थित थे। महाराजने व्याख्यानमें आत्माके गुणोंको वर्णन करते सत्यपर कहना आरम्भ कर दिया। उन्होंने गम्भीर गर्जनासे कहा, "लोग कहते हैं कि सत्यका प्रकाश न कीजिए, क्योंकि कलेक्टर कुपित हो जायगा, कामिश्नर प्रसन्न नहीं रहेगा, गवर्नर पीड़ा पहुँचायगा। अजी! चाहे चक्रवर्त्ती राजा भी अप्रसन्न क्यों न हो जाय, हम तो सत्य ही कहेंगे।" इसके पश्चात् महाराजने कुछ उपनिषद्वाक्य बोलकर कहा, "आत्मा सत्य है। उसकी सत्ताको न कोई शस्त्र छेदन कर सकता है और न अग्नि जला सकती है। वह एक अजर, अमर और अविनाशी पदार्थ है। शरीर तो अवश्यमेव नाशवान् है, जिसका जी चाहे इसका नाश करदे। परन्तु हम देहकी रक्षाके लिए सनातन धर्मको नहीं त्यागेंगे। सत्यको नहीं छोड़ेंगे।" फिर वे अपने दोनों उद्दीप्त नेत्रोंकी ज्योतिका चारों ओर संचार करके बोले—"वह शूरवीर पुरुष मुझे दिखाइए, जो मेरे अन्तरात्माको छिन्न भिन्न करनेका घमण्ड करता हो। जबतक ऐसा पुरुष दृष्टिगोचर नहीं होता दयानन्दके लिए सत्यमें सन्देह करना स्वप्नमें भी असम्भव है।"

भगवान्के सिंह-नादसे सारा भवन निनादित हो गया। सब ओरसे उन्हींके शब्द प्रतिध्वनित होने लगे। सारी सभापर सन्नाटा छा रहा था। महाराजने भाषण समाप्त भी कर दिया; परन्तु लोगोंके कानोंमें उसका नाद गूँजताही रहा।

पादरी स्काटके साथ महाराजकी प्रीति थी। स्काट महाशय, अत्यादरसे प्रतिदिन व्याख्यानमें आते थे। वह पहला ही दिन था कि उनके निरन्तर आनेमें अन्तर पड़ा। स्वामीजीने व्याख्यानके पश्चात् पूछा कि भक्त स्काट नहीं आये? किसीने उत्तर दिया कि आदित्यवारको उनका गिर्जा होता है, इसी लिए वे नहीं आ सके। भवनसे बाहर आकर महाराजने कहा कि चलो, आज भक्त स्काटका गिर्जा देख आयें। तीन चार सौ मनुष्योंके साथ स्वामीजी गिर्जेमें पहुँचे। स्वामीजीको आते देख स्काट महाशय तत्काल वेदीपरसे नीचे उतर आये और प्रार्थना-पूर्वक महाराजको वेदीपर ले जाकर उपदेशके लिए विनय की। उनके आग्रहपर स्वामीजीने वहाँ कोई एक घड़ीपर्यन्त उपदेश

दिया और मनुष्योंको ईश्वर माननेमें दोष दिखाये। लोगोंने उनके भाषणको एकाग्रचित्त होकर श्रवण किया।

बरेलीमें स्वामीजीके साथ स्काट महाशयका सम्वाद भी हुआ। यह सम्वाद सम्वत् १९३६ की भादों सुदी ७ से ९ तक बरेली पुस्तकालयमें लाला लक्ष्मी नारायणके सभापतित्वमें हुआ। उत्तर प्रत्युत्तर लिखकर सुनाये जाते थे। इसमें तीन लेखक थे—एक स्वामीजीके पास, दूसरा पादरी महाशयके निकट और तीसरा सभापतिके पास प्रत्येक प्रतिपर तीनोंके हस्ताक्षर होते थे। इस सम्वादका संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है:—

भादों सुदी ७ सम्वत् १९३६ को पुनर्जन्मपर व्याख्यान आरम्भ करते हुए स्वामीजीने कहा—"जीव और जीवके स्वाभाविक गुण, कर्म और स्वभाव अनादि हैं। न्यायादि परमेश्वरके गुण भी अनादि हैं। जो मनुष्य जीवके गुणोंकी उत्पत्ति मानता है उसे उनका नाश भी मानना पड़ेगा। कारणके विना कार्यका होना असम्भव है, इस लिए उसे सिद्ध करना होगा कि सत्यका कारण क्या है। जीवके शुभाशुभ कर्म प्रवाहसे अनादि हैं। उनका यथावत् फल देना ईश्वराधीन है। स्थूल और कारणशरीरके विना जीव सुख-दुःखका भोग नहीं कर सकता। इसलिए उसका बार बार देह-धारण करना आवश्यक है। प्रत्येक शरीरमें क्रियावान् होनेके कारण, जीव नये नये क्रियमाण, संचित और प्रारब्ध कर्म उत्पन्न करता रहता है। दिन और तिथिके बार बार लौट आनेसे भी प्रत्यक्ष सिद्ध है कि सृष्टिमें फिर फिर आनेका नियम विद्यमान है।"

इसपर पादरी महाशयने कहा, "पुनर्जन्मका सिद्धान्त है तो पुरातन, परन्तु अब लिखी-पढ़ी जातियाँ इसे छोड़ती चली जाती हैं। यह विचार अब मिट रहा है। मैं स्वामीजीसे पूछता हूँ कि क्या ईश्वरीय आत्माके बिना अन्य आत्मायें भी अनादि हैं? वे आत्मायें कभी जन्मके चक्रसे पार भी होंगी? क्या पुनर्जन्म दण्ड भोगनेके लिए ही है? परमेश्वर सदा सगुण ही रहता है अथवा कभी निर्गुण भी होता है? पुनर्जन्म लेना उसीके नियमपर निर्भर करता है अथवा किसी अन्य नियमपर?"

स्वामीजीने उत्तर दिया—"जीव, ईश्वर और प्रकृति ये तीन अनादि पदार्थ हैं। जीव पुनर्जन्मसे कभी निवृत्त न होंगे। जन्मका होना दुःख-सुख

दोनोंके लिए है । ईश्वर सदा ही सगुण और निर्गुण है । कोई जीव जैसा पुण्य-पाप करता है उसे वह वैसा ही, अपने अटल न्यायसे फल प्रदान करता है । पादरी महाशयने कहा कि 'इस पुरानी शिक्षाको सुधरी हुई जातियाँ छोड़ती चली जाती हैं' । मैं पूछता हूँ कि क्या नवीन शिक्षा सर्वांशमें सत्य है ? क्या पुरानी शिक्षा माननेके योग्य नहीं है तो बाईबलकी शिक्षा भी तो आजकी अपेक्षा पुरानी है तब तो यह भी आपको छोड़नी पड़ेगी !"

पुनर्जन्मपर उत्तर-प्रत्युत्तर होकर यह विषय समाप्त किया गया और अगले दिन भाद्रपद शुक्ला ८ को पादरी महाशयने ' ईश्वर देह धारण करता है ' के विषयपर सम्वाद आरम्भ किया । उन्होंने कहा—"आजका प्रश्न यह है कि परमेश्वर देह धारण करता है अथवा नहीं ? मनुष्यको चाहिए कि इस विषयपर सोच विचारकर बातचीत करे । अहङ्कारसे काम न ले । हम उसके ज्ञान और सामर्थ्यको कुछ भी नहीं जानते । यदि जानते भी हैं तो बहुत स्वल्प जानते हैं । आजके प्रश्नके दो भाग हैं—एक तो यह कि क्या ईश्वर देहधारण कर सकता है ? और दूसरे यह कि क्या कभी ऐसा हुआ भी है ? मनुष्यके और परमात्माके आत्मामें बहुतसे गुणोंमें समानता है । इनके दयादि गुण आपसमें मिलते हैं । इस अवस्थामें, जब हम देह धारण करते हैं तो ईश्वर क्यों न देह धारण करेगा ? "

इसपर स्वामीजीने समालोचना की, "पादरी महाशयने जब यह कह दिया कि हम ईश्वर-विषयमें कुछ नहीं जानते और यदि जानते भी हैं तो अति स्वल्प, तो फिर पादरी महाशयको कुछ कहनेका अधिकार नहीं रहा । पादरी महाशयने कहा कि ईश्वर देह धारणकर सकता है । मैं पूछता हूँ, उसे ऐसा करनेकी क्या आवश्यकता है ? दूसरे उसकी इच्छाका कोई नियम है वा नहीं ? तीसरे वह निराकार है अथवा साकार ? चौथे वह सर्वव्यापी है वा एकदेशी ? जीव और ईश्वरके दयादि गुण क्या पूर्णतासे मिलते हैं ? यदि गुणोंसे दोनों बराबर हैं तो दोनों परमेश्वर सिद्ध हुए । ईश्वर जब देह-धारण करता है तो वह अखिल स्वरूपसे देहमें आता है अथवा अंश अंश होकर ? यदि अंशका आना मानते हो तो परमात्मा नाशवान् सिद्ध हो जायगा । यदि यह मानो

कि परमात्मा अपने सकल स्वरूपसे शरीरमें प्रवेश करता है तो वह शरीरसे छोटा सिद्ध हुआ। अल्प महान्का ईश्वर नहीं हो सकता। देहधारी हो जानेसे ईश्वर और जीव दोनों समान हो जाते हैं। दोनोंमें कुछ भी भिन्नभेद न रहनेसे उनमेंसे एकको ईश्वर मान लेना, सर्वथा अयुक्त है।

यदि ईश्वर एकदेशी है तो वह एक स्थानमें रहता है अथवा सर्वत्र घूमता फिरता है? यदि उसे एक स्थानमें स्थित माना जाय तो उसे सर्वत्रका ज्ञान नहीं हो सकता। उसका घूमते रहना मानना भी दोषयुक्त है। फिर उसका अटक जाना और दूसरे पदार्थोंसे टकराकर आघात प्रत्याघातका सहन करना भी मानना पड़ेगा।

परमात्मा सृष्टिकी रचना निराकार स्वरूपसे करता है अथवा साकारसे? निराकार स्वरूपसे रचना मानना तो ठीक है, परन्तु यदि साकार स्वरूपसे आप सृष्टिकी रचना मानते हैं तो यह युक्ति-सङ्गत नहीं है। साकार ईश्वरसे सृष्टिका रचा जाना सर्वथा असम्भव है। जब त्रसरेणु ही साकार की पकड़में नहीं आते तो वह साकार ईश्वर, सृष्टिके कारणरूप, परमाणुओंको कैसे वशीभूत कर सकेगा।"

वाद-प्रतिवाद होजानेके अनन्तर यह विषय समाप्त हो गया। फिर भाद्रपद शुक्ला नवमीको 'ईश्वर पाप क्षमा भी करता है' इस विषयपर संवाद आरम्भ हुआ। पादरी महाशयने पूर्वपक्षस्थापन करते कहा, मेरी यह प्रतिज्ञा नहीं है कि ईश्वर दण्ड नहीं देता। वह दण्ड तो अवश्य देता है, परन्तु देता है समयानुसार और उचित रीतिसे। वह मनुष्यकी भलाईके लिए पाप क्षमा भी कर देता है जब वह पूर्ण है, सगुण है और चेतन है तो हमें समझना चाहिए कि वह हमें देखता है और हमारी चिन्ता भी करता है। ईश्वरको और हमारी समानता अवश्य है। बहुधा जीव और ईश्वरके गुण मिलते हैं। इससे हमें समझना चाहिए कि ईश्वरके साथ भी हमारा वैसा ही सम्बन्ध है, जैसा हमारे सम्बन्धियोंके साथ। वेद आदि सभी धार्मिक ग्रन्थ ईश्वरके साथ हमारा सम्बन्ध राजा-प्रजा और पिता-पुत्रका वर्णन करते हैं। उनके इस कथनमें, अवश्यमेव यह बात समाई हुई है कि परमात्मा भी राजा और माता-पिताके तुल्य ही वर्त्ताव करता है। यद्यपि राजा और माता-पिता दण्ड

देते हैं परन्तु उनका इसमें यही आशय होता है कि वे लोग सुधर जायँ। यदि वे समझें कि सुधार क्षमासे हो सकता है तो वे क्षमा भी कर देते हैं।"

स्वामीजीने पादरी महाशयके पक्षका प्रतिवाद करते कहा, "इनका यह कथन कि परमेश्वर क्षमा भी कर देता है और दण्ड भी अवश्य देता है, परस्पर विरुद्ध है। क्या वह आधे कर्मोंके लिए दण्ड देता और आधे कर्म क्षमा कर देता है, अथवा कुछ न्यूनाधिक। जैसे हममें ज्ञान और न्याय आदि गुण हैं, क्या वैसे ही ईश्वरमें हैं?

मैं भी मानता हूँ कि ईश्वरके साथ हमारा राजा और पिताके समान संबंध है; परन्तु वह अन्यायके लिए नहीं है। ईश्वरमें अन्याय नहीं है, इस लिए वेदादि शास्त्रोंमें पापका क्षमा करना नहीं कहा। ईश्वर पाप क्षमा कर देता है यह माननेसे वह पापका बढ़ानेवाला सिद्ध हो जाता है। क्षमाकी आड़में पापी जन पाप-कर्म करनेमें उत्साहित हो जाते हैं। परमात्मा सर्वज्ञ है। इसी लिए उसके कर्मोंमें भूल और भ्राँति नहीं होती। वह अपने स्वाभावसे उलटा कार्य्य भी नहीं करता। न्याय उसका स्वभाविक गुण है। इससे उलटा कर्म क्षमा कर देना—भला वह कब करने लगा है? परमात्मा दयालु ठीक है, परन्तु उसका न्याय और दया एक ही प्रयोजनको सिद्ध करते हैं। यदि एक डाकूको क्षमा कर दिया जाय तो यह कर्म दयामें नहीं गिना जायगा। वह सहस्रों मनुष्योंकी हत्या करनेवाला दस्यु, क्षमा-प्राप्तिके अनन्तर चौगुने साहससे भ्रूण-हत्या तक करने लगेगा। ईश्वरकी दयाका जो अर्थ पादरी महाशयने समझा है वह यथार्थ नहीं।"

इस विषयपर उत्तर-प्रत्युत्तर सविस्तर होते रहे और अन्त में बड़ी शान्तिसे सम्वाद समाप्त हुआ।

जिन दिनोंमें महाराज बरेलीमें धर्म्म-प्रचार-कर रहे थे उन्ही दिनों महात्मा मुन्शीरामजीके पिता वहाँ नगरके कोतवाल थे। महात्माजी भी अपने पिताके पास ही आये हुए थे। उस समय वे राजकीय महाविद्यालयमें अध्ययन करते थे। ईश्वर और वेदमें उनका विश्वास न था। धर्म्म-कर्ममें भी उनकी धारणा न थी।

महात्माजीके पिता पुराण-धर्ममें बड़े निष्ठावान् थे। प्रतिदिन तीन घण्टे तक पूजा-पाठमें परायण रहते। उन्होंने स्वामीजीका पहला व्याख्यान श्रवण किया और घरपर आकर अपने पुत्रसे कहा—"मुन्शीराम! यहाँ एक दण्डी स्वामी आये हैं। बड़े विद्वान् और योगीराज हैं। उनके उपदेश सुननेसे तुम्हारे सारे संशय अवश्य दूर हो जायँगे।"

पुत्रने विनीत भावसे पिताके सम्मुख निवेदन किया कि बहुत अच्छा, कल मैं आपके साथ अवश्य चलूँगा। परन्तु उनके मनमें यही धारणा बनी रही कि वह संस्कृत-मात्र जाननेवाला साधु कोई बुद्धिकी बात क्या बता सकेगा। आगामी दिन जब सत्सङ्गमें गये तो महाराजके दर्शनसे ही वे प्रभावित हो गये। स्काट महाशय आदि योरुपीय सज्जनोंके हृदयमें स्वामीजीका महत्त्व देख, उनमें और भी लग्न बढ़ी। परन्तु जब पाव घड़ीपर्यन्त उपदेश सुन लिया तो महात्मा मुन्शीरामकी विचार-परम्परामें बड़ा भारी पलटा आ गया। वे भगवान्के यौक्तिक कथनोंपर आश्चर्यचकित हो गये।

दैव-योगसे उस दिन उपदेश भी परमात्म-देवके 'ओम्' नामपर था। वह व्याख्यान उनके लिए अश्रुत-पूर्व था। इस लिए उनको अपार प्रसन्नता प्राप्त हुई। उस दिनसे वे प्रायः श्री-उपदेशोंको सुनते रहे।

अब महात्मा मुन्शीरामको यह धुन समाई कि महाराजकी जीवनचर्य्याको देखना चाहिए। इस लग्नमें मग्न वे पहली बार तो रातके ढाई बजे ही गाड़ीमें बैठकर उस उद्यानके निकट जा पहुँचे, जहाँ, महाराजका निवास था। कौपीन-मात्र धारण किये, महामुनि उद्यान-द्वारसे बाहर भ्रमणार्थ जाने लगे तो वे भी पीछे पीछे हो लिये। महाराजकी गतिका वेग इतना तीव्र था कि महात्माजी थोड़ी देर ही पीछे चलकर हाँपने लगे और गाड़ीमें बैठकर घर चले आये। परन्तु अगले दिन उनकी लग्नकी मात्रा इतनी बढ़ गई कि वे रातके बारह बजे उठ बैठे और उद्यानके समीप जा खड़े हुए। इस बार वे बहुत दूरतक उनके पीछे गये। वे महाराजको कुछ कालतक ध्यानावस्थित भी अवलोकन कर सके।

महात्मा मुन्शीरामजीने अपने तर्क-शक्तिके अभिमानमें महाराजके साथ ईश्वर विषयपर प्रश्न किये, परन्तु स्वामीजीकी युक्तियोंने उन्हें दस पलमें ही

अवाक् बना दिया। महात्माजीने तीन बार ये वाक्य दुहराए,—"महाराज! आपने मेरा मुँह तो बन्द कर दिया, परन्तु अभीतक मुझमें विश्वासका अङ्कुर उत्पन्न नहीं हुआ।"

स्वामीजीने उत्तर दिया—"महाशय! आपकी युक्तियोंका मैंने युक्तियोंसे खण्डन कर दिया है। विश्वास तो परमात्माकी अपनी कृपासे हुआ करता है।"

बरेलीमें विष्णुलाल नामक एक वकील निवास करते थे। उन्होंने पाश्चात्य पद्धतिपर उच्चतम शिक्षा पाई थी। पदार्थ-विद्या और पाश्चात्य दर्शनके वे पूर्ण पण्डित माने जाते थे। आर्य्य, दर्शनको वे तुच्छ दृष्टिसे देखा करते थे। एक दिन इष्टमित्रोंके साथ वे श्रीसेवामें उपस्थित हुए। उन्होंने आर्योंके दार्शनिक विचारोंपर हृदय खोलकर आक्षेप किये। अपनी ओरसे उन्होंने पूर्वीय दर्शनकी धज्जियाँ उड़ा दीं। परन्तु जब स्वामीजीके बोलनेकी बारी आई तो वकील महाशयको अपना निश्चय भारी भ्रमसे भरा हुआ दीखने लगा। महाराजके दार्शनिक कौशलपर वह लट्टू हो गये। उन्होंने अपने मित्रोंको कहा, "स्वामीजी पूर्वीय तथा पश्चिमीय, दोनों दर्शनोंको जानते हैं। इनका तात्त्विक ज्ञान हम लोगोंसे बहुत बढ़ा चढ़ा है।"

महाराज लोगोंको सदाचारकी अत्युत्तम शिक्षा दिया करते। पारिवारिक जीवनको विशुद्ध बनाये रखनेके लिए पतिव्रत और पत्निव्रत धर्मका उपदेश देते। उनके उपदेशोंसे प्रभावित होकर कई धनाढ्योंनें सुचिररक्षिता वाराङ्गनायें अपने भवनोंसे निकाल दीं। इस सत्यानाशी कुव्यसनके कीचड़से अपने कुलको कलङ्कित न करनेका, उन्होंने पक्का प्रण धारण कर लिया।

महाशय लक्ष्मीनारायणने एक वेश्या रखी हुई थी। इसका ज्ञान महाराजको भी हो गया। एक दिन लक्ष्मीनारायणजी उनके निकट आये तो महाराजने पूछा—"लाला महाशय! आपका वर्ण क्या है?" उन्होंने उत्तर दिया—"महाराज, आप तो गुण-कर्मानुसार वर्ण मानते हैं, इस लिए मैं उत्तर दूँ तो क्या दूँ?"

स्वामीजी ने कहा, "आपका जो वर्ण लोग कहते हैं वही बतलाइये।" लाला महाशय ने निवेदन किया कि "लोग तो मुझे क्षत्रिय कहते हैं।" तब महाराजने गम्भीर भावसे कहा, "लाला महाशय? आप हमारे यजमान.

हैं सही परन्तु हम सत्यके कहनेमें कुछ भी संकोच नहीं करेंगे । भला यह तो बताइए कि क्षत्रियसे वेश्यामें पुत्र उत्पन्न हो तो उसे आप क्या कहेंगे?'

महाराजके वचन सुनकर लाला महाशयके सिरपर घड़ों पानी पड़ गया। वे लज्जाके मारे भूमि ताकने लगे। भवनपर जाकर उन्होंने तत्काल वेश्याको निकाल दिया।

बरेलीमें बहुत दिनोंतक व्याख्यान-वारि-वर्षा करनेके पश्चात् श्रीस्वामीजी आश्विन व० ४ सं० १९३६ को शाहजहांपुर पधारे। विज्ञापनोंद्वारा सबको विदित कर दिया कि धर्मके प्रेमी जन नियत समयपर आकर व्याख्यान श्रवण करें और लाभ उठावें। जिन्होंको प्रश्न पूछने हों वे स्वामीजीके आसनपर जाकर अपनी शङ्काओंका समाधान करायें।

शाहजहांपुरमें सत्यपर व्याख्यान देते हुए महाराजने कहा, "संसारमें अनेक मत फैल रहे हैं। पन्थाइयोंपर विश्वास कर जिज्ञासुके लिए सत्यका जानना कठिन है। जिससे पूछो वही अपने पन्थको सच्चा और दूसरोंको झूठा वर्णन करता है। इसपर महाराजने दृष्टान्त दिया कि एक जिज्ञासु किसी तत्त्वदर्शी पण्डितके पास जाकर कहने लगा कि 'महाराज! मुझे वह सच्चा धर्म्म बताइए, जिसके आराधनसे मेरा कल्याण हो, मुझे परम धामकी उपलब्धि हो।'

'तत्त्वदर्शी महात्माने उसे कहा—'चलो आपको सद्धर्मका बोध करायें,। वे उसे एक मतवादीके पास ले गये। उन्होंने उस मतवादीसे पूछा कि 'सत्यधर्म्म कौनसा है?' उस पन्थाई पुरुषने अपने मतकी मुक्त कण्ठसे प्रशंसा की और दूसरे मतोंकी निन्दामें भूतलाकाश एक कर दिया। इस प्रकार वह जिज्ञासु सभी मतवादियोंके निकट गया। सभी अपने उठने बैठनेकी रीतिको, अपनी उपासनाकी पद्धतिको और अपने धर्म्म-मन्दिरोंको 'धर्म्म' वर्णन करते रहे। प्रत्येकने अपने ही तीर्थोंका यशगान किया। अपनी ही देव-मूर्त्तियोंको उत्तम बताया। अपने ही धर्म्म-चिन्होंको, बहिरंग साधनोंको और अपने महापुरुषोंके वाक्योंको 'धर्म' प्रदर्शित किया, और अपनेसे भिन्न मतोंकी प्रत्येक बातकी भरपेट निन्दा की।

प्रत्येक मतवादीकी नवीन धारणा, नवीन पद्धति, नूतन धर्म्म-चिन्ह, नई मूर्त्तियाँ और भिन्न तीर्थ देख और सुनकर उस जिज्ञासुका जी घबरा उठा। मतवादियोंके सघन निबिड़ वनमें फंसकर वह दिशामूढ़ हो गया। अन्तमें वह तत्त्वदर्शी महात्माकी सेवामें उपस्थित होकर सच्चे धर्म्मकी जिज्ञासा करने लगा। उस महात्माने जिज्ञासुको कहा सत्य वह है जिसपर सबकी एकसी साक्षी हो। जिसपर सौमेंसे निन्नानवें मनुष्योंकी साक्षी समान होती है न्यायाधीश उसी बातको सत्य मान लेता है और एककी साक्षी असत्य समझता है। इसी प्रकार धर्मके जिन कर्मोंको सब मतवादी स्वीकार करें—उनमें कोई ननु-नच न करें—वही सच्चा धर्म्म है। उसीको मानो। किसी एक मतके आडम्बरमें न फँसो।

वह साधारण धर्म्म जिसमें कोई भी मतधारी किन्तु-परन्तु नहीं कर सकता यह है—एक तो परमेश्वरका विश्वास और उसकी उपासना, दूसरे जैसा भाव और ज्ञान भीतर हो उसीका वाणीद्वारा प्रकाश करना और उसीके अनुसार आचरण करना, तीसरे जितेन्द्रिय रहना; चौथे किसीके अधिकार और वस्तुको न छीनना; पाँचवें निर्बलों और दीनोंपर दया करना। यह साधारण धर्म्म ऐसा है कि इसमें किसी भी मतावलम्बीको नकार नहीं है। यही धर्म्म कल्याणकारी और मोक्षदाता है।"

एक दिन, लक्ष्मण शास्त्री स्वामीजीके निकट जाकर शास्त्रार्थ करने लगे। शास्त्रार्थका विषय मूर्ति-पूजन था। स्वामीजीने शास्त्रीजीको कहा कि अपने पक्षके पोषणमें आप कोई वेदका प्रमाण उपस्थित कीजिए।

शास्त्री महाशयने कहा कि वेदका प्रमाण कहां से दूँ? वेद तो शंखासुरने हरण कर लिये हैं! स्वामीजीने तत्काल वेद हाथमें उठाकर कहा—"पण्डितजी आपके आलस्य और प्रमाद-रूप शंखासुरका वध करके ये वेद मैंने जर्मनीसे मँगाये हैं। लीजिए, इनमेंसे खोजकर कोई प्रमाण निकालिऐ।"

उस समय सारी सभा हास्य-रसमें लोट पोट हो गई। पण्डितजीने भी मौन साधन ही अच्छा समझा।

लक्ष्मण शास्त्रीकी पराजयसे पौराणिकोंमें खलबली पड़ गई। अन्तमें, उन्होंने शास्त्रार्थ करनेके लिए अङ्गदशास्त्रीको पीलीभींतसे बुलानेका प्रबन्ध किया।

अङ्गद शास्त्री बड़ा अभिमानी पुरुष था । वह अपनेसे बढ़कर, किसीको भी विद्वान् नहीं मानता था । उसकी दृष्टिमें सारे पण्डित तृण-तुल्य थे । उसने शाहजहाँपुरमें आते ही जनताको, उकसाना भड़काना आरम्भ कर दिया और शास्त्रार्थके समय ऊधम मचानेके उपाय स्थिर कर लिये । साथ ही शास्त्रार्थके लिए अपनी सुसज्जाका एक पत्र स्वामीजीकी सेवामें भेज दिया ।

उसके पत्रका उत्तर महाराजने शास्त्रार्थके नियमोंसहित जो दिया उसका सारांश यह है--"क्या आप लोग वेदसे विमुख होकर, मूर्त्तिपूजा आदि वेद-विरुद्ध कर्म नहीं करते ? और क्या वेदोक्त एक परमेश्वरकी पूजा न कर उलटे नहीं चलते ? क्या आपने मेरा कोई भी कर्म वेदके प्रतिकूल देखा सुना है ? यदि शास्त्रार्थ करनेकी आपकी सच्ची इच्छा होती तो सभ्यता और विनयपूर्वक शास्त्रार्थ करनेसे मैंने आपको कब रोका था ? सभ्यतासे सम्वाद करना चाहते हो तो मेरा द्वार अब भी खुला है । परन्तु आप तो शास्त्रार्थ करना ही नहीं चाहते । यदि इच्छा थी तो मेरे पास ही क्यों न आ गये ? जहाँ मूर्ख लोग असभ्यतापर उतर आते हैं, और हल्लागुल्ला करने लगते हैं मैं तो वहाँ खड़ा होना भी नहीं चाहता । आपका यह लिखना कि जहाँ जहाँ मैं जाता हूँ वहाँ वहाँसे आप किनारा काटकर निकल जाते हैं, कोरा झूठ है । आपसे मुझको कभी किंचिन्मात्र भी भय नहीं हुआ और न ही कभी होगा । आपमें ऐसी योग्यता ही नहीं, जिससे कोई डर जाय । आपको तो लोगोंको परस्पर लड़ाना भिड़ाना आता है । आपकी इसी करतूतपर बरेलीमें, लक्ष्मीनारायण जीने आपको उद्यानतकमें तो आने नहीं दिया था । वह तिरस्कार आपकी कलहकारिणी प्रकृतिका कड़वा फल था ।

इस समय हम दोनों शाहजहाँपुर में हैं । अब जो बहाने बनाकर भाग जाय वह झूठा समझा जायगा । अपने सर्व सामर्थ्यसे शास्त्रार्थ कर लीजिए; टल न जाइए । परन्तु साथ ही यह भी स्मरण रखना कि जय सचाईकी ही होती है । सब आप्त जनोंका यही मार्ग है कि सत्यका मण्डन और असत्यका खण्डन किया जाय । मुझे अपनी विद्या और बुद्धिके अनुसार पूर्ण निश्चय है कि मैं लोगोंको सन्मार्गपर चला रहा हूँ । यदि इसमें आपको कोई भ्रम है तो शास्त्रार्थके समय वह दूर हो जायगा ।

मथुरामें अनेक विद्यार्थी श्रीविरजानन्दजीसे अध्यन करते थे । आप भी कदाचित् उनकी सेवामें गये होंगे । परन्तु यदि आप उनके शिष्य होते तो उनके उपदेशके प्रतिकूल आचरण न करते । बड़ा छोटा और ऊँच नीच तो मनुष्य अपने गुण-कर्म्म से होता है ।

आपका पत्र कल मध्याह्नकाल मिला था । इसलिए कल उत्तर नहीं दिया जा सका । आपके पत्रमें संस्कृत और भाषाकी अनेक अशुद्धियाँ हैं। सो जब आपका मिलाप होगा उस समय सब कुछ समझा दिया जायगा ।"

श्रावण कृष्ण एकादशी १९२६ ।

इसके अनन्तर भी अङ्गद महाशय स्वामीजीके सामने न आये। दूर बैठे ही गप्प शप उड़ाते रहे और लम्बे लम्बे पत्र लिखकर समय टालते रहे । स्वामीजीके नियमोंको भी उन्होंने स्वीकार नहीं किया। इसलिए वह शास्त्रार्थ न हो सका।

कितना भी बड़ा मनुष्य कोई क्यों न होता यदि, वह कोई दबावकी बात कह बैठता तो महाराज तुरन्त करारा उत्तर देकर, उसका मुहँ बन्द कर देते। एक दिन डिप्टी कलेक्टर, अली जान महाशय उस मार्ग से निकले, जहाँ, स्वामीजी व्याख्यान दिया करते थे । डिप्टी महाशयने कहा कि पण्डितजी ! अपने व्याख्यानमें कुछ सम्भलकर बोला कीजिए। महाराजने तत्काल उत्तर दिया कि 'कोई भयको बात नहीं है, अब राज्य अंगरेज़ी है, औरङ्गज़ेबी नहीं।'

स्वामीजीको मितव्ययिताका भी ध्यान रहता था । वे व्यर्थ व्ययके बड़े विरोधी थे । धनके सदुपयोगकी सबको शिक्षा दिया करते थे ।

स्वामीजीको व्याख्यान-स्थानपर पहुँचानेके लिए जो सज्जन गाड़ी भेजा करता था वह एक दिन अपनी गाड़ी न भेज सका। किरायेकी गाड़ी स्वामीजीके निवासपर आ गई। महाराजने उस गाड़ीको देखकर कहा, "आप किरायेकी गाड़ी क्यों लाये हैं ? मुझे गाड़ी में बैठनेका कोई व्यसन नहीं है । आने जानेमें अधिक समय न व्यय हो जाय इसलिए मैं गाड़ी में बैठता हूँ; वैसे तो मुझे पैरों चलनेहीमें आनन्द आता है ।"

पण्डित भीमसेनजी एक दिन बाज़ारसे भोजन-सामग्री लिवा लाये। महाराजने भोज्य-पदार्थोंको निरीक्षण कर पण्डितजीको कहा, आटे आदिका दाम आपसे अधिक लिया गया है । ऐसा जान पड़ता है कि आपने निरखकी पूछ-

ताछ कुछ भी नहीं की। पदार्थ भी उत्तम कोटिके नहीं हैं। भाई, धन एक उपयोगकी वस्तु है। यह बड़े परिश्रमसे प्राप्त होता है। किसीने यदि कलकत्ते जाना हो तो वहां न पहुँच सकनेसे, चाहे उसे कितनी ही हानि क्यों न उठानी पड़े परन्तु वह किरायेमें एक भी पैसेकी कमीसे वहाँ नहीं जा सकता। किसी समय तो एक कौड़ीकी कमी भी करोड़ों रुपयेंकी हानि का कारण हो सकती है। इस लिए एक पैसेके व्ययमें भी सावधान रहना चाहिए।"

महाराज समयको एक बहुमूल्य वस्तु मानते थे। उन्होंने दिन रातके सारे पल अपने लिए तो नियमके तारमें पिरो ही रखे थे, परन्तु कर्म्मचारियोंको भी व्यर्थमें समय बिताने नहीं देते थे।

एक दिन उनके लेखक कार्य करनेके लिए समयपर समुद्यत न हो सके। वे कोई आध घण्टा देर करके कामपर आये। महाराजने उन्हें उपदेश देते हुए कहा, "हमारे देशके लोग समयका महत्त्व नहीं जानते। नियम-बद्ध कार्य्य करना इनके लिए दुष्कर कर्म है। प्रातःसे सायंपर्यन्त, इनके सारे काम अनियमित होते हैं। समयका व्यर्थ खोना इनकी अस्तव्यस्त अवस्थाका एक भारी कारण है।

समय कितने मूल्यकी वस्तु है, इसका ज्ञान उस समय होता है, जब किसीका मरणासन्न प्रिय बन्धु शय्यापर पड़ा होता है और वैद्य आकर कहता है कि यदि पाँच पल पहले मुझे बुलाया होता तो मैं इसे मरने न देता। चाहे सहस्रों रुपये व्यय कर डालो अब इसकी आँख नहीं खुल सकती।"

महाराजके इस उपदेशका कर्मचारियोंपर अत्युत्तम प्रभाव पड़ा। महाराज शाहजहाँपुर-निवासियोंको अपने सुधा-समान उपदेशोंसे तृप्त करनेके अनन्तर आश्विन सुदी २ सं० १९३६ को लखनऊ आये। वहां छः दिनतक निवास किया और आश्विन सुदी दशमी सम्वत् १९३६ को फरुखाबादमें पधारे। अबकी बार महाराजने लाला कालिचरणके उद्यानमें आसन लगाया।

महाराजके वहाँ प्रतिदिन भाषण होते। सहस्रों मनुष्य सुनने आते। कलेक्टर आदि राजकर्मचारी भी सम्मिलित हुआ करते और अत्यन्त प्रसन्न होते। उनके भाषणोंका प्रभाव वर्णनातीत होता था। एक व्याख्यानमें गो-रक्षाके लाभ वर्णन करते हुए महाराजने कहा—"गो-हत्यासे इतनी हानि हो रही

है परन्तु खेद है कि राजपुरुष इसपर कुछ भी ध्यान नहीं देते । यह दोष अधिक हमारा अपना है । हममें एकताका सर्वथा अभाव है । यदि मिलकर गो-वध बन्द करानेका निवेदन करें तो क्या नहीं हो सकता ? जो लोग दान करते हैं वे भी हानि-लाभको नहीं सोचते । भोले भाले भाई समझ लेते हैं कि गो-संकल्प करनेसे वैतरणी पार हो जायँगे । वे मर जाते हैं और गो पुरोहित देवताके आँगनमें खूँटेसे बन्धी रहती है, प्रत्युत बार बार कई स्थानोंमें संकल्प कराई जाती है । बहुतसे ऐसे भी कुल-कपूत हैं जो तुरन्त उसे कसाईके हाथ बेच डालते हैं !"

एक दिन, दानपर बोलते हुए महाराजने कहा, "अन्न-जलका दान कोई भी भूखा प्यासा मिले उसे दे देना चाहिए। ऐसा दान पहले अपने दीनःदुखी पड़ोसीको देना चाहिए। पासके रहनेवालेका दरिद्र दूर करनेमें सच्ची अनुकम्पा और उदारता का प्रकाश होता है । इससे वाहवाह नहीं मिलती, इसलिए अभिमानको भी अवकाश नहीं मिलता ।

समीपस्थ दुःखीको देखकर और पीड़ितको अवलोकन करके ही दया, अनुकम्पा और सहानुभूति आदि हार्दिक भाव प्रकट होते हैं । जो समीपवर्त्ती दीन दुःखिया जनपर तो दयादि भावोंको नहीं दिखलाता किन्तु दूरस्थ मनुष्योंके लिए उनका प्रकाश करता है उसे दयावान्, अनुकम्पा-कर्त्ता और सहानुभूति-प्रकाशक नहीं कह सकते। ऐसे मनुष्यका दान बाहरका दिखलावा और ऊपरका आडम्बर है । दान आदि वृत्तियोंका विकाश, दीपककी ज्योतिकी भाँति, समीपसे दूरतक फैलना उचित है ।

यहाँ प्रश्न उत्पन्न होता है कि 'जो निर्धन जन अन्नादिक दान नहीं कर सकते वे दूसरोंको क्या दें ?' उत्तर स्पष्ट है कि जो अन्नादिका दान करनेमें असमर्थ है वह अपने पड़ोसी आदिको कष्ट और क्लेशमें सहायता दें। निर्बलोंका पक्ष करें । विपत्ति और आधि-व्याधि-ग्रस्त जनोंकी सेवा करें । पर-पीड़ितों और व्याकुल मनुष्योंसे प्रेम करें। उन्हें मीठे बचनोंसे शान्ति दें । ये सब दान हैं और आत्मासे सम्बन्ध रखनेवाले दान हैं। ऐसे दान नित्यंप्रति, निर्धन जन भी कर सकते हैं।"

महाराजने एक दिन वर्णन किया, "अनेक जन कहते हैं कि आपके खण्डन-परक व्याख्यानोंसे तो लोगोंमें घबराहट उत्पन्न हो जाती है। उनके हृदय भड़क उठते हैं। इसका परिणाम शुभ कैसे होगा! भाई, जब रोग दूर होनेमें नहीं आया करता तो अच्छे वैद्य लोग, देरके बढ़े दोषोंको शान्त करने और मलको बाहर निकालनेके लिए विरेचक औषधियाँ दिया करते हैं। विरेचक औषध पहले पहल घबराहट उत्पन्न करती है। व्याकुलता लाती है। कभी कभी उससे मुँह भी मचलाने लग जाता है। परन्तु जब विरेचन होकर कुपित दोष शान्त हो जाते हैं तब प्रसन्नता लाभ होती है। धीरे धीरे वास्तविक पुष्टि प्राप्त हो जाती है। आर्य-जातिमें अनेक कु-रीतियोंके दोष और मिथ्या मन्तव्योंके मल बढ़ गये हैं। उनके कारण यह इतनी रुग्ण हो गई है कि इसके स्नेहियोंको इसके जीवनके संशय पड़ गये हैं। लोग इसकी आयुके वर्षोंको उंगुलियोंपर गिनने लगे हैं।

हमारे उपदेश, आज विरेचक औषधकी भाँति, घबराहट अवश्य लाते हैं, परन्तु हैं वे जातिय शरीरके संशोधक और आरोग्यप्रद। वर्त्तमान आर्य्यसन्तान हमें चाहे जो कहे परन्तु भारतकी भावी सन्तति हमारे धर्म्म-सुधारको और हमारे जातीय संस्कारको अवश्यमेव महत्त्वकी दृष्टिसे देखेगी। हम, लोगोंकी आत्मिक और मानसिक नीरोगताके लिए, जो कुरीतियोंका खण्डन करते हैं वह सब कुछ हित-भावनासे किया जाता है।"

पौराणिक पण्डितोंने स्वामीजीके पास पचीस प्रश्न भेजे। उनका उत्तर महाराजने आर्य पुरुषोंको लिखा दिया। वे प्रश्नोत्तर ये थे—

प्रश्न १—वेदादि शास्त्रोंमें संन्यासियोंके धर्म्म क्या कहे हैं? संन्यासियोंको यानारूढ होना और हुक्का पीना चाहिए अथवा नहीं?

उत्तर—वेदादि शास्त्रोंमें संन्यासियोंके धर्म्म ये बताए हैं—ज्ञानपूर्वक, वेदानुकूल, शास्त्रोक्त रीतिसे पक्षपात, शोक, वैर, हठ और दुराग्रहका त्यागना। स्वार्थ-साधन, निन्दा-स्तुति और मानापमान आदि दोषोंको छोड़ना। संन्यासियोंका धर्म्म है कि सत्यासत्यकी आप परीक्षा करें। सर्वत्र विचरते हुए लोगोंसे असत्य छुड़ावें और सत्य ग्रहण करायें, जिससे उनकी शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति हो और वे साधनोंसहित विद्या लाभ कर

अपने पुरुषार्थसे व्यावहारिक और पारमार्थिक सुखोंको उपलब्ध करें। लोगोंसे दुराचार हटाना संन्यासियोंका धर्म्म है।

हर्ष-शोकसे रहित संन्यासी जन यदि यानारूढ़ हों तो इसमें कोई भी दोष नहीं है। रोगादिकी निवृत्तिके लिए, परोपकारी संन्यासी जन यदि औषधवत् धूम्रपान करें तो कुछ भी हानि, दोष नहीं है। ऐसा करना शास्त्रानुसार है।

प्रश्न २—यदि आपके मतमें क्षमा नहीं मानी जाती तो मनु-स्मृतिके प्रायश्चित्तोंका क्या फल है? ईश्वरकी दयालुताका क्या प्रयोजन है? यदि मनुष्य स्वतंत्रतासे आगन्तुक पापोंसे बचा रहे तो ईश्वरकी क्षमाशीलता किस काम आयगी?

उत्तर—हमारा मत वेदोक्त है, कोई कपोल-कल्पित नहीं है। वेदोंमें कहीं भी किये पापोंकी क्षमा नहीं लिखी! पापोंकी क्षमा मानना युक्तिसंगत भी नहीं है। उन मनुष्योंपर शोक होता है जिन्हें प्रश्न करने तो नहीं आते परन्तु वे पाँचोंमें सवार बननेकी चेष्टा करते हैं।

क्षमा और प्रायश्चित्तका कुछ भी सम्बंध नहीं है। प्रायश्चित्त कोई सुख-भोगका नाम नहीं है। जैसे कारावासमें अपराधी मनुष्य चोरी आदि कर्मोंका फल भोग लेता है, ऐसे ही प्रायश्चित्तमें पाप-फल भोगा जाता है। अनेक नास्तिक जन ईश्वरका खण्डन करते हैं। दुःखोंमें और दुर्भिक्षादिमें मनुष्य परमात्माको गालियाँ तक देने लगे जाते हैं! वह सब सहन कर लेता और अपनी कृपाका परित्याग नहीं करता। यही उसकी क्षमा और दया है। न्यायकारी, यदि किये कर्मोंको क्षमा कर दे तो वह अन्यायकारी हो जाता है। परमेश्वर अपने स्वाभाविक गुणके विरुद्ध कभी कुछ नहीं करता। जैसे न्यायाधीश पापियोंको विद्या और शिक्षाद्वारा पापसे पृथक् कर प्रतिष्ठा और दण्डसे शुद्ध और सुखी कर देता है ऐसे ही ईश्वरका न्याय समझना चाहिए।

प्रश्न ३—यदि आपके मतमें तत्त्वोंके परमाणु नित्य हैं और कारणका गुण कार्यमें रहता है तो यह बताइए कि सूक्ष्म परमाणुओंसे स्थूल सृष्टि कैसे हो गई?

उत्तर—जो परम सूक्ष्म है उसीको परमाणु और अव्याकृत आदि नामोंसे पुकारा जाता है। ऐसे परमाणु अनादि और सत्य हैं। कारणके जो गुण समवायसम्बधंसे हैं वे कारणमें नित्य हैं और कार्यावस्थामें भी नित्य बने रहते

हैं। परमाणुओंमें संयोग और विभागका गुण भी नित्य है। इस लिए इनके मिलने और बिछड़नेसे इनके स्वरूपमें अनित्यता नहीं आती। प्रमाणुओंमें गुरुत्व और लघुत्व दोनोंका सामर्थ्य भी नित्य है। गुण-गुणीका समवाय सम्बन्ध है।

प्रश्न ४—मनुष्य और ईश्वरका परस्पर क्या संबंध है? ज्ञानसे मनुष्य क्या ईश्वर बन सकता है? जीवात्मा और परमात्मामें क्या सम्बंध है? क्या वे दोनों नित्य हैं? यदि दोनों चेतन हैं तो जीव ईश्वराधीन है कि नहीं? अधीन है तो क्यों?

उत्तर—मनुष्य और ईश्वरका राजा-प्रजा, स्वामी-सेवक आदिका सम्बन्ध है। अल्पज्ञ होनेसे जीव ईश्वर नहीं हो सकता। जीव और ईश्वरमें व्याप्य-व्यापक आदि सम्बन्ध हैं। जीवात्मा सदा ईश्वराधीन रहता है; परन्तु कर्म करनेमें वह स्वतंत्र है और फल भोगनेमें ही पराधीन है। ईश्वरका सामर्थ्य अनन्त है और जीवका अल्प, इसलिए जीवका परमात्माके अधीन होना आवश्यक है।

प्रश्न ५—क्या आप संसारकी रचना और प्रलय मानते हैं? प्रथम सृष्टिमें एक मनुष्य उत्पन्न हुआ था अथवा अनेक? आदिमें जब उनके कर्म समान थे तो परमेश्वरने कुछ एक मनुष्योंहीको वेद ज्ञान क्यों दिया? ऐसा करनेसे उसमें पक्षपातका दोष आ जाता है।

उत्तर—सृष्टिकी उत्पत्ति और प्रलय हम मानते हैं। ईश्वरके गुण, कर्म और स्वभाव अनादि हैं। इस लिए सृष्टि भी प्रवाहसे अनादि है। यदि ऐसा न माना जाय तो रचनासे पूर्व ईश्वरको निकम्मा मानना होगा। परमेश्वरकी तरह प्रकृति और जीव भी अनादि हैं। जैसे इस कल्पकी सृष्टिकी आदिमें अनेक स्त्री-पुरुष उत्पन्न हुए वैसे ही पूर्व कल्पोंमें होते रहे और आगामी कल्पोंमें होते रहेंगे। जीवोंके कर्म भी अनादि हैं। जिन चार आत्माओंमें परमात्माने वेदका प्रकाश किया उनके सदृश अथवा उनसे अधिक किसीके भी पुण्य नहीं थे। इस लिए परमात्मामें पक्षपातका दोष नहीं आता।

प्रश्न ६—आपके मतानुसार कर्म-फल यथाकर्म न्यूनाधिक होता है तो मनुष्य स्वतंत्र कैसे हुआ? परमेश्वरका जैसा ज्ञान है जीव वैसा ही कर्म करेगा इसलिए स्वतंत्र न रहा,।

उत्तर—कर्म-फल न्यूनाधिक कभी नहीं होते। जिसने जैसा और जितना कर्म किया हो उसे वैसा और उतना ही फल न दिया जाय तो अन्याय हो जाता है। हे आर्य जनो! ईश्वरमें भूत-भविष्यत् कालका सम्बंध नहीं है। ईश्वरका ज्ञान सदा एकरस है। जैसे ईश्वर अपने ज्ञानमें स्वतंत्र है वैसे ही जीव कर्मोंके करनेमें स्वतन्त्र है, परन्तु फल भोगनेमें परतन्त्र है।

प्रश्न ७—मोक्ष क्या पदार्थ है?

उत्तर—सब अशुभ कर्मोंसे रहित होकर केवल शुभ ही कर्म करना जीवन-मुक्ति है, और दुःखमात्रसे छूटकर आनन्दपूर्वक परमेश्वरमें रहना मुक्ति है।

प्रश्न ८—धन बढ़ाना, कला-कौशलद्वारा लोगोंको सुखी करना और राग-ग्रस्त पापी मनुष्यको औषधादि देना धर्म है अथवा अधर्म?

उत्तर—न्यायसे धन बढ़ाने, कला-कौशल निकालने और औषध आदि बनानेमें धर्म्म है। यदि कोई मनुष्य ऊपर कहे कर्म अन्यायसे करे तो अधर्म है। पापी मनुष्यको रोगसे छुड़ाकर धर्म्म-कार्योंमें लगाना धर्म्म है।

प्रश्न९—मांस खानेमें पाप है अथवा नहीं? यदि पाप है तो वेद और आप्त ग्रन्थोंमें, यज्ञमें हिंसाका विधान है और भक्षणार्थ मारना क्यों लिखा है?

उत्तर—मांस खानेमें पाप है। वेदों तथा आप्त ग्रन्थोंमें यज्ञादमें हिंसा करना कहीं भी नहीं लिखा। गोमेध आदि शब्दोंके अर्थ वामियोंने बिगाड़े हैं। इनका वास्तविक अर्थ हिंसा-परक नहीं है। जैसे डाकू आदि दुष्ट जनोंको राजा लोग मारते हैं ऐसे ही हानिकारक पशुओंका मारना भी लिखा है, परन्तु खानेका लेख नहीं है। आजकल तो वामियोंने मिथ्या श्लोक बनाकर गो-मांस तक खाना भी बताया है! जैसे मनुस्मृतिमें इन धूर्तोंका मिलाया हुआ लेख है कि गो-मांसका पिण्ड देना चाहिए। क्या कोई पुरुष ऐसे भ्रष्ट वचन मान सकता है?*

---

* यह उत्तर पं० लेखरामजीके नामसे बनाये स्वामी दयानन्दजीके जीवन चरित्र से लिया गया है। परन्तु 'भारत सुदशा प्रवर्तक' नामक पत्रमें उस समय, इस प्रश्नका जो उत्तर छपा था वह इससे अपवाद सहित भिन्न है।

प्रश्न १०—जीवका क्या लक्षण है ?

उत्तर—जीवके लक्षण न्याय-शास्त्रमें इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख-दुख, और ज्ञान लिखे हैं।

प्रश्न ११—सूक्ष्म यंत्रोंसे ज्ञान होता है कि जलमें अनन्त जीव हैं। इस अवस्थामें क्या जल-पान करना चाहिए ?

उत्तर—जब पात्र और पात्रस्थ जल अन्तवाले हैं तो उनमें अनन्त जीव नहीं समा सकते। जलको आँखसे देखकर और वस्त्रसे छानकर पीना चाहिए।

प्रश्न १२—पुरुषके लिये बहुत स्त्रियोंसे विवाह करनेका कहाँ निषेध है ? यदि है तो धर्म्म-शास्त्रमें यह क्यों आता है कि यदि एक पुरुषके अनेक स्त्रियाँ हों और उनमेंसे एक पुत्रवती हो जाय तो सब पुत्रवालियाँ समझा जायँ ?

उत्तर—वेदमें बहु विवाहका निषेध है। संसारमें सभी मनुष्य अच्छे नहीं होते। इस लिए यदि कोई अधर्मी पुरुष अनेक स्त्रियोंसे विवाह कर ले तो उसकी स्त्रियोंमें परस्पर विरोध अवश्य होगा। यदि एकके पुत्र हो तो दूसरी उसे विष आदिसे मार न दें, इस लिए धर्म्मशास्त्रमें लिखा है कि उसे अपना पुत्र ही समझें।

प्रश्न १३—ज्योतिष-शास्त्रके फलित-भागको क्या आप मानते हैं ? क्या भृगु-संहिता आप्त ग्रन्थ है ?

उत्तर—हम ज्योतिष-शास्त्रके फलित-भागको नहीं मानते, किन्तु गणित भागको मानते हैं। ज्योतिषके जितने सिद्धान्त ग्रन्थ हैं उनमें फलितका लेश भी नहीं है। भृगु-संहितामें गणित है इसलिए उसे हम मानते हैं। ज्योतिषशास्त्रके सिद्धान्त ग्रन्थोंमें भूत-भविष्यत् कालका ज्ञान नहीं लिखा है और न ही उनमें मनुष्यके सुख-दुःखके ज्ञानका लेख है।

प्रश्न १४—ज्योतिष-सिद्धान्तमें आप किस ग्रन्थको सिद्धान्त-ग्रन्थ स्वीकार करते हैं ?

उत्तर—जितने भी वेदानुकूल ग्रन्थ हैं उन सबको हम आप्त ग्रन्थ मानते हैं।

प्रश्न १५—क्या आप पृथ्वीपर सुख-दुःख, विद्या, धर्म्म और मनुष्यसंख्याकी न्यूनता और अधिकता मानते हैं ? यदि मानते हैं तो क्या पहले इनकी वृद्धि थी ? अब है ? अथवा आगे होगी ?

उत्तर—हम पृथ्वीपर सुखादिकी वृद्धि सापेक्ष होनेसे अनित्य मानते हैं और मध्यम अवस्थामें बराबर स्वीकार करते हैं।

प्रश्न १६—धर्म्म का क्या लक्षण है? ईश्वरकृत सनातन है अथवा मनुष्यकृत?

उत्तर—धर्म्मका लक्षण पक्षपात-रहित न्याय है और सत्यका ग्रहण तथा असत्यका परित्याग है। वह वेद प्रतिपादित और ईश्वरकृत सनातन है।

प्रश्न १७—यदि कोई ईसाई, मुसलमान आपके मतमें दृढ़ विश्वासी हो जाय तो क्या आपके अनुयायी उसे अपनेमें मिला लेंगे और उसका बनाया भोजन खा लेंगे?

उत्तर—वेद ही हमारा मत है। बड़े शोक और अन्धेरकी बात है कि आप लोगोंने केवल खान-पान, शौच-स्नान, वेश भूषा और उठने बैठने आदिको ही धर्म्म मान रक्खा है! ये तो अपने अपने देशोंकी रीतियाँ हैं।

प्रश्न १८—क्या आपके मतमें ज्ञानके बिना भी मुक्ति हो जाती है?

उत्तर—परमेश्वर सम्बन्धी ज्ञानके बिना किसीकी मुक्ति नहीं होती। जो धर्म्मपर आरूढ़ होगा उसे ज्ञान भी अवश्य होगा।

प्रश्न १९—श्राद्ध करना क्या शास्त्रानुसार है? शास्त्रानुकूल नहीं तो पितृ कर्मका क्या अर्थ है? क्या मनु-स्मृति आदि ग्रन्थोंमें इसका विधान मिलता है?

उत्तर—जीवित पितरोंको श्रद्धासे, सेवासे, पुरुषार्थसे और पदार्थोंसे तृप्त करना श्राद्ध है। ऐसे ही श्राद्धका विधान वेदमें मिलता है। मनुस्मृतिमें भी जो लेख वेदानुकूल हैं वही मानने योग्य हैं।

प्रश्न २०—कोई मनुष्य यह समझकर आत्मघात कर ले कि मैं पापोंसे नहीं बच सकता तो क्या ऐसा करने में कोई पाप होता है?

उत्तर—आत्मघात करनेमें पाप ही होता है! पापाचरणके फल भोगे बिना कोई मनुष्य पापोंसे नहीं बच सकता।

प्रश्न २१—जीवात्मा असंख्य हैं अथवा संख्यासहित? क्या कर्मवश मनुष्य पशु और वृक्षादिकी योनियोंमें जा सकता है?

उत्तर—ईश्वरके ज्ञानमें जीवोंकी संख्या है, परन्तु अल्पज्ञानमें वे असंख्य हैं। पाप-कर्म्मोंकी अधिकतासे जीव, पशुओं और वनस्पतियोंकी योनियोंमें जाता है।

प्रश्न २२—क्या विवाह करना उचित है। सन्तान-प्राप्तिसे किसको पाप लगता है ?

उत्तर—जो जन पूर्ण विद्वान् और जितेन्द्रिय होकर सबका उपकार करना चाहें उन्हें तो विवाह करना उचित नहीं है। जो मनुष्य ऐसा नहीं कर सकते उन्हें विवाह करना चाहिए; वेदानुसार विवाह करके ऋतुगामी रहते जो सन्तान प्राप्त हो उसमें कोई भी दोष नहीं है। व्यभिचार अन्याय है। इसलिए उससे उत्पन्न हुई सन्तान दोषयुक्त होती है।

प्रश्न २३—क्या अपने सगोत्रमें विवाह-सम्बन्ध करना दूषित है? यदि है तो क्यों? क्या सृष्टिकी आदिमें ऐसा हुआ था?

उत्तर—सगोत्रमें विवाह करनेसे शरीर और आत्माकी यथावत् उन्नति नहीं होती और बल तथा प्रेम भी ठीक ठीक नहीं बढ़ता। इन दोषोंके कारण भिन्न गोत्रमें विवाह करना उचित है। सृष्टिकी आदिमें तो गोत्र ही नहीं थे। इस लिए उस समयका प्रश्न करना व्यर्थ प्रयास है।

प्रश्न २४—गायत्रीके जापसे कोई फल भी होता है कि नहीं? यदि होता है तो क्यों?

उत्तर—वेदमें गायत्रीके अर्थानुसार आचरण करना लिखा है इस लिए वैदिक विधिसे गायत्री का जप किया जाय तो उत्तम फल प्राप्त होता है। किया हुआ अच्छा बुरा कोई भी कर्म्म निष्फल नहीं जाता।

प्रश्न२५—धर्म्माधर्म्म मनुष्यके अन्तरङ्ग भावोंसे सम्बंध रखता है। अथवा बाहरके परिणामोंसे? यदि कोई मनुष्य किसी डूबते मनुष्यको बचानेके लिए नदीमें कूद पड़े और आप भी डूब जाय तो क्या उसे आत्मघातका पाप लगेगा?

उत्तर—धर्म्माधर्म्म मनुष्यकी बहिरङ्ग और अन्तरङ्ग सत्तासे होते हैं। इनको कर्म और सुकर्म-कुकर्म भी कहा जाता है। परोपकारके लिए परिश्रम करते यदि बीचहीमें प्राणान्त हो जाय तो भी वह मनुष्य पुण्य-पुञ्ज उपार्जन कर लेता है। ऐसे जनको पाप कदापि नहीं लगता।

ऊपर लिखे प्रश्नोत्तर आर्य्य समाज फर्रुखाबादमें सुनाये गये और फिर 'भारत सुदशा प्रवर्त्तक', नामके पत्रमें प्रकाशित कराए गये।

स्वामीजी महाराज, अच्छे सुन्दर और सार्थक नाम रखनेकी शिक्षा दिया करते। एक दिन महाराजके पास अनेक सत्संगी बैठे थे। उस समय कई स्त्रियाँ भी आ गईं। उनमेंसे एकके पास एक नन्हासा बच्चा था। महाराजने उसका नाम पूछा तो बालककी माता बोली—'इसका नाम भीमा है।'

स्वामीजीने उस समय कहा कि ऐसे नाम न रक्खा करो। नाम अत्युत्तम होने चाहियें। आजसे इस बालकको 'भूदेव' कहा करो।

महाराज साधारण बातसे भी कोई न कोई शिक्षा निकाल लिया करते। एक दिन, वे अपने डेरेसे आर्य समाजके स्थानको गाड़ीमें आ रहे थे। मार्गमें एक कुत्ता, भौंकता हुआ, गाड़ीके पीछे दौड़ने लगा। थोड़ी दूरतक तो वह पीछे आया, परन्तु अन्तमें थककर रह गया। उस समय महाराजने अपने साथी सज्जनको कहा, "कपोल-कल्पित मतोंको माननेवाले, पहले पहल तो बहुतेरी बक-झक करते हैं, परन्तु अन्तमें इस कुत्तेकी तरह हारकर रह जाते हैं।"

फतेहगढ़में महाराजने व्याख्यानमें वर्णन किया कि आर्य्य समाजके दस नियम ऐसे पूर्ण हैं कि इनमें आजतक कोई मनुष्य भी त्रुटि नहीं दिखा सका। उस व्याख्यानके मध्यमें मदिरामें उन्मत्त एक मनुष्य चिल्लाने लग गया। लोगोंने उसे चुप करानेका बहुत यत्न किया, परन्तु उसने एक न मानी। अन्तमें महाराजके सिंह-नादको सुनकर वह सर्वथा शान्त हो गया।

स्वामीजी प्रतिपक्षीको उसके ही कथनसे निरुत्तर कर देते थे। एक दिन एक वकीलसे महाराजने पूछा कि आपका क्या मत है? उसने कहा कि मेरा कोई मत नहीं। मैं किसी पक्षमें विश्वास नहीं करता। स्वामीजीने कहा कि किसीको भी न मानना यह भी तो एक पक्ष है।

स्वामीजीके सत्सङ्गमें बहुधा आत्मा, परमात्मा और आचार-विचारपर ही बातचीत हुआ करती थी। महाराज जगत्सम्बन्धी, व्यर्थके जाल-जंजालपर कान नहीं देते थे। सेठ निर्भयरामजी, एक दिन श्रीसेवामें उपस्थित हुए। स्वामीजीने उनको आनन्द पूछा तो सेठजीने कहा कि महाराज! आपकी कृपासे धन-धान्य और पुत्र-पौत्र सभी हैं। इस लिए आनन्दित हूँ।

स्वामीजीने हँसकर कहा—"सेठजी! धर्म्म-कर्म्म और आत्मा-परमात्मासे भिन्न वस्तुओंमें आनन्द समझना अविद्याका एक लक्षण है।"

एक दिन कई सज्जनोंके साथ वार्त्तालाप करते हुए महाराजने कहा, "इस देशमें अनेक दयानन्द उत्पन्न होंगे। वैदिक धर्म्मकी वृद्धिके समय, उन मायिक पुरुषोंसे इस धर्म्मकी रक्षा करना आर्योंके लिए बड़ी सावधानी और बुद्धिमत्ताका काम होगा ।"

स्काट महाशय फरुखाबादमें मजिस्टेट थे। वे बड़े सज्जन और उदारचेता थे । महाराजके व्याख्यानोंमें निरन्तर आया करते थे । जिस दिन व्याख्यान न होता तो दर्शनार्थ अवश्य आ जाते । श्री चरणोंमें वे अति प्रीति रखते थे । उनके पाँवमें कोई दोष था। इस कारण वे लङ्गड़ाकर चलते थे ।

एक दिन स्काट महाशयने स्वामीजीसे पूछा कि कर्म्म-फलका पता हमें कैसे लगे ? स्वामीजीने उनको कहा कि आपके पाँवमें लङ्गड़ापन क्यों है ? उन्होंने उत्तर दिया कि ईश्वरकी इच्छा । इसपर महाराजने कहा, "इसे ईश्वर-इच्छा न कहिए । यह कर्म-फल है । सुख-दुःखके भोगका नाम कर्म्म-फल है । जिस भोगका यहाँ कोई कारण दिखाई न दे, उसे पूर्व जन्मके कर्मोंका परिणाम कहते हैं ।"

फरुखाबादके बाजारकी नाप हो रही थी । उसी सड़कमें एक छोटीसी मढ़िया थी । उसमें लोग धूप-दीप किया करते थे । श्री मदनमोहनलालजीने आकर स्वामीजीको कहा, "महाराज ! स्काट महाशय आपको बहुत मानते हैं । यदि आप उनको संकेत भी कर दें तो यह मढ़िया मार्गमेंसे मार्जित हो सकती है । भ्रमका स्थान दूर हो सकता है ।"

स्वामीजीने उनसे कहा, "ऐसी उलटी पट्टी मुझे न पढ़ाइए । ऐसे टेढ़े, तिरछे और तीखे मार्गोंसे किसी मतको हानि पहुँचाना अधर्म्म है । द्रोह, नीचता, अनीति और अन्याय है । मुसलमान बादशाहोंने सैकड़ों मन्दिरोंको मूर्तियों सहित मलयामेट कर दिया, परन्तु मूर्ति-पूजा बंद करनेमें सफल न हो सके । हमारा काम तो, मनुष्योंके मनोमन्दिरोंसे मूर्तियाँ निकालना है, न कि ईंट-पत्थरके बने देवालयोंको तोड़ना फोड़ना ।" महाराजमें सहानुभूतिका भाव बड़ा प्रबल था दीन हीन जनको देखकर उनका हृदय तुरन्त पिघल जाता था । एक दिन वे, श्री कालिचरणके उद्यानमें, अपने सत्संगियों-समेत बैठे शङ्का-समाधान कर रहे थे । उसी समय, एक स्त्री मरा हुआ बच्चा,

एक मैले कुचैले वस्त्रमें लिपेटे लिये जाती दिखाई दी । उससे महाराजने पूछा, "माई ! आपने इसपर श्वेत, स्वच्छ वस्त्र क्यों नहीं लपेटा ?" उसने रोकर कहा—"महाराज ! मुझ धन-हीनके पास स्वच्छ और नवीन वस्त्र कहाँ है जो इस पर डालती ।" उसके वचन सुनकर स्वामीजीकी आँखोंसे आँसुओंकी लड़ी टूट पड़ी । उन्होंने आँसू पोंछते हुए कहा—"कभी यह भारत विभूतिका भव्य भवन था, ऐश्वर्य्यका स्थान था, शोभा और सुखोंका क्रीड़ा-धाम था, परन्तु आज यह दशा है कि भारतके मरे बालकोंके तनको ढाँपनेके लिए, उनके बन्धुओंको नया कपड़ा भी नहीं जुड़ता !"

स्वामीजीके उपदेशोंसे आर्य्य पुरुषोंमें असीम उत्साह उत्पन्न हो गया। आर्य्य समाजके कार्य्योंको दृढ़ बनानेके लिए उन्होंने एक सभा की । उसमें सहस्रों रुपये एकत्र किये और उनका कुछ भाग वेद-भाष्यके काममें लगानेके लिए भी दिया ।

ग्यारहवाँ सर्ग ।

फरुखाबादमें धर्म्मोपदेश करनेके अनन्तर श्री स्वामीजी महाराज द्वितीया आश्विन ब० ८ सं० १९३६ को कानपुर पधारे। वहाँसे उन्होंने एक विज्ञापन निकाल आर्य्य समाजोंको सूचित कर दिया कि निम्नलिखित भद्र पुरुषोंको वेद-भाष्यके लिए चन्दा उगाहनेका अधिकार है:—

ठाकुर मुकुन्दसिंह और मुन्नासिंह छलेसर-निवासी; समर्थ दानजी बम्बई-निवासी; इन्द्रमनजी बख्तरसिंहजी; मंत्री आर्य्य समाज शाहजहाँपुर; श्री-रामशरणदासजी, उपप्रधान आर्य्य समाज, मेरठ; श्रीमान् साईंदासजी, मन्त्री आर्य्य समाज, लाहौर; बलदेवदासजी तथा डाक्टर बिहारीलालजी, मंत्री आर्य्य समाज, गुरुदासपुर; चौधरी लक्ष्मणदासजी, सभासद आर्य्य समाज, अमृतसर; पण्डित सुन्दरलालजी, प्रयाग; श्री अर्जुनाधार वाजपेयी, लखनऊ; माधोलाल-जी, मंत्री आर्य्य समाज, दानापुर ।

जिसके पास जितना चन्दा हो वह फरुखाबादमें महाशय जसराम गोहेराम-के पास भेजकर उसकी रसीद मँगालें । मेरी बनाई पुस्तकें समर्थ दानजी और इन्द्रमनजीसे मिलेंगी ।

कानपुरसे चलकर महाराज प्रयाग और मिरजापुरमें ठहरते हुए द्वितीय आश्विन सु० १५ सं० १९३६ को दानापुरमें सुशोभित हुए। दानापुर-वासी आर्य्य जनोंके चित्त महाराजके दर्शनोंके लिए अतीव आतुर थे। वे, चातककी भाँति, धर्म्म-मेघकी उपदेश वर्षाके प्यासे थे। उन्हें प्रार्थना करते, विनयपत्र भेजते और श्री सेवामें उपस्थित होकर विनती करते बरसों बीत गये थे। जब उन्होंने श्रवण किया कि आज श्री महाराज पधारते हैं तो उनके हृदय हर्ष-पूरसे भरपूर हो गये। चित्तमें पूर्णमासीका चन्द्रमा चढ़ आया। उस दिन वे फूले गात नहीं समाते थे। सभीके नेत्र प्रसन्नताके प्रकाशसे उज्ज्वल और विकसित हो रहे थे। जिस समय महाराजकी गाड़ीने रेलवे स्टेशनपर पहुँचना था उसके बहुत ही पहलेसे, नगरसे स्टेशनतक गाड़ियोंका ताँता बँध गया था। महाराजके स्वागतके लिए, इतनी जनसंख्या रेलवे स्टेशनपर एकत्र हो गई कि एक मेला अथवा महोत्सव प्रतीत होता था। भक्तलोग, भगवान्‌को एक चौपहिया गाड़ीमें बैठाकर बड़े समारोहसे नगरमें लाये। कुछ कालतक विश्राम करनेके लिए उन्हें, श्री माधोरामजीके निवासमें ठहराया। वहाँ स्वामीजीने सज्जनोंसे परिचय प्राप्त किया। फिर वे, चायपान करके, श्रीमान् जोन्स महाशयके बङ्गलेपर जा विराजमान हुए। यहाँ, उमाप्रसाद नामके एक महाशयने कहा; "आपके उपदेश तो सत्य हैं, परन्तु यदि लोग हठधर्मीसे न मानें तो आप क्या कर सकते हैं।" इसपर स्वामीजीने कथन किया, "यदि हमारे बचनोंको लोग एक बार भी कान देकर सुन लें तो हमारा कार्य्य सिद्ध हो गया। ये कथन एक बार भी कानमें पड़े हुए फिर निकलने नहीं पाते। सुईकी भाँति गहरे चुभ जाते हैं! इन वचनोंको ऊपरसे कोई कितना छिपाये रक्खे, परन्तु इष्ट मित्रसे एकान्तमें बातचीत करते, इनका आप ही आप प्रकाश हो जायगा।"

महाराजके व्याख्यानोंके लिए प्रेमी पुरुषोंने एक मण्डप सजाया था। वहाँ महाराज सिंहासनारूढ़ होकर उपदेश किया करते। ईश्वरादि अनेक विषयों पर सारगर्भित और चित्ताकर्षक भाषण होते। इनमें बीच बीचमें पन्थोंपर मनोगम समालोचना भी होती रहती।

एक दिन, कुछ एक मुसलमानोंने स्वामीजीके व्याख्यान-स्थानके पास ही एक मौलवीका व्याख्यान करानो आरम्भ कर दिया। परन्तु वे लोग देरतक

विघ्न बाधा न कर सके। पुलिसके एक अधिकारीने उनका डेरा डण्डा वहाँसे उठवा दिया।

महाशय गुलाबचन्द लालजी स्वामीजीके भक्तोंमेंसे थे। उन्होंने एक दिन निवेदन किया, "महाराज! मुसलमानोंके विरुद्ध कुछ भी न कहिएगा। ये लोग चटपट बिगड़ बैठते हैं और लड़ाई झगड़ेपर उतर आते हैं।" स्वामीजी उस समय तो मौन रहे, परन्तु व्याख्यानमें मुसलमान मतपर तीक्ष्ण, तर्क-तीर-वर्षा करते हुए बोले—"छोकरे मुझे कहते हैं कि मुसलमान मतका खण्डन न कीजिए! मैं सत्यको कैसे छिपा सकता हूँ? जब मुसलमानोंकी चलती थी उन्होंने हमारा खण्डन खड्गसे किया। परन्तु बड़े अन्धेरकी बात है कि आज मुझे बचनोंद्वारा खण्डन करनेसे भी रोका जाता है। ऐसे सुराज्यमें, भला मतमतान्तरोंकी पोल खोलनेसे मैं रुक सकता हूँ?।"

व्याख्यानके अनन्तर जब महाराज अपने डेरेपर पधारे तो कहने लगे, "इस समयका राज्य-प्रबन्ध किसी मतमतान्तरकी समालोचना करनेसे किसीको नहीं रोकता। वैदिक धर्म्मके प्रचारमें इस समय यह एक सुविधा है"

पंजाबके एक नगरका वर्णन करते हुए महाराजने कहा, "वहाँ मैंने विज्ञापनों द्वारा घोषणा कर दी कि कल ईसाईयोंका खण्डन किया जायगा। व्याख्यानके समय, बहुतसे देशी और योरुपीय ईसाई तथा पादरी महाशय आकर बैठ गये। उस समय प्रधान सेनापति, लार्ड राबर्ट्स महोदय भी वहाँ उपस्थित थे। उस दिन, मैंने अपने सारे सामर्थ्यसे ईसाई मतकी समालोचना की। उसपर आक्षेप किये। बाईबलमें परस्पर विरोध बताया। परन्तु रुष्ट होना तो दूर, प्रधान सेनापति अति प्रसन्न हुए। व्याख्यानके पश्चात् उन्होंने, पास आकर, मुझसे हाथ मिलाया और कहा कि निस्सन्देह आप निर्भय मनुष्य हैं। हम लोगोंकी उपस्थितिमें हमारे धर्म्मका खण्डन करते, आप किंचिन्मात्र भी नहीं हिचके तो भला दूसरोंसे आपको कब भय हो सकता है?।"

पत्तों, फूलों और फलोंको निष्प्रयोजन तोड़ना धर्म्म-शास्त्रमें विवर्जित है। इस लिए स्वामीजी भी इनका व्यर्थ नाश नहीं करने देते थे। एक दिन, महाराज बङ्गलेके बाहर टहल रहे थे। उस समय, महाशय अनन्तलाल दर्शनार्थ श्रीसेवामें उपस्थित हुए। उन्होंने यों ही, गुलाबका एक फूल तोड़ लिया।

स्वामीजीने डाँटकर कहा, "आपने यह अच्छा नहीं किया। यह पुष्प शाखासे लगा हुआ ही शोभायमान था और सुगन्धि प्रदान करता था। आपने व्यर्थमें अकालहीमें इसे तोड़ डाला है।"

इसके अनन्तर वे भीतर आकर बैठ गये और मोरछलसे मक्खियाँ उड़ाने लगे। उस समय महाशय अनन्तलालने विनय की, "भगवन्! आपने पुष्प तोड़नेसे तो मुझे रोक दिया, परन्तु आप मोरछलसे मक्खियोंको पीड़ा पहुँचा रहे हैं; क्या इसमें दोष नहीं है?"

इसपर महाराजने कहा, "हानिकारक और क्षुद्र जीवों के निवारण करनेमें आप जैसे बोदे मनुष्योंने बाधा डाली है। इसी नाममात्रकी दयासे भारतवर्षका सत्यनाश हुआ है। आप जैसे, मक्खी मच्छरकी दया माननेवाले, भीरु हृदयके दुर्बल मनुष्य, काम पड़ने पर रण-क्षेत्रमें क्या कर सकते हैं!"

स्वामीजी अपने सेवकोंको प्राणायामकी शिक्षा दिया करते थे। प्राणक्रियासे वे भयङ्कर रोगोंकी शान्ति मानते थे। इससे आत्मिक गुणोंका विकाश, प्रतिभाकी जागृति और मानसशक्तिकी उपलब्धिका होना भी वे स्वीकार करते थे। उन्होंने लिखा भी है कि प्राण अपने वशमें होनेसे मन और इन्द्रियाँ भी आधीन हो जाती हैं। बल और पुरुषार्थ बढ़ जाता है। बुद्धि इतनी तीव्र और सूक्ष्म हो जाती है कि अति कठिन और सूक्ष्म विषयको भी शीघ्र ग्रहण कर लेती है।

ठाकुरदास नामके एक सज्जन दानापुरमें वास करते थे। उन्हें योगाभ्यासकी जब लग्न लगी तो उन्होंने एक निपट अनाड़ी मनुष्यसे प्राणायाम सीखना आरम्भ कर दिया। विधि-विहीन, उलटी पुलटी रीतिसे पूरक, रेचक और कुम्भक करनेपर उनके प्राण प्रकुपित हो गये। नाभिकमल-निवासी, अपान पवनमें गाँठ पड़ जानेसे उसे सदा पीड़ा रहने लगी! इससे, वे बड़े दुर्बल और कृश हो गये। एक दिन, उन्होंने भगवान्के आगे अपने रोग-भोगका वर्णन किया। महाराजने उनको आश्वासन देते हुए कहा, "योगासनसे, हम आपका तीन वर्षोंका रोग दो ढाई पलमें दूर कर देंगे।"

महाराजने ठाकुरदासको एक कोठरीमें ले जाकर पीठके बल लिटा दिया और घुटने खड़े रखवाये। उनके पावँपर अपने पावँ रखकर दबाव डाला और दूसरी

ओरसे उनका सिर ऊपरको उठवाया । इस क्रियासे वे तत्काल स्वस्थ हो गये । उनकी व्याधि दूर हो गई ।

एक दिन ठाकुरदासजीने स्वामीजीसे प्रार्थना की, "भगवन् ! निराकार परमात्माका दर्शन कैसे हो सकता है ?" स्वामीजीने उत्तरमें कहा, "जैसे सूक्ष्म रज-कण सारे आकाशमें उड़ते फिरते हैं; परन्तु दृष्टिगोचर तभी होते हैं जब सूर्य्यकी किरणें झरोकेमेंसे होकर उनको प्रकाशित करती हैं; ऐसेही परमेश्वर सर्वत्र परिपूर्ण है, परन्तु हृदयके झरोकेमें ध्यान किये बिना देवके दर्शन दुर्लभ हैं ।"

एक दिन जोन्स महाशय, कई पादरियों-सहित श्रीसेवामें आये और शिष्टाचारके अनन्तर कहने लगे—"महाराज ! कोई धर्मोपदेश दीजिए ।" स्वामीजीने उनकी विनयपर उपदेश देना आरम्भ किया कि "परमात्माके रचे हुए पदार्थ सबके लिए एकसे हैं । सूर्य और चन्द्रमा सबको समान प्रकाश प्रदान करते हैं । वायु और जलादि वस्तुयें सबको एकसी दी गई हैं । जैसे ये पदार्थ ईश्वरकी देन हैं, सब प्राणियोंके लिए एकसे हैं, ऐसे ही परमेश्वर-प्रदत्त धर्म्म भी मनुष्योंके लिए एक और एकसा होना चाहिए ।"

फिर महाराजने कहा, "उस एक साधारण धर्म्मको ढूँढनेके लिए यदि कोई जिज्ञासु सारे मतवादियोंमें भटकता रहे और पन्थाइयोंके कथनोंपर विश्वास करके धर्म्मको जानना चाहे तो उसे सच्चे धर्म्मका ज्ञान कदापि नहीं हो सकेगा । हाँ, यदि वह सबमेंसे सारको निकाले तो उसे प्रतीत होगा कि थोड़ा बहुत सत्य सब मतोंमें पाया जाता है; जैसे, सत्यको सब मतावलम्बी स्वीकार करते हैं । कभी कहते हैं कि परोपकार पुण्यकर्म्म है, भूत-दयाका भाव बहुत अच्छा है, विपत्ति-व्याधि-ग्रस्त मनुष्योंको सहायता देना और दान-पुण्य करना शुभ कर्म्म है । सारांश यह कि सदाचार और धर्म्मके जिन अङ्गोंमें सब मत एकमत है वही धर्म्म ईश्वरकी देन है । वही सच्चा और सनातन है । शेष यह सब अपनी अपनी खींचातानी है कि ईसा, मुहम्मद और श्रीकृष्णके बिना मुक्ति नहीं मिल सकती ।"

इतना कहकर महाराजने अतिथियोंसे पूछा, "क्या आप इसपर कुछ कथन किया चाहते हैं ?"

जोन्स महाशयने कहा—'आपका कथन ही ऐसा है कि इसपर कुछ कहते बन नहीं आता। जब आप इतने उदार और स्वतंत्र विचार रखते हैं तो छूताछूत क्यों मानते हैं ? आपको हमारे साथ मिलकर भोजन करनेमें क्यों नकार है ?"

इसपर स्वामीजी बोले, "किसी मनुष्यके साथ खाने पीनेमें धर्म्मा-धर्म्म नहीं है। ऐसी सब रीतियाँ, देश और जातिके आचार-व्यवहारके साथ सम्बन्ध रखती हैं। वास्तविक धर्म्मके साथ, इनका कोई भी सम्बन्ध नहीं है। परन्तु सोच-विचारवाले सभी मनुष्य, आवश्यकताके बिना अपने देश और जातिके नियमोंको नहीं तोड़ते; उनके प्रतिकूल आचरण नहीं करते। आप ही बताइए, क्या आप अपनी पुत्रीका विवाह किसी देशी ईसाईके साथ करनेको समुद्यत हैं ? क्या ऐसा कर देनेसे आपको प्रसन्नता होगी ?

उस योरुपीय महाशयने कहा, "हम ऐसा करनेके लिए कभी भी समुद्यत न होंगे !"

स्वामीजीने पूछा, "क्यों धर्म्म-विचारसे ?"

उन्होंने उत्तर दिया—"नहीं, अपनी जातिकी रीति-नीतिके कारण !"

तब फिर महाराजने कहा, "इसी प्रकार, हम भी अपने देश-बन्धुओंके नियम और व्यवहारके कारण आप लोगोंसे सहभोज नहीं करते।"

यह सुनकर वह लोग सन्तुष्ट हो गये।

जोन्स महाशयने फिर निवेदन किया, "हिन्दुओंमें मूर्ति पूजा क्यों है ?"

स्वामीजीने उत्तर दिया, "आर्य्योंके धर्म्ममें और धर्म्मग्रन्थोंमें प्रतिमापूजनकी आज्ञा नहीं है। इसके चलनेका कारण यह प्रतीत होता है कि पहले लोग अपने मृत महापुरुषोंकी मूर्तियाँ बनवाकर घरोंमें रखते थे। उन्हें अपने पूज्य पुरुषोंका स्मारक-चिह्न समझते थे। कालान्तरमें उन्हीं प्रतिमाओंको वे प्रेमसे पूजने लगे। आपके मतमें भी लोग ईसा और मरियमकी मूर्तियाँ रखते हैं। इनका पूजन भी करते हैं। अविद्याकी वे बातें दोनों मतोंमें समान हैं।"

जोन्स महाशय अपने साथियों-सहित, स्वामीजीकी कथन-शैलीपर अति प्रसन्न हुए और प्रशंसा-पूर्वक हाथ मिलाकर चले गये।

फिर एक दिन कई पादरी महाशय स्वामीजीके निवास-स्थानपर पधारे। गो-रक्षापर बातचीत चल पड़ी। महाराजने जोन्स महाशयसे पूछा, "भलाई क्या है?" उसने कहा—"आप ही कृपा कीजिए।" तब स्वामीजीने कहा, जिस कर्ममें अधिकांश मनुष्योंका अधिक उपकार हो उस कर्मको मैं भलाई मानता हूँ।" इस सिद्धान्तको जोन्स महाशयने भी स्वीकार कर लिया। तब फिर, महाराजने बड़ी उत्तमतासे सिद्धकर दिखलाया कि 'गो-रक्षासे अधिकांश मनुष्योंको अत्यन्त अधिक लाभ होता है।'

उनके उपदेशको सुनकर जोन्स महाशयने गो-मांस भक्षणके परित्यागका वहीं प्रण धारण कर लिया।

जिन दिनोंमें स्वामीजी दानपुर-वासियोंको धर्म्मोपदेश प्रदान कर रहे थे, उन्हीं दिनोंमें वहांकी धर्म्म-सभाने चतुर्भुज पण्डितको अलीगढ़से बुला लिया, उसके व्याख्यान भी होते थे। चतुर्भुज था बड़ा नटखट। उसने अपने व्याख्यानोंमें स्वामीजीके विरुद्ध मुसलमानोंको भड़काना आरम्भ किया। दानापुरके आर्य्य जन उसकी चालोंको ताड़ गये। उन्होंने स्वामीजीको भी संयत और सचेत रहनेकी प्रार्थना की।

एक दिन महाराज व्याख्यान समाप्त कर चुके तो कुछ लोगोंने आकर उनसे निवेदन किया कि कुञ्जबिहारी शाहके मकानपर चलिए। वहाँ पण्डित चतुर्भुज भी आयगा। परस्पर मिलकर शास्त्रार्थके नियमोंका निर्णय कर लीजिए। स्वामीजी सहज स्वाभावसे उनके साथ चल पड़े। आर्य्य पुरुष भी उनके साथ हो लिये। जब स्वामीजीने उस मकानमें प्रवेश किया तो वह पहलेहीसे पौराणिकों और मुसलमानोंसे ठसाठस भरा हुआ था। वे लोग गोलमाल करनेके लिए कटिबद्ध बैठे थे।

स्वामीजीने कहा—'चतुर्भुजजी कहाँ हैं? उन्हें बुलाइए जिससे शास्त्रार्थके नियम नियत किये जायँ।"

चतुर्भुज बड़ा खुर्राट था। वह वहाँ नहीं आया। धर्म्म-सभाके मंत्रीने उत्तर दिया कि आप हमहींसे बातचीत कीजिए। महाराजने फिर बलपूर्वक कहा कि चतुर्भुजके साथ मिलकर नियम निश्चित करनेके लिए मुझे आमन्त्रित किया गया है। उन्हींसे वार्त्तालाप होगा।

धर्म्म-सभाके मन्त्रीने परुषभाषामें कहा कि चतुर्भुजजी तो आपका दर्शन करना भी पाप मानते हैं। आपने जो कुछ कहना है हमींसे कहिए।

स्वामीजीने उत्तर दिया कि यदि मुझे देखनेसे वे पातकी बन जाते हैं तो बीचमें एक पड़दा तानकर उन्हें उसकी ओटमें बैठा दीजिए, पर बातचीत अवश्य कराइए।

उस समय रातके नौ बजे होंगे। ऐसे वादमें किसीने दीपक बुझा दिया। फिर चारों ओर ताली बजने लगी। लोग ठट्ठा मारकर हँसने लगे। उनको इस प्रकार खिल्ली उड़ाते देख श्री माधोलालजी, कोपावेशमें आकर गर्जना-पूर्वक बोले कि स्मरण रखिए, यदि आपने कोई छेड़-छाड़ की तो हम भी आपको यहाँसे जीता न जाने देंगे। उसी समय आर्य्य पुरुष महाराजको आगे करके वहाँसे चले पड़े। दुष्ट जनोंने श्रीमहाराजपर दो चार ढेले भी फेंके, परन्तु वे सकुशल स्वस्थानपर पहुँच गये।

पुराने दानापुरका रहनेवाला 'दुर्गा अवस्थी' ब्राह्मण महाराजके दर्शनोंको बहुत ही तरस रहा था। पर वह बिरादरीसे इतना डरता था कि श्रीसेवामें जानेका साहस नहीं कर सकता था। एक दिन वह सात घड़ी रात रहते उठकर वहाँ जा खड़ा हुआ, जिधरसे स्वामीजी अपने स्थानको लौटा करते थे, भगवान् निकट आ गये तो उसने श्रीदर्शनोंसे अपनेको निहाल हुआ माना। स्वामीजी गम्भीर गतिसे अपने आसनको चले आते थे और दुर्गा अवस्थी उनकी मनोमोहिनी मूर्तिको, अतृप्त लोचनोंसे निहारता पीछे पीछे चला आता था। कोठीके सीमा द्वारपर पहुँचकर स्वामीजी ठहर गये और उससे पूछने लगे कि क्या आप कुछ पूछना चाहते हैं? भक्तने पहले अपनी क्लेश-कथा सुनाई। फिर, निवेदन किया कि भगवन् मैं आपके परम पुनीत, पूज्य पद-पद्मोंकी पवित्र रज, अपने मस्तकपर रमाना चाहता हूँ। अपार कृपासे इस तुच्छ जनको यह सौभग्य प्रदान कीजिए। महाराजने उसे बहुत कहा कि ऐसी बातोंमें धरा ही क्या है परन्तु अन्तमें भक्तकी भावनाके वशीभूत होकर, भगवान्ने अपने चरणको उसके मस्तकके साथ छूआया। दुर्गा अवस्थी, श्रीचरणोंकी धूल अपने भालपर लगाकर, अति प्रसन्नतासे अपने गृहको चला गया।

एक रातका वर्णन है कि महाराज आधी रातके समय जाग पड़े और उठकर इधर उधर चक्कर लगाने लगे। उनके पाँवकी आहट सुनकर एक कर्म्मचारीकी भी आँख खुल गई। उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि स्वामीजी किसी बड़ी व्याकुलता और घबराहटमें घूम रहे हैं। उसने विनय की, "भगवन्! यदि कोई वेदना है तो आज्ञा कीजिए। सेवक औषधोपचार करनेके लिए उपस्थित है। यदि आदेश हो तो वैद्यको भी बुला लाऊँ।"

उस समय, स्वामीजीने सुदीर्घ साँस लेकर कहा, "भाई! यह बड़े वेगसे बढ़ती हुई वेदना, आपके औषधोपचारसे शमन होनेवाली नहीं है। यह वेदना भारतके परिश्रमी लोगोंकी दुर्दशाके चिन्तनसे, चित्तमें अभी उत्पन्न हुई है। ईसाई लोग कोलभील आदि भारत-वासियोंको ईसाई बनानेके लिए अपनी कल्पनाओंके ताने बाने तन रहे हैं। रुपया भी पानीकी तरह बहानेको कटिबद्ध हैं। परन्तु इधर आर्य्य जातिके भी पुरोहित हैं, जो कुम्भकर्णकी नींद पड़े सोते हैं। उनके कानोंपर जूँ तक नहीं रेंगती। मैं अब यह चाहता हूँ कि राजों महाराजोंको सन्मार्गपर लाकर सुधार करूँ। आर्य्य जातिको, एक उद्देश्यरूपी, सुदृढ़ सूत्रमें आबद्ध करूँ।"

महाराज आगन्तुक जनके मनोगत भावोंको जाननेमें अति निपुण थे। एक शब्दके उच्चारणपर ही दूसरेकी लम्बी चौड़ी वार्त्ताका आशय जान जाना उनके लिए एक साधारण बात थी। किसीके प्रश्नका एक शब्द सुन पानेपर उसके सारे प्रश्नका उत्तर देने लग जाते थे। इससे श्रोता जन बड़े विस्मयको प्राप्त होते। उनके सत्संगमें आनेवाले प्रेमी जन इस बातका अनुभव करने लगते कि महाराजके विमल चित्त-दर्पणपर, हमारे हार्दिक भावोंका अवश्यमेव प्रतिबिम्ब पड़ जाता है, जिससे वे हमारी बातके एक अंशको सुनकर सम्पूर्णका परिज्ञान प्राप्त कर लेते हैं।

एक प्रेमी पुरुषने प्रार्थना की, "महाराज! अभ्यासमें मन लगानेका बहुत ही यत्न करता हूँ, परन्तु इसके तरल तरङ्ग अभंग ही बने रहते हैं; सङ्कल्प-विकल्प शान्त ही नहीं होते।"

स्वामीजीने व्यंगभावसे समझाया, "मन नहीं टिकता तो भाँग भवानीका एक लोटा और चढ़ा लिया करो।"

यह उत्तर सुनकर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। वह मन ही मन कहने लगा कि स्वामीजीको तो 'स्थाली-पुलाक न्याय' से भी पता नहीं है कि मैं भाँग पीता हूँ। फिर यह जान कैसे गये? सच है सत्पुरुषोंके सामर्थ्यकी कोई सीमा नहीं पा सकता। महापुरुषोंका माहात्म्य अगम्य हुआ करता है। एक महाशयने एक दिन निवेदन किया—भगवन्! उपासनामें चंचल चित्तको टिकानेके लिए किसी योग-क्रियाका उपदेश दीजिए।

स्वामीजीने व्यङ्ग वचनसे शिक्षा दी कि एक और विवाह कर लो, फिर चित्त आप ही स्थिर हो जायगा। यह उत्तर सुनकर, वह मनुष्य अति लज्जित और विस्मित हुआ। लज्जा तो उसे इससे आई कि एक स्त्रीके जीते जी उसने दूसरा विवाह कर लिया था, और आश्चर्य इस लिए हुआ कि बिना बताये, महाराजको इसका ज्ञान हुआ तो कैसे हुआ।

महाराज सत्यको अति महत्त्व देते। सत्यपर ही सारे सुधारका निर्भर समझते। उनका निश्चय था कि जबतक किसी जन अथवा जातिमें सत्य नहीं आता तबतक उसकी उन्नतिके दिन सुदूर ही रहते हैं। सत्यवादी मनुष्यके लिए वे अति प्रेम और सम्मान प्रदर्शित किया करते।

महाराज व्याख्यान-स्थानमें आते समय सबको नमस्ते कहा करते। मेल-मिलापके समय भी नमस्ते उच्चारण करते। उनके पास कोई कितना ही साधारण परिस्थितिका मनुष्य क्यों न जाता वे मुस्कराते हुए, पहले 'नमस्ते' कहा करते। उनके इस शिष्टाचारपर प्रेमीजन मोहित हो जाते थे।

महाराजमें निरभिमानता चरमसीमाको पहुँची हुई थी। उनमें अहङ्कारका लेश भी न था। एक बार एक भद्र पुरुषने उन्हें कहा—"भगवन्! आप तो ऋषि हैं।"

महाराजने उत्तरमें कहा, "ऋषियोंके अभावमें, आप लोग मुझे ऋषि कह रहे हैं। परन्तु सत्य जानिए, यदि मैं कणाद ऋषिका समकालीन होता तो विद्वानोंमें भी अति कठिनतासे गिना जाता।"

दानापुरमें धर्म-वृक्षको उपदेशामृतसे सिंचन करके, स्वामीजी महाराज कार्त्तिक सुदी चतुर्दशी १९३६ को वहाँसे प्रस्थान कर उसी दिन काशीधाममें सुशोभित हुए। काशी धाममें उनका यह शुभागमन सप्तम और अन्तिम

था। पण्डित भीमसेनजीके नामसे एक विज्ञापन प्रकाशित हुआ और काशीके कोने-कोनेमें लगाया गया कि श्रीमद्दयानन्द सरस्वतीजी महाराज, यहाँ पधारकर, विजयनगरके आनन्द उद्यानमें विराजमान हैं। वे मूर्ति-पूजा और पुराणोंका प्रबल खण्डन करते हैं। इनको वेद-विरुद्ध सिद्ध कर दिखलाते हैं। जो पण्डित इनके सिद्ध करनेका सामर्थ्य रखता हो वह स्वामीजीके सामने आकर शास्त्रार्थ कर ले।

जब इस विज्ञापनपर किसी महामहोपाध्यायकी निद्रा न टूटी तो चौगुने बलसे दूसरा विज्ञापन निकाला गया। पण्डित लोग घरोंमें बैठे तो बहुतेरी डींगें मारते, परन्तु शास्त्रार्थ करनेका नाम तक न लेते। जैसे कदली-कुंजको कर्दन-मर्दन करने वाले कुञ्जर, केसरीकी गर्जना सुनकर चिंघाड़ते अवश्य हैं परन्तु बलके कारण नहीं, प्रत्युत भयसे, ऐसे ही शास्त्री जन स्वामीजीके सिंह नादसे कम्पित होकर चिल्लाते तो बहुत थे, परन्तु उस नरसिंहके समीप जानेका साहस नहीं करते थे।

श्रीमान् कर्नल अल्काट और मैडम ब्लैवटस्की, तीन चार साथियोंसहित श्री महाराजके दर्शन करनेके लिए मार्गशीर्ष सु० २ सं० १९३६ को काशीमें आए। उनके आगमनके पश्चात् दूसरे दिन राजा शिवप्रसाद भी वहाँ आगए। स्वामीजीसे थोड़ी देरतक बातचीत करनेके अनन्तर, वे अल्काट महाशय और मैडमसे मिले।

श्री अल्काट और मैडम, श्रीमहाराजके सत्संगमें बैठकर, ज्ञान-चर्चा और योग-वार्त्ताका आनन्द उपलब्ध किया करते थे।

स्वामीजीने जब देखा कि शास्त्रार्थके लिए तो काशीका कोई पण्डित समुद्यत नहीं होता, तो उन्होंने उपदेश देनेका विचार कर लिया। पण्डित भीमसेनजीकी ओरसे विज्ञापन निकाला गया कि मार्गशीर्ष सुदी ७ सम्वत् १९३६ को, बङ्गाली टोला अन्तर्गत पुत्री-पाठशालामें, श्रीमहाराजका व्याख्यान होगा और अल्काट महाशय भी भाषण करेंगे। व्याख्यानके विज्ञापनोंको देखकर, काशीके कुछ मनुष्योंने एक निन्दनीय नीतिका आश्रय लिया। उन्होंने कलेक्टर महाशयको जाकर कहा कि "यदि स्वामीजीका भाषण हुआ तो काशीमें शान्तिभंग हो जायगी"।

जिन स्वामीजीके इने गिने सङ्गी-साथी थे; वे सारे नगरकी जन-संख्याके साथ लड़ भिड़कर शान्ति-भंग कैसे कर देंगे, इसपर कुछ भी ध्यान दिये बिना, कलेक्टर महाशयने आज्ञापत्र लिखकर ठीक उस समय स्वामीजीके पास पहुँचाया, जब वे पुत्री पाठशालाके द्वारपर पहुँचे। उसमें लिखा था कि काशीमें कोई वाद अथवा व्याख्यान न कीजिए।

कलेक्टर महाशयकी आज्ञापर 'पायोनियर' समाचार-पत्रने अपने पौष ब० २ सं० १९३६ के अंकमें जो टिप्पणी की थी उसका सारांश यह है:—हमें निश्चय था कि भारतके शासक जन किसीके धर्म-प्रचारमें हस्तक्षेप नहीं करते। दिल्लीकी घोषणाका भी यही सार-मर्म है। परन्तु आज यह बात विचारणीय है कि बृटिश शासनमें हमको धार्मिक स्वतन्त्रता है भी कि नहीं? देखिए, एक मनुष्य, जिसकी विद्यामें किसीको ननु-नच तक करनेका अवकाश नहीं है, वह लगातार पाँच वर्षोंसे नगर नगरमें चक्कर लगाकर वेदोंका प्रचार करता है। वह केवल एक परब्रह्मकी उपासना करनेका उपदेश देता है। उसने युक्ति प्रमाणोंसे सिद्ध कर दिया है कि सती होनेकी रीति और मूर्त्ति-पूजन वेद विरुद्ध है। जो, बुरी बुरी रीतियाँ आर्य्यवर्त्त और आर्य्यजातिको बिगाड़ रही हैं उनको वह हटाता है। वह अपने देश-वासियोंके सुधारमें रात-दिन लीन रहता है। आज जो भारतके युवकोंमें उन्नतिकी उच्चाकांक्षा पाई जाती है यह उसीके उपदेशोंका प्रताप है। वर्त्तमान शासनके विरुद्ध आन्दोलन करनेकी उसने कभी इच्छा नहीं की। उसने तो अपने भाषणोंमें कई बार कहा है कि यह शोभा बृटिश राज्य ही को प्राप्त है कि किसीके मतमें विघ्न-बाधा नहीं डाली जाती। वह महापुरुष आर्य्य समाजका संस्थापक, आचार्य्य दयानन्द सरस्वती है।

उन्होंने काशीमें पधारकर विज्ञापनोंद्वारा धर्म्मका आन्दोलन उत्पन्न कर दिया। स्वार्थीलोग उसका विरोध करनेके लिए इतने तुले कि कलेक्टरको कहकर उनका व्याख्यान बँद करा दिया। इस बातकी व्याख्या करना व्यर्थ है कि एक योरुपीय मजिस्ट्रेटने, उनके व्याख्यान बँद करके, एक भारी भूल की है। निस्संदेह, कलेक्टर 'वाल' महाशय विचारनेपर स्वयमेव अनुभव करेंगे कि उन्होंने इस कार्य्यवाहीसे, इस युगके अत्यंत विद्वान्, योग्य महात्माके हृदयको ठेस पहुँचाई है।

वाल महाशयकी उस आज्ञापर और भी अनेक पत्रोंने कड़ी समालोचना की और उनके कर्मको सर्वथा अनुचित ठहराया। अन्तमें किसी ऊपरी दबावसे अथवा अपने पिछले कियेको अनुचित जानकर, वाल महाशयने मार्गशीर्ष सु० १४ सं० १९३६ को स्वामीजीकी सेवामें पुलिसके इन्सपेक्टरको भेजकर सूचित किया, "अब आप अपने निश्चयानुसार धर्म्म-प्रचार करनेमें स्वतन्त्र हैं।"

इसके पश्चात् वाल महाशय आप स्वामीजीसे मिले और अपने आज्ञापत्रके विषयमें कहने लगे, "यह सब कुछ आपकी रक्षाके निमित्त किया गया था। एक तो मुहर्रमके दिनोंमें आपका व्याख्यान देना, अपने जीवनको जोखिममें डालना था। दूसरे काशीके एक बहुत बड़े सम्भ्रान्त व्यक्तिने हमें कहा था कि यदि स्वामीजी व्याख्यान देंगे तो अवश्य शान्ति भंग हो जायगी।"

स्वामीजीने वाल महाशयसे कहा, "आप राजपुरुष हैं। प्रबन्ध करना आपका कर्त्तव्य है। जब आपको ज्ञात हुआ था कि कुछ लोग गड़बड़ करना चाहते हैं तो आप उन्हें डाँट बताते और व्याख्यान-स्थानपर पुलिसका प्रबन्ध करते। परन्तु आपने उलटा व्याख्यान ही बँद कर दिया!"

वाल महाशयने अपनी भूल स्वीकार की और आगेको सावधान रहनेका वचन दिया।

कहा जाता है कि प्रान्तीय गवर्नर महोदयने वाल महाशयसे उत्तर माँगा था कि 'तुमने स्वामीजीके व्याख्यान क्यों बँद किये हैं?' व्याख्यानोंके मार्ग की रुकावट तो एक अठवाड़ेमें ही उठा दी गई थी, परन्तु श्री महाराज फाल्गुन सुदी नवमी सम्वत् १९३६ तक अपने स्थानपर ही सत्संग लगाते रहे। धर्म्माभिलाषी जन वहीं आकर आनन्द उठाते थे।

फाल्गुन सुदी दशमी सम्वत् १९३६ से लक्ष्मीकुण्डपर साँझके सात बजेसे नौ बजेतक प्रति दिन, महाराजके धुँआधार व्याख्यान होने लगे। इन व्याख्यानोंमें उन्होंने मिथ्यामूलक मन्तव्योंका बलपूर्वक खण्डन किया। चैत्र सुदी ६ को जब व्याख्यान-माला समाप्त हुई तो उसी दिन आर्य्यसमाजकी शुभ स्थापना कर दी गई।

महाराजके व्याख्यानोंसे एक बार तो काशी हिल गई थी। जहाँ जाओ, वहीं व्याख्यानोंकी ही चर्चा सुनाई देती। उपदेशोंमें पण्डित लोग दल बाँध-

कर आते; परन्तु शास्त्रार्थ और प्रश्नोत्तर करनेके लिए एकभी समुद्यत न होता !

स्वामीजी अपने शिष्योंसे कहा करते थे कि "प्रथम शास्त्रार्थमें ताराचरण भट्टाचार्य्यने बड़ी टेढ़ी चालसे काम लिया था। जो पुस्तक उन्होंने मेरे सम्मुख की वह हस्तलिखित थी और इसी प्रयोजनसे प्रस्तुत की गई थी कि पढ़ी ही न जाय । अबकी बार मैं ऐसी सुसज्जासे आया हूँ कि कोई किसी कुटिल और कूट नीतिसे भी मुझे धोखा नहीं दे सकेगा । पण्डित लोग अपने विद्यार्थियोंके सामने मुझे सहस्रों गालियाँ देते हैं, परन्तु सामने आनेका नाम तक नहीं लेते ।"

एक दिन एक ब्राह्मणने महाराजसे कहा—आप मूर्तिका खण्डन क्यों करते हैं ? स्वामीजीने उत्तर दिया कि मैंने अपने सारे जीवनमें एक भी मूर्तिका खण्डन नहीं किया । हाँ, मूर्ति-पूजाका खण्डन तो प्रतिदिन करता हूँ ।

महाराजके कर्मचारियोंमें एक दिनेशराम लेखक था । वह ऊपरसे तो बड़ा भक्त बना रहता, परन्तु भीतरसे स्वामीजीके कार्य्योंमें जान बूझकर अशुद्धियाँ कर देता । स्वामीजीके सम्मुख, वह बड़ी चिकनी चुपड़ी बातें करता, पर उनकी पीठ पीछे, दूसरे कर्मचारियोंको कहता कि यह साधुड़ा हम लोगोंके हथकण्डोंको क्या जाने ? हम अपने चातुर्य्यसे इसके ग्रन्थोंमें ऐसी बातें मिला देंगे और इस प्रकार मिला देंगे कि उनका पता, इसे प्रलय-कालतक भी न लगेगा ? अन्तमें दिनेशराम महाराजकी सूक्ष्म दृष्टिसे न बच सका । वह लेखकके कामसे पृथक् कर दिया गया ।

स्वामीजीके कर्मचारी कई बातें उनके मन्तव्यके विरुद्ध कर देते । विद्यार्थी जन कई बातें बार बार समझानेपर भी न मानते । महाराजने एक दिन सबको एकत्र करके कहा, "आप लोगोंके हृदयोंमें जो मेरे कथनोंका विश्वास उत्पन्न नहीं होता इसके अनेक कारण हैं; एक तो आपमें सचाई के लिए अधिक आदर नहीं है । दूसरे आप सब, मिथ्या कथाओंसे प्राप्त किये अन्नसे पले हो । तीसरे आप लोग मृतकोंका आदर करनेवाले बन गये हो। यह भाव आपमेंसे उठ गया है कि जीवित पितरोंका श्रद्धा भक्तिसे आदर करना धर्म्म है ।"

महाराजका एक कर्मचारी आनन्द उद्यानमें, एक दिन बेर तोड़ रहा था। उन्होंने उसे देखकर पास बुलाया और शिक्षा दी कि उद्यानके स्वामीसे पूछे बिना आगेको कभी कोई फल न तोड़ना ।

काशी नगरके कोतवाल महाशय स्वामीजीके भक्त बन गये थे। उन्होंने महाराजके रसोइएको कह दिया था कि जिस वस्तुकी आवश्यकता हो वह हमारे नामपर, दुकानसे ले आया करो! एक दिन कोतवाल महाशयने स्वामीजीसे निवेदन किया कि भगवन्! आज बुढवा-मङ्गलका मेला है। यदि उसमें चलें तो नौकाका प्रबन्ध कर दिया जाय। महाराजने उत्तर दिया कि जिस मेलेमें वेश्याओंके नृत्य और गीत होते हैं; वह बुढवा-मङ्गल नहीं किन्तु भड़वा मङ्गल है। ऐसे मलिन मेलेको देखना मैं कदापि उचित नहीं समझता।

कोतवाल महाशयने अति प्रीतिसे, महाराजके बैठनेके लिये एक गद्दी बनवाकर उनकी भेंट की। एक शीतल पाटी भी श्रीचरणोंमें रक्खी। वे प्रतिदिन दर्शनार्थ आते थे।

एक दिन पण्डित हरिश्चन्द्रजी श्रीसेवामें उपस्थित हुए। उस समय स्वामीजी अल्काट महाशयसे अपना जीवन-चरित्र लिखवा रहे थे। वार्त्तालापमें श्री हरिश्चन्द्रजीने निवेदन किया—"महाराज! आपके खण्डन करनेसे लोगोंमें वैर-विरोध बहुत बढ़ता है।"

महाराजने अपने हाथोंको मिलाकर कहा—"मेरा उद्देश्य इस प्रकार लोगोंको आपसमें मिलाना है। सकल समुदायोंको एकतामें लाना है। मैं चाहता हूँ कि कोल-भीलसे लेकर ब्राह्मणपर्य्यन्त, सबमें एक ही जातीय जीवनकी जागृति हो। चारों वर्णके लोग एक दूसरेको अङ्ग-अङ्गी समझें। परन्तु क्या करें, सुधारके बिना मिलाप होना असम्भव है। मेरा खण्डन करना हित और सुधारसे भिन्न और कुछ भी नहीं है।"

एक भक्तने स्वामीजीसे निवेदन किया—"भगवन्! जहाँ आर्य्यसमाज न हो वहाँ आर्य्य जनोंको अपने धार्मिक जीवनको परिपुष्ट बनाये रखनेके लिए क्या उपाय करने चाहिएं?

महाराजने उपदेश दिया, "जब कोई आर्य्य एकाएकी हो तो उसे स्वाध्याय करना चाहिए। दो आर्य्य जन हों तो उन्हें परस्पर प्रश्नोत्तर और सम्वाद करना उचित है। यदि दो से अधिक आर्य्य एकत्र हों तो उनको चाहिए कि परस्पर सत्संग करें, किसी धर्म्म-ग्रन्थका पाठ सुनें सुनावें।"

स्वामीजी को खुली वायुमें बैठना मनोनीत था । जिस कोठरीमें बैठकर वे कार्य्य किया करते वह, कभी कभी, दर्शकोंकी भीड़से खचाखच भर जाती थी । ज्यों ही लोग वहांसे चले जाते महाराज, उसी समय, उसमेंसे उठकर बाहर टहलने लगते । कभी कभी घूमने भी चले जाते । रातके समय उनके शयनकी कोठरीमें दोनों ओरकी खिड़कियां खुली रहतीं । पवनके गमनागमनका उनको बड़ा ध्यान रहता था मुखपर वस्त्र डालकर वे कभी न सोते थे ।

खुले स्थानमें बैठकर कार्य्य करना, एक आसन बैठकर घण्टोंतक काम करते चले जाना, नियत समयपर नियमित कार्य्य आरम्भ करना और उस दिनका निश्चित कार्य्य समाप्त करके ही उठना, उनके स्वभावका एक अंग था । वे नित्य प्रति नियत कालपर ही घूमने निकला करते और ठीक समयपर लौट आते । उनकी सारी दिनचर्य्याका मार्ग घड़ीकी सूइयोंके मार्गकी भांति नियमित था । शिष्टाचारमें, मर्य्यादापालनमें और रहन-सहनमें वे दृष्टान्तरूप थे । सकल सद्गुण-समूहका समावेश, श्री स्वामीजीके स्वभावमें पाया जाता था । वैसे तो वे बड़े सरल,कोमल और मृदु थे परन्तु स्पष्टवादितामें वे किसीका भी पक्षपात नहीं करते थे । सत्य भाषणमें वे आदर्श-स्वरूप थे । उनकी वाणीमें लाग-लपेटकी वासनातक नहीं होती थी । उनके चित्तमें दूसरोंके लिए बड़ा आदर था । आगन्तुकी आव-भगतमें, वे वचन-कंजूस कभी नहीं कहलाये । वे छोटे बड़े सबको सम्मान देते । बातचीतमें वे अति सौम्य और प्रिय लगते थे । सब दर्शक जन, अतृप्त और निर्मेष नेत्रोंसे, उनकी मनोज्ञ मूर्त्तिको देखा किया करते । परन्तु जब वे धर्म्म-संग्राममें उतरते तो उनका तेज सूर्य्य समान हो जाता था । उनकी ओर झांकनेसे वादियोंकी आंखें चौन्ध्या जातीं । उनका वे केसरी सदृश दिखाई देते ।

काशी-वासमें, स्वामीजीने अनेक उत्तमोत्तम कार्य्योंके साथ साथ माघ सु० २ सं० १९३६ को लक्ष्मीकुण्डपर, महाराज विजयनगरके स्थानमें, वैदिक मुद्रणालय स्थापित करके, उसीमें अपनी पुस्तकें छपानेका पूरा पूरा प्रबन्ध भी कर दिया ।

स्वामीजी महाराजने काशी-निवासमें, कई मासके लगातार सत्सङ्गमें वहाँवालोंको कृतार्थ कर दिया । तत्पश्चात् उन्होंने निर्घोषित कर दिया कि

"वैशाख कृष्ण एकादशी १९३७ को हम यहाँसे प्रस्थान कर जायेंगे, इस लिए जिस किसीको धर्म्म-चर्चा करनी हो और प्रश्न पूछने हों, वह उक्त तिथिसे पहले, हमारे स्थानपर आकर अपने सन्देह मिटा सकता है ।"

इतने मासमें किसीको पूछने योग्य कुछ भी न सूझा । किसीको भी स्वामीजीके कार्य्यों और ग्रन्थोंमें कोई भूल दिखाई न दी। परन्तु जिस समय स्वामीजीके उपकरण रेलके स्टेशनको जा रहे थे और वह आप भी चलनेहीको थे, उस समय राजा शिवप्रसादने पत्र पहुंचाया और कुछ प्रश्नोंके उत्तर माँगे !

यद्यपि राजा महाशयका यह कर्म घृणित था और उनके घमण्डको प्रकट करता था; फिर भी मान-मत्सर-रहित, उस महापुरुषने राजा महाशयको लिख दिया कि मैं परस्थान करनेको समुद्यत हूँ । आप यथा सम्भव शीघ्र आइए और अपनी शङ्काओंका समाधान सुन जाइए । पर वहाँ आना जाना किसने था ! वह तो उंगलीको लहू लगाकर वीर बन जानेवाली बात थी । राजा महाशयने तो जैसे तैसे अपना पाण्डित्य प्रख्यात करना था ।

स्वामीजी देरतक शिवप्रसादजीकी प्रतीक्षा करते रहे । जब वे न आये और गाड़ीका समय हो गया तो वे, वहाँसे प्रस्थानकर, लखनऊ आ गये । श्रीरामाधार और सरयूदयाल आदि सज्जनोंने, महाराजको नदीके किनारे, मोती महलमें ठहराया । एक दिन, उस स्थानकी मनोभाविनी शोभा देखकर श्रीरामाधारजीने कहा, "यदि ऐसा शोभाशाली, आर्य्य समाजका मन्दिर हो तब आनन्द आये ।" इसपर महाराजने कहा, "ऐसा विशाल धर्म्म-मन्दिर मिलना, कोई दुर्लभ बात नहीं है । यह कोठी राजा दिग्विजयसिंहजीकी है। यदि आप उनको पक्का आर्य्य समाजी बना लें तो यही धर्म्म-मन्दिर बन सकता है । रामाधारजी ! पहले मनुष्योंको प्रेमसे अपनाओ, आर्य बनाओ, फिर उनके सुन्दर स्थान आपहीके हो जायेंगे ।"

श्रीरामाधारजीने एक दिन लम्बी साँस लेकर कहा—"भगवन् ! आप इतना पुरुषार्थ करते हैं, परन्तु लोग पौराणिक लीलायें छोड़ते ही नहीं । उन्हीं लोगोंमें रहकर सुधार कैसे होगा ? ये कहीं हमें भी तो न ले डूबेंगे?"

स्वामीजीने ढाढस बँधाते कहा 'ब्राह्मसमाजियों और ईसाईयोंकी भांति पृथक् होकर, सामूहिक जातीय जीवनकी मात्राको घटा देना हमारा उद्देश्य

नहीं है। इन्हीं लोगोंमें रहते हुए अपने कर्त्तव्य कर्मको करते जाओ। वैदिक धर्मका प्रचार करो। ये लोग यदि आपका विकट विरोध करें और आपसे घोर घृणा करें तो भी इनको अपनानेका प्रयत्न करो, परन्तु अपनी धर्म-धारणासे एक उंगलीभर भी इधर उधर नहीं झुकना चाहिए। अन्तमें ये सब आपका रूप बन जायंगे। उतावलीसे कुछ मनुष्य आगे निकल सकते हैं, परन्तु शोभा सबको साथ लेकर आगे बढ़नेमें है।"

एक दिन, महाराज व्याख्यान देकर अपने आसनको जा रहे थे। उस समय उनके साथ सरयूदयाल आदि कई सज्जन थे। मार्गमें जराजीर्ण कलेवरवाली एक अति कृशा बुढ़िया मिली। उसके तनके सारे वस्त्र जर्जरित थे। महाराजको आते देख वह कातर स्वरसे कहने लगी, "बाबा! मैं कई दिनोंकी भूखी अनाथा हूं। मेरा पालन-पोषण करनेवाला कोई भी नहीं है। भगवान् तेरा भला करेगा। आजका अन्न तो दिला दे।"

उस वृद्धाके आर्त्तनादको सुनकर स्वामीजीके पाँव रुक गये। उसका दारुण दुःख देखकर उनका हृदय पसीज गया। वे आँखोंसे टप टप आँसू बरसाते अपने प्रेमियोंको कहने लगे, "कभी वह भी काल था जब भारतवर्ष सुवर्ण-मय बन रहा था। यहाँ खाद्य पदार्थोंकी इतनी अधिकता थी कि भूखा अनाथ देखनेको नहीं मिलता था। परन्तु आज यह समय है कि क्षुधा-वेदनाने इस बुढ़ियाको इतना व्याकुल बना दिया है कि इसे यह भी विवेक नहीं रहा, जिससे मैं माँग रही हूँ वह तो आप माँगकर निर्वाह करता है।" महाराजने उस वृद्धाको पर्याप्त अन्न दिला दिया।

जब महाराज लखनऊमें आए तब भी उनका स्वास्थ्य कुछ अच्छी अवस्थामें न था। वे जब सबेरे वायु-सेवन करके आसनपर आते तो दहीका मठा पिया करते थे। यह सेवा श्री रामाधारजीको ही प्राप्त थी।

बारहवाँ सर्ग

लखनऊसे चलकर श्री महाराज वैशाख सु० ११ सं० १९३७ को फरुखाबादमें पधारे और व्याख्यानोंसे लोगोंको कृतार्थ करने लगे। उनके

आगमनके बहुत दिन पहले, कुछ एक उद्दण्ड लोगोंने मिलकर एक आर्य्य सभासद्को मारा पीटा था और अभियोग चलनेपर, उनको स्काट महाशयके न्यायालयसे दण्ड मिला था। जब स्वामीजी यहाँ पधारे तो आर्य्य पुरुषोंने अपनी विजयका समाचार बड़े हर्षसे, उन्हें सुनाया। स्वामीजीने कहा, "हमने लोगोंके कठोर हृदयोंको कोमल बनाना है। दूर भागतोंको आकर्षित करना है। यदि वे अत्याचार भी करें तो अपने उदात्त उद्देश्यको दृष्टिमें रखकर, हमें तो उनसे प्रेम ही करना चाहिए। धर्मके नामसे बदला लेनेकी भावना सर्वथा अभद्र है।"

स्काट महाशयने जब महाराजसे भेंट की तो प्रशंसा-वश कहा—'आपके एक सेवकको कुछ एक दुष्ट मनुष्योंने पीटा था। उन लोगोंको उचित दण्ड मिल गया है।"

स्वामीजीने कहा—'महाशय! संन्यासी लोग तो अपने प्राण घातकको भी पीड़ा पहुँचते देखकर प्रसन्न नहीं होते। इस आश्रममें अपने पराये सब समान समझे जाते हैं।" महाराजकी उदारतासे स्काट महाशय अतीव प्रसन्न हुए।

फरुखाबादसे चलकर श्री महाराज आषाढ ब० ९ सं० १९३७ को मैनपुरी पधारे और थानसिंहके उद्यानमें विराजमान हुए। यहाँ उनके तीन चार प्रभावशाली भाषण हुए। उनमें नगरके सभी सामान्य और मान्य लोग तथा कलेक्टर आदि राज-पुरुष आते रहे। उनके भाषण प्रत्येक हृदयपर अङ्कित हो जाते थे। उनको सुनकर सब सज्जन मुक्त कण्ठसे प्रशंसा करने लगते थे। मैनपुरीमें सहस्रों मनुष्योंको उपदेश-सुधासे सींचकर महाराज आषाढ ब० १४ सं० १९३७ को मेरठको प्रस्थान कर गये।

आषाढ सु० १ सं० १९३७ को श्री स्वामीजीने मेरठमें पदार्पण किया और श्रीमान् रामशरणदासजीकी कोठीमें आसन लगाया। यहाँ उन्होंने एक एक दो दो सप्ताहकी अनेक व्याख्यान-मालायें दीं; जिनसे मेरठके अधिवासी जन कृतार्थ हो गये। एक दिन महाराजके व्याख्यानमें बहुतसे पण्डित, ईसाई और मुसलमान अपनी शङ्कायें लिखते जाते थे। परन्तु व्याख्यानकी समाप्तिपर

सबने अपने टिप्पणी-पत्र फाड़ डाले। जब उनसे ऐसा करनेका कारण पूछा गया तो उन्होंने बताया कि हमारी शङ्काओंके उत्तर व्याख्यानहीमें आ गये हैं।

महाराजकी, यह हार्दिक कामना थी कि किसी प्रकार मातृ-शक्तिका सुधार हो। स्त्रियोंमें भी धर्म्म-प्रचार और शुभ शिक्षा फैले। वे अपनी कुशाग्र बुद्धिसे, इस सिद्धान्तके मर्मको जानते थे कि सन्तानोंमें नवजीवनकी नींव रखनेवाले हाथ माताओंके होते हैं। मीठी मीठी लोरियोंके साथ और पोली पोली थपकसे मातायें, पुत्रोंमें वे भाव भर देती हैं, जो किसी भी दूसरे स्थानमें प्राप्त नहीं हो सकते। जननियाँ जातिके जीवनकी वास्तविक जड़ हैं, सन्ततिको उन्नतिके उच्चतम शिखरपर ले जानेके लिए जगमगाती ज्योतियाँ हैं। परन्तु उन्हें कोई ऐसी आर्य्य-देवी नहीं दीखती थी, जो भारतकी भोली भाली बहिनोंकी शिक्षा-दीक्षाका भार अपने ऊपर ले सके, जो स्त्री-जातिके सुधारके लिए प्राणपणसे समुद्यत हो जाय।

महाराजका हृदय इसी ऊहापोह और विचार-परम्परामें परायण था कि एकाएक उनकी सेवामें श्री रमाके पत्र आने लग गये। ये पत्र पूज्यभावसे, आदर बुद्धिसे और भक्ति-विनयसे परिपूर्ण थे। श्री रमाने अपनी विनय-पत्रिकाओंमें जहाँ श्री-दर्शनोंकी तीव्र लालसा प्रकटकी वहाँ श्री आदेशको भी परिपालन करनेकी आशा दिलाई।

महाराजने अपनी अपार कृपासे रमाको दर्शन देना स्वीकार कर लिया। श्री रमाजी बड़े भक्ति-भावसे मेरठमें आईं और श्री दर्शनोंसे लाभ उठाने लगीं।

श्री रमाबाईजी एक महाराष्ट्र-ब्राह्मणकी पुत्री थीं। उनका संस्कृतपांडित्य प्रख्यात था। वे धारा प्रवाह संस्कृत भाषण करती थीं। उनके विचार कुछ स्वतन्त्रताको लिए हुए थे। वे एक वङ्गीय कायस्थसे विवाह करना चाहती थीं। इस लिए बन्धु-बान्धवोंने उन्हें घरसे पृथक् कर दिया था। वे कलकत्तासे मेरठ आई थीं। उस समय उनके साथ एक नौकर, एक नौकरानी और एक बङ्गाली सभ्य था। सम्भवतः, वह वही भद्र पुरुष था, जिसके साथ वे विवाह करना चाहती थीं।

श्री रामबाईजीके मेरठमें अनेक भाषण हुए।

उन दिनोंमें पण्डित भीमसेनजी, ज्वालादत्तजी, पालीरामजी और श्रीमान् ज्योति-स्वरूपजी आदि विद्यार्थियोंने महाराजसे वैशेषिक दर्शन पढ़ना आरम्भ किया। श्रीमती रमाजी भी पढ़ा करतीं। महाराजकी पढ़ानेकी शैली अत्युत्तम थी, उनकी व्याख्या-पद्धति अपूर्व थी। श्री रमादि सभी पाठक उनकी पाठन-परिपाटीसे अति प्रसन्न होते। किसीका कैसाही संशय क्यों न हो पाठ पढ़ते ही पढ़ने दूर हो जाता।

महाराजने श्रीरमाजीको उपदेश दिया, "इस समय आर्य्य जातिकी पुत्रियोंकी अवस्था अति शोचनीय है। ये संसार भरके भ्रमों और कुरीतियोंका केन्द्र बन रही हैं। आप आजीवन ब्रह्मचारिणी रहकर उनका सुधार कीजिए। उनकी शिक्षाका बीड़ा उठाइए। उनको दीन दशासे उभारिये। इस शुभ कार्य्यको आर्य्य-समाजकी पद्धतिपर चलाते, आपको धनकी, पर्याप्त सहायता प्राप्त होती रहेगी।" महाराजने उनको यह भी कहा, "आपके बिना, मैंने आजतक सामने बैठाकर, किसी स्त्रीको उपदेश नहीं दिया। आपको सम्मुख बैठकर, उपदेश सुननेका अवसर केवल इसी लिए दिया गया है कि आप अद्वितीय विदुषी हैं। सम्भव है मेरे वचन सुनकर आप आजीवन ब्रह्मचर्य्य-व्रत धारण कर लें और स्त्रीजातिके परोपकार-रूप, परम पुण्य कार्यमें, प्राण-पणसे परायण हो जायँ।"

श्री रमाजीने विनीत निवेदन किया—"महाराज! गृहस्थ लोग भी तो उपकारका कार्य्य कर सकते हैं। उन्हें भी तो पुण्य-कर्म्मकी पूँजी उपार्जन करनेका पुष्कल अवकाश मिल जाता है।"

इसपर स्वामीजीने कहा, "बन्धु-बान्धवोंके विविध बन्धनोंमें जकड़े पकड़े हुए जन परहितका उतना कार्य नहीं कर सकते, जितना कि एक ब्रह्मचारी या ब्रह्मचारिणी कर सकती है। जो जन एक दो व्यक्तियोंको अपने प्रेमका केन्द्र बना लेते हैं, उनमें परहित-साधनाकी मात्रा, सहजहीसे स्वल्प हो जाती है। उन्हें काम धन्धोंसे अवकाश ही नहीं मिलता। जब पुत्र पुत्री उत्पन्न हो जाते हैं तो उनके पालन-पोषणका सोच-विचार पीछे लग जाता है। पति और पुत्र-पौत्र आदिका वियोग सारे सुखको निपट नीरस बना देता है। जब मनुष्य इस प्रकार गृहस्थीके गहरे गढ़ेमें गड़ जाता है तो परोपकारके भाव,

एक एक करके, भूलने लग जाते हैं। इस लिए रमा! आप अपने जीवनको परार्थ अर्पण कर दीजिए। महिला-मण्डलका मङ्गल कार्य्य साधित कीजिये।"

जैसे ज्वरावेशमें मनुष्योंको भोजनकी रुचि नहीं होती, ठीक वैसे ही, प्रारब्ध-कर्म्मके प्रभावसे श्रीमती रमाके हृदयमें, महाराजके उपदेशोंको स्थान नहीं मिला। श्री रमा सारा जीवन ब्रह्मचर्य्य व्रतमें बितानेके लिए समुद्यत न हुई!

रमाजी, महाराजसे दूसरे दर्शन भी अध्ययन करना चाहतीं थीं। परन्तु स्वामीजीने उनको और समय देना स्वीकार न किया। एक माससे अधिक कालतक रमाजीने श्री उपदेश-श्रवण किये और फिर कलकत्तेको प्रस्थान कर गई। महाराजने उस देवीको, चलते समय, अपनी सारी पुस्तकोंकी एक एक प्रति प्रदान की।

स्वामीजी महाराज अपने प्रेमियोंमें बैठकर अपने पिछले जीवनकी बीती बातें भी सुनाया करते थे। एक दिन उन्होंने सुनाया कि एक स्थानमें हमारा भाषण सुनकर वहाँके कलेक्टरने कहा कि आपके भाषणपर यदि लोग चलने लग जायँ तो इसका यह परिणाम निकलेगा कि हमें अपना बदना-बोरिया बाँधना पड़ेगा। मैंने कहा कि मेरा तात्पर्य्य आप सर्वथा नहीं समझे। मेरे कथनका सारांश यह है कि मूर्ख और पण्डितका वास्तवमें मिलाप नहीं होता। इस लिए जबतक भारतकी जनता सुशिक्षादि गुणोंसे आपके जोड़की न हो जाय तबतक परस्परके सम्बन्धका सच्चा सुख नहीं हो सकता। इसपर कलेक्टरने बड़ी प्रसन्नता प्रकट की।

अपनी यात्राओंका वर्णन सुनाते हुए महाराजने कहा, "आप लोग मेरे इस समग्रके दूर तक वायु-सेवन करने जानेपर आश्चर्य करते हैं, परन्तु अवधूत दशामें मेरे लिए, एक दिनमें, चालीस कोस चलना एक साधारण बात थी। एक बार मैंने गङ्गा-स्रोतसे चलकर, इस महानदीके किनारे किनारे, गङ्गा-सागर संगमतककी यात्रा की थी। गङ्गोत्तरीसे रामेश्वर तक भी मैं चलकर गया हूँ।"

जपाराधनका वर्णन करते हुए महाराजने कहा, "बद्रीनारायणमें रह कर मैंने भगवती गायत्रीका जपानुष्ठान किया था।"

अध्ययन-कालकी कथा सुनाते वे कहा करतेथे कि "जब कभी रातको पढ़नेके लिए तेल न मिलता तो मैं दूकानोंके दीवोंकी लोमें बैठकर पढ़ा करता।"

तपका वृत्त सुनाते वे कहते, "ग्रीष्मके भीषण उत्तापसे, तप्त तवेकी तरह संतप्त रेतपर मैंने कई दोपहर काटे हैं। तुषार-राशिमें परिणत, पर्वतोंके पाषाणों और गङ्गा-पुलिनपर, पौष-माघकी रातोंके पाले, नग्न, निराहार सहन किये हैं।"

शिब्बामल वैश्य, स्वामीजीका प्रेमी भक्त था। एक दिन, वह जब श्री सेवामें आया तो महाराजने कहा कि आज मार्गमें आपको साँप दिखाई दिया और आप डर गये थे। उसने आश्चर्यके साथ इस बातका समर्थन किया। जब वह उठकर जाने लगा तो उन्होंने उसे कहा कि छाता ले लिया होता तो पानी पड़नेपर, भीगनेसे तो बच जाते। शिब्बामलको उस समय तो वर्षाका कोई चिह्न दिखाई न देता था, परन्तु मार्गमें ऐसी वृष्टि हुई कि वह सड़कोंपर पानी लाँघता, बड़ी कठिनतासे घर पहुँचा।

एक दिन कुछ भद्र पुरुषोंने स्वामीजीसे निवेदन किया, "आप यदि नीतिसे काम लें तो बड़ी सफलता हो।" स्वामीजीने उत्तर दिया, "यह नीति पहले ही मुझे बड़ी महँगी पड़ी है। अब मेरा इसमें विश्वास नहीं है। राजा जयकृष्णदासजी कहा करते थे कि इस बातके रखनेसे लोग प्रसन्न होंगे, उस बातके न छेड़नेसे अधिक सुभीता और सुविधा होगी। जयपुरमें शैवोंने कहा वैष्णवोंका खण्डन करदो तो हम आपके अनुयायी बन जायँगे। वे तो वैसे ही रहे; परन्तु अब, जयपुरमें जाकर जब, मैं शैव मतको अमूलक वर्णन करता हूँ तो वहाँके ठाकुर लोग, अपने गलेसे रुद्राक्षकी मालाका एक दाना दिखाकर कहते हैं कि यह भी तो आपने ही पहनाई थी। हम आपकी किस बातको सच्ची मानें?"

अल्काट महाशय और ब्लेवस्टिकी महाशया शिमले जाते हुए, स्वामीजीके आदेशानुसार, मार्गमें मेरठ ठहर गये। उन दिनों परस्पर वैमनस्य बढ़नेके साधन उपस्थित थे। इस लिए, मिलकर इस विषयपर बात चीत की गई। वहाँ, यह स्थिर हुआ कि सुनी सुनाई बातपर विश्वास न किया जाय। भ्रम उत्पन्न

करनेवाले विषयोंमें गुरु-शिष्य परस्पर मिलकर, अथवा पत्र व्यवहारद्वारा निर्णय कर लिया करें।

कर्नल और मैडमने यह भी वचन दिया कि वे किसी आर्य्य सभासद्को अपनी सभाका सभासद् बनानेका यत्न नहीं करेंगे।

मेरठमें अमृत-वर्षा करनेके पश्चात् भादों सुदी द्वादशी सम्वत् १९३७ को महाराज वहांसे चलकर मुजफ्फरनगरमें पधारे और श्रीमान् निहालचन्दके बङ्गलेमें ठहरे। वहाँ महाराजके उत्तमोत्तम उपदेश हुए। उनसे नगरवासियोंको बड़ा भारी लाभ हुआ।

लाला भगवानदास आदि अनेक सज्जनोंने श्री-चरणोंमें बैठकर प्रश्न किये और पूर्ण उत्तर पाकर अपनेको कृतार्थ हुआ माना। वे दिन श्राद्धोंके थे। स्वामीजीने अनुकूल समय ताककर, मृतक-श्राद्धका बड़े बलसे खण्डन किया। इससे लोग अति प्रभावित हुए।

श्रीमान् निहालचन्दजीने प्रश्न किया, "भगवन्! एक मनुष्यने अपने जीवन-कालमें प्रभूत धन एकत्रित किया। वह कालवश, मरकर ऐसे वैसे जन्ममें चला गया है। उसके एकत्र किये धनको, यदि, उसके पुत्र-पौत्र श्राद्धादि शुभ कर्मोंमें लगाते हैं तो उस कर्मका उसको लाभ क्यों नहीं होना चाहिए?"

महाराजने उत्तर दिया, "अपने ही किये कर्मोंका फल मिलता है। यदि, पीछे छोड़े अपने धनसे शुभ कर्मोंका फल मानो तो पिता पितामहकी सम्पत्ति-को पाकर, पुत्र-पौत्र जो घृणित दुष्कर्म करते हैं उनका पाप भी मृतक आत्माको ही लगना चाहिए। अपने पुरुषाओंकी सम्पत्ति पानेसे पुण्य थोड़े जन ही करते हैं। अधिकांश तो पाप ही किया जाता है।"

एक भक्तने स्त्री-शिक्षाके विषयमें प्रश्न करते हुए कहा, "लोग कहते हैं कि स्त्रियोंको पढ़ानेसे उनमें दुष्कर्म बढ़ जायँगे।" स्वामीजीने इसपर कहा, "शिक्षाका परिणाम पाप हो तो पुरुषोंको भी अशिक्षित ही रहना चाहिए। अधिकांश पाप कर्म्म अपढ़ और कुपढ़ जन ही किया करते हैं। स्त्रियोंमें विद्याका विस्तार अवश्यमेव होना चाहिए।"

एक भक्तने पूछा, "महाराज! क्या अज्ञानकी निवृत्ति और ज्ञानकी प्राप्तिहीसे सुख होता है?"

उन्होंने उत्तर दिया कि "सुख दो प्रकारके होते हैं—एक विद्या-जन्य और दूसरे अविद्या-जन्य । विद्या-जन्य सुख ही सच्चा सुख है। यह सुख अज्ञानकी निवृत्ति और ज्ञानकी प्राप्तिसे प्राप्त होता है । अविद्या-जन्य सुख तो पशु आदि जीवोंमें भी पाया जाता है ।

जीव एकदेशी होनेसे अल्पज्ञ है । इसी लिए अज्ञानी हो जाता है । परमात्मा देश-कालसे ऊपर और सर्वज्ञ है । उसमें अज्ञानका लेश भी नहीं है । वह परमानन्दमय, आनन्दघन, परब्रह्म है । "

जिस मकानमें महाराज ठहरे हुए थे, उसमें एक दिन अकस्मात् एक भयङ्कर साँप निकल आया! महाराजने उसे तत्काल अपने विद्यार्थीसे मरवा दिया । मैडम ब्लैवास्तकीने लिखा है कि वङ्ग देशके एक नगरमें महाराज भाषण दे रहे थे । उस समय एक दुष्ट मनुष्यने एक भीषण विषैला फणियर नाग उनके पाँवके पास फेंक दिया! महाराजने उस विषम विषधरके सिरपर, अपने पैरकी एड़ी रखकर, उसे मसलते हुए कहा कि जिनके देवता इस दशामें कुचले जाते हैं उन भक्तोंकी दुर्गतिका तो ठिकाना ही नहीं है ।

श्री स्वामीजी मुजफ्फर नगरके अधिवासियोंको आत्मा-परमात्मा और धर्म्म कर्म्मके उपदेश सुनाकर फिर मेरठ लौट आये ।

असोज बदी चतुर्दशी सम्वत् १९३७ को आर्य्य समाजका दूसरा वार्षिकोत्सव था । भगवान् उसीको शोभाप्रदान करनेके लिए पधारे थे ।

उत्सवके दोनों सायंको, महाराजके प्रभावशाली उपदेश हुए । उनमें, उन्होंने थियोसोफीकल सोसायटीसे सावधान रहनेके लिए अपने शिष्योंको सचेत किया । मैडमके चमत्कारोंकी भी समालोचना की । स्वामीजीके दोनों दिनके, वे व्याख्यान, थियासोफिकल सोसायटीको आर्य्यसमाजसे पृथक् करनेके लिए घोषणारूप थे । इस विषयके परिपुष्ट प्रमाण मिलते हैं कि ब्लैवस्तिकी महाशयाके व्यवहारसे ही वे ऐसा करनेके लिए बाधित हो गये थे ।

थियासोफीके संस्थापकोंका स्वामीजीके साथ गहरा सम्बन्ध था। अल्काट महाशय और ब्लैवस्तिकी महाशया महाराजको अपना गुरु मानते थे। उन्होंने, अपनी सब सभाओंका प्रधानाचार्य्य उन्हींको नियत किया था। सभाके सब कार्य्योंपर, महाराजकी एक प्रकारकी अनुमतिसे, उनकी नामाङ्कित मुद्रा

लगाई जाती और अल्काट महाशय उनकी स्थानापन्नतामें हस्ताक्षर किया करते। भूमण्डलकी सारी थियासोफीकल सभायें आर्य्य समाजकी शाखायें समझी जातीं।

कालके चक्रपर चढ़ा हुआ यह सारा चराचर जगत् परिवर्तनशील है। भूतकालके सभी पदार्थ नित्य नये रङ्ग बदलते हैं। ऐसी अवस्थामें, किसी मनुष्यके विचारोंका, मन्तव्योंका, कर्म्म-धर्म्मका, प्रणप्रतिज्ञाका, और सम्बन्ध साथका परिवर्त्तित हो जाना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। महाश्चर्य तो स्थिर रहनेमें है। बहिरङ्ग और अन्तरङ्गके प्रभावोंने, थोड़े ही वर्षोंमें उस गुरु-शिष्य और अङ्ग-अङ्गीके सम्बन्धको भी शिथिल कर दिया। आर्य्य समाज और थियासोफीकल सोसायटीका प्रेमबन्धन ढीला हो गया।

इस सम्बन्धके किरकिरा होने और अन्तमें टूट जानेकी उदार भावसे मीमांसा करना उचित है। उसके कारणोंको जानना आवश्यक है। यह बात निस्सन्देह सच्ची है कि कर्नेल अल्काट और मैडम ब्लेवस्तिकीने, महाराजके साथ, अमरीकासे जो चिट्ठी-पत्री की वह शुद्ध भावसे की। उन्होंने उस समय, अपनेको श्री-चरणोंमें उच्च भक्तिभावसे समर्पित किया। परन्तु इसके साथ, हमें इस बातको भी लक्षमें रखना चाहिए कि श्री महाराज अँगरेजी नहीं जानते थे और अमरीका देश-निवासी बन्धु आर्य्य भाषा और संस्कृतसे अनभिज्ञ थे। उन्होंने परस्परके पत्र-व्यवहारका द्वार हरिश्चन्द्र चिन्तामणि, मुंबई-निवासीको नियत किया। उस समय पश्चिमी सभ्यता की चटकीली चाँदनी, भारत-भूखण्डपर चहुँ ओर चमक रही थी। खान-पान रहन-सहन, बोल-चाल और भाव-भेद आदिमें अनुकरण करनेका युग भर यौवनमें था। नव-शिक्षित समाज, अपने पूर्वजोंकी पद-पंक्तिपर पदार्पण करनेमें, अपमान मानता था। पुराने इतिहास और स्मार्त्त धर्म्मसे लोग नाक-भौं सिकोड़ते थे। उन्हें प्रत्येक पुरानी रीति-नीति और चाल-ढाल घृणा योग्य और अदर्शनीय दीखती थी। ऐसे समयमें, किसी पश्चिमी पण्डितके मुखसे आर्य्य धर्म्म-कर्म्मकी प्रशंसाके शब्द सुनना अतिशय सौभाग्य समझा जाता। उन लोगोंकी थोड़ी सहानुभूति भी महामूल्यवती मानी जाती। इस दशामें, ऐसे युगमें और ऐसी परिस्थितिमें, यदि हरिश्चन्द्रजीने यह समझा हो कि अल्काट महा-

शय और मैडम ब्लेवस्तिकी, वेद्को वैसे तो मानते हैं ही, अवान्तर बातोंके भेद आप ही मिटजायँगे; उनके यहाँ आने, आर्य्य रीति-नीतिका पक्ष-पोषण करने, और प्रशंसित स्वामीजीको गुरु मान लेनेसे आर्य्योंका बड़ा प्रभाव पड़ेगा; इत्यादि विचारोंसे उभय पक्षके छोटे छोटे भेदोंको उन्होंने दृष्टिसे ओझल कर दिया हो तो कोई आश्चर्य नहीं है। भाग-त्याग लक्षणासे काम लेते हुए, कुछ एक भेद-मूलक मन्तव्योंको मिलन-मूलक मान लेना उस समय सम्भावित था। कुछ भी हो, यह मानना पड़ता है कि सुदूरदेशस्थ बन्धुओंको समझने-समझानेकी कुछ एक बातें, बीचमेंही गुप्त और लुप्त अवश्य हो गई।

स्वामीजी, अल्काट तथा मैडमके परस्पर साक्षात्के समय भी, दुभाषियोंसे काम लिया जाता था। दुभाषिया बनना बड़ी निपुणताका काम है। अधूरे दुभाषिये बहुधा एकका कथन जब दूसरे मनुष्यको समझाने लगते हैं तो झटपट सारांशपर दौड़ जाते हैं। छोटी मोटी बातका भाषान्तर न करना उनके लिये कोई बड़ी बात नहीं है। अपनी टीका-टिप्पणियोंका रङ्ग चढ़ानेका चस्का उनको भी हुआ करता है। इस दूसरे साधनमें भी कई भूलोंका हो जाना सम्भावित है। थियासोफीकल सोसायटीके, आर्य समाजसे वियुक्त हो जानेका यह भी एक कारण है कि अल्काट और ब्लेवस्तिकीने भारत और भारत-वासियोंके विषयमें न जाने, कैसे कैसे मनोनीत चित्र अपने चित्तमें खींच रक्खे होंगे। वे लोग यहाँके वासियोंको देवतुल्य मानते होंगे। परन्तु यहाँ आकर उन्हें पता लगा होगा कि भारतके अधिकांश आर्य अपने परम सुधारक और आदर्श संस्कारक महापुरुषके विरुद्ध हैं। हमारे पास भी स्वामीजीके विपरीत बोलते हैं। अधिक जन-संख्या सुधारकके प्रतिकूल है। स्वामीजीके साथ लगे रहने से हमारी सर्वप्रियतामें बट्टा लग जायगा। इसलिए उनसे कुछ पीछे हटा रहना चाहिए।

यहाँ आकर, उनके लिये यह जानना अति सुगम था कि भारतवासी जिस किसीके पीछे चलनेके लिए समुद्यत हैं। आर्य समाजसे पृथक् होजानेसे, सहस्रों कुलीन ब्राह्मण उनका भी चरण-चुम्बन करने लगेंगे। भारतकी भ्रम-भरी, भोली प्रजाको अपना शिष्य बनाना बड़ा सहज काम है।

हमारा यह भी निश्चय है कि राजा शिवप्रसाद आदि, स्वामीजीके कट्टर विरोधी लोग और अन्य पक्के पौराणिक प्रतिष्ठित पुरुष, महाराजके विरुद्ध मैडम और कर्नलके कान दिनरात भरते थे। स्वामीजीका साथ छोड़नेके लिए सम्मति देते थे। आर्य्य-समाजसे पृथक् हो जानेकी प्रबल प्रेरणा करते थे।

मैडम ब्लेवस्किकी और महाशय अल्काट आर्य्य समाजके सभासदोंको भी अपनी सोसायटीमें मिलाने लग गये थे। इसको स्वामीजीने अत्यन्त अनुचित समझा।

उपर्युक्त कारणोंसे गुरुदेव और शिष्योंमें दिनोंदिन मनोमालिन्य बढ़ताही गया। इसी मनमुटावको मिटानेके लिए स्वामीजीने मैडम और महाशयको शिमले जाते हुए, मार्गमें मेरठ ठहरनेके लिए आमन्त्रित किया। वे ठहरे भी, परन्तु भेदकी बेलका विषैला अंकुर उखड़ न सका।

मैडमके पत्रसे आर्य्य समाज और थियासोफीकल सोसायटीके संगभङ्गका कारण, एक यह भी प्रतीत होता है कि थियासोफीकल सभामें राजपुरुष सम्मिलित होने लग गये थे। सभा आर्य्य समाजकी शाखा थी। स्वामीजी सभाके प्रधान आचार्य्य और आर्य्य समाजके हर्त्ता-कर्त्ता थे। राजपुरुष-तन्त्र-शासनके कुछ एक अधिकारी लोग, ऐसी दशामें, सभामें सम्मिलित होनेमें किन्तु-परन्तु करते होंगे। उनकी ऐसी धारणाका वर्णन मैडमने स्वयं किया है।

स्वामीजी महाराज मैडमके चमत्कारोंका समर्थन नहीं करते थे। एक तो वे उनके चमत्कारोंको योगकी सिद्धियां नहीं समझते थे। दूसरे वे सिद्धियाँ दिखाना उचित नहीं मानते थे। इससे भी मैडम अपने मनमें रुष्ट रहा करती थीं।

ऊपरके सारे कथनका सार-मर्म यह है कि मैडम और महाशयने स्वामीजीको जिस समय गुरु माना, जब उनकी सेवामें विनय-पत्रिकायें भेजीं और जब वे भारतमें पधारे तो उनके भाव निर्दोष थे। उनका हृदय भक्ति-भावसे भरपूर था। वे सच्चे मनसे महाराजके शिष्य थे। परन्तु भारतमें आनेके पश्चात् बाहरकी परिस्थितिने उनमें परिवर्त्तन उत्पन्न कर दिया। दूसरेके भावोंको समझनेमें भी त्रुटियाँ रह गईं।

स्वामीजीने अपने हाथसे लगाए हुए पौधेको सभाके सिरपरसे न्योछावर कर देना उचित नहीं समझा । उन्होंने अपने पश्चिमी शिष्योंसे, समाजरक्षणको प्रधानता दी । थियासोफीकल सभाके प्रधानाचार्य्य पदकी अपेक्षा आर्य्य समाजियोंको सब कुछ बनाकर, आप कोई पदवी न ग्रहण करना उत्तम माना। महाराजने, ठीक समयपर घोषणा द्वारा, आर्य्य पुरुषोंको सूचित कर दिया कि आर्य्य समाज और कर्नल तथा मैडमकी थियासोफीकल सभाका सम्बन्ध-सूत्र विच्छेद किया जाता है ।

आर्य्य समाज और सभाके संग-भंगके कारण, नीचे दिए पत्रोंसे भली भाँति प्रकट हो जायंगे । ये पत्र श्रीमती परोपकारिणी सभाके मंत्रीने एकत्र कर कार्तिक सुदी १ सम्वत् १९४६ को 'परोपकारी' नामक पत्रमें छपवाये थे।

मैडम महाशयाका पत्र

बाबू छेदीलाल महाशयके नाम ।

शिमला ।

अक्टूबर सन् १८८०

"मेरे प्यारे बाबूजी,

यह चिट्ठी जो मैं आपको लिख रही हूं आपकी अपेक्षा स्वामीजीसे अधिक सम्बन्ध रखती है। मुझे इस बातका निश्चय नहीं है कि स्वामीजीके पास योग्य और विश्वास-पात्र अनुवादक हैं। इस लिए मैं आपसे प्रार्थना करती हूं कि आप इसका अनुवाद स्वामीजीके पास यथासम्भव शीघ्र भेज दीजिए ।

आप हमारे मित्र हैं और मेरा आपपर अन्य आर्य्य समाजियोंकी अपेक्षा अधिक विश्वास है।

यदि आप आर्य्योंकी बात अपने जीमें ऐसी ही समझते हो जैसी कि मैं थियासोफीको समझती हूं तो आप इसको अतीव सावधानीसे पढ़ेंगे और जब स्वामीजीका उत्तर आयेगा तो मेरे पास भी भेज देंगे ।

बिदाईके समय स्वामीजीने यह वचन कहा था कि आप इस समय यह प्रतिज्ञा करो कि जब कभी कोई मनुष्य आपके पास आकर कहे कि स्वामीजीने आपके और आपकी सभाके विरुद्ध ऐसा कहा है, या ऐसा किया है तो आप मुझे उसकी तुरन्त सूचना देंगे, जिससे मुझे इस बातका अवसर मिले

जाय कि मैं अपनी ओरसे आपके जीमें अन्तर न पड़ने दूं। मैं भी आपके साथ इसी प्रकार वर्त्ताव किया करूँगा।

मैंने स्वामीजीके इस कथनको स्वीकार कर लिया था और अब वही समय सम्मुख उपस्थित हुआ है।

मैंने उनसे यह प्रतिज्ञा भी की थी कि यदि कोई मनुष्य आकर मुझसे ऐसी बातें करेगा कि जिससे हमारे और उनके बीच मेल मिलापके स्थान शत्रुता उत्पन्न हो जाय तो मैं जब तक स्वामीजीके मुखसे न सुन लूँगी उन बातोंपर कभी विश्वास नहीं करूँगी। अब भी आगेको ऐसा ही करूँगी। पर इस वर्तमान विषयमें न तो मुझसे किसीने कुछ कहा है और न ही यह सुनी सुनाई गप्प है। मैं जानना चाहती हूँ कि स्वामीजी इसका क्या उत्तर देते हैं।

मेरठ आर्य्य समाजका दूसरा वार्षिकोत्सव अभी मनाया गया है। उसमें अन्यान्य आर्य्य समाजोंके सभासद् सम्मिलित थे। ऐसे समयमें स्वामीजीने अपने व्याख्यानमें सबके सामने ये विचित्र वचन कहे कि 'जब किसी अन्य सभा-समाजके सभ्य आर्य्य समाजियोंको अपनी सभामें भरती होनेके लिए प्रेरणा करें तो उन्हें यह उत्तर देना चाहिए कि यदि आपकी सभाके नियम और उद्देश्य आर्य्य समाजके साथ मिलते हैं तो उसमें सम्मिलित होनेसे कोई लाभ नहीं है। यदि वे कहें कि हमारे नियम आर्य्यसमाजोंके नियमोंसे भिन्न हैं तो आर्य्य समाजियोंको उन्हें यह उत्तर देना चाहिए कि आर्य्य समाजके नियम अखण्डित हैं। जिस सभाके नियम खण्डित हैं उसमें मिल जानेकी हमें आवश्यकता नहीं है।

यथार्थमें रोमका अभ्रान्तशील पोप इससे अधिक और क्या कहता है। स्वामीजी गर्वित ब्राह्मणोंके दम्भके विरोधी हैं। उनके कहनेका यह तात्पर्य कदापि न होगा।

उन्होंने यह भी कहा था कि अन्य देशियोंके समाजमें वैसी मित्रता और स्नेह नहीं हो सकता जैसा कि एक ही मत और देशके आर्य सभासदोंमें है।

उन्होंने दूसरे दिन कहा कि 'थियासोफीकल सभाके सदस्य आर्यसमाजियोंको अपनी सभामें मिलानेका उद्योग करते हैं। आर्य समाजियोंको

चाहिए कि ऐसा अवसर आ पड़नेपर उन्हें वही उत्तर दें जो मैंने पिछली रात बताया था । थियासोफीवालोंको ऐसा करना उचित नहीं है, ।

उनके उक्त कथनका क्या अर्थ है ? हमने आपके बिना अन्य किसी भी आर्य्य समाजीको अपनी सभामें मिलानेका प्रयत्न नहीं किया । हाँ, मुम्बई, लाहौर और दूसरे नगरोंके आर्य्यसमाजी हमारी सभाके सभासद् हैं । परन्तु उनको सम्मिलित होनेके लिए हमने कभी नहीं कहा ।

हमारे नियमोंमें आर्य्यसमाजसे केवल इतनी प्रतिकूलता है कि हम प्रत्येक सभ्यके धर्म्मकी प्रतिष्ठा करते हैं । प्रत्येक मतावलम्बीको, चाहे वह आर्य समाजी हो, ईसाई हो अथवा मूर्तिपूजक हो, हम सभामें मिला लेते हैं। हम अपने सभासदोंके मत और धर्म्मके विरुद्ध कभी हस्तक्षेप नहीं करते। स्वामीजी स्वमतवादी हैं । जो धार्मिक विचार उनके हैं वे ही आर्यसमाजियोंके हैं । और यह सभासद् होनेका आवश्यक नियम है । हम तो स्वामीजी और प्रत्येक सामाजिकको अपना मुख्य भाई समझते हैं ।

उनके थियासोफी सभामें मिलनेमें कोई बात बाधक नहीं हो सकती । यहाँतक कि स्वामीजी ढाई वर्षसे हमारे सबसे उत्तम सभासदोंमेंसे एक हैं। वे हमारे बहुतसे अँगरेज और अमरिकाके सभासदोंके गुरु हैं । मैं ईश्वरको कर्त्ता-धर्त्ता नहीं मानती हूँ, इसलिए आपके समाजमें भरती नहीं हो सकती; तो बताइए कि वह भ्रातृ-भाव, जिसमें अधिक लाभ है, किनमें अधिक हुआ? सबसे मुख्य और गौण भ्रातृ-भाव कौनसा है? क्या वह है जिसमें सब मनुष्य भरती हो सकते हैं अथवा वह है कि जिसमें थोड़ेसे मनुष्योंका ही बन्धु-प्रेम और रक्षण हो सके ? स्वामीजीके उक्त वाक्य विचित्र हैं और एक प्रकार-से हमारी ओरसे उनके हृदयमें भेद डालते हैं ।

अबतक मैं जानती थी कि सब सामाजिक और हमारी सभाके सभ्य, आपसमें भाई हैं। जबसे हमारा मिलाप स्वामीजीसे हुआ है इस बातका अधिक प्रचार उन्होंने ही किया है । इसी विषयके पत्र भी उन्होंने आर्य्यसमाजोंको लिखे थे ।

हमारे लण्डन और अमरीकाके सभ्य आर्य्यसमाजियोंको अपना भाई मानते ।परन्तु जो अँगरेज हिन्दुस्थानमें हमारे सभासद हैं वे ऐसा नहीं समझते ।

जो अँगरेज हमें यहाँ मिले हैं, विशेषतया वे प्रधान जन जो शिमलेमें हैं, वे कहते हैं कि थियासोफी-सभाके सदस्योंके साथ चाहे वे अँगरेज हों अथवा हिन्दुस्तानी, हम भ्रातृ-भावसे वर्तनेको समुद्यत हैं। परन्तु वे यह भी कहते हैं कि स्वामीजीके अनन्तर आर्य्यसमाजियोंके साथ वैसाही बर्ताव करनेका हमें कोई दृढ़ हेतु नहीं दीखता। स्वामीजीके साथ भ्रातृ-भावसे वर्ताव करनेका यह कारण है कि वे बहुतसे योरुप-वासी भाइयोंके गुरु हैं। ये शब्द कल मुझे एक नवीन सभासद्ने कहे थे। वह पुरुष सैनिक समाचारके कार्य्यालयका प्रधान है।

इसी हेतुसे मैंने आपको, और दो एक अन्य सज्जनोंको सभामें भरती होनेकी सम्मति दी थी।

रही यह बात कि आर्य्य सामाजिक हमसे मिलें अथवा न मिलें—इसकी हमें परवाह नहीं है। इसमें उन्हींकी और कदाचित् समाजोंकी हानि है।

पुलिसके सबसे बड़े अधिकारी, हैंडरसन महाशय सभामें सम्मिलित हुए हैं। इससे हमारा अभीष्ट सर्वथा सिद्ध हो गया। हमारी सभामें सम्मिलित होते उन्होंने कहा कि मैं इसमें इस लिए मिलता हूं कि इससे बड़े बड़े लाभ पहुँचे हैं। आप और अल्काटने अठारह मासमें वह बात प्राप्त करली है, जो हम अँगरेज बहुत वर्षोंसे भी नहीं कर पाए। उन्होंने यह भी कहा कि हिन्दुस्तानियों और अँगरेजोंके बीच जो खाई है उसे आप भर रहे हैं। आपके कारण हम उनकी अधिक प्रतिष्ठा करने लगे हैं और वे हमसे घृणा छोड़ रहे हैं। वे हमारे कामकी प्रतिष्ठा करते और श्रेष्ठ समझते हैं। मुझे आशा है कि जैसे उनके विचार हैं वे वैसा ही कर दिखलायँगे। परन्तु जब स्वामीजीका प्रसंग चला तो उन्होंने भी यह कहा कि थियासोफीके समान स्वामीजीकी सम्मति नहीं है। उनके विचार अनिषेधक और उदार नहीं दीखते। आर्य्यसमाज ईश्वरको हर्त्ताकर्त्ता माननेवालोंका एक जत्था है। ऐसी दशामें हम उनको भाइयोंके सदृश क्यों जानें?

उपर्युक्तसे अब आप विचार सकते हैं कि थियासोफी-सभामें भरती होनेसे आर्य्यसमाजियोंको हानि है अथवा लाभ। उनको लाभ अवश्य है और ऐसा आप देखेंगे भी। परन्तु यह नहीं सिद्ध होता कि हमने स्वामीजीके

सामाजिकोंको कभी भरती करनेका उद्योग किया है। हमने तो कभी ऐसा नहीं किया। इस हेतुसे वे चाहे, थियासोफीमें न भी मिलें पर वे हमारे भाई हैं। स्वामीजीने अपने शब्दोंद्वारा आर्य्यसामाजिकोंके चित्त प्रायः हटा दिए होंगे। अस्तु, इस विषयमें उनको अधिकार है।"

थियासोफी-सभामें बहुतसे अंगरेजोंके मिलनेका वर्णन करती हुई मैडम लिखती हैं—

"इस पत्रका उलथा करके स्वामीजीको भेज देना। मैं जानना चाहती हूं कि वे इस प्रश्नका क्या उत्तर देते हैं। हम परस्पर मित्र रहेंगे अथवा अकस्मात् शत्रु वन जायंगे? चुन्नालालको मेरी ओरसे प्यार करना। शिवनारायण और दूसरोंको मित्र भाव।"

(हस्ताक्षर) एच. पी. ब्लेवस्तिकी।

ऊपरके पत्रका स्वामीजीने यह उत्तर दियाः—

"एच. पी. मैडम ब्लेवस्तिकीजी आनन्दित रहो।

आपकी चिट्ठी ता. ८ अक्तूबर १८८० की लिखी हुई बाबू छेदीलाल, रईस मेरठ-द्वारा मेरे पास देहरादूनमें पहुंची। उसका क्रमानुसार उत्तर सत्य निश्चय से देता हूं। आपके जो पत्र अमरीकासे मेरे पास आये और उनका जो उत्तर मैंने दिया, तथा सहारनपुर, मेरठ, काशी और फिर मेरठमें जो आपका मिलाप हुआ, उन सबके अनुसार और अपने निश्चयके अनुकूल मैं सदा व्यवहार करता हूँ। परन्तु आपका व्यवहार वैसा दृष्टिगोचर नहीं होता। प्रथम आप लोगोंने जैसा लिखा था, जैसा समागममें प्रथम विदित किया था उसके अनुसार आपका बर्त्ताव अब कहाँ है?

वे पत्र छपाकर प्रकाशित कर दिए गए हैं, जिनमें आपने लिखा था कि हम संस्कृत अध्ययन करेंगे और अपनी सभाको समाजकी शाखा बना देंगे। जो पत्र मैंने आपके पास भेजे थे उनकी नकल भी मेरे पास है। देखिये, थोड़े दिन हुए जब आपसे मेरठमें आर्य्यसमाज और थियासोफी-सभाके विषयमें बातचीत हुई थी। उससमय मैंने सबके सामने क्या आपसे नहीं कहा था कि समाजके नियमोंसे सभाके नियमोंमें कुछ भी विशेषता नहीं है। यही बात मैंने मुम्बईमें भी पत्रद्वारा सूचित की थी। वैसेही मैं अब भी मानता

हूँ कि आर्य्यसमाजस्थोंको धर्म्मादिक विषयोंके लिए सभामें मिलना उचित नहीं है। यही बात आपने और अल्काट महाशयने अपनी पुस्तक 'उपदेश और सम्वाद' में नहीं लिखी? क्या यह नहीं कहा कि सत्य धर्म्म, सत्य विद्या, यथार्थ सुधार और परमोपयोगकी बातें जैसी आर्य्यावर्तीय मनुष्योंमें सदासे चली आई हैं वैसी कभी कहीं नहीं थीं और न अब हैं?

अब विचारणीय विषय यह है कि ऐसी दशामें थियासोफीवालोंको आर्य-समाजमें मिलना चाहिये अथवा आर्यावर्त-वासियोंको उस सभामें। देखिए, मैंने अथवा किसी आर्यसभासद्ने आजतक किसी भी थियासोफिस्टको आर्य-समाजका सभासद् बनानेका यत्न नहीं किया। आप अपने आत्मामें विचारिये कि आपने क्या किया और क्या कर रही हैं।

आपने कितने ही आर्य समाजियोंको अपनी सभामें भरती होनेके लिए प्रेरणा की। कई सज्जनोंसे सभासद् बननेका दस रुपया चन्दा भी लिया। मेरठके वार्त्तालापके अनन्तर भी क्या आपने बाबू छेदीलालको अम्बालेमें प्रेरणा नहीं की? शिमलेसे उनको ऐसा पत्र नहीं भेजा? इन्हीं कारणोंसे मैंने मेरठ-आर्य्यसमाजके उत्सवपर अवश्य कहा था कि यदि आपको मैडम अथवा महाशय वा कोई अन्य थियासोफिस्ट और ऐसे ही किसी दूसरी सभाका सभासद् अपनी सभामें भरती होनेके लिए कहे तो उसे यही उत्तर दीजि-येगा। यदि आर्य्य समाजके नियमों और उद्देश्योंके समान ही थियासोफी आदि सभाओंके नियम हैं तो हम और आप एक ही हैं; और यदि नियमोंमें भेद है तो मिलनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। जबतक आर्य्य समाजके नियमोंमें कोई बात खण्डनीय सिद्ध न हो जाय तबतक वे अखण्डित हैं।

अब बताइए कि निर्भ्रान्त पोपकी भाँति मेरे कथन हैं अथवा आपके?

अन्य देशियोंके समाजमें मित्रता और स्नेह वैसा कभी नहीं हो सकता, जैसा कि स्वदेशियोंके समाजोंमें होता है—यह बात मैंने उस समय कही थी, अब कहता हूँ, और आगेको भी कहूँगा! परन्तु ऊपरकी बात मैंने जिस प्रसंगपर कही थी वह यह है कि 'असिद्धं बहिरङ्गमन्तरङ्गे'। अर्थात् जिनका देश एक है, भाषा एक है, जन्म और सहवास एक है, जिनके विवाहादि सम्बन्ध परस्पर होते हैं, उनको परस्पर जितना लाभ होता है, उनकी

जितनी परस्पर प्रीति होती है, उतना लाभ और उन्नति भिन्नदेशवासियों-को भिन्न-देशवासियोंसे नहीं हो सकती । देखिये, केवल भाषाका ही भेद होनेपर मुझको और योरुपीय महाशयोंको परस्पर उपकार करनेमें कितनी कठिनता होती है !

दूसरे दिन भी मैंने उन्हीं बातोंको दुहराया था; क्योंकि रोगीके रोगका निदान करना और उसे औषध-पथ्य देना आवश्यक है ।

हम थियासोफी-सभाके सदस्योंको आर्य्य समाजका अवयवभूत शाखास्थ भ्रातृ-मण्डल मानते आये हैं और जहाँतक बन पड़ेगा भविष्यमें भी ऐसा ही मानेंगे । उनको आर्य्य समाजमें मिलाने और दस रुपये चन्दा लेनेका यत्न, न हमने पहले किया है और न ही अब करते हैं। हाँ, जो मनुष्य आर्य्य समाज और सभामें नहीं हैं वे उपदेश सुनकर आर्य्य समाजमें स्वयं मिलते हैं। हम उनको प्रसन्नतासे स्वीकार कर लेते हैं ।

आप जो लिखती हो कि आपके विना मुम्बई, लाहौर और दूसरे नगरोंके आर्य्य सामाजिक हमारी सभामें सम्मिलित हैं, परन्तु हमने उनको भरती होनेके लिए कभी नहीं कहा; यह सत्य नहीं है । आपने मुम्बईमें श्री समर्थ-दानजी आदिको और प्रयागमें पण्डित सुन्दरलालजी आदि सभ्योंको सभामें सम्मिलित होनेके लिए अवश्य प्रेरित किया । इसका साक्षी मैं ही हूँ । मैं जबतक न सुनता तो इसका पता मुझे कैसे हो सकता था! जैसे मेरा नाम सभाके सभासदोंमें लिखती हो वैसा अन्यत्र भी आपने किया होगा । यह बात निस्सन्देह है !

आप यह भी लिखती हैं कि आर्य्य समाजके नियमोंके विरुद्ध हममें यही बात है कि हम प्रत्येक धर्म्मकी प्रतिष्ठा करते हैं। सब धर्म्मोंके लोगोंको अपनेमें मिलाते हैं । उनके धर्म्ममें हस्तक्षेप नहीं करते, किन्तु भाई बनानेके लिए उन्हें मिलाते हैं । हमारी सभाका सदस्य होनेके लिए उनके मार्गमें कोई बात रुकावट नहीं बन सकती ।

इसमें मैं आपसे पूछता हूँ कि आपका धर्म्म क्या है ? यदि आप कहें कि हमारा धर्म्म अमुक धर्म्मसे विरुद्ध है तो विरुद्ध धर्म्मवाला मनुष्य आपकी सभामें नहीं मिल सकता। यदि यह कहो कि हमारा धर्म्म किसीसे भी विरुद्ध

नहीं है तो उसमें कोई काहेको मिलेगा? मुसलमान अपनेसे भिन्न धर्म्मवालों-को अधर्म्मी कहते हैं और उनमें मिलना अनुचित समझते हैं। भला ऐसे धर्म्मोंवाले लोग आपमें कैसे मिल सकते हैं। यदि वे आत्मा और मनसे अन्य-मतवालोंके साथ प्रीति करते हैं तो उनका अपना धर्म्म जाता है। यदि अपना बनाए रक्खें तो आपकी सभामें नहीं रह सकते। एक चित्तसे एक कालमें दो कार्य्य नहीं किए जा सकते। इन सब बातोंके उत्तर दीजिएगा। विशेषतासे तो तभी वर्णन होगा, जब हम आमने सामने बैठकर वार्त्तालाप करेंगे।

क्या यह बात सर्वथा असम्भव नहीं है कि 'स्वामीजी ढाई वर्षसे हमारे सबसे उत्तम सभासदोंमेंसे एक हैं'। भला आपही कहिए कि मैंने आपकी सभाका सदस्य बननेके लिए कब प्रार्थना-पत्र भेजा था! मैंने कब कहा था कि मैं आपका सभासद् बनना चाहता हूँ? मैंने जो मुम्बईमें पत्र भेजकर आपको सूचित किया कि मैं वेदोक्त, सनातन और आर्यावर्तीय धर्म्मके बिना अन्य किसी सभा समाजके नियमोंको न कभी स्वीकार करता था, न ही अब करता हूं और न आगे करूंगा। यह धर्म्म मेरे आत्मामें रमा हुआ है। चाहे प्राण भी चले जायँ, परन्तु मैं इस धर्म्मके विरुद्ध नहीं हो सकता।

यह अपराध आप लोगोंका ही है कि विना कहे, सुने सुनाये अपनी इच्छासे, मेरा नाम आपने अपने सभासदोंमें लिख लिया है। सो सत्य क्योंकर हो सकता है? क्या आप इस बातको भूल गई हो कि 'मेरठमें मैंने आपकी उप-स्थितिमें अल्काट महाशयको कहा था कि आपने मुम्बई कौंसिलमें मेरा नाम सभासदोंमें क्यों लिखा? जिसमें मेरी सम्मति न हो ऐसा काम आप कभी न कीजिएगा। जो काम आप लोग अपने मनसे कर लोगे उसको मैं स्वीकार नहीं करूंगा'। इसपर अल्काट महाशयने कहा था कि 'ऐसा कार्य्य हम कभी नहीं करेंगे'।

मुम्बईमें मैंने चिट्ठी भी लिखी थी कि आपने अपनी इच्छासे जहाँ कहीं मेरा नाम सभासदोंमें लिखा हो, वहाँ काट दीजिए। इतना होनेपर भी जो बात आपने लिखी है क्या वह सत्य ठहर सकती है? क्या ही आश्चर्य्यकी बात है! आये तो विद्यार्थी और शिष्य बननेको, और चाहते हैं बनना गुरु

और आचार्य्य ! ऐसी पूर्वापर-विरुद्ध वार्त्ता करना किसीके लिए भी योग्य नहीं है।

आप ईश्वरको हर्त्ता-कर्त्ता नहीं मानतीं यह इसी १९३७ के भाद्रपदकी बात है। इस विषयमें आपने पहले कुछ भी नहीं कहा। हाँ, प्रमोददास मित्र और डाक्टर लाजरसने मुझसे काशीमें इसकी चर्चा की थी। प्रमोददासको मैंने कहा कि आप मेडमका आशय नहीं समझे होंगे। मैंने दामोदर द्वारा आपसे पुछवाया तो उसने कहा कि वे ईश्वरको मानती हैं। क्या उक्त वार्त्ता असत्य है ? मेरी बातें भेद-कारिणी और विचित्र नहीं हैं, किन्तु आपकी बातें भेद उत्पन्न करने वाली हैं। मैं आपको भगिनी और मित्रसमान मानता रहा हूं। कोई विशेष कारण न हुआ तो ऐसा ही जानता रहूंगा। मैं और सभी आर्य्य सज्जन सदासे यही मानते आए हैं कि सामान्यतया आर्य्यावर्त्त, इङ्गलैण्ड और अमरीका आदि सकल भूमण्डलके मनुष्य भाई हैं। परस्पर मित्र हैं और समान हैं। पर मानते हैं धार्मिक व्यवहारोंके साथ, न कि असत्य और अधर्म्मके साथ।

यहाँ, अँगरेज आर्य्योंको चाहे जैसा मानें। कोई राज्याधिकारी हों अथवा व्यावहारिक हों। मुझको भी चाहे अपनी समझके अनुकूल यथेष्ट मानें। परन्तु मैं तो सब मनुष्योंके साथ सुहृद्भावसे वर्त्तता हूं और वर्त्तता आया हूं। उन लोगोंका यह कहना कि हम इसका कोई दृढ़ हेतु नहीं देखते कि स्वामीजीके अनन्तर अन्य आर्य्य समाजियोंसे भी वैसा ही वर्त्तें, तबतक है जबतक वे आर्य्यावर्त्तीय आर्य्योंका पूर्व इतिहास, आचार, नीति, विद्या, पुरुषार्थ और न्यायादि उत्तम गुणोंको नहीं जानते, वेदादि शास्त्रोंके सच्चे अर्थको नहीं समझते। जब उनको ऊपरकी बातोंका ज्ञान हो जायगा तो उनका भ्रम अवश्य दूर हो जायगा। तथापि मैं परमात्माको धन्यवाद देता हूं कि हमने आपसकी फूट, विरोध और अत्याचारसे, और जैन तथा मुसलमानोंकी पीड़ासे कुछ कुछ स्वास्थ्य और स्वतंत्रता प्राप्त की है। सभी सज्जन अपने अभिप्रायके अनुसार पुस्तकें रचते हैं। स्वाधीनतासे उपदेश देते हैं। यदि भारतेश्वरी महाराणी, राज-सभा और आर्य्यावर्त्तमें शासन करनेवाले राजपुरुष धार्म्मिक, विद्वान् और सुशील न

होते तो क्या मैं स्वतंत्रतासे व्याख्यान दे सकता ? इस लिए पूर्वोक्त महात्माओंको हम धन्यवाद देते हैं ।

आपको स्मरण होगा कि काशीकी चिट्ठीके उत्तरमें आपने मुझे लिखा था कि यदि आप भी वेदोंको छोड़ दें तो भी हम नहीं छोड़ेंगे। आपकी यह बात धन्यवाद और प्रशंसाके योग्य है। यदि सभी यूरोपियन इस उत्तम बातसे सहमत हो जायँ तो कैसा आनन्द हो। और यदि वे लोग इस सिद्धान्तको न भी मानें तो हम आर्य्यों और आर्य्य समाजोंकी कोई हानि नहीं हो सकती। हमारे लिए यह कोई नवीन बात नहीं है। हम तो सृष्टिकी आदिसे वेदोंको मानते चले आये हैं; क्या हुआ जो थोड़े समयसे, अज्ञानवश, कुछ आर्य्य लोग वेद-विरुद्ध चलने लग गये हैं ।

इस अवस्थामें, जिसका जी चाहे आर्य्य समाजमें मिले। उनके न मिलनेसे हमारी कुछ भी हानि नहीं हो सकती। हाँ, उनकी हानि अवश्य है। हम तो सबकी उन्नतिमें अपनी उन्नति करना इष्ट मानते हैं। हमारी कामना भी यही है।

यह बात तो प्रत्येक मनुष्य कह सकता है कि अमुक मनुष्यसे मेरा विचार बड़ा है। उसका विचार तुच्छ है। अमुक मनुष्य ईश्वरको हर्त्ता-कर्त्ता मानता है, फिर हम उससे क्यों प्रेम करें। परन्तु ये बातें आपके उस सिद्धान्तको काट देती हैं कि सबको अपना बन्धु जानना चाहिए ।

सोचकर देखिये कि हानिके कारण किनकी ओर हैं। हमारा तो यह सिद्धान्त है ही कि किसीकी हानि नहीं करनी चाहिए और सबका उपकार करना चाहिये। यहाँ हम यह बात कह सकते हैं कि यदि थियासोफीवाले, आर्य्य समाजोंका विरोध करेंगे तो हमें कुछ भी हानि नहीं पहुँचा सकेंगे; किन्तु अपने भ्रातृ-भावको नष्ट कर अपनी ही हानि कर लेंगे। हमारा तो यही स्वभाव है कि धार्मिक जनोंसे मित्रभाव रखना और अधर्मियोंको धार्मिक बनाना। अपनी सामर्थ्यसे हम सबसे भ्रातृ-भावना रखते हैं और रखते रहेंगे। अब आप अपने पूर्वापर व्यवहारको समझकर यथेष्ट कीजिये। अल्काट महाशयको मेरा नमस्ते कह दीजियेगा !

माघ बदी ६ सं० १९३७ दयानन्द सरस्वती।

ऊपरके दोनों पत्रोंको उद्धृत करते हुए भाषाकी अपेक्षा भावपर अधिक ध्यान दिया गया है।

मेरठ आर्य्य समाजके उत्सवपर, अन्तिम व्याख्यान देते समय, उस अन्तिमाश्रमी महापुरुषने अतीव अन्तकी शिक्षायें दीं। उन्होंने कहा, "मुझे लोग कहते हैं, जो कोई आता है आप उसे ही भरती कर लेते हैं। मेरा इस विषयमें स्पष्ट उत्तर है कि मैं वेदहीको सर्वोपरि मानता हूँ। वेदही ऐसी पुस्तक है कि जिसके झण्डेतले सारे आर्य्य आ सकते हैं। इसलिए जो मनुष्य कह दे कि मैं वेदोंको मानता हूँ और आर्य्य हूँ उसे आर्य्य समाजमें सम्मिलित कर लो। ऐसे विश्वासीको अस्वीकार नहीं किया जा सकता। लोग भिन्न-भेदपर अधिक दृष्टिपात करते हैं परन्तु आप लोग परस्पर भेद-मूलक बातोंकी अपेक्षा मेल-मूलक बातोंपर अधिक ध्यान दो। तुच्छ भेदों और विरोधोंको त्यागकर मेल-जोलकी बातोंमें मिलाप सम्पादन करो। आपसमें मिलती बातोंमें मिल जानेसे विरोध और भेद स्वयमेव मिट जाते हैं।

अब आपको अपना कर्त्तव्य आप पालन करना चाहिए। अपने जीवनको ऊँचा बनाओ और अपनी आवश्यकताओंको आप पूर्ण करो। इस समय तो यह अवस्था है कि जब कोई प्रबल प्रतिपक्षी आ जाता है तो आप तारपर तार देकर, मुझे ही बुलाते हैं। किसी संशयके उत्पन्न होनेपर मुझपर ही अवलम्बित रहते हो। उपदेश कराने हों तो मुझपर ही निर्भर करते हो। जब कभी आपमें परस्परकी फूट, फूट निकलती है, वैमनस्य बढ़ जाता है, अनबन बढ़ने लगती है और वैर-विरोध उत्पन्न हो आता है तो उस मिटानेकी चिन्ता मुझे ही करनी पड़ती है। मैं ही आकर आपमें शान्ति-स्थापन करता हूँ। आपके अन्तः करणोंमें अवनतिकारी अन्तर नहीं पड़ने देता। आपके पारस्परिक स्नेहके सुकोमल सूत्रको छीजने नहीं देता। परन्तु महाशयो! मैं कोई सदा नहीं बना रहूँगा। विधाताके नियम-न्यायमें मेरा शरीर भी क्षणभंगुर है। काल अपने कराल पेटमें सबको पचा डालता है। अन्तमें इस देहके कच्चे घड़ेको भी उसके हाथों टूटना है।

सोचो, यदि अपने पाँव खड़ा होना नहीं सीखोगे तो मेरे आँख मींचनेके पीछे क्या करोगे। अभीसे अपनेको सुसज्जित कर लो। स्वावलम्बके सिद्धान्त-

का अवलम्बन करो। अपनी आवश्यकताओंको पूर्ण करनेके योग्य बन जाओ। किसी दूसरेके सहारेकी अपेक्षा अपनेही पर निर्भर करो। मुझे विश्वास है कि आपमें ऐसे अनेक सज्जन उत्पन्न होंगे जो उत्तमोत्तम कार्य्य कर दिखायेंगे। प्राणपणसे अपने पवित्र प्राणोंकी पालना करेंगे। आर्य्यसमाजका बड़ा विस्तार हो जायगा। कालान्तरमें ये वाटिकायें हरीभरी, फूली-फली और लहलहाती दिखाई देंगी। ईश्वरकृपासे वह सब कुछ होगा, परन्तु मैं नहीं देख सकूँगा।"

महाराजके इस भाषणका लोगोंपर बड़ा प्रभाव पड़ा। सबके हृदय उछल पड़े। गात रोमाञ्चित हो गये। उनकी आँखें आँसुओंके बादलोंसे आच्छादित हो गईं। महाराजके कथनसे ऐसा प्रतीत होता था कि वे होनीकी निश्चित तिथि देखकर यह कह रहे हैं। अपने मानस पुत्रोंको विछुड़ते समयका उपदेश दे रहे हैं। मानों इस नौकाका यह निपुणनाविक, अब आप, बिदा हुआ चाहता है। इसलिए यात्रियोंहीको अखिल खेप सौंपकर, नौका खेनेके लिए खेवट बना रहा है।

तेरहवाँ सर्ग।

महाराज मेरठके उत्सवको आशातीत सफलता प्रदान कर देहरादूनको चल पड़े। मार्गमें सहारनपुरके रेलवे स्टेशनपर कुछ कालके लिए ठहरे। जब सहारनपुर नगरके आर्य्य पुरुषोंको समाचार मिला कि गुरुदेव रेलवे स्टेशनपर विराजमान हैं तो वे, श्रीदर्शनोंके लिए, वहाँ दौड़े चले आये। वार्त्तालापके प्रसंगमें, लक्ष्मीदत्त नामके एक ज्योतिषीने महाराजको कहा कि मैं ज्योतिषके अनुसार प्रश्नोंके उत्तर दिया करता हूँ। वे उत्तर सच्चे होते हैं।

इसपर महाराजने कहा, ऐसे उत्तर निरे अटकल पच्चू हुआ करते हैं। जैसे एक कौआ उड़ता हुआ, जब आमके पेड़के नीचेसे निकला तो अचानक उसपर, ऊपरसे एक आम टूट पड़ा। उस फलकी चोटसे कौआ गिरकर मर गया! आमके लगनेका ज्ञान न तो कौवेको था और न ही आम जानता था कि मुझसे वह मर जायगा। ऐसी बातें दैवयोगसे हो जाया करती हैं। आपके प्रश्न कभी दैवयोगसे सच्चे हो जाते होंगे। यदि गणनासे सच्चे होते

मानो तो गणितमें तो कोई भूल नहीं होती। उसके सारे नियम शुद्ध हैं। परन्तु आपके सारे प्रश्न पूर्ण नहीं होते। गणितनियमसे फलित होता तो उसमें भूल कदापि न होने पाती। फलित ज्योतिषको 'काकतालीय न्याय, के तुल्यही समझना चाहिए।"

एक भक्तने पूछा—'भगवन्! जन्मके समय जो दस दिनका सूतक माना जाता है क्या यह शास्त्रानुकूल है?' महाराजने उत्तर दिया कि "मनुस्मृतिके अनुसार तो, केवल नव-जात बालककी माताहीको एक रातका सूतक होता है—बच्चेके पिता तकको भी नहीं होता। यह सूतक-पातकका झमेला वैसे भी ठीक नहीं है। इनमें लोग सन्ध्या, अग्निहोत्र आदि भले काम भी छोड़ बैठते हैं। कोई असत्य भाषण और चौर कर्म्म आदि बुराइयोंको तो नहीं छोड़ता। ऐसी रीतियोंको मानकर क्या करना जिससे शुभ तो दूर जाय और अशुभ धड़ाधड़ होता रहे?"

श्रीमान् भोलानाथजीने अति खेदसे खिन्न-चित्त होकर कहा, "महाराज! जैनमतवालोंने समाचार-पत्रोंमें विज्ञापन निकलवाये हैं। उनसे प्रतीत होता है कि वे लोग आपको कारागारमें आबद्ध कराना चाहते हैं। इसी विषयके विज्ञापन सहारनपुरमें भी स्थान-स्थानपर लगे हुए हैं।" यह वचन सुनकर महाराजके विमल, मधुर मनोहर, और प्रफुल्ल मुखकमलका रंग किंचिन्मात्र भी भंग न हुआ। किन्तु उन्होंने गम्भीरतासे कहा, "भाई! सोनेको जितना तपाया जाता है उतनाही कुन्दन होता है। विरोधकी आँचसे सत्यकी कान्ति चौगुनी चमकती है। दयानन्दको तो यदि, कोई तोपके मुँहके आगे रखकर भी पूछेगा कि सत्य क्या है? तब भी उसके मुखसे वेदकी श्रुतिही निकलेगी। अब तो मैंने जैनमतके बहुतसे ग्रन्थ देख लिए हैं। वे लोग मेरे प्रश्नोंका उत्तर कदापि नहीं दे सकते।

इसप्रकार अपने सुधा-समान शब्दोंसे सेवकोंके हृदयको प्रबल प्रोत्साहन प्रदान करते हुए महाराज देहरादूनकी गाड़ीमें बैठ गये। जब गाड़ी हिलने लगी तो प्रेमीजन उनको नमस्कार कर अपने नगरको लौट पड़े।

स्वामीजी आश्विन सु० ४ सं० १९३७ को देहरादूनमें पधारे और लाला बलदेव सिंहकी कोठीपर ठहरे। उनके शुभागमन और व्याख्यानोंके विज्ञापन

स्थान स्थान लग गये। जिज्ञासु और श्रोताजन श्री सत्संगोंसे अलभ्य लाभ उठाते। प्रश्न करनेवाले वादी लोग भी उनकी सुतीक्ष्ण तर्क-प्रणालीसे अपार प्रसन्नता प्राप्त करते।

कई पौराणिक पण्डित और पादरी महाशय वादप्रतिवादकी बातें तो बहुतेरी बनाते थे, परन्तु सरलतासे सम्वाद करनेके लिए सामने कोई भी न आया।

एक दिन महाराज बैठे शङ्का-समाधान कर रहे थे। एक मौलवी कुछ पूछने के लिए आगे बढ़ा। परन्तु जब बोलने लगा तो उसकी जीभ लड़खड़ा गई।

लोगोंके आग्रह करनेपर, स्वामीजी एक दिन हवाघर (आबजरवेटरी) देखने गये। उसका प्रधान प्रबन्धकर्त्ता एक यूरोपियन और मदखान मिस्त्री महाराजको प्रत्येक वस्तु, बड़े आदरसे दिखाते थे। प्रसङ्गप्रसङ्गपर, स्वामीजी भी संस्कृतके श्लोक बोलकर बताते कि इन वस्तुओंका वर्णन हमारी पुरातन पुस्तकोंमें पाया जाता है।

महाराज व्याख्यानके आरम्भमें पद्मासन बाँध और नेत्र बँद करके प्रार्थना करते। उसमें पहिले "ओम्" का उच्चारण गुँजाते। यह गूँज मधुर और मनोहारिणी होती। उसके कर्णगोचर होते ही मन मूर्छित हो जाता। ऐसा प्रतीत होता कि कोई वादन-कला-निपुण मनुष्य, सुर-मिली वीणा बजा रहा है। ऐसा रसीला स्वर किसीने कभी नहीं सुना था, उनका ओम् नाद बड़ा लम्बायमान होता था। उनके होंठ बंद कर लेनेपर भी उसकी ध्वनि बड़ी देरतक प्रतिध्वनित होती रहती। ओम्-उच्चारणके अनन्तर स्वामीजी मंत्र-पाठ गायन करते। तत्पश्चात् आँखें खोलकर, एक बार सारी सभापर नेत्र-ज्योति डालते। उससमय बहुधा बहुतसे मनुष्य यह अनुभव करने लग जाते कि हम किसी अज्ञात विधिसे अत्यन्त प्रभावित हो रहे हैं। हमारी चित्त वृत्तियाँ स्वामीजीकी ओर आपही आप खिंची चली जाती हैं। महाराजके नेत्रोंमें, अवश्यमेव प्रबल आत्मिक अयस्कान्त था। जब वे नेत्र-ज्योति चहुँ ओर फिराते तो लोगोंके हृदयोंमें, तन्त्रीके तारोंकी भाँति, झंकार होने लग जाता।

समालोचनात्मक भाषणोंमें वे पहले पूर्वपक्षकी स्थापना करते। उस पक्षकी पुष्टिमें जो भी युक्तियाँ दी जा सकती हैं उनकी एक लड़ी पिरो देते।

उस समय सबको यही जान पड़ता कि इन तर्कतीरोंका प्रतिकार करनेके समय स्वामीजी निपट निरुपाय हो जायँगे। इनका समाधान करनेमें सर्वथा असमर्थ सिद्ध होंगे। परन्तु ज्योंही वे उत्तर पक्ष प्रारम्भ करते और अपूर्व प्रतिभा-प्रभासे पूर्व पक्षका खण्डन करने लगते तो लोगोंकी कल्पनाके कोट अपने कंगूरे-सहित धड़ाधड़ धराशायी होने लग जाते। सम्पूर्ण शङ्का-समूहका समूलोच्छेदन हो जाता। उस समय बालकी खाल उतारनेवाले तार्किकभी महाराजकी अलौकिक बुद्धिका आलोक देखकर आश्चर्य-चकित रह जाते।

स्वामीजीका, ईश्वर-चिन्तनके विषयपर एक व्याख्यान देहरादून-निवासियोंके लिए, अमूल्य मणिके समान हो गया। उन्होंने ईश्वर-भक्तिका वर्णन ऐसे भावोंमें किया कि लोगोंके हृदय प्रेम-रसके प्रवाहसे भरपूर हो गये। तनमें रोमांच हो आया। आंखोंसे आंसुओंकी धारा बहने लगी। उन्होंने उस भाषणमें यह भी कहा कि सन्ध्या अवश्य किया करो। यह ईश्वरका सत्संग है। उपासना-कालमें उपासक अपने उपास्यके बहुत ही पास पहुँच जाता है। उपासनामें ईश्वरके गुणोंका विकाश, उपासकके भीतर अवश्यही होता है

महाराजके व्याख्यान दो घण्टेतक हुआ करते थे। वे अपने पास उस समय घड़ी नहीं रखते थे। पर उन्होंने कभी दो चार पलके लिए भी कालातिक्रम नहीं किया। ठीक समयपर उपदेश समाप्त हो जाता।

बहुतसे सज्जनोंने महाराजकी छवि लेनेका आग्रह किया। वे पहले तो मानते ही न थे। कहते कि आजतक हमने किसीको अपनी प्रत्याकृति नहीं लेने दी। परन्तु लोगोंके अत्यन्त अनुनय-विनयपर उन्होंने प्रत्याकृति उतरवाना स्वीकार कर लिया। कुंवर बलवीरसिंह नामके एक प्रतिष्ठित व्यक्तिने उनकी छवि ली। सिरपर साफे और गलेमें दुपट्टेवाली छवि देहरादूनमें ही ली गई थी।

देहरादूनके अधिवासियोंको सन्मार्ग दिखानेके उपरान्त महाराज मार्गशीर्ष ब० ८ सं० १९३७ को मेरठ आ गये। उन दिनों वैदिक यन्त्रालयके प्रबन्धकर्त्ता महाशय बख्तावरसिंहजीने कुछ गोलमाल कर रक्खा था। इस लिए स्वामीजी उसी कार्यमें लगे रहे। उन्होंने यन्त्रालयका प्रबन्धकर्त्ता पण्डित

भीमसेनजीको नियुक्त किया । फिर मार्गशीर्ष ब० १२ को वहाँसे प्रस्थान कर आगरा नगरमें सुशोभित हुए। यहाँ, महाराज लाला गिरधारीलालके मकानपर ठहरे ।

श्रीमान् लक्ष्मणप्रसादजीकी स्वामीजीमें भक्ति थी । वे ही सारे आगरेमें उनके कार्यके प्रबल पोषक थे । महाशय लक्ष्मणप्रसादजीने अपने इष्टमित्रोंसे मिलकर, स्वामीजीके व्याख्यानोंका प्रबन्ध मुफीदे आम स्कूलके मकानमें किया। यह स्थान पीपल मण्डीमें था। वहाँ वे पौष ब० १२ से माघ ब० ७ तक, प्रतिदिन सायंके सात बजे व्याख्यान देते रहे ।

महाराजके उपदेशोंमें एक अद्भुत रस था। तीन तीन चार चार कोस तकसे लोग सुनने आते । उनकी मनोरञ्जक उक्तियाँ और अटूट युक्तियाँ सुनकर वे लट्टू हो जाते ।

उनके तर्कके सामने कोई चिरकालतक नहीं ठहर सकता था। एक बङ्गाली डाक्टर आगरेमें निवास करता था। वह कट्टर नास्तिक था। उसकी तर्क-शक्ति बड़ी प्रबल मानी जाती थी। उसने लोगोंपर अपने ज्ञान-विज्ञानका सिक्का जमा रक्खा था । वह एक दिन बड़ा दलबल साथ लेकर स्वामीजीके व्याख्यान-पर गया । व्याख्यानके अनन्तर शङ्का-समाधानके लिए समय दिया जाता था। उसदिन, सबसे पहले वह बङ्गाली महाशयही उठे। उस समय लोगोंने एक दूसरेको कहा कि आज स्वामीजीको एक विशाल वज्र-शिलासे टक्कर लेनी पड़ी है । डाक्टर महाशयको जीतना 'टेढ़ी खीर' है ।

परन्तु थोड़ेही समयमें लोगोंका आश्चर्य सीमाको पार कर गया । उन्होंने देखा कि बङ्गाली महाशय, दो तीन बार बोलकर, मुँहसे झाग उगलते हुए हारकर बैठ गये । उस दिन महाराजने, आगरा-निवासियोंके हृदयोंपर, अपनी तर्कनातीत तर्कका ठप्पा लगा दिया। सभी लोग धन्य धन्य करते वहाँसे लौटे।

श्रीस्वामीजीके व्याख्यानोंके प्रभावसे पौष ब० ९ को आर्य्य समाजकी स्थापना हो गई। यहाँ उन्होंने ठाकुर श्यामलाल सिंहजीके तीन पुत्रोंको अपने पवित्र कर-कमलोंसे विधि-पूर्वक यज्ञोपवीत पहनाये ।

एक दिन महाराजने आगरेके बिशप महाशयसे मिलकर कहा कि 'आओ' पहले हम सब आपसमें मिलकर एक धर्म्म स्थिर कर लें और फिर नास्तिक-

वादको निर्मूल किया जाय। बिशप महाशयने एकताके मार्गमें अनेक कठिनाइयाँ दिखाईं। उनके उत्तरमें स्वामीजीने कहा कि यदि वेद पवित्रको सभी सज्जन स्वीकार कर लें तो ये सब आपत्तियाँ तुरन्त दूर हो सकती हैं।

वार्त्तालापके पश्चात् महाराज उनका बड़ा गिर्जा देखनेके लिए गये। जब वे उसके भीतर प्रवेश करने लगे तो एक ईसाईने कहा—'महाशय! सिरपरसे पगड़ी उतारकर भीतर प्रवेश कीजिये। स्वामीजी आगे नहीं बढ़े और उससे बोले कि हमारे देशकी रीतिके अनुसार सिरपर पगड़ी धारण करके किसी जगह जाना प्रतिष्ठाका चिह्न है। अपने देशकी सभ्यताके प्रतिकूल हम नहीं करेंगे। परन्तु यदि आप कहें तो हम पाँवसे जूता उतार सकते हैं। उसने उत्तर दिया कि दोनोंका उतारना उचित है। तब स्वामीजी भीतर नहीं गये और वराण्डेमेंसे उनकी मूर्तियाँ देखकर चले आये।

एक दिन स्वामीजी गो-रक्षापर व्याख्यान देते हुए बता रहे थे कि गोवध-से कैसी कैसी हानियाँ हो रही हैं। पास ही बैठा हुआ एक ब्राह्मण बे-तरह बिगड़ा और कुवचन बकने लगा। लोगोंने उसे शान्त करते हुए पूछा कि देवता वस्त्रोंसे बाहर क्यों हुए जाते हो? उसने उत्तर दिया कि 'उन्होंने गो-हत्यासे होनेवाली हानियोंका वर्णन करते समय 'गो-वध' शब्द अपने मुखसे क्यों उच्चारण किया? महाराजने तब उसे कहा कि यह शब्द इस लिए उच्चारण किया था कि गो-वधसे जो जो हानियाँ जगत्में हो रही हैं उनका लोगोंको ज्ञान हो जाय और वे गो-रक्षा करनेमें तत्पर हो जायँ।

इस व्याख्यानसे उस ब्राह्मणकी चिढ़का पारा और भी ऊपर चढ़ गया और वह गालियाँ देता हुआ सभासे चल पड़ा! स्वामीजीने खेदसे कहा, "हमारे देशके लोग हिताहितसे कितने अजान हैं! ये नामसे तो इतने चिढ़ते हैं कि आग बबूला बन जाते हैं परन्तु उसके विरुद्ध, काम करनेका नामतक नहीं लेते। जिस देशमें ऐसे विवेक-विचार-विवर्जित जन वास करते हों बताइए, वहाँ बुद्धिको स्थान कहाँ है?

एक दिन, महाराज एक भेड़ियेकी माँदमें पले हुए मनुष्योंको देखने गये। उसे बचपनमेंही एक भेड़िया उठाकर ले गया था। फिर वह किसी प्रकार ईसाईयोंके हाथ लग गया। महाराजने जब उसको देखा तो उस समय वह

एक कुरता धारण किये हुए था और थोड़े थोड़े मानुषी व्यवहार भी सीख चुका था। स्वामीजीसे नमस्कारपूर्वक उसने पैसा माँगा। इसपर स्वामीजीने उससे कहा कि इतना चिर पशुओंमें वास करनेपर भी तुमने पैसोंका प्रेम न छोड़ा। महाराजके संकेतसे उनके साथी भक्तने दो चार आने उसको दे दिये।

पण्डित कालिदासजी सेण्ट जोन्स कालेजमें संस्कृतके मुख्याध्यापक थे। वे, किसी समय, छः सात मासपर्यन्त श्री विरजानन्दजीकी सेवामें भी अध्ययन करते रहे थे। आगरेके बहुतसे पण्डित और श्रद्धालु सेठ उनके निकट जाकर कहने लगे, "स्वामी दयानन्दजीने सारे नगर-वासियोंके निश्चय हिला दिये हैं। पौराणिक देव-मूर्तियोंसे लोगोंकी धारणा उठती चली जाती है। आप उनको शास्त्रार्थद्वारा परास्त कीजिए, जिससे उनके विचारोंके फैलनेमें कुछ रोक थाम हो जाय।"

पण्डित कालिदासजीने कहा, "स्वामीजीसे शास्त्रार्थ करनेका सामर्थ्य मुझमें नहीं है। मैं जब श्री विरजानन्दजीके पास पढ़ा करता था, उन्हीं दिनों, ये महानुभाव भी वहाँ अध्ययन करते थे। गुरुजीके आगे, ये कभी कभी ऐसे प्रबल तर्क उपस्थित करते थे कि उसपर गुरुजीको भी कहना पड़ता कि इसका उत्तर हम कल देंगे! भाई! ऐसे बड़े विद्वान्से वैर-विरोध बाँधना अपनेको भाड़में भूनना है। तुच्छ पतङ्ग, दीपकका प्रतिपक्षही क्या कर सकता है।

एक दिन, पण्डित कालिदासजी श्री-सत्सङ्गमें गये और वार्त्तालापके प्रसङ्गमें बोले—"भगवन्! सन्ध्याका विधान तो त्रयकालके लिए है। आप दो काल सन्ध्या करना क्यों बताते हैं? स्वामीजीने उत्तर दिया कि "धर्म्म-शास्त्रमें दो कालही सन्ध्या करना लिखा है। त्रयकाल सन्ध्याकी रीति सर्वथा अनार्ष है।"

स्वामीजी महाराज कठिन विषयोंका समाधिस्थ होकर मनन किया करते। उनकी धारणा थी कि जब मनुष्य अन्तर्मुख होता है तो उस समय उसमें ईश्वरीय ज्ञानका सीधा प्रकाश पड़ने लग जाता है।

ब्रह्मानन्दजी अपने युवाकालमें जब आगरा कालेजमें अध्ययन करते थे तो उन्हीं दिनों, श्री महाराजके वहाँ धुँआधार व्याख्यान होते थे। ब्रह्मानन्दजी एक दिन सत्सङ्ग प्राप्त करनेके लिए महाराजके निवासस्थानपर गये। उस समय स्वामीजी तो स्थानपर नहीं थे, परन्तु भीमसेनजी और ज्वालादत्तजी आदि

पण्डित बैठे आत्म-चर्चा कर रहे थे। ब्रह्मानन्दजीने उनसे पूछा, "आप कोई आत्म-ज्ञानी जन भी बता सकते हैं?" उत्तरमें ज्वालादत्तजीने कहा, "इस समय सबसे बड़े आत्मदर्शी हमारे स्वामीजी महाराज हैं। हमने उनको अनेक बार अचल ध्यानमें लीन देखा है। उनको योगकी सकल सिद्धियाँ सम्प्राप्त हैं। हमें वेद भाष्य लिखाते समय, कोई कठिन विषय उपस्थित होनेपर, वे कई बार बीचमेंसे उठकर चले जाते हैं और कोठड़ीके किवाड़ लगाकर बड़ी देरतक अन्तर्ध्यान बैठे रहते हैं। फिर बाहर आकर पहले लिखेमेंसे कई वाक्य और पंक्तियाँ तक कटवा देते हैं और उनके स्थान पर नवीन वाक्यकी योजना लिखाते हैं। उनका अन्तःकरण इतना विमल और इतना विशुद्ध है कि सातवीं कोठरीमें भी की गई वार्त्ताका आभास, उसमें पड़ जाता है। उन्होंने कई बार हमारे प्रच्छन्न मनोरथोंको हमारे आगे वर्णन किया है। वे हमें उपदेश दिया करते हैं कि जब मनुष्यके हृदयकी सकल ग्रन्थियाँ खुल जाती हैं तो उसे आत्म-ज्ञान प्राप्त हो जाता है। तिलोंमें तेलकी तरह आत्मामें ही परमात्म-देव रमे हुए हैं। इस लिए उनका भी उसी समय ज्ञान हो जाता है।"

आगरा-निवासियोंके हृदयोंको, अपने अमृतोपदेशसे तृप्त करके, महाराज इस देशके राजों महाराजोंको सुधारनेके लिए राजस्थानको प्रस्थान कर गये।

राजस्थान काण्ड ।

पहिला सर्ग ।

फाल्गुन सुदी दशमी सम्वत् १९३७ को महाराज भरतपुरमें पधारे और रेलके स्टेशनके निकट एक प्रतिष्ठित पुरुषके उद्यानमें ठहरे। उन्होंने वहाँ दस दिनतक व्याख्यान दिए और फिर चैत्र वदी पंचमीको प्रस्थान कर जयपुरमें सुशोभित हुए। यहाँ, वे वदनपुरामें, अचरोलके ठाकुरोंके उद्यानमें विराजे । महाराजके सत्संगसे जयपुर-वासी प्रेमी जनोंने बहुत लाभ उठाया। फिर वहाँसे चलकर वे वैशाख सुदी सप्तमी सम्वत् १९३८ को अजमेरमें पधारे। यहाँ उन्होंने सेठ फतेहमलजीके उद्यानमें डेरा किया।

विज्ञापनोंद्वारा सर्वसाधारणको सूचना देकर व्याख्यान आरम्भ किये गये। श्रोता लोग भी अतिशय उत्साहसे सत्संगमें आते और एकाग्र भावनासे सुनते थे। महाराजके व्याख्यान, प्रतिदिन सायंके सात बजेसे रातके नौ बजेतक होते, परन्तु बीचमें उठकर चले जाना तो कहाँ, कोई हिलनेजुलने तकका भी नाम न लेता। सभी उपस्थित जन नीरव, निस्तब्ध और निर्निमेष होकर, अपने ललचाए हुए लोचनोंसे महाराजकी मंगलमयी मनोहर मूर्तिका दर्शन किया करते। सभा-सागरमें चहुँ ओर चुप्पीका अचल भाव छाया होता। सुनते हुए लोग तृप्त नहीं होते थे। यही चाहते थे कि महाराज सुनाते जायँ, व्याख्यान समाप्त न करें। उपदेशकी समाप्तिपर, सभी श्रोता स्वामीजीको शत-शत सहस्र-सहस्र साधुवाद देते घरोंको जाते। उनके उपदेशोंमें वर्णनातीत रस होता था। जो एक दिन इसका आस्वादन कर जाता उसे ऐसा चसका लगता कि आगामी दिन, वह सबसे पहले पहुँचनेकी चेष्टा करता।

नसीराबाद-निवासी श्री हीरालालजीको महाराजने, यथाविधि, अपने श्री हाथोंसे यज्ञोपवीत धारण कराया। उसको धर्म्म-कर्म्मका अतीव उपयोगी उपदेश भी दिया।

कुछ एक पेटार्थी पण्डित लोग परमहंसजीसे शास्त्रार्थ करनेकी कोरी गप्पें हाँकते तो थे, परन्तु वह मन उन्हें नहीं मिला था, वह हृदय उनको नहीं प्राप्त था और वह आत्मा उनमें निवास नहीं करता था, जिसमें स्वामीजीके सामने आनेका साहस हो सकता ।

पण्डित श्री लेखरामजीके हृदयमें महाराजके दर्शनोंकी तीव्र लालसा उत्पन्न हो आई । वे, कुछ कालके लिए अपने सारे कामकाज छोड़कर, पंजाबसे अजमेर जा पहुँचे । ज्येष्ठ ब० ४ सं० १९३८ प्रातः काल श्रीसेवामें उपस्थित हुए । उन्होंने, भक्ति-भावके भारसे नम्रीभूत होकर, श्री चरणोंमें विनीत नमस्ते निवेदन किया । उनके प्रेम-रससे रसीले, विमल लोचनोंको, मधुर मुखमण्डलको, शोभाशाली विशाल ललाटको और पतित-पावनी परम पवित्र आकृतिको अवलोकनकर, मोहियाल वंशके सुवीर सुपूतको अतिशय प्रसन्नता उपलब्ध हुई । वे मार्गकी सारी थकान तत्काल भूल गये । वे अतृप्त लोचनों से, अति तृष्णाके साथ, स्वामीजीके सुन्दर स्वरूपको देखने लगे ।

पण्डितजीने बद्धाञ्जलि होकर पूछा कि भगवन् ! आकाश और ब्रह्म दोनों पदार्थ व्यापक हैं । ये दोनों एक स्थानमें एकत्र क्योंकर रह सकते हैं ?'

महाराजने एक पास बड़ा पत्थर उठाकर पूछा कि इसमें अग्नि व्यापक है वा नहीं ? उन्होंने कहा कि हाँ अवश्यमेव है । फिर उन्होंने उसी पाषाण-खण्डमें वायु, जल, मृत्तिका, आकाश और परमात्माकी व्यापकता पूछी । पण्डितजीने सबकी व्यापकता स्वीकार कर ली । तब स्वामीजीने कहा, "भद्र ! आपने समझ लिया कि एक पत्थरमें सब पदार्थ व्याप्त हो रहे हैं । इस व्यापकताका सरल सिद्धान्त यह है कि जो पदार्थ जिससे सूक्ष्म होता है वह उसमें व्याप्त हो सकता है । परमात्मदेव परम सूक्ष्म हैं । इस लिए वे सब पदार्थोंमें परिपूर्ण हो रहे हैं ।"

भगवान्ने ताड़ लिया कि भक्तकी हृदय-भूमि उपजाऊ है । उसमें धर्म-कल्पतरुका बीज बोनेकी भावनासे उन्होंने कहा कि आप यथेष्ट प्रश्न पूछकर अपने संशय निवारण कर लीजिए । उस समय पण्डितजीने दस प्रश्न पूछे । उनमेंसे, पीछेसे उन्हें ये थोड़ेसे स्मरण रह गये ।

प्रश्न । भगवन्! जीव और ब्रह्मके भिन्न भिन्न होनेमें कोई प्रमाण दीजिए। उत्तर । यजुर्वेदका सारा चालीसवाँ अध्याय जीव और ब्रह्मका भेद वर्णन करता है ।

प्रश्न । मुसलमान और ईसाई आदि मतोंके मनुष्योंको क्या शुद्ध कर लेना चाहिए ?

उत्तर । हाँ, अवश्यमेव शुद्ध कर लेना चाहिए ।

प्रश्न । बिजली क्या वस्तु है और किस प्रकार उत्पन्न होती है ?

उत्तर । बिजली सर्वत्र है । रगड़से अभिव्यक्त हो जाती है । बादलोंकी विद्युत् भी वायु और बादलोंके संघर्षणसे प्रकट होती है ।

महाराजने पण्डितजीको कहा, "जबतक आपकी आयु पच्चीस वर्षकी न हो तबतक विवाह कदापि न कराइएगा ।" धर्म्म-वीर, जब अपने परम-धीर और कर्म्म-वीर गुरुसे बिदा होने लगे तो उनसे बोले—"गुरुदेव! कोई अपना स्मारक चिह्न प्रदान कीजिए ।" महाराजने निज अनन्य भक्तको, अतिवत्सल भावसे, एक प्रति अष्टाध्यायीकी प्रदान की । तत्पश्चात् होनहार आर्यपथिक उनके अरुणवर्ण चरण छूकर वहाँसे अपने प्रान्तको लौट आए ।

एक दिन पश्चिमी विज्ञानका एक धुरन्धर पण्डित स्वामीजीके निकट आया । वह योगकी सिद्धियोंको भ्रममूलक मानता था । उसने योग विभूतियोंके विषयमें पूछा कि क्या आप इनको मानते हैं ? स्वामीजीने योग-सिद्धियोंको सिद्ध करते हुए कहा कि क्या आप समझते हैं कि मेरा इतना बड़ा काम बिना योग सिद्धिके ही हो रहा है । इतने ही शब्दोंसे, उसका वज्रसदृश कड़ा मन पिघल-कर मोमसा नर्म होगया और उसे आर्य्य समाजसे प्रीति हो गई ।

मसूदा-राज्यके नरेश, राव श्री बहादुरसिंहजीको जब समाचार मिला कि गुरुदेव अजमेरमें विराजमान हैं तो उन्होंने एक प्रतिष्ठित व्यक्तिको निमन्त्रण पत्र देकर श्री सेवामें भेजा और मसूदा राज्यको सौभाग्य प्रदान करनेकी प्रार्थना की । उनकी प्रार्थनापर श्री महाराज आषाढ़ वदी द्वादशी १९३८ को मसूदामें पधारे और राम उद्यानमें ठहरे । आगामी दिनसे उनके व्याख्यान धर्म्म, राजनीति और पुनर्विवाह आदि विषयोंपर होने आरम्भ हो गये ।

पादरी शूलब्रेड, एक देसी पादरीसहित स्वामीजीसे मिलने आये। उस समय राव महाशय स्वामीजीके पास ही बैठे थे। उन्होंने एक नौकरको आज्ञा दी कि पादरी महाशयके लिए यहाँ कुर्सी ले आओ। जब कुर्सी लाकर, वह फर्शपर रखने लगा तो महाराजने कहा कि फर्शको उलटकर कुर्सी रखिए। राव महाशयके पूछनेपर उन्होंने कहा कि आप सब फर्शपर बैठे हैं। यदि कुर्सी फर्शपर रक्खी जायगी तो आगन्तुकके जूते फर्शपर होंगे। यह सभ्यताकी बात नहीं है कि जिस आस्तरणपर लोग आसन लगाये बैठे हैं उसपर एक मनुष्य, जूतेसमेत पाँव रखकर, कुर्सीपर बैठे।

शूलब्रेड महाशयको स्वामीजीने अनेक प्रश्न पूछे, परन्तु वे उत्तर कुछ भी न दे सके। शूलब्रेडके पूछनेपर महाराजने कहा कि वेदोंमें गोमेध, अश्वमेध आदिका वर्णन नहीं है। एक देसी ईसाईने कहा कि 'स्वामीजी! आप राजा महाराजोंको ही उपदेश देते हैं, परन्तु निर्धनोंमें जाकर उन्हें नहीं समझाते।

इसपर उन्होंने कहा, "मैं सर्वत्र पर्यटन करता हूं। मेरे व्याख्यान भी सर्वसाधारणके लिए होते हैं। इनमें छोटेसे छोटा मनुष्य, किसी रुकावट और प्रतिबंधके बिना आ सकता है। वैसे तो कुँएके पास प्यासे ही आया करते हैं, न कि कुआँ प्यासोंके पास जाया करता है।"

उन्हीं दिनोंमें वहाँ जैनियोंका साधु सिद्धकरण भी आया हुआ था। एक दिन वह घूमते हुए स्वामीजीको मिल गया। वह बड़े उजड्डपनसे उनको कहने लगा, "आपकी तोंद तो बड़ी बढ़ रही है। क्या इसमें ज्ञान भरा हुआ है? इसपर लोहेका तवा बाँध लीजिए। नहीं तो कहीं ऐसा न हो कि वह फट जाय। आपको ज्ञानाजीर्ण भी हो रहा है।"

महाराजने उस साधुके अक्खड़ और फक्कड़पनपर कुछ भी दृष्टि न दी और न ही फबती उड़ानेपर कर्णपात किया। गम्भीर भावसे उन्होंने प्रश्न किया, "आप लोग मुखपर पट्टी क्यों बाँधते हैं? और गर्मजल क्यों पीते हैं?" इसपर देर तक वादानुवाद होता रहा।

प्रातःकाल जब स्वामीजी भ्रमणार्थ जाया करते तो राव महाशय दूरवीक्षण यंत्रद्वारा महाराजको देखा करते। उस दिन, जब उन्होंने देखा कि उनके साथ

कोई बातचीत कर रहा है तो वे तुरन्त घोड़ेपर सवार होकर वहाँ जा पहुँचे। राव महाशयको आते देख साधुजी खिसक गये। स्वामीजी, राव महाशयके साथ वार्त्तालाप करते हुए स्वस्थानपर चले आये।

श्रावण बदी द्वितीया सम्वत् १९३८ को महाराजने निम्न लिखित प्रश्न सिद्धकरणके पास भेजे—

"जैन मतके अन्तर्गत आप 'ढूंढक' लोग मुखपर पट्टी बाँधना अच्छा समझते हैं। आपका यह सिद्धान्त भ्रममूलक है। जीव अजर और अमर है। वह मुखकी पवनसे नहीं मर सकता। यदि प्राणियोंको पीड़ा देनेसे पापका भागी होना मानते हो तो यह भी अयुक्त है। प्राणधारीको पीड़ा पहुँचाये बिना तो निर्वाहही नहीं हो सकता। यदि आपका यह कथन हो कि सारा वायुमण्डल जीवोंसे भरा पड़ा है। मुखपर पट्टी बाँधनेसे जितनोंका बचाव हो जाय उतना ही अच्छा है तो भी ठीक नहीं। जैसे आग जलाकर द्वार बंद कर देनेसे उष्णता बढ़ जाती है इसी प्रकार मुँह बन्द रखनेसे वायु अधिक उष्ण हो जाती है और इससे जीवोंको अधिक पीड़ा पहुँचती है।

मुखकी भाँति नाकसे भी तो पवन निकलती है। उससे भी जीव मरते होंगे! तब आप नाकपर पट्टी क्यों नहीं बाँधते? जैसे नलीद्वारा वायु बड़े वेगसे लगती है ऐसे ही इससे जीवोंका नाश भी होता होगा। इत्यादि युक्तियोंसे आप अपने निश्चयके अनुसार, अहिंसक नहीं हो सकते। मुखपर वस्त्र बाँधनेसे दुर्गन्ध भी बढ़ जाती है। इससे अधिक रोग बढ़ते हैं। दुर्गन्ध बढ़ानेवाला मनुष्य अधिक अपराधी हुआ करता है।

जो सादे पानीके पीनेमें दोष मानते हो और उष्ण कराकर पीते हो, यह भी आपकी भारी भूल है। तुम्हारे मन्तव्यके अनुसार, यदि जल जीवमय है तो उष्ण करनेसे उन्हें अधिक पीड़ा होती होगी। वे जीव, जीवित जल जाते होंगे। यदि कहो कि हम तो जलको उष्ण नहीं करते इस लिए जलीय जीवोंको जलानेके भागी, हम नहीं बन सकते, तो आपका यह भी कथन सत्य नहीं। यदि आप उष्ण जल न लें तो उसे कोई गर्म न करे। इस कारण, आप उनकी हिंसाके भागी अवश्य हैं।

आपके मतमें ऐसी ही अनेक अयुक्त बातें पाई जाती हैं । आप लोगोंका यह मानना कि पैसा भर कन्दमें अनन्त जीव हैं, सर्वथा युक्तिविरुद्ध है । भला सान्तमें अनन्त कैसे समा सकते हैं ?"

इसका जो उत्तर साधु सिद्धकरणने दिया उसका सार यह है:—"जब किसी मकानमें आग जलती हो तो उसके द्वारमेंसे वायुके जो जीव भीतर जाते हैं वे सब मर जाते हैं । ओटसे जानेवाले नहीं मरते । ऐसे ही मुखपर पट्टी बाँधनेसे मुखके वायुद्वारा अधिक जीव नहीं मरने पाते । चूल्हेपर रखे हुए देगचेमेंसे जब भाँफ निकलती है तो उसपर हाथ रखनेसे हाथ जलने लग जाता है । परन्तु यदि उसपर कपड़ा आदि रख दो तो उसमेंसे होकर जो भाँफ जायगी वह अधिक उष्ण न होगी । ऐसे ही मुखपर वस्त्र रखनेसे वायुके जीव नहीं मरते ।"

इसका उत्तर स्वामीजीने फिर लिखकर भेजा, "वायु सब प्राणियोंके जीवनका कारण है । इसके बिना कोई भी जीव, जी नहीं सकता । इसके संयोगके बिना आग भी नहीं जलती । सर्वथा निर्वात स्थानमें रक्खा हुआ दीपक भी बुझ जाता है। ज्वालाको यदि बाहर जानेके लिए द्वारका मार्ग न मिलेगा तो वह दूसरे मार्गसे बलपूर्वक बाहर निकल जायगी; किन्तु ठण्डी न होगी। इसी प्रकार मुखपर पट्टी बाँधनेसे, नाकादि द्वारोंद्वारा भीतरकी वायु बलपूर्वक बाहर जाकर, आपके माने हुए जीवोंका हनन करेगी ।

भाँफपर हाथ रखनेसे वह शीतल नहीं हो जाती, किन्तु यदि हाथ न रखा जाय तो वह चारों ओर फैलकर शीघ्र ही शीतल हो जाती है। बर्तनके मुखपर हाथ रखनेसे वह इस लिए नहीं जलती कि उष्ण वाष्प सीधी ऊपरको चली जाती है । यदि आगेसे उसे रोक दिया जाय तो आघात खाकर, वह चौगुने बलसे, दूसरे टेढ़े मार्गसे बाहर निकल जायगी ।

आपका वायुके जीवोंपर दयाका भाव सृष्टि-नियमके प्रतिकूल है । यदि उष्णतासे ठण्डी वायुके जीव मर जाते हैं तो ग्रीष्मके भीषण उत्तापसे, जब पवन भी अत्यन्त तप्त हो जाती है और अतीव उष्ण लू चलने लगती है तो उस समय, कोई जीव जीता नहीं रहना चाहिए । ऐसे ही उष्ण वायुके जीवोंका, पौष-माघके जाड़ोंमें, प्राणान्त हो जाता होगा ।"

जब लोग स्वामीजीका प्रत्युत्तर साधु सिद्धकरणजीके पास लेकर गये तो दो ढाई सौ मनुष्योंकी भीड़ भाड़ हो गई। लोगोंने साधुजीसे कहा कि अब आप इसका उत्तर लिख दीजिए। परन्तु उसने तो पहले भी बड़ी कठिनतासे ज्यों त्यों करके उत्तर दिये थे। इस बार तो वह सर्वथा साहस हार बैठा। उसने उत्तर देना स्वीकार न किया।

साधुजीके जी छोड़ देनेसे जन लोगोंपर बड़ा प्रभाव पड़ा। उनको अपने मतमें भारी भ्रम दीखने लगे। उधर महाराज भी, प्रतिदिन अपने भाषणोंमें जैन मतकी अयुक्तता सिद्ध करते रहते थे। इसका अन्तिम परिणाम यह निकला कि एक दिन बहुतसे जैनियोंने मिलकर महाराजकी सेवामें प्रार्थना की, "आपने हमारे नेत्र खोल दिये हैं। अब हमें जैन मतकी असारता स्पष्ट दीखने लगी है। अपनी अपार कृपासे, हमें यज्ञोपवीत धारण कराकर, दीक्षित, आर्य्य बना दीजिए।"

महाराजने तब, राव महाशयको यज्ञ-सामग्रीके लिए आदेश किया। श्रावण पूर्णमासी सम्वत् १९३८ के दिन राव महाशयकी ओरसे महोत्सव रचाया गया। उसमें बृहद् हवन हुआ। फिर श्री महाराजने अपने शुभ हाथोंसे ततीस भद्र पुरुषोंको यज्ञोपवीत प्रदान किये—उन्हें आर्य्य धर्म्मकी दीक्षा दी। मसूदाके जैनियोंके जैन-मत-त्यागसे सारे मारवाड़के जैनियोंपर प्रभाव पड़ा। आर्य्योंके उत्साह भी चतुर्गुण हो गये।

भाद्रपद कृष्णा दूजको भरतपुरके राजपूतों, क्षत्रियों, वैश्यों, कायस्थों और चारण लोगोंने श्री स्वामीजीसे यज्ञोपवीत ग्रहण किये। उस दिन भी राव-महाशयने उत्सव और यज्ञ रचाया।

कहते हैं कि मारवाड़के राज्योंमें, जो लोग मुगलोंके समयमें मुसलमान हो गये थे उनको वहाँके आर्य्य लोग, स्वामीजीके समयतक, अपनी लड़कियाँ देते थे। महाराजने ऐसे आर्य्यों (हिन्दुओं) को आमन्त्रित किया और सभा लगाकर उनको उपदेश दिया कि जान बूझकर अपनी प्यारी पुत्रियोंको मुसलमान न बनाओ। उनपर यह अनीति, अन्याय और अनर्थ न करो। महाराजके वचन लोगोंके हृदयोंमें घर कर गये। उन्होंने वहीं प्रण किया कि

हम आगेको इस घोर अपराधके भागी नहीं बनेंगे। इस प्रकार स्वामीजीने बीसियों आर्य्य बालिकायोंके धार्मिक जीवनको बचा लिया।

रायपुर राज्यसे महाराजके पास निमन्त्रणपर निमन्त्रण आने लगे। उन्होंने राव महाशयसे प्रस्थानकी अनुमति माँगी। गुरु महाराजके प्रस्थानका प्रस्ताव सुनकर राव महाशयका जी भर आया। उन्होंने विनय की, "भगवन्! आपका यहाँसे गमन कर जाना मेरे लिए अतीव कष्टदायक है, परन्तु श्रीचरणोंको रोका भी नहीं जा सकता। सेवक आपकी आज्ञायोंको भली भाँति पालन करता रहेगा और यथाशक्ति वेद भाष्यमें भी साहाय्य किया करेगा।

महाराजके प्रस्थानके दिन राव महाशयने सम्मान-सभाकी योजना की। किलेकी डेवढ़ीके आगे एक सुन्दर मण्डप रचा गया। उसमें स्वच्छ और बहुमूल्य फर्श बिछाया गया। स्वामीजीकी बग्घी उनके निवास-स्थानसे चल-कर, नगरमें से होती हुई, सभा-मण्डपके सामने आ गई। सारी सभाने उठ-कर उनका स्वागत किया। एक ऊँचे सिंहासनपर आरूढ़ होकर, उन्होंने उस समय राजा-प्रजाके धर्म्मोंका अत्युत्तमतासे निरूपण किया।

उपदेशके अनन्तर राव महाशयने उठकर अभिनन्दन-पत्र पढ़ा। उसमें स्वामीजीके उपकारोंकी प्रभूत प्रशंसा की गई। इसके उपरान्त, राव महा-शयने श्री महाराजके गलेमें पुष्प-माला पहनाई और चरणोंपर पाँच सौ रुपया रखकर नमस्कार की। आशीर्वाद देते हुए स्वामीजीने भी, फूलोंका एक हार, अपने मङ्गलमय हाथोंसे राव महाशयके गलेमें डाला। तत्पश्चात् राव महाशय आदि सज्जनोंसे वार्त्तालाप करते हुए स्वामीजी उठकर बग्घीमें बैठ गये। कोई आध कोसतक चार सौ मनुष्य उन्हें पहुँचाने गये। अन्तमें स्वामीजीने गाड़ी खड़ी करके उनको उपदेश दिया और नगरको लौटा दिया। राव महाशय तो लगभग चार कोसतक उपदेश सुनते चले गये। अन्तमें अत्याग्रहसे महाराजने उनको लौटाया।

महाराज भाद्रपद कृष्णा नवमी १९३८ को मसूदासे विदा हुए और अगले दिन रायपुरमें पहुँच गये। यहाँ उन्होंने माधोदासकी वाटिकामें डेरा किया।

उनका शुभागमन सुनकर, ठाकुर हरिसिंह अपने स्वजनों-परिजनोंसमेत श्रीदर्शनोंको आये। एक सुवर्णमुद्रा और पाँच रुपये भेंटकर चरण छूकर नमस्कार की। महाराजकी अनुमति पाकर सभी यथायोग्य स्थानपर बैठ गये। कुशल-क्षेम प्रश्नके पश्चात् स्वामीजीने समागत सभ्योंको एक अत्युत्तम उपदेश दिया। प्रसङ्गानुसार ठाकुर महाशयको समझाया कि प्रजारञ्जन, कर्त्तव्य-पालन, शासन-सुधार, भद्र और कुलीन कर्म्मचारियोंकी नियुक्तिपर विशेष ध्यान देना चाहिए। स्वामीजीके कथनोंसे कुछ एक सत्ताधारी मुसलमान बहुत लाल पीले हुए। उनको, वहाँ किसी विधिसे, वेदना पहुँचाना अपने वशसे बाहरकी बात जान, अन्तमें उन्होंने एक काजी महाशयको स्वामीजीके साथ ला भिड़ाया। उत्तर प्रत्युत्तरमें स्वामीजीने कुरानकी पुस्तक भूतलपर रख दी। इतनेहीसे काजी महाशय कपड़ोंसे बाहर होने लगे और झुँझलाकर बोले—"आपने यह क्या अनर्थ ढाया है? कुरानको पाँवके स्थान-पर क्यों रख दिया है?"

स्वामीजीने कहा—"काजीजी घबराइए नहीं। सोचिये तो सही, ये कागज बनते किन पदार्थोंसे हैं। स्याहीके प्रस्तुत होनेकी विधि भी विचारिये। मुद्रणालयमें छपे पत्रोंकी क्या दशा होती है और वे कहाँ कहाँ रक्खे जाते हैं, इस क्रमपर भी टुक दृष्टि डालिये।"

काजी महाशय सर्वथा निरुत्तर होकर उठ खड़े हुए और अपने साथियों-सहित वहाँसे चले आये।

पञ्जाब-निवासी श्रीमान् रूपसिंहजी, देशाटन करते हुए, श्रीदर्शनोंके निमित्त रायपुरमें जा पहुँचे। महाराजके पवित्र चरणोंको स्पर्श करके उन्होंने बड़ी भक्ति भावनासे नमस्कार की और निवेदन किया, "भगवन्! आपने पंजाब प्रान्तको तो अपने पुनीत पदार्पणसे पवित्र किया, परन्तु महाराज सीमा-प्रान्तमें क्यों नहीं पधारे?"

महाराजने उत्तरमें कहा—"महाशय, आप लोगोंकी ओरसे हमें पूर्ण निश्चिन्तता है। इस समय तो राजस्थानमें प्रचारकी बड़ी आवश्यकता है।"

स्वामीजीके उपदेश, उनके निवासस्थानपर प्रतिदिन हुआ करते। उनसे ठाकुर महाशय भी लाभ उठाते। ठाकुर महाशय एक यज्ञ करानेका भी

उद्योग कर रहे थे, परन्तु उनकी ठकुरानीके देहान्तका समाचार आ जाने से उनकी मनःकामना मनहीमें रह गई ! महाराजने जब देखा कि ठाकुर महाशय शोकाकुल हो रहे हैं तो वह भी प्रस्थानके लिए समुद्यत हो गये ।

एक सज्जनने स्वामीजीसे कहा, "आप भी ठाकुर महाशयके यहाँ शोक प्रकाशित कर आइए ।" इसपर उन्होंने उत्तर दिया कि "भद्र ! मैंने तो सारे सांसारिक बन्धन तोड़ दिये हैं । किसीका जीना और मरना मेरे सम्मुख अब समान है । मैं न तो किसीके जन्मपर प्रसन्नताका प्रकाश करने जाता हूँ और न ही मरणपर शोक ही प्रकट करता फिरता हूँ । मेरा सम्बन्ध तो उपदेश और धर्म्मके अतिरिक्त किसीसे कुछ भी नहीं है ।"

यहाँ स्वामीजीने वेदाङ्ग-प्रकाश समासतक लिख लिया था ।

बीस दिवसतक रायपुरमें निवास करके महाराज जिस दिन प्रस्थान करने लगे उस दिन ठाकुर महाशयने अपने पिता और प्रतिष्ठित बन्धुओंको भेजकर उनको बड़े आदरके साथ बिदा किया ।

भादों सुदी १५ सं० १९३८ को रायपुरसे प्रस्थान कर स्वामीजी ब्यावर पधारे । अगले दिन पता लगते ही लोग दल बाँधकर और मण्डलियाँ बनाकर श्रीदर्शनोंको आने आरम्भ हो गये ।

पादरी शूलब्रेड और बिहारीलालजी कई दिनोंतक धर्म्म-चर्चा करनेका आनन्द लूटते रहे । और भी अनेक सज्जनोंने अपने संशय और भ्रम मिटाये । यहाँ महाराजने कई दिनोंतक मनोहर उपदेश दिये ।

चन्दूलालजी के पिता अति श्रद्धालु भक्त थे । स्वामीजीमें उनकी बड़ी भावना थी । एक दिन उन्होंने अपने पुत्रको पुकारकर कहा—"बेटा चन्दू-लाल ! स्वामीजीकी सेवा शुश्रूषा अवश्य किया कर । ऐसे महापुरुषोंका मङ्गल मिलाप अमूल्य पदार्थ है ।"

पिताके आदेशानुसार चन्दूलालजी, श्रीचरणोंमें चित्तके उच्च भावसे जाते और सेवा किया करते । चन्दूलालजीके विचार वेदान्तके ढाँचेमें ढले हुए थे । उन्होंने इस विषयपर स्वामीजीसे प्रश्न भी पूछे । महाराजने उनसे कहा—"भद्र ! अभी आप नवयुवक हैं; इस तात्त्विक मर्मको समझ नहीं सकेंगे । आप, हमारे रचे सत्यार्थ प्रकाशका ध्यान-पूर्वक पाठ करते जाइए । आपके

सारे संशय आप-ही-आप दूर हो जायंगे।" चन्दूलालजीने कालान्तरमें सत्यार्थ-प्रकाशके पाठहीसे पूर्ण विश्वास प्राप्त कर लिया।

स्वामीजीकी बताई विधिसे, प्रतिदिन २१ प्राणायाम करनेसे, उनका पुराना पेचिश रोग दूर हो गया। इस रीतिके अनुसार, उनके एक मित्रका अति पुरातन अर्श-रोग जड़ मूलसे जाता रहा।

ब्यावरमें महाराजने बारह तेरह दिनतक निवास किया और फिर वे आश्विन बदी त्रयोदशी सम्वत् १९३८ को मसूदामें पधारे। वहाँ १५ दिनतक विश्राम किया। बनेड़ाके ठाकुरके अत्याग्रहसे आश्विन शुक्ला १४ को मसूदासे चलकर, मार्गमें तीन स्थानोंमें एक एक रात ठहरते, वे बनेड़ामें जा विराजे। मसूदा-नरेशकी ओरसे महाराजको बनेड़ातक पहुँचानेके लिए एक ताँगा, एक रथ, उपकरण लादनेके लिए एक गाड़ी और चार अश्वारोही सैनिक गए।

बनेड़ाके राजा महाशयने उनका अत्यादरसे स्वागत किया और नगरसे बाहर झामरा मन्दिरके निकट तम्बू लगाकर, उनमें निवास कराया।

राजा महाशयने अपने गुरुसे मिलकर निश्चय किया कि तीन चार दिनतक स्वामीजीसे कोई प्रश्नोत्तर न किया जाय। इतने दिनोंमें यदि हमें ज्ञात हो गया कि उनके सम्मुख प्रश्नोत्तर करनेका हममें सामर्थ्य है तो फिर जो कुछ पूछना होगा पूछ लेंगे। सायंकाल जब, राजा महाशय श्री सत्संगमें आए तो उस समय महाराज कौपीन लगाए एक कृष्णवर्ण आसनपर विराजमान थे। उनके भाग्यशाली विशाल भालकी शुभ शोभाको उनके विमल नेत्रोंकी निर्मल ज्योतिको, उनके कमनीय मुखमण्डलकी उज्ज्वल कान्तिको और उनकी दिव्य देहकी दैवी दीप्तिको दूर हीसे देखकर, राजा महाशयके हृदयमें भक्तिका प्रभाव उमड़ पड़ा। वे प्रेम-रसमें गद्‌गद् हो गए। अति-निकट आकर श्री चरण-स्पर्श करते हुए उन्होंने निवेदन किया, "भगवन्! यह हमारे सौभाग्यकी शुभ सूचना है कि श्री महाराज यहाँ पधारे हैं आपके शुभ दर्शनोंसे सारा नगर कृतार्थ हो गया है।" महाराजने भी राजा महाशयको कुशल-मङ्गल और योग-क्षेम पूछा और कहा कि आप कोई प्रश्न पूछिये। उन्होंने जीव-ब्रह्मके विषयमें प्रश्न किया, जिसके उत्तरमें स्वामीजीने कहा कि जीवात्मासे ब्रह्म न्यारा है। फिर स्वामीजीने समझाया कि जैसे

आकाश सारे मन्दिरके भीतर बाहर परिपूर्ण है, परन्तु मन्दिर आकाशसे भिन्न ही बना रहता है, ऐसे ही परमात्मा जीवात्मामें रमा हुआ है, परन्तु जीव उससे न्यारेही रहते हैं । एक दिन राजाजीके साथ राज-पण्डित भी आये । वार्त्ता महीधर-भाष्यपर चल पड़ी । स्वामीजीने महीधर भाष्यका ऐसा खण्डन किया कि राजगुरुसे उसका कोई भी उत्तर न बन आया ।

महाराज धर्म्म-प्रचारसे भी बनेड़ा-वासियोंका मङ्गल साधित करनेमें तत्पर थे । उनके भाषणोंमें सैकड़ों जन आते थे । एक दिन चक्राङ्कितोंकी समालोचना करते हुए उन्होंने कहा कि यदि एक अङ्गके दग्ध करनेसे स्वर्ग मिलता है तो भड़भूंजेके भाड़में पड़कर भुनजानेसे तो तत्काल मुक्ति मिल जानी चाहिए ।

श्री स्वामीजीके सत्संगसे राजा महाशयने अलभ्य लाभ उपलब्ध किया । वेदपर उनका निश्चय पक्का हो गया । उनके दोनों राजकुमारोंको भी सेवामें बैठकर शुभ शिक्षा ग्रहण करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ । बनेड़ाके अधिवासियोंमें धर्म्म-मेघ बरसाकर श्री महाराज चित्तौड़को चल पड़े ।

कार्तिक सु० ५ सं० १९३८ को महाराज चित्तौड़में सुशोभित हुए और गम्भीरी नदीके तीरपर, रुण्डेश्वर महादेवके मन्दिरमें ठहरे । उन दिनों चित्तौड़में बड़ी चहल पहल थी । सर्व प्रिय, लाट रिपन महोदयकी वहाँ राज-सभा लगनेवाली थी । इसलिए उदयपुरके अन्तर्गत जितने भी राजे, और ठाकुर थे वे सब, अति सजधजसे वहाँ एकत्र हो रहे थे । मेवाड़ राज्यकी सारी शोभा, अतिशय तड़क-भड़ककी वेश-विभूषामें, वहाँ शोभायमान थी । श्रीयुत राणा सज्जनसिंहजी, अपने-स्वजन-समूह और कर्मचारीवर्ग-सहित वहाँ सुशोभित थे ।

स्वामीजीका सत्संग प्रतिदिन सायंकाल लगा करता । उसमें मेवाड़ राज्यके प्रायः सभी राजे जाते, श्रीदर्शनों और उपदेशोंसे लाभ उठाते । उनके उपदेशों-में श्रोताओंकी बड़ी भारी संख्या हुआ करती । कविराज श्यामदासजी स्वामीजीके अति प्रेमी भक्त थे । वे प्रतिदिन, श्री सत्संगमें जाते समय अपने साथ एक दक्षिणी शास्त्रीको भी लिवा ले जाते । छः सात दिवसतक शास्त्री-जीने महाराजसे 'पदार्थ छः हैं अथवा सात' के विषयपर बातचीत की ।

स्वामीजीने छः ही पदार्थोंकी सत्ता सिद्ध करते हुए, सप्तम पदार्थ, अभावका अति प्रबल प्रमाणोंसे खण्डन किया ।

स्वामीजीके सुगुण-सुमनोंकी शुभ सुगन्धि श्री राणा सज्जनसिंहजीतक भी पहुँच गई । उनकी निष्कलङ्क कीर्तिका मधुर कीर्त्तन उनके कानोंने भी आस्वादन किया । एकदिन, श्री राणाजीने कविराज फतेहकरणजी और एक राज-पण्डितको श्री स्वामीजीके पास, उनका गुण-ज्ञान और रहन-सहन आदि व्यवहार देखनेके लिए भेजा । उन दोनों व्यक्तियोंने वहाँसे लौटकर श्रीराणाजी-के सामने जगद्गुरुके गुणगण और गौरव गरिमाका भूरि-भूरि गायन किया । उसे सुनकर श्री राणाजीके हृदयमें श्रीदर्शनोंकी उत्कट इच्छा प्रगट हो आई । एक दिन, वे अपने प्रतिष्ठित राजों-सहित श्रीसेवामें आते समय बोले, "हम स्वामीजीके पास चुपचाप जाना चाहते हैं । उनके आगे हमारे नाम-ठामका निर्देश, दिग्दर्शन-रूपमें भी नहीं होना चाहिए । हम एक निःस्पृह सन्यासीसे अपना सम्मान कराना नहीं चाहते ।"

श्री-सेवामें पहुँचकर श्री राणाजीने परोपकार-परायण परमहंसजीको परमा-दरसे नम्र नमस्कार की और फिर वे पास पड़े पटड़ेपर बैठ गये । उस समय महाराजने राजधर्म्म और राजकर्तव्यकर्मका ऐसी उत्तमतासे वर्णन किया कि सबके मुखसे धन्य धन्यकी ध्वनि निकलने लगी । जैसे कोरे घड़ेमें पानीकी बूँद रच जाती है, चिट्टे दुपट्टे पर बसन्ती रँग बस जाता है और अयस्कान्त मणिसे संघर्षण पाकर लोहेमें आकर्षण समा जाता है, ऐसे ही, उपदेशका एक एक वचन महाराणाके महत्त्वपूर्ण मनमें घर करता चला गया । उनका हृदय अनुपम प्रभावसे परिपूर्ण हो गया ।

व्याख्यानकी समाप्तिपर श्रीमहाराजने शाहपुराधीशकी ओर नेत्रज्योति फिरा कुशल-क्षेम पूछा । फिर श्री महाराणाजीकी ओर निहार कर कहा, "आपका पहले तो साक्षात्कार कभी नहीं हुआ दीखता ।" एक बार तो शाहपुराधीश मौन रहे, परन्तु दूसरी बार पूछनेपर उन्होंने कहा, "आप, राणा श्री सज्जन, सिंहजी हैं ।" तब स्वामीजी आत्मिक अयस्कान्त-दृष्टिसे निहारते हुए, अपनी सुधा-समान वाणीसे बोले, "राणाजी ! श्रीमन्तका इस प्रकार चुपचाप आना और एक साधारण आसनपर बैठ जाना शोभा नहीं देता ।"

श्री राणाजीने अति नम्रतासे निवेदन किया—"भगवन् ! आप ऐसे सन्तोंके समीप साधारण अवस्थामें आने और साधारण आसनपर बैठने हीमें हम गृहस्थोंकी शोभा और सौभाग्य है। दूसरी सभाओं में तो हमें राजसी ठाठ,बाटसे जानाही पड़ता है, यदि सन्यासियोंके सत्संगमें भी, उसी बाहरकी बन ठनमें आये तो विशेषता ही क्या हुई? यही तो एक आसन है जहाँ, आकर शासन-कर्त्ता भी नम्रता सीखते हैं।"

श्री राणाजी उस दिनके सत्संगसे बड़े प्रभावित होकर राज-भवनमें लौटे। उन्होंने एक बार गाड़ी भेजकर महाराजको अपने भवनपर निमन्त्रित किया और उपदेश सुननेके अनन्तर, उदयपुरमें पदार्पण करनेकी प्रार्थना की। श्री महाराजने, मुम्बईसे लौटते समय, उदयपुरमें आनेका वचन दे दिया।

स्वामीजीके हृदयमें स्त्रियोंके लिए अतिशय सम्मान का भाव था। उन्होंने स्त्री-जातिके सम्बन्धमें कभी समालोचना तक नहीं की। सब आचार्य्योंमें एक स्वामी दयानन्द ही ऐसे हैं जिन्होंने स्त्रियोंके गौरवको बढ़ाया है। उनके लिए समान अधिकारोंकी घोषणा की है। उनसे पहले जितने भी अर्वाचीन आचार्य्य हुए हैं वे सब, एकस्वर होकर स्त्रियोंकी परतन्त्रताका पोषण करते हैं; उनको शूद्र-पद प्रदान करते हैं। स्त्री-जातिकी जितनी निन्दा वेदान्तके आचार्य्योंने की है, भूतलपर उतनी कदाचित् ही किसी दूसरेने की होगी!

स्वामी दयानन्दजी स्त्री-जातिकी पूर्ण स्वतन्त्रताके पक्के पक्षपाती थे। वे उनको द्विज-पद प्रदान कर गये हैं। शास्त्राधिकार दे गये हैं।

उनके किसी ग्रन्थमें भी महिला-मण्डलके महत्त्वको बट्टा लगानेवाला, कोई वचन नहीं मिलता। उस महामुनिके विमल मनमें मातृमण्डलका कितना महत्त्व भरा हुआ था उसका पूर्ण प्रकाश इस कथासे होता है:—

एक दिन स्वामीजी व्याख्यानके अनन्तर कई राजों और पण्डितोंसहित भ्रमण करने जा रहे थे। मूर्ति पूजापर युक्तियाँ प्रयुक्तियाँ चल रही थीं। आगे ग्रामीण लोगोंका एक देवालय आ गया। उस समय वहाँ बहुतसे छोटे छोटे बच्चे मिल-जुलकर स्वच्छन्दता पूर्वक खेल कूद रहे थे। स्वामीजीने वहाँ एकाएक सिर नीचा कर दिया और फिर आगे चल पड़े। एक साथी पण्डितने कहा—"स्वामीजी! प्रतिमापूजनका खण्डन चाहे जितना करो, पर

देव-बलका भी प्रत्यक्ष प्रभाव है कि देवालयके सामने, आपका मस्तक आप-ही-आप नीचा हो गया। महाराज यह सुनते ही उन्हीं पाँवपर खड़े हो गये और उन बालकोंमें खेलती हुई एक चतुर्वर्षीया, विगत-वस्त्रा, बालिकाकी ओर सङ्केत करके बोले—"देखते नहीं हो यह मातृ-शक्ति है, जिसने हम सबको जन्म प्रदान किया है!" ये शब्द सुनते ही सारी सङ्गतिपर सन्नाटा छा गया, सभी मूक हो गये। आसनपर लौट आनेतक, उन लोगोंके कानोंमें वही शब्द गूँजते रहे।

जीवनगिरी नामक एक संन्यासी वहाँ थोड़ी देरसे ठहरे हुए थे। स्वामीजीने उनको शास्त्रार्थ करनेके लिए आहूत किया, परन्तु कवि श्यामदासजीने बीचमें पड़कर गिरीजीको बचा दिया। जीवनगिरी स्वामीजीका सम्मान सहन न कर सका। वह रात दिन अपने चित्तको ईर्ष्याकी चितापर चढ़ा, अकारण ही कोयले समान काला बनाता रहा।

दूसरा सर्ग।

जिस दिन महाराजने प्रस्थान करना था उस दिन श्री राणाजीने बग्घी भेजकर महाराजको अपने भवनपर निमन्त्रित किया। उनको भक्ति-भावसे सम्मानित कर पाँचसौ रुपए भेंट किए और श्रीचरण छूकर प्रार्थना की—"भगवन्! उदयपुरमें यथा-सम्भव शीघ्र ही दर्शन दीजिएगा।"

महाराजने दो मास पर्यन्त चित्तौड़में निवास किया और फिर वे अति सम्मानसे विदा होकर मुम्बईको प्रस्थान कर गये।

इन्दौर-नरेश चिरकालसे श्रीदर्शनोंको चाहते थे और इन्दौर पधारनेकी प्रार्थना भी किया करते थे। परन्तु महाराज, जब मुम्बई जाते हुए, वहाँ उतरे तो दैवयोगसे वे कहीं अन्यत्र गये हुए थे। न्यायाधीश, श्रीनिवासजीने उनको बड़ी आव-भगतसे ठहराया और सेवा-शुश्रूषा की। एक सप्ताह पर्यन्त जनता-को अपने सत्संग-सुधासे सींचकर स्वामीजी पौष सुदी एकादशी १९३८ को मुम्बई नगरमें पधारे। उनका इस बारका आगमन स्थानिक समाजके वार्षिको-त्सवके उपलक्ष्यमें था। महाराजकी गाड़ी जिस समय रेलवे-स्टेशनपर पहुँची

उस समय श्रीमान् अल्काट महाशय, आर्य्यसमाजके सभासदों-सहित, वहाँ उपस्थित थे। जब वे गाड़ीसे उतरे तो सब नम्रतासे नमस्ते कहकर उन्हें मिले। महाराजने भी अपनी मधुवर्षिणी वाणीसे अनुपम प्रेम प्रदर्शित करते, सब सज्जनोंको क्रमशः कल्याण पूछा। तत्पश्चात् गाड़ीमें बैठकर वालुकेश्वरपर गो-शाला नामके स्थानमें निवास किया। वह स्थान समुद्रके तटपर अति रमणीय है। सागरके उत्ताल तरङ्ग उसके साथ आकर टकराते हैं। यहाँ रहकर स्वामीजीने विशेषतासे लिखनेका कार्य्य किया।

मुम्बईके नागरिक भवनमें पादरी यूसफ महाशयने माघ ब० १३ सं० १९३८ को एक व्याख्यान दिया। व्याख्यानका विषय था—'ईसाई धर्म्मही एक नारायणी धर्म्म है और सारे संसारपर इसीका विस्तार होगा।''

स्वामीजीने माघ ब० १४ को उक्त पादरी महाशयको एक पत्र लिखा, "आपने जो अपने व्याख्यानमें ईसाई मतको नारायणी धर्म्म और सारे भू-मण्डलपर फैलनेवाला बताया है, यह सर्वथा असत्य है, यदि आप अपनी प्रतिज्ञाको सिद्ध करनेके लिए समुद्यत हैं और यह नहीं चाहते कि यहाँके लोग बिना प्रमाण ही आपके कथनको मान लें तो मैं अति प्रसन्नतासे आपके साथ संवाद करनेके लिए कटिबद्ध हूं। आगामी आदित्यवार, सायंके पाँच बजेका समय, फ्रामजी काऊसजी इन्स्टीट्यूटका स्थान मैं व्याख्यानके लिए नियत करता हूं। आपको यह रुचिकर न हो तो कोई दूसरा स्थान नियत कर लीजिए।

आप और मैं दोनों एक दूसरेकी भाषासे अनभिज्ञ हैं, इस लिए यह आवश्यक है कि दोनोंके उत्तर और प्रत्युत्तरका अनुवाद करके सर्वसाधारणको सुना दिया जाय। सारा संवाद लेख-बद्ध हो। उसपर हम दोनोंके हस्ताक्षर हों, यह सम्वाद सभ्य-सभामें होना उचित है। इस सम्वादको अन्तमें मुद्रित कराकर प्रकाशित किया जाय, जिससे लोगोंको ज्ञान हो कि कौनसा धर्म्म परमेश्वर-प्रदत्त है।"

महाराजने इस पत्रका अनुवाद अल्काट महाशयसे कराकर भेजा।

पादरी महाशयने उत्तरमें लिख दिया कि संवाद करना मुझे स्वीकार नहीं है। तत्पश्चात् नियत तिथिपर महाराजने ईसाई मत-खण्डनपर व्याख्यान दिया।

उसमें उन्होंने अति मनोरञ्जक समालोचना की। उनका व्याख्यान समाप्त होते ही अल्काट महाशयने भी ईसाई धर्मपर युक्तियुक्त आक्षेप किये।

मुम्बई—आर्य्य समाजका उत्सव बड़े उत्साहसे मनाया गया। उसमें एक दाक्षिणी पण्डितका वेद-गान लोगोंके लिए अतीव चित्ताकर्षक सिद्ध हुआ। उत्सवपर महाराजके अमृतोपदेश भी अपूर्व प्रभाव उत्पन्न करनेवाले थे।

उस उत्सवमें दानापुरसे श्री जनकधारी लालजी आदि, कई सज्जन श्री-दर्शनोंको वहाँ आये। महाराजके मङ्गल मिलाप और मधुमय मनोहर वार्त्तालापसे उनको अति प्रसन्नता प्राप्त हुई। स्वामीजीने उनको कहा, "दानापुरसे चलते समय आपकी यह कामना थी कि वहाँ चलकर अमुक अमुक प्रश्न पूछेंगे। सो इस समय अवकाश है जो कुछ पूछना हो पूछ लीजिए।" वे बड़ा आश्चर्य करने लगे कि स्वामीजीने हमारी मनःकामना तकको जान लिया है।

श्री जनकधारी लाल, महाराजकी कोठीसे बाहर बैठकर अपने पूर्व चिन्तित कठिन प्रश्नोंको, स्वामीजीसे पूछनेके लिए लेखबद्ध करने लगे। वे ज्यों ही पत्रपर कोई प्रश्न लिखते थे त्यों ही उनका प्रबल उत्तर, उनके भीतर प्रकाशित हो जाता था। इसप्रकार उन्होंने सब प्रश्नोंको एक एक करके लिखा और उत्तर सूझनेपर उनको काट डाला। इस काट-छाँटसे प्रश्न तो उनके पास कोई न रहा, परन्तु उनके आश्चर्य्यका कोई ठौर ठिकाना न था। वे सोचते थे कि जिन युक्तियोंको हम वज्र-शिलाके सदृश समझते थे वे आज, रूईके फहेकी भाँति, आप ही आप उड़ी चली जा रही हैं। मानो कोई अपूर्व तार्किक, हमारे अन्तःकरणमें आसन लगाकर, उत्तर दे रहा है। इतनेमें स्वामीजी बाहर आ गये और हँसकर बोले—"कहिये, प्रश्न लिख लिये?" जनकधारी लालजीने विनय की कि और तो कुछ पूछने योग्य रहा ही नहीं, अब केवल ईश्वरोपासनाकी विधि बताइए। महाराजने कहा "उपासनाकी विधि तो हमने आपको दानापुरहीमें बताई थी। प्रतीत होता है आप उसके अनुसार नहीं करते हो।"

जनकधारी लालजीने प्राणायाम करके दिखाया। उसको देखकर उन्होंने कहा, "आप प्राणायाम यथाविधि नहीं करते। चाहिये तो यह कि जब

प्राणको भीतरसे बाहर निकाला जाय तो उस समय मूलाधार चक्रमें आकर्षण उत्पन्न किया जाय। उसमें रहनेवाली वायुको ऊपर उठाया जाय। सो वह आपसे बन नहीं पड़ता, इस लिए साधारण रीतिसे प्राणायाम किया करो।"

जनकधारी लालजीने फिर पूछा, "चंचल मन इधर उधर भाग जाता है। इसे कैसे ठहराया जाय और किस रूपमें कहाँ ठहराया जाय ?"

स्वामीजीने कहा, "मूलाधारसे ब्रह्म-रन्ध्रतक, जिस चक्रमें आपका चित्त स्थिर हो सके उसीमें ठहरा लो, रूपकी, अभ्यासमें कोई भी आवश्यकता नहीं है। यदि चित्त किसी प्रकार भी स्थिर न हो तो मूलाधारसे ब्रह्मरन्ध्र पर्य्यन्त, प्रत्येक चक्रमें चमकते हुए मनकोंकी धारणा करो। उनके साथ ओम्का जप ध्यानसे करो। अथवा त्रिकुटीमें, सुईकी नोकके समान बिन्दुकी कल्पना करके उसमें धारणा-पूर्वक ओम्का ध्यान करो। ज्यों ज्यों आपकी धारणा दृढ़ होती जाय त्यों त्यों उस तिलके खण्ड करते जाओ। यहाँतक कि अन्तमें बिन्दुके बिना ही आपकी धारणा ध्रुवताको धारण करले।"

श्री जनकधारी लालजीके एक साथीने भी प्रार्थना की कि भगवन्! मुझे भी उपासनाकी पद्धतिका उपदेश दीजिए। महाराजने उसके मुखपर अपने नेत्रोंकी ज्वलन्त ज्योतिको डालकर कहा कि आप अभी यम-नियमकाही पालन कीजिए। उसने तीन बार यही प्रश्न पूछा और महाराजने भी तीनों बार उसे यम नियमका निभाना ही बताया।

वह भद्र पुरुष, कुछ खिन्न और उदास होकर, कोठरीसे बाहर निकल आया। जब उसके साथी भी उसे आ मिले तो वह उनको उलाहना देकर बोला कि इतनी दूरसे यहाँ आये, परन्तु प्राप्त कानी कौड़ी भी न हुई! इस पर उसके सङ्गियोंने उसे समझाया कि स्वामीजी तो मनुष्योंके मनोंके गुप्त भेदोंको भी जान जाते हैं। वे यदि आपको यमनियम न बताते तो आप ही बतायें और क्या कहते ?

उस समय उस भद्र पुरुषको भी अपने किए दुष्कर्मका ध्यान आ गया। वह मन-ही-मन कहने लगा कि जब, मैं दायभागके एक बड़े भारी झगड़ेमें झूठी साक्षी देकर आया हूं और यहाँसे जाकर भी उसीमें मिथ्या-कथन करूँगा

तो महाराजने मुझे ठीक ही उपदेश दिया है। इससे अधिकका अधिकारी, मैं हूँ ही नहीं।

एक सज्जनने स्वामीजीसे निवेदन किया, 'भगवन्! पातञ्जल शास्त्रका विभूति-पाद क्या सच्चा है।

उन्होंने कृपा की, "आप यों ही सन्देह करते हैं। योग-शास्त्र तो अक्षरशः सत्य है। वह कोई पुराणोंकी सी कल्पना नहीं है, किन्तु क्रियात्मक और अनुभव-सिद्ध शास्त्र है। दूसरी विद्याओंमें उत्तीर्ण होनेके लिए, आप लोग कई वर्ष व्यय करते हैं। इसके लिए यदि आप तीन मासतक मेरे पास निवास करें और मेरे कथनानुकूल योग-क्रियायें साधें तो आप, इस शास्त्रकी सिद्धि-योंका साक्षात्, स्वयं कर लेंगे।"

एक भक्तने विनय की, "आप योगादिके परम गोपनीय, गहन और गुप्त भेदोंको जिस किसीके सामने वर्णन कर देते हैं, यह उचित प्रतीत नहीं होता। अनधिकारियोंको उपदेश देना ऐसा है जैसे सूयरोंके सम्मुख मोती बखेरना।"
महाराजने उत्तर दिया—"भद्र! ऐसे बड़े समारोहमें कोई न कोई हंस भी आ जाया करता है। परन्तु यदि, परम देवकी दया हो तो सूयर भी हंस बन सकते हैं।"

श्रीकृष्णपर बात चली तो महाराजने कहा कि वे एक महाज्ञानी महापुरुष और योगिराज थे। स्वामीजी प्रसङ्गमें भगवद्गीताके श्लोक भी सुनाया करते थे।

स्वामीजीने, आर्य्य जातिका संस्कार करते हुए, शूद्रोंपर पूरा ध्यान दिया है। उन्होंने उनको वेद-शास्त्र पठन-पाठनका पूर्णाधिकार दिया है। वे उनकी समुन्नतिके पूरे पोषक हैं। शूद्रोंका वेदाध्ययनका विधान करते हुए वे लिखते हैं; "क्या ईश्वर पक्षपाती है जो शूद्रोंके लिए तो वेदाध्ययनका निषेध और द्विजोंके लिए उसका विधान करे? यदि ईश्वर शूद्रोंको पढ़ाना-सुनाना न चाहता तो उनके शरीरमें वाक् और कर्णेन्द्रिय ही न रचता। उसने जिस प्रकार पृथ्वी जल, अग्नि, वायु, चन्द्र, सूर्य्य और अन्नादि पदार्थ सबके लिए बनाये हैं वैसे ही वेदोंका प्रकाश भी मनुष्य-मात्रके लिए किया है।"

शूद्रोंके उद्धार और बचानेकी चिन्ता भी उनके चितमें बड़ी गहरी थी। एक दिन, एक मनुष्य महाराजके पास आया। उन्होंने उससे पूछा, "आप कौन हैं ? क्या काम करते हैं ? क्या कुछ संस्कृत भी जानते हैं ?"

उसने उत्तर दिया—'भगवन् ! मैं ब्राह्मण हूँ। अब काम-धन्धा तो कुछ नहीं करता; केवल पेन्शनपर निर्वाह होता है। संस्कृत तो नहीं आती, परन्तु कुछ कर्म्म-काण्डके श्लोक कण्ठाग्र किये हुए हैं।"

स्वामीजीने उसको कहा, "आप उपदेशका कार्य्य करने लग जाइए।" उसने विनयकी कि, "रातदिन बाल-बच्चोंकी चिन्ता और सोचमें लीन रहता हूँ। ऐसी अवस्थामें उपदेशका काम कैसे किया जा सकता है ?"

स्वामीजीने कहा, "आपको पेन्शन मिलती है। उसमें पुत्र-पौत्रका परिपालन भली भाँति हो सकता है। आप ब्राह्मण-वंशीय हैं। आपके पुरातन पुरुष, पूर्व्वकालमें जगद्गुरु समझे जाते थे। वे जगदुपकारमें जी-जीवनसे लगे रहते थे। आपके लिए भी उनके चरण-चिन्होंपर चलना उचित है। अपने पूर्वजोंकी भाँति परोपकारका व्रत धारण कीजिए और कटि बाँधकर भीलोंकी बस्तियोंमें चले जाइए। वे दिनों दिन, धड़ाधड़ ईसाई होते चले जा रहे हैं। उनको अपनी इच्छानुकूल ईश्वर-भक्तिका उपदेश देकर, किसी प्रकार ईसाइयोंके पँजेसे बचाइए। आर्य्य जातिके छिलते हुए तलुओंकी, टूटती हुई उंगुलियोंकी और कटते हुए पाँवकी रक्षा कीजिए।" पर उस ब्राह्मणके ऐसे भाग्य न थे, जो श्री-वचनोंको स्वीकार करता।

महाराजके उपदेशोंसे वहाँके आर्य्य पुरुषोंमें उत्साहकी मात्रा उत्कर्षको पहुँच गई। उन्होंने आर्य्य धर्म्म-मन्दिर आदि निर्माण करनेके लिए गिरगाँवमें भूमि मोल ले ली। वहाँ एक विशाल भवन बनानेका उद्योग होने लगा। यद्यपि स्वामीजी किसीसे सहायताकी याचना नहीं करते थे, परन्तु उनकी सन्निधि-मात्रासे ही लोग बड़ी उदारता दिखाते थे।

महाराज, भावना और शक्तिके अनुसार दानादिका करना बताया करते। उत्तेजित होकर उतावलीसे किसी कार्य्यको कर बैठना और पीछे पछताने लग जाना, वे अच्छा नहीं समझते थे। वे कहा करते थे कि दान उतना दो, जिससे

तुम्हें भीख न माँगनी पड़े। कार्य्य-क्षेत्रमें उतना चलो, जिससे जी हार न जाय और पाँव पीछे लौटानेकी आवश्यकता न हो।

मुम्बईमें, आर्य्य समाज-मन्दिरके निर्माणके लिए एक निधि खोला गया। लोग यथाशक्ति उसमें दान देते थे। उन्हीं दिनोंमें एक मारवाड़ी सज्जन श्री स्वामीजीके निकट आया और नम्रतासे कहने लगा, "भगवन्! मेरे पास दस सहस्र रुपय हैं। वह सारा द्रव्य मैं आर्य्य समाज-मन्दिरके कोशमें समर्पित करता हूँ। कृपया यह तुच्छ भेंट स्वीकार कीजिए।"

भगवान्‌ने भक्तकी भावनाकी भूरि भूरि प्रशंसा करते हुए कहा—मैं अतीव प्रसन्न हूँ कि आपके हृदयमें आर्य्य धर्म्मका इतना अगाध प्रेम है। परन्तु मैं आपकी सम्पूर्ण पूँजी लेकर आपके परिवारको परमुखापेक्षी, परान्नपरायण भिक्षु नहीं बनाना चाहता। जिस धर्म्मके अङ्गको पालन करते पहला धर्म्माङ्ग बिगड़ जाय वह धर्म्म ठीक नहीं है। उस मन्दिरकी क्या शोभा होगी जिसके बननेमें आपका व्यापार बन्द हो जाय! आपकी गृहस्थ-यात्रा न चल सके। हाँ, आपसे एक सहस्र रुपया लिया जा सकता है।"

महाराजका जीवन, उद्योग और पुरुषार्थका जीवन था। उनके पास आलस्य का अंश तक न दिखाई देता। उनके सेवक भी आलसी, निरुद्यमी, निरे लोथसे पड़े, भूभार-रूप न थे। प्रत्येक कर्म्मचारी कुछ न कुछ कार्य्य करता ही दीख पड़ता था। स्वामीजी उपदेश दिया करते, जैसे देव-यज्ञके अनन्तर, देवोंका दिया भोग भोगनेमें पुण्य है ऐसे ही मनुष्योंका उपकार करके उनका दिया भोगनेका अधिकार है। यदि किसीका अन्नादि ग्रहण करने लगो तो पहले मनमें सोचो कि इसे लेनेका मुझे कोई अधिकार भी है? और दानियोंके लिए मैं क्या कर रहा हूँ। व्यर्थमें पर-पुरुषार्थजीवी बनना पाप है।"

एक दिनका वर्णन है कि अँगरेजीका विद्वान्, एक पंजाबी स्वामीजी के दर्शनार्थ मुम्बईमें आया। महाराजके आदेशानुसार उसके खान-पान और निवासका उत्तम और उचित प्रबन्ध, उनके डेरेपर ही कर दिया गया। कई दिनोंतक, वह महाशय सुख-पूर्वक वहाँ रहा। उसका दैनिक काम, छड़ी घुमाते नगरमें चक्कर लगाना अथवा थककर खाटपर पड़े खर्राटे लेना ही था! एक दिन महाराजने उसको आमन्त्रित किया और कहा—"भद्र! जो पदार्थ जितना

अधिक उपयोगी है उतना ही अधिक अच्छा है। मनुष्य भी उतना ही अधिक अच्छा है, जितना वह उपयोगी हो। अब आप सोचिए, कि व्यर्थमें समय खोकर आप कितनी उपयोगिता नष्ट कर रहे हैं। देखिए, मैं भी परान्न-भोजी हूँ, परन्तु प्रातःसे सायंपर्यन्त परार्थ कार्य्य करता हूँ। आलसी और निष्क्रिय होकर, किसीकी कमाईपर ताकते रहना, मेरे सिद्धान्तके सर्वथा विरुद्ध है। परमात्माने पुरुषार्थके लिए प्रत्येकको पर्याप्त साधन दिये हैं। उन्हींके आधारपर प्राण-यात्राका चलाना उचित है। आप भी मेरे मतके अनुयायी बन जाइए। इस कर्म-भूमिमें कर्म-योगको प्रधान मानिए। जबतक आपका निवास इस नगरमें रहे मुझे अँगरेजी समाचारपत्र सुनाया कीजिए।"

उस भद्र पुरुषने उनके कथनको सिर आँखोंपर रख लिया और उसी दिनसे इस कार्य्यको करना आरम्भ कर दिया।

महामति रानाडे, भारतमें जातीय जीवनकी जोत जगानेवालोंमेंसे एक थे। वे भी स्वामीजीमें बड़ी श्रद्धा रखते थे। उनके दर्शनोंसे आनन्द लाभ किया करते थे। एक दिन वे महाराजके दर्शनार्थ आए तो स्वामीजी काममें लगे हुए थे। चिरकालतक उन्हें प्रतीक्षा करनी पड़ी। महाराजने जब अपना नियत कार्य समाप्त कर लिया। तब उनसे वार्त्तालाप करने लगे। स्वामीजीकी उदात्त नीतिमत्ताकी प्रशंसा, श्रीमान् रानडे सदा किया करते थे।

स्वामीजीको अथितियोंके सत्कारका बड़ा ध्यान रहता था। एक दिन, कोई वङ्गीय भद्र पुरुष उनके दर्शनोंको आया। वह महाराजके चरण छूकर बैठ गया और वार्त्तालाप करते, उसने पानी पीनेकी इच्छा प्रकट की। महाराजने अपने एक गुजराती शिष्यको आज्ञा की कि इनको जल पिलाइए। गुजरात देशके आर्य्य डाढ़ी नहीं रखते। उस सज्जनकी लम्बी डाढ़ी देखकर शिष्यने उसको मुसलमान समझा, इस लिए उसे दोनेमें पानी पिलाया। जब अतिथि उठकर चला गया तो उन्होंने उस शिष्यको बुलाकर झिड़का और कहा, "आप लोग अभी तक सभ्यताके साधारण नियम भी नहीं सीख पाये हैं। बताओ, आपने उसे गिलासमें जल क्यों नहीं दिया ?"

शिष्यने प्रार्थना की, "एक मुसलमानको अपने वर्तनमें पानी पिलाकर मैं वर्तनको भ्रष्ट कैसे कर लेता ?" महाराजने उसे कहा, "वैसे तो वह मुसल-

मान नहीं था प्रत्युत एक उपाधिधारी, बड़ा भारी आर्य्य भूमिहार था। किन्तु मेरे पास ईसाई, मुसलमान सभी लोग आते हैं। उनके आदरमें कदापि कोई त्रुटि नहीं होनी चाहिये। आगेको, चाहे जिस मतका मनुष्य हो, जब जल माँगे उसे ग्लासहीमें दिया करो।"

उन्हीं दिनों मुम्बईमें, पश्चिमके सुप्रसिद्ध पण्डित, मोनियर विलियम्स महाशय आये हुए थे। एक दिन उन्होंने भी श्री स्वामीजीका शुभ मिलाप प्राप्त किया। पहले संस्कृत भाषामें बातचीत आरम्भ हुई, परन्तु अतिथिको अनभ्यासके कारण संस्कृतमें वार्त्तालाप करना कठिन प्रतीत होता था। इस लिए महाराजने एक दुभाषिया बीचमें बैठा लिया। स्वामीजी तो संस्कृतहीमें बोलते थे और मोनियर विलियम्स महाशयकी इङ्गलिशका आर्य्यभाषामें अनुवाद करके, दुभाषिया स्वामीजीको समझाता था।

बड़े लम्बे कथनोपकथनके अनन्तर, मोनियर विलियम्स महाशयने, महाराजके मङ्गल मिलापके लिए अति प्रसन्नता प्रकट करते हुए, कहा, "आपके विचार परिमार्जित और अत्युच्च हैं। यूरोप-वासियोंमें भी इन विचारोंका प्रचार होना चाहिए। यदि आप उस महाद्वीपकी यात्रा करना स्वीकार करें तो मैं आपके व्यय आदिका भार अपने ऊपर लेता हूँ।"

स्वामीजीने अतिथिको उसकी इस उदारताके लिए धन्यवाद देकर कहा, "जिस भारत-भूखण्डमें मैं रहता हूँ वहाँ अविद्यान्धकार घोरतम रूप धारण किये बैठा है। इस देशके वासी दिन पर-दिन दुःखी और दरिद्र होते चले जाते हैं। यहाँके समाजमें कुरीतियोंका कोई भी पारावार नहीं है। ऐसे ही कारणोंसे इस देशका सुधार करना मैं अपना मुख्य कर्त्तव्य मानता हूँ।

दूसरे विदेश जानेके लिए वहाँकी भाषाका सीखना आवश्यक है। जितना समय विदेशकी भाषा सीखनेमें लगता है उसमें मैं यहीं अधिक कार्य्य कर सकूँगा। तीसरे, जिस देहके इतने लोग विरोधी हैं उसका भी अब अधिक भरोसा नहीं है। थोड़ेसे समयमें, यदि इससे इसी देशका कल्याण-कार्य बन सके तो बहुत अच्छा है।" तत्पश्चात् अतिथि महाशय बिदा होगये।

स्वामीजीके उत्तमोत्तम कार्योंमें गो-रक्षाका कार्य्य भी सम्मिलित है। गो-वधके विरुद्ध आर्य्य लोग घोर घृणाका प्रकाश तो किया ही करते थे, परन्तु

सभायें संगठित करके गो-रक्षा करनेका भाव, सबसे पहले श्री महाराजहीने जागृत किया। उनसे पूर्व किसी भी पुरुषको यह पद्धति नहीं सूझी थी।

गो-रक्षासे उनका तात्पर्य्य केवल यही न था कि अङ्गहीन, वृद्धा, जीर्ण-शीर्ण-शरीरा, आसन्न-मरणा अस्थि-पिंजरावशेषा, दो चार गायें पिंजरापोलमें बँद करके गो-रक्षाके ढोंगका ढोल बजाया जाय, और दूध देनेवाली गायें और बोझा ढोनेवाले बैल अधिकाधिक हनन होते रहें। उन्होंने अपने सङ्गठनका नाम 'गो-रक्षण और कृषि-सुधार' रक्खा था। जबतक युवावस्थाकी गायें और बैल वधसे न बचाये जायँ तबतक गो-रक्षणका कोई लाभ ही नहीं है। उनका बचाव केवल कृषि-सुधारसे ही हो सकता है। महाराजकी कुशाग्र बुद्धिने यह बात जान ली थी कि वास्तवमें गो-रक्षा तभी होगी, जब सभायें गो-जातिमात्रकी रक्षा करेंगी। किसानोंको खेत जोतनेके लिए, रहट चलानेके लिए, चरसा खींचनेके लिए, खलिहानसे अन्न और भूसा ढोनेके लिए तथा अन्यान्य कार्य्योंके लिए कृषि-प्रधान देशोंमें बैलोंकी अत्यावश्यकता है। नगरोंमें अच्छे दूधका प्रबन्ध करनेके लिए सहस्रों गायें पाली जानी चाहिएँ। कृषकोंको और नागरोंको अच्छी गो-सन्तान प्रदान करने हीसे गो-रक्षा हो सकती है।

महाराजने गो-रक्षापर सैकड़ों व्याख्यान दिये। सहस्रों मुसलमानों और ईसाइयोंको गायकी उपयोगिता निश्चित कराई। गो-करुणा-निधि नामकी एक युक्तियुक्त पुस्तक प्रकाशित की। और अन्तमें, सकल गोरक्षकोंको एकवाक् बनाकर महाराणीके पास पुकार पहुँचानेके लिए कटिबद्ध हो गये। महाराजका निश्चय था कि गो-वध बँद करानेके लिए, यदि सभी सज्जन अपने हस्ताक्षर भेजें तो सर्व-प्रिय लार्ड रिपन महोदयके शासन-समयमें राजेश्वरीका गो-हत्या बँद कर देनेकी आज्ञा प्रचलित कर देना बहुतही सम्भव है। इसलिए उन्होंने लोगोंके हस्ताक्षर करानेके लिए भारतभरमें पत्र भेजे और गो-रक्षाकी उपयोगितापर निम्न लिखित प्रभावशाली लेख प्रकाशित किया:—

"ओम्। जगतमें ऐसा कौन मनुष्य है जो सुख-प्राप्तिमें प्रसन्न और दुःखकी प्राप्तिमें दुःखित न होता हो। जैसे अपने ऊपर यदि कोई उपकार करे तो आनन्द होता है, इसीप्रकार दूसरोंका उपकार करनेपर आनन्दित होना चाहिए। क्या भूगोलभरमें कभी कोई मनुष्य ऐसा था, अब है, अथवा आगे-

को होगा जो परोपकार-रूप धर्म्म और पर-हानि-रूप अधर्म्मके विना धर्म्मा-धर्म्मका कोई अन्य स्वरूप सिद्ध कर सके।

वे महाशय जन धन्य हैं जो अपने तन, मन और धनसे संसारका अधिक उपकार साधित करते हैं। वे लोग निन्दनीय हैं जो अपनी अज्ञानतासे स्वार्थ-वश होकर अपने तन, मन और धनसे जगमें पर-हानि करके बड़े लाभका नाश करते हैं। सृष्टि-क्रमसे यही सुनिश्चित होता है कि परमात्माके रचे सकल पदार्थ पूर्ण उपकार लेनेके लिए ही हैं। अल्प लाभके कारण महाहानि कर बैठना सृष्टि-क्रमके प्रतिकूल है।

विश्वभरमें जीवनके मूल दो ही पदार्थ हैं—एक अन्न और दूसरा पान। मनुष्योंको खान-पान पुष्कल प्राप्त हो, इस अभिप्रायसे आर्यावर्त्तके शिरोमणि राजे महाराजे और प्रजा के लोग महोपकारक गाय आदि पशुओंका न तो आप वध करते और न ही किसी दूसरेको करने देते थे। अबतक भी वे गाय बैल और भैंसका हनन नहीं होने देते। इनकी रक्षासे अन्न-पानकी बहुत ही वृद्धि होती है, जिससे सर्वसाधारणका सुखपूर्वक निर्वाह हो सकता है।

राजा-प्रजाकी जितनी हानि इनकी हत्यासे होती है उतनी किसी भी दूसरे कर्मसे नहीं हो सकती। एक गायके बधसे चार लाख और एक भैंसके वधसे बीस सहस्र मनुष्योंकी हानि होती है—इसका निर्णय हमने 'गो—करुणानिधि' नामक पुस्तकमें अति विस्तारसे किया है। इस लिए हमसब मिलकर प्रजा हितैषिणी श्रीमती राजराजेश्वरी महाराणी विक्टोरियाकी सेवामें प्रार्थना करें और उनकी न्याय-पद्धतिमें, जो गो-हत्या रूप अन्याय हो रहा है उसे बन्द कराकर प्रसन्नता लाभ करें।

इस बातका हमें पूर्ण निश्चय है कि विद्या, धर्म्म और प्रजा-हित-प्रिया श्रीमती राजेश्वरी महाराणी विक्टोरिया, शासक सभा और सर्वप्रिय राजप्रतिनिधि महोदय इस हानिकारक गाय-बैल और भैंसके हननको उत्साह और प्रसन्नता-पूर्वक शीघ्र ही बन्द कर देनेसे हम सबको आनन्दित करेंगे। देखिए तो सही, अनेक गुणयुक्त गाय आदि पशुओंके वधसे दूध-घी कितने महँगे हो गये हैं। किसानोंकी कितनी बड़ी हानि हो रही है, जिसका फल राजा-प्रजा सभी भोग रहे हैं। नित्यप्रति हानिकी मात्रा बढ़ती ही चली जाती है। जब

कोई मनुष्य पक्षपातको छोड़कर देखता है तो परोपकारहीको धर्म्म और पर हानिहीको अधर्म्म जानता है। क्या यह विद्याका सिद्धान्त और फल नहीं है कि जिससे अधिकांश मनुष्योंका अधिक उपकार हो उसका नाश कभी नहीं करना चाहिए, किन्तु उसका पालन और वर्धन करना ही आवश्यक है।

परम दयालु, न्यायकारी, सर्वान्तर्यामी, सर्वशक्तिमान् परमात्मा इस जगदुपकारक कामके करनेमें समस्त राजा-प्रजाकी एक-सम्मति करे। हस्ताक्षरका—

विज्ञापन—सब आर्य्य सज्जनोंको विदित किया जाता है कि जिस पत्रके ऊपर 'ओ३म्' और नीचे 'हस्ताक्षर' ऐसा लिखा छपा है वही सही करनेका पत्र है। उसीपर हस्ताक्षर करना चाहिए। हस्ताक्षर इस प्रकार करने उचित हैं कि जिस राज्य अथवा देशमें ब्राह्मणादि वंशोंकी जितनी संख्या हो वह लिखकर फिर लिखना चाहिए कि मैं अमुक पुरुष इतने सौ, सहस्र, लाख अथवा करोड़ मनुष्योंकी ओरसे सही करता हूँ। प्रधान महाशयकी सही पर ही सारे सभासदोंकी सही समझी जायगी। परन्तु जितने मनुष्योंकी ओरसे एक मुख्य पुरुष सही करे उसे चाहिए कि उनकी सही लेकर अपने पास रख ले।

जो जो मुसलमान ईसाई इस महोपकारक विषयमें अपनी सहीसे सहायता करना चाहें वे हस्ताक्षर कर सकते हैं। मुझे दृढ़ विश्वास है कि आप परमोदार महात्माओंके पुरुषार्थ, उत्साह और प्रेमसे यह महोपकारक महापुण्य और कीर्ति-प्रदायक कार्य्य यथावत् सिद्ध हो जायगा।"

मुम्बई चैत कृष्णा नवमी १९३८।

दयानन्द सरस्वती।"

महाराजने उन दिनोंमें गो-रक्षाके विषयमें बड़े बलसे कार्य आरम्भ किया था। स्थान-स्थानपर पत्र भेजकर हस्ताक्षरोंके लिए प्रेरणा की थी।

मुम्बई, वासहीमें स्वामीजीने आर्य्य समाज और थियोसोफीकल सोसायटीके सङ्ग-भङ्गकी अन्तिम घोषणा कर दी।

तीसरा सर्ग ।

स्वामीजीके पास गुजरात—काठियावाड़ और आगरा—अवध आदि प्रान्तोंसे निमन्त्रण-पत्र लगातार आते थे परन्तु उन्होंने देशीय शासकोंको सुधारनेके विचारसे राजस्थानको प्रस्थान कर दिया। आषाढ़ सु० ६ सं० १९३९ को मुम्बईसे चलकर वे ८ को खण्डवा पहुंचे। फिर इन्दौर रतलाम और जावरा आदि नगरोंमें धर्म्मोपदेश करते हुए श्रावण सु० ९ सं० १९३९ को चित्तौड़में सुशोभित हुए। महाराजके वहाँ पहुँचनेसे पहले ही मेवाड़ राज्यकी ओरसे उनके निवासका पूर्ण प्रबन्ध हो गया था। ठाकुर जगन्नाथजी उस समय चित्तोड़में उच्च राज-कर्म्मचारी थे। उन्होंने अति भक्ति-भावसे महाराजकी सेवा शुश्रूषा की। स्वामीजीने दो सप्ताहपर्यन्त चित्तोड़में निवास किया।

द्वितीय श्रावण ब० १२ को चित्तौड़से चलकर महाराज १३ को उदयपुरमें पधारे। वहाँ वे नो-लखा उद्यानमें, एक सुन्दर धवलराज मन्दिरमें—विराजमान हुए। उस समय उनके साथ रामानन्द ब्रह्मचारी, स्वामी आत्मानन्दजी और पण्डित भीमसेनजी थे। दो एक सेवक भी थे। जिस दिन महाराजने अपने चरण-स्पर्शसे उदयपुरको शोभा प्रदान की उसी दिन श्रीराणाजी मन्त्रिमण्डल और पुरोहितों-सहित श्रीदर्शनोंको आये। पुरातन आर्य्य राजाओंकी भाँति, राणा श्रीसज्जनसिंहजी आगे आगे पैदल चलते थे और उनके पीछे सैकड़ों लोगोंकी भीड़ चली आती थी। स्वामीजीके समीप जाकर श्रीराणाजीने अति नम्र नमस्कार की और कुशल प्रश्नानन्तर यथायोग्य आसनपर बैठ गए। कुछ कालतक वार्त्तालाप करनेके पश्चात् राणाजी आज्ञा लेकर चले आए।

स्वामीजी प्रातःकाल उठकर गोवर्द्धन-विलास पर्वतपर भ्रमण करने जाया करते थे। परन्तु कुछ दिनोंके पश्चात्, राणाजी सवेरे ही श्रीसेवामें उपस्थित होने लग गये। इस लिए फिर गुलाब उद्यानमें ही पर्याप्त भ्रमण कर लेते।

उदयपुरमें पधारनेके एक मास पश्चात्, मौलवी अब्दुर्रहमानने स्वामीजीसे प्रश्नोत्तर किये वे प्रश्नोत्तर लिखे भी जाते थे। वे नीचे दिये जाते हैं—

"ऐसा कौनसा धर्म्म है जिसकी धर्म्म-पुस्तक सब मनुष्योंकी बोल-चाल और प्राकृत नियमोंको सिद्ध करनेमें प्रबल हो! जितने मत मिलते हैं वे भिन्न

भिन्न देशोंकी भाषाओंमें, भिन्न भिन्न नियमोंसे ऐसे बने हैं कि एक दूसरेसे मेल नहीं रखते। जहाँ जो मत उत्पन्न हुआ है उसके सारे गुण वहींतक सीमाबद्ध हैं। मतोंमें एक दूसरेसे ऐसे भिन्न चिन्ह पाये जाते हैं कि जिन्हें दूसरे देखना भी अच्छा नहीं समझते। ऐसी अवस्थामें सच्चा धर्म्म कौनसा है ?" "मत-सम्बन्धी सारी पुस्तकें हठधर्मीसे भरी पड़ी हैं। इस लिए उनमें विश्वासके योग्य एक भी पुस्तक नहीं है। मेरी सम्मतिमें जो पुस्तक ज्ञान सम्बन्धी है वही सत्य है। उसमें पक्षपात नहीं हो सकता। ऐसी ही पुस्तकका सृष्टि-क्रमके अनुकूल होना सम्भव है। मेरे आजतकके अन्वेषणमें वेद ही ऐसी पुस्तक है। वह किसी एक देशकी भाषामें नहीं है। वह ज्ञानमय है और उसकी भाषा भी ज्ञान-भाषा है। इस लिए वेदपर ही निश्चय लाना चाहिए"। "क्या वेद मतकी पुस्तक नहीं है ?" "नहीं, वह ज्ञानकी पुस्तक है"। "मतका आप क्या अर्थ करते हैं ?"। "पक्षपातयुक्त मन्तव्योंके समुदायको मत कहते हैं"। "हमारे पूछनेके अभिप्रायका उत्तर आपने वेद बताया है, सो क्या वेदमें वे सब गुण पाये जाते हैं ?" "हाँ, पाये जाते हैं"। "आपने कहा कि वेद किसी देशकी भाषामें नहीं है। जो भाषा किसी भी देशकी नहीं है वह सब भाषाओंपर कैसे प्रबल हो सकती है ?"। "जो देश विशेषकी भाषा होती है वह व्यापक नहीं हो सकती"। "जब वह भाषा किसी देशकी नहीं है तो वह सबपर प्रबल कैसे हो सकती है ?"। "जैसे आकाश किसी एक स्थानका नहीं है, परन्तु सर्वत्र व्यापक है ऐसे ही वेदोंकी भाषा देश-भाषा न होनेसे सब भाषाओंमें व्यापक है"। "यह भाषा किसकी है।?" "ज्ञानकी"। "इसका बोलनेवाला कौन है ?"। "इसका बोलनेवाला सर्वदर्शी परब्रह्म है"। "इसका सुननेवाला कौन है ?" "इसके सुननेवाले अग्नि आदि चार ऋषि सृष्टिके आदिमें हुए हैं। उन्होंने परमात्मासे सुनकर सब मनुष्योंको सुनाया है"। "ईश्वरने यह भाषा उन्हींको क्यों सुनाई ? क्या वे इस बोलीको जानते थे ?"। "वे चारों सर्वोत्तम थे। ईश्वर हीने उनको तत्काल भाषाका भी ज्ञान करा दिया था"। "आप इसमें क्या युक्ति देते हैं ?"। "कारणके विना कार्य्य नहीं होता यही युक्ति है और

ब्रह्मादि ऋषियोंकी साक्षी है"। "भूमण्डलभरके सारे मनुष्य क्या एक ही कुलके हैं ?" "भिन्न २ कुलोंके हैं। आदि सृष्टिमें उतने ही जीव मनुष्य-शरीर धारण करते हैं, जितने गर्भ-सृष्टिमें शरीर धारण करनेके योग्य होते हैं। वे जीव असंख्य होते हैं"। "इसपर कोई युक्ति दीजिए"। "अब भी सब अनेक मां-बापकी सन्तान हैं"। "जो आकृतियां मनुष्योंकी हैं उनके तन क्या एक ही प्रकारके बने थे!" "आदिमें मनुष्योंमें रङ्ग और लम्बाई चौड़ाई आदिका भेद अवश्य था"। 'सृष्टिकी उत्पत्ति कब हुई ?" "सृष्टिको उत्पन्न हुए एक अर्ब छयानवे करोड़ और कई लाख वर्ष बीत गये हैं"। "आप किसीमतके नियमोंका पालन करते हैं कि नहीं ?" "जो धर्म्म ज्ञानानुकूल है मैं उसके सारे नियमोंका पालन करता हूं"। "क्या उपादान कारण अनादि है ? आप कितने पदार्थोंको अनादि मानते हैं ?" "उपादान कारण अनादि है। जीवात्मा, परमात्मा और प्रकृति ये तीन पदार्थ अनादि हैं। इनका परस्पर संयोग-वियोग कर्म और कर्मोंका फल-भोग प्रवाहसे अनादि हैं"। "जो वस्तु हमारी बुद्धिकी सीमासे बाहर है हम उसे अनादि कैसे मान लें ?" "जो वस्तुयें नहीं हैं वे कभी भी नहीं हो सकतीं। जो हैं वे पहले भी थीं और आगेको भी बनी रहेंगी"। "वेद यदि ईश्वरका बनाया हुआ होता तो सूर्यादिकी भाँति सारे संसारके सब मनुष्योंको इससे लाभ पहुँचता"। "वेद पवित्र, सूर्यादि पदार्थोंकी तरह ही सबको लाभ पहुंचाता है। सारे धर्म्मोंके ग्रन्थों और विद्याकी पुस्तकोंका कारण वेद ही है। यह सबसे पहले है, इस लिए जितने शुभ विचार और ज्ञानकी वार्त्तायें दूसरे ग्रन्थोंमें पाई जाती हैं वे सब वेदसे ली गई हैं। हानिकारक कथायें उन ग्रन्थोंके कर्त्ताओंकी अपनी मन-घड़न्त हैं। वेदमें किसीका खण्डन-मण्डन नहीं पाया जाता, इस लिए वह पक्षपात-रहित है। जैसे सृष्टि-विद्यावाले सूर्यादिसे अधिक लाभ लेते हैं ऐसे ही वेदका अनुशीलन करनेवाले वेदसे अधिकाधिक उपकार प्राप्त करते हैं"।

एक दिन सवेरे, एक कषायाम्बर-धारी, विहारी ब्राह्मण दण्ड कमण्डलु लिये नौ-लखा उद्यानमें आ निकला। उसने दूरसे देखा कि कोई महात्मा पद्मासन रमाये ध्यानमें लीन हैं। वह और निकट आकर उन महामुनिजीकी

माधुरी और मनोहारिणी मूर्तिको एकटक, लालायित लोचनोंसे निहारने लगा। बाल सूर्य्यकी सुनहरी किरणें उनकी कुन्दनसमान, दीप्तिमान् देहपर पड़कर उसे और भी उद्दीप्त कर रही थीं। स्वर्ण-कलशकी भाँति, उनका मस्तक चमक रहा था। तप्त-ताम्रसमान, उनके दोनों हाथोंकी हथेलियाँ, मुद्रा-बद्ध दशामें, शोभा पा रही थीं। सूर्य्यकी तरुण किरणसे प्रकाशित उनके अरुणवर्ण नख, नवपल्लवसदृश, दहकते दिखाई देते थे। उदयकालके सूर्यके समान रक्तवर्ण, उनके दोनों होठोंपर एक नीरव, अनुपम, अनिर्वचनीय, आनन्दमयी मुस्कराहट खेल रही थी। आगन्तुक उस दैवी स्वरूपके दर्शनोंमें ऐसा निमग्न हुआ, ऐसा लीन हुआ कि चित्रवत् हो एक चित्तसे, उस देव-दुर्लभ दर्शनामृतको अतृप्त तृषासे पान करने लग गया। उसे ऐसा प्रतीत होता था कि इस सर्वाङ्गसुन्दर, सुवर्ण-प्रतिमाके चहुं ओर, प्रकाश-पुञ्जका एक चक्रसा बना हुआ है।

कोई एक मुहूर्त्तके पश्चात्, उस महापुरुषने अपनी चित्त-वृत्तिको समाधिकी उच्च भूमिसे नीचे उतारा और नेत्र खोलकर ओम् नामका बार बार सुरीले स्वरसे गायन किया। उसी समय आगन्तुकने उनके चरणोंपर अपना सिर रखकर नमस्कार की। दो चार बातोंहीसे अतिथिको ज्ञात हो गया कि यही भगवान् दयानन्द हैं।

फिर चरण ग्रहण करके उसने निवेदन किया, "भगवन्! मैं विहार देशका रहनेवाला ब्राह्मण हूं। मैंने व्याकरण और दर्शन शास्त्रोंका अनुशीलन किया है। विशेषतासे वेदान्त शास्त्रको अधिक परिश्रमसे पढ़ा है। मैं वैराग्य-वश गृह-परित्याग कर पर्य्यटन कर रहा हूं, मेरा वेष तो संन्यासियोंका-सा है और नाम भी सहजानन्द है, परन्तु मैंने विधिपूर्वक संन्यास नहीं लिया। मैं आपकी विमल कीर्ति सुनकर, सुदूर देशसे चलकर यहाँ आया हूं। अपनी अद्वितीय दयालुतासे, मुझे संन्यास देकर निज जनोंकी पंक्तिमें मिला लीजिए।"

भगवान्ने, अपने द्युतिमान् दहिने हाथसे, सहजानन्दजीके पृष्ठ-प्रदेशको प्रकाशित करते हुए कहा—"वत्स! यदि आपकी ऐसी ही भावना है और आप सार्वजनिक जीवनकी जड़को अपने पुरुपार्थके पानीसे सींचना चाहते हैं

तो चलिये हमारे डेरेपर ही विश्राम कीजिये । देश-काल मिलनेपर संन्यासकी वार्त्ता भी विचार ली जायगी ।"

सहजानन्दजी स्वामीजी महाराजके पास रहने लगे । अन्तमें सुयोग्य व्यक्ति जानकर महाराजने उनको अपने सेवक-समूहमें सम्मिलित कर लिया। महाराजने सहजानन्दजीको उपदेश दिया, "संन्यासीको सदा परमात्मापर ही निर्भर करना चाहिये। आप नित्यप्रति प्रातः और सायं समय प्रणव पवित्रका जप और आराधन किया करें । यही हम लोगोंका आश्रय और आधार है । इसके चिन्तनसे चित्तकी सारी चंचलता चूर हो जाती है। पाप-पङ्कको धोनेके लिए इससे बढ़कर दूसरा साधन नहीं है। महामुनि जन, इसी महामन्त्रसे, मन्मथोन्मथन करके परमानन्दमें निमग्न रहा करते हैं।

लक्ष्यको वेधनेके समय, जैसे वीर धनुर्धर टकटकी लगाकर केवल लक्ष्य ही को देखता है, इसी प्रकार मनोवृत्तियोंको एकाग्र कर प्रणव-पाठ जपनेसे कल्पनातीत परिणाम प्राप्त होता है । जब तुम चिरकालपर्यन्त इस भक्ति-योगको करते रहोगे तो समाधिके मधुमय, स्वादु फलको आप ही आस्वादन करने लगोगे। उस समय आपकी सब वासनायें शान्त होजायँगी। कामनायें परा तृप्तिको प्राप्त कर लेंगी ।"

सहजानन्दजीको स्वामीजीने दशलक्षण-युक्त धर्म्मका पालन करनेकी आज्ञा की ।

महाराजने अपने ग्रन्थोंमें लिखा भी है—"इसी दश-लक्षणयुक्त वेदोक्त धर्म्मपर आप चलना और दूसरोंको समझा कर चलाना संन्यासियोंका विशेष धर्म्म है। संन्यासियोंका मुख्य कर्म यही है कि गृहस्थादि सब आश्रमोंको सब प्रकारके सच्चे व्यवहारोंका निश्चय करायें । उनसे अधर्मकर्म छुड़ा दें। उनके संशय छेदन कर उनको धर्म्म-युक्त व्यवहारोंमें प्रवृत्त करें ।

जैसे देखने और सुननेके सामर्थ्यसे विहीन आँख और कानके गोलकोंका होना व्यर्थ है, ऐसे ही, जो संन्यासी जन सत्योपदेश नहीं देते और वेदादि सत्य शास्त्रोंका विचार तथा प्रचार नहीं करते वे भी जगत्में व्यर्थ भाररूप हैं।"

महाराजने अपने नूतन शिष्यको प्रचारके कार्य्यके लिए उत्तेजित किया। उसको कहा, "आप पर्याप्त पठित हैं । सुयोग्य और समझविचारवाले हैं ।

आपको अवकाश भी बहुत है। कटिबद्ध होकर आर्य्य समाजोंमें पर्यटन कीजिए और स्थान-स्थानपर उपदेश देनेमें प्रवृत्त हो जाइए।

सहजानन्दने सिर झुकाकर श्री वचनोंको स्वीकार कर लिया। उन्होंने रातदिन महाराजके पास निवास करते हुए देखा कि वे रातके समय केवल चार घण्टेभर विश्राम लेते हैं और फिर उठकर ध्यानारूढ़ हो जाते हैं। किसी निर्जन वन-स्थान अथवा एकान्त उद्यानमें भी, प्रतिदिन सूर्योदयके समय, एक घण्टाभरके लिए ध्यानारूढ हुआ करते हैं।

नौ-लखा उद्यानके पास ही एक विस्तीर्ण सरोवर है। महाराज गोवर्द्धन पर्वतको उसीके किनारे किनारे जाया करते। वे तो बहुत सवेरे जाते थे, परन्तु सहजानन्दजी, सूर्योदयसे कुछ ही पूर्व, उसी ओर भ्रमण करने निकलते थे। एक दिन; अपने निवासके उद्यानसे बहुत अन्तरपर, सहजानन्दजीने देखा कि स्वामीजी जलपर पद्मासन लगाये, योग-मुद्रामें कमल-दलकी भाँति विराजमान हैं। गुरुदेवकी इस मनोहर योग-मुद्राने उनके मनमें एक गहरा भक्ति-भाव उत्पन्न कर दिया। उस शान्त समयमें, उस शून्य प्रदेशमें, उस शान्त सरोवरके ऊपरी भागपर वे प्रशान्तात्मा ऐसे सुन्दरस्वरूप, ऐसे तप्त सुवर्ण-वर्ण और मनोहर दिखाई देते थे मानो सागरमें सूर्योदय हो रहा है।

महाराज कभी कभी लम्बी समाधि भी लिया करते थे। अपनी कोठरीके गवाक्ष खोल देते और द्वार बन्द करके ध्यानमें निमग्न हो जाते थे। जहाँ कहीं लम्बी समाधिमें अवस्थित होना होता, वहाँ एक दिन पहले ही मिलने जुलनेवालोंको उस दिनके लिए आनेसे रोक देते। समाधिस्थ होनेसे पूर्व, अपने कर्मचारियोंको कह देते कि आज अमुक समयतक हमारी कोठरीके पास कोई न आये और न ही कोई किवाड़ खटखटाये। बहिर्मुख कर्म्मचारी वर्ग तो यही समझता कि आज स्वामीजीका स्वास्थ्य अच्छा नहीं है। वे भीतर पड़े आराम करते हैं। चलो छुट्टी मिल गई, इधर उधर चक्कर लगायेंगे। परन्तु सहजानन्द ऐसी समझके मनुष्य न थे। उनको अपने गुरुदेवके गुण-ग्राम और गौरव-गरिमाका ज्ञान हो गया था।

उदयपुरमें एक बार, महाराजने श्वास-प्रश्वासतककी क्रियाको रोककर निरन्तर चौबीस घण्टोंकी समाधि ली। गुरुदेवने, अपने नवीन शिष्यको यह

भेद एक दिन पहले ही बता दिया था और कह दिया था कि आप चाहें तो चुपचाप, मौन भावसे खिड़की-विशेषद्वारा देख सकते हैं। उनके आदेशको पाकर, सहजानन्दजीने तुर्यावस्था अवस्थित और असंप्रज्ञात समाधिगत, गुरु-महाराजके उस दिन रातमें कई बार दर्शन किये।

उस समय महाराजकी काया अकम्प और अचल थी। वे सौन्दर्यसमुच्चय प्रतीत होते थे। उनके मुखमण्डलकी कान्ति, मस्तकका तेज, मुद्राकी शोभा और देहकी दीप्ति अद्भुत और अनुपम दीख पड़ती थी। उनके चारों ओर शान्ति बरस रही थी। उस समय वहां शान्ति रस मूर्तिमान हो रहा था।

महाराजका हृदय स्फटिकके सदृश था। उसमें दूसरोंके मनोगत भाव प्रतिबिम्बित हो जाते थे। मन लगानेपर, दूर देशमें घटित घटनाओंका भी उसमें आभास पड़ जाता था।

एक दिन श्री राणा सज्जनसिंहजी और सहजानन्दजी आदि सज्जन स्वामीजीके पास बैठे थे। महाराजने श्री राणाजीको कहा, "पण्डित सुन्दरलालजी यहाँ आ रहे हैं। यदि पहले सूचना दे देते तो उनके लिए यानका उचित प्रबन्ध कर दिया जाता।" राणाजीने निवेदन किया, "भगवन्! अब भी यान भेजा जा सकता है।" इसपर स्वामीजीने कहा, "अब तो वे बैलगाड़ीमें आ रहे हैं। उसका एक बैल शुक्ल वर्ण है और दूसरेके तनपर लाल धवल धब्बे हैं वे कल यहाँ पहुँच जायँगे।" महाराजका कथन अगले दिन अक्षरशः सत्य सिद्ध हुआ।

एक दिन, दो साधु स्वामीजीसे मिलने आये। सहजानन्दजीने उनका आगमन श्रीसेवामें निवेदन किया। इसपर उन्होंने कहा कि अभी हमें कुछ कृत्य करना शेष है। इतनेमें आप अतिथियोंको भोजन कराइये। जब सहजानन्दजी उन अभ्यागतोंको भोजन करा चुके तो स्वामीजीने उनको भीतर आमन्त्रित कर लिया। वे दोनों महात्मा महाराजसे बड़ी देरतक ज्ञान-चर्चा करते रहे। जब वे चलने लगे तो बोले—"भगवन्! आप अधिकारी जनको ही उपदेश दिया करें। जो लोग आपके सत्सङ्गोंमें आते हैं वे सब ही अधिकारी नहीं होते। आपके खण्डन-विषयक व्याख्यानोंके तो विरले जन ही अधिकारी होते होंगे।"

स्वामीजीने कहा, "धर्म्मोपदेशमें अधिकारानधिकारका प्रश्न उठाना व्यर्थ है। इसका अधिकारी मनुष्य-मात्र है। कोई भी बालक औषधि आप ही आप नहीं खाता किन्तु उसके बन्धु उसे विवश करके खिलाते हैं। हमारा कुरीति-खण्डन भी एक कड़वी क्काथ है। साधारण जन धर्म्माधर्म्मके बोध और सत्यासत्यके विवेकसे विवर्जित हैं। उनको तो यह कटु क्काथ बलात्कार हीसे पिलाना पड़ेगा। महात्माजी ! आपके धर्म्म-बन्धु और जातिके अङ्ग आये दिन शत शत और सहस्र सहस्रकी संख्यामें ईसाई और मुसलमान होते जाते हैं; और आप हमें अधिकारानधिकारकी पट्टी पढ़ाने लगे हैं। यह समय तो कार्य्य करनेका है। धर्मकी नौकाको चट्टानके साथ टकराने से बचाने और भँवर-से निकालनेका है पहले, धर्म्मके आकाशसे विपत्तिके बादलोंको दूर कीजिये; अधिकारोंके विचार तो पीछे होते ही रहेंगे।"

सहजानन्दजी, उदयपुरसेही, महाराजके आदेशानुसार उपदेशकार्य्यके लिए समुद्यत होकर चल पड़े और नगर नगरमें विचरने लग गये।

पण्ड्या मोहनलाल विष्णुलाल आदि कई सज्जन श्री महाराजसे पढ़ने लग गये। उन्हें देखकर श्रीराणाजी भी, बड़ी लग्नसे, उस श्रेणीमें सम्मिलित हुए। श्रीराणाजी पहले भी संस्कृत जानते थे। व्याकरणके कुछ अधिक नियम-स्वामीजीने स्लेटपर लिखकर उन्हें समझा दिये। स्वामीजीने श्रीराणाजीको योग-दर्शन सारा पढ़ाया। न्याय और वैशेषिकके, बीच बीचमेंसे प्रकरण ऐसी रीतिसे पढ़ाये कि उन्हें सम्पूर्ण ग्रन्थका बोध हो गया। महाराजने उनको मनु-स्मृति भी पढ़ाई। राजाओंके धर्म्मोंकी ऐसी उत्तम व्याख्या की कि राणाजी अतीव प्रभावित हुए। स्वामीजी कहा करते कि "मनु-स्मृति प्रत्येक मनुष्यको पढ़नी चाहिए। इसके जाने बिना अपने कर्त्तव्य कर्मोंका बोध होना दुर्लभ है। यह आर्य धर्म्मका निचोड़ है। आर्य्य जातिकी नीति-रीतिका भरा, पूरा भण्डार है। मनुष्यको कार्य्य-कुशल और व्यवहार-निपुण बनाती है।"

उन्होंने मानव-धर्म्म-शास्त्र, राणाजीको सम्पूर्ण पढ़ाया। उनका अर्थ वर्णन करना, व्याख्या करके बताना, परस्परकी सङ्गति समझाना और दृष्टान्त देकर विषयको स्पष्ट कर देना, कुछ ऐसा था कि ग्रन्थके आशयकी आकृति,

एक बार तो आँखोंके सामने खड़ी हो जाती थी। किसी भ्रम और संशयको तो अवकाश ही नहीं रहता था।

उन्होंने प्रक्षिप्त श्लोकों और प्रकरणोंके समझनेके गुर भी बताये। वे उपदेश देते थे कि "जो बात प्रकरणविरुद्ध हो वह प्रक्षिप्त समझनी चाहिए। यह ग्रन्थ क्रमसे धर्म्मका वर्णन करता है। जहाँ क्रम टूटे और पूर्वापरमें विरोध आ जाय वहाँ मिलावट मानना उचित है। जैसे मनुमें बुद्धिके अनुसार दण्डका विधान है; अबोध मनुष्यके लिए थोड़ा दण्ड देना लिखा है और जो अधिक बुद्धिमान् होकर अपराध करता है उसे अधिक दण्ड देनेकी मर्यादा बाँधी है। परन्तु बीचहीमें ब्राह्मणके लिये इस नियमको शिथिल कर दिया गया है; इस लिए बीचका यह प्रसङ्ग प्रक्षिप्त है।" स्वामीजीने, राणाजीको महाभारतके भी कुछ भाग पढ़ाये।

श्री राणाजी, स्वामीजीके सत्सङ्गके लिए प्रति प्रातःकालको आया करते। जिस दिन, सवेरे समय न मिल सकता उस दिन सायंकाल अवश्य आते। एक दिन राणाजीने निवेदन किया, "भगवन्! आप जब किसी मूर्त्तिमान वस्तुमें ध्यान लगाना अच्छा नहीं समझते तो फिर ध्यान किया किसका जाय?"

महाराजने उत्तर दिया, "ईश्वरका कोई आकार कल्पना करके उसका ध्यान करना अनुचित है। वह सर्वव्यापक है। प्रत्येक पदार्थमें परिपूर्ण है। सबका स्वामी अन्तर्यामी और नियन्ता है; इत्यादि गुणोंका चिन्तन और ध्यान करना उचित है।"

महाराजने ब्रिटिश-भारतके प्रान्तोंमें राजा-प्रजा-धर्म्मपर अनेक व्याख्यान दिये। उनमेंसे कई व्याख्यान तो यूरोपीय राजपुरुषोंहीने कराये थे। वे जाति और देशकी उन्नति विषयोंपर भी, ओजस्विनी और तेजस्विनी भाषामें प्रभावशाली भाषण दिया करते थे। उनके भाषणोंको सुनकर श्रोताओंमें ऊष्मा भर जाती थी, उनका साहस बढ़ जाता था, उत्साह उमड़ आता था, हृदय उछलने लगता था अंग फड़क उठते थे और जातीय जीवनका रक्त खौलने लग जाता था; परन्तु किसी मनुष्य और जाति-विशेषके, लिए मनमें घृणा और द्वेष उत्पन्न नहीं होता था। उनकी उदात्त नीतिमत्ता और राष्ट्र-

सुधारके विचार, सिद्धान्त-रूपमें प्रकाशित होते थे। वे दार्शनिक भावको लिये होते थे और सबपर घट जाते थे।

महाराजने स्वराज्य और स्वायत्त शासनके सार-मर्मके कुछ एक सूत्र, और अति स्पष्ट सूत्र सत्यार्थ-प्रकाशमें उस समय लिखे थे जब, यहाँ जातीय महासभाका जात-कर्म्म भी नहीं हुआ था। शासन-सुधारवादियोंने स्वराज्य शब्दका अभी स्वप्न भी नहीं देखा था। महाराजके समय, भारतीयोंकी राष्ट्र-नीति अभी नवजात बालिका थी; दूधमुँही बच्ची थी। पालनेमें पड़ी अङ्गूठा चूस रही थी। नीति-निपुण मुसलमान सज्जन उसे अछूत समझते और उससे बड़े अन्तरपर रहते थे। थोड़ेसे आर्य्य लोग थे जो कभी कभी दो एक बार, उसे व्याख्यान-भवनोंके हिण्डोलेमें डालकर, अपने धुँआधार भाषणोंके दो चार हिलोरे दे छोड़ा करते। उनके भाई-बन्धु भी बहुतेरे ऐसे थे, जो मीठी मीठी लोरियों और कोमल कोमल थपकियोंसे उसे सुलाये रखनेहीमें तत्पर थे।

राष्ट्र-जागृति और जातीय जीवनके ऐसे बालकालमें श्रीस्वामीजीका बलाढ्य शब्दोंमें, ओज और ऊष्मा-पूर्ण भाषामें स्वायत्त शासनका समर्थन करना, उसे परम सुखदायक बताना इस बातका उज्वल और ज्वलन्त उदाहरण है कि उनके राष्ट्रनीति-सम्बन्धी विचार पूर्ण प्रणतिको पाये हुए थे; चरम और परम लक्षको परिलक्षित कर चुके थे। उनके विशाल हृदयमें भारतकी प्रजाका हित कूट कूटकर भरा हुआ था। उनके अन्तःकरणमें, मस्तकमें, अस्थिमें, मज्जामें, एक एक रक्तबिन्दु और नाड़ी-नसमें भारतके कल्याणकी निष्कलंक कामना, उत्कृष्ट उत्कर्षको पहुँच चुकी थी। समय आयगा जब भारतकी भावी सन्तति, अपने जातीय मन्दिरोंमें स्वायत्त शासनकी देवीका पूजन करनेसे पूर्व उसे पहले टहल आहूत करनेवाले देव-स्वरूप दयानन्दका प्रथम अर्चन किया करेगी।

एक दिन पण्ड्या मोहनलाल विष्णुलालजीने निवेदन किया, "भगवन्! भारतका पूर्ण हित कब होगा? यहाँ जातीय उन्नति कब होगी?"

महाराजने उत्तर दिया, "एक धर्म्म, एक भाषा और एक लक्ष बनाये बिना भारतका पूर्ण हित और जातीय उन्नतिका होना दुष्कर कार्य्य है। सब उन्नतियोंका केन्द्रस्थान ऐक्य है। जहाँ भाषा, भाव और भावनामें एकता आ जाय वहाँ, सागरमें नदियोंकी भाँति, सारे सुख एक एक करके प्रवेश करने

लग जाते हैं। मैं चाहता हूँ कि देशके राजे महाराजे अपने शासनमें सुधार और संशोधन करें। अपने राज्यमें धर्म्म, भाषा और भावोंमें एकता उत्पन्न कर दें, फिर भारतभरमें आप-ही-आप सुधार हो जायगा।"

फिर श्री पण्ड्याजीने प्रार्थना की, "जब आपका उद्देश्य और आदर्श एकता सम्पादन करना है तो आप मत मतान्तरोंका कठोर खण्डन क्यों करते हैं? इससे तो उलटा वैर-विरोध और वैमनस्य बढ़ता है।"

महाराजने उत्तर दिया, "एक तो मेरा धार्म्मिक लक्ष्य सार्वजनिक है। उसे सङ्कुचित नहीं किया जा सकता। दूसरे, भारतवासी लम्बी तानकर, ऐसी गहरी नींदमें सो रहे हैं कि मीठे शब्दोंसे तो आँख तक खोलनेको भी समुद्यत नहीं होते। सुधारका तो ये नाम तक नहीं लेते। कु-रीतियों और कु-नीतियोंके खण्डन-रूप कड़े कोड़ेकी तड़ातड़ ध्वनिसे भी यदि, ये जग जायँ तो ईश्वरका कोटि कोटि धन्यवाद करूंगा।

पण्ड्याजी! कोई देश, जन-शून्य नहीं हो जाया करता। लोग तो बने ही रहा करते हैं। परन्तु धर्म्म-गुरुओं और सामाजिक नेताओंकी असावधानी, प्रमाद और आलस्यसे भावना, भाव और भाषा आदि एकताके चिन्ह बदल जाते हैं। जातिके आचार-विचार परिवर्त्तित हो जाते हैं। रहन-सहनके ढङ्गोंमें भेद आ जाता है। ठीक ऐसा ही समय अब इस देशपर उपस्थित है। यदि सम्भाला न गया तो आर्य्य जाति परिवर्तनके चंचल चक्रपर चढ़कर, अतिशय उतावलीसे, अपने पूर्व पवित्र शरीरको परिवर्तित कर डालेगी। इसके पिछले प्रमादके कारण करोड़ों मनुष्य मुसलमान बन गए। अब प्रतिदिन सैकड़ों ईसाई बनते चले जा रहे हैं! ऐसे समयमें तो, अपने सधर्म्म बन्धुओंको कड़े हाथसे उनकी चोटियाँ पकड़कर भी जगाना होगा। भाई! यह कटु कर्त्तव्य, मैं कोई अपने स्वार्थके लिए तो पालन नहीं कर रहा हूँ। मुझे तो इसके कारण अवहेलना, निन्दा, कुवचन, ईंट-पत्थर और विष ही स्थान-स्थानपर मिलता है। परन्तु बन्धु-वात्सल्यकी भावना, मुझे विपत्तियोंके विकट और जटिल जालमें भी समाज-सुधारके लिए प्रोत्साहित कर रही है।"

पण्ड्याजीने नमस्कार-पूर्वक श्री वचनोंका हार्दिक अनुमोदन करते हुए कहा—"महाराज! यदि दो-चार धर्म्माचार्य भी आपके विचारके हो जायँ

तो, स्वल्प समयमें ही आर्य्य जातिका बेड़ा पार हो सकता है।"

प्रलोभन-वश बड़े बड़े महात्मा भी अपनी मान-मर्यादाको मलिया मेट कर-देते हैं। प्रलोभनके स्वरूपने कई तपस्वियोंकी तपश्चर्या और यतियोंके व्रत-धर्म्मको दिनदिहाड़े लूट लिया है—व्यक्तियोंकी तो कोई गणना ही नहीं हो सकती, इसके तो चरणोंको जातियोंके, मुकटोंसे चमकते हुए सिर चढ़ाकर भी चर्चित किया गया है। जहाँ कभी बाँके मन्दिर आकाशसे बातें करते थे और राग-रङ्ग होता था, वहाँ आज इसके हाथों चमगादड़ बसते, उल्लू बोलते, गीदड़ नाचते और चिल्लाते हैं। जिस महापुरुषने अन्नमय कोषमें रहकर, इस मायाधारी प्रलोभनपिशाचको जीत लिया है, वह सचमुच, इस मोह-मायामयी सृष्टिसे ऊपर है, दैवतबल-सम्पन्न है।

भगवान् दयानन्दके लिए भक्तोंका भक्ति-भाव अपार बढ़ जाता है, जब यह कथा उनके कर्णगोचर होती है। एक दिन महाराज अकेले बैठे हुए थे। उस समय श्रीराणाजी पधारे और गुरु-महाराजसे विनीत विनय करने लगे, "भगवन्। आप मूर्त्ति-पूजाका खण्डन छोड़ दें। यह राजनीतिके 'सर्व संग्रह' सिद्धान्तके प्रतिकूल है। यदि आप ऊपरकी बातें स्वीकार कर लें तो एकलिङ्ग महादेवके महन्तकी गद्दी आपकी है। वैसे तो यह राज्य भी उसी मन्दिरके समर्पित है, परन्तु मन्दिरके नाम जो राज्यका भाग लगा हुआ है उसकी लाखोंकी आय है। इतना भारी ऐश्वर्य आपका हो जायगा। सारे राज्यके आप गुरु माने जायँगे।"

श्रीराणाजीकी प्रार्थना श्रवण करते ही स्वामीजी झुँझलाकर बोले, "आप मुझे तुच्छ प्रलोभन दिखाकर परमात्मदेवसे विमुख किया चाहते हैं! उसकी आज्ञा-भङ्ग कराना चाहते हैं। राणाजी! आपके जिस छोटेसे राज्य और मन्दिरसे मैं एक दौड़ लगाकर बाहर जा सकता हूं वह मुझे अनन्त ईश्वरकी आज्ञा-भङ्ग करनेके लिए विवश नहीं कर सकता। परमात्मदेवके परम प्रेमके सामने, इस मरुभूमिकी, मायाविनी मरीचिका अति तुच्छ है। लाखों मनुष्यों-के विश्वास केवल मेरे भरोसेपर निर्भर हैं। मुझे ऐसे शब्द कहनेका फिर कभी साहस न कीजिएगा। मेरी धर्मकी ध्रुव धारणाको धराधाम और आकाशकी कोई भी वस्तु डगमगा नहीं सकती।"

राणाजी, उनके सत्यके आवेशसे, सूर्यसमान चमकते हुए, मुखमण्डलको देखकर चौंक पड़े और चित्तमें अतीव आश्चर्य्य-चकित हुए। वे हाथ जोड़कर बोले—'भगवन्! मैंने आपके निश्चयकी दृढता देखनेके लिए ही ऐसा कहा था। सो इस धृष्टताको क्षमा कर दीजिएगा। अब मुझे पूर्ण विश्वास हो गया है कि संसारकी कोई भी वस्तु, आपकी दृढताको डाँवाडोल नहीं कर सकती। आपका निश्चय कभी हिल नहीं सकता।"

श्रीराणाजीको, महाराजने दिन-चर्य्याको नियमबद्ध रखनेका उपदेश दिया "तीन घड़ी रात रहते उठिये। आवश्यकताओंसे निवृत्त होकर मुँह-हाथ धोइए। दातून और कुल्लेके करनेके अनन्तर एक गलास शीतल जलका पान कीजिए। उसी समय पास रहनेवालोंको पृथक् कर ईश्वरोपासनामें मग्न हो जाइए।" महाराजने राणाजीको प्रातःकालकी उपासनाके लिए कुछ मन्त्रभी सिखाए।

फिर कहा, "उपासनाके पश्चात्, हो सके तो चलकर नहीं तो बग्घीपरही, वायु-सेवनके लिए बाहर जाइए। एक घण्टाभरका भ्रमण पर्याप्त है। भ्रमण करते समय प्रत्येक वस्तुको ध्यानपूर्वक देखना उचित है। यात्रासे लौटकर जब आइए तो जिस भवनमें दिनभर रहना हो उसमें घृतादिका हवन कराइए। दिनके नौ बजे राज्यके कार्य्योंको किया कीजिए। फिर दस बजेके पश्चात् भोजन पाइए और कुछ देरतक टहलिए। तदन्तर यदि, चित्त चाहे तो बारह बजेतक शय्यापर विश्राम कीजिए। दोपहरके उपरान्त चार बजेतक न्याय करना और लिखने पढ़नेका काम करना उचित है। चार बजेके अनन्तर आवश्यकताओंसे निवृत्त होकर वस्त्र-परिवर्तन कीजिए। फिर अश्वारूढ होकर चाहे सेना देखिए अथवा उद्यान, मन्दिर और सड़कोंका निरीक्षण कीजिए। दिन छिपे राज मन्दिरमें आ जाइए। उस समय कुछ पढ़ना चाहिए। उपासना और ज्ञानकी वार्त्ताभी सुननी चाहिए। बुद्धिमानोंका सत्सङ्ग और इतिहास-श्रवण करना चाहिए। ये सब कार्य्य दो घण्टोंमें समाप्त हो जाने उचित हैं। उसके पश्चात् भोजन ग्रहण करना चाहिए। खाना खानेके पश्चात् आधे घण्टेतक टहलना चाहिए। उस समय गन्धर्वोंसे राग भी सुनिए। रागमें अधिक लीन होना अच्छा नहीं है। कवियोंकी कोमल काव्य-कलाका भी रस लेना चाहिए और चारण तथा कड़खेतोंके कवित्त और कड़खे भी सुनने चाहिएँ। परन्तु उनमें अश्लीलता नहीं होनी चाहिए।

तत्पश्चात् शोभन शय्यापर लेट जाइए। छः घण्टेतक पूर्ण निद्रा लीजिए। एकाकी सोना ही उत्तम है। शास्त्रानुसारही परिवार-सम्बन्धको पालन कीजिए।"

ऊपरका उपदेश देकर महाराजने पूछा कि आप मेरी बताई दिन चर्य्यापर चलेंगे? राणाजीने सिर झुकाकर निवेदन किया कि कलहीसे इसके पालनमें कटिबद्ध हो जाऊँगा। राणाजीने किया भी ऐसे ही।

स्वामीजीने, श्रीराणाजीको शास्त्र पढ़ाकर, धर्म्मके रहस्य बताकर, राज्यके रक्षण और सम्वर्द्धनकी नीति सुनाकर, शारीरिक नियम सिखाकर, अन्य अनेक मार्मिक और तात्विक कथोपकथन श्रवण कराकर पूर्ण आर्य्य बना लिया। उनमें आर्य्य समाजके लिए असीम स्नेह और सहानुभूतिका भाव उत्पन्न कर दिया।

स्वामीजी, विद्याके कार्योंमें लोगोंको प्रोत्साहन दिया करते थे। एक दिन वे चारण-पाठशालाका निरीक्षण करने गये। वहाँ उन्होंने विद्यार्थियोंकी परीक्षा ली और उनको अपनी ओरसे प्रीति भोजन दिया। महाराजने, श्री राणाजीके साथ विचार करनेके अनन्तर, सारे राज्यके राजों और ठाकुरोंके लड़कोंके लिए एक पाठशाला खोलनेका प्रबन्ध भी कर लिया। परन्तु पीछेसे, राणाजीके रुग्ण हो जानेके कारण, यह कार्य्य बीचहीमें रह गया।

एक दिन, श्री राणाजीको मनु-स्मृतिका पाठ पढ़ाते हुए महाराजने कहा, "यदि कोई अधिकारी धार्मिक आज्ञा दे तब ही उसका पालन करना चाहिए। अधर्म्म-युक्त कथनको कभी नहीं मानना चाहिए।"

इसपर सरदारगढ़के ठाकुर मोहनसिंहजीने निवेदन किया—"भगवन्! ये राणाजी हमारे भूपाल हैं। यदि हमें यह कोई आज्ञा दें और हम उसे अधर्म्म-युक्त समझकर न मानें तो हमारा लघु राज्यही छिन जाय।"

महाराजने कहा, "कोई चिन्ता नहीं। धर्म्मके लिए धन और ठकुराई भलेही चली जाय। धर्म्म-हीन होजानेसे और अधर्म्मके काम करके अन्न खानेसे तो भीख माँगकर पेटकी पालना करना बहुत अच्छा है।"

स्वामीजीके उदयपुरमें निवासके दिनोंमें दसहरा आ गया। इस त्योहारको वहाँ बड़े समारोहसे मनाया जाता है। राणाजीकी यात्रा बड़े ठाठबाठसे निक-

लती है। बड़ी भारी राज-सभा लगती है। उस दिन कई भैंसे भी काटे जाते हैं।

राणाजीके निवेदनपर, श्रीमहाराज भी दसहरा महोत्सव देखने पधारे। जब उन्हें पता लगा कि यहाँ बहुतसे भैंसे काटे जायँगे तो उन्होंने राणाजीको कहा कि आप नरेश हैं। न्याय करना आपका कर्त्तव्य कर्म्म है। मैं मारे जाने-वाले भैंसोंका वकील बनकर श्रीमन्तके सम्मुख उपस्थित हूँ। अब न्याया-धीशको निर्णय करना चाहिए कि इनका वध क्योंकर उचित है? चिरकालतक बातचीत होती रही। अन्तमें श्रीराणाजीने विनय की कि यह पुरानी परि-पाटी, परम्परासे चली आ रही है। इसे एकाएक न तो हम उठा सकते हैं और न उठा देना उचित ही है। हाँ, आपके आदेशानुसार इसे धीरे धीरे घटा देनेका प्रयत्न किया जायगा। इसपर स्वामीजी भी सम्मत हो गये।

श्रीराणाजी, स्वामीजीके कथनोंको स्वीकार करनेके लिए सदा समुद्यत रहते थे, परन्तु महाराज, धार्मिक, कार्योंके अतिरिक्त, राज्यके अन्य किसी भी कार्य्यमें हस्तक्षेप नहीं करते थे। एक दिनका वर्णन है कि राणाजी स्वामीजीके दर्शन करके जब राजभवनको लौटे तो उसी समय स्वामीजीके पास पचास पटेल आ गये और अभियोगकी बातचीत करने लगे। राणाजीने उन भूमिहारोंको स्वामीजीके पास जाते देख लिया था, इसलिए उन्होंने अब्दुर्रहमानको कहा कि जाइए, पता लीजिए कि इन लोगोंने श्रीसेवामें क्या निवेदन किया है। उसने उन लोगोंसे पूछकर राणाजीसे विनय की कि इन लोगोंने अपने अभियोगकी बात चलाई थी और इसपर महाराजने कहा कि हम साधु हैं; किसी सांसारिक झंझट झमेलेसे हमारा सम्बन्ध सर्वथा नहीं है।

उस समय राणाजीने कहा—"मौलवीजी! देखा, मैं कहता न था कि स्वामीजी राज-काजके कार्य्योंमें कदापि हस्तक्षेप नहीं करते। जगत्के रगड़े झगड़ेसे स्वतन्त्र, भला, ऐसा कोई दूसरा मनुष्य कभी आपने देखा है?"

उदयपुरहीमें रहते हुए, महाराजने परोपकारिणी सभा स्थापित की। अपनी सारी सम्पत्ति उसके नाम कर दी। उनका लिखा स्वीकार-पत्र इस प्रकार है—

मैं दयानन्द सरस्वती निम्नलिखित तेईस सज्जन आर्य्य पुरुषोंकी सभाको वस्त्र, पुस्तक, धन और यन्त्रालय आदि अपने सर्वस्वका अधिकार देता हूँ।

इसको परोपकारके शुभ कार्य्यमें लगानेके लिए अध्यक्ष बनाकर यह स्वीकार-पत्र लिखे देता हूँ कि समयपर काम आये ।

इस सभाका नाम परोपकारिणी सभा है और निम्नलिखित तेईस महाशय इसके सभासद् हैं:—

१. श्रीमन्महाराजाधिराज महिमहेन्द्र यावदार्य्य-कुल-दिवाकर महाराणाजी श्री १०८ सज्जनसिंहजी वर्म्मा जी. सी. एस. आई. उदयपुराधीश, राज्य मेवाड़, सभापति ।

२. लाला मूलराज एम. ए. एक्स्ट्रा असिस्टेन्ट कमिश्नर प्रधान आर्य समाज लाहौर, उपप्रधान ।

३. श्रीयुत कविराज श्यामलदासजी उदयपुर, राज्य मेवाड़ मन्त्री ।

४. लाला रामसरनदासजी उपप्रधान आर्य्यसमाज मेरठ, मन्त्री ।

५. पण्ड्या मोहनलाल विष्णुलाल, उदयपुर, जन्म-स्थान मथुरा, उपमन्त्री ।

६. श्रीमन्महाराजाधिराज श्री, नाहरसिंहजी वर्म्मा शाहपुराधीश, सभासद् ।

७. श्री राव तख्तसिंहजी बेदले, राज्य मेवाड़ ।

८. श्रीमन्त राजराणा श्री फतेहसिंहजी वर्म्मा, भीलवाड़ा ,,

९. श्रीमत् रावत अर्जुनसिंहजी वर्म्मा, असन्द ,,

१०. श्रीमत् महाराजा श्री राजसिंह वर्म्मा, उदयपुर ,,

११. श्रीमत् राव श्री बहादुरसिंहजी वर्म्मा, मसूदा, जिला अजमेर ,,

१२. राय बहादुर पण्डित सुन्दरलाल सुपरिण्टेण्डेण्ट वर्कशाप अलीगढ़ सभासद् ।

१३. राजा जयकृष्णदासजी सी. एस. आई. डिपटी कलेक्टर बिजनौर, मुरादाबाद ।

१४. साहू दुर्गाप्रसाद कोषाध्यक्ष, आर्य्यसमाज फरुखाबाद, सभासद्

१५. साहू जगन्नाथप्रसाद फरुखाबाद ।

१६. सेठ निर्भयराम प्रधान आर्य्य समाज, फरुखाबाद, बिसावरराजपूताना सभासद् ।

१७. लाला कालिचरण रामचरण मन्त्री, आर्य्यमाज फरुखाबाद ,,

१८. श्रीयुत छेदीलाल गुमाश्ते कमसारियट छावनी मुरार-ग्वालियर ,,

१९. लाला साईंदास, मंत्री आर्य्य समाज, लाहौर ,,

२०. श्री माधवदास मंत्री आर्य्य समाज, दानापुर ,,

२१. रावबहादुर राजमान्य राजेश्री पण्डित गोपालराव हरि देशमुख, सभासद्, कौंसल गवर्नर मुम्बई, तथा प्रधान आर्य्यसमाज मुम्बई, पूना सभासद् ।

२२. रावबहादुर महादेव गोविन्द रानडे, जज पूना ,,

२३. श्रीयुत श्यामजी कृष्ण वर्म्मा प्रोफेसर, संस्कृत युनीवर्सिटी आक्सफोर्ड, लण्डन मुम्बई ।

स्वीकार-पत्रके नियम ।

१. उक्त सभा जैसे मेरे जीवन-कालमें मेरे सकल पदार्थोंकी रक्षा करके निम्नलिखित परोपकारके काममें लगानेका अधिकार रखती है, वैसे ही मेरे पीछे अर्थात् मरनेके पश्चात् भी लगाया करे ।

(१) वेद-वेदाङ्गादि शास्त्रोंके प्रचार, उनकी व्याख्या करने कराने, पढ़ने पढ़ाने, सुनन सुनाने, छापने छपाने, आदिमें ।

(२) वेदोक्त धर्म्मके उपदेश और शिक्षा अर्थात् उपदेशक-मण्डली नियत करके देश-देशान्तर और द्वीप-द्वीपान्तरमें भेजकर सत्यके ग्रहण और असत्यके त्यागादिमें ।

(३) आर्य्यावर्त्तके अनाथ और दीन जनोंकी शिक्षा और पालनमें व्यय करे और कराये ।

२. जैसे मेरी उपस्थितिमें यह सभा प्रबन्ध करती है वैसे ही मेरे पीछे, तीसरे व छठे मास, किसी सभासद्को वैदिक यन्त्रालयके बही-खातेके समझने और पड़तालनेके लिए भेजा करें । वह सभासद् वहाँ जाकर सारे आय-व्ययकी जाँच पड़ताल किया करे । उसके नीचे अपने हस्ताक्षर करे और उस पड़तालकी एक एक प्रति प्रत्येक सभासद्के पास भेजे । यदि यन्त्रालयके प्रबन्धमें कोई त्रुटि देखे तो उसके सुधारके लिये अपनी सम्मति लिखकर प्रत्येक सभासद्के पास भेजे । प्रत्येक सभासद्को उचित है कि अपनी सम्मति सभापतिके पास लिख भेजे और सभापति सबकी सम्मतिपर यथोचित कार्य करे । इस कार्य्यमें सभासद् आलस्य और अनुचित व्यवहार न करे ।

३. इस सभाको उचित है कि जैसा यह परम धर्म्म और परमार्थका काम है उसको वैसे ही उत्साह, पुरुषार्थ, गम्भीरता और उदारतासे करे ।

४. पहले कहे तेईस आर्य्य सज्जनोंकी सभा मेरे पीछे सब प्रकार मेरी स्थानापन्न समझी जाय, अर्थात् जो अधिकार मुझे अपने सर्वस्वपर है वही अधिकार सभाको है और होगा । यदि उक्त सभासदोंमेंसे कोई सभासद् स्वार्थमें पड़कर इन नियमोंके विरुद्ध काम करे वा कोई अन्य मनुष्य हस्तक्षेप करे तो वह सर्वथा झूठा समझा जाय ।

५. जैसे इस सभाको वर्त्तमान समयमें मेरी और मेरे सब पदार्थोंकी यथा-शक्ति रक्षा और उन्नति करनेका भी अधिकार है, वैसे ही मेरे मृतक शरीरके संस्कारका भी अधिकार है। जब मेरा शरीर छूटे तो उसको न गाड़ें, न जलमें बहावें, न जङ्गलमें फेंकें । केवल चन्दनकी चिता बनायें । और यदि यह सम्भव न हो तो दो मन चन्दन, चार मन घी, पाँच सेर कपूर, ढाई मन अगर तगर और दस मन काष्ठ लेकर वेद-विहित विधिसे जैसा कि संस्कार विधि पुस्तकमें लिखा है, वेदि बनाकर, उस पुस्तकमें जो वेद-मन्त्र लिखे हैं । उनसे भस्म करें । वेद-विरुद्ध कुछ भी न करें । उस समय यदि इस सभाका कोई भी सभासद् उपस्थित न हो तो जो कोई उपस्थित हो वही यह काम करे । जितना धन इस काममें लगे उतना सभासे ले लेवे और सभा उसको दे देवे ।

६. अपने जीवनमें मैं और मेरे पीछे यह सभा इस बातका अधिकार रखती है कि जिस सभासद्को चाहे पृथक् करके, किसी और योग्य सामाजिक आर्य्य पुरुषको उसका स्थानापन्न नियत कर दे । परन्तु कोई सभासद् सभासे तब-तक पृथक् न किया जायगा जबतक उसके काममें कोई अनुचित चेष्टा न पाई जाय ।

७. मेरे सदृश यह सभा सदा स्वीकार-पत्रकी व्याख्या वा उसके नियमोंका पालन, वा किसी सभासद्को पृथक् करने, उसके स्थानमें अन्य सभासद्को नियत करने और मेरे आपत्कालके निवारण करनेके उपाय और यत्नमें उद्योग करे । यदि सभासदोंकी सम्मतिमें विरोध रहे तो बहु-सम्मतिके अनुसार काम करें। सभापतिकी सम्मति सदा द्विगुण समझें ।

८. किसी दशामें भी, यह सभा तीनसे अधिक सभासदोंको, अपराधके सिद्ध होनेपर पृथक् न कर सकेगी जबतक, उनके स्थानमें अन्य सभासदोंको नियत न कर ले।

९. यदि किसी सभासद्का देहान्त हो जाय वा वेदोक्त धर्मको छोड़कर वह उक्त नियमोंके विरुद्ध चलने लगे तो सभापतिको उचित है कि सब सभासदोंकी सम्मतिसे उसको पृथक् करके उसके स्थान किसी और योग्य वेदोक्त धर्म-युक्त आर्य्य पुरुषको नियत करे। परन्तु उस समयतक साधारण कामोंके अतिरिक्त कोई नया काम न छेड़ा जाय।

१०. इस सभाको अधिकार है कि सब प्रकारका प्रबन्ध करे और नये उपाय सोचे। परन्तु यदि सभाको अपने परामर्शपर पूरा पूरा निश्चय और विश्वास न हो तो समयका निर्धारण करके लेखद्वारा सम्पूर्ण आर्य्यसमाजोंसे सम्मति ले और बहुपक्षानुसार उचित प्रबन्ध करे।

११. प्रबन्धका घटाना बढ़ाना, स्वीकार, अथवा अस्वीकार करना, किसी सभासद्को नियत या पृथक् करना, आय-व्ययकी जाँच-पड़ताल करना, अन्य हानि-लाभ सम्बन्धी विषयोंको सभापति वर्षभरमें अथवा छः मासमें छपाकर चिट्ठीद्वारा सब सभासदोंमें प्रचारित करे।

१२. यदि इस स्वीकार-पत्रके विषयमें कोई झगड़ा उठे तो उसको राजगृहमें न ले जाना चाहिए, किन्तु जहाँतक हो सके यह सभा अपने आप उसका निर्णय करे। यदि आपसमें किसी प्रकार निर्णय न हो सके तो फिर न्यायालयसे निर्णय होना चाहिए।

१३. यदि मैं अपने जीतेजी किसी योग्य आर्य्य पुरुषको पारितोषिक देना चाहूँ और उसकी लिखत-पढ़त कराकर रजिस्टरी करा दूँ तो सभाको चाहिए कि उसको माने और दे।

१४. मुझे और मेरे पीछे सभाको सदा अधिकार रहेगा कि उक्त नियमोंको देशके किसी विशेष लाभ और परोपकारके लिए न्यूनाधिक करें।

(हस्ताक्षर) 'दयानन्द सरस्वती'।

राणाजी एक दिन श्रीसत्संगमें बैठे हुए थे। उनके अन्तःपुरमें सन्तानदर्शनकी आशा थी। प्रसङ्ग-वश स्वामीजीने कहा कि आपको पुत्र प्राप्त होगा।

माघ सु० २ सं० १९३९ को स्वामीजीका वचन सत्य सिद्ध हो गया। श्रीमन्महाराणाके भवनमें पुत्र-जन्म महोत्सवके उपलक्ष्यमें आनन्दके बाजे बजने लगे। चारों ओरसे बधाई आने लगी। राणाजीने इस प्रसन्नताका समाचार स्वामीजीके आसनपर निवेदन कराया और आठसौ रुपया फिरोजपुर अनाथालयको प्रदान किया।

राणाजीने श्रीसेवामें निवेदन किया कि यदि आप दर्शनोंका भाष्य कर दें तो उसके छपवानेके लिए बीस सहस्र रुपया मैं भेंट करनेको समुद्यत हूँ। स्वामीजीने उत्तर दिया कि वेद-भाष्य समाप्त होनेपर दर्शनोंके विषयमें सोचा जायगा।

जिस सीसोदिया वंशकी विमल कीर्तिको महाराणा प्रतापने उदयास्ततक विस्तृत करके अमर बना दिया, जिस वंशने—"जो राखे निज धर्मको तेंहि राखे करतार"—इस पदको अपना आदर्श माना, जिस वंशके वीरोंने अपनी आन-बान और मान-मर्यादाकी रक्षाके निमित्त मर मिटना तो स्वीकार किया, परन्तु कायर बनकर उसको बट्टा नहीं लगाया, और जिस वंशकी बहु बेटियोंने प्रचण्ड चिताओंपर चढ़कर भस्मीभूत होना तो उत्तम समझा, परन्तु अपने पवित्र चरित्रकी चिट्टी चादरको मलिन-मनवाले, दुष्ट मनुष्योंका हाथ-स्पर्श होने नहीं दिया; उस विशुद्ध वंशके शिरोमणि, श्रीमन्महाराणा सज्जनसिंहजीको अपना शिष्य बनाकर, जगद्गुरु दयानन्द प्रस्थान करनेके लिए समुद्यत हो गये। महाराणाजी श्रीचरणोंसे वियुक्त होना तो नहीं चाहते थे, परन्तु ऐसे निर्मोही महापुरुष रोके रुक भी नहीं सकते।

फागन ब० ७ सं० १९३९ को स्वामीजीने उदयपुरसे प्रस्थान करना नियत किया। उनके सम्मानके उपलक्ष्यमें एक सभा लगाई गई। महाराजको एक अत्युत्तम और उच्च सिंहासनपर बैठाकर, एक सुन्दर पुष्प-मालासे उनका पूजन किया गया। इसके उपरान्त एक सज्जनने, श्रीमन्महाराणाजीकी ओरसे, नीचे लिखा सम्मान-पत्र पढ़कर सुनाया—

"स्वस्ति श्रीसर्वोपकारकरणार्थ कारुणिक परमहंस परिव्राजकाचार्य्यवर्य्य श्रीमद्दयानन्द सरस्वती यतिवर्येषु इतः महाराणा सज्जनसिंहस्य नतयः समुल्लसन्तु उदन्त्यः। आपका आठे सात मासका निवास सूं चित्त अत्यन्त आन-

न्दमें रह्यो। क्योंकि आपकी शिक्षाका प्रकार श्रेष्ठ और उन्नतिदायक है। और आपका संयोग सूं केही न्याय धर्म्मादि शारीरिक कार्य्योंमें निस्सन्देह लाभ प्राप्त होवाकी, म्हांका सभ्य जनासहित दृढ़ आशा होवे है कारण कि शिक्षा और उपदेश वा पुरुषोंका दृढ़ होवे है जो स्वकीय आचरण भी प्रतिकूल नहीं राखे। सो आपमें यथार्थ मिल्यो। अब म्हें आपका वियोगको संयोग तो नहीं चावां परन्तु आपको शरीर अनेक मनुष्योंके उपकारक है। जीसूं अवरोध करणो अनुचित। तथापि पुनरागमनसूं आप भी म्हांका चित्तने शीघ्र अनुमोदित करेंगे इत्यलम्।" सम्वत् १९३९ फाल्गुन कृष्ण ५ भौमे। हस्ताक्षर महाराणा सज्जन सिंहस्य।

चौथा सर्ग।

स्वामीजी, उदयपुरसे अतिसम्मान-पूर्वक विदा होकर, चित्तौड़ होते हुए फाल्गुन बदी अमावस १९३९ को शाहपुरामें सुशोभित हुए। निवास नगरके बाहर राजकीय उद्यानमें किया गया। शाहपुराधीशने श्री चरणोंके दर्शन अनेक दिनोंतक चित्तौड़में किये थे। महाराजके अनुपम प्रभाव-जनक भाषणोंसे प्रभावित होकर राजाधिराजने अपने नगरमें पधारनेके लिए उनसे विनयकी थी। उन्होंने स्वीकार करते हुए कहा था कि अनुकूल अवसर आनेपर अवश्य आऊँगा। उसी प्रणकी पालनाके लिए वे शाहपुरामें पधारे।

श्रीस्वामीजीके शुभागमनको शाहपुराधीशने अपने सौभाग्यकी शुभ सूचना समझा। वे उसी सायंको श्रीसेवामें उपस्थित हुए और विनीत नमस्कार करके प्रश्न पूछने लगे। पाँच दिन तो राजाधिराजने संशयनिवारणमें बिताये। उसके उपरान्त सायं समयके छः बजेसे रातके नौ बजेतक वे एक घण्टाभर तो वार्त्तालाप करते और घण्टेतक अध्ययन करते। स्वामीजी राजाधिराजको मनु-स्मृति पढ़ाया करते। उनका समझानेका ढँग बहुत ही अच्छा था। फिर महाराजने उनको योग-दर्शन पढ़ाया और उसकी समाप्तिपर कुछ एक भाग वैशेषिकके भी अध्ययन कराये।

स्वामीजी प्रातःकाल भ्रमणार्थ बाहर जाया करते थे। किसी किसी दिन राजाधिराज भी वहां जा दर्शन करते और प्राणायामकी विधि सीखते।

स्वामीजी महाराजने अपने ग्रन्थोंमें संन्यास-धर्मका बड़ा महत्त्व दर्शाया है। वे प्रशान्त-चित्त, जितेन्द्रिय और ज्ञानी जनहीको संन्यासका अधिकारी वर्णन करते हैं। साम्प्रदायिक संन्यास देनेकी विधिके वे बड़े भारी विरोधी थे। उन्होंने संन्यास लेकर भिक्षाका ग्रहण करना उन्हींके लिए बताया है, जो जन जनताके हितार्थ अपना जीवन उत्सर्ग कर देते हैं। लोक कल्याणके लिए रात्रि-दिवा यत्नशील रहते हैं। सत्योपदेश और परोपकार कर्म्ममें परायण पाये जाते हैं, और जो आठों पहर प्रजाप्रेमका परम पावन पुण्यपाठ पढ़ते रहते हैं। जो मनुष्य मानव-हित-शून्य होकर अपाहजोंकी भाँति गली गलीमें भटकते फिरते हैं, जन जनके आगे हाथ पसारते हैं और घर घरके टुकड़ोंके चटोरे बन जाते हैं वे आश्रमकी मान-मर्यादा और महत्त्वको मूलसे मिटाने वाले हैं।

शारीरिक सामर्थ्य रखते हुए, अनुपकारी जनका पराये अन्नपर पेट पालना एक प्रकारका पतित कर्म्म है। इसलिए, स्वामीजीने जो लोग, लोकहितके कार्य्य नहीं करना चाहते अथवा उनके करनेमें असमर्थ हैं उनके लिए सत्यार्थ-प्रकाशके प्रथम संस्करणमें लिखा है, "बाह्य जितने कर्म्म हैं उनको त्यागकर योगाभ्यासादि आभ्यन्तर कर्म्मोंको यथावत् करें। अन्तःकरणकी सारी मलिनता और राग-द्वेष आदिको छोड़कर, निश्चिंत होकर, सदा वेदका अभ्यास करें। अपने पुत्रोंसे अन्नवस्त्र शरीरके निर्वाहके लिए लेवें। नगरके समीप एकान्तमें वास करें। प्रतिदिन भोजन-आच्छादन घरसे लेकर अपनी मुक्तिके साधनमें तत्पर रहें।"

शाहपुरामें, स्वामीजीने एक होनहार ब्राह्मण युवकको संन्यास देकर दण्ड धारण कराया। उसका नाम ईश्वरानन्द रक्खा। वह कुछ पठित भी था, परन्तु अधिक अध्ययन करनेके लिए उसे प्रयाग भेज दिया गया। स्वामीजीने वहाँ अपने यन्त्रालयके प्रबन्धकर्त्ताको लिख दिया कि जबतक यह साधु अध्ययन करता रहे इसे पाँच रुपये मासिक मिला करें।

गोपालराव नामका एक ब्राह्मण भक्त श्री स्वामीजीका जीवन-चरित्र लिख रहा था। चित्तौड़का वृत्तान्त लिखते हुए उसने वर्णन किया कि वहाँ श्रीमन्महाराणाजी, श्री महाराजको प्रतिदिन दो बार मिलते। इसपर एक नवीन

वेदान्ती, साधु अमृतरामने स्वामीजीको शाहपुरामें लिखा कि गोपालरावने आपके सत्सङ्गमें राणाजीका नित्य प्रति दो बार आना लिखा है सो सर्वथा असत्य है ।

स्वामीजी महाराजने साधु महाशयका पत्र पाते ही गोपालरावको यह पत्र लिखा—"पण्डित गोपालराव हरि जी ! आनन्दित रहो । आज एक साधुका पत्र मेरे पास आया वह आपको भेजता हूँ । साधुका लेख सत्य है, परन्तु चित्तौड़ सम्बन्धी इतिहासमें न जाने कहाँसे सुन सुनाकर ऐसा लेख लिख दिया है । उस समय वहाँ उदयपुराधीशसे मेरा समागम केवल तीन बार ही हुआ । आपने तो प्रतिदिन दो बार होता लिखा है आप जानते ही हैं कि ऐसे कार्य्योंके परिशोधनका अवकाश मुझे नहीं मिलता ।

आप यद्यपि सत्य-प्रिय हैं और शुद्धभावभावित हैं, उसी चित्त और हितसे कार्य्य कर रहे हैं, परन्तु जब आपको मेरा ठीक ठीक वृत्तान्त विदित ही नहीं है तो इसके लिखनेमें साहस कभी न कीजिए । थोड़ासाभी असत्य मिल जानेसे सम्पूर्ण निर्दोष कृत्य भी बिगड़ जाता है । ऐसा ही निश्चय रखो और इस पत्रका उत्तर शीघ्र भेजो ।

वैशाख शुक्ला द्वितीया १९४० दयानन्द सरस्वती ।

एक दिन, एक नैयायिक पण्डित स्वामीजीसे सम्वाद करने लगा। उसको महाराजने कहा कि 'देवदत्तो ग्रामं गच्छति' इसका नव्य न्यायकी रीतिसे अर्थ करो । वह आध घड़ीतक इसीपर बोलता रहा । फिर महाराजने उसके कथनमें दोष दिखाकर खण्डन किया और कहा कि इसका सरल और सीधा अर्थ तो यह है कि देवदत्त ग्रामको जाता है; परन्तु ये काक-भाषाभाषी इसे ऐसा जटिल बनायँगे कि किसीके पल्ले कुछ पड़ने ही नहीं पाता । महाराजने उसे यह भी कहा कि देवताजी ! पहले आर्ष दर्शनोंके दर्शन कर लीजिए। इसके पश्चात् दार्शनिक बातचीत कीजिएगा ।

एक दिन, एक मनुष्य स्वामीजीके निकट बतासे लाया । उन्होंने देखते ही कहा कि ये पत्थरपर चढ़ाये गये हैं, इस लिए मैं नहीं लेता । उसके पूछनेपर, स्वामीजीने उसके बतासोंपर सिन्दूरका चिन्ह पड़ा हुआ दिखा दिया ।

एक दिन, स्वामीजी बड़े बलसे मूर्ति पूजाका खण्डन कर रहे थे। उस समय एक पण्डितने कहा कि वाल्मीकि-रामायणमें लिखा है कि श्रीरामने महादेवका पूजन किया था—जैसे "अत्र पूर्वं महादेवः प्रसादमकरोद् विभुः"। स्वामीजीने उत्तरमें कहा कि इसमें तो प्रतिमा-पूजनका लेश भी नहीं है। इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि यहाँ परमेश्वरने मुझपर कृपा की।

एक दिन, दधिमथ स्वामीजीके पास आया। स्वामीजीने कहा "आइए, व्यासजी बैठिये। आज मुझे भी छुट्टी है आपसे वार्त्तालाप करनेमें पूरा सुभीता होगा।" व्यासने निवेदन किया—'भगवन्! छुट्टी तो बद्ध लोगोंके लिए हुआ करती है। आप तो परमहंस हैं। पूर्ण स्वाधीन और स्वच्छन्द हैं। आपको ऐसा कौन बन्धन शेष है जिससे आपने आज अवकाश मनाया है।

स्वामीजीने उत्तर दिया, "मैं सारे धार्म्मिक बन्धनोंको मानता हूँ। वर्णाश्रमसे, नीति-रीतिसे मैं उच्छृंखल और निरङ्कुश नहीं हूँ। स्वच्छन्दतापूर्वक ही वेद-भाष्य आदिका कार्य किया करता हूँ। आज उससे छुट्टी मनाई है।

एक रामस्नेही सज्जनने, स्वामीजीके समीप आकर निवेदन किया, "केवल नामहीसे निस्तार हो जाता है। भव-सागर पार उतरनेके लिए नामीके गुणोंको जानना कोई आवश्यक नहीं है।"

स्वामीजीने कहा, "परमानन्दकी प्राप्तिके लिए नामीके गुणोंका ज्ञान होना अत्यावश्यक है। जैसे शब्दके साथ ही उसके अर्थका बोध हो जाता है, जल कहते ही शीतगुण-प्रधान, द्रवीभूत जल पदार्थकी प्रतीति हो जाती है, ऐसे ही नाम लेते ही उसके वाच्यका ज्ञान हो जाना चाहिए। जैसे जल शब्द कहते ही उसके वाच्यका ज्ञान होना और उसकी प्राप्तिकी क्रिया करना परमावश्यक है ऐसे ही नाम और उसके अर्थको जानना तथा उसकी उपलब्धिके लिए प्रत्याहार, धारणा और ध्यान आदि क्रिया-कलापका करना अतीव आवश्यक है।"

स्वामीजी कच्ची पक्की रसोईके झगड़ेको एक आडम्बर ही समझते थे। एक साधु स्वामीजीके पास पढ़ता था। वह एक दिन चौकेके बखेड़ेपर रसोइएके साथ लड़ पड़ा। स्वामीजीने उसे बुलाकर कहा, "आप संन्यासी भी हो गये, परन्तु चौके चूल्हेका भ्रम-जाल आपके पीछे पड़ा ही रहा। कच्चे पक्केके पाप-

पाखण्डने आपका पिण्ड न छोड़ा। भाई! यहाँ तो चारों वर्णोंके परस्परके भेद-भावको मिटाना होगा। सार्वजानिक बन्धु-भावनाकी भूमिपर प्रेमका प्रासाद निर्माण करना होगा।

महाराजने रामस्नेहियोंके महन्तका धर्म-चर्चाके लिए आहूत किया। परन्तु वे महन्तजी तो अपने आसनपर ही बैठे बढ़-बढ़कर बातें बनाना जानते थे। बेतुकी उड़ाना ही उन्हें आता था। सिर-पैर-विहीन कथायें, अपने सेवकोंके मस्तकमें उडेलते जाना उनके कर्त्तव्यकी इति श्री थी। वे भोलेनाथ, भला शास्त्रार्थ और सम्वादको क्या जानें! इस लिए सम्वाद न हो सका।

स्वामीजीने मनोनिग्रह भी परम कोटिका किया हुआ था। उनकी सब वृत्तियाँ वशवर्तिनी थीं। मस्तकके सूक्ष्मतम तन्तुओंपर भी उनका इतना वशीकार था कि निद्रातक उनके सर्वथा आधीन थी। शाहपुरामें मध्यान्ह समय भोजन पाकर, स्वामीजी स्वल्प समयके लिए सो जाया करते। उन दिनोंमें सोलह मिनटतक नींद लिया करते थे। सोते उठकर मुँह-हाथ धोने और कुल्ले करनेके लिए जल लेते। नौकर भी घड़ी देखता रहता। ज्योंही सोलहवाँ मिनट आरम्भ होता त्योंही वह जलका कलसा और अंगोछा ले, हस्त-मुख प्रक्षालन करनेके स्थानपर, जाकर खड़ा हो जाता। ठीक सोलहवें मिनटकी समाप्तिपर जगद्गुरु जग जाते और तत्काल मुखादि धोकर कार्य्यपर आ बैठते।

रात्रिके समय वे ठीक दस बजे शुद्ध, स्वच्छ, साधारण और शुभासन शय्यापर शयन किया करते। भक्तजनोंसे वार्त्तालाप करते हुए जिस समय दस बजनेकी पहली 'टन' की ध्वनि होती वे तुरन्त खाटपर टेढ़े हो जाते। दूसरी 'टन' ध्वनिपर प्रगाढ़ निद्रामें लीन जान पड़ते। उनके इस असाधारण सामर्थ्यपर सभीको परमाश्चर्य हुआ करता था।

योगानुष्ठानसे उनकी पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ इतनी निर्मल हो गईं थीं, कि सूक्ष्मतम विषयको भी सुगमतासे ग्रहण कर लेती थीं। योग-दर्शनकथित दिव्य सम्वित् उन्हें प्राप्त थी।

स्वामीजीके निवास-स्थानपर खसकी टट्टियाँ लगा दी गईं थीं। दुपहरके पश्चात्, जब लू चलने लगती, ग्रीष्मका भीषण उत्ताप, जब वायु-सहित

भूमिको उत्तप्त बना देता तो उस समय, उन टट्टियोंपर जल सींच दिया जाता, जिससे सारी कोठरीकी वायु सु-शीतल और सु-गन्धित हो जाती।

एक दिन मध्यान्होत्तर समय, जब जल छिड़का गया तो महाराजने कहा कि आज कहींसे दुर्गन्धि आ रही है। सेवकोंने इधर उधर सर्वत्र घूमकर देख भाल की, परन्तु कहीं भी कोई सड़ी गली वस्तु दिखाई न दी। टट्टियोंमें जल सींचनेके लिए एक कुण्डमें कुछ पानी एकत्र रहा करता। उसका बासी जल नित्य निकालकर नया जल उसमें डाला जाता। भगवान्‌ने सेवकको बुलाकर पूछा कि बताओ, क्या तुमने खसकी टट्टियोंपर कुण्डका बासी पानी डाला है?

उसने विनती की कि महाराज। वैसे तो कुण्डमेंसे कलका सारा पानी मैंने उलीचकर निकाल दिया था, कदाचित् घड़ा आध घड़ा रह गया होगा। परन्तु उसमें लगभग सौ घड़े नये जलके डलवाये हैं। तब महाराजने कहा कि उसी थोडेसे बासी जलकी दुर्गन्ध आ रही है। अच्छा, इस समय टट्टियाँ उतार दो और फिर कभी इनपर ऐसा जल न सींचना। भगवान्‌की घ्राण-इन्द्रियकी इतनी प्रबल शक्तिका पूर्ण परिचय पाकर भक्तोंको पूरा निश्चय हो गया कि इनको योगबलहीसे ऐसे सूक्ष्म विषयका ज्ञान हो जाता है।

जिस समय श्रीमहाराज उदयपुरमें धर्म्मोपदेश दे रहे थे उन्हीं दिनों श्री-महाराज प्रतापसिंहजी और राव राजा तेजसिंहजीके प्रार्थना-पत्र श्रीसेवामें आये थे। उनमें उन्होंने जोधपुर पधारनेके लिए अत्याग्रहपूर्वक विनती की थी। महाराजने उन महानुभावोंकी उत्कृष्ट उत्कण्ठाका आदर करते हुए लिख दिया था कि हम शाहपुरासे होकर जोधपुर आयेंगे।

शाहपुरामें महाराज जसवन्तसिंहजीका लिखा हुआ निमन्त्रण-पत्र आया; जिससे श्रीमहाराजने शाहपुरासे प्रस्थान करनेका समय ज्येष्ठ कृष्णा ४ शनिवार सम्वत् १९४० और दिनके दस बजे नियत कर दिया।

स्वामीजीकी जोधपुर जानेकी सु-सज्जा देखकर, शाहपुराधीशजीने श्री-सेवामें निवेदन किया, "भगवन्! राजा लोग भोग विलास और मन-माने आमोद-प्रमोदमें निमग्न रहा करते हैं। जहाँ आप पधारने लगे हैं वहाँ वारा-ङ्गनाओंका अधिक खण्डन न कीजियेगा।"

स्वामीजीने उत्तर दिया—"मैं बड़े बड़े कँटीले वृक्षोंको नुहरनेसे नहीं काटा करता। उनके लिए तो अति तीक्ष्ण शस्त्रोंकी आवश्यकता होगी।"

शाहपुराधीशने महाराजको बिदा करते समय २५०) ढाई सौ रुपए श्री-चरणोंमें निवेदन किये। और ५०) पचास रुपये मासिक एक उपदेशकके लिए देनेका वचन दिया। विदाईके समय अति भक्ति-भावसे सभामें यह सम्मान-पत्र श्री महाराजको सुनाया गया:—

स्वस्ति श्री सर्वोपकारार्थं कारुणिक परमहंस परिव्राजकाचार्य्य श्रीमद्दयानन्द सरस्वतीजी महाराजके चरणारविन्दमें महाराजाधिराज शाहपुरेशकी बार बार नमस्तेऽस्तु !

अपरञ्च यहाँ आपका विराजना सार्द्धद्वय मासपर्य्यन्त हुआ। तथापि आपके सत्यधर्म्मोपदेशके श्रवणसे मेरी आत्मा तृप्त न हुई। आशा थी कि आप ग्रीष्मान्त अत्रस्थित होते, परन्तु जोधपुराधीशोंकी ओरसे दर्शनोंकी, वेदोक्त धर्मोपदेश-ग्रहणकी, सत्याचरण और असत्य त्यागकी तथा आपके मुखारविन्द-से श्रवण करनेकी अभिलाषा देखकर आपने वहाँ पधारना स्वीकार किया। भवच्छरीर भी करोड़ों मनुष्योंके उपकारार्थ प्रकट हुआ है यह समझकर, मेरी भी सम्मति यही हुई है कि आपका वहाँ पधारना ही उत्तम है। यही समझकर यहाँ विराजनेकी प्रार्थना नहीं की। आशा है कृतकृत्य करनेके निमित्त पुनरागमन करेंगे।

सम्वत् १९४० ज्येष्ठ कृष्ण ४ (हस्ताक्षर) नाहरसिंहस्य।

जोधपुर जाते समय आर्य्य लोगोंने स्वामीजीसे कहा, "जहाँ आप जा रहे हैं वहाँके लोग कठोर प्रकृतिके हैं। कहीं ऐसा न हो कि सत्योपदेशसे चिढ़कर श्रीचरणोंको पीड़ा पहुँचायें।"

स्वामीजीने उत्तर दिया—"यदि लोग, हमारी अँगुलियोंको बत्तियाँ बनाकर जला दें तो भी कोई चिन्ता नहीं। मैं वहाँ जाकर अवश्य सत्योपदेश दूँगा।"

महाराज अति सम्मानपूर्वक शाहपुरासे बिदा हुए और ज्येष्ठ बदी ५ को अजमेर ठहरकर पाली रेलवे स्टेशनपर पहुँचे। वहाँ, जोधपुरके महाराजाकी ओरसे चारण नवलदान आदि सज्जन, स्वामीजीको लिवा ले जानेके लिए,

एक हाथी, तीन ऊँट, तीन रथ, एक सेज-गाड़ी और चार अश्वारोही सैनिक लेकर, आ गये ।

पालीसे चलकर श्रीमहाराज दो रातें मार्गमें रहे और ज्येष्ठ बदी ८ को जब, जोधपुरसे तीन कोसके अन्तरपर रह गये तो प्रातःकालके वायुसे लाभ उठानेके लिए पैदल चलने लगे । साथी भी यानोंसे उतर खड़े हुए और पीछे पीछे पैदल हो लिये ।

जोधपुर-नरेशकी ओरसे महाराजके स्वागतका अत्युत्तम प्रबन्ध किया गया । रावराजा तेजसिंहजी और राव राजा ज्वानसिंहजी, परिव्राजकाचार्य्यजीके सम्मुखाभिगमन और प्रति ग्रहण करनेके लिए, रत्नाढातक पैदल गये । उन्होंने दूरसे देखा कि एक कषायाम्बरधारी संन्यासी गम्भीर गतिसे चलते चले आ रहे हैं । उनके एक हाथमें एक लम्बायमान दण्ड है । उनका विशाल भाल बाल-कालके सूर्य्यकी किरणसे महामूल्य मणिके समान, दीप्तिमान् हो रहा है । मनोहर मुखमण्डल, मेघ-मुक्त चन्द्रमाकी भाँति, चमकता हुआ दर्शकके चित्तको आल्हादित कर रहा है । उसपर अपूर्व प्रतिभाकी शुभ्र-प्रभा पूर्ण-रूपसे विराजमान है । नीले गुलाबी डोरोंसे खचित उनके विमल रसीले नेत्रोंकी निर्मल ज्योति, दर्शकके अन्तःकरणकी कोठरीको जगमगाये जाती है । उनके नव-पल्लवसमान होठोंपर, मन्द मुस्कानकी मनोगम रेखा रह-रहकर चमकती है । दाड़िमके दानोंकी भाँति, उनके उज्ज्वल दांतोंकी पाँति, पवित्र प्रभा निःसरण कर रही है । उनकी दोनों भुजायें घुटनोंको स्पर्श करती हुई शोभा-युक्त बन रही हैं । उनका वर्ण, तप्त स्वर्णसमान है । गौरव-सूचक गेरूए वेषमें उनकी निष्कलङ्क और कुन्दन-कल्प कायाकी अलौकिक छटा, ऐसी दिखाई देती जैसे स्वर्णके सिंहासनपर विशुद्ध स्वर्णकी प्रतिमा, सौन्दर्य्यका स्रोत बन रही हो । सम्पूर्ण पवित्रताओंसे परिवेष्टित, तेजोधाम, संन्यासीराज धीरे धीरे जब दोनों रावराजाओंके निकट पहुँचे तो उन्होंने नम्रीभूत होकर गुरुदेवके अरुणवर्ण, चारु चरण अपने हाथोंसे चर्चित किये । विनीत भावसे कुशल-मङ्गल पूछा । महाराजने भी उनको आशीर्वाद देकर योग-क्षेम पूछा और कहा' "आप इतनी दूर पैदल चलकर क्यों आये हैं ? आपको इसमें कष्ट हुआ होगा' ।

रावराजा तेजसिंहजीके हृदय-देशमें तो श्री दर्शनोंहीसे भवभारनाशिनी,

भगवती, भक्ति-भागीरथीका प्रादुर्भाव हो गया था, श्रद्धाकी लताका शुभांकुर निकल आया था। उन्होंने झुककर निवेदन किया कि श्री महाराजकी अगानीके लिए पैदल चलकर आना हमारे लिए, परम पुण्यके उपार्जनका एक साधन हो गया है। दोनों राव राजाओंने, अपने साथियों-सहित, अति सम्मान और समारोहसे स्वामीजीको ले जाकर मियाँ फैजुल्ला खाँके उद्यानमें ठहराया। उस उद्यानके द्वारपर महाराजा श्री प्रतापसिंहजी उपस्थित थे। उस समय स्वामीजीके साथ माननीय रायबहादुर श्री गोपालराव हरि देशमुखके सुयोग्य पुत्र लक्ष्मणरावजी भी थे। ये खानदेशमें असिस्टेण्ट कलेक्टर थे। वहाँसे छुट्टी लेकर महाराजसे योगाभ्यास सीखने आये थे।

जोधपुराधीशकी ओरसे चारण नवलदान, चार सेवकों-समेत श्रीसेवामें नियुक्त हुए। छः सैनिकों-सहित एक हवालदार पहरेपर लगाया गया। महाराजके दुग्धपानके लिए एक गाय आ गई और रावराजा तेजसिंहजीको भी महाराजाकी आज्ञा हुई कि वे श्री स्वामीजीकी सेवाशुश्रूषाकी स्वयं देखरेख रक्खें। रावराजा महाशय तो महाराजके भक्त बन ही चुके थे, इस लिए उन्होंने इस आदेशको अपने सौभाग्य-सूर्य्यके उदयके समान ही समझा।

जिस दिन महाराज जोधपुरमें पधारे उसी दिनसे सत्सङ्गियोंकी मण्डलियाँ उनके पास आने लग गईं। वार्त्तालाप और प्रश्नोत्तरद्वारा ही अनवरत-रूपसे, उपदेश-वारिवर्षण होने लग गया। उनकी उक्तियाँ युक्तियाँ और प्रयुक्तियाँ श्रोताओंकी लहलहाती चित्त-लताओंको धीमे धीमे पड़नेवाली सावनकी फुहारकी तरह, शान्त करती थीं। राठौर-राज्यके सरदार और राठौर-वंशके राजपूत प्रभु दयानन्दके एक एक करके शिष्य बनने लग गये। महाराज श्री प्रतापसिंहजीका हृदय-कमल महाराजकी अनन्य भक्तिकी सुगन्धिसे परम सुवासित हो गया था। उनको गुरुमहाराजके सुखका रात दिन ध्यान रहता। वे प्रतिदिन नियमपूर्वक और बड़ी भावनासे सत्सङ्ग-सुधासिन्धुमें स्नान करके अपने अहोभाग्य मानते। उनकी इस अपरिमित प्रीतिसे, अन्य अनेक राजपूत भी प्रभावित हो रहे थे। राठौर-राज्यमें नमस्तेकी मधुर और कर्ण-कोमल ध्वनि सर्वत्र गूँजती सुनाई देती थी। आर्य्यत्वका सर्वत्र प्रचार होता चला जाता था।

महाराजके जोधपुरमें जानेके पश्चात्, सत्रहवें दिन श्री महाराजा यशवन्तसिंहजी बड़े समारोहसे उनके दर्शनोंको आये । समीप आकर उन्होंने बड़ी विनीततासे चरण स्पर्शपूर्वक नमस्कार की । एक सौ रुपये और पाँच सुवर्ण-मुद्रायें भेंटमें रक्खीं । यद्यपि कुर्सियोंका यथोचित प्रबन्ध था और श्री स्वामीजी, महाराजा महाशयको कुर्सी निमन्त्रित भी कर रहे थे, परन्तु आश्रम-मर्यादा और विनयधर्ममें निपुण, जोधपुराधीश नीचे फर्शपर ही बैठ गये । उन्होंने साथ ही यह भी कहा, "आप हमारे स्वामी हैं और हम आपके सेवक हैं, इस लिये आपके सामने नीचे आसनपर बैठनेहीमें हमारी शोभा है ।"

श्री स्वामीजी, महाराजा महाशयको नीचे बैठा देखकर उठ खड़े हुए और कहने लगे कि आपका ऐसे आसनपर विराजना मेरे मनको अच्छा नहीं लगता । साथ ही उन्होंने सम्मान-पूर्वक शिष्ट पद्धतिसे महाराजाका, हाथ अवलम्बन करके उनको कुर्सीपर ला बिठाया । परमहंसजीके आर्य्योचित औदार्य्यका परम प्रमाण, प्रत्यक्ष रूपमें पाकर, राठौर-वंशके सभी सरदार मोहित हो गये । और मन-ही-मन उनकी प्रशंसा करने लगे । तीन घण्टेतक महिपाल, महर्षिके सत्सङ्गमें बैठकर मनु-स्मृतिसे राजधर्म्म श्रवण करते रहे । स्वामीजीके वचन उनके लिए अपूर्व रुचिकर थे; उनके आत्मामें बसते जाते थे । उनके अन्तःकरणमें रचते जा रहे थे । थोड़ी देरतक कुछ वार्त्तालाप भी हुआ और फिर महाराजाने वहांसे उठते समय निवेदन किया—"भगवन्, आप ऐसे पर-दुःख भंजन करनेवाले दयालु महात्माओंका यहाँ पदार्पण करना अति दुर्लभ है । यह हमारे सौभाग्य-प्रभातका शुभ-सूचक शुभागमन है, जो श्रीमन्तने यहाँ अपने देव-दुर्लभ दर्शन दिये हैं ! इस लिए, श्री सेवामें यह विनीत विनय है कि पूज्यपाद जब तक यहाँ निवास करें, अपने उपदेशामृतसे लोगोंको कृतार्थ करते रहें ।

महाराजके मिलापके दूसरे दिनहीसे, स्वामीजीने विविध विषय सम्बन्धी व्याख्यान वारिवर्षणकी घोषणा कर दी । जिस बङ्गलेमें महाराज विराजमान थे उसके विशाल आङ्गनहीमें उपदेशोंका प्रबन्ध किया गया । समय सायंके चार बजेसे छः बजेतक नियत हुआ ।

पहले दिन जब महाराज व्याख्यान-स्थानको पधारने लगे तो राव राजा

तेजसिंहजीने प्रार्थना की कि भगवन्, महाराजा महाशयके रहनसहनके विषयमें कुछ भी न कहिएगा।

स्वामीजीने किंचित् बलपूर्वक कहा कि क्या आप मुझसे झूँठ कहलाना चाहते हैं ? स्मरण रखिए, मैं जो कुछ कहूँगा सत्य ही कहूँगा मेरा कथन कभी असभ्यता सूचक भी नहीं हुआ करता। और न ही मैं, किसी व्यक्ति विशेषका नामनिर्देश करके, कभी कर्ण-कटु कटाक्ष किया करता हूँ।

राव राजा महाशयने सिर झुका दिया और महाराज व्याख्यान-स्थानमें जा पहुँचे और एक स्वच्छ और सुन्दर सिंहासनपर आरूढ़ हो गये। उस दिन महाराजा यशवन्तसिंहजीके बिना राज्यके सारे उच्च पदाधिकारी कर्मचारी वहाँ एकत्र हुए। सेठ साहूकार आदि सज्जन भी आये। सभी उपस्थित सभ्य चातककी भाँति उनके वचन-बिन्दुके प्यासे थे चकोरकी भाँति तृषित और निर्निमेष नयनोंसे उनके विमल मुख-चन्द्रके दर्शन पा रहे थे।

ठीक समयपर स्वामीजीने अपने दोनों नेत्रोंके पलक-द्वार बन्द कर लिये और उनकी ज्वलन्त ज्योतिको उलटकर, त्रिकुटि-मन्दिरको जगमगा दिया। फिर भव-भय हरण, परम पावन प्रणवका गम्भीर नाद ऐसा गूँजाया कि सब श्रोताओंकी मनोवृत्तियाँ मूर्छित हो गईं। ऐसा प्रतीत होता था कि कोई वादन-कला-प्रवीण जन किसी मन्दिरके द्वार बन्द करके वीणा बजा रहा है। सङ्गीत-रसने मानों इस स्वरमें अवतार धारण कर लिया है। जैसे वसन्तमें, पुष्पित लतापर भ्रमर गूँजता है उसी प्रकार होंठ बन्द करके महाराज ओम्-ध्वनि गूँजाते थे, परन्तु उसका अलौकिक माधुर्य्य मोहिनी मन्त्रका काम करता जाता था। ग्रीष्मके भीषण उत्तापसे सन्तप्त वनराजीपर, जैसे बदली छमाछम बरसकर, उसे शान्त बना रही हो, उसी प्रकार वह स्वर-रस श्रोताओंके वृत्ति-वनपर वर्षण करके उसे अननुभूत आनन्द प्रदान कर रहा था। वह सहस्रों मनुष्योंकी सभा थी, परन्तु कोई भी मनुष्य हिलताडुलता तक न था। सर्वत्र मौन छा रहा था। प्रशान्तिका अटल राज्य विराजमान था।

प्रत्येक उपस्थितको यह प्रतीत होता था कि यह अपूर्व नाद मेरे कानोंके अति निकट गूँज रहा है। उससे दशों दिशायें निनादित हो रही हैं। सारी सभा, कई मिनटोंतक एकचित्त होकर अनुपम नाद-रस लूटती रही। फिर

जब श्री स्वामीजीने मन्त्र-गायन आरम्भ किया तब लोगोंकी चित्तवृत्तियाँ एकाकार पदसे नीचे उतर सकीं। जोधपुरके अधिवासियोंके लिये वह आनन्द सर्वथा नया था। उन्होंने ऐसे स्वर्गीय स्वादु रसका, पहले कभी, स्वप्नमें भी आस्वादन नहीं किया था। इस लिये हर्षके उत्कृष्ट उत्कर्षसे उनके हृदय उछलने लग गये।

महाराजका व्याख्यान जब आरम्भ हुआ तो सबकी दृष्टियाँ सिमिटकर उनके दैवी स्वरूपकी छायाकी अद्भुत छटाको निरखने लगीं। सबके श्रोत्र एकरूप होकर उनके वचनामृत पान करने लगे। उनका प्रथम व्याख्यान 'ईश्वर' विषय पर था। उसमें उन्होंने ईश्वरके स्वरूपका निरूपण ऐसे अनुपम प्रकारसे किया कि भक्ति-भावके भादोंकी झड़ी लग गई।

लोग परम्परासे पुराणोंकी पुरानी चासना चखते चखते उकता गये थे। देवमालाकी मनोरंजक, रोचक, भयानक, और कल्पित कथा-कहानियोंसे उनके जी ऊब गये थे। महाराजके यथार्थ उपदेशोंसे उनके हृदयके कपाट खुल गये। उनको छल-बल-रहित, सरल सत्यकी समझ पड़ी।

प्रतिदिन, श्री महाराज सायंके चार बजे व्याख्यान-स्थानपर आ विराजते और ज्ञान-गङ्गा बहाकर श्रोताओंको निहाल कर देते। वे अपनी शाण-शाणित कुशाग्र बुद्धिके प्रबल प्रतापसे युक्तियों और प्रमाणोंका ऐसा तार लगाते कि सुनते सुनते ही सारे भ्रम दूर हो जाया करते। यद्यपि व्याख्यानके अनन्तर शङ्का-समाधानके लिये समय दिया जाता परन्तु विरला ही कोई उस समय कुछ पूछता। हाँ, कभी कभी कोई अपनी पुरानी परिपाटीको पीटनेवाला, पुराण-पद्धतिका पण्डित कुछ पूछ लेता, परन्तु एक दो वार बोलकर ही जी छोड़ बैठता।

क्षीर-नीरका निर्णय करनेवाले परमहंसके सत्सङ्गमें न्याय होता था, नीति होती थी, युक्तियां होती थीं, प्रमाण होते थे और सर्वोपरि सत्यका प्रकाश होता था। कितना ही बली-छली कोई क्यों न हो वहाँ आकर वह छल-छिद्रकी सारी चालें चूक जाता। उसका हृदय शून्य हो जाता। उसे पूछने योग्य कोई बात सूझती ही नहीं थी। वह अपना बचाव इसी बातमें समझता था कि उस नर-सिंहके सामने ही न आये।

जोधपुरमें उन दिनों एक गणेशपुरी नाम प्रसिद्ध संन्यासी आये हुए थे। वे प्रबल पण्डित भी थे। अपने डेरेपर स्वामीजीके विरुद्ध बोलनेमें भूतलाकाश एकाकार कर देते। अपने पक्षकी पुष्टिमें, छाती ठोंककर, प्रमाण देनेके लिए समुद्यत हो जाते। कुछ सज्जनोंने उनको जाकर कहा, "महात्माजी! स्वामी दयानन्दजी अपने शास्त्र-सामर्थ्य और यौक्तिक बलसे देवमालाकी लड़ीको तोड़ रहे हैं। आपकी पुराण-पाठकी पक्की और परिपुष्ट पटड़ीको उखाड़े चले जाते हैं। आप चलकर उनसे शास्त्रार्थ कीजिए। नहीं तो बड़ी देरका बना बनाया आडम्बर बिगड़ जायगा।"

गणेशपुरीने आज-कल करते कई दिन तो टालमटोलमें बिता दिये, परन्तु जब देखा कि ऊपरकी टीप-टाप बनाये रखनेके लिये शास्त्रार्थकी चक्कीमें पिसना ही पड़ेगा तो स्पष्ट कह उठे, "भाई! वे तो जो कुछ कह रहे हैं सो सब सत्य है। उनके सम्मुख होनेका न तो हममें साहस है और न ही सामर्थ्य।" जब उनको लोग बहुत विवश करने लगे तो वे अपना डेरा-डण्डा उठाकर वहाँसे चुपके ही कहीं चल दिये।

राव राजा ज्वानसिंहजी आदि अनेक सज्जनोंने सत्संगमें प्रश्नोत्तर करके अपने सारे संशय मिटाये। एक दिन श्री महाराजा प्रतापसिंहजीने श्रीसेवामें विनीत निवेदन किया कि भगवन्! आप ब्रह्म हैं अथवा जीव?

उन्होंने उत्तर दिया मैं जीव हूँ। महाराजा महाशयने कहा कि 'हमारे पण्डित तो हमें ब्रह्म बताया करते हैं।'

स्वामीजीने उपदेश देते हुए कहा कि आप ब्रह्म होते तो आपमें ब्रह्मके गुण भी पाए जाते। उसके सर्वज्ञता आदि गुण आपमें नहीं हैं इस लिए आप जीव हैं। ब्रह्ममें भूल और अशुद्धिका मानना भारी भ्रम है।

महाराजा महाशयने फिर निवेदन किया—"भगवन्! कोई ऐसा उपाय अथवा साधन बताइए जिससे विविध वासनाओंके पाशमें बद्ध, मेरे जैसे मनुष्यकी भी मुक्ति हो जाय।" महाराजने कृपा की—"आप लोगोंके दूसरे कर्म तो मोक्ष-मार्गके नहीं हैं, किन्तु एक काम करना आपके आधीन है और वह निरपेक्ष न्याय करना है। यदि आप प्रजाका न्याय करनेमें न्यूनता नहीं आने देंगे तो आपका आत्मा, इसीसे निर्लेप होकर निर्वाण-पद पा लेगा।"

महाराजा प्रतापसिंहजी एक दिन श्री स्वामीजीको अपना दुर्ग दिखानेके लिये ले गये । उन्होंने अनेक अद्भुत वस्तुओंको देखते देखते राठौर-वंशके प्रबल प्रतापी पुरुष, महाराजा प्रतापसिंहका एक हस्त-चित्र भी देखा । उनका डाढ़ी-रहित मुखमण्डल, बल खाती बाङ्की मूछोंसे तेजोधाम प्रतीत होता था । स्वामीजीने महाराजको सम्बोधन करके कहा, "टुक इस छविकी छटा तो देखिए । आपके पुरातन पुरुषोंके मुखोंपर ऐसा तेज और गौरव हुआ करता था । देखिए, इस चित्रहीसे कैसी वीरता टपके पड़ती है ।"

महाराजाने एक दिन, अपने ओजस्वी भाषणमें, वैष्णवोंके चक्राङ्कित सम्प्रदायपर प्रबल टीका टिप्पणी की । उनके अलीक और अमूलक मन्तव्योंका जी खोलकर खण्डन किया । उनके तिलक छापको निराधार और मिथ्या-मूलक बताया । उस सम्प्रदायके अनेक जन उस सभामें बैठे बल तो बहुत खाते थे, परन्तु उनका वश कुछ न चलता था । महाराजकी युक्तियोंके अनिवार्य्य और अचूक प्रहारोंकी चोट निरे पुरे चिढ़नेसे क्योंकर दूर हो सकती थी ।

एक पहाड़ी पण्डित श्रीराम, बड़ा कट्टर चक्राङ्कित था । उसके वहाँ चेले-चाँटे भी बहुतेरे थे । वह आगे बढ़ा और शास्त्रार्थके लिये लिखा पढ़ी करने लगा । परन्तु किसी एक नियमपर न टिका । अन्तपर्यन्त यही कहता रहा कि मेरे महता विजयसिंहको मध्यस्थ मानो तो मैं शास्त्रार्थ करनेको कटिबद्ध हूँ । स्वामीजीने उसको उत्तर दिया कि महता महाशय संस्कृत भाषासे सर्वथा शून्य हैं । इस लिए उनका मध्यस्थ नियत होना अनुचित है । कोई विद्वान् पण्डित चुनकर बताइए । उसको मध्यस्थ बना दिया जायगा । परन्तु उस पण्डित महाशयने महाराजके कथनोंको स्वीकार न किया ।

श्रीरामने सामने आकर शास्त्रार्थ तो न किया, परन्तु अपने अनुगामियोंके हृदयोंमें विषम वैर की आग सुलगा दी । महता महाशयके मनमें भी एक विकट गाँठ पड़ गई । कुछ एक वैष्णव लोग जैसे भी हो, पूज्यपादके अप्रिय करनेमें प्राण-पणसे परायण हो गये ।

महाराज, अपने व्याख्यानोंमें सभी मत-मतान्तरोंपर, प्रसङ्गानुसार समालोचना कर दिया करते थे । कोई कितना ही सत्ताधारी सामने क्यों न बैठा होता, प्रकरणानुसार वे उसके मतके भ्रम-मूलक विचारोंपर आक्षेप कर ही देते ।

जोधपुरमें भगवान्‌ने मुसलमान मतपर भी समालोचनात्मक भाषण दिया। उसको सुनकर भैया फैजुल्ला खाँके तन-बदनमें आगसी लग गई। वे बहुतही चिढ़कर बोले—'स्वामी! यदि मुसलमानोंका राज्य होता तो आपको लोग जीवित जागृत न छोड़ते। उस समय आप ऐसे भाषण भी न कर पाते।"

स्वामीजीने खाँ महाशयको बड़ी धीरतासे उत्तर दिया—"यदि ऐसा अवसर आता तो मैं भी कभी थरथराहटमें न आता और निठल्ला न बैठता, किन्तु निधड़क मनसे, दो चार वीर राजपूतोंकी पीठ ठोंककर विरोधियोंके धुर्रे उड़ा देता। ऐसा छकाता कि उनके छक्के छूट जाते।" महाराजके इस उत्तरसे खाँ महाशय सटपटा उठे।

उनके भाषणमें, एक दिन एक मुसलमान युवक, सहसा झिड़झिड़ाकर उठ खड़ा हुआ। एक हाथ तलवारकी मुट्ठीपर रख झुंझलाकर बोला—"आप मुँह संभालकर बोलें। हमारे मतके विषयमें कुछ भी न कहें।"

स्वामीजीने, अति कोमलतासे उस युवकको कहा—"सैम्य! आपके अभी दूधके दाँत हैं। संसारके उतार-चढ़ावका आपको कुछ भी अनुभव नहीं। आप तो कोरे खड्गको हाथसे थामनेवाले हो, उसे कोशसे निकाल नहीं सकते। भला चना भड़केगा तो क्या भाड़ फोड़ डालेगा। यदि हम ऐसी थोथी झिड़काझिड़कीसे झिझकने लगते तो इतना बड़ा बोझा कैसे उठा सकते।"

यह युवक थरथराता हुआ बैठ गया और इतना लज्जित हुआ कि फिर ऊपरको सिर न उठा सका।

भैया फैजुल्ला खाँके हृदयमें उपर्युक्त बात-चीतसे बहुतसे पेचीले बल पड़ गये। वे प्रतिकारके उपायके लिए चिन्तित रहने लगे।

महाराजका हृदय सरल था। वे सर्वसाधारणके हितार्थ सत्योपदेश देते थे। लाग-लपेटकी बात बनाना और शक्तिशालियोंकी चापलूसी करना कभी स्वप्नमें भी नहीं सीखे थे। संसार छल-कपटसे भरा है। इसमें खरेखोटेको परखनेवाले मनुष्य विरलेही मिलते हैं। उस महापुरुषके मानस महत्त्वको मर्त्यलोकके कीटाणु क्या जानते! हास-विलास और विषयानन्दके जीव-जन्तुओंको तो वे बतकड़ही अच्छे लगते है, जो मुँह-देखी बातें करते हैं। चबा-चबाकर चिकनी चुपड़ी गप्पशप हाँकते रहते हैं। बड़े मनुष्योंकी मिथ्या प्रशंसाके पुल बाँध देते हैं।

भगवान् दयानन्द, किसीके षड्यन्त्र-रचनापर कुछ भी ध्यान न दे, अपने नियत कार्य्योंको किये जाते थे। वे प्रातःसमय भ्रमण करने जाते और एकांत विजन प्रदेशमें बैठ एक घण्टाभर ध्यानमें निमग्न रहते थे। भ्रमण-कालमें वे एक कौपीन और धोती-मात्र वस्त्र तनपर रखते, पाँवमें जूता धारण करते और हाथमें एक सुदृढ़ दण्ड रक्खा करते। जब स्वस्थानपर लौट आते तो पन्द्रह बीस मिनटतक कुर्सीपर बैठकर, एक गलास दूधका पीते। तत्पश्चात् ठीक आठ बजे वेद-भाष्यका परमोपयोगी कार्य्य करना आरम्भ कर देते। ग्यारह बजे यह कार्य्य बंद कर देते और फिर स्नानादि करके भोजन पाते। उनका भोजन परिमित और बहुत ही सादा होता था। सब वस्तुयें मिलाकर उनका आहार डेढ़ पावके अन्दर ही होता था। भोजनानन्तर महाराज कुछ कालके लिए विश्राम भी लिया करते।

दोपहर ढले, एक बजनेपर महाराज सत्यार्थ-प्रकाश और संस्कारविधिकी कापियोंके प्रूफ देखते, उनका संशोधन करते। तत्पश्चात् चिट्ठी-पत्रीका काम करने लग जाते। बीचमें यदि कोई आवश्यक कार्य आ पड़ता तो वह भी कर डालते। चार बजेसे कुछ पूर्व स्नान करके सारे तनपर मिट्टीभी रमाया करते। मस्तक, छाती और भुजाओंपर उसका लेप लगाते। रेशमी धोती और रेशमी साफा धारण करके एक लम्बा चोगा पहनते। उसके पश्चात् ठीक चार बजे व्यास-गद्दीपर जा विराजते और छः बजेतक परम-प्रभाव-उत्पादक उपदेश देते रहते। छःसे आठ बजेतक शङ्कासमाधानमें लोगोंके भ्रम मिटाते। फिर नौ बजे तक वैसेही वार्त्तालापमें जनताका हित-साधन करते। इसके उपरान्त प्रभु औटाया हुआ सेरभर दूध मिश्री मिलाकर पीते थे।

आम्रफल उनका चित-चाहता भोजन था। थोड़ेसे आम वे अवश्य चूसते थे। पास बैठे सत्सङ्गियोंमें भी, बड़ी वत्सलतासे, आमके फलोंका प्रसाद बाँटा करते। यही समय उनका समाचारपत्र सुननेका था। जब दस बजते तो तत्काल शुभासनपर लेट जाते। कभी कभी महाराजा महाशय सात बजे श्रीसेवामें आते और वार्त्तालापमें जब दस बजने लगते तो भगवान् कह देते कि 'राजन्! अब शयनका समय हो गया है। शेष वार्त्तालाप कल किया

जायगा । महाराजका जीवन सुनियमताके ढाँचेमें ऐसा ढला हुआ था कि उसका दूसरा उदाहरण मिलना अति दुर्लभ है । वे प्रत्येक कार्य्यमें आदर्श स्वरूप थे ।

पूज्यपाद परमहंसजी सबके साथ प्रेमसे बर्ताव करते । किसीका धार्म्मिक विचार चाहे जो हो परन्तु उनके शिष्टाचारमें अपने पराये सभी समान थे । उनका हृदय पद्मकमलकी पँखड़ियोंसा कोमल था; मन मोम समान नर्म था; बर्ताव मृणाल समान मृदु था और कथोपकथन तो मधुमयी मिठासका भी तिरस्कार करता था ।

उनका हृदय सङ्कुचित नहीं था । उनके विचारोंमें सङ्कीर्णताका लवलेश भी नहीं दिखाई देता था । किसी दीन दुःखियाको देखकर उनके भीतर दयाका प्रवाह बहने लगता था । किसीका आर्त्तनाद और करुणक्रन्दन कर्ण-गोचर करनेपर उनमें सहानुभूतिका सागर उमड़ आता । वे तत्काल पिघल जाते, आँखें भर लाते और उसकी विपत्तिको, बाधाको, वेदनाको, दूर कर-नेमें भरसक प्रयत्न करते !

महाराजका आर्य्य सामाजिकोंसे कल्पनातीत प्रेम था । उन्होंने इस वाटिकाको अपने हाथोंसे लगाया । इसमेंसे घास फूस और झाड़-झँखाड़ उखाड़ फेंकनेमें वे बड़ी दौड़धूप करते रहे । उन्होंने इस परम और चरम कर्ममें रात दिन कुछ भी नहीं गिना । लहू पसीना एक कर दिया । किसी विनीत आर्य्य समाजीको अपने सामने नत-शिर देखकर उनकी छाती उतनी ही ठण्डी होती थी, उनका हृदय उतनाही वात्सल्य-भावसे भर जाता था और उनके नेत्रोंमें उत नाही प्रेम-पूर प्रकट हो आता था जितना, एक प्रेमके पुञ्ज पिताको, प्रीतिके पुतले और सुपात्र औरस पुत्रमें हो आता है ।

महाराज अपनी मानस सन्तानसे क्या आशा रखते थे उसका प्रकाश इस बातसे होता है । एक दिन राव राजा ज्ञानसिंहजीने नम्र निवेदन किया— "प्रभो ! आप कोई सुयोग्य शिष्य तो बनाइए, जिसमें आपके उद्देश्योंकी लड़ी बीचमें कहीं टूटने न पाये ।"

भगवान्ने भक्तको कहा, "शिष्योंसे मुझे कोई आशा नहीं है । ऐसा एक भी सुपात्र और सुयोग्य शिष्य मुझे नहीं मिल सका, जिसके हाथमें अपने

कार्य्यकी बागडोर सौंप सकूँ। अब तो मेरे शिष्य सभी आर्य्य सामाजिक हैं। वेही मेरे विश्वास और भरोसेके भव्य भवन हैं। उन्हींके पुरुषार्थपर मेरे कार्य्योंकी पूर्ति और मनोरथोंकी सफलता अवलम्बित है।"

महाराजकी शारीरिक अवस्था अधिक कार्य्य करनेपर भी अत्युत्तम थी। उनके तनपर वार्द्धिकताका कोई चिन्ह नहीं दीख पड़ता था। सत्सङ्गी जन प्रायः यह कहा करते कि सौ वर्षसे पूर्व इनकी दैवी देह पर जराका आक्रमण कदापि न होगा। कहीं भी कोई झुर्री दिखाई न देगी। इनके तनका थकना, ढीला हो जाना और थलथलाने लगना एक शताब्दीके भीतर तो असम्भव है। महाराज स्वयं भी कहा करते कि हमारा देहपात यदि विष-प्रयोग अथवा शस्त्र-संयोगसे न हुआ तो यह देह मानुषी जीवन-कालकी परमावधितक कार्य्य करनेमें समर्थ बनी रहेगी और मुरझाने तथा कुम्हलाने नहीं पायगी।

राव राजा तेजसिंहजी आदि भक्त जन, कभी पाँव दबानेके बहानेसे, महाराजकी पिण्डलीमें बलपूर्वक अपनी उङ्गलियाँ धसाते तो वे कुछ भी न धसने पातीं। उनको महाराजके सारे अङ्ग वज्रसमान बलिष्ठ और परिपुष्ट प्रतीत होते। अस्थियोंसे मांसका ढलकना तो दूर यदि कभी कोई सेवा करते करते मांसको मुट्ठीमें लेने लगता तो उसे हड्डी, मांस और त्वचा एकात्म हुए जान पड़ते। उनकी देहकी वज्रसङ्गठन थी और वज्रसमान सुदृढ़ता थी। उनकी कायाका कल्पतरु सांसारिक कलह-कल्पनाके कलुष कीचड़से ऊपर था। लोकको कल्याण-कामनासे परिपूर्ण था। परार्थ और परमात्माकी प्रजाके पालनार्थ उसकी रचना हुई थी। पाँवके अङ्गूठेसे लेकर शिखा-स्थानतक उसमें पर-हित और पर-प्रेम भरपूर हो रहा था। महाराज तन, मन, धन-सहित मनसा, वाचा, कर्मणा परोपकारमें समर्पित थे। परन्तु द्रोह, धोखे और धड़ा-बन्दीके भारसे लदी हुई इस धरणीपर, लोग धर्म्मकी आड़में रात दिन धड़ाधड़ महा अधर्म्म कमाते हैं। किसी किसी समय वे अपनोंपर ऐसे घोर अत्याचार कर बैठते हैं; कि जिनके स्मरणसे रोमराजी खड़ी हो जाती हैं; कलेजा काँप उठता है।

महाराजके दर्शनोंके लिए, महाराजा श्री यशवन्तसिंहजी तीन बार उनके आसनपर आये और तीन बार ही श्रीचरणोंको अपने आवासमें आमन्त्रित किया।

एक दिन श्री महाराज जब जोधपुराधीशको दर्शन देने गये तो उस समय वहां वाराङ्गना 'नन्ही जान' आई हुई थी। उनको आते देखकर महाराजा महाशयने उसकी पालकीको उठवानेका सङ्केत किया। नन्ही जानका बहुत कुछ मान था। सभी नौकर चाकर उससे काँपते थे। यहाँ तक कि अधिकारियोंको भी उसे प्रसन्न रखनेकी आवश्यकता होती थी।

वह वाराङ्गना तो वहाँसे चली गई, परन्तु उस दृश्यको देखकर भगवान् दयानन्दका हृदय अतीव दुःखित हुआ।

वेश्या-प्रेमके घोर घृणित कुव्यसनका वे वैसे ही कड़ा खण्डन किया करते थे। सैकड़ों पुरुषोंका, उन्होंने इस पाप-पङ्क और दुर्व्यसनकी दलदलमेंसे, उद्धार किया था। महाराजा महाशयको भी वे धर्म्मावेशमें आकर कहने लगे— "राजन्! राजा लोग सिंहसमान समझे जाते हैं। स्थान, स्थानपर भटकनेवाली वेश्या कुतियाके सदृश हैं। वीरशार्दूलका कृपणा कुतियापर प्रेम करना और आसक्त हो जाना सर्वथा अनुचित है। आर्य्य जातिकी कुल-मर्यादाके विपरीत है। केसरीकी कन्दरामें, ऐसी कल्मष-कलुषित कुक्कुरीके आगमनका क्या काम है? इस कुव्यसनके कारण धर्म्म-कर्म्म भ्रष्ट होजाता है। मान-मर्य्यादाको बट्टा लगता है। इस पापसोपानपर प्रथम पदार्पण करते ही, पुनः पद-पदपर पुरुषका अधःपतन, आप ही आप होता चला जाता है। इस दुर्व्यसनको तिलाञ्जलि दे देनी चाहिए।"

उपदेश देनेके अनन्तर महाराज अपने आसनपर चले आये। प्रेमी पुरुषोंसे कथनोपकथन करते उन्होंने कई बार कहा कि हमारे देशके बड़े बड़े मनुष्योंके आचार-विचार तो इतने बिगड़ गये हैं कि इनका सर्वनाश कभीका हो चुका होता, इनकी नौका मंझदारमें डूब गई होती, परन्तु इनकी पत्नियोंका पातिव्रत धर्म्म ही इन्हें अभीतक बचाए हुए है। कुलवन्तियाँ आर्य सतियाँ ही अपने धर्म्मसे इनकी रक्षा कर रही हैं।

नन्ही जान इस बातको जानती थी कि महाराजके उपदेश वेश्या-व्यसनके विरुद्ध मोहिनी मंत्रका प्रभाव रखते हैं। बरसोंके महाव्यसनी भी उनके श्रवण-मात्रसे सुधर जाते हैं। उसे इस बातका भी पता लग गया कि स्वामीजीने उसकी तुलना कुतियाके साथ की है। इन दोनों बातोंसे उसके कलेजेपर

साँप लोटने लगे। वह विकट वैरकी विषम ज्वालासे रात दिन सन्तप्त रहने लगी।

इसी बीचमें भगवान्ने महाराजा प्रतापसिंहजीको यह पत्र लिखा—

"श्रीयुत मान्यवर शूरवीर महाराजा श्रीप्रतापसिंहजी! आनन्दित रहो।

यह पत्र बाबा महाशयके दृष्टिगोचर भी करा दीजिएगा।

मुझे इस बातका बहुत शोक होता है कि श्रीमान् जोधपुराधीश आलस्य आदिमें वर्त्तमान हैं और आप तथा बाबा महाशय रोगी शरीरवाले हैं। इस राज्यमें सोलह लाखसे अधिक मनुष्य बसते हैं। उनके रक्षण और कल्याणका बड़ा भार आप लोग उठा रहे हैं। उनका सुधारबिगाड़ भी आप तीन महाशयोंपर ही निर्भर है। तथापि आप लोग अपने शरीरको रोगसे रक्षा करने और आयु बढ़ानेके कामपर बहुत अल्प ध्यान देते हैं। यह बात कितनी बड़ी शोचनीय है।

मैं चाहता हूँ कि आप लोग अपनी दिनचर्य्या मुझसे सुधार लें, जिससे मारवाड़का तो क्या अपने आर्य्यावर्त्त देशभरका कल्याण करनेमें आप लोग प्रसिद्ध हो जायँ। आप जैसे योग्य पुरुष जगत्में बहुत थोड़े जन्मते हैं और जन्म कर भी बहुत स्वल्प आयु भोगते हैं।

इसके हुए बिना देशका सुधार कभी नहीं होता। आप जैसे पुरुष जितना अधिक जियें उतनी ही अधिक देशोन्नति होती है, इसपर आप लोगोंको ध्यान अवश्य देना चाहिए। आगे जैसी आप लोगोंकी इच्छा हो।"

आ० वदी तृतीया १९४० हस्ताक्षर दयानन्द सरस्वती।

महाराजका ऊपरका पत्र राठौर-वंशकी हितेच्छासे कितना पूर्ण है, यह उसके एक एक पदसे प्रकाशित हो रहा है। परन्तु जो वस्तु एकके लिये अमृत होती है वही दूसरेके लिये विष बनजाती है। नन्ही जानको यह पत्र ठीक कालकूट सदृश दीख पड़ा। महाराजके उत्तमोपदेशसे उसके हृदयमें जो गहरा घाव उत्पन्न हो गया था उसपर इस पत्रने लवणका काम किया। उधर उसे दिनोंदिन यह दीखने लगा कि वह महाराजाके जीसे उतरी और आँखोंसे गिरी चली जा रही है। वह दिन दूर नहीं, जब वह म्लान कुसुम-मालाकी भाँति, परित्यक्ता हो जायगी। उसकी चिन्ताकी प्रचण्ड पवनने वैर-दावानलको द्विगुण चतुर्गुण भड़का दिया।

नन्हीं जान, सताये हुये फणियर साँपकी भाँति, बल खाती थी। लम्बे साँस लेती थी; प्रतिकार, प्रतिबंध और प्रतिरोधके उपाय सोचती थी। उसको निश्चय हो गया था कि स्वामीजीही उसके रङ्गको भङ्ग करनेवाले हैं, मिले-सुरकी तन्त्रीको तोड़नेवाले हैं। उन्हींके वचन उसके क्षीर-नीर प्रेममें काँजीका बिन्दु बनकर गिरे हैं। इस लिए वह अन्यायसे,-अनीतिसे, निष्ठुरता-से और अनर्थसे महाराजका अनिष्ट करनेपर पूरी तुल गई।

नागिनकी भाँति, वैरविषसे व्याकुल, उस वाराङ्गनाके साथ वे लोग भी क्रियात्मक सहानुभूति करनेके लिए समुद्यत हो गये, जिन्होंने कभी मत-भेदसे स्वामीजीकी बातोंको बुरा मनाया था। जो कभी भकसे उड़ जानेवाली वस्तुकी भाँति उनके व्याख्यानोंमें भड़क उठे थे। स्वामीजीको साँझा शत्रु समझकर कुटिल नीतिके गुप्त सूत्रपात होने लगे।

जब कोई विषम विपत्ति आने लगती है तो बयार पहले ही विपरीत बहने लग जाती है। महाराजका सेवक कल्लू कहार अति प्रीतिसे उनकी सेवा किया करता था। परन्तु जोधपुर-निवासके पंचम मासमें वह कहार छः सात सौका द्रव्य लेकर चुपकेसे चम्पत हो गया। द्रव्य बटोरकर वह जिस खिड़कीके द्वारसे बाहर निकला उसके आगे ब्रह्मचारी रामानन्दजीको सोनेकी आज्ञा हुई थी, परन्तु उस रात वे वहाँ नहीं सो सके।

प्रभात होते ही कहारके चौर्य्य-कर्म्मका कोलाहल मच गया। राजाज्ञा हुई कि उसे पातालसे भी ढूँढ़ निकालना चाहिए। परन्तु अत्याश्चर्यकी बात यह हुई कि वह विदेशी कहार मक्खनमेंसे बालकी भाँति निकल गया। वह मारवाड़के दुर्गम और विषम मार्गोंसे सर्वथा अपरिचित था, परन्तु पकड़ाईमें नहीं आया! इतना पूर्ण प्रबन्ध होनेपर भी चोरका कपूरकी तरह उड़ जाना स्वामीजीके हृदयमें सन्देहकी रेखाको प्रकट करता था। उधर पहरेवाले नौकर भी अपने कर्त्तव्य कर्मसे अन्यमनस्क हो रहे थे।

नन्ही जानने अपना बदला लेने और कलेजा ठण्डा करनेके लिए ईश्वर जाने क्या क्या क्रूर कर्म करने निर्धारित किये होंगे। वह अपने हृदयके फफोले फोड़नेके लिए न जाने कैसा पाप-पाश लगा रही होगी। अपने मान-भङ्गसे उसने जो कुछ भी किया हो सो सम्भव है। परन्तु जबतक अपना न फूटे,

पराया अत्याचार करके कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता। अपने ही दीपकसे भवन भस्म होते हैं। अपने ही भीतरकी आग दावानल बनकर विस्तृत वनोंको दग्ध कर देती है। द्रोह, दम्भ और लालच-वश, अपनायतोंने संसार में अपनोंके सिरपर घोरसे घोर और घृणितसे घृणित अनर्थ ढाये हैं। भारत-भूमिमें तो ऐसे सहस्रों दृष्टान्त मिलते हैं, जिनमें दिनोंदिन बढ़ते द्रोहसे, नीचतासे, दुष्टतासे, प्रलोभनवश और विश्वासघातसे अनेक कुलकलङ्की कुपूतोंने, अपने क्रूरतम कर्मोंसे, अपने ही कुलोंकी कीर्तिको अत्यन्त काली कलूठी बनाया है।

ऐसेही विशुद्धवंश-विदूषक अधम नर, स्वामीजीके पास भी वसते थे। महाराजका स्वास्थ्य दो चार दिनसे कुछ शिथिल था। आश्विन बदी चतुर्दशी सम्वत् १९४० को रात्रि-समय महाराजने अपने रसोइएसे दूध लेकर पान किया और फिर सो गये। थोड़ी ही देरतक आँख लगने पाई थी कि उदर-वेदनाकी खलबलीने उनको जगा दिया। उसी विकट व्याकुलतामें उन्होंने तीन बार वमन की। आप ही जलादि लेकर कुल्ले करते रहे। पास सोये सेवकोंको जगाकर कष्ट नहीं दिया।

भगवान्, प्रतिप्रातः भ्रमणार्थ बाहर जाया करते थे, परन्तु आश्विन अमावास्याको वे चार पाईसे बड़े दिन चढ़े उठे। उठतेही उन्हें एक और उलटी आई। इस वमनसे उनको कुछ सन्देहसा हुआ, इस लिए कुछ जल पान करके उन्होंने दूसरी उलटी आप कर डाली। वे अपने कर्म्मचारियोंको कहने लगे कि आज हमारा दिल कच्चा हो रहा है। उदरमें गड़बड़ हो रही है। अग्नि जलाकर आप लोग हवन कीजिए, जिससे बङ्गलेके भीतरकी वायु शुद्ध हो जाय। उनकी आज्ञाका पालन तुरन्त हो गया। इसके अनन्तर उनके उदरमें शूलवेदना उत्पन्न हो गई। उसको उपशम करनेके लिए उन्होंने अजवायन आदि वस्तुओंका काढ़ा लिया। इससे वेदना तो शान्त न हुई, किन्तु साथ ही अतिसार होने लग गये।

लोगोंने डाक्टर सूर्य्यमलजीको बुलाया। उन्होंने उलटी बन्द करनेकी ओषधि देकर श्रीमहाराजसे पूछा कि आपका स्वास्थ्य अब कैसा है? उन्होंने कहा कि पेटमें प्रबल पीड़ा हो रही है, मुँह भी सूख रहा है। तत्पश्चात्

डाक्टर महाशयने प्यासके रोकनेका भी औषध दिया। महाराजके उदरमें ऐसा तीव्र, ऐसा विषम और ऐसा भीषण शूल उठता था कि यदि कोई दूसरा मनुष्य होता तो छटपटाकर प्राणान्तरको पहुँच जाता। वे धैर्य्यसे असह्य दारुण वेदना सहन कर रहे थे। हाय हू आदिसे घबराहटका कोई चिन्हतक प्रकाशित नहींकरते थे। अन्तमें वे स्वयं यह प्रतीत करने लग गये कि हलाहल विषमविष उनके तनकी नसनस, नाड़ी नाड़ी और एकएक रक्त-बिन्दुमें प्रवेश करके जीवन-शक्तिको शोषण कर रहा है। उनकी सारी देहमें दाह लगी हुई थी। रह रहकर भयङ्कर शूल उठता था। श्वास-प्रश्वासका वेग अति तीव्रतासे बढ़ता चला जाता था। परन्तु स्वामीजी महाराज थे कि उनके मुखमण्डलपर व्याकुलताका कोई चिन्ह चक्रतक न दिखाई देता था। वे घबराहटका नाम तक नहीं लेते थे। प्रशान्त चित्तसे कालकूटके उत्कृष्ट कष्टको सहन करते हुए परमात्म-देवके भजन तथा ध्यानमें निमग्न थे।

सायंकालके चार बजे, महाराजकी रुग्णावस्थाका समाचार महाराजा प्रताप-सिंहजीको मिला। उन्होंने तत्काल डाक्टर अलीमर्दान खाँको औषधोपचारके लिए नियत करके उनके पास भेज दिया। डाक्टर महाशयने आकर उनकी पीठपर पट्टी बँधवाई और कुछ औषधि भी दी। परन्तु शान्त होनेके स्थान इस नये औषधसे रोगने महा भयङ्कर रूप धारण कर लिया। तीस चालीस अतिसार हुए। शूल भी पहलेसे बढ़ता ही चला गया।

अगले दिन डाक्टर महाशयने आकर ग्लास लगाये। उनसे खाँसीके साथ जो पीड़ा उठती थी वह तो शान्त हो गई, परन्तु शूल ज्योंका त्योंही बना रहा। आश्विन शुक्ला १ को प्रातःकाल ८ बजे जब डाक्टर महाशय आये तो महाराजने कहा कि हम विरेचक औषधि लिया चाहते हैं। उन्होंने उत्तर दिया कि यह तो ठीक है, परन्तु पहले कोई ऐसी औषधि लेनी चाहिए जिससे कफ फूल जाय और छः सात विरेचन हों। महाराजने कहा कि व्याधिका विनाश होना चाहिए, औषधि चाहे जो हो।

उस दिन डाक्टरजी चले गये और उन्होंने घरसे गोलियाँ बनाकर भेज दीं। महाराजने उनके कथनानुसार उनका सेवन किया। आश्विन शुक्ला २ को विरेचक औषध दिया गया। उस बजेसे विरेचन होने आरम्भ हुए। रात्रिभरमें

कोई तीससे भी अधिक विरेचन हो गये। आगामी दिन सवेरे, जब डाक्टर महाशय आये तो महाराजने उनको कहा कि आप तो यह कहते थे कि छः सात विरेचन होंगे। यहाँ तो तीससे भी अधिक हो चुके हैं! अब तो हमारा जी मिचलाता है और बार बार डूबता जाता है।

विरेचक ओषधिसे जो विरेचन हुए वे बहुत ही भयङ्कर सिद्ध हुए। उनके साथ शरीरपर अचेतना छा जाती थी। अली मर्दानखाँकी औषधि उलटा ही काम करती गई। उससे अतिसार रोग बढ़ गया। तीस पैंतीस अतिसार प्रतिदिन आने लगे। आठ नौ दिनहीमें भगवान्की पाँचभौतिक देह अति क्षीण और दुर्बल हो गई। उस वज्रमयी कायाको, किसी कुटिलताके कालकीटने भीतर प्रविष्ट होकर, घुने हुए दानेकी भाँति खोखला कर दिया। उस लोह-सदृश शरीरको औषधोपचारने शीघ्रतासे जीर्ण-शीर्ण होनेमें बड़ी भारी सहायता दी। विष-ज्वालापर जो वस्तु पानी कहकर डाली जाती थी कोई कह नहीं सकता, वह क्योंकर तेलका काम करती थी।

स्वामीजी महाराज आदर्श संन्यासी थे। किसीके लिए भी मनमें अनिष्ट चिन्तन करना उनके कर्त्तव्य कर्म्मके प्रतिकूल था। वे यह भी नहीं चाहते थे कि आगमापायी शरीरसे किसीकी अपकीर्त्तिका कारण बन जायँ। इस लिए मनसे जानते हुए भी उन्होंने मुखसे किसी विश्वस्तको भी नहीं कहा कि हमारी कायापर कालकूट विषका प्रयोग हुआ है।

इस भवार्णवमें भौतिक शरीरका भव धारण करके कौन है जो भवितव्यताके भीषण प्रभावसे बच सका हो। होनहारके आगे सभी ऋषि महर्षि हार मान रहे हैं। अपनी भाग्य-भूमिमें जिसने रोग-भोगके जैसे भी पेड़ लगाए हों उनके फल भोगनेपर ही उसका छुटकारा होता है। भगवान् दयानन्दके सदृश महापुरुष, अपनी भावीका प्रत्यक्ष प्रभाव देखकर, उसके लिए एक साधन बन जाने वाले जनपर कोप कदापि नहीं किया करते। उनकी दृष्टिमें ठोकर खाकर गिरनेसे भूमिको पीटने लग जाना बाल-कालकी लीला है। जो कुछ होता है वह तो अपने किये कर्म्मका परिणाम-मात्र है। बीचमें जो मनुष्य बहाना बन गया है, उसको वधबन्धनमें डालकर, घेरने घोटनेमें सन्त जन

कोई लाभ नहीं समझते । ऐसे बड़े ब्रह्मज्ञानियोंका बड़प्पन और भगवद्भक्तों-का भूषण क्षमा कर देना—अपने प्राणोंके प्यासे पुरुषको भी क्षमा-दान देना है।

महाराजके कर्म्मचारियोंमें कोई जन कपट कौशलकी चाल चलता और उन्हें पीछे पता तक न लगता यह बात सर्वथा असम्भव है । मनोगत भावोंको भी परिलक्षित कर लेनेवाली आर्य्य आँखसे भला कोई अपना काला मुँह कैसे छिपा सकता था ! सच बात तो यह है कि श्रीमद्दयानन्दके दयामय हृदयने जान बूझकर, अपने प्राणोंके अपराधीको अपने परम प्रेमियों-राठौर-वंशियोंके हाथ समर्पण करना स्वीकार नहीं किया । उनके मनने नहीं माना कि हत्यारेको अपने भक्त महाराजोंके सामने कर, उसे कठोर दण्डसे दण्डित करायें ।

राजकोटसे एक महाशयने सद्धर्म्म-प्रचारक समाचार-पत्रको जो सूचना दी थी । उसके आधारपर बलपूर्वक कहा जा सकता है कि प्रभु दयानन्द दण्डीकी दया अद्वितीय थी । उसका दूसरा दृष्टान्त दुर्लभ है । उस पत्रमें छपा था कि एक जगन्नाथ नाम ब्राह्मण-वंशीय मनुष्य महाराजके पास चिर-कालसे रहता था । वे उसे विश्वास-पात्र समझते थे । वह पाकशालामें पाचनकी क्रिया भी किया करता था । जगन्नाथ, न जाने किसके बहकानेसे, उलटी पुलटी पट्टी पढ़ानेसे, चकमा दिखानेसे, अथवा किसी प्रलोभन-वश महापातक-के पाप-पङ्कमें सहसा कूद पड़ा । अनीति, अन्याय और नीचतासे घोर घृणित अनर्थ कर बैठा । गुरुद्रोह और ब्रह्म-हत्याका अपराधी बन गया । हाय, आश्चर्य्य है ऐसे क्रूरतम कर्मका साहस करते समय उसकी छाती न फटी ! उसका कलेजा टूक टूक क्यों न हो गया ।

परम पवित्र परमहंसजीने अपने तन-पिंजरको जर्जरीभूत करनेवाले और प्राण-पँखेरुओंके वधिक जगन्नाथको जाँचकर पकड़ लिया । जगन्नाथने अपने अधमतम अपराधको मान भी लिया । परन्तु कर्म गति और फल-भोगके विश्वासी महर्षिने ताड़ना-तर्जना तो कहाँ उसे तू तक नहीं कहा । वे गम्भीर भावसे दया दर्शाते बोले—"जगन्नाथ, मेरे इस समय मरनेसे मेरा कार्य्य सर्वथा अधूरा रह गया । आप नहीं जानते कि इससे लोक-हितकी कितनी भारी हानि हुई है । अच्छा, विधाताके विधानमें ऐसा ही होना था । इसमें आपका भी क्या दोष है । जगन्नाथ लो ये कुछ रुपये हैं, मैं आपको देता हूँ ।

आपके काम आयँगे। परन्तु जैसे भी हो राठौर-राज्यकी सीमासे पार हो जाओ। नेपाल राज्यमें जा छिपनेसे ही आपके प्राणोंका परित्राण हो सकता है । यदि यहाँके नरेशको घुणाक्षर न्यायसे भी इस बातका पता लगगया तो वे आपका बिन्दु विसर्गतक विनष्ट करकेही विश्राम लेंगे। उनके प्रकोपके उत्तापसे आपका परित्राण कोई भी न कर सकेगा। जगन्नाथ अब देर न करो। जाओ चुपचाप भाग जाओ। देखना, किसीको स्थाली पुलाक न्यायसे भी आपका कर्म्म ज्ञात न हो जाय। मेरी ओरसे सर्वथा निश्चिन्त रहना। इस हृदय सागरसे आपका, यह भेद किसी प्रकार कभी भी प्रकाशित न होगा।

भगवान्‌ने अपने जीवनकी ज्योतिको बुझानेवाले जगन्नाथको पकड़ा, उससे सब कुछ मनवाकर उसे मार्ग-व्ययके लिए रुपये दिये, और अन्तमें बालबाल बचाकर वहाँसे ऐसे निकाल दिया कि उनके अपने प्रेमी जन भी कुछ कल्पना तक नहीं कर सके। उनके कर्मचारियोंको इसमें कुछ भी सन्देह नहीं हुआ। इसका सबसे बड़ा कारण यही है कि उन्होंने विष-प्रयोगका कभी नाम तक नहीं लिया। जगन्नाथने भेस बदलकर पन्द्रह बरस नैपालमें काटे।

महाराजके चरण-चिन्होंका अवलोकन करते, उनकी परम पावन पदपंक्तियोंकी यात्राके भावसे गङ्गा-कूलपर फिरते समय हमने भी यह सुना था कि राजघाटमें सम्वत् १९७० तक एक जगन्नाथ नाम ब्राह्मण प्रायः आकर वास किया करता था। वह साधुओंके वेशमें रहता था। पगलासा प्रतीत होता था। वह जोधपुरमें महाराजके सङ्ग था। कुछ एक साधु जनोंमें यह भेद खुल भी गया था कि उसकी उन्मत्तता कृत्रिम थी। वास्तवमें वह ब्रह्मघातक था।

भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्रने भी, अपने पाँवके तलुवेमें तीर मारनेवालेको क्षमा दान दे कर, पाससे खिसका दिया था। परन्तु उसके और जगन्नाथके कर्म्ममें रातदिन और भूतलाकाशका अन्तर है। उसने, श्रीकृष्णके पाँवके चमकते चक्रको, मृगकी आँख समझकर आबिद्ध किया था, परन्तु जगन्नाथ तो सोच-विचारपूर्वक, किसी षड्यन्त्रके चङ्गुलमें फँसकर उस महाहत्याका भागी बना। इस लिए धन्य धारणा स्वामीजी महाराजकी है जिन्होंने ऐसे विषम विषैले विषधरको भी क्षमा प्रदान कर दी, और प्रेरणा करके, उसे पाथेय-सहित अपने प्राण परित्राणके उपायमें भी प्रवृत्त कर दिया।

महर्षिकी वेदना-व्याधिका समाचार, आर्य्य समाजिक जगतको, आश्विन शुक्ला एकादशीको मिला। अजमेर आर्य्य समाजके एक सभासद्‌ने राजपूताना गजेटमें पढ़ा कि जोधपुरमें भगवान् किसी भयङ्कर व्याधिमें ग्रस्त हो रहे हैं। इस समाचारने उसके चित्तको चलायमान कर दिया। उसने बातकी बातमें यह शोचनीय समाचार अजमेरके सामाजिक मण्डलमें पहुँचा दिया। अजमेर समाजने अपना एक सभासद् श्री चरणोंमें जोधपुर भेजा। उसने महाराजकी देह-दशा देखकर निवेदन किया कि भगवन्, आपने आर्य्य जनताको अपनी इस दशाकी सूचना तक नहीं दी। महाराजने कहा—"सौम्य, रोगका होना तो दैहिक धर्म्म ही है। इसका समाचार देकर आप लोगोंके हृदयोंको दुःखित करनेका भागी क्यों बनता। हाँ, आप लोगोंके हृदय-कमलोंको प्रफुल्ल करनेका कोई समाचार होता तो मैं तुरन्त आर्य्य जनताके कर्ण गोचर कर देता।"

उस सभासद्‌के अजमेर लौटनेपर महर्षिकी वेदना-व्याधिके तार समाचार लाहौर, मुम्बई और मेरठ आदि सामाजिक केन्द्रोंमें दौड़ने लगे। उस दिन अजमेरका तार-घर आर्य्योंकी चित्त-चिंतासे अत्यन्त चंचल हो रहा था। उद्वेग-वेगसे व्याकुल जनोंके सैकड़ों तार आ जा रहे थे। उस घरके दिवाल-द्वार तक पर, एक विचित्र घबराहट छा रही थी।

कई भक्तजन तो गुरुमहाराजकी व्याधिके समाचारको पाकर इतने अधीर हो गये कि अपने सभी काम-धन्धे छोड़ छाड़कर, तत्काल श्री चरणदर्शनोंके लिए दौड़ पड़े।

आश्विन शुक्ला चतुर्दशीको महाराजको देखनेके लिए सबसे बड़ा डाक्टर आया। स्वामीजी आबू पर्वतपर जाना चाहते थे। इसमें वह डाक्टर महाशय भी सम्मत हो गया। उस दिन सायंको श्री महाराजा यशवन्तसिंहजी अपने सरदारों सहित श्री सेवामें पधारे और महाराजकी व्याधिपर अति चिन्तित हुए। उन्होंने ढाई सहस्र रुपया श्रीचरणोंमें भेंट किया।

आश्विन पूर्णिमाको महाराजके आबू जानेकी सब सामग्री उपस्थित हो गई। दिनके तीसरे पहर श्रीमन्महाराजा यशवन्तसिंहजी तथा महाराजा श्रीप्रताप सिंहजी स्वामीजींको बिदा करनेके लिए आये। महाराज उस समय पलंगपर

पड़े हुए थे । उनके पास ही कुर्सीपर श्रीमन्महाराजा महाशय बैठ गये । महाराज, नरेशोंसे हर्ष-पूर्वक वार्त्तालाप करते रहे ।

अश्वारोही सैनिक और रथादि सब आगये। महाराजके लिए एक विशेष पालकी आई । उसमें खसकी टट्टियाँ लगी हुई थी । एक पंखा भी था । सोलह कहार पालकीको उठानेके लिए थे । एक नौकर इस कार्य्य पर नियत हुआ कि मार्गमें उस पंखेको खींचता चले । भगवान् बंगलेकी ऊपरकी छतपर निवास करते थे । प्रेमीजन उनको हाथोंपर उठाकर धीरे धीरे नीचे ले आये । जब वे महाराजकी अतिकृश कायाको पालकीमें रखने लगे तो श्रीमन्महाराजा यशवन्तसिंहजीने भी दोनों हाथोंसे सहायता देकर, अपने आर्य्योचित आचार और प्रेमका पूर्ण परिचय दिया । महाराजा महाशयने भक्ति-भावके साथ अपने बाँधनेकी फलालेनकी विशेष पेटी, भगवान्की कमरके साथ, अपने कोमल हाथोंसे बाँध दी । इससे यात्रामें कष्ट बहुत थोड़ा होता है । भगवान्की पालकीके साथ साथ पैदल चलते हुए वे उद्यान-द्वार तक आये । वहाँ पालकी ठहर गई । उस समय श्रीमन्महाराजा यशवन्तसिंहजीने श्रीमहाराजा प्रतापसिंह-सहित श्रीचरणोंको छूकर नम्र नमस्कार की । तत्पश्चात् हाथ जोड़कर प्रार्थना की, भगवन्, आप ऐसी दशामें यहाँसे जा रहे हैं; इसका मुझे अतीव दुःख है । आपकी कायाके इस उत्कृष्ट कष्ट-क्लेशको मैं अपने ऊपर, एक प्रकारका, कलंक ही मानता हूं । यदि पूज्यपाद, पूर्ण आरोग्य प्राप्त करनेके उपरान्त यहाँसे प्रस्थान करते तो मुझे अपार प्रसन्नता उपलब्ध होती । शोक ! मेरे मनके मनोरथ मनही मनमें रह गये । यह शब्द कहते कहते उनका जी भी भर आया ।

भगवान्ने अपने प्रेमी महाराजको आश्वासन देते हुए कहा, कि 'राजन्, कोई चिन्ता न कीजिए । ईश्वरके ज्ञानमें जो कुछ होना नियत है, उस ललाट लेखमें मीन-मेख करनेकी शक्ति किसीमें भी नहीं है । रोग तो देहके साथ धूप और छायाकी भाँति लगे ही रहते हैं । इस सप्त धातुमय भौतिक भवनमें विकारका उत्पन्न हो जाना कोई आश्चर्य्यकी बात नहीं है । आप शोक न कीजिए । मैं आप लोगोंके प्रेम-सत्कारसे अतीव प्रसन्न हूं । मुझे आप अपना पूर्ण हितेच्छु जानिए । "

अन्तमें फिर श्रीमन्महाराजाने श्री स्वामीजीको नमस्कार की और उदासीनतासे वहाँसे राजभवनको लौटे । दूसरे भी अनेक सज्जन उस समय वहाँ उपस्थित थे । उन्होंने भी श्री चरणोंको स्पर्श करके अपने अहोभाग्य समझे । राजाज्ञासे डाक्टर सूर्य्यमल महाराजके साथ ही गये । आबू पर्वतपर भी, जोधपुरके राजनिवासके अध्यक्षको स्वामीजीके वहाँ जानेकी सूचना तार-द्वारा कर दी गई ।

पांचवाँ सर्ग ।

महाराज सायंकाल वहाँसे चले । सारी रात चलकर सवेरे रोपट पहुँचे । वहाँ आठ पहर तक निवास किया । उसके अगले दिन पालीमें आ गये । वहाँ रात्रि-निवास किया और फिर रेलवेमें बैठकर खारचीमें जा उतरे । वहाँ कुछ दिन विश्राम लेकर फिर रेलवेमें बैठ गये और कार्त्तिक कृष्णा ६ सम्वत् १९४० को प्रातः पाँच बजे आबू-रोड नामके स्टेशनपर जा पहुँचे ।

भगवान्की पालकी जिस समय आबू पर्वत पर धीरे धीरे आरोहण कर रही थी तो मार्गहीमें पँजाब प्रान्तके अतिशय पुण्यवान् सुपुत्र, डाक्टर लक्ष्मण दासने प्रभुके दर्शन पाये । यह भाग्यवान् भक्त जिला शाहपुरके अन्तर्गत भैरा नगरका निवासी था । अपने प्रान्तके सुलभ स्वभावसे उसने झुककर श्री चरणवन्दना की और फिर उनकी नाड़ीको देखना आरम्भ किया । वह चतुर वैद्य भगवान्की कष्ट-कथा सुन और नाड़ी देखकर अति व्याकुल हो गया । भगवान्ने उसे इतना ही कहा कि इस समय कुछ ही कष्ट है । परन्तु उनकी दशाको देखकर भक्तराज वैद्यकी काया काँप उठी । उनका चित्त चंचल हो उठा ।

उस समय डाक्टर लक्ष्मणदास अजमेर जा रहे थे परन्तु उनका कलेजा इतना भर आया कि वे आबू-मार्ग स्टेशनकी ओर एक डग भी न उठा सके; और महाराजके साथ साथ ही लौट पड़े ।

महाराजको कोई पन्द्रह दिनसे हिचकियोंका उपद्रव सता रहा था । उनके वेगसे सारी अँतड़ियाँ तनी जाती थीं । सम्पूर्ण तनमें ऐंठनसी हो रही थी ।

उदर तो बार बारकी खींचसे हाथ लगानेपर भी दुखता था। परन्तु प्रेमी लक्ष्मणदासजीकी चिकित्सासे यह उपद्रव दूसरे ही दिन दूर हो गया। अति-सार भी बंद हो गये।

इतने चिरकी दारुण वेदना झेलते हुए भगवान्‌को एकही भक्त, राजवैद्य मिला था परन्तु भवितव्यताने उसे भी उनके पाससे ढकेल दिया। भावीको यह नहीं भाता था कि आर्योंका सौभाग्य-सूर्य्य, अभागे भारतभू-भाग पर कुछ काल और चमककर, उसकी निविड़ तमोराशिका सर्वनाश करे। कार्त्तिक कृष्णा अष्टमीको डाक्टर लक्ष्मणदासको ऊपरके अधिकारीकी आज्ञा हुई कि आप तुरन्त अजमेर चले जाइए। भक्त लक्ष्मणने अपने अधिकारीके आगे अति विनय-अनुनय की। गुरु महाराजकी शोचनीय दशाका दृश्य उपस्थित किया परन्तु उसने एक न सुनी; उनकी अति दीनताकी प्रार्थनापर कर्णपात तक न किया। अन्तमें भक्त लक्ष्मणने जब देखा कि उनका अधिकारी किसी प्रकार भी माननेमें नहीं आता, उसका हृदय किंचित् भी नहीं पसीजता तो उन्होंने राजनौकरीसे त्याग पत्र तक दे दिया।

भक्त लक्ष्मणके अमर आत्मा तू धन्य है। तेरा परम त्याग तेरी उच्चताका परिचायक है। तूने वही काम कर दिखलाया जिसकी किसी आर्य्य जननीके जायेसे आशा की जा सकती है। तूने अपने नामको भक्तोंकी मालामें एक बहुमूल्य मणि बनाकर अमर कर दिया है।

भक्त लक्ष्मणने भक्ति-भावसे प्रेरित होकर त्याग-पत्र तो दे दिया परन्तु कर्मकी गति-मतिसे हठीला अधिकारी अधिक अकड़ गया। उसने कठोर हृदयसे निकली हुई, कड़ी आज्ञाके हाथों द्वारा भक्त लक्ष्मणको झपट कर श्री सेवासे छीन लिया। बलात्कारसे, विवश करके उसे आबूपरसे अजमेरको पटक दिया।

भक्त लक्ष्मण पर्वत शिखरसे उतर तो रहा था सही परन्तु केवल कलेवरसे, शून्य हृदयसे, जलते कलेजेसे और भरे हुए जीसे। उसका मन-भ्रमर तो श्री चरणोंके चहुँ ओर चक्कर लगाकर उनकी परिक्रमाका परम पुण्य उपार्जन कर रहा था। मार्गमें आते हुए भक्तकी हृदय-सतारके तारने कई बार इस स्वरका झँकार किया—'पराधीन सपने सुख नाहीं'।

आबूसे नीचे आते समय, भक्त लक्ष्मणको कई आर्य्य पुरुष ऊपर जाते मिले। उन्होंने भक्तराजको पहचानकर, उससे भगवान्‌का समाचार उतनी ही आतुरतासे पूछा, जितनीसे पाण्डु-पुत्रने श्रीकृष्णका ऊधवजीसे पूछा था। भक्तने अनर्गल आँसू बहाते हुए कहा, "भगवानकी अवस्था अतीव शोचनीय है। निर्बलता परले पारकी बढ़ गई है। उनके कण्ठमें, जीभपर, मुखमें, माथे और सिरपर छाले पड़ गए हैं। पानीका घूँट भी बड़ी कठिनतासे गलेसे नीचे उतरता है। इस महाघोर अन्धकारमें, निपट हताशाकी निशामें, उदासीनताके गहरे सागरमें आशाकी केवल यही एक झीनी रेखा चमकती है कि महाराजकी चेतना ठीक है। उनकी आत्मा स्वस्थ है। हाय! मैं क्या करूँ, पराधीन हूँ, विवश हूँ। ऐसे समयमें अकिंचित्कर हो गया हूँ, परन्तु पीछे महाराजके लिए औषधादि लिख आया हूँ।"

भक्त लक्ष्मणने फिर कहा, आप लोग भगवान्‌को किसी प्रकार अजमेर ले आयें तो बहुत ही अच्छा हो। उनको अजमेर लानेके लिए पूरा प्रयत्न कीजिएगा। इसीमें अब कुछ हो सकता है।" भक्तराज इतना निवेदन करके रुमालसे आँखें पोंछते हुए आबू-मार्ग स्टेशनको चल पड़े। श्री दर्शनार्थी आर्य्य जन आँसुओंसे सड़कको सींचते हुए पर्वतारोहण करने लगे।

ठाकुर भूपालसिंहजी स्वामीजीके साथ जोधपुरमें भी थे। आपने उनकी सेवामें रात दिन कुछ नहीं देखा। यद्यपि आप जिला अलीगढ़के भूमिहार ठाकुरोंमेंसे एक प्रतिष्ठित ठाकुर थे परन्तु उन्होंने महाराजकी उलटियोंको अपने हाथसे उठाकर दूर बाहर फेंका। वे महाराजका मूत्रपुरीष तक उठाते रहे। अपनी गोदमें उठाकर उनको शौच-स्थानमें ले जाते। कई बार उनके हाथों-पर ही अतिसार हो गए। वे उनके मलमूत्रके वस्त्रोंको भी धोते। जो भी गुरु-सेवा कोई आदर्श सेवक कर सकता है वह ठाकुर महाशयने की और रातों जागकर की।

प्रशंसित ठाकुर महाशय तो श्री सेवामें थे ही, मेरठसे महाशय लक्ष्मण स्वरूपजी, फरुखाबादसे लाला शिवदयाल और मुम्बईसे सेवक लाल कृष्ण-दास आदि अनेक भक्तजन आबूपर आ पहुँचे।

आबूके तार-घरके कर्मचारियोंको उन दिनोंमें आँखें झपकना भी नहीं

मिलता था। पल पलमें इतने तार आते थे कि किसीको सिर खुजलाने तकका अवकाश न था। आर्योंकी व्यस्ततावेगके निरन्तर आने वाले तार उस तार घरको धुँआ धार कर रहे थे। सभी कर्मचारी कहते थे कि इतने तार पहले वहाँ कभी नहीं आये।

भगवत्पाद-पद्मोंमें महाराजा श्री प्रतापसिंहजीकी भक्ति अपार थी। वे अनन्य मनसे उनके सेवक थे। उनके आबूपर आनेके दो तीन दिन पश्चात्‌ही वे वहाँ गये और श्रीचरण-चुम्बनकरके पीछे लौट आये। महाराजके निवासा-दिका भी वे पूरा प्रबन्ध कर गये।

स्वामीजीतो आबूपरही रहना चाहते थे, परन्तु प्रेमीजन रातदिन प्रार्थना करते कि प्रभो, अजमेरमें पधारिये। वहीं यथायोग्य रीतिसे औषधोपचार हो सकेगा। वहाँ श्री चरणोंके एक निष्ठावान् सेवक डाक्टर श्री लक्ष्मणदासजी विद्यमान हैं।

भक्तोंके अत्याग्रह-वश भगवान् कार्त्तिक कृष्णा एकादशीको अजमेरको चल पड़े। अजमेर स्टेशनपर उस दिन आर्य्य पुरुषोंकी एक भारी भीड़ लगी हुई थी। गाड़ी आनेपर, जब चार पाँच मनुष्योंने स्वामीजीको अपने हाथोंपर उठाकर नीचे उतारा तो आर्य्य जनोंके हृदय व्याकुलतासे चूर चूर हो गये। उनके लिए पहलेसे ही एक कोठी नियत की हुई थी। वहाँ ले जाकर उन्होंने महाराजकी अतिकृश कायाको पलंगपर लिटा दिया।

कार्त्तिक कृष्णा द्वादशीसे फिर डाक्टर लक्ष्मणदासजीकी औषधि आरम्भ हो गई। भक्त लक्ष्मणदास नियत समयपर बदल बदलकर औषधि देते, आप भी अधिक समय वहाँ रहते परन्तु सभी प्रयत्न निष्फल जाते थे। कोई भी औषधि लगती न थी। पल पल, घड़ी घड़ी और दिन दिनमें महारोग भीषणाकार होता चला गया। इससे सबकी चित्त-भित्तियोंपर निराशा और चिन्ताके चिन्ह चित्रित होते जाते थे। कार्त्तिक कृष्णा त्रयोदशीको पण्डित भागरामजी श्री दर्शनोंके लिए आये। महाराजने उनको अति धीमी ध्वनिसे कुशल-प्रश्न किया। उन्होंने निवेदन किया कि भगवन्, आपकी कृपासे मैं तो अच्छा हूँ परन्तु श्री भगवान्‌को इस दशामें देखकर हृदय विदीर्ण हुआ जाता है। भगवान्, भक्त भागरामकी ओर गम्भीर भावसे देर तक देखते रहे। अन्तमें पण्डितजी न्यायालयको चले गये।

उसी दिन लाहौरसे लाला जीवनदास और पण्डित गुरुदत्तजी वहाँ पहुँचे। नम्र नमस्कार करके लालाजी पलङ्गके पायताँनेकी ओर बैठ गये, महाराजने उनको आँख खोलकर देखा। फिर उनको हाथसे पकड़ अपनी ओर खींचकर लाहौरकी सामाजिक सृष्टिका सुख-समाचार पूछा। उसी समय लालाजीने पण्डित श्री गुरुदत्तका परिचय कराया। पण्डित महाशयने, उठकर बड़ी विनीततासे, श्रीचरण छूकर नमस्कार की।

श्रीमन्महाराणा सज्जन सिंहजीने, उदयपुरसे, पण्ड्या मोहनलालजीको पूज्यपादजीका कुशल-समाचार पूछनेके लिए भेजा। पण्ड्याजीने जब आकर देखा कि उनके फेफड़े काश-श्वाससे धौंकनीकी भाँति धौंक रहे हैं, अन्तकालीन वेदनासे उनका बदन व्यथित हो गया है, उनकी परिपुष्ट काया अब अस्थि-पिंजरावशेष यष्टि बन गई है, और उनके जीवन-स्रोतके सामने उसे शोषण करनेके लिए मृत्युकी महामरुस्थली आपड़ी है तो वे पाँवके तलुओंसे सिरकी चुटिया तक थरथर काँप गये। एकाएक उनका सिर चकरा गया, जी घटने लगा और आँखोंके आगे अन्धेरा छा गया। अन्तमें उन्होंने कलेजा थाम-कर चरण-वन्दना की और बताया कि 'श्रीमहाराणाजी आपकी व्याधिका वृत्त जानकर अति चिन्तित हो रहे हैं। वे रातदिन आपका स्वास्थ्य समाचार जान-नेकी प्रतीक्षा करते रहते हैं। महाराज आज आपकी परोपकार-मूर्तिकी, यह अव-स्था देखकर मैं भी अति अधीर हो रहा हूँ। भगवन्, भारत भूमिके शुभ-भाग्य-प्रभातको आहूत करनेके लिए, आप ऐसे भारत भक्तोंकी, अभी बड़ी भारी आवश्यकता है। ये हमारे, हमारी जातिके और हमारे देशके दुर्दिन हैं जो आपकी दया-पूर्ण देह इस दुःखद दशामें आ पड़ी है।"

महाराजने कहा, "पण्ड्याजी, खेदसे खिन्न न हूजिए। अब विधाताकी ऐसीही इच्छा है। देहका बनना और बिगड़ना तो, पानीके बुद्बुदे और सागर तरङ्गकी भाँति होता ही रहता है। यह मर्त्यलोक मरणाभिमुख है। कोई अन-होनी होने लगे तो उसका कोई शोक भी करे, परन्तु मिलकर टूटना, बन-कर बिगड़ना, होकर न रहना, जन्म कर मर जाना तो जगतका अवश्यम्भावी नियम है। इसके लिए सोचना नहीं चाहिए।"

कार्त्तिक कृष्णा १४ को महाराजके शरीरपर नाभितक छाले पड़ गये थे। उनका जी घबराता था। गला बैठ गया था। श्वास-प्रश्वासके वेगसे उनको नस नस हिल जाती थी। सारी देहमें दाहसी लगी हुई थी। परन्तु वे नेत्र मूँदकर ब्रह्म ध्यानमें वृत्ति चढ़ाये हुए थे। अजान लोग उनकी इस ध्यानावस्थाको मूर्छा मान लेते थे। जब शरीर अपने व्यापारसे शिथिल हो जाय और बोलने आदिकी शक्ति भी मन्द पड़ जाय तो सभी सन्तजन मनोवृत्तियोंको मूर्छित करके निमग्नावस्थामें चले जाया करते हैं।

कार्त्तिक अमावस्या मङ्गलवार, दीप मालाके दिन, सवेरे, विदेशी बड़ा डाक्टर न्यूटन महाशय आया। उसने उनके-रोग-भोगकी अवस्था देखकर आश्चर्यसे कहा कि ये बड़े साहसिक और सहनशील हैं। इनकी नस नस और रोम रोममें रोगका विषैला कीड़ा घुसकर कुलबुलाहट कर रहा है परन्तु ये प्रशान्त-चित्त हैं। इनके तन पिंजरको महाव्याधिकी ज्वाला-जलन जलाये चली जाती है जिसे दूरसे देखतेही कँपकपी छूटने लगती है। पर ये हैं कि चुपचाप चारपाई पर पड़े हैं। हिलते डुलते तक नहीं। ऐसे रोगमें जीते रहना इन्हींका काम है।"

भक्त लक्ष्मणदासने उनसे कहा कि महाशय, ये महापुरुष स्वामी दया-नन्दजी हैं।

यह सुनकर डाक्टर महाशयको अत्यधिक शोक हुआ। महाराजने उस बड़े वैद्यके प्रश्नोंका उत्तर सङ्केत-मात्रसे दिया। एक मुसलमान वैद्य, पीरजी, बड़े प्रसिद्ध थे। वे भी उनको देखने आये। उन्होंने आतेही कह दिया—'इनको किसी कुलकण्टकने कालकूट विष देकर अपनी आत्माको कालिख लगाई है। इनकी देहपर सारे चिन्ह विष-प्रयोग-जन्य ही दिखाई देते हैं।" पीर-जीने भी महाराजका सहन-सामर्थ्य देख दांतोंमें उङ्गली दबाते हुए कहा, "धैर्यका ऐसा धनी, धरणी-तलपर हमने दूसरा नहीं देखा।"

इस प्रकार राजवैद्यों और भक्तजनोंके आते जाते दिनके ग्यारह बजने लगे। रोगीका साँस अधिक फूलने लगा। वे हाँपते तो बहुत थे परन्तु बोलनेकी शक्ति कुछ लौट आई थी। उनका कण्ठ खुल गया था। इससे प्रेमियोंके मुख-मण्डलोंपर प्रसन्नताकी रेखा खेलने लगी परन्तु पीछे जाकर उन्हें पता लगा कि वह तो दीपक-निर्वाणकी अन्तिम प्रदीप्ति थी। सूर्यास्तका उजेला था।

महाराजने उस समय शौच होनेकी इच्छा प्रकट की। चार भक्तोंने उन्हें हाथोंपर उठाकर शौच होनेकी चौकी पर बिठा दिया। निवृत्त होकर वे फिर भली भाँति शुद्ध हुए और आसनपर विराजमान हो गये।

उस समय श्रीस्वामीजीने कहा कि आज इच्छानुकूल भोजन बनाइए। भक्तोंने समझा कि भगवान् आज अपेक्षाकृत कुछ स्वस्थ हैं इस लिए अन्न ग्रहण करना चाहते हैं। वे थाल लगाकर श्रीमहाराजके सामने ले आये। स्वामीजीने टुक देखकर कहा कि अच्छा, इसे ले जाइए। अन्तमें प्रेमियोंकी प्रार्थनापर उन्होंने चनोंके झोलका एक चमचा ले लिया फिर हाथ मुँह धोकर भक्तोंके सहारे वे पलंगपर आ गये।

शरीरकी वेदना बराबर ज्योंकी त्यों बनी हुई थी। श्वास रोगका उपद्रव पूरे प्रकोपपर पहुँच चुका था। पर वे शिष्य-मण्डलीसे वार्त्तालाप करते और कहते थे कि एक मासके अनन्तर आज स्वास्थ्य कुछ ठीक हुआ है। बीच बीचमें जब वेदनाका वेग कुछ तीव्र हो जाता तो वे आँखें बन्दकर मौन हो जाते। उस समय उनकी वृत्ति स्थूल शरीरका सम्बन्ध छोड़ देती—आत्माकारताको लाभ कर लेती।

इसी प्रकार पल विपल बीतते साँझके चार बजनेको आये। भगवान्ने नाईको बुलाकर क्षौर करनेको कहा। लोगोंने निवेदन किया कि भगवन् उस्तरा न फिराइए। छाले फुँसियाँ कटकर लहू बहने लगेगा' परन्तु उन्होंने कहा कि इसकी कोई चिन्ता नहीं है। क्षौर कराकर उन्होंने नख उतरवाए। फिर गीले तौलियेसे सिरको पोंछकर सिरहानेके सहारे पलङ्गपर बैठ गये।

उस समय श्रीमहाराजने आत्मानन्दजीको प्रेमसे आहूत किया। जब आत्मानन्दजी हाथ जोड़कर सामने आ खड़े हुए तो कहा—वत्स, मेरे पीछे बैठ जाओ। गुरुदेवका आदेश पाकर वे सिरहानेकी ओर, तकियेके पास, प्रभुकी पीठ थामकर विनयसे बैठ गये।

महाराजने अतीव वत्सलतासे कहा—वत्स आत्मानन्द, आप इस समय क्या चाहते हैं? गुरु महाराजके वचन सुनकर आत्मानन्दजीका हृदय भर आया। उनकी आँखोंसे एकाएक आँसुओंकी लड़ी टूट पड़ी। गद्गद गलेसे

आत्मानन्दजीने नम्रीभूत निवेदन किया कि 'यह तुच्छ सेवक रात दिन यही प्रार्थना करता है कि परमेश्वर अपनी अपार कृपासे श्री चरणोंको पूर्ण स्वास्थ्य प्रदान करे। इसे इससे बढ़कर त्रिभुवन भरमें दूसरी कोई वस्तु प्रिय नहीं है।

महाराजने हाथ बढ़ाकर आत्मानन्दजीके मस्तकपर रक्खा और कहा—वत्स, इस नाशवान् क्षणभंगुर शरीरको कितने दिन स्वस्थ रहना है! बेटा अपने कर्तव्य कर्मको पालन करते आनन्दसे रहना। घबराना नहीं। संसारमें संयोग और वियोगका होना स्वाभाविक है।

महाराजके इन वचनोंको सुनकर आत्मानन्दजी सिसक सिसककर रोने लगे। गुरु-वियोग वेदना-को अति समीप खड़ा देखकर उनका जी शोक सागरके गहरे तलमें डूब गया।

गोपालगिरी नामके एक संन्यासी भी कुछ कालसे श्री चरण-शरणमें वास करते थे। महाराजने उनको आमन्त्रित करके कहा कि आपको कुछ चाहिए तो बता दीजिए। उन्होंने भी यही विनयकी कि भगवन्! हम लोग तो आपका कुशल-क्षेम ही चाहते हैं। हमें सांसारिक सुखकी कोई भा वस्तु नहीं चाहिए। फिर महाराजने दो सौ रुपये और दो दुशाले मँगाकर भीमसेनजी और आत्मानन्दजीको प्रदान किये। उन दोनोंने अश्रुधारा बहाते, भूमिपर सिर रखकर वे वस्तुयें लौटा दीं। वैद्यवर भक्तराज श्रीलक्ष्मण दासजीको भी भगवान्‌ने कुछ द्रव्य देना चाहा परन्तु उन्होंने द्रवीभूत हृदयसे कर जोड़कर लेनेसे नकार कर दिया।

इस प्रकार अपने शिष्योंसे गुरु महाराजको बिदा होते देखकर, आर्य जनोंके चित्तकी चंचलता और चिन्ताकी प्रचण्डता चरम सीमातक पहुँच गई। वे बड़ी व्याकुलतासे सामने आ खड़े हुए। उस समय, श्री स्वामीजी, अपने दोनों नेत्रोंकी ज्योति सब बन्धुओंके मुखमण्डलोंपर डालकर, एक नीरव पर अनिर्वचनीय स्नेह-संलाप सहित, उनसे अन्तिम बिदाई लेने लगे। उनके प्रेम पूर्ण नेत्र, अपने पवित्र प्रेमके सुपात्रोंको धैर्य्य देते और ढाढस बँधाते प्रतीत होते थे. महाराज प्रसन्न-चित्त थे। उनके मुखपर घबराहटका कोई भी चिन्ह परिलक्षित नहीं होता था।

परन्तु भक्त जनोंकी आशायें क्षण क्षणमें निराशा-निशामें लीन हो रही थीं; उनके उत्साहकी कोमल कलियोंके सुकोमल अङ्ग पल पलमें भङ्ग हुए चले जाते थे। वे गुरुदेवकी दैवी देहके देव-दुर्लभ दर्शन पा तो रहे थे परन्तु उनकी आँखोंके आगे रह रह कर आँसुओंकी बदलियाँ आ जाती थीं। रुलाईका कुहरा छा जाता था। सर्वत्र निविड़ तमोराशका राज्य दिखाई देने लगता था। वे जीको कड़ा किये कलेजा पकड़ कर खड़े तो थे, परन्तु खोखले पेड़ और घुने हुए दानेकी भाँति, मानो सत्व-रहित थे।

ऐसी दशाहीमें सायंकालके पाँच बजने लगे। उस समय एक भक्तने पूछा कि भगवन्, आपकी प्रकृति कैसी है? श्रीमहाराजने उत्तर दिया कि अच्छी है; प्रकाश और अन्धकारका भाव है। इन्हीं बातोंमें जब साढ़े पाँच बजे तो महाराजने सब द्वार खुलवा दिये भक्तोंको अपनी पीठके पीछे खड़े होनेका आदेश किया। फिर पूछा कि आज पक्ष, तिथि और वार कौनसा है। पण्ड्या मोहन लालने शिरोनत होकर निवेदन किया कि प्रभो, कार्तिक कृष्ण पक्षका पर्य्यवसान और शुक्लका प्रारम्भ है। अमावास्या और मङ्गलवार है।

तत्पश्चात् महाराजने अपनी दिव्य दृष्टिको उस कोठरीके चहुँ ओर घुमाया और फिर गम्भीर ध्वनिसे वेद-पाठ करना आरम्भ कर दिया। उस समय उनके गलेमें, उनके स्वरमें, उनके उच्चारणमें, उनकी ध्वनिमें, उनके शब्दोंमें किंचिन्मात्र भी निर्बलता प्रतीत नहीं होती थी।

भगवान्के होनहार भक्त, पण्डित श्रीगुरुदत्तजी उस कमरेके एक कोनेमें भित्तिके साथ लगे हुए, भगवान्को भौतिक दशाके अन्तका अवलोकन कर रहे थे। टकटकी लगाये निर्निमेष नेत्रोंसे उनकी ओर देख रहे थे।

पण्डित महाशय उस धर्म्मावतारके दर्शन करने पहले पहल ही आये थे। उनके अन्तःकरणमें अभी आत्म-तत्वका अंकुर पूर्ण-रूपसे नहीं निकल पाया था। परन्तु श्रीमहाराजकी अन्तिम दशाको देखकर वे अपार आश्चर्यसे चकित हो गये। वे चौकसाई और विचारसे देख रहे थे कि मरणासन्न महात्माके तन पर अगणित छाले फूट निकले हैं। उनको विषम वेदना व्यथित किये जाती है। उनकी देहको दावानल सदृश दाह-ज्वाला एक प्रकारसे दग्ध कर रही है। प्राणान्तकारी पीड़ा उनके सम्मुख उपस्थित है। परन्तु महात्मा शान्त बैठे हैं

दुःख-क्लेशका नाम-निर्देशतक नहीं करते। उलटे गम्भीर गर्जनासे वेद-मन्त्र गा रहे हैं। उनका मुख प्रसन्न है। आँखें कमल सदृश खिल रही हैं उनका विमल भाल अद्भुत आभासे चन्द्रमाके सदृश चमक रहा है। व्याधि मानों उनके लिए, त्रिलोकीमें त्र्यकाल, उत्पन्न ही नहीं हुई। यह सहनशीलता शरीरकी सर्वथा नहीं है। अवश्यमेव यह इनका आत्मिक बल है।

यह पहला पल था कि जिसमें महर्षिकी मृत्युकी अवस्था देखकर श्रीगुरुदत्त ऐसे धुरन्धर नास्तिकके हृदयकी उपजाऊ भूमिमें आत्मिक जीवनकी जड़ लग गई। इन भावोंकी विद्युत-रेखा चमकते ही वे सहसा चौंक पड़े। उन्होंने क्या देखा कि एक ओर तो परम धामको पधारनेके लिए प्रभु परमहंस पलङ्ग पर बैठे प्रार्थना कर रहे हैं और दूसरी ओर वे, व्याख्यान देनेके वेशमें सुसज्जित, उसी कमरेकी छतके साथ लगे बैठे हैं। इस आत्म-योगके प्रत्यक्ष प्रमाणको पाकर पण्डित महाशयका चित्त-स्फटिक, आस्तिक भावोंकी प्रभासे चमचमा उठा। मानों एक ओरसे निकलती हुई ज्योति उनकी देहके दीपमें प्रवेश कर गई।

गुरुदत्त अपने गुप्त रीतिसे आत्मदाता गुरुदेवको फिर अतिशय श्रद्धासे देखने लगे। भगवान् वेद-गानके अनन्तर, परम-प्रीतिसे पुलकित-अंग होकर, संस्कृत शब्दोंमें परमात्मदेवकी प्रार्थना करने लगे। फिर आर्य्यभाषामें ईश्वर गुण गाते भक्तोंकी परम गति भगवती गायत्रीको जपने लगे। उस महामन्त्रके पुण्यपाठको करते करते मौन हो गये। और चिरकालतक सुवर्णमयी मूर्त्तिकी भाँति निश्चल रूपसे समाधिस्थ बैठे रहे। उस समय उनके स्वर्गीय मुख-मण्डलके चारों ओर सुप्रसन्नता- प्रभातकी झलमलाहट पूर्ण-रूपसे झलमल कर रही थी।

समाधिकी उच्चतम भूमिसे उतर कर, भगवान्‌ने दोनों नेत्रोंके पलक-कपाट खोलकर, दिव्य ज्योतिका विस्तार करते हुए कहा—हे दयामय, हे सर्व शक्तिमान् ईश्वर, तेरी यही इच्छा है! सचमुच, तेरी ही इच्छा है। परमात्मदेव तेरी इच्छा पूर्ण हो। अहा! मेरे परमेश्वर, तैंने अच्छी लीला की!"

इन शब्दोंका उच्चारण करते ही, ब्रह्मर्षिने आत्मिक प्राणको ब्रह्माण्डद्वार द्वारा, परम धामको जानेके लिए स्वर्ग-सोपान पर आरूढ़ किया और तत्पश्चात्

पवन-रूप प्राणको कुछ पलकत भीतर रोककर प्रणवनादके साथ बाहर निकाल दिया । उसे सूत्रात्मा वायुमें लीन कर दिया ।

प्रभुके स्थूल प्राणके निकलनेके साथ ही उपस्थित सेवकोंकी अश्रु-धारायें अनर्गल हो गईं । अनाथ बालकोंकी भाँति, भक्तजनोंने रो रोकर कमरेकी भूमिको भिगोदिया । उनके दुःखका, उनके क्लेशका, उनकी निराशाका, उनके शोकका, कोई पारावार न रहा । सबके हृदय इस दारुण दुःखसे विदीर्ण हो गये । वे बहुतेरा थामते पर उनका कलेजा बार बार मुँहको आता था । वे धैर्य्य धारण करनेकी चेष्टा भी करते पर चित्त चकनाचूर ही हुए चला जाता था ! फूट फूटकर रोते उनकी आँखें फूल गईं । घिघियाँ बँध गईं । व्याकुलता वेगने उनको शोकके अति गहरे सागरमें डुबो दिया ।

आर्त्त भारतके भाग्यका भानु, भगवान् दयानन्द, कार्तिक अमावास्या सम्वत् १९४० वैक्रमी, मङ्गलवारको सायंके छः बजे एकाएक, काल कराल-रूप अस्ताचलकी ओटमें हो गया । उस समय सूर्य्यदेव भी अस्त हो गये थे । तमोमयी महा तमिस्रा रजनी ज्यों ज्यों घोरतररूप धारण करती जाती थी त्यों त्यों अजमेरके तार-घरसे दौड़ते हुए तार आर्य्यसंसारमें निराशाकी, अति शोककी और असह्य विपत्ति-वज्रपातकी घोरतम तमोराशिकी निपट निशाका विस्तार कर रहे थे ।

महाराजके निर्वाणका अचानक समाचार पाकर आर्योंके चित्त चौंक पड़े, चंचल हो उठे; उनके सिरपर दुःख-रूप पर्वत-शिखरका सहसा विनिपात हो गया । उस समय आर्य्य जनोंकी आँखें गङ्गा-यमुनाकी भाँति बड़े वेगसे बह रहीं थीं । उनके हृदय अस्त-व्यस्ततामें व्याकुल हो रहे थे । मन गहरे खेदकी खाईमें गिरकर खिन्नावस्थामें खण्ड खण्ड हुए जाते थे । उनकी आत्मायें इतनी अधीर हो गई थीं कि उनको एक एक पल द्रौपदीके चीरके समान दिखाई देता था और वह रात्रि काल-निशा सदृश जान पड़ती थी ।

जिस प्रकार श्रीरामके वियोगसे भरतजी व्याकुल हो उठे थे और श्रीकृष्णके निर्वाण पर ऊधवजी तथा पाण्डवोंने करुण-क्रन्दन किया था । उसी प्रकार भगवान् दयानन्दके स्वर्ग सिधारने पर आर्य्य समाजियोंमें अनवरत आर्त्त नाद होने लगा । उनके मध्यान्हके सूर्य्यकी प्रखर किरणोंपर अकस्मात् काल-कालिमा

छा गई । शरत्पूर्णिमाके शुभ्र ज्योत्स्ना-युक्त चन्द्रमापर पृथ्वीकी छाया पड़ गई । उनकी उन्नति और उदयके बाल रविको राहुने सहसा ग्रस लिया । हरित, भरित, पुष्पित और फलित आर्य्य समाज-वाटिका पर, परुष-पाषाणराशिको भी तुषार-रूपमें परिणत करनेवाला, भीषण तुषारपात हो गया । प्रसन्नतापर खिन्नताकी झलक आ गई । चारु प्रेम-प्रतिमा अकालहीमें सामनेसे उठा ली गई । उनकी सुविमल सुशीतल, सुवासित, सुकोमल चित्त-कलियोंको कालकी लूके झकोलेने जहाँ तहाँसे झुलस दिया । वे गुरु-वियोग-व्यथासे विह्वल हो, बिलख बिलख कर रोदन करते थे ।

आगामी दिनके समाचार-पत्रने शोक सूचक गहरी काली रेखा देकर अपने स्तम्भोंके स्तम्भ इस शोक-समाचार पर लिखे, जिससे पूर्वसे पश्चिम और उत्तरसे दक्षिण पर्यन्त भारतभरमें भगवान्‌के असामयिक स्वर्गारोहणका शोक छा गया । नगर नगरमें लोगोंने सभायें लगा कर इस अति भारी क्षति और धर्म्महानि पर आँसू बहाये । इस सार्वभौम शोकमें अमेरिका और यूरोपके देश भी सम्मिलित हुए ।

कार्तिक शुक्ला प्रतिपदाको, प्रातःकाल भक्तजन भगवान्‌की जीवन-ज्योतिविहीन, निर्जीव देह-दीवटको उठा कर स्नान कराने लगे । वे चाहते थे कि महाराजके शरीर पर केवल सुशीतल जल ही पड़े परन्तु बलात्कारसे उनके आँसू बराबर, टपटप करके टपक पड़ते थे । स्नान करानेके उपरान्त महाराजकी देहको चन्दनादि सुगन्धित वस्तुओंसे चर्चित किया गया । फिर उसे बहुमूल्य वस्त्रोंमें वेष्टित करके, पलङ्ग पर प्राण-त्याग आसनमें स्थापित किया गया । उस समय, सैंकड़ों मनुष्य उनके अन्तिम दर्शनोंको दौड़े आकर, अपने नेत्रोंकी सहस्र धाराओंसे उस कोठरीकी भूमिको भिगोते थे । वहाँ ऐसा प्रतीत होता था कि आज यहाँ शोकके सातों सागर उमड़े पड़े हैं । जिस समय महाराजकी देहको उठानेके लिए भक्त-जन विमान बनाने लगे तो पाड्या मोहन लालजीने भ्रातृमण्डलके सामने निवेदन किया कि 'श्रीमन्महाराणा श्री सज्जन सिंहजीने मुझे चलते समय आदेश किया था कि यदि हम लोगोंके दुर्भाग्यसे महाराजका शरीर छूट जाय तो किसी प्रकार तीन चार दिन पर्यन्त उसका दाह-कर्म न किया जाय, जिससे मैं और उनके दूसरे शिष्य राजे महाराजे

उनके अन्तिम दर्शन पा सकें, उनके दाह-कर्ममें भी सम्मिलित हो सकें। परन्तु प्रभुके उपस्थित प्रेमियोंने दाह-कर्म उसी दिन कर देना ही उचित समझा। शिविका पुष्पों, कदली-स्तम्भों और कोमल पत्तोंसे सुसज्जित की गई, दिनके दस बजे महाराजकी अरथी उठाई गई। उस समय सैकड़ों सज्जन नङ्गे पाँव उसके पीछे चलते थे। राय भागराम भी नङ्गे पाँव साथ थे। महाराजके, शिविकामें पड़े शवको, पंजाबी सैनिक अपने बलिष्ठ कन्धोंपर उठाये वाहन कर रहे थे। रामानन्दजी और गोपाल गिरिजी आदि आगे आगे वेद-पाठ करते चलते थे। अजमेर नगरके आगरा द्वारसे होते हुए बाजारों और चौकोंका उल्लङ्घन करते नगरसे बाहर दक्षिण भागमें शिविका पहुंचाई गई।

वेदी बननेमें कुछ देर जानकर पण्डित भागरामजीने आर्य्योंके डाँवाडोल मनोंको धैर्य्य बँधाते हुए स्वर्गीय स्वामीजीके गुण-कीर्त्तन किये। उनके उपकार बताये और स्वामीजीके उद्देश्योंकी परिपूर्त्तिके लिए स्वामीभक्तोंको प्रोत्साहन दिया। यद्यपि पण्डित महाशयका कण्ठ बीचमें वाष्पसे बारबार रुक जाता था, फिर भी उन्होंने यथा तथा करके अपना हार्द प्रकाशित कर ही दिया।

तत्पश्चात् रायबहादुर पण्डित सुन्दरलालजी कलेजेको कड़ा करके कथन करने लगे। परन्तु वे तो दो चार शब्दोंहीमें शोक-सागरमें डूब गये। उनके दोनों नेत्रोंसे बहते हुए अश्रुओंने उनके वक्ष-स्थलको गीला कर दिया। उनका गला इतना रुक गया कि वे आगे कुछ भी न बोल सके।

वेदी बन जानेपर भक्त लोगोंने दो मन चन्दन और दस मन पीपलकी समिधाओंसे चिता चयन की। अपने टूक टूक होते हृदयोंको थाम कर उन्होंने गुरुदेवके शवको उस अन्तिम शय्यापर शायी कर दिया। रामानन्द और आत्मानन्दजीने यथाविधि अग्न्याधान किया। अग्नि-स्पर्श होते ही घृत-सिंचित चिता, ज्वाला-मालासे आवृत हो गई। उस दाह-कुण्डमें चार मन घी, पाँच सेर कपूर, एक सेर केसर और दो तोले कस्तूरी डाली गई। चरु और घृतकी पुष्कल आहुतियोंसे हुत, श्रीमहाराजका शव, प्रेमियोंके नीर भरे नेत्रोंसे देखते ही देखते अपने कारणोंमें लय हो गया। महाराजकी अमर आत्मा तो जागतिक ज्योतिमें पहिले ही लीन हो चुकी थी। सेवकोंने उनके शरीरको भी ज्योति-शय्या पर आरूढ करके उसके तात्त्विकरूपमें पहुँचा दिया।

गुरु महाराजकी दुर्लभ देहका दाह-कर्म्म करनेके अनन्तर, अति शोकातुर आर्य्यजन नगरको लौट आये । उस दिन वे अपनेको निःसार और निसत्त्व समझते थे, प्रत्येक कार्य्यमें अनमनेसे हो रहे थे । अपने अति प्यारोंको भी देखकर उनको प्रसन्नता नहीं होती थी । उनको अपने देहके दीवटपर धरा हुआ मनका दीवा प्रसन्नताकी ज्योतिसे सर्वथा शून्य जान पड़ता था ।

कार्त्तिक शुक्ला द्वितीयाको पण्ड्या मोहनलालजीने महाराजके स्वीकारपत्रके अनुसार उनकी सारी वस्तुओंपर अधिकार करलिया और कागज-पत्रादि उदयपुर भेज दिये ।

भगवान्‌की अस्थियोंको चयन करके, शाहपुराधीशके दिये उद्यानमें गाड़ दिया गया । यह उद्यान अन्ना सागरके किनारे पुष्करकी सड़कपर है ।

महाराजके निर्वाणके अनन्तर, कई दिनोंतक सारे भारतियोंके मानस आकाशमें शोकका मेघमण्डल मण्डलाता रहा । भारत-भक्तोंके हृदयपर गहरी चोट आई । सुधारक दलका दाहिना हाथ गिर गया। अबलाओंके पक्ष-पोषक दीन-दुर्बलोंके सहायक और अनाथोंको सनाथ करनेवाले मस्त योगीने अपनी काया,कन्दरा त्याग दी, पर्ण-कुटी छोड़ दी। वह एकाएक चुपकेसे स्वर्गधामको पधार गया। परन्तु उसकी फेरीका अलख नाद जनताके कानोंमें ज्योंका त्यों गूँजता रहा। उसकी माधुरी मूर्ति आँखोंके सामने वैसीकी वैसी ही फिरती रही ।

कुछ कालतक तो आर्य्य-समाजोंके साथ सबने सहानुभूतिका प्रकाश किया। उनके गहरे घावपर मरहम-पट्टी की । परन्तु मत-मतान्तरोंकी ममता और अपनी अपनी अहन्ताके कारण बहुतसे मतवादी पुरुष इस पारिजात पादप-पंक्तिको परिरक्षण-रहित समझने लगे।इस नन्दनवनको महामालीके बिना उजड़ा हुआ मानने लगे । नगर नगर और ग्राम ग्राममें आर्य्योंका विरोध होने लगा। विचक्षण विज्ञानियोंने, स्वामीजीके स्वर्गारोहण पर, आर्य्य-समाजके जीवन-दिन अपनी उङ्गलियोंपर गिन लिये। उन्होंने अनुमान कर लिया कि इस नौकाका न्याय और नीति-निपुण नाविक इसे भँवरसे तो निकाल गया है परन्तु मँझ-धारसे बाहर नहीं कर सका । अब उस कुशल कर्णधारके बिना यह निपट अनाड़ियोंके हाथ पड़कर आपही आप डूब जायगी ।

आर्य्यसमाजियोंके हृदय, कई दिनों और मासोंतक डगमगाते रहे। उनके मनोंमें निराशाका राज्य बना रहा। उनके चित्तोंका उत्साह भग्न हो गया उनके साहसको, कहीं ठौर ठिकाना न रहा। वे अपनेको जहाँ तहाँ निस्सहाय और निरवलम्ब पाते थे। परन्तु थोड़ेही मासोंके अनन्तर आर्य्योंकी आशा-लतामें तब ताम्र-वर्ण, सुकोमल कोंपल निकल आई उनकी सेवक-सेनाके सुचतुर संचालक सेनापतिका काम करने लग गये। वे जगद्गुरुकी जगाई जोतको जी-जीवनसे बचाये रखनेमें प्रयत्नशील हो गये।

जैसे भूमण्डल भरको भयभीत करनेवाले, भारी भूकम्पसे समुद्र कुछ पीछे हटकर फिर चौगुने बलसे आगे बढ़ता है, उसी प्रकार भारी निराशाके अनन्तर आर्य्यसमाजियोंका उत्साह-सागर और प्रबलतासे उछल उछलकर ऊँचे किनारों परसे भी पार होने लगा। नगर और ग्राम ग्राममें धर्म्म-ध्वनिकी गूँज सुनाई देने लगी। उनकी धर्म्म-प्रचारकी तत्परताने, सुधारकी अनोखी लग्नने, धर्म्म-चर्चाके विचित्र चातुर्य्यने, शास्त्रार्थोंके निर्भय भावने देखनेवालों की आँखोंमें चकाचौंध लगा दी। आर्य्योंका 'नमस्ते' का मधुर नाद उससमय मनोमोहन महामन्त्र था। इसको सुनते ही आर्य्यजनकी छाती प्रेमसे उछलने लगती। वह आगन्तुकके मुखसे यह मन्त्र सुनकर उसे गले लगा लेता। उसे, उसके नाम-धामकी पूछताछ की भी आवश्यकता न रहती! इस महामन्त्रके पुण्य पीठहीसे परम विश्वासका प्रकाश हो जाता। भेद-भावना मिटाकर, भ्रातृ-भावके सूत्रमें, मनोंके मनके पिरोनेके लिए इस महामन्त्रका मुखसे उच्चारण करना ही पर्य्याप्त समझा जाता।

उस समय मिलापमें एक अनुपम माधुर्य्य आ गया था। संहति और संघका बड़ा महत्व माना जाता था, लोगोंमें नया पुरुषार्थ, नूतन प्रेम, नवीन जीवन-नव उद्योग और लग्न उत्पन्न हो गई। जैसे आकाशमें धमा चौकड़ी मचा-नेवाला मेघमण्डल, वर्षाकालमें हिमालय पर बरसकर, कार्तिक मासमें सर्वथा शान्त हो जाता है और नील नभमें उसकी एक टुकड़ी भी दिखाई नहीं देती। परन्तु वही मेघमाला-समूह, उस गिरिराजके अनेकअङ्गोंमेंसे नदियोंके रूपमें, नालोंके आकारमें छोटी कूलोंकी आकृतिमें, झरझर झरते झरनोंकी कायामें, टप टप टपकते बिन्दुओंके वेशमें, स्रोतोंके स्वरूपमें अवतार-धारण

करके अनेक मार्गोंसे बहकर, भारतके नाना भू-भागोंको हरा भरा करने लगता है, वनोंके दावानल तकको शान्त कर देता है । उसी प्रकार, महर्षि धर्म-मेघ बन कर बरसे निरन्तर वर्षा करते रहे और अन्तको कार्त्तिक मासहीमें शान्त हो गये, परन्तु उनके भावोंके जीवनांश, आर्य्य वीरोंका अवतार-धारण कर देशदेशान्तरोंमें विविध प्रकारसे धर्म्म-प्रसाद बाँटने लगे ।

उस समय छोटा बड़ा, जिसे भी देखो, दयानन्दके जीवनांशसे सजीव हो रहा था । उसके भालपर वैसी ही निर्भयता थी, वचनोंमें वैसा ही ओज था । उसकी आँखोंमें दयानन्दी तेज चमकता था । उसके मनमें दयानन्दी उमङ्गके ऊँचे तरङ्ग उठते थे । उसके हृदयमें दयानन्दी उच्चभिलाषाका विकाश झलकता और उसके कर्म्मोंमें उस कर्म योगीकी क्रियाका कौशल प्रकाशित होता था ।

उन दिनों जहाँ जाओ वहाँ आर्य्य बन्धुओंमें देश-हितके गीत गाये जाते एकता देवीके पाठ सुनाई देते, सामाजिक संशोधनके सूत्र सङ्गठित होते और परमात्मदेवका यश-वर्णन किया जाता । उस समय आर्य्योंके मनोंमें आर्य्योंके घरोंमें, आर्य्योंकी मण्डलियोंमें, आर्य्योंके मन्दिरोंमें, आर्य्योंके महोत्सवोंमें, जहाँ देखो, सर्वत्र वेद-प्रचार था, ईश्वर-विचार था, शिक्षा-विस्तार था, सामाजिक सुधार था, और आनन्द कन्द भगवान् दयानन्दके पावन प्रकाशका जय जयकार था ।